



संस्कृत व्याकरण-दर्शन



# संस्कृत व्याकरण-दर्शन

रामसुरेश त्रिपाठी



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली ६

पटना ६





## प्राक्कथन

‘वाक्यपदीय विशेषत आख्याताय वा अच्ययन’ विषय पर एक प्रबंध मैने आगरा विश्वविद्यालय मे १९६५ मे प्रस्तुत किया था जो पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। कई वर्षों तक वह प्रबंध कई कारणों से अप्रकाशित पड़ा रहा। उसे सस्कृत व्याकरण दशान के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। व्याकरण दशान से सम्बद्ध वाक्य विषयक विचार मूल प्रबंध में नहीं थे। उनका समावेश यहाँ कर लिया गया है शेष ग्रंथ प्रायः अपने मूल रूप में है।

इस ग्रंथ में हरिवृत्ति शब्द से वाक्यपदीय पर स्वयं भक्त हरि द्वारा लिखी हुई वृत्ति अभिप्रेत है। श्री गंगाधर शास्त्री द्वारा सम्पादित वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड में श्लोका की संख्या में यतिभ्रम है। किंतु पाठका की सुविधा की दृष्टि से श्लोको की संख्या जसे छपी है वसे ही इस ग्रंथ में उद्धृत है। सस्कृत व्याकरण दशान एक दुर्लभ विषय है। इस पर धीरे धीरे किसी किसी तरह से मैं कुछ लिख सका हूँ। यहाँ जा कुछ विचार व्यक्त किये गए हैं वे सब प्राचीन आचार्यों के हैं। उनके विचारों को ठीक से समझने में भ्रम हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। इस निवेदन में माय यह ग्रंथ बिन पाठका के सामन प्रस्तुत है।

व्याकरण दशान की ओर मेरी रुचि स्वर्गीय गुरुवर प० अम्बिका प्रसाद उपाध्याय भक्तपूज्य प्रधानाचार्यक व्याकरण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की कृपा से हुई थी। अब उनका सादर स्मरण ही संभव है।

मैं राजकमल प्रकाशन के अधिकारियों का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया।

—रामसुरेश त्रिपाठी



## अनुक्रम

प्राक्कथन	५
प्रथम अध्याय संस्कृत व्याकरण दर्शन का उपलब्ध साहित्य	६
द्वितीय अध्याय	
वाक	३८
ध्वनि	६६
वर्ण	७४
शब्द	८२
तृतीय अध्याय	
पदार्थ	१२३
चतुर्थ अध्याय	
क्रिया	१५६
पंचम अध्याय	
काल	२०५
षष्ठ अध्याय	
उपग्रह	२४५
पुरुष	२५८
संख्या	२६४
सप्तम अध्याय	
कारक	

अष्टम अध्याय  
लिङ्ग

२८८

नवम अध्याय  
वाक्य

वाक्याय

वाक्यघम

३३०

वाक्याय की प्रक्रिया

३६३

वाक्याय निर्धारण के साधन

३७७

दशम अध्याय

वृत्ति विचार

४१०

४२६

एकादश अध्याय

स्फोटवाद

४३७

सप्तम ग्रन्थ-सूची

अनुक्रमणिका

४६०

## संस्कृत व्याकरणदर्शन की उपलब्ध सामग्री

संस्कृत व्याकरणदर्शन का आरंभ सुदूर प्राचीन काल में हो गया था। व्याकरण की रचना के लिए अनेक पारिभाषिक शब्दों का आश्रय लेना पड़ा। लक्षण बनाए गए। लक्षणों पर विचार आरंभ हुआ। मतभेद सामने आए। दर्शन आरंभ हुआ। जिज्ञासा दर्शन है। विचार की प्रक्रिया दर्शन है। गहरा चिंतन सूक्ष्म विचार और सत्य के प्रति निष्ठा किसी भी विचारधारा को दर्शन का रूप दे देते हैं। इस दृष्टि से संस्कृत व्याकरण का भी एक अपना दर्शन है। इसके बीज बौद्ध साहित्य में मिल जाते हैं

ओंकार पृच्छाम को धातु, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाध्यातम् किं लिङ्गम् किं वचनम् का विभक्ति, क प्रत्यय इति ।<sup>१</sup>

यदि इन प्रश्नों का उत्तर दे दिया जाए तो पूरा व्याकरणदर्शन सामने आ जाता है। जब धातु प्रातिपदिक, नाम आध्यात आदि क प्रति जिज्ञासा थी तो इनका समाधान भी किया गया था और इनके विशेषण आचार्य प्रसिद्ध हो चले थे

आख्यातोपसर्गानुदात्तस्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च सस्थानाध्यायिन आचार्या पूर्वं बभूवुः ।<sup>२</sup>

यास्क ने नाम आख्यात आदि के विवरण प्रस्तुत किए हैं और प्रसंगवश कतिपय पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि व्याकरण की दार्शनिक प्रक्रिया ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विकसित हो चुकी थी। किंतु जैसे पाणिनि ने पूष के व्याकरण की बहुत ही अल्प सामग्री आज उपलब्ध है वैसे ही पूर्वाचार्यों के व्याकरण सम्बन्धी दार्शनिक विचार भी अल्प ही सुरक्षित रह पाए हैं। जिन आचार्यों के मत उपलब्ध हैं उनका व्याकरणदर्शन की दृष्टि से सन्निहित परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

जैसे संस्कृत व्याकरण का मुख्यस्थित रूप पाणिनि से आरंभ होता है वैसे ही व्याकरणदर्शन का भी स्पष्ट रूप पाणिनि से आरंभ होता है। पाणिनि ने (छठी शताब्दी, ईसवी पूर्व) अष्टाध्यायी की रचना शम्भानुशासन की दृष्टि से की थी किन्तु उन्हें अनेक परिभाषा सूत्रों की रचना करनी पड़ी। अनेक सन्तानों बनाने पड़े और पारिभाषिक शब्दों के स्वरूप देने पड़े। फलतः व्याकरणदर्शन की एक विस्तृत पृष्ठभूमि पाणिनि ने स्वयं

१ गोपब्रह्मण्य प्रथम प्रपाठक, १।२४, लो० ब्यूहे गौ० सपादिन

२ गोपब्रह्मण्य प्रथम प्रपाठक, १।२७

संसार कर दी थी। पाणिनि द्वारा प्रयुक्त विभागा, पञ्चविधि, आदेश, विप्रतिषेध, उपमान लिङ्ग, क्रियानिपत्ति कालविभाग, योष्मा, प्रत्ययलक्षण, भावलक्षण, शब्दाध्यप्रकृति जस सबहों शब्द इस बात का प्रतीक हैं कि वे उन श्रितो का दार्शनिक वाता से पूर्णरूप से अवगत थे और स्वयं उच्चकोटि के चिन्तक थे। उनसे अनेक गुण अपने आप में एक दर्शन हैं जैसे

स्वतंत्र कर्ता १।४।५४

तदतिथ्य सनाप्रमाणत्वात् १।२।५३

अपवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् १।२।४५

कमणि च मेन सत्प्राति कृत्तु शरीरमुत्तम ३।३।११६

समुच्चये सामान्यवचनस्य ३।४।५

तस्य भावस्त्वतलो ५।१।११६

प्रकारे गुणवचनस्य ८।१।१२ आदि

वस्तुतः पाणिनि प्रमाणभूत आचार्य हैं। बाद के व्याकरणों ने व्याकरण से सम्बद्ध जो कुछ विचार व्यक्त किए हैं उनका अनुमोदन वे किसी-न किसी तरह पाणिनि के सूत्रों से करते हैं। व्याकरणदशम से सम्बद्ध भी सभी मत पाणिनि की भाष्यनाओं में परिपुष्ट किए जाने हैं। किसी प्राचीन आचार्य की उक्ति है कि जो कुछ वृत्ति प्रयोगों में है जो कुछ वार्तिकों में है वह सब सूत्रों में ही है

सूत्रेष्वेव हि तत सव यद वृत्तो यच्च वार्तिके ।

उदाहरणमयस्य प्रमुदाहरण पयो ॥<sup>३</sup>

व्याकरणदशम की दृष्टि से भी यह उक्ति दूर तक ठीक है।

### व्याडि (पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व)

पाणिनि के समय के आमपास ही व्याडि नाम का आचार्य हुए थे। उन्होंने 'सग्रह' नाम का व्याकरणदशम का ग्रंथ लिखा था। भट्ट हरि के आधार पर जान पड़ता है कि वह पाणिनि सम्प्रदाय में सम्बद्ध ग्रन्थ था।

'सग्रहोप्यस्यैव शास्त्रस्यकवेश । तत्रकृतत्रत्वात् व्याडेश्च प्रामाण्यादिहापि सिद्ध गन्ध उवाच ॥'<sup>४</sup>

व्याडि स्वतंत्र विचारक थे। सग्रह में उन्होंने भट्ट हरि के कथनानुसार चतुर्दश सहस्र वस्तुओं पर विचार किया था।<sup>५</sup> सग्रह भट्ट हरि के समय से बहुत पहले ही सुप्त हो चुका था।<sup>६</sup> सग्रह के कुछ उद्धरण भट्ट हरि के ग्रंथों में मिल जाते हैं। उनमें भी अधिकांश वाक्यपदीय की भट्ट हरि द्वारा रचित वृत्ति में हैं। जो दो-तीन उद्धरण दूसरे लेखकों द्वारा दिए गए हैं वे भी भट्ट हरि से ही लिए जान पड़ते हैं।<sup>७</sup> पतञ्जलि ने सग्रह के बारे में कहा

३ द्वाणशास्त्रस्यकृती वावागमानुमारिणी व्याख्या में उद्धृत, पृ० ५३६

४ महाभाष्य दीपिका, पृ० २३ पूना संस्करण

५ चतुर्दश सहस्राणि वस्तूनि अस्मिन् सग्रहग्रन्थे—महाभाष्य दीपिका, पृ० २३

६ सग्रहेश्वरमुपायने—वाक्यपदीय २।४८४

७ अब तक उपलब्ध सग्रह के सभी उद्धरण इस ग्रंथ में यथास्थान दे दिए गए हैं।

है शोभना खलु दाश्यायणस्य सग्रहस्य कृति ।<sup>८</sup> पतञ्जलि का शोभना शब्द सग्रह के गौरव को व्यक्त कर देता है।

जो उद्धरण उपलब्ध हैं उनसे जान पड़ता है कि व्याडि ने सग्रह में प्राकृतध्वनि वृत्तध्वनि, वण पद वाक्य, अथ मुख्यगौणभाव सवध उपसर्ग, निपात बन्धप्रवचनीय आदि पर विचार किया था। उन्होंने 'दशधा अथवत्ता' मानी थी।<sup>९</sup> शब्द के स्वरूप पर मौलिक विचार प्रस्तुत किए थे। शब्द के नित्य और अनित्य स्वरूप पर भी सग्रह में पर्याप्त विवेचन किया गया था और दोनों पक्षों में गुण शेष के विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया था कि व्याकरण के नियम शब्द के नित्य पक्ष और शब्द के वाक्य पक्ष दोनों ही दृष्टि से होने चाहिएँ। उपलब्ध सामग्री के आधार पर उनकी सर्वाधिक देन निम्नलिखित मानी जा सकती है

१ शब्द द्वारा द्रव्य का अभिधान इस भावना के आधार पर भारतीय चिन्तन परम्परा में व्याडि का एक दशन ही खड़ा हो गया। वाजप्यायन ने शब्द द्वारा जाति का अभिधान निश्चित किया था। व्याडि और वाजप्यायन दोनों के दशन व्याकरणशास्त्र में गृहीत हैं। पाणिनि के अनेक सूत्रों की व्याख्या दोनों दशनों के आधार पर की जाती है। कात्यायन ने दोनों मतों के विवरण दिए हैं और उन्हीं के आधार पर द्रव्यवाद व्याडि का माना जाता है (द्रव्याभिधान व्याडि)।<sup>१०</sup> भट्ट हरि ने भी इसका समर्थन किया है

वाजप्यायनस्याकृति द्याडेस्तु द्रव्यम् ।<sup>११</sup>

२ अथसिद्धात् व्याडि ने शब्द और अथ में अथ को अधिक महत्त्व दिया है। उनके मत में पद और वाक्य का निर्णय अथ द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में, भाषा के स्वरूप और उसके अवयव का निर्णायक वाक्य का अथ है

न हि चिञ्चित पद नाम रूपेण नियत एवचित्त ।

पदानां रूपमर्थो वा वाक्याथदिव जायते ॥<sup>१२</sup>

३ अपभ्रंश की प्रकृति शब्द है—शब्दप्रकृतिरपभ्रंश इति सग्रहकार ।<sup>१३</sup> सम्भवतः अपभ्रंश शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख यही है। व्याडि ने अपभ्रंश की प्रकृति (मूल) संस्कृत का माना है। भट्ट हरि इस मत से पूर्ण रूप में सहमत नहीं हैं। किन्तु अपभ्रंश पर विचार प्रस्तुत करने वाले प्रथम आचार्य व्याडि हैं।

<sup>८</sup> महाभाष्य २।३।६६, पृ० ४६८ कीलहाने संस्करण

<sup>९</sup> "तदुभय परिगृह्य दशधा अथवत्ता स्वभावभेदिका इति सग्रहे प ।" वाक्यपदीय २।२०७ हरिवृत्ति, हस्तलेख

<sup>१०</sup> महाभाष्य १। १६४, पृ० २४४

<sup>११</sup> महाभाष्य दीविका, पृ० ११

<sup>१२</sup> वाक्यपदीय १।२४ हरिवृत्ति, पृ० ४२ पर उद्धृत

<sup>१३</sup> वाक्यपदीय १।१४८ हरिवृत्ति पृ० १३४, हिताराज, मन्थ समुदेश ३०, पृ० १४३, पूना संस्करण



४ सिद्ध शब्द कात्यायन ने अपने प्रथम वार्तिक का आरम्भ सिद्ध शब्द से किया है। इस प्रथम में पतञ्जलि ने बताया है कि कात्यायन ने 'सिद्ध' शब्द सप्रह से लिया है। सप्रह में मूल प्रयोग या था कि काय शब्द, अथ सिद्ध इति। १५

पतञ्जलि के अनुसार सिद्ध शब्द नियम अथ वा वाचक है। जो हो सिद्ध शब्द व्याकरण में एक विशेष अर्थ में स्वीकृत हुआ जिसका ठीक अर्थ बताना कठिन है। उपपत्ति, निष्पत्ति और मगल तीनों शब्दों के अर्थों को एक में मिला कर जो अर्थ मिलेगा कुछ ऐसा ही अर्थ सिद्ध शब्द का स्वीकृत हुआ और इस शब्द का प्रथम अर्थ में व्यवहार आरम्भ हुआ। पिछले दो हजार वर्षों से सस्कृत व्याकरण के मर्मज्ञ लेखक अपनी धृष्टियों के अन्त में सिद्ध शब्द का प्रयोग करते आ रहे हैं और यह परम्परा अभी विच्छिन्न नहीं हुई है। मेरे विचार में इस सिद्ध शब्द का श्रेय पाणिनि को है।

### कात्यायन (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी)

पाणिनि के सदृश मेघा रखने वाले कात्यायन का भी योग व्याकरणदशन में बहुत अधिक है। व्याकरण के प्रकृत स्वरूप का तो उन्होंने विस्तार किया ही व्याकरण के दार्शनिक पक्ष का भी विकास अनुपम रूप में किया। उनका प्रथम वार्तिक 'सिद्धे शब्दायसम्प्रये' एक ओर उनके दार्शनिक दृष्टिकोण को द्योतित करता है तो दूसरी ओर एक वाक्य में संपूर्ण व्याकरणदशन है।

व्याकरणदशन का कोई अंग ऐसा नहीं है जिस पर कात्यायन की दृष्टि न गई हो। अपनी व्यापक दृष्टि के कारण उन्होंने सूत्रों की व्याख्या की एक अपूर्व शक्ति का आश्रय लिया जिसमें केवल उक्त अनुक्त का ही स्थान नहीं था अपितु व्याख्यान के माध्यम से अनेक वाक्यावयवों का सृजन था। आज जिन्हें परिभाषा कहा जाता है और सीरदेव आदि ने जिन्हें परिभाषावृत्ति में परिभाषा रूप में लिख रखा है वे प्रायः सभी कात्यायन की मेघा के परिणाम हैं। उनके वाक्य और उनकी दृष्टियाँ परिभाषा और व्याय का रूप लेती हैं। कात्यायन ने व्याकरणदशन को लोकविज्ञान से सम्बद्ध किया। व्याकरणदशन अवयवावयवीभाव अधिकरण आदि की व्याख्या लोकविज्ञान के आधार पर करता है। इनकी व्याख्या दूसरे दशकों में अर्थ है।

कात्यायन ने उत्सर्ग अपवाद विधि प्रतिषेध, निपातन स्थानी आदेश लिङ्ग, नियम आदि सामान्य—विशेष प्रकारों से अपनी व्याख्यान पद्धति को दार्शनिक रूप दे दिया है। कण्ठ ने अनेक स्थानों पर उनका उमीलन किया है। विशेषकर जहाँ वार्तिककार और महाभाष्यकार में मतभेद हैं। जैसे

भित्तेश्चत्वाद् विरोधाभावाद्नेकेनापि प्रत्ययेन प्रदीपेनेव घटादे गार्भायण्यां ध्रुडोण्यां स्त्रीत्वस्येवाज्ञातादेरेकस्यायस्य द्योतनमविदुः मयमानो वार्तिककार उत्सर्गप्रतिषेधं शास्ति। भाष्यकारस्तु विरोधमन्तरेणापि सामान्यविधे

वाक्य विशेषविधिम यत्रादीहृशत ।<sup>१५</sup>

कात्यायन ने अपने वार्तिकों में प्रकृत्यथ विशेषणवाद, प्रत्ययाथ विशेषणवाद, सामानाधिकरण्यवाद, अथनियमवाद, प्रवृत्तिनियमवाद आदिवादों का समावेश किया और पाणिनि के अनेक सूत्रों का इनके आधार पर विवेचन किया।

प्राचीन व्याकरणों में हेलाराज ने वार्तिका का विशेष अध्ययन किया था। उ होने वार्तिकों पर वार्तिकों में नामक ग्रंथ भी लिखा था। वाक्यपदीय के प्रकीर्णक काण्ड की व्याख्या करते समय हेलाराज उन वार्तिका का उल्लेख करते चलते हैं जिनका आश्रय भट्ट हरि ने लिया है। तृतीय काण्ड का वृत्तिसमुद्देश कात्यायन के कुछ वार्तिका की व्याख्यामात्र है। हेलाराज ने वार्तिकों के उद्धरण दे देकर उसे स्पष्ट कर दिया है। इससे बढ़कर कात्यायन की दार्शनिक देन का सूचक और क्या प्रमाण हो सकता है।

संस्कृत व्याकरणदशन को, संस्कृत भाषा को, संपूर्ण वाङ्मय को कात्यायन की एक विशेष देन है और वह है उनकी वाक्य की परिभाषा।

### पतञ्जलि (ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी)

पतञ्जलि के महाभाष्य की उपमा सागर से दी जाती है। वह सागर की तरह उत्तान है। सागर की तरह अगाध है। सागर की तरह रत्न छिपाए है। भट्ट हरि की दृष्टि में पतञ्जलि तीर्थदर्शी हैं। महाभाष्य, सग्रह का प्रतिनिधिकचक्र (प्रतिनिधिकल्प) है और सभी व्यायबीजों का अधिष्ठान है

कृतेऽयं पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिताः सर्वेषां व्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने ॥ 'सग्रहप्रतिकञ्चुके'<sup>१६</sup>

'व्यायबीज' शब्द पर टिप्पणी करते हुए पुण्यराज ने लिखा है

तत्र भाष्यं न केवलं व्याकरणस्य निबन्धनम्, यावत् सर्वेषां व्यायबीजानां बोद्धव्यमिति। अतएव महत् शब्देन विनोप्य महाभाष्यमित्युच्यते लोके ।<sup>१७</sup>

पुण्यराज ने पून लिखा है

महाभाष्यं हि बहुविधि विद्यावादबलभाष्य व्यवस्थितम्<sup>१८</sup> अर्थात् महाभाष्य में अनेक विद्यावाद, दशनप्रवाद हैं।

जो कुछ वार्तिकों में है वह सब तो महाभाष्य में है ही बहुत कुछ अर्थ भी है। इसलिए महाभाष्य व्याकरण और व्याकरणदशन दोनों का आकर ग्रंथ है। महाभाष्यकार की अलग से देन बतलाना कठिन है। उहाने जो कुछ कहा है सूत्रों और वार्तिकों के भाष्य के रूप में कहा है। जिनके मूल, सूत्र और वार्तिकों में नहीं हैं वे भाष्यकार की देन माने जा सकते हैं। अथवा जहाँ भाष्यकार का सूत्रकार और वार्तिककार से विरोध है वे सब मौलिक विचार महाभाष्यकार के हैं। प्राचीन टीकाकारों ने ऐसा सब स्थल चुन रखे हैं

<sup>१५</sup> महाभाष्य प्रदीप ५।३।७२

<sup>१६</sup> वाक्यपदीय २।४८५, ४८८

<sup>१७</sup> वाक्यपदीय टीका २।४८५

<sup>१८</sup> पुण्यराज वाक्यपदीय २।४८८

४ सिद्ध शब्द कात्यायन ने अपने प्रथम वार्तिक का आरम्भ सिद्ध शब्द म लिया है। इस प्रयोग में पतञ्जलि ने बताया है कि कात्यायन ने 'सिद्ध' शब्द सप्रहस लिया है। सप्रहस म मूल प्रयोग या था कि वाच्य शब्द, अथ सिद्ध इति। १४

पतञ्जलि के अनुसार सिद्ध शब्द नित्य अथ वा याचक है। जो हो, सिद्ध शब्द व्याकरण म एक विशेष अर्थ म स्वीकृत हुआ जिसका ठीक अर्थ बताया गठिन है। उपपत्ति, निष्पत्ति और मगल तीनों शब्दों के अर्थों को एक म मिला कर जो अर्थ मिलनेगा कुछ ऐसा ही अर्थ सिद्ध शब्द का स्वीकृत हुआ और इस शब्द का अर्थ के अंत म व्यवहार आरम्भ हुआ। पिछले दो हजार वर्ष से ससृष्ट व्याकरण म मगल लेकर अपनी कृतियाँ अंत म सिद्ध शब्द का प्रयोग करते आ रहे हैं और यह परम्परा अभी विच्छिन्न नहीं हुई है। मेरे विचार में इस सिद्ध शब्द का श्रेय व्याडि को है।

### कात्यायन (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी)

पाणिनि के सदा मेधा रखने वाले कात्यायन का भी योग व्याकरणदशम म बहुत अधिक है। व्याकरण के प्रकृत स्वरूप का तो उहोने विस्तार किया ही व्याकरण के दाशनिन पत्र का भी विस्तार अनुपम रूप म किया। उनका प्रथम वार्तिक 'सिद्धे शाब्दसम्बन्धे' एक आर उनके दाशनिन श्रुवाव को द्योतित करता है तो दूसरी ओर एक वाक्य म सपूर्ण व्याकरणदशम है।

व्याकरणदशम का कोई अंग ऐसा नहीं है जिस पर कात्यायन की दृष्टि न गई हो। अपनी याचक दृष्टि के कारण उहोने सूत्रों की व्याख्या की एक अपूर्व शली का आश्रय लिया जिसमें केवल उक्त अनुक्त का ही स्थान नहीं था अपितु व्याख्यान के माध्यम से अनेक वाच्यवाच्यो का सजन था। आज जिहे परिभाषा कहा जाता है और सौरदेव जादि ने जिह परिभाषावृत्ति में परिभाषा रूप म लिख रखा है वे प्राय सभी कात्यायन की मेधा के परिणाम हैं। उनसे वाक्य और उनकी दृष्टियों परिभाषा और वाच्य का रूप लेती हैं। कात्यायन ने व्याकरणदशम को लोकविज्ञान से सम्बद्ध किया। व्याकरणदशम अवयवावयवीभाव अधिकरण आदि की व्याख्या लोकविज्ञान के आधार पर करता है। इनकी व्याख्या दूसरे दशम म अर्थ है।

कात्यायन ने उत्सग अपवादा विधि प्रतिषेध, निपातन स्थानी आदेश लिङ्ग नियम आदि सामान्य—विशेष प्रकारों से अपनी व्याख्यान पद्धति को दाशनिन रूप दे दिया है। कथं ने अनेक स्थान पर उनका उमीलन किया है। विशेषकर जहा वार्तिककार और महाभाष्यकार म मतभेद हैं। जैसे

भिनन्नेशत्वाद विरोधाभावादानेकेनापि प्रत्ययेन प्रदीपेनेव घटादे गार्ग्यायण्यां ष्रुडोष्ण्यां स्त्रीत्वस्येवाजातादेरेकस्यायस्य द्योतनमविरुद्ध म यमानो वार्तिककार उत्सगप्रतिषेध शास्ति। भाष्यकारस्तु विरोधमन्तरेणापि सामान्यविधे

धातुक विशेषविधिम यत्रादीहृत्त ।<sup>१५</sup>

कात्यायन ने अपन वार्तिको मे प्रकृत्यय विशेषणवाद, प्रत्ययाय विशेषणवाद, सामानाधिकरण्यवाद, अयनियमवाद, प्रकृतिनियमवाद आदि वादो का समावेश किया और पाणिनि के अनेक सूत्रों का इनके आधार पर विवेचन किया ।

प्राचीन वैयाकरणो म हेलाराज ने वार्तिको का विशेष अध्ययन किया था । उ होने वार्तिको पर वार्तिको मेप नामक ग्रंथ भी लिखा था । वाक्यपदीय के प्रकीर्णक काण्ड की व्याख्या करते समय हेलाराज उन वार्तिका का उल्लेख करते चलते हैं जिनका आश्रय भृत् हरि ने लिया है । तृतीय काण्ड का वृत्तिसमुद्देश कात्यायन के कुछ वार्तिका की व्याख्यामात्र है । हेलाराज ने वार्तिको के उद्धरण दे देकर इसे स्पष्ट कर दिया है । इससे बढकर कात्यायन की दार्शनिक देन का सूचक और क्या प्रमाण हो सकता है ।

संस्कृत व्याकरणदशन को, संस्कृत भाषा को, संपूर्ण वाङ्मय को कात्यायन की एक विशेष देन है और वह है उनकी वाक्य की परिभाषा ।

### पतञ्जलि (ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी)

पतञ्जलि के महाभाष्य की उपमा सागर से दी जाती है । वह सागर की तरह उत्तान है । सागर की तरह अगाध है । सागर की तरह रत्न छिपाए है । भक्त हरि की दृष्टि म पतञ्जलि तीर्थदर्शी है । महाभाष्य, सग्रह का प्रतिकचुक (प्रतिनिधिकल्प) है और सभी व्यायबीजों का अधिष्ठान है

कृतेऽप्य पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शना । सर्वेषा व्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने ॥ 'सग्रहप्रतिकञ्चुके'<sup>१५</sup>

व्यायबीज शब्द पर टिप्पणी करते हुए पुण्यराज न लिखा है

तत्र भाष्य न केवल व्याकरणस्य निबन्धनम्, यावत् सर्वेषा व्यायबीजानां बोद्धव्यमिति । अतएव महत् शब्देन विशेष्य महाभाष्यमित्युच्यते लोके ।<sup>१७</sup>

पुण्यराज ने पुन लिखा है

महाभाष्य हि बहुविधि विद्याधादवलमायं व्यवस्थितम्<sup>१८</sup> अर्थात् महाभाष्य मे अनेक विद्यावाद, दशनप्रवाद है ।

जो कुछ वार्तिको म है वह सब तो महाभाष्य मे है ही, बहुत कुछ अय भी है । इसलिए महाभाष्य व्याकरण और व्याकरणदशन दोनो का आवर ग्रथ है । महाभाष्यकार की अलग से देन बताना कठिन है । उ होने जो कुछ कहा है सूत्रो और वार्तिका के भाष्य के रूप मे कहा है । जिनके मूल, सूत्र और वार्तिका म नही हैं वे भाष्यकार की देन माने जा सकते हैं । अथवा जहाँ भाष्यकार का सूत्रकार और वार्तिककार से विरोध है व सब मौलिक विचार महाभाष्यकार के हैं । प्राचीन टीकाकारो ने ऐस सब स्थल चुन रखे हैं

१५ महाभाष्य प्रदीप ५।३।७२

१६ वाक्यपदीय २।४८५, ४८८

१७ वाक्यपदीय टीका २।४८५

१८ पुण्यराज वाक्यपदीय २।४८८

जहाँ वातिककार का मत भिन्न है और भाष्यकार का मत भिन्न है। व्याकरणदशन की दृष्टि से भी ऐसे म्पलों पर प्राचीन आचार्यों की दृष्टि गई है और भत हरि ने भी अनेक स्थलों पर वातिककार के दर्शन भाष्यकार के दर्शन और सूत्रकार के दर्शन की अलग-अलग चर्चा की है। वस्तुतः सूत्रकार और वातिककार आदि के मत भी पतञ्जलि की व्याख्या के सहारे ही स्वरूप ग्रहण करते हैं। अतः संपूर्ण व्याकरणदशन महाभाष्य में जहाँ-तहाँ बिम्बरा पडा है। भत हरि ने उन विचारों को अपने ढग से एकत्र किया है जो व्याकरणदशन के नाम से अलग वस्तु जान पड़ती हैं। इस विषय में अभी भी अवकाश है और महाभाष्य में आए दार्शनिक विचारों का क्रमबद्ध सफलन नवीन रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें सबसे अधिक कठिनाई परस्पर विरोधी मतों के भ्रमजाल में सतप्य ग्रहण की है। व्याकरण की परम्परा से सवया अवगत, महाभाष्य में निष्णात हरदत्त मिश्र ने यह धोपणा की थी कि महाभाष्य को संपूर्ण रूप में समझना किसी के लिए दुष्कर है।<sup>१९</sup> आज तो हम बवल उसका दर्शन ही कर पाते हैं। अस्तु जैसे व्याकरण का वस ही व्याकरणदशन का भी सवस्व महाभाष्य है। माघ ने महाभाष्य के पस्पशाह्निक को शब्दविद्या का सौन्दर्य कहा है।<sup>२०</sup>

महाभाष्य में वण शब्द आहृतिपदाथ, द्रव्यपदाथ गुणपदाथ लिङ्ग वचन सख्या वृति वाक्य वाक्याय आदि पर पर्याप्त विचार मिलते हैं। यहाँ पतञ्जलि के कुछ वाक्य लिखे जा रहे हैं जो अपने पीछे एक एक दर्शन छिपाए हैं और महाभाष्यकार के व्यापक भावभूमि के सकेतक हैं

सववेदवारिषद हि इदम शास्त्रम । तत्र नक पया गवथ आस्यातुम  
—महाभाष्य २।१।५८

सस्त्रुत्य सस्त्रुत्य पदानि उत्सज्यते—महाभाष्य १।१।१

प्रातिपदिकनिर्वेशश्चायतत्रा भवति न काचिन प्राधायेन विभक्तिम आश्रयति—महाभाष्य १।८।५६

न सत्ता पदार्थो ध्वभिन्नरति—महाभाष्य ५।२।१५४

इह श्वाकरणे य सर्वान्पोषान स्वरव्यवहार स मात्रया भवति, नाधमात्रया व्यवहारोऽस्ति । महाभाष्य ८।१।१

### वसुरात (लगभग ४०० ईसवी सन्)

वसुरात भत हरि के गुरु थे। विभिन्न दर्शनों के आधार पर व्याकरणदशन की व्याख्या उठोने आरम्भ की थी। उन्हीं की प्रेरणा से भतु हरि ने वाक्यपदीय की रचना की थी। वसुरात व्याडि के सग्रह से प्रभावित थे। भत हरि भी य। इसलिए भत हरि ने वाक्यपदीय की स्वयं आगमसग्रह कहा है और उसकी मायताओं को अपने गुरु की देन माना है। इस प्रसंग में पुष्परज ने लिखा है

अय कदाचित् योगतो विचाम तत्रभवता वसुरातगुरुणा ममायमागम सज्ञाय वात्सल्यात् प्रणीत इति स्वरचित्तस्यास्य प्रथस्य गुरुपूजकमभिधातुमाह

१९. तस्य नि शेषतो मन्ये प्रतिपत्तापि दुलभ । पदमजरी १।१।२, पृ० ४६

२०. शम्भुविषेभ नो भाति राजनीतिरपरश्या—शिगुपालवध, २।१२२

‘यायप्रस्थानमार्गास्तानम्यस्य स्व च दशनम् ।

प्रणीतो गुरुणाऽस्माकमयमागमसंग्रह ॥<sup>२१</sup>

वसुरात के स्वतंत्र मत का उल्लेख मल्लवादिभ्रमाश्रमण ने किया है और वसुरात को भतृ हरि का उपाध्याय बतलाया है। मल्लवादि ने भतृ हरि के मत से भिन्न रूप में वसुरात के मत का उल्लेख किया है। इससे जान पड़ता है कि वसुरात के कुछ वस्तुव्यपरीपरया कुछ काल तक सजीव थे। शब्द से अथ के प्रत्यायन के सम्बन्ध में और अभिजल्प-दशन के सम्बन्ध में वसुरात और भतृ हरि में, मल्लवादि के अनुसार, कुछ मतभेद था। मल्लवादि ने दोनों की समीक्षा की है

निरुक्तार्थोऽयमभिजल्पस्य तथा घटते, नायया। आभिमुख्येन जल्पत्यर्थं शब्द, त प्रयुक्तेऽयं अभिजल्पयति तद्विषय एवाभिजल्प इत्युच्यते। एतदुक्तं भवति अपविषय शब्द शब्दायकल्पनाया युक्ततर स्यात्, न तु स्वतः परि-कल्पिते शब्दप्रेरिते। एव तावद् भतृ हर्षादिदशनमयुक्तम्। यत्तु वसुरातो भतृ हरेरुपाध्याय स च स्वरूपानुगतमयमविभागेन सन्निवेशयति। तेन द्वावपि शब्दोऽयं इचाम्युपगताविति प्राच्याद् अत्यन्ताद् अदशनात् तमिरिकदशनमिदं तत्त्वदष्टिं प्रत्यासीदति। अभिजल्पस्वरूपं तु पुनस्तेनापि निरस्तम्<sup>२२</sup>।

—द्वादशारण्यचक्र पृ० ८०० ८०१

## भतृ हरि

### भतृ हरि का काल-निर्णय

वाक्यपदीय के रचयिता भतृ हरि के समय का ठीक ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। कुछ दिना पूर्व तक भतृ हरि के समय के बारे में इत्सिंग की उक्ति प्रमाण मानी जाती थी। इत्सिंग ने भतृ हरि के ग्रन्थों और उनके बराम्भ का उल्लेख करते हुए लिखा है ‘बहु धमपाल का समकालिक था। उसकी मृत्यु हुए चालीस वर्ष हुए हैं।’<sup>२३</sup> मृत्यु वाले बयन के आधार पर भतृ हरि की मृत्यु का समय ६५० ईसवी सन् के आसपास ठहरता है। परन्तु इत्सिंग के अनुसार भतृ हरि और धमपाल समकालिक थे। उसके अनुसार धमपाल ने भतृ हरि के ‘पे इन’ ग्रन्थ (प्रकीर्णक) पर टीका भी लिखी थी। धमपाल की मृत्यु सन् ५७० में हो गई थी।<sup>२४</sup> यदि धमपाल की समकालिकता वाली इत्सिंग की उक्ति को महत्त्व दिया जाए तो भतृ हरि का समय ईसवी ५५० के आसपास ठहरता है। इत्सिंग के बयन के आधार पर भी भतृ हरि के समय में लगभग सौ वर्ष का अन्तर आ जाता है और उनका समय ५५० ईसवी से लेकर ६५० ईसवी के बीच सिद्ध होता है।

२१ वाक्यपदीय २।४६०

२२ इस विषय पर शब्दस्वरूप के विचार के अन्तर्गत् पर इस ग्रन्थ में विचार किया गया है

२३ इत्सिंग की भारत यात्रा सन्तराम की १० द्वारा अनूदित, १६२५ पृष्ठ २७४, २७६

२४ इत्योदकशान ड वैशेषिक किलासफनी एकार्दिग ड दशपदार्थी शास्त्र, द्वारा १८० यी० १६१७, पृ० १०



प्रथमभास्कर के द्वारा वाक्यपदीय के श्लोक के उद्धृत होने के कारण और प्रथमभास्कर का समय ६२६ ई० निश्चित रूप से जाना होने के कारण भत हरि के समय निर्णय की उत्तर सीमा ६०० ई० के आगे नहीं लाई जा सकती। अब तक के उपलब्ध प्रमाणों में यह प्रमाण मधुश्रेष्ठ है। निश्चित रूप से भत हरि ६०० ई० के पहले हुए थे। अब यह विचारणीय है कि यह सीमा और कितने पीछे हटाई जा सकती है।

जनाचार्य मल्लवादि क्षमाथमण वृत्त द्वाणशार नयचक्र महाशास्त्र भतृ हरि के समय पर प्रकाश डालता है। इस ग्रंथ में भत हरि के गुरु वसुरात का उल्लेख है। कई स्थानों पर “इति भतृ हर्षादि मतम वसुरातस्य भतृ ह्युपाधयस्य मत तु”, “एष तावद भतृ हरि दर्शनमुपेतम यत्तु वसुरातो भतृ हरेरुपाध्याय” आदि रूप में भत हरि और उनके गुरु वसुरात के मतों का उल्लेख है। यह ग्रंथ विशेषावश्यक भाष्य के पहले का है। विशेषावश्यक भाष्य की रचना ५०६ ई० में हुई थी।<sup>३०</sup> इस दृष्टि से वाक्यपदीय की रचना ४५० ई० के पूर्व हुई होगी।

मल्लवादि की तरह पुण्यराज भी वसुरात को भत हरि के गुरु मानते हैं।<sup>३१</sup> चीनी भाषा में अनूदित वसुबधु के जीवन वृत्तांत से यह पता चलता है कि वसुबधु और वसुरात दोनों समकालिक थे और दोनों में शास्त्राथ हुआ था। श्री विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार वसुबधु का समय ३३७-४१७ ई० है।<sup>३२</sup> ह्वेनत्सांग और इत्सिंग के अनुसार वसुबधु का समय ४०० ई० के आसपास होना चाहिए। इत्सिंग घमपाल और घमकीर्ति को अर्वाचीन लिखता है और वसुबधु और असग को मध्यकालिक।<sup>३३</sup> भत हरि व वसुरात के शिष्य होने के कारण उनका समय भी ४२५ ई० के समीप निश्चित होता है।

हरिस्वामी ने शतपथ ब्राह्मण की टीका में—अथेतु शब्द ब्रह्म एवेद विवर्ततेऽवभावेन प्रश्रिया यत इत्याहु इति रूप में वाक्यपदीय की प्रथम कारिका का उद्धरण दिया है। हरिस्वामी ने अपने समय का संकेत किया है

श्रीमतोऽवतिनायस्य विक्रमस्य क्षितीशतु ।

धर्माध्यक्षे हरिस्वामी याख्या कुर्वे यथामति ॥

यदाब्दाना कलेजग्मु (यदादीना कलेजग्मु) सप्तत्रिंशच्छतानि व ।

चत्वारिंशत समाश्रमा वास्तदाभाष्यमिदं कृतम ॥

इनके अनुसार हरिस्वामी ने ग्रंथ की समाप्ति ३७४० कलि वष में (तदनुसार ६३६ ई० में) की थी। परंतु अब ती में उस समय किसी नए विक्रम का होना इतिहास से सिद्ध नहीं है। डा० मंगलदेव शास्त्री ने पुलकेशी द्वितीय के पुत्र विक्रम प्रथम के अवर्ति के प्रशासक होने की सम्भावना की है (प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रांजक्शंस आफ द सिक्सथ ओरियण्टल

हिंदू विश्वविद्यालय का आभारी हूँ। —लखनऊ)

३० द्रव्य विशाल भारत जून १९५६ में मुनि जम्बू विजय का लेख

३१ वाक्यपदीय २। ४८६

३२ तत्त्वसंग्रह की भूमिका

३३ इत्सिंग की भारत यात्रा पृ० २७७



का फोर्स, पटना १९३० पृष्ठ ५९८)। डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने पटत्रिंशत् पाठ अनुकूल माना है। श्री चन्द्रवती पाण्डेय पञ्चत्रिंशच्छतानि पाठ का अनुमान करते हैं

'हमारी समझ तो यह आता है कि भ्रम से पञ्चत्रिंशच्छतानि वा सप्त त्रिंशच्छतानि हो गया है और चत्वारिंशत्समाश्वाया का अर्थ है अथ सवत् का ४० वष। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का अपना सवत् भी चलता था और अपने वंश का भी। प्रमाण की दृष्टि से उसके मयुरास्तम्भ का यह अभिलेख पर्याप्त है श्री चन्द्रगुप्तस्य विजय राय सघत्सरे पचमे ५ कालानुवतमान सघत्सरे एष्यष्टे (सेलेबट इन्सक्रिप्शंस पृ० २७०)। यह गणना से ३८० ई० ठहरता है। इस दृष्टि से इस चत्वारिंशत् का मान हुआ (३८०+४०—५) ४१५ ई०, जो इस विक्रमादित्य का अन्तिम वष कहा जा सकता है और सामान्यतः कलि के २५०० वष बीतने का परिचायक है।'

—चन्द्रवती पाण्डेय कालिदास, पृ० १२, १९५५ परतु हरिस्वामी ने "अथवा सूत्राणि यथा विद्युद्देग इति प्रभाकरा" के रूप में प्रभाकर का भी उल्लेख किया है (युधिष्ठिर मीमांसक सस्कृत व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ २५६)। कुमारिल और प्रभाकर के पूर्वार्थ का अर्थ अन्तिम तिणय नहीं हुआ है। स्वर्गीय श्री भगानाथ झा प्रभाकर को कुमारिल के पूर्ववर्ती मानते थे। यदि हरिस्वामी का समय ६३६ ई० भी माना जाए तो भी यह स्मरण रखने की बात है कि हरिस्वामी के गुरु श्री स्कन्दस्वामी ने निरुक्त १।२, पृष्ठ २८ पर अपने भाष्य में वाक्यपदीय की कारिका 'पूर्वाविस्थामजहत् (साधनसमुद्देश ११६) उद्धृत किया है। अतः इस आधार पर भी वाक्यपदीयकार का समय ५५० ई० के आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

युक्तिदीपिका (साह्यकारिका की टीका) में वाक्यपदीय के श्लोक उद्धृत हैं। इस ग्रन्थ में कुमारिल या धर्मवीरि का नाम नहीं है। इस ग्रन्थ की रचना ५५० ई० के पहले की जान पड़ती है।<sup>३४</sup>

वाक्यपदीय १/३१ की हरिवृत्ति में निम्नलिखित वक्तव्य है

अपरिणामिनी हि भोवतुशक्तिरप्रतिसन्ना च परिणामियर्थे प्रतिसन्नातेव तदवतिमनुपतति । तस्यादच प्राप्तचतयोपग्रहस्याया बुद्धिवृत्तेरनुकारमात्रया बुद्धिवृत्त्या विगिष्टज्ञानस्य प्रवृत्तिराख्यायते ।

यह वक्तव्य योगसूत्र भाष्य में भी २।२० और ४।२२ में ज्यो का-त्यो पाया जाता है। वाचस्पति मिथ के अनुसार यह वाक्य पञ्चशिक्ष का है। संभव है भत हरि ने भी पञ्चशिक्ष ले लिया हो। फिर भी ऐसे कई उद्धरण हैं जिनसे यह जान पड़ता है कि योगसूत्र भाष्यकार वाक्यपदीय से परिचित हैं और उसकी शब्दावली से रहें हैं।

योगसूत्रभाष्य २/६ में भोवतुभोग्यशक्त्योरत्य तविभवतयोरत्यतासकीणयोरविभागप्राप्ताविव सत्यां भोग कल्पते —यह वाक्य मिलता है। वाक्यपदीय २।३१ हरिवृत्ति में भी यह वाक्य मिलता है। योगसूत्र ३/१७ के भाष्य में साथ वाक्यपदीय के कई वाक्य और सिद्धांत मिलते जुलते हैं। इन्हें आकस्मिक बहकर नहीं टाला जा सकता।

काशिका वृत्ति ४।३।८८ में वाक्यपदीय का उल्लेख है। काशिका निश्चित रूप से १४ हिन्दू आर्य कालासकी इस्लामिक इण्डिया के भाग १ में सतकरी मुकबी का लेख पृ० २४२

४०० ई० के बाद की ओर ५५० ई० व पहले की रचना है। काशिका ५।२।१२० में केदार सिक्के का उल्लेख है। केदार नामक सिक्के को केदार सनक कुपाणो ने लगभग तीसरी शताब्दी में चलाया था।<sup>३४</sup> काशिका ३।३।४२ में प्रमाणसमुच्चय का उल्लेख है जो दिडनाग का ग्रन्थ है। काशिका ३।१।३८ में 'कल्पनापोढ' शब्द का उल्लेख है। यह शब्द भी दिडनाग की प्रत्यक्ष परिभाषा से लिया गया है। दिडनाग का समय ४०० ई० है।

काशिका ६/३/३४ में बद्धभक्तिरित्येवमादिषु स्त्रीपुंवपदस्याधिवक्षित्वात् सिद्धमिति समाधेयम् यह वाक्य है। इसमें रघुवश १२/१६ के 'दुद्धभक्तिरिति ज्येष्ठे' की ओर संकेत जान पड़ता है।

काशिका १/३/२३ में किराताजुनीय ३/१४ का 'सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य' का उल्लेख है। किराताजुनीय की रचना ४७५ ई० के पूर्व की है। यह महाराज दुवनीत (राज्यकाल ई० ४८२-५२२) की टीका से स्पष्ट है।

काशिका के टीकाकार यासकार का उल्लेख भामह (ई० ६००) ने किया है<sup>३५</sup> गिष्टप्रयोगमात्रेण यासकारमतेन च।

तूचा समस्तपठोक्तं न कश्चिदुदाहरेत् ॥

इस श्लोक में यासकार से तात्पर्य जिनेन्द्र बुद्धि से ही है। उसे कोई दूसरा न्यासकार समझना भ्रम है। जिनेन्द्र बुद्धि ने २/२/१६ और ३/२/८७ के यास में तच्च के साथ पठो समास का निषेध किया है। इस दृष्टि से काशिका वृत्ति का समय ई० ५०० के बाद नहीं बढ़ाया जा सकता।

वाणभट्ट ने भी काशिकावृत्ति का संकेत किया है<sup>३६</sup> और यह संकेत भी काशिका का समय ५०० ई० के आसपास सिद्ध करता है।

अतः काशिका वृत्ति के आधार पर वाक्यपदीयकार का काल ४५० ईस्वी के पहले सिद्ध होता है।

वाक्यपदीय के टीकाकार वयभ के समय के आधार पर भी वाक्यपदीय पाँचवीं शताब्दी अथवा इससे पूर्व की रचना है। वयभ ने लिखा है कि वह देवयश का पुत्र और विष्णुगुप्त नरेश का भृत्य था

विमलचरितस्य राज्ञो विदुष्य श्री विष्णुगुप्तदेवस्य ।

भृत्येन तदनुभावाच्छ्रीदेवयशस्तनूजेन ॥

वधेन विनोदार्यं धीवृषभेण स्फुटाक्षरं नाम ।

त्रियते पद्धतिरेया वाक्यपदीयोदधे सुगमा ॥

३५ वाग्देवशरण ग्रन्थाल—'हर्षचरित एक अध्ययन' पृ० ५४

३६ काव्यालंकार ६।३६

३७ वाग्यशय चत्वारः पितृभ्यपुत्रा भ्रातरः प्रमत्तवृत्तयो गृहीतवाक्या कृतगुरुपदवासा न्यायवादिनः सुकृतसप्रहाम्यासगुरुवो लब्धसाधुराम्बा लोक इव व्याकरणेपि परस्परमुक्तानि यत्कीकयन् ।

विष्णुगुप्त का समय ५३५ और ५५० ई० के बीच म माना जाता है।<sup>३८</sup> (अ) यह विष्णुगुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त का पौत्र और कुमारगुप्त तृतीय का पुत्र था। उसकी एक मुद्रा नालंदा म मिली है। बराहमिहिर (४८७ ई० म जन्म और ५८७ ई० म मृत्यु) ने भी बहसहिता मे विष्णुगुप्त का उल्लेख किया है।<sup>३८</sup> (ब) अत इन प्रमाणो के आधार पर टीकाकार वृषभ का समय ५५० ई० के समीप सिद्ध होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि वृषभ वाक्यपदीय पर कई टीकाओ के होने का निर्देश करते हैं

यद्यपि टीका बह्व्य पूर्वाचार्य सुनिमला रचिता ।

सात परिधमत्रास्तथापि चनां प्रहोष्यति ॥

अत ५५० ई० तक वाक्यपनीय पर कई टीकाओ का होना यह प्रमाणित कर देता है कि वाक्यपदीय की रचना इससे बहुत पहले हुई होगी।

## भट्ट हरि का जीवन

भट्ट हरि के जन्म स्थान और उनके जीवन के बारे म प्रामाणिक रूप म कुछ भी ज्ञात नहीं है। एक श्लोक के अनुसार जिसकी प्रामाणिकता निश्चित रूप से सिद्ध है वे शबरस्वामी की क्षत्राणी पत्नी से उत्पन्न उनके पुत्र थे। ईस्वीग क अनुसार ये सात बार परिव्राजक और सात बार गृहस्थ बने थे। अत म परिव्राजक रूप मे इन्हें शांति मिली थी। ईस्वीग की उक्ति भा किंवदन्ती स अधिक मूल्य नहीं रखती।

ईस्वीग क अनुसार वे बौद्ध थे। मैक्समूलर न इन्हें विद्यामात्र सम्प्रदाय का बौद्ध माना है।<sup>३९</sup> वाचस्पति मिश्र न तत्त्वबिद्दु मे—

यदाह वाह्या जपि परेषामसमाह्वयेमभ्यासादेव जायते ।

मणिहपाद्विषु ज्ञान तदविदामानुमानिकाम ॥

तत्त्वबिद्दु मद्रास पृ० ६०

ऐसा लिखा है। यह कारिका वाक्यपदीय १।३५ (लाहौर संस्करण) की है। बाह्या से तात्पर्य वेदबाह्या अर्थात् नास्तिक या बौद्ध से है।

परन्तु व्याकरण सम्प्रदाय म कभी भी भट्ट हरि का वेदबाह्य के रूप म उल्लेख नहीं मिलता। वाक्यपनीय म श्रुति स्मृति की महिमा पर्याप्त गाई गई है और स्पष्ट शब्दो मे यहाँ तक कहा गया है कि जो शब्द का संस्कार है वह परमात्मा की सिद्धि<sup>४०</sup> है। वाक्यपदीय के श्लोक आस्तिक हृदय के उद्गार हैं। उसम आविभूतज्योति वाले ऋषियो का सादर स्मरण है और भट्ट हरि ने अनादि निधन शब्द तत्त्व की सिद्धि विगेष रूप म श्रुति के आधार पर ही प्रतिपादित की है। बौद्ध दशन ग्रयो म भट्ट हरि का उल्लेख बौद्ध रूप म नहा

३८ (अ) यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपुल गुप्त आकाटक एज २०० ५५० ए० टी०, वाल्यूम सिक्सथ, पृ० २१४

३९ (ब) मुवाकर दिवेनी, गद्यक तरंगिणी, पृ० १५

३९ मैक्समूलर का तत्त्व कुरु क नाम पत्र, इतिहास की भारत यात्रा की प्रस्तावना में उद्धृत पृ० १०

४० वाक्यपदीय १।११३

है। जन प्रथो म भतृ हरि का बहुत उल्लेख है किंतु वहाँ भी बौद्ध रूप म नहीं। अतएव इतिहास वाली कथा किसी अथ भतृ हरि से सम्बंध रखती होगी। वाचस्पति मिथ्र की उचित भी उपयुक्त आधार पर नितान्त चिन्त्य है। बहुत सम्भव है उपयुक्त श्लोक वाचस्पति मिथ्र ने किसी बौद्ध ग्रंथ से उद्धृत किया हो। वाक्यपदीय के श्लोक सभी प्रकार के ग्रंथों में बिलखे पड़े हैं।

हाँ, वाक्यपदीय के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उर्ह किसी सम्प्रदाय से द्वेष नहीं था। वस्तुतः भतृ हरि अत्यन्त शिष्ट व्यक्ति थे। उनके जस मुसकृत विचारक संस्कृत वाङ्मय म कम हैं। वे खण्डन-भण्डन म नहीं पड़ते। अनेक विभिन्न मतों का बहुत ही सौजन्य के साथ उल्लेख करते हैं। कहीं कहीं तो यह निर्धारण करना कठिन हो जाता है कि भतृ हरि का अपना मत कौन है। संस्कृत के प्राचीन टीकाकारों और विचारकों म अपने प्रतिपक्षी को या नास्तिक दर्शन के मानने वाले को खरी खरी मुनाने और उनकी बुद्धि पर तरस खाने की आदत बहुत प्राचीन काल से देखी जाती है। भतृ हरि ऐसी अहमयता से सबका मुक्त हैं।

वे उच्चकोटि के विचारक थे। बहुश्रुत थे। उन्होंने स्वयं लिखा है “मिन्नं मिन्नं आगमों के सिद्धान्तों के अध्ययन से प्रज्ञा और विवेक की प्राप्ति होती है। बुद्धि विशद होती है। केवल अपने तक और अपने दर्शन के पारायण से मनुष्य कितना जान सकता है! जो विभिन्न प्राचीन दर्शनों की उपेक्षा करते हैं और मिथ्या अभिमानवश बद्धजना की उपासना विद्या के लिए नहीं करते उनकी विद्या पूर्णरूप म सफल नहीं होती।”<sup>४१</sup> वाक्यपदीय को ‘आगम सग्रह’ का रूप देते हुए उन्होंने लिखा है कि व्याकरणदर्शन तथा अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों (याय प्रम्थान माग) का अनुशीलन कर लेने के बाद इसकी रचना की गई है। भतृ हरि की निरहकारिता का एक प्रमाण तो यही है कि वाक्यपदीय ऐसे प्रौढ और अप्रतिम ग्रंथ को उन्होंने अपनी कृति न कहकर अपने गुरु की रचना माना।

अभिनवगुप्त जैसे आचार्य भतृ हरि का सात्त्विक स्मरण करते हैं। वे सदा भतृ हरि का तत्रभवान् शब्द के साथ उल्लेख करते हैं। भतृ हरि का सौजन्य, उनकी अगाध विद्वत्ता और उनकी चतुर्दिग प्रसिद्धि आदि सबका द्योतक अभिनवगुप्त का निम्नलिखित उद्गार है— प्रायः देखा जाता है कि सत्सार में जनता लोक प्रसिद्धि के आधार पर किसी में विश्वास करती है और उसकी ओर अग्रसर होती है। यह विश्वास उसके नाम के बराबर मुनाई देते स, अथवा उसके आचरण, कवित्व, विद्वत्ता आदि की प्रसिद्धि के कारण जगता है। जस कि जब कहा जाता है कि यह उसी भतृ हरि का श्लोक प्रबंध है जिसने यह किया था, जिसकी उदारता ऐसी थी जिसका इस शास्त्र म ऐसा सार है और इसलिए उनकी कृति आदरणीय है तब जनता उस ओर स्वयं झुक जाती है।<sup>४२</sup>

४१ वाक्यपदीय २।४२।४६३

४२ “इह बाहुल्येन लोको लोकप्रसिद्ध्या सभावनप्रत्ययवलेन प्रवृत्ते । स च सभावनप्रत्ययो नामश्रवणवशात् प्रसिद्धायत्दीयसमाचारकवित्वविद्वत्तादिसमनुस्मरणेन भवति । तथाहि भतृ हरिषेद कृतं यस्यायमौदायमहिमा, यस्यास्मिन् शास्त्रे एवविधं सारो दृश्यते तस्यायं श्लोकप्रबंधस्तस्मादादरणीयमेतदिति लोक प्रवर्तमानो दृश्यते इति ।”

## भट्टहरि के प्रथम

व्याकरण भट्टहरि के विद्यार्थिनिमित्त प्रथम प्रसिद्ध है। महाभाष्य त्रिपाठी (महाभाष्य-टीपिका), वाक्यपदीय और वाक्यपदीय १, २ पर स्वागत वक्ति। इनका शब्दधातुसमीक्षा नामक प्रथम का भी उल्लेख मिलता है।

भट्टहरि ने महाभाष्य के प्रथम अध्याय के तीसरे पाठ पर व्याख्या लिखी है। तीन पाद पर होकर कारण उग विवरण का त्रिपाठी कहते थे। व्याकरण सम्प्रदाय में भट्टहरि 'टीकाकार' के रूप में भी प्रसिद्ध है। यह प्रसिद्धि इमो भाष्य व्याख्या के कारण है। भट्टहरि वृत्त भाष्यत्रिपाठी का उत्कृष्ट बंधमान<sup>४३</sup> और हेताराज आदि ने किया<sup>४४</sup> है। संप्रति यह व्याख्या केवल १।१।५३ तक मिलती है। इसका एक हस्तलिखित की एक प्रति लिपि श्री ब्रह्मसूत्रजी जिज्ञासु के पास मिलने लगी है।<sup>४५</sup> प्रथम आह निष्ठा पर बँयट का प्रदीप भट्टहरि की भाष्यटीपिका का सप्तम संस्करण है। कहा वही पूरे के-पूरे वाक्य ज्यो-के-र्यों लिए गए हैं। भट्टहरि की टीका का उत्कृष्ट नामोश ने भी किया है।<sup>४६</sup> इतिहास ने इसे 'भट्टहरि शास्त्र' लिखा है और इसे भूषण की व्याख्या कहा है जो टीका है। व्याकरण सम्प्रदाय में भाष्यकार भूषणकार के नाम से प्रसिद्ध है। स्वयं भट्टहरि ने महाभाष्यकार को भूषणकार कहा है।<sup>४७</sup> इस प्रथम का कई महत्त्वपूर्ण वाक्यों का सफल श्री मुधिष्ठिर समीक्षा नामक अपने सस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास में कर दिया है।

भट्टहरि वृत्त शब्दधातुसमीक्षा का उत्कृष्ट उत्पल ने शिव दृष्टि की टीका में किया है।<sup>४८</sup> इस प्रथम के केवल दो श्लोक मिलते हैं जो वही उद्धृत हैं। इनमें से एक श्लोक भट्टहरि के नीतिशास्त्र का प्रथम श्लोक है। उत्पल की दृष्टि से वाक्यपदीय और नीतिशास्त्र के कर्ता एक ही भट्टहरि हैं ऐसा जान पड़ता है। उत्पल का उद्धरण यों है

न केवलचात्रव पश्यत्यभिधानेन सम्प्राप्तानाभास एव उक्तो वाक्यदन्त्यातु-  
समीक्षायामपि विदुवभट्टहरिणा

विषयालादिलक्षणेन व्यापकत्वं विहस्यते ।

अवश्य व्यापको यो हि सवदिसु स वतते ॥

४३ भट्टहरिवाक्यपदीयप्रतीकृत्यो कता महाभाष्यत्रिपाठी यादयाना च । गद्यरत्नमहोदधि, पृष्ठ २ ।

४४ शैलोक्यगामिनी येन त्रिकाण्डी त्रिपदीकृता ।

ससमै समस्त विद्याश्रीका ताव हरये नम ॥ हेताराज, प्रतीकप्रकार के अंत में ।

४५ अब छप चुका है ।

४६ नागश ने हरिटीका का उल्लेख इन स्थलों में किया है—महाभाष्यप्रदीपौचित १।१।५० १।१।५०, १।३।२२ ।

४७ अस्मिन्नु दर्शने पाणिनिना मुखप्रदृश्य पठितमिति दृश्यते । सूर्यिकरस्तु भागप्रविभागमा त्रिस्र प्रत्याचष्ट (भाष्यटीपिका, महादत्त जिज्ञासु का हस्तलिखित) पृष्ठ १७६ ।

४८ भट्टहरि के शब्दसत्त्वादौत प्रथम की चर्चा अत्र भी है—तेन यदाह शब्दसत्त्वादौत नाम वाच्य भट्टहरिरास्मादौत महाभाष्य व्याख्या, हस्तलिखित, मद्रास, आर० ४४३६ ।

विष्कास्ताद्यनवच्छिन्नान्तच्चिन्मात्रमूतये ।

स्वानुमूत्येकमानाय नम शांताय तेजसे ॥

इति लक्षणेन विदेशकालरवच्छेदो विशिष्यमाणता निषिद्धा ।

—शिवहृष्टि पृष्ठ ८४

भट्ट हरि की सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना वाक्यपदीय है । इसमें तीन काण्ड हैं ।

पहला आगम काण्ड, दूसरा वाक्य काण्ड और तीसरा पद काण्ड कहलाता है । पूव क आचाय वाक्यपदीय शब्द से वाक्यपदीय के प्रथम और द्वितीय काण्ड ही समन्वते थे । तीसरा काण्ड प्रकीणक नाम से भी प्रसिद्ध था । हेलाराज ने वाक्यपदीय (पहला और दूसरा काण्ड) पर शब्दप्रभा नाम की टीका लिखी थी और प्रकीणक पर प्रकीणकप्रकाश नाम की टीका लिखी है । स्वयं भट्ट हरि वाक्यपदीय के दूसरे काण्ड के अंत में पुस्तक की समाप्ति करते जान पड़ते हैं परंतु वही उहाने तीसरे काण्ड की भी सूचना दे दी है

वस्मनामत्र केषाचित् वस्तुमात्रमुदाहृतम् ।

काण्डे तृतीये यक्षेण भविष्यति विचारणा ॥

—वाक्यपदीय २।४६१

पुण्यराज ने तृतीय काण्ड को पूव के दोनों काण्डों का निष्यदभूत कहा है । वस्तुत

तृतीय काण्ड में व्याकरणदशम की अनेक मायताओं पर अय दशमो के सिद्धांतों के सबेते के साथ विचार किया गया है । प्रकीणक उस तरह के ग्रंथों को कहते थे जिनमें विषय विभाग ठीक ठीक बिना किए ही विचार किया जाता था (प्रकीणकत्व च ग्रन्थस्य विषय विभागेन विना प्रवृत्तवमुच्यते—कल्लिनाथ संगीत रत्नाकर ३।१) । इत्सिंग ने इसी को पद्मन कहा है जिसकी पहचान सबसे पहले किलहान न प्रकीणक से की ।<sup>४६</sup> प्रकीणक खण्डितरूप में ही मिलता है और पुण्यराज को भी इसके कुछ समुद्देशों का पता नहीं था । लक्षणसमुद्देश और बाधासमुद्देश इन दो का उल्लेख है पर वे मिलते नहीं हैं । पुण्यराज अथवा हेलाराज को भी वे नहीं मिले थे । लक्षणसमुद्देश का उल्लेख भट्ट हरि ने स्वयं किया है

तत्र द्वादश पट चतुर्विंशतिर्वा लक्षणानीति लक्षणसमुद्देशो सापदेश सविरोध विस्तरेणध्यास्यास्यते

—वाक्यपदीय २।७६ पर हरिवर्ति, पृष्ठ ४५ लाहौर संस्करण

बाधासमुद्देश का उल्लेख भी भट्ट हरि ने अपनी वृत्ति में किया था । इसका निर्देश पुण्यराज न किया है 'यस्माद्बृहत्तमं येयमपरिणामविकल्पा बाधा विस्तरेण बाधासमुद्देशो समर्थयिष्यत इति'

—पुण्यराज, वाक्यपदीय २।७७ पृष्ठ ५०

भट्ट हरि ने वाक्यपदीय के प्रथम और द्वितीय काण्ड पर एक वृत्ति भी स्वयं लिखी थी । श्री चारण्य शारत्री ने इस वृत्ति को लाहौर से छापा है । अब तक केवल प्रथम काण्ड

<sup>४६</sup> इष्टभ्य—इण्डियन एण्जीनियरी १८८३ खण्ड १२ पृष्ठ २२६, 'इत्सिंग की भारत यात्रा' के परिशिष्ट में अनूदित ।

पर और द्वितीय काण्ड के एक चोपाई हिस्से पर ही वृत्ति छपी है। श्री चारुदेव शास्त्री ने बनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि भृगु हरि ने स्वयं वृत्ति लिखी थी और बनारस की पुस्तक म प्रथम-काण्ड की वृत्ति भत हरि की वृत्ति का सक्षिप्त रूप<sup>५०</sup> है। भत हरिवृत्ति के पोषक कई प्रौढ़तर प्रमाण मुझे भी मिल हैं जिनमें कुछ का निर्देश यहाँ किया जा रहा है।

अभिनवगुप्त ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनो, द्वितीय भाग पृष्ठ २२६ पर लिखा है

तदाह तत्रभवान् भृगु हरि प्रतिसहस्रक्रमान्त सत्यव्यनेदे समाविष्टक्रमशक्ति पश्यती । सा च अचला च चला च, प्रतिलब्धा समाधाना च, सन्निविष्ट जेवाकारा प्रतितोनाकारा निराकारा च, परिच्छिन्नाद्यप्रत्यवभासासमुष्ट्याय प्रत्यवभासा च सर्वाद्यप्रत्यवभासा प्रशातप्रत्यवभासा च इति ।

यह अश वाक्यपदीय १।१४३ (१४४) की हरिवृत्ति पृष्ठ १२६ पर ज्या का त्यौं मिसता है।

धमकीर्ति के प्रमाण कार्तिक की टीका म कणकगोमी ने लिखा है

यदाह भृगु हरि सर्वेषां पृथग्यधत्ता सर्वेषु प्रतिशब्द कृत्स्नाय परिसमाप्ते । तथा यदेव प्रथम पदमुपादीयते तस्मिन् सर्वे रूपार्थोपप्राहिणि नियमानुवाद निबन्धनानि पश्चात्तराणि विज्ञापयत इति ।<sup>५१</sup>

गद्यमय होने के कारण यह अश अवश्य ही हरिवृत्ति का होगा। अब तक के प्रकाशित हरिवृत्ति म यह अश नहीं है।

पुण्यराज ने एक स्थान पर लिखा है

एतेषा च वितत्य सोपपत्तिक सनिदर्शन स्वल्प पदकाण्ड लक्षणसमुद्देशे विनिर्दिष्टमिति ग्रन्थकृतव स्ववृत्तौ प्रतिपादितम् । जागमभ्र शाल्लेखक प्रमादा दिना या लक्षणसमुद्देशश्च पद काण्ड मध्ये न प्रसिद्ध ।<sup>५२</sup>

पुण्यराज का यह कहना कि ग्रथकार ने अपनी वृत्ति म लक्षणसमुद्देश का उल्लेख स्वयं किया है ठीक है क्योंकि वाक्यपदीय २।७६ की वृत्ति म लक्षणसमुद्देश का उल्लेख है।

भत हरि क विवरण का उल्लेख चपभ ने भी किया है

यद्यपि च सृष्टुवात्तानादिनिघनभृत्तिस्तथापि कारिकाविवरणप्रवादवृत्तौयते अथद्वयामीकरणेन शास्त्रकृतोपात्तति ।

चपभ, वाक्यपदीय १।१ ३ पृष्ठ

अतः भृगु हरि न वाक्यपदीय के प्रथम और द्वितीय काण्ड पर वृत्ति लिखी थी और चारुदेव शास्त्री ने जिन वृत्ति को प्रकाशित किया है वह भृगु हरि की ही है।

हरिवृत्ति का अपना स्वतंत्र मूल्य है। अनेक गम्भीर विषयों का विवेचन इस वृत्ति में किया गया है। भाषा के दार्शनिक इतिहास के लिए तो वह अत्यन्त मूल्यवान है।

५० द्रष्टव्य—वाक्यपदीय प्रथम काण्ड की भूमिका लाहौर संस्करण, पृष्ठ १६ १८

५१ प्रमाणवाचिक, १० ४६४ राहुल साहययान द्वारा सम्पादित

५२ वाक्यपदीय २।७७ लाहौर संस्करण

उपर्युक्त ग्रथा के अतिरिक्त भृत् हरिशतक और ब्रह्मसूत्र की टीका तथा मीमांसा-सूत्र पर वृत्ति—इन ग्रथा का भी भृत् हरि ने लिखा था ऐसा सुना जाता है पर इन ग्रथों को व्याकरण भक्त हरि की रचना मानने में कोई दृढ प्रमाण नहीं है।

### वाक्यपदीय के अथ टीकाकार

भृत् हरि की स्वोपनवृत्ति के अतिरिक्त वाक्यपदीय पर बहुत सी टीकाएँ लिखी गई थीं। वपभ ने पूर्वाचार्यों की टीकाओं का संकेत किया है।

### वृषभदेव

इस समय उपलब्ध टीकाओं में वृषभ की टीका उल्लेखनीय है। वपभ का समय ५५० ई० है। यह ऊपर सप्रमाण निश्चय किया जा चुका है। वृषभ ने वाक्यपदीय और हरिवृत्ति दोनों पर टीका लिखी है। पहले वह वाक्यपदीय के श्लोक का भाव दते हैं। इसके बाद हरिवृत्ति के शब्दा की व्याख्याएँ करते हैं। वह ध्याकरणशास्त्र और अथ आगमों में निष्णात जान पड़ता है। हरिवृत्ति के अनेक दुर्लभ अंशों का परिचय वपभ की टीका के सहारे ही सम्भव है। इनकी टीका का नाम वाक्यपदीयवृत्ति है।<sup>५३</sup> यह टीका प्रथम काण्ड पर ही उपलब्ध है। इसे चारुदेव शास्त्री ने लाहौर से प्रकाशित किया है।

### पुण्यराज

पुण्यराज ने वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड (वाक्य काण्ड) पर टीका लिखी है। उनका दूसरा नाम राजानक शूरवर्मा था। उन्होंने लिखा है कि मैंने शशाक के शिष्य से वाक्य काण्ड पढ़ा था। यह कौन सा शाक है इसके बारे में विशेष पता नहीं है। पुण्यराज का समय ६०० ई० के आसपास जान पड़ता है। पुण्यराज ने अपनी टीका में अनेक ग्रथों और लेखकों का उल्लेख किया है। जैसे वाशिष्ठा वृत्ति,<sup>५४</sup> कुमारिल के श्लोकवृत्तिक<sup>५५</sup>, भक्त हरि शतक<sup>५६</sup> का एक श्लोक 'राघवानन्द नाटक का एक श्लोक आदि उसमें उद्धृत हैं।<sup>५७</sup> राघवानन्द वैकटेश्वर की रचना है।

पुण्यराज ने 'इन्दोलक्ष्मणसमरविजयिन' यह श्लोक वाक्यपदीय २/२४६ की टीका

५३ गङ्गोकर लाइब्रेरी के हस्तलेख न० २०७ वाली प्रति में यह पुष्पिका है इति वृषभ रचितार्था वाक्यपदीयवृत्तौ प्रथम काण्ड समाप्तम्।

५४ यद्येव कमण्योति किं मातुर्गुणै रमरणमिति कथं प्रत्युदाहृतम्—वाक्यपदीय २।२०० पृ० १६४, यह अंश काशिका में २।१।५२ पर है। पुण्यराज ने यहाँ 'कारकान्तरे त्वैवेति वृत्तिकारा' भी लिखा है।

५५ वाक्यपदीय २।६४ में मीमांसारश्लोकवृत्तिक का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत है—  
यावत्तो यादृशा ये च यदथ प्रतिपादने।

वर्णां प्रज्ञातमानधर्मास्ते तथैवावबोधना ॥ —मीमांसारश्लोकवृत्तिक, स्फोटबाद ६६

५६ मणि शाखोल्लिख समरविजयी हेतुनिहत —भृत् हरि शतक, वाक्यपदीय २।२६ में उद्धृत है।

५७ रामोऽभी भुवनेषु श्रेणीभूत विशालतलविबरोऽपीर्णै र्वरै सप्तभि —वाक्यपदीय २।२६। काव्य प्रकाश की 'याख्या चन्द्रिका' में यह श्लोक 'राघवानन्द नाटक' का कहा गया है।



मे उद्धृत किया है। यह श्लोक राजशेखर का कहा जाता है। परन्तु राजशेखर के प्रयोग में नहीं मिलता। अस्तुत यह राजशेखर का श्लोक नहीं हो सकता क्योंकि कुतक ने इस श्लोक को उद्धृत किया है। कुतक और राजशेखर समकालिक हैं। नीचे लिखे पद्यों से जान पड़ता है कि पुण्यराज आनन्दवदन के बाद हुए थे परन्तु घोड़े ही जिन बाण या समकालिक क्योंकि ध्वनि के भेद-उपभेद से वे पूणतया अवगत नहीं जान पड़ते

एतेन श्लोकेन प्रकारद्वयेन लक्षणा प्रदर्शिता। वदाच्चिमुह्यापत्यागेनयापत्यो-  
पलक्षणमेतदेवाविवक्षितवाच्यमुच्यते। वदाच्चिमुह्यार्थाविरामोपायपूर्वकमया-  
र्थापलक्षणमेतदेव विवक्षितापपरयाच्यमुक्त विज्ञपम।

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।३।१५

इस उद्धरण में अविवक्षितवाच्य और विवक्षितापपरवाच्य दो शब्द आए हैं जो आनन्दवदन के गढ़े हुए हैं। साथ ही इनका उल्लेख लक्षणा के साथ किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि ध्वनि की पर्याप्त धर्मापुण्यराज के समय में नहीं थी। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मुकुल भट्ट ने ध्वनि के उपयुक्त भेदों को लक्षणा में अन्तर्भाव किया था समयसम्बन्धितध्वनियुक्तानां तु लक्षणायाम् अविवक्षितवाच्यता छत्रिणो यातीत्यत्रेवोदाहार्या।

—अभिधावतिमात्रिका पृष्ठ २०

पुण्यराज ध्वनि के भेदों को लक्षणा के भीतर लेते हुए मुकुलभट्ट से प्रभावित जान पड़ते हैं। मुकुलभट्ट भट्टकल्लट के पुत्र और प्रतिहारेदुराज के गुप्त थे। भट्टकल्लट अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई०) के समकालिक थे (राजतरंगिणी ५।६६)। इसलिए मुकुल भट्ट का समय ९०० ई० है। पुण्यराज ९०० ई० के बाद क हैं। पर वे अभिनवगुप्त (१००० ई०) के पूर्व हुए होंगे अथवा ध्वनि को लक्षणा के भीतर स्वीकार बिना विशेष युक्ति के नहीं कर सकते थे।

पुण्यराज ने वाक्यपदीय २।२४३ की टीका में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है

सतां च न निषेधोस्ति सोऽसत्सु च न विद्यते।

जगत्स्यनेन यायेन नजय प्रलय गत ॥

श्री के० गम० शर्मा ने बालभट्ट के आधार पर इस श्लोक को खण्डनखण्डखाद्य का माना है और इसी आधार पर पुण्यराज को श्री हृष के बाद का बारहवीं शताब्दी का माना<sup>५८</sup> है। परन्तु यह उचित नहीं जान पड़ता। मुद्रित खण्डनखण्डखाद्य में उपयुक्त श्लोक नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह बहुत प्रसिद्ध श्लोक है और अनेक ग्रंथों में उद्धृत पाया जाता है। हेलाराज ने भी वाक्यपदीय ३ पृष्ठ ११७ पर इसे उद्धृत किया है। श्री हृष ने खण्डनखण्डखाद्य में दूसरों की कारिकाओं का भी उल्लेख किया है। अतः यदि किसी प्रति में उपयुक्त श्लोक मिले भी तो वह श्री हृष का ही है नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः यह श्लोक धमकीर्ति का है।

पुण्यराज ने अपनी टीका में संक्षेप शैली को अपनाया है, फिर भी वह सौष्टव्य पूरा और गम्भीर है। भूत हरि की तरह पुण्यराज भी भीमासा दशम के ममज्ञ जान पड़ते हैं।

## हेलाराज

हेलाराज ने वाक्यपदीय (प्रथम और द्वितीय काण्ड) पर शब्दप्रभा नाम की टीका लिखी थी। इसका उल्लेख उहोने कई स्थानों पर किया है।<sup>५६</sup> अतः यह टीका उपलब्ध नहीं हो सकी है। वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड (प्रकीर्णक) पर प्रकीर्णप्रकाश नाम की इनकी टीका है जो काशी से छपी है और साधन क्रिया समुद्देश से लेकर वृत्ति समुद्देश तक द्रावकीर से भी दो भागों में शुद्ध रूप में छपी है।

हेलाराज कश्मीरी थे। वे मुक्तापीठ के मंत्री लम्पण के वंशज थे और उनके पिता का नाम भूतिराज था। अभिनवगुप्त ने अपने साहित्यिक गुरु इन्दुराज के पिता का नाम भी भूतिराज बताया है।<sup>५७</sup> यदि भट्टेन्दुराज और हेलाराज भाई हों तो हेलाराज का समय ६७५ ई० के आसपास होना चाहिए। हेलाराज कैयट के बाद के जान पड़ते हैं। वाक्यपदीय के वृत्तिसमुद्देश के सपादक श्री रवि वर्मा ने कैयट और हेलाराज के कई समान वाक्यों का उद्धरण किया है और संकेत किया है कि हेलाराज कैयट के बाद के जान पड़ते हैं। मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। वस्तुतः हेलाराज कैयट के बाद के हैं। हेलाराज ने कैयट के कई व्याख्यानों का उनका ब्रिा नाम दिया छण्डन किया है। जैसे, हेलाराज ने लिखा है

'धातुरप प्रयोजनमस्येत्तत्तु भाष्यव्याख्यानमयुक्तम् ।'

—वाक्यपदीय ३, साधनसमुद्देश पृष्ठ १७३

हेलाराज ने यहाँ जिस भाष्यव्याख्यान का उल्लेख किया है वह कैयट का है। कैयट ने लिखा है

धात्वय क्रिया सा अथ प्रयोजन यस्य साधनस्य तस्मिन् वतमानात् उपसर्गात् स्वार्थे यति प्रत्यय ।

—कैयट प्रदीप ५।१।११८ ४।१।७८ भी द्रष्टव्य

अलंकार सवस्व (११३५ ई०) में कैयट के भाष्याब्धौ क्वातिगमीरम् इस वाक्य का उल्लेख है।<sup>५८</sup> ई० ११७२ में लिखी दुषट वृत्ति में कैयट का कई बार नाम आया है। श्री युधिष्ठिर भीमासक ने अपने 'व्याकरण का इतिहास' में कैयट का समय ई० १०३५ के लगभग अनुमान से निश्चित किया है। श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य कैयट का

५६ विस्तरैः। गमप्रामाण्य वाक्यपदीयेऽस्माभिः प्रथमकारणे शब्दप्रभायां निर्युतितिः। (वाक्यपदीय ३।४६ पृ० ३६।

५७ "अभूतिरानन्तनय" स्वपितृप्रसाद" तत्रालोक ३७।६०, डा० वे० सी० पाण्डेय द्वारा अभिनवगुप्त सेन हिस्टोरिकल ऐण्ड फिलॉसफिकल स्टडी पृ० १४३ पर उद्धृत।

५८ अलंकार सवस्व अन्तिम श्लोक की वृत्ति। इस पर डा० वी० राधकृष्ण ने प्रकाशना वाला था।

समय ६०० ई० मन् के आसपास मानते हैं।<sup>६२</sup> इस आधार पर हेनाराज और इन्दुराज को महोदर भाई माना जा सकता है क्योंकि इन्दुराज का भी यही समय है।

हेनाराज ने वाक्यपदीय ३ द्रव्य समुद्देश ६ की टीका में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है

एशदेशेन सारूप्ये सर्वे स्मात् सयधेदनम।

सर्वात्मना तु सारूप्ये ज्ञानमज्ञानतां प्रजेत ॥

यह तत्त्वसंग्रह की १३५८वीं कारिका है। तत्त्वसंग्रह के लेखक शास्त्ररिचित का समय ७५० ई० है।

माधवाचार्य ने सर्वदशनसंग्रह में वाक्यपदीय के व्याख्याता हेनाराज का उल्लेख किया है

कमप्रबन्धीयेन च पञ्चमेन सह पदस्य पञ्चविपत्त्व इति हेनाराजो व्याख्यात यान।

इसलिए १३वीं शताब्दी के पूर्व हेनाराज हुए थे। १००० ई० इनका समय मान लेने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती।<sup>६३</sup>

हेनाराज अतीव प्रतिभासम्पन्न लेखक थे। शास्त्रप्रभा और प्रकीर्णकप्रकाश के अतिरिक्त इन्होंने क्रियाविवेक धाति कोमेय और अद्वयसिद्धि नाम के ग्रन्थों की भी रचना की थी। इन पुस्तकों का उल्लेख उनकी टीका में मिलता है।

हेनाराज की लेखनी में अद्भुत शक्ति है। वे महाभाष्य में निष्णात, आगम शास्त्र के पण्डित विभिन्न दर्शनों के परिचायक और वाक्यपदीय के परम ममता हैं। इनकी टीका में जो मौलिकता और चारुता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

## धर्मपाल

इरिसंग के अनुसार धर्मपाल ने भृगु हरि के पेइ न (प्रकीर्णक) पर टीका लिखी थी। धर्मपाल की टीका के बारे में अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिलता। इरिसंग के अनुसार

<sup>६२</sup> परिभाषा वृत्ति की भूमिका, पृ० ८।

<sup>६३</sup> हेनाराज ने कई श्लोकों और वाक्यों के उद्धरण दिए हैं जो अन्य कवियों के हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है, क्योंकि वे उद्धरण उनके काल पर प्रकाश डालते हैं। इन श्लोकों और वाक्यों का मूल अभी तक नहीं मिल पाया है

श्रुत्यावरोन कल्पत्वमुपागतस्य

दूरा मुखस्य तव सुन्दरि साम्यमेत्य।

येन प्रहर्षमरपूरितमूणैश्च

स्वाङ्गेष्वपि प्रसभमद्य न माति चन्द्र ॥

—वाक्यपदीय, ३, वृत्तिसमुद्देश २७२ में उद्धृत

रोलम्ब शबन (गरल) ब्याल समालश्यामल नभ ।

नभोनिर्मलनिर्दिश शयमपाणय वे ॥

—वही, वृत्तिसमुद्देश २७२

भट्ट हरि और घमपाल समकालिक थे। घमपाल शीलभद्र के गुरु थे। ह्येनच्याग (६२५ ई०) के समय में शीलभद्र इतने अधिक बूढ़ थे कि वह ह्येनच्याग को पढ़ा नहीं सकते थे। घमपाल की मृत्यु ५७० ई० में हो गई थी। घमपाल अपने समय में नालंदा विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य थे।

भट्ट हरि के वाक्यपदीय का अय्यदर्शन के क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा। छठी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत में जितने महान चिंतक उत्पन्न हुए वे सब किसी न-किसी रूप में भट्ट हरि दर्शन से परिचित जान पड़ते हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में एक खटकने वाली प्रथा प्राचीन काल से ही दिखाई देती है। वह है अपने संप्रदाय अथवा दर्शन का सबका पोषण और दूसरों के विचारों का खण्डन। जो विचारक जिस दर्शन से नाता जोड़ लेता था, वह अपनी प्रतिभा का उपयोग उसी के समय में करता था और अय्य मत उसे ऋष्टिपूर्ण दिखाई देते थे। संप्रदायनिरपेक्ष रूप में स्वतंत्र विचारक भारतीय दर्शन के इतिहास में अल्प हैं। भट्ट हरि के मता की समीक्षा भी प्रायः साम्प्रदायिक आधार पर की गई है। भट्ट हरि ने वाक्यपदीय में अय्य दर्शनों के भी विचारों को स्थान दिया था किंतु समीक्षकों ने उन सब विचारों को वाक्यपदीय में लिखे देखकर भट्ट हरि का ही मानकर उनकी समीक्षा की है। इसके एक रोचक उदाहरण का उल्लेख आवश्यक है। भट्ट हरि ने वाक्यकाण्ड के आरम्भ में वाक्य के कई लक्षण एक साथ दे रखे हैं। ये लक्षण निश्चित रूप में सगृहीत हैं। भट्ट हरि ने भी स्वयं वाक्य प्रति मतिभिना' कह कर स्पष्ट कर दिया है कि ये वाक्यलक्षण सगृहीत हैं। उन्होंने 'याय दर्शिनाम्' शब्द से यह भी संकेत कर दिया है कि इन लक्षणों का सम्बन्ध भीमासा दर्शन से है। वाक्यपदीय के टीकाकार पुष्परत्न ने भी इसे भीमासको का वाक्यलक्षण माना है और तदनु रूप व्याख्या प्रस्तुत की है। किंतु कुमारिल भट्ट को ये लक्षण वाक्यपदीय में दिखालाई दिए और सबका उन्होंने खण्डन कर दिया। कुमारिल के श्लोकवार्तिक के टीकाकार सुचरितमिश्र और पायसारथि मिश्र ने भी व्याकरणों के मत के रूप में वाक्यपदीय में दिए वाक्यलक्षण को उद्धृत कर उनका खण्डन किया। कहने का तात्पर्य यह है कि समीक्षा करते समय आवश्यक ध्यानवीन नहीं की जाती थी। अवश्य ही दूसरे दर्शन के आचार्यों द्वारा उल्लिखित वाक्यपदीय सम्बन्धी मत अनेक दृष्टियों से बहुत उपादेय हैं और स्वयं मत हरि के समझने में बहुत सहायक होते हैं।

बौद्ध दार्शनिकों में घमकोटि ने भट्ट हरि की भाष्यताओं की समीक्षा की है। यद्यपि घमकोटि ने भट्ट हरि का नाम नहीं लिया है किंतु उनकी भाष्यताओं का उल्लेख अवश्य किया है। प्रमाणवार्तिक के टीकाकार कणकगोमी और प्रजाकर गुप्त ने भी वाक्यपदीय की अनेक कारिकाओं का उद्धृत कर उनकी समीक्षा की है। कणकगोमी की टीका में भट्ट हरि की वृत्ति का एक अंश मिल गया है जो प्रकाशित वृत्ति में स्पष्ट

है। शीतरक्षित और कमलशील भी भक्त हरि से प्रभावित हैं। कमलशील ने कई कारि काओ का अर्थ स्पष्ट किया है। किसी बौद्ध आचार्य ने 'शब्दायचिन्ताविवृति' नाम का एक स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखा था। ऐसा रत्नश्रीज्ञान रचित काव्यादश की टीका से जान पड़ता है।<sup>१५</sup>

जन आचार्यों में मल्लवादिशमाधमण, वादिदेव सूरि, प्रभाचन्द्र आदि ने वाक्यपदीय के अनेक सिद्धांतों पर विचार किया है। वादिदेव सूरि के सामन हरिवर्तित भी थी और इसके कुछ अंश वही मिलते हैं।

भट्ट हरि की सबसे अधिक समीक्षा कुमारिल भट्ट ने की है। श्लोकवार्तिक और तत्रवार्तिक दोनों में स्थान स्थान पर भक्त हरि का नाम दिए बिना किंतु इनकी कारिकाओं के मकन दते हुए कुमारिल ने वण, पद, वाक्य प्रतिभा स्फोट सम्बन्धी वाक्यपदीय में आए मतों की आलोचना की है। भट्ट उम्बेक सुचरित मिश्र और पायसारथि ने वाक्यपदीय का कई कारिकाओं के उद्धरण दिए हैं और उनका खण्डन किया है। भीमासको में मण्डन मिश्र व्याकरणदशम के प्रति उदार हृदय रखते थे। उन्होंने कुमारिल के कई तर्कों के उत्तर दिए हैं। किन्तु स्फोटसिद्धि की रचना का मुख्य उद्देश्य मेरी समझ में व्याकरण के सिद्धान्त के समर्थन की अपेक्षा धर्मकीर्ति का खण्डन है। वस्तुतः स्फोटसिद्धि का अधिकांश वाक्यपदीय मूल धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक के हैं अल्प मण्डनमित्र के हैं। वाचस्पति मिश्र ने भीमासादशन की दृष्टि से तत्त्व बिन्दु की रचना की है। इसमें भी वाक्यपदीय की आलोचना है।

प्राचीन नैयायिकों में जयन्त भट्ट ने यायमजरी में व्याकरणदशम की कुछ भाष्यताओं की आलोचना की है। जयन्त भट्ट अच्छे वैयाकरण भी थे। उनका हृदय व्याकरणदशम की ओर है और मस्तिष्क व्यायदशन की ओर।

छठी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक के प्रसिद्ध वैयाकरणों में कारिकाकार (जयान्तिय और वामन), वासकार, कयट और भोज प्रमुख हैं। यद्यपि इन आचार्यों ने व्याकरणदशम पर यथ नहीं लिखे हैं किन्तु इनकी टीकाओं में व्याकरणदशम सम्बन्धी प्रचुर सामग्री है। इनमें वासकार बड़े ही मौलिक विचारक थे। कयट (ई० ६००) ने महाभाष्यप्रदीप में वाक्यपदीय का बहुत आधार लिया है और वाक्यपदीय के अनेक उल्लेखों में छोटे में स्पष्ट रूप में रहस्य में वज्राड हैं। महाभाष्य के दार्शनिक सचेतों को वे स्पष्ट करत घातते हैं। ऐसे अवसर पर उनकी शक्ति भी होती है।

१५ एतच्च विस्तरेण शब्दायचिन्ताविवृति चिन्तितम् इति तत्त्वोपधायम्।—रत्नश्रीज्ञान, काव्य लक्ष्य टीका—१० पृ३३। यह विद्वान् प्रमाणवार्तिक के शब्द चिंता प्रकरण पर भी अथवा द्विती शब्दायचिन्ता ग्रन्थ पर भी, ब्रह्मात है। प्रमाणवार्तिक के शब्द चिन्ता प्रकरण' में उद्धृत वाक्यपदीय का सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। उद्धरण में वाक्यपदीय की भी एक कारिका है जिसमें पाठभेद है। उद्धरणरूप उद्धरण में किया की प्रमाणता सिद्ध की गई है।

‘भाष्यकारस्तु कुण्डिनदशमम अग्निश्रियत’

‘ज्ञानस्य शब्दरूपत्वापत्तिरिति दशममत्र भाष्यकारस्य’<sup>६२</sup>

कयट का प्रदीप एक अत्यंत उत्कृष्ट रचना है।

भोज (६७५ ई०) के सरस्वतीकण्ठाभरण में तो नहीं किन्तु शृंगार प्रकाश में व्याकरणदशम सम्बन्धी अपार सामग्री है। भोज ने व्याकरणदशम से सम्बद्ध प्रायः सभी पन्नों पर विचार किया है। और सब जगह से सामग्री एकत्र कर उसे विस्तृत रूप दे दिया है। इस ग्रंथ में वाक्यपदीय की बहुत कारिकाएँ उद्धृत हैं। सबसे अधिक हृष की बात तो यह है कि वाक्यपदीय द्वितीय काण्ड की लगभग दो सौ कारिकाओं की हरिवर्ति शृंगारप्रकाश में विभिन्न स्थलों पर ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं। भोज ने उन्हें ऐसे ढंग से अस्तव्यस्त रूप में रखा है कि प्रथम दृष्टि में उन्हें पहचानना सरल नहीं है। महाभाष्यत्रिपादी (दीपिका) के भी कुछ भाग शृंगारप्रकाश में उपलब्ध हैं। इसमें अतिरिक्त अनेक उद्धरण अज्ञात वयाकरणों के हैं। वही वही भोज ने भर्तृहरि की समीक्षा भी की है। उनके प्रतिभादशम का उही के शब्दों में उल्लेख कर भोज ने उसमें असहमति व्यक्त की है। स्फोट और शब्दब्रह्मवाद का अपने ढंग से उल्लेख किया है।

ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक संस्कृत के व्याकरणों का एक जाल-सा विछा हुआ है। इस बीच कुछ ग्रंथ व्याकरण के दार्शनिक पक्ष को सामने रखकर लिखे गए थे उनमें भी कुछ ही उपलब्ध हैं। उपलब्ध ग्रंथों में भी प्रकाशित ग्रंथ अल्प हैं। इन प्रकाशित ग्रंथों के सब लेखक भी मूल रूप से दार्शनिक विचारधारा के नहीं थे। उन्होंने जैसे व्याकरण के अन्य पक्षों पर विचार किया वैसे ही व्याकरणदशम पर भी कुछ लिखा। किन्तु इस रूप में भी बहुत सी उपादेय सामग्री अभी तक सुरक्षित है। इस अवधि में व्याकरणदशम पर लिखने वालों में पुरुषोत्तमदेव, सायण शेष श्रीकृष्ण और भट्टोजि दीक्षित प्रमुख हैं। पुरुषोत्तमदेव (बारहवीं शताब्दी) ने व्याकरण की अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें उनका कारक चक्र व्याकरणदशम से सम्बन्ध रखता है। सायण (चौदहवीं शताब्दी) अपने युग के अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने सप्तदशम सग्रह में पाणिनिदशम के नाम से व्याकरण दशम का परिचय दिया है। शेष श्रीकृष्ण अकबर के समय में थे और भट्टोजि दीक्षित के गुरु थे। उन्होंने शब्दाभरण नाम का एक प्रौढ ग्रंथ लिखा था जो आज अनुपलब्ध है। इनका ‘स्फोटतत्त्व निरूपण’ प्रकाशित है। इनके प्रक्रियाप्रकाश और पदचक्रिका विकरण में भी व्याकरण के दार्शनिक तत्त्वों की चर्चा है। पदचक्रिका उनका स्वतंत्र व्याकरण है। शेष श्रीकृष्ण के पुत्र शेष नारायण ने महाभाष्य पर सूक्तिरत्नाकर नाम की टीका लिखी है। इसमें भीमासादशन और व्याकरणदशम का कई स्थलों पर तुलनात्मक विवेचन मिलता है। भट्टोजि दीक्षित (१६०० ई०) ने शब्दकोस्तुम में व्याकरण के दशम पक्ष पर भी यथास्थान विचार किया है। इनमें आई हुई कारिकाओं का सग्रह वयाकरणसिद्धांतकारिका के नाम से ज्ञात है। इनमें व्याकरण के दार्शनिक

पदाथ उल्लिखित है ।

सातहवीं शताब्दी से लेकर उनीसवीं शताब्दी के पूर्वाध तक अनेक आचार्यों ने संस्कृत व्याकरणदशन की सुरक्षा मे योग दिया जिनमे कुछ नयायिक भी हैं । इनमे उल्लेखनीय कौण्डभट्ट, नागेश भट्ट, जगदीश भट्टाचार्य कृष्ण मित्र भरत मिश्र आदि हैं । कौण्ड भट्ट ने वयाकरणभूषण लिखा जा भट्टोजि दीक्षित की वारिकाञ्जा की व्याख्या है । उसका लघु संस्करण वयाकरणभूषणसार नाम से प्रसिद्ध है । वयाकरण भूषण विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ है और पहली बार एक वयाकरण ने मीमांसको, नयायिको और वेदातिथो के आक्षेपो के उत्तर देने का प्रयत्न किया है । वयाकरणभूषणसार पर प्रकाशित टीकाञ्जा म हरिराम काले की काशिका महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । हरिवल्लभ ने भी इस पर दपण नाम की टीका लिखी है ।

नागेश भट्ट (१७०० ई०) ने व्याकरणदशन पर स्वतंत्र ग्रंथ 'वयाकरण सिद्धांतमजूपा' लिखा है । इसका एक लघु संस्करण परमलघुमजूपा है । मजूपा की कला टीका पृ० ५३० ५३५ पर गुरुमजूपा का भी उल्लेख है । नागेश ने वाक्यपदाय विशेषकर पुष्कराज और हेलाराज के आधार पर इसकी रचना की है । किंतु मीमांसा और याय के पदार्थों पर भी विचार किया है । यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । नागेश ने स्फोटवाद पर एक अन्य ग्रंथ भी लिखा है जो अद्वयार से प्रकाशित है । नागेश की मजूपा पर रामसखक त्रिपाठी क पुत्र कृष्ण मित्र की कुञ्जिका नाम की टीका है । इस पर कला टीका नागेश के शिष्य वक्षनाथ पायगुण्ड की लिखी हुई है । दोनों ही टीकाएँ सारगर्भित हैं ।

जगदीश भट्टाचार्य की 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' भी प्रसिद्ध पुस्तक है । श्री गिरिधर भट्टाचार्य रचित 'विभक्त्यधिनियम' और गोकुलनाथ रचित 'पदवाक्यरत्नाकर' उल्लेखनीय हैं । भरत मिश्र ने स्फोटवाद पर छोटी सी किंतु विचारपूर्ण पुस्तक लिखी है । कृष्णमित्र ने व्याकरण के अनेक ग्रंथ लिखे हैं । नागेश की मजूपा पर इनकी टीका का उल्लेख हो चुका है । व्याकरणदशन से सम्बंध रखने वाले इनके कई छोटे छोटे ग्रंथ भी प्रकाशित हैं । इनमे वादमुधाकर लघुविभक्त्यधिनियम और वृत्तिनीपिका उल्लेखनीय हैं । कृष्णमित्र के पुत्र लक्ष्मीदत्त का पदाथदीपक भी व्याकरणदशन का ग्रंथ है । मौनी श्रीकृष्णभट्ट की स्फोटचद्रिका, रसभनदि का वारकसम्बन्धोद्योत अक्षलोपाध्याय का वाक्यवाच श्री हरियशोमिथ की वाक्यनीपिका (वाक्यवाद टीका) भी उल्लेखनीय ग्रंथ हैं । बीसवीं शताब्दी के पूर्वाध म व्याकरणदशन पर अल्प काय हुआ है । डॉ० गोपीनाथ जी कबिराज प्रो० ए० ए० अम्बर और प० अम्बिकाप्रसाद उपर्याय ने व्याकरणदशन पर उच्चकोटि क निबंध लिखे हैं । प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती की दो पुस्तकें 'विद्यामयी आर्य संस्कृत ग्रामर' और 'लिग्विस्टिक स्पकुलेशन आर द हिन्दूज' इस अवधि की प्रसिद्ध पुस्तकें हैं । प० रामाना पाण्य का प्रतिभादशन और प० सभाशति उपाध्याय रचित मजूपा की टीका भी उल्लेखनीय हैं ।

इसपर व्याकरणदशन की ओर कई विद्वानों का ध्यान गया है और इस विषय म प्रोधन हो रहे हैं । डॉ० क० रायचन् पिल्ले ने वाक्यपनीय का अग्रज म अनुवाद

किया है। प्रो. अय्यर ने भी प्रथम बाण्ड संवृत्ति का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। प. रघुनाथ शास्त्री ने वाक्यपदीय प्रथम बाण्ड पर वपम के आधार पर संस्कृत में टीका लिखी है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से वाक्यपदीय से सम्बद्ध विषय पर कुछ प्रबन्ध अंग्रेजी और हिन्दी में प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें उल्लेखनीय डा० गौरीनाथ शास्त्री का 'फिलासफी ऑफ वड एण्ड मीनिंग' है।



## वाक्-ध्वनि-वर्ण-शब्द

व्याकरण का सम्बन्ध भाषा से है और भाषा का मूल रूप वाक है। वाक का एक स्वतन्त्र दशन है। वाक के बिना जगत् सूना और जीवन पशु है। ससार के प्रायः सारे व्यवहार वाग् व्यापार पर ही निर्भर है। सम्भ्यता और सस्कृति इसकी गोद में फूलती फलती हैं। वाक केवल विचारों के विनिमय का ही माध्यम नहीं, अपितु विश्व में जो कुछ सत्य है शिव है, सुन्दर है उन सब का भी ध्यजक है। वाक का एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। स्थूल रूप में वाक भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। सूक्ष्म रूप में वाक ब्रह्ममय है, चित्त तत्त्व है। वाक तत्त्वमेव चित्तित्रियारूपमित्ये (वाक्यपदीय १।१२७ हरिवृत्ति)। भक्त हरि ने वाक की महिमा का उद्घाटन मुख्य रूप में तीन तरह से किया है श्रुति के आधार पर, आगम के आधार पर और भाषाविज्ञान के आधार पर। वेदों और उपनिषदों में वाक पर पर्याप्त विचार किया गया है। भक्त हरि ने श्रुतियों के उन वाक्यों को उद्धृत किया है जिनमें वाक सृष्टि का मूल तत्त्व मानी गयी है। सम्पूर्ण सृष्टि नाम और रूप इन दो वर्गों में विभाजित है। दोनों एक ही के विवर्त हैं। रूप अपने सूक्ष्म रूप में नाम है

मामवेद रूपत्येन धवते रूप चेद नामभावेवतस्थे ।

एके तदेकमविभक्त विभेजु प्रागिवाये भेदरूपववति ॥

—वाक्यपदीय १।१२ हरिवृत्ति में उद्धृत

वेद में वाक को सूक्ष्म और अथ स अविभक्त तत्त्व कहा गया है और इसके नाना रूप माने गये हैं

सूक्ष्मामर्थेनाप्रविभक्ततत्त्वामेका वाचमनमित्य ब्रह्मानाम ।

उताये विदुरयामिव च एना नानारूपामात्मनि सनिविष्टाम ॥

—वाक्यपदीय १।१ हरिवृत्ति में उद्धृत

वेद को ग्रहाराशि कहा गया है। वेद ब्रह्म का प्राप्ति उपाय है और अनुकार भी है। प्राप्ति शब्द का प्रयोग यहाँ पारिभाषिक है। भक्त हरि के अनुसार मेरा या मैं इस अहंकार ग्रथि का सवथा उमूलन ब्रह्म की प्राप्ति है। कुछ लोगों के मत में विचारों का अपने मूलप्रकृतिरूप में हो जाना प्राप्ति है। प्राप्ति के निम्नलिखित नव विकल्प भक्त हरि ने वाक्यपदीय १।५ की वृत्ति में गिनाए हैं—

(१) षडरूप्य—चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों हाथ पर आदि पाँच कर्मेन्द्रियों

बुद्धि और मन इन सब की निवृत्ति को बकरण्य कहते हैं। क्योंकि ससार का परिज्ञान इन्द्रियो द्वारा ही होता है, इन्द्रियो की निवृत्ति से ससार की निवृत्ति मान ली गई है।

(२) असाधना—वृषभ के अनुसार असाधना का अर्थ अबहि साधना है। बाह्य ससार में अनुकूल विषयो की साधना भी की जाती है। उससे भी तृप्ति होती है। परन्तु अन्त साधना का ही महत्त्व अधिक है।

(३) परितृप्ति—वह तृप्ति जिसमें कोई इच्छा नहीं रह जाती।

(४) आत्मतत्त्वम्—वह अवस्था जिसमें बाह्य परिस्थिति सबया ओझल हो जाती है और व्यक्ति केवल आत्मानुभूति में लीन हो गया रहता है। उपनिषदों में इस परिस्थिति को प्रिय स्त्री से आलिंगित पुरुष की आत्मविभोर परिस्थिति के प्रतीक के द्वारा व्यक्त किया है (आत्मतत्त्व यदुपनिषत्सु वष्यते यथेष्टया स्त्रिया परिष्वक्तो न किञ्चन वेद इति—बृहदारण्यक उपनिषद् ४।३।२१—वृषभ वाक्यपदीय टीका १।५)।

(५) आत्मकामत्व—रूप, रस आदि विषय भोगों की कामना न होना और केवल आत्मा की कामना होना आत्मकामत्व है। आत्मतत्त्व और आत्मकामत्व में भेद यह है कि आत्मतत्त्व में आत्मानुभूति ही गहराई छीनित है जबकि आत्मकामत्व में बाह्य विषयों में अनासक्ति लक्षित है।

(६) अनागतुकायत्व—आगन्तुक या परिवर्तनशील भोगों में तितिक्षा का होना। श्रीमद्भगवद्गीता में सस्पशज भोगों को उत्पन्न होनेवाला (आगामी) माना गया है।

(७) परिपूर्ण शक्तित्व—सब तरह के सामर्थ्य का होना।

(८) कालवर्तियों का आत्ममात्रा में असमावेश—जन्म विपरिणाम आदि विकार कालवर्तियों के रूप हैं। कालवर्तियों के धर्मों का आत्मवर्तियों के धर्मों से पृथक् परिज्ञान कालवर्तियों का आत्ममात्रा में असमावेश है।

(९) सर्वात्मना नराश्य—सबया निरीह होना। नराश्य परमसुख माना गया है।

प्राप्ति के उपयुक्त भेद एक दूसरे से सबया भिन्न न होकर एक दूसरे से मिले हुए हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि वेद के प्रसंग में प्राप्ति शब्द का जो पारिभाषिक अर्थ मीमांसादर्शन में गृहीत है उससे अतिरिक्त अर्थ यहाँ भक्त हरि द्वारा गृहीत हुआ है।

वेद ब्रह्म का अनुकार अर्थात् अनुकरण माना गया है। ऋषियों ने दृष्ट श्रुत और अनुभूत अर्थों का सब साधारण के लाभ के लिए प्रवचन किया है। यह प्रवचन वाक् के द्वारा ही सम्भव है। यद्यपि वाक् सूक्ष्म, नित्य तथा अतीन्द्रिय है फिर भी ध्वनि-नाद के सयोग से वह अभिव्यक्त होकर भेद के द्वारा अभेद के प्रतिपादन में समर्थ होती है। सूक्ष्म और अतीन्द्रिय वाक् प्रतिभा द्वारा अमशक्त के साहचर्य से ज्ञान के रूप में, अर्थ के रूप में परिणत होती है और उपदेश का विषय बनती है। अतीन्द्रिय के बाध को समझाने के लिए भक्त हरि ने स्वप्न वृत्त का उदाहरण दिया है। स्वप्न में बिना बाह्य व्यापारों के विषय अनुभूत होते हैं और उनका अ-वाक्यान्त किया जाता है।

यां सूक्ष्मां नित्यामतींद्रियां चाचमयय साक्षात्कृतयर्माणो म त्रदश पश्यति  
तामसाक्षात्कृतधम्मोपरेभ्य प्रवेदयिष्यमाणा विस्म समामनति स्वप्नयत्तमिव  
दृष्टश्रुतानुभूतमाचिख्यासत इत्येव पुराकल्प ।

—वाक्यपदीय १।५ हरिवृत्ति पृ० १३ (द्रष्टव्य निरवत्त १।२०।२)

अतींद्रिय प्रज्ञास्वरूप वाक कसे ज्ञान वा अथवा प्रत्यक्ष वा विषय होती है। इस पर भत हरि की तरह योगसूत्र १।४३ के भाष्य में व्यास ने भी प्रकाश डाला है। उनके मत में शब्द के साहचर्य से अतींद्रिय और असकीण प्रज्ञा ज्ञान के रूप में बदल जाती है और प्रत्यक्ष वा विषय होती है। योगियों को सूक्ष्म प्रज्ञा का दर्शन 'निर्विक समाधि' में होता है। किंतु निर्विक समाधिज दर्शन शब्द संकेत के साहचर्य से परिशुद्ध स्मृति में ग्राह्यस्वरूप वाला हो जाता है। बिना शब्द का सहारा लिए उस निर्विक समाधिज ज्ञान का उपदेश दूसरों को दिया ही नहीं जा सकता और न वह दूसरों से गृहीत हो सकता है। ग्राह्यस्वरूप वाली अवस्था को 'निर्विक समापत्ति' कहते हैं। दृष्ट मंत्रों का वाणीरूप में व्यक्त होने का प्रकार यही माना जाता है। इसी पद्धति से वेद प्रकाश में आए। इसमें यास्क व्यास और भत हरि एकमत हैं।

वाक की महिमा उसके व्यावहारिक दृष्टि से भी स्पष्ट है। वाक और ज्ञान के विषय में दो तरह के मत प्रचलित रहे हैं। कुछ लोग मानते हैं कि शब्द प्रकृति है और ज्ञान उसका विकार है। कुछ आचार्य ज्ञान को प्रकृति और शब्द को उसका विकार मानते हैं। पहले पक्ष के अनुसार शब्द भावना बीज रूप में मस्तिष्क में उद्बुद्ध होती है। इसके बाद उसके अर्थ का संवेदन होता है। दूसरे पक्ष के अनुसार अर्थ ज्ञान पहले होता है। बाद में उसके लिए शब्द की सृष्टि होती है। इसलिए ज्ञान प्रकृति और शब्द उसका विकार है। भत हरि पहले पक्ष के समर्थक हैं। उनके मत में शब्द भावना अनादि है। शब्द की अभिव्यक्ति के प्रकार अर्थात् प्रयत्न भी स्वाभाविक (प्रतिभा जय) हैं।

अनादिश्च पाण्डवभावना प्रतिपुरुषमर्थस्वित्तज्ञानबीजपरिग्रहा । न ह्येतस्या  
कथञ्चित्पौष्ट्येयत्वं सभवति । तथा ह्यनुपदेशसाध्या प्रतिभागभ्या एव  
करणविधासादय ।

—वाक्यपदीय १।१२३ हरिवृत्ति पृ० ११०

शब्दानुविद्ध ज्ञान के द्वारा वस्तु का अवभास होता है। सुप्तावस्था में भी जाग्रत अवस्था की तरह ज्ञानवृत्ति व्यापारित रहती है। केवल अंतर यह है कि स्वप्नावस्था में शब्द भावनाबीज अत्यंत सूक्ष्म रूप में रहते हैं। जब उस अवस्था में आचार्यों ने तामसी अवस्था (अस्पष्ट अवस्था) कहा है।<sup>१</sup>

सभी प्रकार के ज्ञान निम्नलिखित तीन प्रकार से व्यावहारिक अनुभव का विषय

१ द्रष्टव्य-वाक्यपदीय १।१५ हरिवृत्ति पृ० १३ १५, निरवत्त १।२० और योगसूत्र यास भाष्य १।४३ और गोपीनाथ जी कविराज का लेख शैव एव शाक्त स्कूल, हिन्दी भाषा फिलासफी इन्स्टीट्यूट बैरहना, बालूच पार्क, पृष्ठ ४०१, ४०२।

२ हरिवृत्ति, वाक्यपदीय १।१२४, पृष्ठ १११।

हाते हैं—(१) स्मृतिनिरूपणा (२) अभिजल्प निरूपणा और (३) आकार निरूपणा के द्वारा ।

शब्दानुविद्ध बुद्धि के द्वारा 'यह है', ऐसा है' आदि का जो स्मरण होता है वह स्मृति निरूपणा कहा जाता है । स्मृति के द्वारा शब्द और अर्थ का अभेद नान अभिजल्प निरूपणा कहलाता है । 'यह वह है इस रूप में जब शब्द का अर्थ के साथ अध्यास किया जाता है उम शब्द का अभिजल्प कहा जाता है । भर्तृ हरि ने अभिजल्प की परिभाषा या की है

सोऽप्यमिति सम्बन्धाद्रूपमेकी कृत यदा ।

शब्दस्थायेन त शब्दमभिजल्प प्रचक्षते ॥

—वाक्यपदीय २।१३०

कुछ लोगो के मत में 'वह' इस तरह के अनुसंधान में स्मृति, 'यह वही है' इस तरह के बोध में प्रत्यभिज्ञा, 'वह उसके तरह है' इस तरह के ज्ञान में उत्प्रेक्षा, 'यह वही है' इस तरह की धारणा में अनुयोगव्यवच्छेद होता है और ये सभी विकल्प अभिजल्प के ही भेद हैं ।<sup>३</sup>

यह इसका साधन है 'यह इनका साध्य है' इसे आकारनिरूपणा कहते हैं । स्मृति निरूपणा से ज्ञान का अभिजल्पनिरूपणा से शब्द का और आकारनिरूपणा से अर्थ का निरूपण होता है ऐसा कुछ आचार्य मानते हैं ।<sup>४</sup>

भर्तृ हरि के मत में जिस तरह प्रकाशकत्व अग्नि का धर्म है चैतन्य आत्मा का धर्म है उसी तरह ज्ञान भी शब्द का धर्म है । बिना शब्द के ज्ञान ही नहीं सकता । यदि वाक न हो, जगत् प्रकाशित ही न हो । वाक ही प्रकाशक है । वही समस्त विद्याओं, कलाओं तथा विज्ञान का आधारभूत है । सभी विद्यार्थे वाक् रूप से बुद्धि में निबद्ध हैं । वाक न हो तो घट-पट आदि की सत्ता ही न हो । वाक से ही वस्तु का निष्पादन हाता है । वह सूक्ष्म रूप में बुद्धि में स्थित है । उसकी बाह्य अभिव्यक्ति ही वस्तु है । वाक तत्त्व और चैतना तत्त्व एक ही बात है । वाक तत्त्वमेव चित्त्रियारूपमित्यये ।<sup>५</sup>

वपभ के अनुसार वाक और चैतन्य में अभेद इस दृष्टि से है कि परा प्रकृति में भावों के आकार ग्रहण के रूप में विवृत होता है और वह चैतन्य के रूप में परिणत होता है । (यतश्च भावनामाकारस्परिग्रहेण परा प्रकृति विवृतते, तच्चत-मात्मना परिणमत इति वाक्चतययोरभेद ।—वाक्यपदीय १।२७ टीका, पृष्ठ ११४)

३ इत्वरप्रत्यभिज्ञाविद्वृत्तिविभर्शिनी, प्रथम भाग, पृष्ठ ११५

४ वृषभ, वाक्यपदीय टीका १।११६, पृष्ठ १०७ (स्मृतिनिरूपणयेति ज्ञानस्य निरूपणमाह । अभिजल्पनिरूपणयेति शब्दस्याह । आकारनिरूपणयेत्यर्थस्याह । सव एवेति शब्दानुविद्धा व्यवहारात् न स्वतन्त्ररूपरूपेति ।)

५ वाक्यपदीय १।१२५, १२६, १२७ ।

## तीन तरह की वाक्

### वखरी

भत हरि ने वाक के तीन अवयव माने हैं। वखरी, मध्यमा और पश्यती। भत - हरि के अनुसार वखरी सभी तरह के अभिनयक शब्दों का प्रतीक है। यह व्यापाररूप और वायरूप दोनों है। व्यक्तवण और अव्यक्तवण साधुशब्द और असाधु शब्द (अप भ्र श) गाड़ी के पहिये की चरचराहट, नगाड़े की आवाज बाँसुरी की ध्वनि और धीणा की झकार जैसे अपरिमित ध्वनि समूह का द्योतक शब्द वखरी है और इसलिये वखरी के अपरिमित भेद सम्भव हैं।<sup>६</sup> चरचराहट, झकार आदि यद्यपि शब्दभेद के रूप में गहीत होते हैं, वाक के भेद के रूप में नहीं, फिर भी अथवाद के आधार पर वखरी की व्याख्या में इनका स्थान<sup>७</sup> है। वखरी शब्द का निवचन विखर शब्द से किया जाता है जिसके अनेक तरह से अर्थ किये गये हैं

(१) विखर शरीर तत्र भवा तत्पय त चेष्टा सपादिषेत्यथ ।

—अभिनवगुप्त, ईश्वरप्रत्यभिनाविवतिविमर्गिनी भाग ३ पृ० १८७

(२) वक्तमि विशिष्टायां खरायस्याया स्पष्टरूपाया भवा वखरी ।

—वादिदेवसूरि स्याद्वादरत्नाकर १।७ पृष्ठ ८६

(३) विखर इति देहेन्द्रिय सघात उच्यते तत्र भवा वखरी ।

—जयतभट्ट याममञ्जरी पृ० ३४३ चोखम्बा संस्करण १६३६

(४) विशिष्ट खमाकाश मुखरूप राति गहणाति इति विखर प्राणवायुसंघार-  
विनिष्ट वर्णोच्चार तेनाभिव्यक्ता वखरीति ।

—जयरथ अलंकारसवस्व टीका पृ० २

वखरी सज्ञा वर्णों के उच्चारण से सम्बद्ध है। वखरी की विशेषता यह है कि यह स्वसवेच और परसवेच दोनों है। व्याकरण की दृष्टि से वखरी का महत्व बहुत अधिक है। इसी के आधार पर साधु असाधु विचार चलता है। और कुछ आचार्य यहाँ तक मानते हैं कि वखरी का संस्कार अथ सभी वाक के अवयवों के संस्कार का उपलक्षण है। येय वखरी वाक तस्या सस्त्रियमाणाया सर्वा एव संस्कृता भवति तज्जातीय वत्वात्—वपम, वाक्यपदीय १।१४३, पृष्ठ १२८) ।

६ परै सवेच यस्या श्रोत्रविषयत्वेन प्रतिनिधत्त अनुरूप सा वखरी। श्लिष्टा व्यक्तवणसमुच्चारणा प्रसिद्धमाधुमावा भ्रष्टसंस्कारा च। तथा याऽच्चे, या दुऽदुमा, या वेणौ (वा) धीण्याया मित्यपरिमाणभेदा ।

—वाक्यपदीय १।१४३, हरिवृत्ति, पृष्ठ १२८

वखरी करणव्यापारानुप्र<sup>८</sup> श्रोत्रज्ञानविषया शब्दबुद्धि ।

—महाभाष्यव्याख्या, हस्तलेख, मद्रास, पार ४४३६

७ ननु वाचो भेदकथनमेतत्, न तु शब्दमात्रभेदकथनम्। तत्कथ रावटात् उपात्त । उच्यते, अथवाददशनादिमुपात्तम्।

—वृषभ वाक्यपदीय १।१४३

## मध्यमा

मध्यमा को भक्त हरि ने 'अतः सन्निवेशिनी' कहा है। उसका व्यापार नीचरी है। वह सूक्ष्म प्राणशक्ति क सहारे परिचालित होती है। उसका उपादान केवल बुद्धि है। वक्ता की बुद्धि म शब्द त्रम रूप स प्रतिभासित से होते हैं। उसम त्रमसन्निवेश नहीं भी हो सकता है। मध्यमा म बुद्धिगत आकार के अवभाम से त्रम, और एक बुद्धि होन के कारण और शब्द का बुद्धि से अभिन्न होने के कारण अत्रम दोनों रूप माने जाते हैं—(बुद्धि-स्यवान् अतः सन्निवेशित्वत्रमादाकारेण प्रत्यवभागात् त्रमवत्वमेकबुद्धिस्वादप्यतिरेका दक्रमत्वम्—वचन वाक्यपदीय १।१४३, प० १२६)। मध्यमा म यद्यपि प्राणवृत्ति का संचार माना जाता है फिर भी प्राणवृत्ति का अतिप्रमण कर शब्द के उपादान के रूप में केवल बुद्धिमात्र भी रह सकता है। दूसरे शब्दों में, चिंतन शब्द से जो कुछ द्योतित होता है उस मध्यमा का रूप लिया जा सकता है। भक्त हरि क अनुसार द्रुता, मध्यमा और विलम्बिता इन तीनों वृत्तियों म शब्द के उच्च भेद (शर्त) उपाशु, परमोपाशु और सहस्रतन्त्रम ये पाँच औपाधिक भेद माने जाते हैं।<sup>८</sup> इनमें उपाशु और परमोपाशु मध्यमा के प्रतीक हैं। उपाशु मौन भाषण को कहते हैं। इसम प्राणवृत्ति का संचार रहता है। पर वाक किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा गहीत नहीं हो सकती। वह दूसरे द्वारा भवथा अमवेद्य होती है। प्राणवृत्ति की सहायता के बिना जब शब्द अपने एकमात्र उपादान बुद्धि में ही समाविष्ट रहता है उस अवस्था को परमोपाशु कहते हैं।

तत्र प्राणवृत्त्यनुग्रहे सत्येव यत्र गद्यरूप पररसवेद्य भवति तदुपाशु ।

अतरेण तु प्राणवृत्त्यनुग्रह यत्र केवलमेव बुद्धौ समाविष्टरूपो बुबध्युपादानएव गद्यरूपा तत परमोपाशु ।

—वाक्यपदीय २।१६ हरिवृत्ति पृ० १६

मध्यमा के भीतर ये दोनों अवस्थाएँ आ जाती हैं और इनके आधार पर मध्यमा के दो भेद माने जा सकते हैं। वाक के तीन भेद—वैखरी, मध्यमा और पश्यती में मध्यमा मध्य अवस्था को अभिव्यजित करती है और इसलिए उसे मध्यमा कहते हैं।

## पश्यती

पश्यती का स्वरूप भक्त हरि ने निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है प्रतिसहस्र क्रमा सत्यप्यभेदे समाविष्ट क्रमशक्ति पश्यती । सा चला च अचला च प्रतिलब्धा समाधाना च, आवुत्ता विगुद्धा च सन्निविष्टनेयाकारा प्रतिलीनाकारा निराकारा च, परिच्छिन्नायप्रत्यवभासा ससृष्टायप्रत्यवभासा प्रशातसर्वायप्रत्यवभासा चत्यपरमित-भेदा ।<sup>९</sup>

—वाक्यपदीय १।१४३ हरिवृत्ति पृष्ठ १२६

पश्यती प्रतिसहस्रतन्त्रम परमोपाशु के एक डग और परे की

<sup>८</sup> वाक्यपदीय २।१६, हरिवृत्ति, पृष्ठ १७, लाहौर मस्करण ।

स्वप्नि है। त्रम ताम की क्व भावि है। उसके माग बुद्धि का याग होता है। बुद्धि द्वारा व्यक्तात्त मन्त्र मन्त्र का अन्वय प्राप्त होता है। य अन्वयारोपित मन्त्रमन्त्र जय दूमेरे निमित्तात्त स मुक्त होने हैं—प्रयागा की मागिक भयानां स परिभाषित होने हैं उनका साधारण सा होता है। दग पूरे प्रक्रिया की प्रतिगह्यागम कर्ते हैं। (यग तु प्रतिगह्यागम मन्त्रायोगया बुद्ध्या निमित्तात्तरोपगम्यापगमभ्यन्ते मन्त्रोप्यारोपित हि मन्त्रानां त्रम रूपमिव साक्षात् विषयो तत् प्रतिगह्यागमम्—वाक्ययोग्य २।१६ हरिर्व्यास)। परमती म त्रम भाविन सानिहित रहती है इसलिए उगम त्रमो म भेन् के कारण भेन् होना चाहिए। पर यस्तुत भेन् नहीं होता क्योंकि त्रम आरोपित हाग हैं वास्तविक नहीं। जय बुद्धि म त्रमरूप का पूणतया उपसहार हो जाता है यह अगप्रम्यात अयस्या की-नो हो जाती है और लोका व्यवहार (शब्द व्यवहार) से अतीत होती है। वाक की अय विवक्षित अय स्यात्ता का मूल पश्यती है, इसलिए उन सबका इसके साथ सम्बन्ध है और उनका स्वरूपो का बीज भी दगम हैं। अत पश्यन्ती यत्ता और अचला दोनो है। यह यत्ता है ययोवि शान्तात्मा की अभिव्यक्ति म गति होती है। टीकाकार यपम के अनुसार पश्यन्ती यत्ता इसलिए है कि रूप रस आदि विषयो म लीन बुद्धि साधारण व्यक्ति की वाक की तरह जान पडती है। (रूपादिषु विषयेष्वर्वाग्दशनानां विशिष्टोत्पद्यते बुद्धिविगिय हि सा—वाक्ययोग्य १।१४३ टीका) यह अचला है ययोवि अपने स्वरूप म यह निस्पन्द है। यह प्रतिलम्बा है ययोवि उसमें त्रम आदि की अलग अलग उपलब्धि मभव है। यह समाधाना भी है ययोकि त्रम आदि उसमें एक साथ समाहित भी हैं। यह आवत्ता है ययोवि यह अपभ्रश आदि से सकीर्ण है। यह विणुद्धा भी है ययोवि वाक के रहस्य की जानने यात (वागयोग्यविद) उसके अत्रमरूप के अथवा अपभ्रश से अक्षकीण रूप के दगन करते हैं वह सबया शूद्र स्वरूप वाली है। यह सन्निविष्टज्ञयाकारा है ययोवि उसमें जय का रूप आविष्ट (जुटा) रहता है जैसे ज्ञान म ज्ञेय का रूप अनुस्पृत रहता है। उसमें नेय का आकार पूरा लीन भी रहता है और ऐसा भी हो सकता है कि उसमें ज्ञेय के आकार का बिल्कुल ही परिज्ञान न हो। उग दशा में वह निराकारा है। उसमें शब्द के अर्थों का, गो अथवा आदि का अलग अलग अवभास हो सकता है। इस दशा म उसे परिच्छिन्नाथ प्रत्यवभासा कहते हैं। सन्निविष्टज्ञयाकारा और परिच्छिन्नाथ प्रत्यवभासा इन दो रूपो म भेन् केवल इतना है कि एक म ज्ञेय का आकार जान म सन्निहित रहता है और दूसरे म शब्द म अय का आकार सन्निहित रहता है। एक ऐसी भी दशा मभव है जिसमें शब्द और अय एक दूसरे म बिल्कुल गुथे हुए से जान पडते हैं—समृष्ट रहते हैं। प्रतिलीनाकार और समृष्टाथप्रत्यवभासा इन दो रूपो में यह भेद है कि पहले म आकार का परिज्ञान अत्यन्त कठिन है पर दूसरे म शब्द और अय के आकार का अलग अलग तो नहीं परन्तु समृष्ट रूप म ज्ञान मभव है। ऐसा भी हो सकता है कि अर्थों का अवभास अनुद्बुद्ध रह जाय उनका बिल्कुल ही भान न हो। उस समय पश्यती प्रसात्तसर्वाथप्रत्यवभासा है। इस तरह पश्यती अनेक भेद वाली है। परन्तु अपने मूल रूप में वह क्रमरहित है स्वप्रकाशा है और सविद् रूप है।

वैश्वरी मध्यमा और पश्यती के लिए इतिहास के निदर्शन का उल्लेख करते हुए

मन हरि न महाभारत के कुछ श्लोकों को उद्धृत किया है। उद्धृत श्लोकों में कुछ श्लोक महाभारत के आश्वमेधपर्व के २१वें अध्याय में पाठभेद के साथ मिलते हैं। भृ हरि द्वारा उद्धृत श्लोकों का सारांश निम्नलिखित है —

भारती वाणी (संस्कृत) दिव्य और अदिव्य भेद से दो प्रकार की है। उगम एव प्राण और अवाक के बीच रहती है और दूसरी जिना प्राणवृत्ति के ही रहती है और अप्रियमाणा भी है। उससे प्राण उत्पन्न होता है और प्राण में युक्त हावर वह व्यवहार का साधन बनती है। व्यवहारनिवृत्त वाक के भी तीन रूप हैं। घोषिणी, जाननिर्घोषा और अघोषा। घोषिणी और निर्घोषा में निर्घोषा का अधिक महत्त्व है। मन हरि न तीन प्रकार के वाक के लिए भी महाभारत का उद्धरण दिया है। महाभारत के अनुसार खैररी वाक प्राणवृत्तिनिवृत्त है अर्थात् प्राणा के आघार पर उसकी भित्ति निर्मित है। मध्यमा वाक का उपादान बुद्धि है और उगम श्रम रहता है। परन्तु प्राणवृत्ति नहीं रहती। परन्तु भी श्रम का उपगहार हो गया रहता है उसमें किसी प्रकार का विभाग नहीं होता। वह स्वप्रकाशा है और नियत है। वाक के स्थूल भेदा में मपृक्त होने पर भी उसमें कोई विचार नहीं होता। वह अमृतकला है।<sup>६</sup>

यह ध्यान देने की बात है कि मन हरि पर वाक का कहीं उल्लेख नहीं करते। वे वाक के केवल तीन अवयव पश्यती मध्यमा और खैररी ही स्वीकार करते हैं। मन हरि के इस व्यवहार ने कुछ प्राचीन आचार्यों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि व्याकरण ज्ञान में परा वाक का कोई स्थान नहीं है। अभिनवगुप्त ने लिखा—“ननु पश्यत्येव पर तत्त्वमिति जरदवयाकरणा भयते” अर्थात् प्राचीन व्याकरणों के अनुसार पश्यती ही परमतत्त्व है परा वाक नहीं। इक्ष्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी में अभिनवगुप्त ने व्याकरणों के साथ साक्षात् किया है और समझाने का प्रयत्न किया है कि व्याकरणों को भी परा वाक की सत्ता माननी चाहिए।<sup>११</sup> धेनुराज न भी लिखा—“गद्वह्यमय पश्यतीरुष आत्मतत्त्वमिति वयाकरणा”<sup>१२</sup> अर्थात् व्याकरणों के मत में पश्यती ही परमतत्त्व है। वाक के तीन प्रकार का उल्लेख सुचरित मिश्र ने भीमासाइलोकवार्तिक की काशिका नाम्नी टीका में किया है—श्रेया हि वाच विभजते खैररी मध्यमा सूमा चेति। यथात्म—

गद्वह्य वतेषा हि परिणामि प्रधानवत ।

खैररीमध्यमासूमा वागवस्था विभागत ॥ —काशिका टीका पृष्ठ २४८

मन हरि ने परा वाक का उल्लेख क्या नहीं किया, उसकी सत्ता क्यों नहीं मानी, यह प्रश्न विचारणीय है। उनका उक्त वाक पर पदम (वाक्यपदीय १।१४८) इस वाक्य से स्पष्ट है कि वे वाक के केवल तीन ही अवयव मानते हैं। परा वाक की सत्ता भी उनके समय अवगत नहीं होगी। उपयुक्त श्लोक की व्याख्या में

६ वाक्यपदीय १।१४३ हारेव त में उद्धृत ।

१० इक्ष्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६१ ।

११ द्रष्टव्य वाणी, तृतीय भाग, पृष्ठ १६५ ।

१२ प्रयभिज्ञाद्वय, पृष्ठ ४३ अनुसार मरकरण ।



घटवारि वाक् परिमिता पञ्चानि' यह कृतमत्र उद्धृत किया है। इसमें यह स्पष्ट है कि ये चार भू स श्रवणत थे। यंगरी, मध्यमा और पंच गी क गाय परा वाक् की चर्चा श्रवण्य बन गयी थी। तभी यहाँ उपयुक्त मंत्र उद्धृत किया जा सकता है। मयम नीन भे मांने म उक्त मंत्र के घटवारि गंध का सामनेत्य नहा यत्ना।

इस प्रश्न पर पहलू क कुछ विद्वानों का ध्यान गया था। नागेश ने इन प्रश्न का एक उत्तर दिया था। उनका मत म भक्त हरि के त्रयी वाक् बनने का कारण यह है कि यंगरी, मध्यमा और पश्यती इन तीनों तंत्र प्रश्न प्रत्यय विभाग का ज्ञान होता है। यद्यपि पश्यती सौरभ्यवहार से सवया पर है फिर भी योगिया का उगम भी प्रकृति प्रत्यय का विभाग दृष्टिगोचर होता है। परा वाक् म प्रकृति प्रत्यय धाति का ज्ञान योगिया को भी नहीं होता। इसलिए अनु हरि ने परा वाक् का उगम नहीं किया और वाक् को केवल तीन श्रवण्य धारी माना

पश्यती तु लोकाध्यवहारातीता योगिनी तु तत्रापि प्रकृति प्रत्यय विभागा यगतिरस्ति, परायी तु नेति प्रथ्या इत्युक्तम्

—श्रीधर, महाभाष्य पञ्चानिवाक्ये ।

परतु नागेश की यह उक्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि भक्त हरि जय दत्त-ब्रह्म और गंध स जगत का विकास जस गूढ विचार सामने रख सकते हैं तो परा वाक् के नाम लने म उन्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी और परा वाक् की गता चाहे जिस किसी रूप म भी मानत हुए वाक् की त्रयी वाक् कहना असंगत होता। नागेश ने प्रमाण के रूप म 'स्वरूप ज्योतिरेवान परावागनपायिनी यह वाक्य उद्धृत किया है। परतु वाक्यपदीय की हरिबर्ति म 'यायमजरी म और स्यात्वादरत्नाकर म परावागन पायिनी के स्थान पर सूत्रावागनपायिनी पाठ मिलता है। वही-वही सूत्रमा क स्थान पर सया पाठ है। अस्तु नागेश की उक्ति से उपयुक्त प्रश्न का समाधान नहीं होता।

हेलाराज का ध्यान इस प्रश्न पर अवश्य गया होगा। क्योंकि एक स्थान पर वे पश्यती को ही परा वाक् के रूप म व्यवहृत करते हैं

सविच्च पश्यतारुपा परावाक् शब्द ब्रह्ममयीति ब्रह्मतत्त्व शब्दात् पारमायि-  
कान्तिमिच्छते। विवत् दग्गाया तु यत्परामना भेद

—हेलाराज वाक्यपदीय ३ द्रव्य समुद्देश ११।

इसमें तो इतना स्पष्ट हो जाता है कि हेलाराज के अनुसार भक्त हरि परा की सत्ता नहीं मानते और पश्यती को ही परम तत्त्व मानते हैं। परतु यह प्रश्न अभी बना हुआ है कि परा वाक् को स्वीकार करन म उनके सामने क्या कठिनाइया थी।

एक कठिनाई का संकेत उत्पल न किया है। उपर्युक्त के मत म यदि चपाकरण प्रत्ययभिन्नादेशन म गृहीत पश्यती के स्वरूप को मान लें ता उन्हें ईश्वर की भी सत्ता (उपगम) माननी पड़गी

पश्यती च नेश्वरप्रत्यभिन्नाक्त पायेन शब्दनात्मिका परमेश्वरशक्तिरिच्यने भवति ईश्वरोपगमप्रसगात् अपितु सूक्ष्मो वाच्याभेदेन स्थित वाचक शब्द इत्येव शब्दात्मासौ।

—शिवशक्ति २।३५ पृष्ठ ५८।

वैयाकरणभूषण के एक टीकाकार कृष्ण मित्र ने स्फोट को ही परा वाक माना है, परा वाक ही शब्दब्रह्म है। 'अत्र परावाक् स्फोट शब्देनोच्यते। सब शब्दब्रह्म इत्युच्यते' (कृष्णमित्र, वैयाकरणभूषण टीका, मैथुन्मित्रपट्ट पृष्ठ १)। परन्तु ऐसा जान पड़ता है परा वाक को वाक्यपनीय में स्थान न देने का मुख्य कारण भत हरि का 'प्रतिभावाद है। प्रतिभावाद पर आगे विवेचन किया जायगा। यहाँ केवल यह दिग्गलाना है कि भत हरि क मत से वाक का मूल प्रतिभा है वाग विकाराणा प्रकृति प्रतिनामनुपरति (वाक्यपदीय १।१८ हरिवृत्ति, पृष्ठ २७)।

व प्रतिभा, सत्ता और महासत्ता का एक ही तत्त्व मानते हैं।

तदभ्यासाच्च शब्दपूषक योगमधिगम्य प्रतिभा तत्त्वप्रमवा भाव विकारप्रकृति सत्ता साध्यसाधनगवितयुक्ताम् सम्पगवबुद्ध य नियता क्षेमप्राप्तिरिति।

—वाक्यपदीय १।१३२ हरिवृत्ति, प० ११८।

शैवागम में विश्व का विकास परा वाक से व्यक्त किया गया है। भत हरि विश्व का विवत प्रतिभा से मानते हैं। प्रतिभा से विश्व का विकास मानने पर उन्हें परा वाक् नाम की किसी अर्थ वस्तु के मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। शैवागम में भी परा वाक और परा सत्ता को एक ही माना गया है

चित्ति प्रत्यवमर्शात्मा परावाक स्वरसोदिता।

स्वातन्त्र्यमेतमुष्य तदश्वय परमात्मन ॥

सा स्फुरत्ता महासत्ता देवकालाविनेयिणी।

सया सारतया प्रोवता हृदय परमठिन ॥

उपलनारिका १३ १४।

भत हरि ने पर शब्द का आध्यात्मिक अर्थ में केवल एक बार प्रयोग किया है और उसे प्रतिभा के अर्थ में किया है। 'भेदानुशागमात्रच परस्मिन् अमेदे शब्दात्मनि सनिवेशयति (वाक्यपदीय १।११८ हरिवृत्ति प० १०५) टीकाकार वपम ने यहाँ परस्मिन् का अर्थ प्रतिभाहूयी शब्दतत्त्व किया है (परस्मिन् इति प्रतिभाहूये गदतत्त्वे—वृषभ प० १०६)।

गिबहृष्टिकार उत्पल और उनक अनुगामी अभिनवगुप्त आदि ने वयाकरणों द्वारा परा वाक के गृहीत न किए जाने पर जो आशेष लगाए हैं उन पर विचार करने के पूर्व कश्मीर शैवागम में गृहीत परा पद्यों की आदि का सर्वेण में उल्लेख यहाँ आवश्यक है।

## कश्मीर शैवागम में वाक्

शैवागम की दृष्टि में परमेश्वर ही गद राशि है। उसकी गविन भिन्न और अभिन्न रूप में विविध है। मातका के वर्गाष्टक म्द्र के गक्त्यष्टक हैं और पचास वण म्द्र की पचाम गविनर्या हैं। चागमो में प्रकाश गरीर वात्रे विमगामा भगवान का स्वर्ण शान्तामय

माना गया है।<sup>१३</sup> शवागम म वाक् का एक सूत्र सत्ता या सविन व रूप में स्वीकार किया गया है। शक्ति (शक्त्यद्वयवाद नहीं) के रूप में मानने का प्रधान कारण यह है कि कश्मीर के धामासवादी वाक् को पाणि शक्ति की तरह इन्द्रिय रूप नहीं देना चाहते। उनके मत में संपूर्ण ज्ञान और बोध सविनमय है। 'प्रकाश' और 'विमल' इन दो तत्त्वा में संपूर्ण विश्व आ जाता है। प्रकाश और विमल दो विभिन्न वस्तु नहीं हैं, किन्तु एक ही के दो पटल हैं। विश्व का वाच्य अक्षर प्रकाश है और वाचक अक्षर विमल है। वाच्य और वाचक में कोई भेद नहीं है।

न च वाच्य पथक जातु वाचकाद व्यवतिष्ठते।

—मानवीत प्र वाचिक प० ४०।

इसलिए 'अ' विमल से अभिन्न है, फलतः निर्वच्य है और स्व पर प्रकाशक है— इत्यं शिवात्मकविमलशपदादिति

शब्द स्फुटत्वत इह स्वपरप्रकाश।<sup>१४</sup>

### चार प्रकार की वाक्

वाक् के चार प्रकार के भेद की खोज अथवा प्राचीन है। ऋग्वेद का चत्वारि वाक् परिमिता पञ्चानि यह मन्त्र<sup>१५</sup> उपयुक्त भेद का आधार मान लिया गया है। परंतु चार से बढ़कर ऋषि का तात्पर्य करा था वह आज तक स्पष्ट न हो सका है। ब्राह्मण ग्रन्थों में चार प्रकार की वाक् का तात्पर्य मनुष्य की भाषा पशुभाषा की बोली पतिषा व कूजन और क्षुद्र जातुभाषा जैसे मरीच्युप शक्ति की त्रिभिन्ना—इन चार रूपों में बतलाया गया है।<sup>१६</sup> प्राचीन व्याकरण चार प्रकार की वाक् का अभिप्राय नाम आख्यात उपसर्ग और निपात के रूप में समझते थे। याम्य ने अपने समय में प्रचलित ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है।<sup>१७</sup> बहुत बाद में चार प्रकार की वाक् का विवरण परा पश्यती मध्यमा और वैगरी इन चार रूपा में किया जान लगा। महाभाष्यकार पतञ्जलि (५० पू० द्वितीय पाठान्ती) तक यह अर्थ स्वीकृत नहीं हुआ था। मुक्त एवा जान पटता है ये चार भेद पटन पहल तत्र ग्रन्थों में व्यवहृत हुए। उसका प्रचार बाद के उपनिषद् पर पटा और व्याकरण मत हरि भी इन मतों से प्रभावित हुए। परंतु भन हरि न परा वाक् का अर्थ मान मन्त्रों में नहीं किया। यत्र तीन पश्यती मध्यमा और वैगरी—की एव नवीर ध्याम्या प्रस्तुत वा जा तत्र ग्रन्थों में श्रुति वाक्यानां से बहुत दूर तक भिन्न है। शवागम के अर्थ जो समी मत हरि के यत्र हुए और प्रायः समी मत हरि के व्याकरण ज्ञान से परिचित है बगरी शक्ति की व्याख्या के लिए तत्रा की अथवा वाच्यपनीषदार के अर्थ क्रणी है। अक्षर ही के मत हरि के

१३ शरदपत्रिका विमलविमलान्ती लिख्य भाग, पृष्ठ १६६।

१४ शक्तिमान्त्र १३ पृष्ठ ४३।

१५ शरदपत्रिका ११६४।

१६ शरदपत्रिका ४।

१७ शरदपत्रिका १। परिशिष्ट

विपरीत परा वाक की सत्ता मानते हैं और पश्यन्ती आदि का विवेचन आगम की मायताग्रा के अनुसार करते हैं फिर भी वे अपने मन की पुष्टि के लिए वाच्यपत्नीय के अवतरण आदर के साथ उद्धृत करते हैं। अम्नु आगमा म वाक के चार भेद परा, पश्यन्ती, मायमा और वखरी स्वीकृत कर लिए गए और इनकी चर्चा इतनी प्रधिक हुई कि वाद का सम्पूर्ण सम्कृत साहित्य और लोक साहित्य उनके प्रभाव में आ गए। और नय वयानरणा ने भी परा का स्थान दत्त हुए चार भेद मान लिए।

## वैखरी

शवागम के अनुसार वाक का वखरी रूप त्रियाग्विन से परिचालित है। उच्छ्वासविन, जानसविन और त्रियाशविन ये तीन शवागम की आचारगिला ह। त्रियाग्विन का प्रतिनिधित्व वैखरी करती है। वखरी त्रियाशविनरूपा है। जिह्वा व्यापार वागिन्द्रिय का उपलक्षण है और यह विमश स्वभाव वाला है। सभी तरह के व्यापार या क्रियायें—विमश रूप के भीतर आ जाती हैं। वैखरी म न रूप मिलती है। एक सघोष और दूसरा अघोष। सघोष से यहाँ ता पय अय द्वारा श्रूयमाण से है जो दूसरे द्वारा स्पष्ट सुन लिया जाता है। अघोष से तापय यश उपागु से है अर्थात् एमा उच्चारण जो स्वतः सुनाई दे पर तु जो दूसरा को न सुनाई दे सक। सघोष और अघोष दोनों रूप गन्तानुबिद्ध होते हैं। स्वतंत्र वण के उच्चारण में सुनने जान की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक्त होती है। पद भी यदि उमम अतप वण हा, अच्छी तरह सुन जा सकता है। परन्तु वाक्य में श्रूयमाणानुबिद्ध अस्पष्ट रहती है क्योंकि बुद्धि वर्णों के सकलन और स्मरण की क्रिया में गलती रहती है इसलिए स्फुट श्रवण सम्भव नहीं। अतएव वैयाकरण भी वाच्यस्फा का बुद्धिश्राह्य ही मानते हैं।

वखरी मध्यमा का बाह्य प्रमाण है। प्रमाना का स्थान तरण अभिहनन रूप तो व्यापार है वखरी पहले उमका रूप धारण करती है पुन उन व्यापारों से सपादित गदरूप धारण करती है और श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य होकर भिन्न रूप से आभासित होती हुई तथा वेद अथवा ग्राह्य वस्तु के स्वरूप को छनी हुई सी परिस्पष्ट होती है। वखरी व्यापार रूप और कायरूप दोनों हैं।

अभिनवगुप्त ने सामान्य वखरी और विशेष वखरी के आचार पर वखरी के कई रूप माने हैं

वचन सप्तधा। तद्य यथा मध्यमारूपतत प्ररोहात्मक सामा यवसर्वात्मक तत्प्ररोहात्मक विशेषगद्वात्मक वखरीस्वभाव आवेगोचित विनेयवखरीरूप तत्प्रब ध विच्छेद च। —अभिनवभारती तृतीय भाग, पृ० ३०७

शवागम में गृहीत वखरी का उपयुक्त स्वरूप भक्त हरि के मत में मूल जाता है। वखरी गद का निवचन अभिनवगुप्त ने विपर गन्त म विद्या है जिसका अर्थ शरीर है।

विलख शरीर तत्रभया तत्पयत्त चेष्टा सपादिभृत्यथ ।

—अभिनवगुप्त, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविविधिविमानिनी भाग २ प० १८७

विशेष तार अथे तातृत र्गार ध्यनि व प्रतीक एते व कारण इगवा नाम वैपरी पडा होगा ।

## मध्यमा

अन्त ररण मन बुद्धि और महार सदागवाला है । मध्यभूमि म पुनरुत्प प्राणाधार म व विग्राम करता है । विमग दानि जब अन्त कारण को प्रेरित करती है तब यह शक्ति मध्यमा वाक कहलाती है । विमग दानि स प्रेरित अन्त कारण म विकल्पना नामक व्यापार पैदा होता है, जिगके भीतर मकल्प निश्चय और अनिमग व्यापार गृहीत है । उम समय वह विमगमयी वाक सत्प वस्तु (प्राप्त अथवा वाच्य और सकल्प करने वाल (ग्राह्य अथवा धातव) को स्पष्ट रूप स प्रम स प्रण करती है । चंद्र के घट देखने की प्रिया म इस घट को मैं धन देग रहा हूँ इस रूप म ग्राह्य और ग्राह्य दोना वा स्पष्ट भान होता है । चिन्तनप्रधान हान व कारण मध्यमा को चिन्तन शक्त स भी कहत हैं । इसलिए मध्यमा ज्ञानगति रूप भी मानी जाती है । ज्ञानगति दृच्छागति और प्रियागति व बीच की वस्तु है । मध्य म हीन के कारण मध्यगति के प्रतीक वाक को भी मध्यमा वाक कहते है ।

वशीर धवागम म मध्यमा ही विकल्प भूमि मानी जाती है । विकल्प के प्राण अभिलापलश हैं, विकल्प म ही वाचक का स्वरूप निहित है जो सत्ता अभाव रूप म होता है । किसी गन्त का सकेत आदि भी विकल्प भूमि म ही हाता है । अभिनवगुप्त के मत म जो गन्त मुनाई देता है, वास्तव म वह वाचक नहीं है । उसक पूव का मध्यमास्थित जो उसका स्वरूप है वनी वाचक है । क्याकि वाच्य और वाचक म यह वनी है तेसा अध्यास माना जाता है । स्वतक्षण का स्वतक्षणांतर म अध्यास सभव नहीं है । इमनिग शक्त वा जा गन्तरूप और प्रमिक रूप है वह मध्यमावस्था म ही स्फुट हा गया रहता है । श्रोगग्राह्य जा गन्त है वह मध्यस्थित शक्त रूप का एक विकसित या पल्लवित रूप है । विकल्प्य घट से बाह्यघट म कोई भेद नहीं होता । दोना का रूप एक ही माना जाता है । वही घटाभास देग आदि अथ आभासा व सत्तरे स्वतक्षणभाव प्राप्त करता है । यही बात ग द के विषय म ठीक है । वही शक्त स्फुरूप म पूण आभासित होन पर भी दूसरे अभासा स भेद करने के लिए श्रोत्रग्राह्य गरीर वाला माना जाता है । यही उसका स्वतक्षण है ।<sup>१८</sup>

अभिनवगुप्त के मत म स्मित मध्यमा का सूचक है क्याकि स्मित एक तरह का भीतरी सजल्प है जो मध्यमा का रूप है—

‘स्मित ह्यस सजल्परूपा मध्यमा सूचयति’ —

—अभिनवभारती भाग ततीय पृ० ३०७

## पश्यन्ती

पश्यन्ती म ग्राह्य और ग्राह्यगत क्रम देश और काल दृष्टि से यद्यपि सभव है, परन्तु वह स्फुट नहीं होता। क्याकि पश्यन्ती का विमश निर्विकल्पक होता है वह अत्रम है और इसलिए उसम विभाग सभव नहीं है। जिस तरह प्रसेवक (बोरा) अपने भीतर अनराशि को समेट रहना है उसी तरह पश्यन्ती मे भी ग्राह्य और ग्राह्यगत क्रम अत्र सकुचिन रहत ह। अत्र पश्यन्ती को सहतत्रम वाली कहत है। उसम शब्द अत्रर्नि मे रहत है। अत्र उसे सूक्ष्म भी कहते है। उसम रस सर जैसे पद और देवदत्ततुरगादि जैसे वाक्य क्रमहीन रूप म पिण्डीभूत से हा गये रहते है एक म मिले रहते है। जिस तरह सूत्र अधिक से अधिक भाव का अपने अंदर समेटे रहते हुए भी सूक्ष्म कहा जाता है उसी तरह पश्यन्ती का अत्रिजल्प भी सूक्ष्म माना जाता है। भृ हरि ने भी पश्यन्ती को 'प्रतिसहूतत्रमा और ममाविष्टप्रमशक्ति' कहा है।

पश्यन्ती को इच्छाशक्ति रूप माना गया है। मध्यमा नानशक्तिरूपा है और बखरी क्रियाशक्तिरूपा है। इच्छाशक्ति नानशक्ति और क्रियाशक्ति का अनुग्राहक है। वसे ही पश्यन्ती भी मध्यमा और बखरी का अनुग्राहक है। पश्यन्ती को बोध्य और बोध्यस्वभावा भी माना गया है। उसम वस्तु का अवमाम परिपूण रहता है। इच्छा शक्ति का प्रकाश रूप अत्रतिहृत होता है। इच्छाशक्तिमयी पश्यन्ती विद्याशक्ति और उसके प्रसारस्वरूप बुद्धि और इन्द्रिय वम को समेटती हुई निर्विकल्पक नाग का उद्बुद्ध करती है।

कश्मीर शैवागम की दृष्टि म पश्यन्ती म चि तन की भी सत्ता है। इसी लिए वह पश्यन्ती का परा वाक के रूप म नहीं स्वीकार करता

यत पश्यत्या प्रमाणोपपन्न चित्तमयत्वतत पश्यत्या परत्व शिवदष्टि-  
गास्त्रे निवारितम् ।<sup>१६</sup>

माय ही पश्यन्ती देश और काल से उमके मत म, सकुचित है और जमा कि उसका नाम (पश्यन्ती शब्द) से छन्नित होना है वह दश क्रिया अथवा देखने के व्यापार के कारण समक विषयगमित है। देश और काल से सकुचित वस्तु परिपूण नहीं हा सकनी। अत्र पश्यन्ती को परा वाक का महत्व नहीं दिया जा सकता।

शक्तान के किमी किसी आगम म पश्यन्ती को अत्र य परा वाक कहा गया है। परन्तु मामानन्द और उत्पल ऐसे स्थता म परा का पश्यन्ती म उपचार मानते है। श्रीकिरणसहिना म नाद विदु आदि के रूप म पश्यन्ती म परा का उपचरित रूप स्वीकन है।<sup>१७</sup>

पश्यन्ती को देश और काल से सकुचित इसलिए मानते है कि यदि पश्यन्ती देश और काल म अमकुचित मानी जाएगी तब मध्यमा म जो विकल्प होना है और

१६ इश्वरप्रदमिज्ञाविवर्तितविमर्शिनो, द्विनाय भाग, पृ० १६०

२० शिवदष्टि श।१५, और उम पर उत्पन का टीका।

के आघार पर नहीं गता है और न उस दग काल से सीमित माना है। अभिनवगुप्त ने यह सुझाव रखा कि यदि पश्यती को देग काल से सङ्कुचित नहीं मानेंगे तो मयमा और वैखरी में भी वाक को असङ्कुचित ही मानना पड़ेगा।<sup>१४</sup> इसलिए पश्यती को देग काल से सङ्कुचित ही मानना चाहिए। परन्तु यही तर्क शवागम की परा' के विरुद्ध भी रखा जा सकता है क्योंकि इस तर्क के अनुसार 'परा' की नियम असङ्कुचित आदि विगपताएँ वैखरी में भी आ जानी चाहिए। अभिनवगुप्त के मत में वाक को करण रूप में मानने पर वह कर्मोद्भव्यवग की वस्तु होगी इसलिए उसे क्त्वरूप (वक्ति) में स्वीकार करना चाहिए। परन्तु भत हरि ने स्वयं शब्द तत्त्व को अनादि निघनप्रज्ञा करण में प्रतिष्ठित किया है। इसलिए अभिनवगुप्त का उपर्युक्त आशय निवार है।

यान् क वयाकरण ने परा वाक को स्वीकार कर लिया परन्तु उन पर कश्मीर शवागम का प्रभाव न पडकर तत्रय यो का पडा। नागेग ने परा, पश्यती आदि का विवेचन तत्र यथा क आघार पर किया है जो प्राचीन व्याकरण सम्प्रदाय क मनया से मन नहीं राना।

## भाषा

### सस्कृत

सस्कृत का प्राचीन नाम भाषा था। बोलचान की भाषा होने से इसे भाषा कहते थे। भाष्यत इति भाषा। बाद के वैयाकरण निरम पाणिनि मुख्य है बकि सस्कृत से अथवा ठा स भाषा से लौकिक सस्कृत को अलग करने के लिए इसक लिए भाषा शब्द का व्यवहार करते थे। जब बोलचाल में अपभ्रंश भाषाएँ अपना घर करने लगीं तो उनसे पाणिनि की 'भाषा' को अलग करने के लिए सस्कृत शब्द का प्रचलन हुआ। अपभ्रंश शब्दों की प्रकृति प्रत्यय के भ्रमेला में डालने की आवश्यकता प्रारंभ में नहीं थी। एक तरह से वे असस्कृत थे। जिन शब्दों को प्रकृति प्रत्यय के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता था वे ही सस्कृत शब्द थे। और ऐसे शब्दों से गठित भाषा सस्कृत भाषा थी। सस्कृत शब्द सम्कार किया हुआ क अथ का व्यक्त करता है। यास्व ने सस्कार शब्द का उल्लेख किया है और भाष्यकार ने भी पदों के सस्कार का उल्लेख किया है। (सस्कृत्य सस्कृत्य पदानि उत्सज्यन् महाभाष्य १।१।१) सस्कृत का अर्थ गुठ की हुई भाषा नहीं है जैसा कि बहुत-से लोग समझते हैं। यह उन शब्दों की व्यवन करनी है जो प्रकृति प्रत्यय क द्वारा बनाए जा सकते हैं जिनकी सिद्धि की जाती है। भत हरि ने स्वयं सम्कार शब्द का प्रयोग किया है (शब्द ब्रह्मणो हि स्वरूपसस्कार माधुत्वप्रतिपत्यय वाचस्पतीय हरिवृत्ति १।१।१) यथ ने सस्कार का भाव स्पष्ट करते हुए कहा है कि किसी विगप या उन्वय का आधान यहा सस्कार से तात्पर्य नहीं है अपितु प्रकृति प्रत्यय आदि के विभाग से है। न विगपटोत्पत्तिरय सस्कार, अपितु प्रकृति

प्रत्ययादिविभागावाह्यानम (ईश्वरप्रत्यभिनाविवर्तित्विमर्शनी द्वितीय भाग, पृष्ठ १६३) कालिदास ने सस्कृत क लिए सस्कारवत्येव गिरा, (कुमारसम्भव १।२८) शब्द का प्रयोग किया है। इस पर भरिलनाथ ने लिखा है—सस्कारो व्याकरणजया गुद्धि । सस्कारपूतेन पर घरेष्य (कुमारसम्भव १।६०) । इसमें भी सस्कारपूत शब्द का उपयुक्त ही भाव है। सस्कृत शब्द का भाषा के अर्थ में व्यवहार वारंभीक रामायण में हुआ है। साथ ही सस्कृत से इतर भाषा का भी सबेत है। पतञ्जलि के समय में प्राकृत बोलचाल में आ गई थी।<sup>२८</sup> मत हरि के समय तक सस्कृत लोक जीवन से दूर जा पड़ी थी और इसलिए 'दबी वाक' मान ली गई थी। (वाक्यपदीय १।१५५) ।

### अपभ्रंश

सस्कृत के व्याकरण अपभ्रंश शब्द से उन शब्द समुदायों को चिह्नित करत है जिनके मूल (प्रकृति) सस्कृत शब्द रहे हैं। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ उनमें मत में सस्कृत से विनसित हुई हैं। अपभ्रंश के त्रिपय में वाक्यपदीय में कई उल्लेखनीय बातें दी गई हैं और अनेक तरह की विचारधाराओं का संकेत किया गया है।

मत हरि के मत में सम्स्कारहीन शब्द को अपभ्रंश कहते हैं। मत हरि ने सप्रहकार के एक वाक्य का उल्लेख किया है जिसमें सस्कृत को अपभ्रंश की प्रकृति माना गया है। शब्दप्रकृतिरपभ्रंश इति सप्रहकार (वाक्यपदीय हरिवर्त्ति १।१८८)। उनका मत में ऐसे अपभ्रंश की जिसका मूल सस्कृत न हो स्वतन्त्र सत्ता नहीं है (नाप्रकृतिरपभ्रंश स्वतन्त्र कश्चिद् विद्यते। सखस्यव साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृति ।—वाक्यपदीय १।१४८ टीका) ।

अपभ्रंश शब्द के बारे में चार मूल्यवान विचार मत हरि ने व्यक्त किए हैं—

(१) गुद्ध सस्कृत शब्द के उच्चारण के असाध्य से या प्रमाद से उमका अगुद्ध उच्चारण चल पड़ता है और वह कालान्तर में शब्द मान लिया जाता है। गो शब्द से गावी शब्द उच्चारण की अशक्ति या प्रमाद से चल पड़ा।

(२) बहुत से अपभ्रंश शब्द प्रतीक पद्धति पर और अनुकरण के आधार पर प्रचलित हो गए। जैसे सस्कृत में गोणी शब्द आवपन (एक विशेष प्रकार की धनी) के अर्थ में व्यवहृत होता था। गौ के लिए गोणी शब्द का व्यवहार संभवतः इसलिए होने लगा कि उसका धन गोणी के आकार में साम्य रखते थे या गोणी की तरह अधिन दूध धारण करने में समर्थ थे (गोणी वेय गो गौणीति बहुधोरधारणादिविषयावावपनत्वसामायादभिधीयते)।—वाक्यपदीय हरिवर्त्ति १।१४६) ।

(३) कुछ अपभ्रंश शब्दों की स्वतन्त्र सत्ता थी। अर्थात् उनकी प्रकृति का कोई

<sup>२५</sup> महाभाष्य १।३।१ महाभाष्यकार के समय में दृष्टि के लिए लोक में 'किसि' शब्द और दृश्य के अर्थ में 'दिसि' शब्द प्रचलित थे। लोके हि दृष्ट्यर्थे किति प्रयुज्यते दृश्यर्थे च दिसिम् महाभाष्य १।३।२। महाभाष्य में देव दिग्ग (देवता के लिये), आणवयति, वग्नि और वग्निभ्ये प्राट्टन शब्द मिलते हैं। 'स्वपादिपु' (१।१।६१) वार्तिक अपभ्रंश सुनि शब्द को सामने रखकर लिखा गया था। सपनि—सोवद।



पता नहा था। इह ही पीछे के वाकरण देशी गुरु द्वारा यक्त करने लग (प्रसिद्धेस्तु रुडितामापद्यमाना स्वातन्त्र्यमेव कचिदपभ्रगा प्रयुज्यन्ते—वाक्यपनीय हरिवर्ति १।१४८)।

अनभद्र ने इस पर टिप्पणी करत हुए कहा है कि सस्कृत के साथ साथ अ य भाषाओं की भी मट्टि हुई होगी। यवन न्याय म यवन भाषा ही पहले यनी होगी। यवनों के यहाँ भी पहले सस्कृत भाषा थी। बाद म अपभ्रंश का प्रयोग प्रारम्भ हुआ—  
यस उत्पना म काई प्रमाण नहीं है।

न हि तदानीं सस्कृतमेव सत्यं न भाषा तरमित्यत्र मानमस्ति; तत्तद्यवनाः  
सिन्धुतो तदीयभाषाया अपि तदानामेव सत्यत्वात्। न हि तेषामपि प्रथम  
सस्कृतेनैव व्यवहार पश्चादप्यत्र शरूपभाषाप्रवृत्तिरिति कल्पनाया मानमस्ति।

—अनभद्र महामाध्यमरीषोद्योतन प्रथम भाग पृष्ठ ४७

(८) सस्कृत गण के विकृत या विकृतिरूप वाच्य अपभ्रंश गण भी मूल सस्कृत गण की अपेक्षा कुछ विगिण्ट अथ रयत थे (तमपभ्रंशमिच्छति विगिण्टाथ निधगिनम—वाक्यपदीय १।१८८)। इसका अनुसार गो शब्द के लिए वाक्य म जितनी गायी गायी, गोता गोपोतलिका आदि शब्द प्रचलित थे वे सबल गौ अथ वी नहीं यक्त करत थे अपितु विशेष प्रकार या जाति के गौ अथ वी प्रकट करत थे। इनसे प्रत्येक के अर्थ म कुछ विशयता थी। भाषा विज्ञान के अनुसार गोपोतलिका का गौ गण था अपभ्रंश नहीं माना जा सक्ता। अवश्य ही लोक म गोपोतलिका गण गाय के किसी विगण नस्त के लिए प्रयुक्त होता होगा। पर गण समुदाय म वह प्रचलित नहीं था। इसलिए पतञ्जलि न लोक म प्रचलित मानत हुए उन गणों को अपभ्रंश गण माना।

अतः हरि ने अपभ्रंश के विषय म उक्त प्रवृत्ति का भी उल्लेख किया है जो आज भी किसी न किसी रूप म सजीव है। अतः हरि के समय म अपभ्रंश का व्यवहार इतना बढ़ गया था कि उही की प्रधानता हो गई थी। (तरेव प्रसिद्धतरेव व्यवहार) और जहाँ कहा गुरु (साधु) गण के प्रमाण म सहाय होता था उसका निणय उसके अपभ्रंश के आधार पर किया जाता था। (मति च शब्दप्रयोगात्समये यस्तस्यापभ्रंशस्तेन सप्रति निणय श्रियते।—वाक्यपदीय हरिवर्ति १।१४४) अतः एक ऐसा चयन गढ़ा हो गया था जो अपभ्रंश को ही सस्कृत का मूल (प्रवृत्ति) मानता था और सस्कृत का अपभ्रंश की विकृति मानता था। उनका मत म प्राकृत गण का अर्थ था साधु गण का समुदाय जो प्रकृत गण का है। विकार वाच्य म पण हुआ और स्वर नकार आदि विकृत भाषा म ही किए जात हैं। प्राकृत (मूल) भाषा म नहीं।

अनित्यवादिनस्तु ये साधना धमहेतुत्व न प्रतिपद्यन्ते मन्वममयादितङ्गानां साधुव्यवस्था मप्यन्ते ते प्रवृत्तौ नथ प्राकृत साधुना गन्दाना समहमाचक्षत। विकारस्तु पश्चादव्यवस्थापित य सभि ननुद्धिभि पुरथ स्वरसंस्कारा—  
दिभिर्निर्णायत इति।

कुछ लोगो के मन में मस्कृत भाषा कभी भी अमवीण (अपभ्रंश शून्य) नहीं थी। मस्कृत और अपभ्रंश का सदा से साय-साय व्यवहार होता आया है। दोनों अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। व्यवहार में एक शब्द का माधु और दूसरे का अपभ्रंश उसी रूप में कहते थे जैसे एक स्त्री को गम्पा और किसी दूमरी का अगम्पा मानते थे। यद्यपि दोनों की विशेषताएँ स्त्रीरूप में मग्न में एक ही रही हैं। और दोनों का गम्पव और अगम्पत्व केवल परम्परा में परिचालित है न कि स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक है (येवामपि च नव पुराकल्पे न च द्रव्ये वागसकीर्णा वदाचिदातीक्षेवामपि गम्पागम्पादिव्यवस्थावदिय साध्वसाधुव्यवस्था नित्यमविच्छेदेन शिष्टे स्मरते— वाचस्पदीय हरिवर्ति १।१५६)।

अपभ्रंश की अर्थवाचकता शक्ति के बारे में भी वाचस्पतीय में मुख्यरूप में तीन तरह के विचार व्यक्त किए गए हैं।

(१) अपभ्रंश शब्द साक्षात् वाचक नहीं है। उनके मुनन पर श्राता को शुद्ध शब्द का स्मरण होना है और तब अर्थ वाचक होता है। अतः अपभ्रंश शब्द माधु शब्द के व्यवधान से अर्थ प्रत्यायक होता है।

(२) अपभ्रंश शब्द प्रमिद्धिवातात् रूढ होकर बिना साधु शब्दों की सहायता के ही अर्थ बोधक होता है।

(३) जिस रूप में माधु शब्द साक्षात् अर्थ बोधक होता है उसी रूप में अपभ्रंश शब्द भी साक्षात् अर्थबोधक होता है। वाचकत्व की दृष्टि से साधु शब्द और अपभ्रंश शब्द में कुछ भी अंतर नहीं है।

सिद्धांत रूप में तृतीय मत ही व्याकरणियों का मान्य है। भाष्यकार ने भी माना है कि शब्द और अपभ्रंश दोनों से समान रूप से अर्थ का बोध होता है। केवल अंतर यह है कि साधु शब्द का प्रयोग अम्युक्त करने वाला है जब कि अपभ्रंश अथवा अपभ्रंश का प्रयोग प्रत्यवायकारक है।

समानार्थानुवाचगतौ शब्दनचापगतौ च धमनिप्रम नियते—महाभाष्य पम्पगातिव।

मन हरि ने कहा है—वाचकत्वाधिगोपो वा नियम पुण्यपापयो—वाचस्पदीय ३ सब धसमुद्देश ३०।

मन हरि ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि साधुता असाधुता का सम्बन्ध शब्दों की आकृति अथवा रूप में नहीं है। एक ही शब्द अर्थभेद से साधु भी हो सकता है और असाधु भी। जैसे गाणी शब्द आवपन का अर्थ में तो साधु है और गाय का अर्थ में असाधु माना जाता है (वाचस्पदीय १।१४६)

हरदत्त ने पदमजरी (प्रथम भाग पृष्ठ ८) में और भण्डारिणी दीक्षित ने शब्दकोश में साधुता के चार रूप दिए हैं

अनपभ्रष्टतानादिवद्गाम्बुदययोग्यता।

व्याजिया व्यञ्जनीया वा जाति कपीह साधुता।—शब्दकोश ५० २०  
शक्ति बन्धन के कारण किसी शब्द का अथवा उच्चारण अपभ्रंश या अपभ्रंश है।

उनसे रहित अनपभ्रष्टता है। वही साधुता है। महाभाष्य म अपगन्ता क लिा ते सुराहेलयो हलय इति कुवत परावभूयु—इम ब्राह्मण-वाच्य का उद्धरण है। हेलय हेलय म क्या अपगन्ता है इसम टीकाकारा म विवाह है। कुछ लोग मानत हैं कि प्लुत और प्रकृतिभाव इस वाक्य म होना चाहिए। (हे ३ अलय ह ३ अनय) पर वही दृष्टा है। जो लाग प्लुत को वभाषिक मानत हैं उनक मन म यहाँ अपगन्ता पद का द्वित्व करने की अपेक्षा वाक्य का द्वित्व कर देना है। कुछ लोग हेरय (हे अरय) म र क स्थान मे ल श्रुति हाना ही अपशब्दता मानत हैं। अनपथ ब्राह्मण १२।१२ २४ म हे लयो हे लव ऐसा पाठ है। इधर हाल ही म डाक्टर वामुदेवगरण भद्रवाल न हलय शब्द पर नवीन प्रकाश डाला है। उनके मन म इतु ववीनामयना का एक प्रतिष्ठित देवता था। ववीलोन शब्द ववा और इल्लु स बना है जिसका अर्थ स्वयं द्वार था। इल्लु शब्द सभी समेटिक भाषाभाषा में है। हिंदू म एल और कनाइट म इतु फोनीसी म एल केडियन म इतु और अरबी म इलाह है और सब म इसका अर्थ ईश्वर है। ववीलोन वाल युद्ध म अपन देवता को पुकारत हुए इमी शब्द का उच्चारण करते हाने जिस पत्तजलि आदि ने हलय के रूप म ग्रहण किया है। हेलय हे अरय का अपभ्रंश नहीं है। (द जरनल आफ द यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी वाल्यम २३ पाठ ११२, १६५०)।

अपशब्द को साधु शब्द के समानार्थक माना गया है। (अपगन्तेहिलाक प्रयुज्यत साधु शब्दसमानार्थक—कथट मन्भाष्य ३।१।८) किंतु व्याकरण अपशब्द का अ वाचयान नहीं करत और न उसे साधु शब्द क पर्याय ही मानत है। नागेश के मन म व्याकरण की दृष्टि से शब्द का जरा सा भ्रंश अनपगन्तता है (अपशब्दत्व व्याकरणानुगत—शब्दस्येपद् भ्रंशन एव प्रतिष्ठम) —नागेश पस्पशाह्निक पठ २३ गुरुप्रसाद) अथवा अनदिता साधुता है। जिस शब्द के आदि का पता नहीं है जो अनन्तकाल स जिस रूप म आ रहा है वही उसका साधुरूप है। जो गन्त पीत्येय सकेत का रूप रखते है व अनदितासाधुता के रूप म गृहीत नहीं हो सकत।

अथवा अम्युदय पीण्यता साधुता है। जिन शब्दों के उच्चारण म अम्युदय होता है वही साधु शब्द हैं।

अथवा साधुता एक तरह की जाति विधेय है। जिस तरह रत्ना को बार बार पहचानने से उनकी शुद्धता पहचानने की योग्यता आ जाती है उसी तरह शास्त्र क बार बार परीक्षण से विद्वाना को साधु गी का पहचान हो जाती है। साधुता एक तरह स जाति विधेय है।

यह चारों प्रकार की साधुता निर्दोष मानी जाती है और व्याकरणगम्य है। इसी तरह असाधुता भी चार प्रकार की है। अपभ्रष्टता सादिता प्रत्ययामयाग्यता और तदवच्छेक जातिविधेय।

टि घु आदि सना गन्त न तो साधु मान जाते हैं और न असाधु। किसी किसी के मन म अनपभ्रष्टरूपसाधुता उनम भी है। अस्य आति सौत्र निर्देश और कुत्व कम्मान भवति आदि भाष्य क वाक्य इसम प्रमाण हैं।

## सज्ञा शब्द

वाक्यपदीय में सज्ञा शब्द के विषय में कई तरह के विचार हैं। लोक में देवदत्त शब्द सज्ञा शब्द प्रचलित है। देला जाता है कि केवल दत्त कहने से देवदत्त का, कवन मामा कहने से सत्यमामा का बोध हो जाता है—ऐसा कस होता है? क्योंकि सज्ञा के एक देश का जैसे देवदत्त में देव का लोप किसी शास्त्र में विहित नहीं है और केवल दत्त सज्ञा भी नहीं की गई है। पुन दत्त आदि सज्ञा किसी दूसरे की भी हो सकती है। अतः दत्त शब्द देवदत्त का बोधक कैसे होना है? यह प्रश्न कद रूप में सुनभाया जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि शब्द-स्वरूपों का अर्थ सभी अवयवों के साथ सभी प्रकार के सज्ञा के साथ समकाल संबन्ध होता है। जिस तरह समुदाय अर्थात् पूरा शब्द सज्ञा का बोधक है उसी तरह उसका अवयव भी सज्ञा का वाचक है। अतः शब्द का एक देश भी सम्पूर्ण का अर्थ प्रत्यायक है और इसलिए दत्त शब्द भी देवदत्त का वाचक है। (वाक्यपदीय २।३५६) इन पक्ष में दादा माने जाते हैं। यदि एक देश (अवयव) को भी प्रत्यायक माना जाएगा तो वर्णों का अर्थ चान मानना पड़ेगा। देवदत्त शब्द का एक वर्ण भी देवदत्त अर्थ को कहने लगा। फिर समुदाय से अलग हाकर उसमें वाचकता भी नहीं आ सकेगी। अतः एक देश से अवयव एक देश के तुल्य में सज्ञा का प्रत्यायन सम्भव नहीं है।

इसलिए दूसरे आचार्य मानते हैं कि देवदत्त, देवदत्त शब्द बार बार सुनते रहने पर कभी केवल एकदेश दत्त आदि के भी सुनने पर पूरे शब्द (देवदत्त) की स्मृति आ जाती है। अतः सज्ञा शब्द का एकदेश, स्मृति के सहारे समुदाय का अर्थ का अभि व्यक्त करते हैं। इस पक्ष में यह दोष माना जाता है कि सघात के अवयवों में बँट जाने पर अवयवों से स्मृति सम्भव नहीं है क्योंकि स्मृति सदसदधान से होती है। सघात या समुदाय से ही सादृश्य सम्भव है, छिन्न भिन्न सघात से सम्भव नहीं है। दूसरी बात यह कि स्मृति प्रतीयमान वस्तु (देवदत्त) का अभिधायक नहीं हो सकती। जो कर्णोद्भूत गोचर होता है वही अभिधायक होता है जो प्रतीयमान है वह नहीं।

अतः तीसरा मत, जो सिद्धान्त के रूप में माना जाता है यह है कि सज्ञा शब्द के जो अवयव हैं वे एकदेश के तुल्य (एकदेशस्वरूप) हैं। वे अनुनिष्पादी (नातरीयक) हैं। और समुदाय के समीप (गुणो) से युक्त हैं। इसलिए देवदत्त शब्द जिस सज्ञा को बतलाता है, दत्त शब्द या देव शब्द भी उसी सज्ञा को बतला सकता है। यह ठीक है कि देव शब्द देवता अर्थ को भी कहता है और किसी (देवदत्त) से अर्थ व्यक्त का भी वाचक हो सकता है इसी तरह दत्त शब्द क्रिया शब्द भी हो सकता है, सज्ञा शब्द भी हो सकता है फिर भी शब्द सामर्थ्य से ये नियत अर्थ वाले मान लिए जाते हैं। अतएव शास्त्र में लोप आदि काय उनके किये जाते हैं। देवदत्त शब्द से स्वतंत्र देव (देवता बोधक) और दत्त (क्रियायक) अनुनिष्पादी नहीं होने के कारण देवदत्त शब्द के अवयव के रूप में गृहीत नहीं हो सकते। ज्येष्ठा के लिए



तरह साम्प्रतीय वृद्धि आदि सज्ञायें भी मनी तरह के अर्थ प्रकाशन में सम्यक् है परन्तु दूसरी सज्ञायों से भेद दिखाने के लिए और व्यवहार में मुविधा के लिए नियम कर दिया जाता है कि आदव की ही वृद्धि सना मानी जाए। जिस तरह से विशेषण विनेष्य में नील उपलभ नीलादि योग कोई पुष्ट नहीं करता स्वाभाविक है उनी तरह वृद्धि आदि सनागत्या का भी सबध स्वाभाविक है कृत्रिम नहीं।

व्यवहाराय नियम सज्ञाना सज्ञानि बवचित ।

नित्य एव तु सम्बधो डित्यादिषु गवादिबत ॥

बद्ध यादीना तु गास्त्रेस्मि द्यवत्पवच्छेद लक्षण ।

अकृत्रिमोऽभिसम्बधो विनेषणविनेष्यवत ॥

—वाक्यपदीय २।३६६, ३७० ।

## सज्ञाशब्द के प्रवृत्तिनिमित्त का विचार

सज्ञाशब्द के प्रवृत्तिनिमित्त के विषय में भाष्यकार ने यह माना है कि प्रायमिक रूप के सज्ञी के गुण और त्रिया सज्ञा शब्द के प्रवृत्तिनिमित्त होगे। (कश्चित् प्रायमकल्पिको द्वित्यो डाम्भिट्टश्चेति । तेन कृता त्रिया गुण वा य कश्चित् करोति स उच्यते डित्यत्व त एतडडाम्भिट्टत्व त एतत्—महाभाष्य ५।१।११६) प्राथमकल्पिक में वृत्ति कैसे होगी इस पर भाष्यकार ने विशेष प्रकाश नहीं डाला है केवल यह कहा है कि जस उसका (सना शब्द का) प्रयोग होता है वैसे किसी तरह उसमें वृत्ति भी हो जाएगी (अथवा तस्य काश्चित्क प्रयोग एव वृत्तिरपि भविष्यति। —महाभाष्य ५।१।११६)

मनुहरि के अनुमान सनागत्या के प्रवृत्ति निमित्त उनके स्वरूप है। सभी सना शब्दों के प्रवृत्तिनिमित्त उनके स्वरूप ही होते हैं। वही तो उसमें अर्थ का सान्निध्य भी निमित्त रूप में रहता है और कभी-कभी अर्थरूप भी स्वरूप निमित्त होता है। एकाक्षर सना ही या बनी सना हा इस विषय में उनमें भेद नहीं है। शास्त्र में मनुहरी सना करने के कारण यह अनुमान होता है कि उनके शब्दस्वरूप ही प्रवृत्ति निमित्त है और उनके अर्थवाचक का प्रत्यायक है। अनुमान का रूप तीन रूप में देखा जाता है। आवृत्ति के रूप में, शब्दों के रूप में और शक्तिभेद के रूप में। एक ही सज्ञा शब्द की दो बार आवृत्ति की जाती है। एक के द्वारा स्वरूप निरूपित सज्ञी का जान होना है और दूसरे के द्वारा अर्थवाचकनिबन्धन जान होता है। सादृश्य के कारण आवृत्ति का अनुमान होता है। अर्थवाचक दो बार शब्द का उच्चारण हुआ है इसी का अनुमान करते हैं। उनमें एक से स्वरूप से आच्छादित सज्ञी का जान होना है। दूसरे से अर्थवाचकनिबन्धन प्रतिपत्ति होनी है। अर्थवाचक वही एक शब्द दो शक्तियों में उच्चरित हुआ है ऐसा अनुमान करते हैं। इनमें एक से सज्ञी की प्रतिपत्ति और दूसरे से अर्थवाचक की संगति होनी है।

कथन ने प्रवृत्तिनिमित्त के प्रश्न को दो तरह से सुलभाया है। उनके मत में शब्द के स्वरूप में अर्थ का अध्यास कर यह डित्य है एसा सना सज्ञि सम्बध करते

है। शब्द स्वल्प व घाग से त्रित्य शब्द का त्रिय तरह द्वि व अथ म व्यवहार माना है उसी तरह शब्दस्वरूप अथ म भावप्रत्यय माना है। कुछ लोग मानते हैं कि द्वि व घागि सनी म भी जाति रहनी है। उत्पत्ति त तवर अथ तव कुमार यौवन घादि शब्दस्याभेद म भिन्न द्रव्य म समवाय सम्प्र ध स रने वाची जानि द्वित्य म है ही जिसके कारण वाचक द्वित्य का युवा भवस्था म देगन पर यह यही द्विथ है एमी प्रतीति हाती है। घटी जानि सनागठ की प्रवृत्तिनिमित्त है उमी म प्रत्यय माना है। यहछा शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त गठ स्वल्प भी माना जाता है (कण्ट महाभाष्य ५।१।११६)।

कुत्व घागि व विषय म कण्ट ने लिखा है कि शब्द और अथ म अथ मान कर सनी व सनास्वरूप म प्रत्यय का अघ्यास माना है। त्रिमी किमी व मन म सनासनि सम्बन्ध म प्रत्यय होता है (कुत्वमित्यादी सना स्वरूप सनिध्यव्यस्त प्रत्यय अघेतु सनासतिसम्बन्ध इत्याहु —कण्ट महाभाष्य ५।१।११६) नानात्न सत्त्व योगपद्यत्व जस शब्द म उनका अथ प्रवृत्तिनिमित्त माना है और उसी म प्रत्यय होता है (नागेण ५।१।११६)।

### सज्ञा शब्द के चार प्रकार

व्याकरण गाम्त्र म सज्ञा गठ चार रूप म गहीत हाते हैं—(१) कृत्रिम रूप म (२) अकृत्रिम रूप म (३) कृत्रिम और अकृत्रिम उभयरूप म और (४) अकृत्रिम का कृत्रिम रूप म।

शास्त्रीय परिभाषा जिन सज्ञाओं की दी गई है व कृत्रिम हैं और कृत्रिमरूप म गाम्त्र म व्यवहृत है। जस कम्प्यण ३।२।१ मे कम पारिभाषिक है परन्तु कनरि कम व्यतिहारे १।३।१४ मे अकृत्रिम का ग्रहण है। व्यतिहार की यही कृत्रिम सज्ञा उपयुक्त नहीं है। अत कम भी लौकिक कम है पारिभाषिक नहीं। कन्तु बरणयोस्ततीया २।२।१८ म कण्ठ शब्द कृत्रिम सज्ञा है जबकि गन्तवरकलताअव्ययमेधम्य करण ३।१।१७ म करण शब्द अकृत्रिम है। सत्या विषयक सूत्रो म लौकिक और शास्त्रीय अकृत्रिम और कृत्रिम दावा तरह के सज्ञा शब्दों का निर्वाह हो जाता है उसे बहुगण बहुवृत्ति सख्या १।१।२३ म सरमा शब्द कृत्रिम और अकृत्रिम दावा रूप से समानरूप म गहीत है। कभी कभी लौकिक अकृत्रिम सज्ञाशब्द शास्त्रीय कृत्रिम सनागठ का प्रत्यायक माना है जैसे एकश्रुतिदूरात सम्बुद्धो १।२।३३ म सम्बुद्धि पद लौकिक अकृत्रिम होता हुआ नो कृत्रिम शास्त्रीय कृत्रिम सम्बुद्धि पद का भी प्रत्यायन होता है (वाक्य पत्नीय २।२५६ २७७)।

### सज्ञा-सज्ञी शक्ति के अवच्छेदक

जिस तरह एक ही वस्तु निमित्त भेद से भिन्न भिन्न हो जाती है उसी तरह सनामनिसम्बन्ध भी निमित्त भेद से भिन्न भिन्न भासित हाता है। लोक म बुद्धि प्रकल्पित भेद को मान कर सान की अगूठी (गुवणस्य अगुलीयकम) कहते हैं भेदनिबन्धन पट्टी

विभक्ति का प्रयोग करते हैं। इकोयणचि ६।१।७७ म भी इकारादि चार की एक सना है। यकारादि चार की यण सना है। यहाँ भी सनी से सना भिन्न रूप है। इनम एक या यण उच्चारण के कारण फमश स्यानी या आदश नहीं है अपितु उनस प्रत्यायित सनी काय के पात्र होत ह। भाव यह है कि वद्धि शब्द सना नहीं है अपितु वद्धि शब्द स प्रत्यायित जो वृद्धि शब्द वह सना है इसी तरह आदम् शब्द स प्रत्यायित जा आदैच् व सनी हैं।

वद्धयादयो यया शब्दा स्वरूपोपनिबधना ।

आदच प्रत्यायित शब्द सम्बन्ध याति सनिभि ॥ —वाक्यपदीय १।६०

सनी के सम्बन्ध से पहले सना अपन स्वरूप की चोतिका हाती है और इसलिए पठो और प्रथमा विभक्ति का निमित्त होती है। सजा शब्द म प्रथमा विभक्ति का व्यवहार किया जाता है क्योंकि स्वरूप से अविच्छिन्न होने के कारण अथवत्त्व है। सोऽयम इस रूप म सनी के द्वारा शक्त्यवच्छेदलक्षण सम्बन्ध नियमित होता है। जस गोवा हीक सिहा माणवक जस वाक्या म शक्ति का अवच्छेद किया गया ह। वाहीक शब्द के द्वारा विगिष्ट गा का और पुरुष शब्द के द्वारा सना शब्द का शक्त्यवच्छेद किया गया है। (वाक्यपदीय १।६७ ६८)

## सजा शब्द और अनुकरण शब्द में भेद

सजा शब्द और अनुकरण शब्द म कुछ दूर तक साम्य है। अनुकरण शब्द भी सजा शब्द की तरह स्वरूप का प्रदायक है। सजा शब्द और अनुकरण शब्द म भेद यह है कि अभिधेय के उच्चारण किय जान पर अनुकरण शब्द है। सजा के लिए अभिधेय प्रत्यायक होना है उच्चायमाण नहीं। (अतएव अनुकरण शब्दात् सजा शब्दस्य विधेय स्पष्टो भवति। उच्चायमाणे मिधेयेऽनुकरणम्। सजायास्तु प्रत्याय्यमवा मिधेयम् नोच्चायमाणमिति—वपभ—वास्यपदीय टीका १।६६ पृष्ठ ६८)

इम भाव को सग्रहकार न भी व्यक्त किया है

न हि स्वरूप शब्दाना गोपिण्डादिवत्करणे सनिविगते । तत्तु नित्यमभिधेय मेवाभिधानसनिवेशे सति तुल्यहवत्त्वादसनिविष्टमपि नमुच्चायमाणत्वेना वसोयते ।

मग्रह वास्यपदीयवृत्ति म भत हरि द्वारा उद्धृत १।६५ पृ०६६ ७०

गोरित्ययमाह इत्यादि अनुकरणात्मक वाक्या मे केवल स्वरूप वाच्य का निर्देश रहता है। उनम अवयवा के निर्देश की भावना नहीं रहती। क्योंकि अवयवा म काय (प्रत्यय आदि) नहीं हान। जमे अग्नेऽङ्ग म अग्नि शब्द स प्रत्यय होता है न कि अग्नि शब्द के अवयवा स। ठीक यही बात अनुकरण शब्द के लिए भी है। यदि अनुकरण शब्द म भी अवयवनिर्देश माना जाएगा तो वे अलग अलग प्रमहीन जान पड़ेंगे। गी इम अनुकरण शब्द म स्थित अकार से अकार के अकार की प्रतीति हान लगती।



अनुकरणस्वपि यद्यवयवा उपादितता ते पृथगनियतत्रमा प्रतीयेरिति ।  
गौरित्यप्रमाहेत्यत औपगवमित्यत्र स्थिता औपारादय प्रतीयेरन ।

—वपम वावमपदीय टीका १।४४ पृष्ठ ५६

अनुकरण गण प्रत्यायव होने के कारण सना है और अनुकाय प्रत्यायव होने के कारण सनी है । सना कभी सनी को नहीं छाडती (न सना सनिन व्यभिचरति— महाभाष्य ५।२।५६) जिस तरह गो आदि गण सास्ना, लागूल वाले अथ (व्यक्ति) को जतात हुए उम अथ जाने क अथ म मनुप प्रत्यय साने है जत गोमान् उमी तरह अनुकरण श म अथन अथ अनुकाय की बताते हुए उसक द्वारा अनुकाय वाले के अथ म छ प्रत्यय सात है । अनुकरण श जाति समवेत अथ को यस्त करता है । यह जाति शब्द है । यह बात लकार वार्तिक म (भाष्य म) कही गई है । (वपम— महाभाष्य ५।२।५६)

भट्टोजि दीक्षित ने भी अनुकरण शब्द को जाति शब्द माना है । अनुकरण गण्दाश्च जाति गण्वा एव तत्रानुकायनिष्ठजाते प्रवृत्तिनिमित्तत्वात् ।

—शब्दकोस्तुभ, १।१।१

## अनुकरण शब्द और आम्नाय शब्द में भेद

अनुकरण गण का आम्नाय शब्द से भेद स्वर, वर्णानुपूर्वी, देग और काल की दृष्टि से किया जाता है ।

आम्नायशब्दानामायभाय स्वरवर्णानुपूर्वीशकालनियतत्वात् ।

वार्तिक ५।२।५८

अनुकाय और अनुकरण म अथभेद स भेद होता है । इस दृष्टि स आम्नाय गण और अनुकरण गण म भेद है ही । स्वर आदि की दृष्टि से भी भेद है । आम्नाय शब्द के स्वर नियत ह जबकि अनुकरण शब्द एक श्रुति रूप म नी देने जाते है । अस्यवाम गण आम्नाय म प्रत्ययस्वर से अतोदात्त है । अस्य भी अतोदात्त है । वाम नी अतोदात्त है । अनुकरण अस्यवाम शब्द प्रातिपदिकस्वर स अतोदात्त है । इसम दो उदात्त न होकर एक ही उदात्त है । क्याकि यहा अनुकरण के रूप म अस्यवाम शब्द एव पण है । आम्नाय गण म वर्णों का क्रम नियत रहता है । अनुकरण गण म उनका उच्चारण व्युत्पन्न रूप म करने पर भी अनुकाय की प्रतीति हा जाती है । आम्नाय गण के उच्चारण के लिए देग काल नियत हैं । इससान म आम्नाय नहीं पटना चाहिए अभावस्था को अध्ययन नहीं करना चाहिए आदि । जब कि अनुकरण गण के लिए देग काल का बंधन नहीं है । आम्नाय गण म पद के एक देग का तथा विभक्ति का लोप भी देखा जाता है अनुकरण गण म विभक्ति के अभाव म उनका लोप सम्भव नहीं है । नागेश मानत है कि आम्नाय शब्दों के श्रवण स गूढा का पापश्चित्त होता है । जब कि अनुकरण गण सुनने से उह प्रायश्चित्त नहीं हाता (अनुकरणश्रवण गूढस्य प्रायश्चित्त्वाभाव इत्यपि बोध्यम् ।—नागेश, महाभाष्य ५।२।५६) ।

## अनुकरण शब्द और अपशब्द में भेद

अनुकरण शब्द में और अपशब्द में भेद यह है कि शिष्ट अनुकरण माधु माना जाता है। अशिष्ट अनुकरण न तो दोषजनक माना जाता है और न अभ्युत्थजनक। जबकि अपशब्द का प्रयोग अथबोधक होते हुए भी प्रत्यवायजनक माना जाता है। 'अविरविक्रयाय (महाभाष्य ४।१।८८) शब्द में अवि शब्द, कण्ठ के अनुमात्र, विभक्त्यन्त रूप में अनुकरण है। अनुकरण हाने के कारण समास होने हुए भी विभक्ति का लोप नहीं हुआ है।

अविरविक्रयायेनेति । अथवा चिरित्प्रस्य विनक्त्यन्तस्यानुकरणमविरिति । ततो नुकार्येणार्थेनाथवत्त्वाद्वा या विभक्त्यन्तस्तद्यते तस्या द्वन्द्वान्तर्भावाल्लोपः, न तु पूर्वस्या अनुकरणत्वात्सुपूर्वाभावात् । यथास्वयामाभीयमिति पठ्या लुगभावः । अथवा भाष्यकारवचनप्रामाण्यादस्य साधुत्वम् ।

—कथं महाभाष्य ४।१।८८

## व्याकरण

शिष्ट प्रयुक्त माधु शब्दों का अन्वयान व्याकरण करता है। (शिष्टप्रयोगानुविधायि इव शास्त्रम्—महाभाष्य दीपिका प० १२६) अपभ्रंश के भी व्याकरण शब्द में वने किन्तु स्मृत के व्याकरण व्याकरण का लक्ष्य परिनिष्ठित शब्दों का ही मानते थे। भत हरि न व्याकरण शास्त्र को आगम माना है और इसके प्रति अत्यन्त मनोरम भाव व्यक्त किया है। विद्या का अधिष्ठान वेद है। वह एक है। पर उसके परिकल्पित भेद किए गए हैं। मन्त्रद्रष्टा ऋषिया ने साधारण ज्ञान वाले प्राणी के लिए वेद का कई रूप में अन्वयान किया है। वह लोक का प्रकृति (मूल) है। वही लोक का उपलब्ध है। लोक की सभी व्यवस्थाओं का विधाता है। वह प्रणवमय है। वह सव शब्द अथ की प्रकृति है। सभी तरह के विद्याभेद उसी से उद्बुद्ध हुए हैं। विद्याभेद ज्ञान के हेतु हैं। उनमें पुष्प का सम्भार होता है। उनकी बुद्धि का उनके ज्ञान का संस्कार होता है। ये विद्याभेद वन के अंग के रूप में प्रसिद्ध हैं और उन गंगा के भी उपांग हैं जिनसे स्वान पाक, योनि आदि का ज्ञान होता है। उपाङ्गेष्वथ स्वानविज्ञानपाकयोनिज्ञानादयो विद्याभेदा प्रसिद्धा लोके—वाक्यानीय हरिविनि १।१०

इन अंगों उपांगों में सबप्रथम स्थान व्याकरण का है (प्रथमं च दत्तामगमा ह्युर्वाकरणं युधा—वाक्यपदीय १।११)

वेद शब्दमय हैं। व्याकरण शब्दों का ही सम्भार करता है। इसलिए शब्दों के साक्षात् उपकारी होने के कारण वेद का समीपी है। इमीति अक्षर मसाम्नाय के ज्ञान मात्र से सब वेद की पुण्यफल प्राप्ति कहा जाता है। इसलिए अंगों में व्याकरण को प्रधान माना है।

शब्द समूह को भत हरि न वाणी का परमरस कहा है (यो वाच परमोरस) वह पुण्यतम ज्योति है। व्याकरण उस परम ज्योति का ऋजु भाग है। स्वल्प और परल्प के चोतक तीन तरह के प्रमाण होने हैं। एक अग्नि का प्रमाण। दूसरा पुष्प



शब्दवती के रूप में शब्दानुशासन कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द का नामन उल्लेख कर प्रकृति प्रत्यय आदि के रूप में उनका मस्कार किया जाता है। पाणिनि आदि सूत्रकारों के लक्षण इसी काटि में आते हैं जहाँ 'अनेकक इम सूत्र के द्वारा शब्दानुशासन कहा जा रहा है उसे हम शब्दवती अनुशासन पद्धति कह सकते हैं।

पर तु सहस्रांशे शब्द है जिनके बारे में अनुशासन उपलब्ध नहीं है। ऐसे भी बड़ा शब्द है जिनमें लक्षण ठीक नहीं बैठते फिर भी वे साधु माने जाते हैं। ऐसे शब्दों का अनुशासन गिण्टा के व्यवहार के आधार पर मान लिया गया है। यद्यपि शब्दों के उनका उल्लेख विधि के रूप में नहीं है फिर भी वे शब्द अपने प्रकृत रूप में शास्त्रकार का इष्ट हैं। इसीलिए एम वाक्य मिलते हैं। इष्टमेवतदगोनर्वायस्येति—महाभाष्य ३।१।६२। इस तरह के अनुशासन को भन हरि ने अशब्दा स्मृति कहा है।

हमारे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आचार्यों अथवा शिष्टों द्वारा दो प्रकार से व्याकरण अथवा शब्दानुशासन आरम्भ किया गया। पहला उपनिर्देश के द्वारा और दूसरा उपाधनिर्देश के द्वारा। उपनिर्देश का भाव निपातन जैसी प्रक्रिया से है। बहुत से शब्द हैं जिन्हें पाणिनि आदि ने निपातन से सिद्ध किया है अर्थात् वे शब्द जैसे मुन जाते थे जस लाक में प्रचलित थे उनका उसी रूप में उल्लेख कर दिया गया। प्रकृति प्रत्यय का विचार उनका बारे में ठीक से नहीं किया गया। निपातन के बारे में निम्न लिखित श्लोक प्रसिद्ध हैं—

धातुसाधनकालानां प्राप्स्यथ नियमस्य च।

अनुबन्ध विचारणा रुढयथ च निपातनम् ॥

—कण्ट ५।१।११४ में उद्धृत

उपाधनिर्देश में तात्पर्य विधि से है प्रातिपदिक आदि से प्रत्यय आदिका विधान कर शब्दों के साधुत्व प्रदान में है। शास्त्रकारों ने प्रकृति और प्रत्ययों में अनुबन्ध की कल्पना विशेष दृष्टि से की है। प्रकृति के प्रकार आदि अनुबन्ध उपग्रह आदि के सङ्घर्ष की दृष्टि में किए गए हैं। घञ् अण आदि प्रत्ययों में अनुबन्ध वृद्धि उदात्तादि स्वर आदिके मकेत के लिए किए गए हैं। वस्तुतः गिण्टा जना को निमित्त मध्य समुदाय को प्रकृति प्रत्यय आदि की आवश्यकता नहीं होती। शब्दों की ठीक पहचान उन्हें लक्षण व्यवहार से पर-पर्याय मिल जाती है। इनाराज के अनुनासिक शिष्टों की प्रतिभा निमल रहती है। उनकी बुद्धि सब की यथाथरूप में ग्रहण करने में स्वभावतः ममय होती है। इसीलिए उन्हें प्रकृति प्रत्यय के उपलक्षण की आवश्यकता नहीं होती। उनके लिए उपाधनिर्देश (निपातन से शब्द सिद्धि) भी अनवश्यक है।

जब ऐसी बात है गिण्टा के व्यवहार से ही काम चल जाएगा, शब्दानुशासन की व्याख्यायी आदि व्याकरण के यों की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि गिण्टा प्रयोगों का कोई उल्लेख नहीं करे इसलिए उन गिण्टों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का ही व्याकरण लक्षण द्वारा समझना है। व्याकरण स्वयं शब्द नहीं गन्ता। लाक में प्रयुक्त शब्दों का ही अनुवाचन करता है। किसी नियम के रहने पर गिण्टामय लोग मनमाना व्यवहार कर सकते हैं और भाषा के परिनिष्ठित रूप में विच्छेद खलना ला सकते हैं। दूसरा कारण यह है कि गिण्टा का भी विना शब्दों के बारे में भ्रम हो सकता है। भ्रम के निराकरण के लिए भी व्याकरण की आवश्यकता है। इसलिए भन हरि ने कहा है कि जो शिष्ट प्रयोगों के साक्षात्कार करने में असमर्थ हैं अथवा वे हैं, उनके लिए शास्त्र ही दृष्टि है (शास्त्र च भुरपश्यतामन्वावपणीय ३ वक्ति समुद्देश ७६)। जो लक्षण जानते हैं परन्तु लक्षणनिर्देश रूप में ही साधु शब्दों का व्यवहार करते

है। उह भी पतजलि न सिष्ट कहा है। उनका एक व्यवहार स उनके गिष्ट होने का अनुमान कर लिया जाता है। अतः व्याकरण सम्प्रदाय में लभ्यलक्षणे व्याकरणम और सपाणिपटपरिज्ञानार्थाष्टाध्यायी' य दोना ही उचितया प्रचलित और माय है। (हेलाराज वाक्यपदीय ३ वक्ति समुद्रस, ७८ ७९)।  
 व्याकरण द्वारा शब्दा का अवाख्यान किया जाता है। इम सम्प्रदाय म दो तरह के मत ह। एक मत है कि व्याकरण द्वारा शब्द का अवाख्यान पत्र प्रवधि न है। दूसरा मत यह है कि अवाख्यान वाक्य प्रवधि न है। अतः हरि न दोना पशो का उक्तान किया है

केपाचित पदावधि म वाख्यानम, वाक्यवाधिकमेकेयाम ।

पाणिनि आदि के अनेक वचनव्य पद के अ वाख्यान और वाक्य के भी अ वाख्यान म प्रमाण है। पत्र संस्कार पत्र म एक शब्द द्वारा शब्द स निरपेक्ष होता है। उसका संस्कार भी निरपेक्ष रूप म ही होता है। जम गुणल शब्द गुणवाचक शब्द है। मनुष्य प्रत्यय के लोन क होने पर गुणल शब्द गुणल गुणवाचक शब्द है। ऐसी परिस्थिति म वह विशेषण हो जाता है। किसी दूसरे पत्र क सम्भव म भी वह विशेषण हो सधता है जैसे गुणल पत्र म। अत्र पत्रसंस्कारपत्र म गुणल शब्द को विशेषण क रूप मे भी नपु सक लिंग और एकवचनात होना चाहिए कयाकि निरपेक्ष रूप म एकवचन और नपु सक लिंग ही स्वाभाविक है और अत्ररग होने के कारण तथा श्रुति अत्रे के कारण विनाय अत्र मे वतमान गुणल शब्द म भी वे ही उपस्थित हो जाए गे। इम दोष को हटान के लिए विशेषणाना चाजाते १।२।५२ यह नियम बनाया गया। अर्थान गुणलवचन शब्द का आशय क अनुसार लिंग वचन होते हैं। आशय का वहिरग और भावी होना इसम बाधक नही है। वाक्यसंस्कारपत्र म गुण का आशय १।२।५२ यह सूत्र पदसंस्कारपत्र का समर्थक है। अतः विनायकाना चाजाते म अत्यंत ससष्ट होने के कारण उनका अलग विवेक न होन के कारण गुण का कोई सामान्य रूप ही संभव नही है। आशय क भान हाने क साथ ही साथ गुण का भी मान हीगा कयाकि गुणल तनिष्ठ है और वसलिए द्रव्यगत लिंग और वचन भी स्वभावतः सिद्ध हो जाएगे। दस पत्र म सूत्र कवल अनुवाद मात्र ह।  
 पदसंस्कारपत्रो वाचनिकमेतत । पदे हि पदा तरनिरपेक्ष सस्त्रियमाणे नपु सक्तिलगसयनामप्राप्तमेकत्व च वस्त्वतरनिरपेक्षत्वात् सनिहितमिति गुणल पदा इति प्राप्ते भाविनो वहिरगस्याश्रयस्य लिंगसल्लयेऽनेन प्रतिपाद्यते ।  
 यदा तु वाक्यसंस्कार तदायमनुवाद एव ।

—कयट महाभाष्य १।२।५२  
 द्रव्यं—वाक्यपदीय १।२६ हरिवक्ति पृष्ठ २८ ।

पाणिनि न तदगिष्य सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात् १।२।५३ सूत्र स भी उपयुक्त सूत्र की निरपेक्षता द्योतित की है।  
 वाक्यायन ने पदसंस्कारपत्र का मान कर दृढ समाम म प्रत्यय अवयव के संस्कार की दृष्टि स दृढ वहुपु लुग वचनम कहा और वाक्य मन्त्रारपत्र क आधार पर न वा सधेया दृढ वहुपुल्लत्वात् यह कहा (वातिक महाभाष्य २।४।६२) ।  
 उपमानानि सामान्यवचन २।१।५५ जस सूत्र और भवति क लिए भू भूति न अति शक्ति की कल्पना पत्रावधि न अवाख्यान पत्र म ही थीन है।  
 अतः हरि ने सप्रहकार का निम्नलिखित वचनय वाक्यायन पत्र क समर्थन म उद्धृत किया है

न हि किञ्चित् पद नाम रूपेण नियतं क्वचित् ।

पदानां रूपमर्थो वा वाक्याद्यदेव जायते ॥

‘यासकार’ ने भी कौस्तुभ यौस्त इतः शः की सिद्धि पदसंस्कारपक्ष में दुरुह चतात हृण वाक्यसंस्कारपक्ष पाणिनि को अभिप्रेत है ऐसा माना है

किं पुनरिदं राजासासन पदसंस्कारापक्ष गद्धानुशासन कतव्यमिति । अथ शास्त्रकारस्य वाच्यमभिप्राय इति चेत् । न । शास्त्रकारेण हि युष्मद्युपपदे समा नाधिकरणे स्थानियपि मध्यम (१।४।१०।५) इति युष्मदाद्युपपदे मध्यमादि-पुरुषविधानात् वाक्यसंस्कारप्रयुक्तमपि शास्त्रमेतदिति सूचितम् ।

—यास १।१।५ पृष्ठ १११ ।

पुरुषोत्तमदेव न भी पदसंस्कारपक्ष और वाक्यसंस्कारपक्ष दोनों को आचार्य-सम्मत माना है ।

इह प्रातिपदिकाय मात्रे प्रथमा विवदता आचार्येण पाप्यते पदसंस्कारकमिदं ‘याकरणमिति । तथा वाक्यसंस्कारकं चेदं ‘याकरणमाचार्यस्याभिमतमिति धातु सम्बन्धे प्रत्यया (३।४।१) इति सूत्रकरणात् ।

—पुरुषोत्तमदेव आपक समुच्चय पृष्ठ ६७ ६८ ।

पञ्चविक्रम अन्वयान और वाक्यावधिक अन्वयान में हलाराज के मत में, भेद यह है कि सम्बन्ध सामान्य की अपेक्षा में पञ्चविक्रम अन्वयान और सम्बन्ध विनाप की अपेक्षा से वाक्यावधिक अन्वयान किया जाता है ।

सम्बन्ध (सम्बन्ध) सामान्यापेक्षया पदावधिकं तद्वाच्योपात्तसम्बन्ध विशेषापेक्षया तु वाक्यावधिकमन्वयानमिति ज्ञाननयो पक्षयो विभेदः ।

—हलाराज वाक्यपनीय ३ भाष्यनसमुद्देश ३, पृष्ठ १७६ ।

यद्यपि पदसंस्कारपक्ष और वाक्यसंस्कारपक्ष दोनों ही गृहीत हैं । फिर भी ‘याकरणशास्त्र प्रकृति प्रत्यय आदि व’ द्वारा पदसंस्कार ही करता है । एवं विभाग पद में ही सम्भव है । वाक्य में अनन्त पदा के होने के कारण वाक्य का सामान्य अन्वयान उतना उपयुक्त नहीं है । दशम भेद से शोनी पक्षा में श्रेष्ठ ज्ञान पर भी पदसंस्कार को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि पद का स्वरूप ‘यस्थित’ है ।

दशमभेदात् भेदेऽपि ‘यस्थित’ रूपत्वात् पदमेवावस्थेयम् इति ।

—वपम वाक्यपनीय १।२२६ पृष्ठ ८३ ।

## व्याकरण लोकपक्ष को महत्त्व देता है

‘गद्धानुशासन की प्रतिया में सत्र तरह के ‘यायमिद्ध सिद्धांत काम में लाए जाते हैं । फिर भी व्याकरण ज्ञान ‘लाकविज्ञान को भी महत्त्व देता है । पाणिनि कात्यायन और पतञ्जलि लौकिक पक्ष में समर्थक हैं । जहाँ कहीं शास्त्रीय सिद्धांत और लाकप्रसिद्ध ‘यकारा में विरोध होता है व्याकरण ज्ञान लोक प्रसिद्ध पक्ष का ही प्रधान देता है । उदाहरण के लिए सभी दशम मानते हैं कि अवधव में अनयवी रहता है । इस सिद्धांत के अनुसार ‘गम्भा में वन्ध है वन्ध में ‘गम्भा नहीं । किन्तु लोक में सदा वन्ध में ‘गम्भा यही रहते हैं । अतः व्याकरणशास्त्र शास्त्रीय आधाराधेय भाव को ठुकराकर लाकपक्ष को ही अपनाया है और उसके अनुसार यत्रे गाम्भा यत्रे कृत है ।

एतच्च लौकिक व्यवहारानुगुण्येन शास्त्रेऽस्मिन् ‘युत्पाद्यत । शास्त्रात्तर प्रसिद्धा ध्यवस्था लोकविद्वदा । लोके हि गवि शङ्ख वक्षे गाम्भा इति ‘यवहार । तथैव ‘याकरणस्याधार सप्तमी । शास्त्रात्तरं तु अवयवेत्वव्यवधीति भृगु गौ

गात्राया दक्ष इति स्यात् ।

परतु विचार क लिए "गारण" दशम विचार अवश्य करता है। भट्टाजि दीक्षित ने लिखा है कि जस कोई वराटिका (कीडी) दूतन चल और उसे चित्तमणि मिल जाए उमी तरह ग = विचार म प्रवत्त भन हरि न प्रमग म विवतवान् आदि का भी अ गायान किया है जिपमे वयाकरणा का भी अद्वुतग्रह्य क विपय म परिपान हा। तदेव वराटिका वेपणाय प्रवत्तदिव तामणि लब्धवानिति वसिष्ठरामायणोक्ता भागक यापन ग = विचाराय प्रवत्त सन प्रसगाद्वते ब्रह्मण्यपि व्युत्पद्यता मित्यभिप्रायेण भगवान मते हरिविवतवादादिकमपि प्रसङ्गाद्व्युत्पादयत् ।

परतु भट्टोजि दीक्षित की उक्ति उतनी सही नहीं है। वस्तुतः मन हरि ने ग = विचार एव दार्शनिक की भांति आरम्भ किया है और वाक्यपनीयक आरम्भ म ही उसकी प्रतिष्ठा कर दी है। निवचन की सूचना और यापकता क आधार पर ममी तरह क मौलिक विचार दान के क्षेत्र म आ जात है। ग = अनुसामन की प्रिनिया क मून म छिप दृग गहन विचारा का विश्लेषण अपना स्वतंत्र महत्त्व रखता है। वाक्य पदीय का दशम एक प्राथमिक दशम नहीं है। अपितु भाष्याधिधीयूपच्छाच्छुरित याकरण दशम का रस है।

—गणकोस्तुभ पाठ १२ ।

### ध्वनि

### ध्वनि को परिभाषा

भत हरि क अनुसार जो स्फोट का अभिपयक है उस ध्वनि ग = स पक्त करत है। दूसरे ग = म स = क यजक को ध्वनि कहत है। महाभाष्यकार न प्रतीतपदायक ध्वनि को ग = माना है (प्रतीत पदायको लोके ध्वनि शब्द इत्युच्यते—महाभाष्य पम्पगाह्निक)। अर्थात् लोक म जो ध्वनि सपू = पदाय वाक्य के रूप म प्रसिद्ध है जो श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य है और वणरूप है वह ग = है। एम दष्टि स ध्वनि और ग = म कोई भेद नहीं है। किन्तु सूत्र १।१।७० म ध्वनि को ग = क गुण मानने का भाव है कि ध्वनि ग = का उपकारक अथवा यजक है। भाष्यकार न उभयतः स्फोटमात्र निर्विश्वतरभ्रूतलभ्रूतिभवति इम वाक्य म स्फोट ग = का व्यवहार किया है। आकृतिनि यत्ववाचिषो क मत म एम वाक्य म स्फोट ग = स अय ग = गृति अभिप्रत है। शब्दत्व और ग = गृति म भेद यह है कि ग = त्व सभी ग = म रहने वाला धम है सब ग = साधारण है। ग = कृति विशेष ग = से सम्बद्ध है। क = प्रमगविन स उदबुद्ध एव एव कर मुनाई दन वाला और उमी प्रम स गहीन वर्षों स गठित होती है। य (उपलक्षि निमिन सस्कार) उमम कपित होत हैं वास्तविक नहीं। ग = यत्तित उत्पन्न होत है। उनम एय धपन आप का अभिपयन करने की क्षमता नहीं होती परतु क स्फोट का घातिन करत है। स्फोट को घातिन करने वाल ग = यत्तित का नाम ध्वनि है (वाक्यपनीय १।१४ हरिवर्ति)। वाक्यार्थिककार क अनुसार स्फोट ग = है और ध्वनि उमका व्यापाम (विस्तार) है।

स्फोट ग = दो ध्वनि तस्य व्यापाम उपजायत ।

—वाक्यपनीय १।२२ की हरिवर्ति म उद्धत ।

कुछ नागा के अनुसार जातिस्फोट के व्यञ्जक को ध्वनि कहते हैं।

अनेक अक्षरव्यभिचय्या जाति स्फोट इतिस्मृता  
कञ्चित् अक्षरव्यवस्था ध्वनित्वेन प्रकल्पिता ।

—वाक्यपदीय १।१५

गण के अनित्यत्व और नित्यत्व के विचार से भी ध्वनि के रूप में कुछ भेद दृष्टिगत होता है। भक्त हरि ने इस निम्नलिखित रूप में व्यञ्जन किया है—

य सयोगविभागान्या करणरूपजयते ।

म स्फोट शब्दजा शब्दा ध्वनयो यद्वाहता ॥—वाक्यपदीय १।१०३  
अनित्यपक्षे स्थानकरणप्राप्तिविभागहेतुक प्रथमामित्यतो य शब्द स स्फोट इत्युच्यते। तज्जातास्तु सवदिवकास्तद्रूपप्रतिबिम्बोपग्राहिण सवद्रव्याणा स्थनात्मना निरवयवत्वात् आकाशस्यापि मध्यसमवायिदेशवत् सयोगि द्रव्या तरद्व्यप्रविभागोपचारे सति दशहरतयप्रत्यासत्याकारणसत्ताना विच्छेदेन यथोत्तरमपचीयमानपुत्रप्रतिबिम्बोपग्रहणशक्तयो मद्रप्रवीपप्रशाशित- रूपकल्पा क्रमेण प्रध्वंसमाना ये वणधुत विभज्जति ते ध्वनय इत्युच्यते । नित्यपक्षे तु सयोगजविभागजध्वनिव्यग्य स्फोट । एतया सयोगविभागजध्व निसंभूतनादानियग्य । स्फोटरूपानुग्राहिणस्तु यथात्तरमपचीयमानामि- व्ययित्तिसामर्थ्या द्रुतादित्तिभेदव्यवस्था हेतवोऽपचयात्मका ध्वनय ।

—वाक्यपदीय १।१०३ पर हरिवर्चन

अनि य प र म स्थान और करण क सयोग विभाग क हनु स निव त्त का गद कहत ह । उसकी प्रथम अभि यति हानी ह । उस गद का स्फोट रहत ह । अपन गमबायी आनाग की तरह वह भी निरवयव है परंतु जमे आकाश म घट आति सयागी द्र य म देग भे हान के कारण पूवापर व्यवहार होता है उनी तरह गण म भी पूवापर व्यवहार आरोपित रहता है । शब्द क वात् जो पैदा हाती है वे ध्वनिया ह । व वणधुत क विभक्त करती हैं । अथात् प्रतिभक्त स्फुट अक्षर वाली होती हैं । व गद क प्रतिबिम्ब म युक्त रहतो हे और सज िगाया म फनती हैं । उनके फेन की दा पद्धतिया मानी गई ह । बीचिनरगवत् और कटम्ब कारकत्त । जैसे एक लहर दूसरी लहर को पग करती हुई विस्तार पानी हे वैसे ध्वनि भी एक ध्वनि लहर से दूसरी ध्वनि लहर उटानी हृद सतत रूप म फलनी है । कटम्बनोरव का मन मानने वाला वा अभिप्राय यह ह कि गित तर्ह कटम्ब क कोरक एक एक चारा तरफ समान रूप स तिरात ह वम ही ध्वनियां चारा तरफ समान रूप स फनती हैं । बीचिनरगयात्र और कटम्बनोरव वायमभे यह माना जाता है कि पहले मत क अनुसार चारा िगाया म फनत वाली ध्वनि की एक लहर सी होती है जकि दूसर मत क अनुसार चारा आर फलन वाली ध्वनि अलग अलग सी होनी है । ध्वनि का स्वभाव यह है कि वह उभय शीघ्र होती जानी है और अत म क्रम म नष्ट होती जाती है । भक्त हरि न दत्तका उपमा मद्र प्रदीप क प्रकाश म नी है । यद्यपि ध्वनि दीपक क तुल्य है व्यञ्जक ज्ञेन क कारण न कि प्रकाश क । फिर भी जैसे मद प्रकाश दूर पडन पर क्रमश शीघ्र और विलीन होत जाने हैं वस ही ध्वनि की भी यात है । यही दोषा म साम्य है ।

गण क नित्यत्वपक्ष म ध्वनि यथोत्तर अपचय प्राप्त हान वाली अभिपञ्चिन म गमय द्रुतादित्तिभेद व्यवस्था का कारण और अत म चिनगनील है । अनित्य पक्ष और नित्यपक्ष म ध्वनि के स्वरूप म भेद उ हाकर गण अथात् स्फोट क स्वरूप म भेद है । अनित्य पक्ष म शब्द पदा होना है तज ध्वनि फलनी है । नित्य पक्ष म शब्द ध्वनि स उच्य है । शब्द व्यक्ति का ही स्फोट मानन वाले सयोगविभागज ध्वनि



ध्वनि को और कुछ बहुत ध्वनिया का जन्म देकर विलीन होती है। इसलिए प्राचीन काल  
ध्वनिकाल से भिन्न है। इसी आधार पर द्रुता मध्यमा आदि वक्तियां म ध्वनिभेद ही  
माना जाता है। म म नही (स्वाभाव रत्नाकर ४।१० पृष्ठ ६/६/१/१)।

द्रुता मध्यमा और विलम्बिता य तीन वक्तियां मानी जाती हैं। प्राचीनकाल  
म समय नापने की एक प्रकार की नाडिका थी। एक कटोरे में पानी भरा रहता था।  
उसमें से पानी चूने का प्रयत्न था। चूने वाले जब त्रिदुग्धा को पानीय पल बटत थे।  
द्रुतावत्ति पढने के उस ढंग का वक्त ये जिसमें एक श्रृंखला के पत्तन के काल में नव  
पानीय पल चू जाते थे। मध्यमावत्ति मद्रुतावत्ति के तीन भाग अर्थात् समय लगता था।  
अर्थात् यदि द्रुतावत्ति में १ पानीय पल का समय लगना था तो मध्यमा में १२ पानीय पल  
का समय लगता था। विन्धिता वत्ति से पहले पर १६ पानीय पल का समय लगता  
था। (नागेश न नाटिका का प्रथम मुद्रणा किया है। और पानीय पल का समय लगता  
प्रमतत्रिंशु वा चूना माना है। पीछे के म्यारणा में याकरण म्थान को किस तरह  
रहस्यात्मक बना दिया है उसका यह भी एक दृष्टांत है। नाडिकाया मुद्रणाया इत्यथ।  
पलानि त्रिंशु। ब्रह्माण्ड सम्बद्धा साऽमनत्रिंशु व्याविगीति प्रतिद्विर्वागिनाम—नागण  
महामाष्य १।१।७०।)

वक्तियों में ध्वनित्व भ्र होने हुए भी वण का काल एक ही रहता है। एक  
ही वण को कोई क्षीघ्रता से उच्चारण करता है और कोई देर से उच्चारण करता है।  
जिस तरह से गति भेद से माग म भेद नहीं माना जाता उसी तरह से वक्ता के उच्चा  
रण भेद से वणों में उपचय का अपचय तही माना जाता। हाथी का हाथी के साथ  
और मणक का मणक के साथ सन्निकष एक सा है। उनमें भेद उ के शरीर की मात्रा  
पर निर्भर करता है। ध्वनार बार देते जान पर भी वही रहता है। उसमें भेद नहीं  
पर निर्भर करता है। ध्वनार बार देते जान पर भी वही रहता है। उसमें भेद नहीं  
हो जाता। उसी तरह द्रुतविलम्बिता आदि वक्तियां म प्रकार प्रकार के रूप में प्रकार  
ही रहता है। उसमें कोई भेद सम्भव नहीं है। इसलिए वक्तिभेद हाते हुए भी वणभेद  
ही होता यह सिद्धांत है। इसीलिए सभी वक्तियां म तत्काल (एक ही वणकाल)  
नहीं होता यह सिद्धांत है। इसीलिए सभी वक्तियां म तत्काल (एक ही वणकाल)  
माना जाता है जबकि ह्रस्व दीर्घ और प्लुत में काल भेद माना जाता है जसा कि ऊपर  
यक्त किया जा चुका है।

वपम के अनुसार द्रुता मध्यमादि वक्तियां म भेद वृद्धि वृत्त है। उनके मत  
म स्फोटग्राहिका बद्धि उपाधि रूप में कालभेद से भिन्न भिन्न प्रतीत होती है और  
मन्ति ए तादि वक्तियां म भेद ही जाता है (अभि नेऽपि स्फोटे ता एव बुद्धय उपाधि  
भूता कालभेदेनावतमाना मिच्छते। तत्कताश्च द्रुतादि वक्तिभेद — वाचस्पतीय टीका  
१।७६ पृष्ठ ७८ लाघोर संस्करण)

उपयुक्त विवरण वण को नित्य मान कर उल्लिखित है। वण के उत्पत्तिवा  
के पक्ष में भी वण की अभि प्रकृत के बाद दूर से भी ग्राह्य किन्ती ध्वनि की सत्ता माननी  
ही पड़गी। उस ध्वनि के कालभेद से वक्तिभेद माना जाना चाहिए। (वर्णोत्पत्तिपक्षतु  
तदनित्येवादी दूरादपिग्राह्य किंचिदध्वनिरवयाम्पुपेय। तस्यैव कालभेदाद् वक्ति  
प्रविध्यम ग त्तोस्तम १।१।७०)

वक्तियां का उद्देश्य निम्नलिखित श्लोक में किसी न लिखा है  
ध्वन्यासायं द्रुतावत्ति प्रयोगार्थे तु मध्यमा।  
गिप्याणां तूपदेगाय वक्तिरिष्टा विलम्बिता।—गणेश्वर १।१।७० म उद्धृत  
गणेश्वर की अभिव्यक्ति का प्रक्रिया के विषय में कई मत हैं। कुछ लोग मानते  
हैं कि ध्वनि उत्पन्न होकर वर्णों द्वय में एक मूल शक्ति का संचार करती है।

बान का सम्कार करती है। उसमें मुननेकी गति पैदा करती है अथवा उसमें स्थित गति को जगा देती है। वा तरह का सम्कार देना जाता है।—लौकिक (प्राकृत) और अलौकिक। ये दोनों ही सम्कार चान्द्रिय में होत देखे जाते हैं। उनका विषय में नहीं। आत्मा में अज्ञान लगाने से आत्मा की शक्ति बढ़ती है। यह आत्मा का लौकिक सम्कार हुआ। कभी कभी वाद व्यक्ति अपनी आत्मा से बहुत सूक्ष्म ढकी हुई अथवा अल्प नदूर की भी वस्तु का प्रत्यक्ष कर लेता है। यह आत्मा का वाद अलौकिक सम्कार है। य दोनों ही सम्कार चान्द्रिय में होते हैं न कि विषय में। यदि विषय में सम्कार होत तो बिना अज्ञान आदि के द्वारा और बिना दिग् दृष्टि आदि अलौकिक शक्ति के द्वारा भा सबको उत वस्तुआ का प्रयत्न होना। एसा होता नहीं है। इसलिए चान्द्रिय में ही सम्कार होत के कारण चन्द्रिय का ही सम्कार होता है और तब शब्द का श्रवण हो पाता है।

इसके विपरीत कुछ लोग मानते हैं कि सम्कार विषय में ही होता है चान्द्रिय में नहीं। पृथ्वी पर जब जल छिड़कत है उसमें से गंध निकलती है और उसका ग्रहण घ्राणन्द्रिय करती है। तल को जब किसी सुगन्धित द्रव्य से वासित करते हैं तब वह सुगन्धित जान पड़ता है। इसीलिए विषय में ही सम्कार मानना ठीक है अथवा घ्राणन्द्रिय में सम्कार मानने से ससृष्ट अस्सृष्ट सभी प्रकार के विषयों में कोई भेद जान नहीं हो सकता। इसलिए हम मत के अनुसार ध्वनि के समग्र में शब्द का ही सम्कार होता है और तब वह कणगोचर होता है।

कुछ लोगों के मत से विषय और इन्द्रिय दोनों का सम्कार होता है। जो लोग चक्षु को अप्राप्यकारी मानते हैं उनके मत में अक्षरों में स्थित पुस्तक का प्रत्यक्ष प्रकाश होता है। प्रकाश माना विषय का सम्कार करता है। जिनके मत में चक्षु प्राप्यकारी है उनके मत में तुल्यजातीय तेज (प्रकाश) से नयन रश्मियाँ या अनुग्रह होता है। सूक्ष्म रश्मियाँ आत्मा के प्रवाहरूप में निकलकर बीच के तज परमाणुओं से जायापक होने के कारण सबन ही मिल कर एक तरह की सूक्ष्मतर और भिन्न कोटि की रश्मि पैदा करती हुई वहाँ तक जाती है जहाँ तक आलाक है। फिर उस आलाक से उन रश्मियों का सम्कार होता है एसा वैज्ञानिक मानते हैं।

ध्वनि के अभिव्यञ्जक के बारे में भी तीन तरह के विचार हैं। कुछ लोग मानते हैं कि ध्वनि सदा स्फोटससप्तक ही गहीत होती है। स्फोट से अलग वह कभी भी ग्राह्य नहीं होती। त तो स्फोट और न ध्वनि ही परस्पर विभक्त रूप में जान जा सकते हैं। जिस तरह में विषय और आलाक एक दूसरे से ससप्तक गहीत होत है पर व्यवहार में आलाक सूर्य किरण से ज्ञेय है और विषय रत्नम् आदि काष्ठजय है एसा उनमें भेद करत है उसी तरह तालु आदि स्थान से ध्वनि पदा होती है और स्फोट नित्य होने के कारण अकाय है एसा उनमें भेद करत है परन्तु उनका ग्रहण अलग अलग न होकर मत्त ससप्तक ही रहता है।

कुछ लोग मानते हैं कि ध्वनि अगहीत रूप में ही शब्द का अभिव्यञ्जक है। ध्वनि का रूप कभी गहीत नहीं होता। वह अगहीतरूप में ही शब्द के ग्रहण में निमित्त होता है। हमें दान के मत में चन्द्रिय और इन्द्रियों के गुण अनुभव्य होत हैं। उनका प्रयत्न नहीं होना। विषय का प्रयत्न होता है। उसका कोई साधन अवश्य है। इससे इन्द्रियों का अनुमान कर लिया जाता है। उनके मत में इन्द्रियाँ भीतिक हैं और उनके आश्रित रूप आदि अपनी अधिकता से समान जातीय रूप आदि के ग्रहण में हेतु होत हैं। पृथ्वी गन्धत्व जान में गणमयी होने के कारण हेतु और गन्ध की अधिकता होने के कारण

हनु है। प्राणद्वय की गंध उपलब्धि निमित्त पृथ्वी का समवेतगंध है जो अपने समवायि कारण द्विद्वय की व्यथा करता हुआ (भ्रुगुह्ण) गंध की उपलब्धि निमित्त होता है परन्तु स्वयं समवेत गंध का मन्त्र नहीं होता। उसी तरह ध्वनि भी समवेतित्त्व मन्त्रों की दूतरे उपाय से स्फोट की उपलब्धि निमित्त कारण होती है। (तत्र यथा प्राण द्वयस्य पृथिवीभूमिष्ठगंधयथात् समवेतगंधस्तत् समवायि कारणमिद्वयमनुगृह्ण गंधोपलब्धिनिमित्तम्। नच समवेतो गंधः सवेद्यः। तथा ध्वनिरसवेदित एवायतो पापेन स्फोटोपलब्धि निमित्तम् भवतीति—वपम् वाक्यपनीय १।८२ पं० ८३)

कुछ लोग मानते हैं कि केवल ध्वनि का भी स्वरूप म ग्रहण होता है। इस मत में दो तरह के विचार हैं। एक तो यह कि स्फोट (मन्त्र) के अवधारण में परिचय के बिना भी दूर से केवल ध्वनि का ग्रहण देखा ही जाता है। दूसरा यह कि ध्वनि स्वयं मन्त्र की उपलब्धि की तरह है (गन्धोपलब्धि कल्प एवासावित्त्वपरे—वाक्यपदीय हरिवर्ति १।८२)। दया जाता है कि रंगिस्तान जैसे स्थानों में छोग भी तिला पत्र की तरह गिराई देता है। व द्रमण्डल बहुत बड़ा है पर दगन में अव्यक्त लघु जान पड़ता है। देसविषय और सम्बन्ध विषय के कारण भिन्न प्रकार और अवस्था वाली वस्तु उससे भिन्न प्रकार अवस्था वाली मान्य पड़ती है। स्फोट और ध्वनि अलग अलग हैं। जब वण-बोध रहित केवल अनुकरण रूप ध्वनि रहती है उस समय इसकी स्वतन्त्र सत्ता स्पष्ट है। प्रकार आदि स्पष्ट वणबोध के समय वह स्फोट से स्पष्ट जान पड़ती है।

प्रयत्नविषय से उदबुद्ध ध्वनि वणसम्बन्ध भी होती है, पदसम्बन्ध भी होती है और वाक्यसम्बन्ध भी होती है। दूसरे शब्दों में, वणस्फोट पदस्फोट और वाक्यस्फोट की बुद्धि में आरोपित करती है। बुद्धि के सहारे ही वणों के पोषाण का पान होता है। अथवा वणों के विनाशाल हान के कारण उनमें क्रम सम्भव नहीं है। अतः उनका परिचय भी सम्भव नहीं है। क्रम से उत्पन्न वण भी मन्त्र अवस्थित रहते तो उनमें भी उसी तरह वण का यथदेश सम्भव था जिस तरह ज्येष्ठ मध्यम और त्रिष्ठ म होता है। किन्तु उच्चारण के बाद प्रवृत्त हो जाने के कारण वण अतवस्थित हैं और इसलिए तत्काल उनमें पूर्वापर भाव नहीं है। मन्त्रों के पूर्वापर का व्यवहार बौद्धिक है। वणों के विषय में सावधान और निरवधान सम्बन्धी विचार हम यथार्थ में अप्रयत्न किया गया है।

वपम् के अनुसार भक्त हरि वणों की भागश रूप में बुद्धिप्राप्ति स्वीकार करते नहीं जान पड़ते। वण की अभिव्यक्तिपथ में और वण की उत्पत्तिपथ में भी भागश अभिव्यक्ति मानन पर ही उनके समुदाय का ग्रहण नहीं हो सकता। उत्पत्ति प्राप्ति के मन्त्र में वण के विभाग परमाणुवत्त्व है इसलिए क्रम से उत्पन्न होना पर भी व अतीन्द्रिय ही रहेंगे। फलतः उनका समुचित रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

वण के निरवयवपथ में भी और उसके भागों की द्विद्वयग्राह्य मानन हुए भी उनके समुदायभाव की स्मृति नहीं हो सकती। व क्रम से उत्पन्न होत जायत और नष्ट होने जायेंगे इस कारण उनका समुदाय ही नहीं हो सकता। एक एक के अनुभव होने पर भी

समुदाय का अनुभव सम्भव नहीं है। अनुभव न होना उनको स्मृति भी नहीं हो सकता। पुनः वण ने भागम स्मृति जगाने की शक्ति भी नहीं है क्योंकि उसके बारे में किसी प्रकार का अभ्यास नहीं देखा जाता।

निरवयव वण के अभिव्यक्तिवाद के पक्ष में भी सबल साद का ग्रहण सम्भव नहीं है क्योंकि अभिव्यक्त स अभिप्रेय का ग्रहण होता है किंतु अतः म उन समुदित व्यक्तियों की सत्ता न रहे सकेगी। इसलिए सम्पूर्ण साद का ग्रहण नहीं हो सकता। जो लोग स्फोट की भी भाग्य अभिव्यक्ति मानते हैं और उसे भाग वाला मानते हैं उनके मत में भी यह दोष है।

यदि यह कहा जाए कि पूर्व उच्चरित वण आगे वाले वण में अपना मस्कार डालते चलते हैं और जब अंतिम वण उच्चरित हो जाता है तब उन सबका समूह लब्धनात्मक मस्कार बुद्धि में पैदा हो जाता है और साद का ग्रहण होता है—तो यह भी युक्ति-युक्त नहीं है क्योंकि अभिव्यक्त वस्तु मस्कार ग्रहण करती है, जबकि आगे वाला वण अनभिव्यक्त है। वही मस्कार का आधान बन सम्भव है और जब आगे वाला वण अभिव्यक्त होता है उस समय पूर्व का वण अनभिव्यक्त हो जाता है। इसलिए भी मस्कार नहीं हो सकता। क्योंकि अपनी अभिव्यक्ति में मस्कार का आधान होता है, अनभिव्यक्ति में नहीं। अथवा नित्य हान के कारण सबका मवत्र आधान होने लगे (वचन, वाक्यपदीयटीका १।८५)।

## ध्वनि और नाद

वाक्यपदीय में ध्वनि और नाद शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग हुआ है। भक्त हरि ने इनमें अन्तर केवल यह किया है कि नाद ध्वनि का विवृत है।

तच्च सूक्ष्मे ध्यापिनि ध्वनौ करण व्यापारेण प्रचीयमाने स्पृतेः अभ्रस घातवदुपलभ्येन नादात्मना प्राप्तविवर्तेन ।

—हरिवर्ति वाक्यपदीय १।८८, पृष्ठ ५८

दूसरे सादा में प्राकृत ध्वनि का ध्वनि और वृत्त ध्वनि को नाद साद से प्रकट करते हैं। इन दोनों ध्वनियों का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। ध्वनि ह्रस्व दीर्घ ध्राति का व्यवस्था हेतु है और नाद द्रुता मध्यमा आदि वृत्तिभेदा में व्यवस्था स्थापित करना है। भक्त हरि ने प्राकृतनाद और वृत्तनाद साद का भी व्यवहार किया है।

नादादि प्राकृत शब्दात्मनि प्रत्यक्षमानस्थितिरूपो भेदस्याग्रहणाय ह्रस्व दीर्घसुतकालभेद-प्रवहार-व्यवस्थाहेतु । चकतस्तु नादो बाह्यद्रुतादि वृत्तिकाल व्यवस्था प्रकल्पयति ।

—वाक्यपदीय हरिवर्ति १।१०२ पृष्ठ ६७, ६८

द्रव्याभिधात स, तान्नादिस्थान में जिह्वादि के अभिधान से कम्प पैदा होता है। कम्प के बाद नाद पैदा होता है। अभिधान वृत्त वायु के स्पन्दन को कम्प कहते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि जिस तरह ज्वाला में ज्वाला पैदा होती है उसी तरह स्फोट से ध्वनियों पैदा होना है। कम्प से उत्पन्न साद के समानान्वित ध्वनियों स्फोट का सम्भार

करती है। उनके बाद प्रकाशित होने वाली उनके अनुपम म भासित होने वाली ध्वनिया का नाम कहत है

द्रव्याभिधानात्प्रचिन्तौ भिन्नी दीघप्तुतावपि ।  
कम्पे तूपरते जाता नादा धर्तोविशेषका ॥  
अनवस्थितकम्पेऽपि करण ध्वनयोपरे ।  
स्फोटादेवापजायते ज्वाला ज्वालातरादिव ॥

—वाक्यपदीय १।१०६ १०७

वपम के अनुमार नाद सूम्भ है क्याकि नाद के भाग परमाणु कम्प है (परमाणु कल्पना नादभागानाम्—वपम वाक्यपदीय टीका १।६८)। नाम क भाग सकल व्योम व्यापी है। नाम क मवान है। म्यान और करण (जिह्वादि) क अभिघात क मवाणे है। उनके सहारे अभिव्यक्त नाद भा क मवाला माना जाता है। नाद उपसहृत क म क रूप म प्रचयरूप म प्रतिबन्ध और अस्यनुज्ञा ध्वनिया के द्वारा स्फोट को द्योतित करता है।

भत हरि के मत म नाद और ध्वनि दोना म बुद्धि म गद का अवधारण हाता है। नाद म बुद्धि म जिम उत्कप का आधान होता है उस मत हरि ने अनुगुण सस्वार भावनाबीज' कहा है और अन्य ध्वनि म जो उत्कप का आधान होता है उमे परिच्छेद सस्वारभावनाबीज वल्लभाभप्राप्तयोग्यता' कहा है। सस्वार स तात्पय महा ध्वनि विशेष मे है। गति ही चित्त का सस्वार करती है (शक्तय चेत सस्कुर्वति विनिष्ट जनयति इति सस्वार शब्दोक्ता ।—वपम वाक्यपदीय १।८५) विगप बुद्धि क जनन हान के कारण बीज और तद्रूप की भावना हान स उह भावना भी कहत है। अन्य ध्वनि के वाद दाद के विनिष्ट स्वरूप का गी आदि गद का अवधारण होता है। इमलिए बुद्धि-सस्वार का स्फाट का परिच्छेद या परिच्छेदापाय भी कन्त है। बुद्धि म स्फोट के स्वम्प क अवधारण की योग्यता आ जाना बुद्धि का परिपार कहा जाता है। अन्य ध्वनि स एसी योग्यता-सपन बुद्धि म गद का आकार (स्वरूप) उन्बद्ध होता है। इसे ही बुद्धि म गद का अवधारण जाना कहत है।

## नाद (ध्वनि) और स्फोट

गति-यवादिना के मत म नाद और स्फाट म घतर य है कि नाम ध्वजर है और स्फाट व्यय है। गति-यवादी प्रथम अभिघातज ध्वनि का गद अथवा स्फाट कहते हैं और इसका उपादन हान पर इसका भिन् ध्वनिया का ध्वनि या नाम कन्त है। प्रथमो-भिघातजस्तारतर गद तदया नाद इति स्पष्ट एव भेद

—वपम वाक्यपदीय १।१०८

## वर्ण

म्यान-करण क अभिघात म ध्वनि पैदा होती है। ध्वनि पयन-ययन प्रपलन म पयन-ययन रूप म ध्वनिव्यक्त हाती है। पयक प्रयन जय ध्वनि का वर्ण कन्त है।

पथक प्रयत्ननिवर्त्य हि वर्णमिच्छति आचार्या ।

—वाग्निवा-एश्रीव ।

वर्ण नाम वधा पडा यह स्पष्ट नहीं है । हरदत्त के अनुसार वर्णन किये जाने के कारण इसकी मत्ता वर्ण है (वर्ण्यते उपलभ्यते इति वर्ण —पदमजरी ७।४।५३)

कुछ लोगों के अनुसार वर्ण वज्र से बना है (वर्णो वर्णात्) । यामकार के अनुसार वचन गण भी वर्ण के अर्थ में प्रयुक्त होता था । उनके अनुसार मुखनामिका-वचनांशुनामिका १।१।८ में वचन शब्द वर्णपरक है (नच्यत इति वचना वर्णो वर्णात्) ।<sup>२६</sup>

### वर्ण की निष्पत्ति के प्रकार

वर्ण की अभिव्यक्ति के विषय में भक्त हरि ने अनक वादा का उल्लेख किया है । शिक्षामुनकारा में कुछ मानते हैं कि आम्बतर प्रयत्न में ऊपर उठायी हुआ प्राणवायु आन्तरिक उष्मा से युक्त होता है । फिर शरीर के भीतर की नाडियाँ के छिद्रों में स्थित सूक्ष्म गन्धकणों को प्रेरित करता है । जिस तरह वायु से प्रेरित धूम के अणु एकत्र होते हैं वैसे ही प्राण वायु में प्रेरित गन्धकण धनीभूत हो जाते हैं । फिर किसी विशेष प्रकार मात्रा के सहारे अंतस्थित शब्द के विम्ब को ग्रहण कर वर्णरूप में अभिव्यक्त होते हैं । अतएव शब्द के कारण वर्ण के आन्तरिक और बाह्य स्वरूप में भेद नहीं है ।

अतवर्तिना प्रयत्नेमोर्ध्वमुदीरित प्राणो वायुस्तेजसानुगहीत शब्दवह्नाभ्य गुणिस्य सूक्ष्माश्च धूमसत्तानवत्सहति । स स्थानेषु शब्दधन राहयमान प्रकाशमात्रया क्याचिदत सनिवेशिन शब्दस्याविभक्त विम्बमुपगहणाति ।

—वाक्यपदीय १।१।१६ की हरिवृत्ति में उद्धृत

आपिगलीय शिखा के अनुसार नाभि प्रदेश से प्रयत्न प्रेरित वायु ऊपर उठती हुई ऊरस्य कण्ठ आदि स्थानों में किसी स्थान पर टकराती है उसमें शब्द की निष्पत्ति होती है

नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितो वायुरुध्वमाश्रामन ऊरस्यादीना स्थानानामग्रतम स्थानमिहति । तत शब्दनिष्पत्ति ।

—वाक्यपदीय १।१।१६ की हरिवृत्ति में उद्धृत

किसी दूसरे प्राणिशास्त्रकार का मत है कि वायु कोष्ठस्थानगत ध्वनि विशेष (अनुप्रदान) का प्राप्त होती है । वही कण्ठ में पहुँचकर श्वाभ्य नाद आदि के रूप में परिणत हो जाती है

धाम्य कोष्ठस्थानमनुप्रदानमापद्यते । स कण्ठगत श्वाभ्य नादता वा श्वादि ।

—वाक्यपदीय १।१।१६ की हरिवृत्ति में उद्धृत

इस मत के अनुसार कण्ठ के विद्यमान श्वाभ्य और श्वाभ्य नाद पर नाद

<sup>२६</sup> अभिनवगुप्त ने वाक् तत्त्व के अन्तर्गत विद्यमान को नाद और बहिरंग विद्यमान को वर्ण माना है —  
अभिनवभारती, चतुर्थ भाग पृ० ४१०

की मष्टि हाती है। इस दष्टि में श्वाभ और अनुप्रदान भेद में ना तरह क वण होने है। वपभ के अनुमार यह मत वह वचप्रतिशाख्य में शौनक न व्यक्त किया है

यथा वह वचप्रतिशाख्ये शौनक — वायु प्राण कोष्ठमनुप्रदान कण्ठ विषते सवते चापद्यते श्वासता नादतां च वचप्रीहायामुभय चातरे तदपीति ।

वह वचप्रतिशाख्य—वपभ द्वारा वाक्यपदीय १।११६ की टीका में उद्धृत ।

अनुप्रदान शब्द के विभिन्न अर्थों का 'यासकार' ने उल्लेख किया है उपरिर्वातनौ तौश्वासनादौ अनुप्रदानमितिकेचिदाचक्षते । वणनिष्पत्ते रनु पश्चात् प्रतीयत इत्यनुप्रदानम् । अथे तु ब्रूयते अनुप्रदानमनुस्वानो घण्टानिर्हृदिवत् ।

—यास १।११६ पृष्ठ ५७

किसी अन्य प्रतिशाख्य के अनुमार मन से अभिहत कायाग्नि प्राण को प्रेरित करती है। वह प्राणवायु नाभि से उठती है। मूथा से जाकर टकराती है। पुन एक दूसरी उठती हुई वायु में टकराकर क ख आदि ध्वनियों का रूप ग्रहण करती है

मनोभिहत कायाग्नि प्राणमुदीरयति । स नाभेच्छामूधनि अभिहतोऽप्येन पुनरुद्यता मरुताभिहृत्यमानो ध्वनि सपद्यते क इति वा ख इति वा ।

—वही उद्धृत

पाणिनीय शिक्षा के अनुमार जब किसी वस्तु को शब्द द्वारा कहने की इच्छा होती है पहल वद्धि मन का सहाय होता है। मन कायाग्नि पर आघात करता है। कायाग्नि वायु का प्रेरित करती है। वायु उरप्रदग में मद्रस्वर करती है और आग बढ़ती है। कण्ठ स्थान में पहुँचकर मध्यम स्वर करती है और गीप स्थान में पहुँचकर तारस्वर करती है। फिर मुर्ना से टकराकर वह लौट आती है और मुद में विशेष स्थानों में टकराकर विशेष वर्णों को पदा करती है।

आत्मा बुद्ध या समेत्यार्थामनो युक्ते विवक्षया ।

मन कायाग्निमाहति स प्रेरयति मारुतम् ॥

मारुतस्तूरसि चरमद्र जनयति स्वरम् ।

प्रात सवनयोग त द्यदो गायत्रमात्रितम् ॥

कण्ठे माध्यदिनमुग मध्यम अल्पमा

तार तार्तीयसवन गीप- जा- नानुमम् ॥

सोदीर्णो मूध्यभिहृता वप्रमापद्य मारुत ।

वणाऽजनयते तेषा विभाग पञ्चधा स्मत् ॥

—पाणिनाय शिक्षा ६८

वाक्यपत्याकार में पाणिनाय के विभिन्न मतों की समीक्षा न कर उद्धृतिगा न किसी प्रकार मान उन का मत ही है — प्रतिशाख्य शिक्षामु भिन्न आगमत्पान दयमान सव प्रपचेन समययितप्यम् ।

—वाक्यपत्याय १।११६ हरिविनि पृष्ठ १०८

## वायुशब्दत्वापत्तिवाद

किमी दगन के अनुसार वायु की गन्त्वपत्ति होती है। वायु प्रकृतिमात्राया (ऋकतत्र पृष्ठ १) वायु धवता के इच्छाजय प्रयत्न में त्रिधागील हाकर तावादि स्थानो म टकराकर गद रूप में परिणत हा जाती है। वायु के बग में ध्वनि का उदभूत हाना वाई आत्तय नहीं है। क्योंकि वायु गतिगानी है। उसके बग में मारवान वन्तुएँ पवत आदि तक् विभक्त हो जान हैं फिर उसके प्रकप म तालु आदि म ध्वनि के प्रकट होन में वाई साधा नहीं — (वाक्प्रणीय १।१०८ ११०)।

## अणु शब्दत्वापत्तिवाद

भन हरि न एक एमे दगन का भी उन्नतव क्रिया है जिसके अनुसार अणु ही गद रूप म परिणत हा जान हैं। गद परमाणु अयन्न सूक्ष्म हैं। वे मवगतिगाली हैं। मयाग और विभाग उनकी क्रियाएँ हैं। जब किमी निमित्त में उनका मयोग हो जाता है व परिणत होन लगत हैं। जब अलग हान हैं परमाणु की छाया म अवग्नियन रहत हैं। यद्यपि अणु गदत्वापत्ति गतिगयुक्त है फिर भी प्रयत्न म महियमाण हाकर ही व गदरूप को प्राप्त करत हैं। गदरूप में परिणत हान के कारण उन अणुआ का गद वदत है।

अणु के वाक तत्त्व म बदलन का मिद्वान जनदगन का है

ग्राहतास्त्वाहु सूक्ष्म शब्दपुदगल आरधगरीर शब्द स्वप्रभवभूमे निष्कम्य प्रतिपुरुष कणमूलमुपसपतीति—वायमजरी, चौखम्बा मन्करण १८३६, पृष्ठ १६८

गद परमाणु आत्रेद्रिय ग्राह्य होकर गदरूप म परिणत ना जान हैं। इन मिद्वान का बौद्धदगन भी मानना है।

गदपरमाणव एव सहता श्रोत्रेद्रियग्राह्या शब्दाकारा ।

—जिनेद्रवृद्धि प्रमाणममुच्चय टीका पृष्ठ ७७

## ज्ञान शब्दत्वापत्तिवाद

कुछ विचारको क अनुसार ज्ञान ही गद रूप म परिणत हो जाना है। ज्ञान सूक्ष्म है। उमम और सूक्ष्म गदतत्त्व म कोई अन्नर नहा है। जानात्मा और वागात्मा एक ही चीज है। सूक्ष्मता क कारण अनोद्रिय है। जान जब अपन का म्यून रूप म व्यक्त करता चाहता है गद रूप म उमका विवत होन लगता है और वह श्रवणेद्रिय ग्राह्य हान लगता है। वह पन्न मनाभाव को प्राप्त हाना है। पुन आतर्गिक ज्ञाना में उमका पाव होना है जिसम उमम विषय क ग्रहण की शक्ति आ जाती है। फिर वह प्राण वायु म प्रवेश करता है। प्राण वायु अन्न करण के तत्त्व म युक्त गानी है। अथान मना मयरूप धारण करती है और जिम तरह इधन अग्नि के मयोग म इधनरूप का उत्पन्न कर अग्निमय बन जाना है वी तरह प्राण-वायु भी अपना स्वरूप छोड कर मनोमय ना जाना है। पुन भिन्न भिन्न श्रुतिया (विशेष ध्वनिवाँ) म अपने स्वरूप को विभक्त



करती हुई प्राणवायु वणों का ध्यान कर वणों में हा जान हा जाता है । अर्थात् प्राण वायु वण के रूप में अभिव्यक्त हा उठती है । अर्थात् प्राण वायु की विज्ञान में अन्त प्रमाण माना जाता है ।

(वाक्यपदीय १।११३ ११६)

कथं व अनुगार आत्मानापयोग १।६।२६ मूत्र ने भाष्य में पत्रजति न भी पानात् प्रापसिवात् वा मन्त्र किया है । महाभाष्यकार ने अध्यापना पान के उपाध्याय के पानका मतन कथा है और उस ज्योति की तरह माना है । जिग तरह ज्योति लगानार अविच्छेदरूप में निराली हुई भिन्न भिन्न हाती हुई भागात्प्य के कारण एक ही एक मन्त्रान में जान पडती है उसी तरह उपाध्याय के पान भी भिन्न भिन्न है और भिन्न भिन्न गन्त स्वरूप को ग्रहण करत है और अर्थात् उम गतन कहत है

यथा ज्वालात्प ज्योति अविच्छेदेन उत्पद्यमान सादृश्यात् तत्त्वन अध्ववसोय मान सतत तथैव उपाध्यायज्ञानानि भिन्नानि भिन्नगत्वरूपताम आपद्यमानानि सतता युच्यते । ज्ञानस्य गत्वरूपतापत्तिरिति दशनमथ भाष्यकारस्य ।

—कथं महाभाष्य १।६।२६

एक दूसरे प्रवाद के अनुगार गन्तिय (अजयवनि) के मूत्रमहोन के कारण उमरी स्वतंत्र उपलब्धि नहीं होता । जिग तरह वायुपरमाणु व्यक्त या निमित्त के अभिघात से महति का प्राप्त होत है वस ही मूत्रम गन्तपरमाणु कारण (आभ्यन्तर प्रयत्न) के अभिघात से सहिष्यमाण हाकर गन्त रूप में बनत होत है ।

—(वाक्यपदीय १।११७)

ध्वनि या गन्त की निष्पत्ति के बारे में भन्तरि न एक और मत का निर्माण किया जा उनका अपना जान पडता है । निष्पत्ति की दृष्टि से गन्त दा तरह का है । प्राणाधिष्ठान और बुद्धि अधिष्ठान । प्राणमात्रागक्ति और बुद्धिमात्रागक्ति दोनों के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति हाती है और तब अर्थ का आभास होता है । बुद्धि गक्ति से प्राण गक्ति का अनुग्रह (महभाव) होता है । वह प्राण में विषय शक्तिकार का उत्पन्न है जिमसे प्राण विगिष्ट स्थान पर टकराकर विगिष्ट ध्वनि या वण का पदा करता है । यदि बुद्धिगक्ति से प्राण का अनुग्रह न हा—उमम किसी विषय गन्त की भावना न हा ता प्राणगक्ति के आघात से कवल अ-प्रकाशर ध्वनि पदा होनी है । प्राणगक्ति के द्वारा भी बुद्धिगक्ति का अनुग्रह हाता है । क्याकि बुद्धि गन्तकारकत प्राणगक्ति के बिना गन्त रूप में परिणत नहा हा सकती । प्राणगक्ति ऊपर उ ले हुई जिम वण विषयक प्रयत्न में प्ररित रहती है उम स्थान पर जाकर चान्तरती है । अम तरह से वण की निष्पत्ति होती है । वह विवत के रूप में पृथ्वी कवन उपग्राध धाय अर्थात् भन्त को ग्रहण करता है और गन्त तत्त्वरूप प्रतिभा में ता वास्तव में इन भेदा की छाया ही (अनुराग) रहती है

गद एतु प्राणाधिष्ठानो बुद्धि अधिष्ठानश्च स तु द्वाभ्या प्राणबुद्धिमात्रागक्तिभ्या प्रतिलधाभिव्यक्तिरथ प्रत्यापयति । तत्र प्राणा बुद्धि तत्त्वेनातराधिष्ट । स चोष्वमभिप्रवत्तो ज्वालावड्ढणस्थानेषु आक्षेपकप्रयत्नानुविवायो प्रतिबिघातविधत्तेन नित्यगदोपग्राहिणा विवतते । स च ससष्टप्राप्तशक्ति

विवृत पृथिवीकल्लयप्रोधधानादिवदभेदमुपगह्णाति । भेदानुरागमात्र च परस्मिन्भेदे शब्दात्मनि सन्निवेशयति ॥११८॥

—वाक्यपत्नीय, हरिवृत्ति १११८ पृष्ठ १०५

## वर्ण सावयव और निरवयव

प्राचीन वैयाकरणानां वर्ण के सावयव और निरवयव पक्ष पर भी विचार किया है । यद्यपि सावयव और निरवयव दोनों रूप में वर्ण पर विचार किया गया है परन्तु सिद्धान्तरूप में निरवयव पक्ष को अधिक मान्यता दी गई है । भत हरि ने वर्ण के लिए विभाग शब्द का भी प्रयोग किया है । विभक्त किए जाने के कारण वर्णों का विभाग कहते हैं । (विभज्यन्ते इति विभक्त्वा वर्णा ) और कही कही वर्ण के अवयवों के लिए मात्रा शब्द का भी व्यवहार किया है । निरवयववर्णपक्ष में मात्रा विभाग कल्पित होते हैं तदुच्यते निरवयवेषु वर्णेषु मात्राविभागाध्यवसाय —वाक्यपत्नीय हरिवृत्ति १।८६) ।

भत हरि ने वर्णतुरीयाश (वाक्यपदीय १।६३ हरिवृत्ति) और तुरीयतुरीयक (वाक्यपत्नीय १।७३ हरिवृत्ति) शब्दों का व्यवहार किया है जो वर्ण के सावयव पक्ष में ही मायक हो सकते हैं । वपभ क अनुसार तुरीयतुरीयक का अर्थ वर्ण की पाठ्यगीकता है (तुरीयतुरीयमिति चतुर्थस्य चतुर्थो भाग षोडशी कला पृष्ठ ७६) । व्याकरण मप्रदाय में वर्ण की चतुर्थ या पाठ्यगी कला प्रसिद्ध नहीं है । परन्तु भत हरि के समय में तत्रो में इस तरह के विचार प्रारंभ हो गए थे जिसका प्रभाव भत हरि पर पड़ा है । वर्ण की पाठ्य कलाओं का उल्लेख गवागम में मिलता है

अमो चाकाराद्या स्थितिमत प्राणे तुष्टिषोडशकादिस्थित्या एका तुष्टि संधी कस्यार्धाधभागेन प्रलयोदययोर्बहिरपि पञ्चदशदिनात्मककालरूपता तत्रत इति त्रियय कलाश्चोक्त्वा षोडशयेव च कला विसर्गता ।

—परार्त्रिका पृष्ठ २००, २०१

कश्मीर शवागम में विसर्ग ह्कार का आधा माना जाता है और विश्वय उसका भी आधा । वर्ण जब निरवयव है उपयुक्त मत कम ठीक है ? इसके उत्तर में अभिनव गुप्त का कहना है कि सब कुछ अनवयव है क्योंकि सब एक चिन्मय में अवभासित है । तथापि स्वातन्त्र्य के कारण ही अवयव के अवभास होने पर भी अनवयवता ही अविनश्यती (अनपायिनी) है । उस ही वर्ण के विषय में भी समझना चाहिए । वर्ण की उत्पत्ति हाँपना है । अथवा दन्त्य आच्छेद कण्ठ्य, तालय आदि वर्णों में क्रम से प्रसारित होना वाली वायु कम कठ वा हनन का ताप पर आघात करती है । यदि दोनों स्थान पर युगपत् आघात मान तो दाना ध्वनियाँ समकालिक हो जाएँगी और कण्ठस्थान में उत्पन्न ध्वनि तालयज जान पड़ने लगेगी । पश्चात् प्रतीयमान होने के कारण स्वाम और नाद को अनुपदान कहते हैं । जिस तरह द्विमानिक त्रिमात्रिक के गम में एक मात्रिक द्विमात्रिक पड़ ही रहते हैं उसी तरह मात्रिक में भी अवभासा आदि का योग मानना चाहिए । इस तरह वर्ण में पाठ्य कलाएँ संभव हैं । ये ही कलाएँ ह्लादनामात्र चित्तवृत्ति के अनुभावक होकर स्वर कही जाती हैं



## वर्ण सार्थक और निरर्थक

वयाकरण वण को माथक और निरर्थक मानता है। जहाँ अथव्य व्यनिरव के आधार पर वण साथक जान पड़ता है वहीं वह अथवानु है। अथय अथहीन माना जाता है। वण के अथयुक्त हान का मुख्य आधार तब है। पद जो वण समुदाय है माथक देखा जाता है। यदि वर्णों का सघात माथक है तो उसका एक अथव्य, वण भी माथक है। भाष्यकार न टसक समथन म कहा है कि यदि एक तिल म तेन निवन मवता है तो एक पसरी तिल म भी तेन निवन मवता ह। यदि एक मित्रता-वण म तेन अमभव है तो बालू जी डेर मे भी सल अमभव है। अन यदि वण-समुदाय माथक है तो प्रत्यक वण भी अथयुक्त होगा। इसक अतिरिक्त एक एक अक्षर वाले धातु प्रातिपदिक, प्रत्यय और निपात माथक दखे जा सकत है। वण व्यन्यय (एक वण के स्थान पर दूसरा वण आ जाना) स दूसरा अथ दखा जाता है और एक पद स एक वण क हटा देने म अथ बदल जाता है। इन कारणों से वण की माथकता भिन्न होती है।

वण का निरर्थक मानन वाला का कहना है कि प्रत्यक वण का अथ अनुभव म नही आता इसलिए वण का साथक नही मानना चाहिए। वण क व्यन्यय (एक पद म वण का स्थान परिवर्तन) अपाय (लाप) उपजन (आगम) और विकार (आदस) हाने पर भी कभी-कभी वही अथ देखा जाता है। इससे भी वण की अथहीनता चोतित हानी है। यदि प्रत्यक वण माथक हा और उदाहरण के लिए कूप सूप यूप म विशेष अथ क म और य का मान लिया जाय तो उप शब्द यथ हा जाता है। इसलिए प्रत्यक वण म अथवत्ता न मान कर वर्णों क सघात म ही विशिष्ट अथ की रोधकता गकिन माननी चाहिए।

न कूपसूपयूपानाम-वयो-यस्य विद्यते।

अतोऽर्थांतरवाचित्व सघातस्यैव गम्यते ॥

—वाक्यपदीय २।१७० (लाहौर मस्वरण)

अभिनवगुप्त न वण की वाचकता का समथन करत हुए कहा है कि सकार परमानंद अमृत स्वभाव वाला है। वह अपने आविभाव क साध मपूर्ण वण समुदाय का आशेष कर उत्तमिन हाना है। देखा जाता है कि हमरे के अभिप्राय और इगिन का गीघ्र ही समझ जान बाने व्यक्ति गगन गवय गो आदि शब्दों के आदि म अथवा गीच म स्थित ग आदि वण या मात्रा म ही अभीष्ट समझ जान ह—अथान ग मुनत ही वक्ता का अभिप्राय गगन से है गमा समझ जान हैं—उतन मात्र स सत्य का सकेत हा जाना है। वस्तुन प्रत्यक वण म वाचकता हाती है। अभीनए कहा है—

शब्दाथप्रत्ययाना इतरेतराध्यासात् सकार । तत प्रविभागसयमात् सवभूत  
स्तज्ञानम ।

—यागसूत्र ११७

अ क आदि एक वण वाच निपात त्रिभक्ति आदि वाचक दखे जान हैं। व मापाप म रहत हुए भी पारमाथिक प्रमातप म तीन रहत है। और इन्ना स परक -

मुम् अतत्त्वभूत कभी निषेध के रूप में और कभी समुच्चय के रूप में निवृत्त या समुच्चय के अर्थ को व्यक्त करता है। भनृ हृत् का भी ऐसा अभिप्राय है जब वे वाक्य-विचार के प्रसंग में कहते हैं—

पदमाद्य पथकस्य पद साकाक्षमिष्यपि (वाचस्पतीय २।२)। इसलिए वे व्याकरण में शब्दागमों में मात्र लीला आदि के शब्दों में अक्षरवर्ण के माध्य पर निवृत्त किया जाता है। तथा च वेदव्याकरण पारमेश्वरपु शास्त्रेषु मन्त्रोभादिष्वप्यु अक्षर-वर्णमाभ्यात निवृत्तमुपपन्नम्।

—पराशक्ति २३६ २४१

### शब्द

गण शब्द का प्रयोग लक्ष्य धातु आदि के रूप में भी किया जाता है। किन्तु व्याकरण शास्त्र में विचार के क्षेत्र में शब्द शब्द मदा उम ध्वनि के लिए आता है जिसके उच्चारण से किसी विषय अर्थ का ज्ञान होता है। भनृ हृत् न तेम गणों के लिए उपादान गण का प्रयोग किया है। वाचक गण को उपादान कहते हैं। कर्त्तृत्व अर्थ का ग्रहण होता है अथवा उससे अर्थ ग्रहण स्वरूप में अध्यापित होता है अथवा वाचक शब्द स्वतः माना अकारण हो जाता है क्योंकि कर्त्ता अर्थ के अकारण से पहचान संशय होकर शब्द का उच्चारण करता है इसलिए माना गण स्वयं अर्थमय हो जाता है।

सप्रह म उपादान का विन्ययन दांतीन तरह से किया गया है। अयुपत्तिपथ में गण अपने स्वरूप का ही निमित्त मान कर अर्थ का ज्ञान होता है। इसलिए वह उपादान है वाचक है। युपत्तिपथ में वह अर्थ को ध्यान में रखकर निमित्त होता है गण की युपत्ति का प्रयोजन होता है। जो गण युपत्तिपथ में समन्वित अर्थ रखता है। इसलिए समन्वित गोजानिरूप अर्थ का वह निमित्त होता है। इस दृष्टि से वह स्वरूप से भिन्न है और उपादान अर्थान् मूल कारण है। कुछ लोगो के मत में उपादान धातु होता है क्योंकि वह वह है तथा व्यपत्ति के द्वारा मन्त्रार्थ निषेध में समर्थ होता है।

एव हि सप्रह पठयत—वाचक उपादान स्वरूपवान् अयुपत्तिपथे। युपत्तिपथे त्वर्थाविहित समाधित निमित्त शब्दयुपत्तिपथमणि प्रयोजकम्। उपादान धातुश्च ह्येवे। मौज्यनिमित्त व्यपत्तिने सम्बन्धधातुधायस्य शब्दवत्त्वात् इति।

सप्रह वाचस्पतीय १।४४ इतिपत्ति म उद्धृत

वपथ व अनन्तर प्रयोजक उपादान — एता पाठ ज्ञाना चाणि।

भनृ हृत् के मत में गण का उपादान उचित कहते हैं कि उसमें समुच्चय वर्ण समूह का उपादान होता है। स्वरूप पद में अथवा वाचक नया होता इसलिए यों से अर्थ अर्थ ज्ञान या अर्थ ज्ञान होता है।

उपादानो वा समुच्चय उपादान। तथाहि स्वरूपपदायकपु अथवानामनुपादपदाद विभागात्प्रतिपत्ति।

—वाचस्पतीय इतिपत्ति १।४४

उपादान शब्द का तरह का होता है। यह भेद कल्पित है वास्तविक नहीं। शब्द का उच्चारण के बाद शब्द के स्वरूप और उसके अर्थ के अवधारण में दा तरह की क्रिया मन्वी जाती है। इस आधार पर दा तरह के उपादान शब्द का अनुमान किया जाता है। एक प्रत्यायन का निमित्त होता है और दूसरा अर्थ का प्रत्यायक, प्रतिपादक होता है। पहला प्रत्यायन का निमित्त इसलिए माना जाता है कि ये प्रत्यायन के आश्रय प्राप्त है और श्रुति द्वारा शब्दाय की प्राप्ति प्रत्यायन द्वारा ही होती है। दूसरे उपादान का प्रतिपादक या प्रत्यायक इसलिए कहते हैं कि वह केवल प्रत्याय्य परतत्र होता है। स्थान-वर्ण के अभिधान से शब्द की अभिव्यक्ति हा जान पर शब्द में अर्थ के आकार का प्रतिबिम्बिक संरक्षण हो गया रहता है शब्द अथाकार का हो गया रहता है और उसमें अर्थप्रकाशन की शक्ति की पूर्णता आ गई रहती है। निमित्त और प्रतिपादक में बड़ा भेद है। कुछ लोग लघानुसंहार का निमित्त और उपजनितक्रम को प्रतिपादक या प्रत्यायक मानते हैं। क्योंकि एक पद में स्थित वर्ण अलग अलग रूप में केवल निमित्त होता है। परंतु अतिम वर्ण के उच्चारण ज्ञात होने समुदित रूप में एकाकार बुद्धि में जब भागित हो उठते हैं वाचक कहे जाते हैं। दूसरे शब्दों में अर्थ को निमित्त और क्रमवान को प्रतिपादक कहते हैं। वक्ता की दृष्टि से अक्षर क्रमवान का निमित्त होता है। परंतु श्रोता की दृष्टि से यह क्रम उलट जाता है। अर्थात् क्रम अक्षर का निमित्त होता है। क्योंकि उच्चरित शब्द क्रमवान के रूप में श्रोता तक पहुँचता है परंतु उस क्षण श्रोता की प्रत्याय्य प्रत्यायक शक्ति अक्षररूप में ही रहती है। कुछ प्राचीन आचार्य निमित्त और प्रतिपादक में स्वभावतः भेद मानते हैं। जो लोग वाच्य-कारण में भेद वाल मिद्धात के अनुगामी हैं उनके अनुसार निमित्त और प्रतिपादक में भेद वाच्य-कारण में भेद का अनुसार है। कुछ लोगों का मत है निमित्त और प्रतिपादक एक ही शब्दात्मा के दो पहलू हैं। दो तरह की शक्तियों में दा तरह की बुद्धि भावना का हा जाने के कारण एक ही दो रूप में स्थित होता है। कुछ आचार्य शब्दाकृति का निमित्त और शब्द-व्यक्ति का प्रतिपादक मानते हैं। उनके विपरीत कुछ चिंतन शब्द-व्यक्ति को निमित्त और शब्दाकृति का वाचक मानते हैं। पुनः कुछ आचार्य शब्दाकृति और शब्द-व्यक्ति में भेद और कुछ आचार्य उनमें अभेद मानते हैं।

उपादान शब्द निमित्तरूप में भी स्वरूप और पररूप का प्रकाश है। जिस अक्षरों में धीजरूप से स्थित प्रकाश दूसरे प्रकाश का कारण होता है। शब्द में व्यक्त होता है उसी तरह बुद्धि में धीजरूप में स्थित शब्द परिष्कार करता है। कारण का अभिधान में ध्वनिरूप में व्यवहृत शब्द स्वरूप और पररूप का प्रकाश है। भनहरि का मत है बुद्धि में विभिन्न शब्दों की भावना रहती है। स्पष्टता और मुख्यता उसके परिष्कार है। विवक्षा हान पर वह शब्द प्रकट होता है। ध्वनिभेद से उसके आकार में भेद और वक्ता की दृष्टि से पहले शब्द का बौद्धिक ग्रहण होता है और पहले शब्द का किमी अर्थ से सम्बन्ध स्थापित करता है।

तरह अन्न कणा के सघात से उत्पन्न बल अभिव्यक्ति ज्ञानी है वैसे ही नाद परमाणुओं के सघात से शब्द की स्थूल अभिव्यक्ति ज्ञानी है। शब्द ध्यानप्राप्त होता है। शब्द अपने आप में अविद्युत है जबकि नाद या ध्वनि विनियामक है। नाद के रूप में विद्युत होने से उसमें नादगत गुणों का काम शक्ति का आभास होता है और वह विचार को प्राप्त होता हुआ जान पड़ता है। जल जलगत चंद्र प्रतिबिम्ब जल की चंचलता से चंचल जान पड़ता है परंतु बस्तुतः उसमें चंचलता नहीं है। उसी तरह अभिजातमा शब्द भी भद्रमयी नादवति कारण विचित्र अवस्था को प्राप्त हुआ जान पड़ता है।

ज्ञान में ज्ञान का स्वरूप और ज्ञेय का स्वरूप दोनों दिखाई देते हैं। ज्ञान पद परतंत्र होता है। और ज्ञान के स्वरूप का स्मरण होता है। इससे ज्ञान के स्वरूप का अनुभव अवश्य होता है। इसी तरह शब्द में शब्द का स्वरूप और अर्थ स्वरूप दोनों अभिन्न होते हैं। जहाँ ज्ञान ज्ञेय परतंत्र है वहाँ शब्द भी अभिधेय परतंत्र है। अर्थ के लिये शब्द का प्रयोग होता है। इसलिये शब्द अर्थ और अर्थने स्वरूप दोनों को प्रकृत करता है। याकरण की दृष्टि में अर्थ में प्रत्यय आदि न हो सकने के कारण स्वरूप का प्रधानता दी जाती है। (वाक्यपदीय १।६७।१)।

अनर्थक शब्द की अभिव्यक्ति में काम करने वाली प्रमगक्ति का बार बार उल्लेख किया है। शब्द पढ़ने प्रमवान होता है। शब्द स्वतंत्र रूप में अपने अवयवों से परिपूर्ण है। किंतु जब वक्ता की बुद्धि में लीन रहता है उसके सभी भाग एक में मिल गए रहते हैं। सभी अवयवों का उपसंहार रहता है वह अत्रय ही गया रहता है। किंतु विवक्षा जगत् पर अत्रय रूप में वर्तमान शब्द पर वाक्य शक्ति के धर्म को ग्रहण करना हुआ अपने प्रत्येक अवयव का ध्यान करता हुआ प्रमग प्रमवान का रूप बना है। यह व्यापार जिम शक्ति के द्वारा होता है उस प्रमगक्ति कहते हैं जिम तरह वक्ता के शब्द की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में शब्द प्रमग प्रमवान अत्रय और पुन प्रमवान होता है उसी तरह धाता की दृष्टि में भी अभिव्यक्ति के उपयुक्त मोन रूप में जाना है। यद्यपि जब शब्द मुनता है शब्द प्रम रूप में जान पड़ता है, पूरा मुन पन पर शब्दों के अवयव एक में मिल जाते हैं और विभाग मिश्रणा जाता है प्रम का ज्ञान मद पड़ जाता है। पुन दूसरा का वर्तमान प्रमग शब्द प्रमवान में उठता है। अत्रि के मगत् अभिव्यक्ति ज्ञान के कारण शब्द का प्रमरूप में जान पड़ना स्वाभाविक है। एकदुद्धिनिवृत्त के रूप में शब्द का प्रतिगृह्यतेय के रूप में ज्ञान भा अभिभाविक होता है किंतु प्रमक पूर्व की अवस्थाम भी शब्द का प्रमवान जाना चिन्त्य है।

तत्र स्वयं शब्द भी जाना है और शब्द भी जाना है। तीप में शब्द का प्रत्यय जाना है और स्वयं प्रकाश का भा। शब्द भी एक तरह का प्रम प्रकाश है। अन्तिम प्रमम भी शब्द का अन्तिम है। वत् प्रकाश है। वत् प्रकाश है। वत् कारण भा और वत् भी है।

भौतिक तज म गद तज में अन्तर यह है कि भौतिक प्रकाश वस्तु उम प्रकाश म मवथा भिन्न हा सकती है जैसे दीप के प्रकाश स गद प्रकाश म प्रकाशित वस्तु भन हरि क मत म उम प्रकाश म भि पडती है पर वस्तुत भिन नही है ।

अथमन्तर्मात्रा शब्दोऽनपायि यपायिनोभ्या द्वाभ्या शब्दशक्तिभ्यामनुगत । तस्यन-  
सिमात्म यविभवतमपि प्रकाशकत्वे प्रकाश्यत्वे विभक्तमिव प्रत्यवमासते ॥

—वाक्यपनीय २।३० पर हरिवृत्ति, लाहौर संस्करण

जब भन हरि शद और अथ (प्रकाशक और प्रकाश्य) की अभिनता की चचा करत हैं उम समय व उम दगन का मानत जान पडत हैं जा अथ (वस्तु) को बुद्धिमन्तात मानता है । बिना बौद्धिक अथभावना के बाह्य अथ-व्यवहार सम्भव नही है । बुद्धि मन्तात अथ बुद्धिमन्तान्त गद का एक पहलू है दाना एक ही तत्त्व के ग रूप हैं ।

एकस्थवात्मनो भेदो शब्दार्थाव पृथक्स्थितौ ।

न हि प्रतिल धाय रूपविपर्यासा बुद्धिमारेण बाह्य वस्तु व्यावहारिकीष्यथ  
क्रियासु समथ भवति । तस्मादतनिविष्ट रूपेणार्थेन सर्वो व्यवहार क्रियते ।

—वाक्यपदीय २।३१ हरिवृत्ति ला० म० पृष्ठ २८

वाक्यपदीयकार के मत मे ध्वनि के उच्चारण और गद स्वरूप के परिमाण क बीच म कुछ गद जान क महायक माघन है । व कर् है पर उनका स्वरूप समन्ता कठिन है । मवत्न और प्रत्यक्ष क बीच म जस कुछ मानमिक क्रिया ज्ञानी श्रवण ध्वनि मवत्न और गद प्रत्यक्ष क बीच भी अवश्य हानी ज्ञानी ।

प्रत्ययरनुपास्येष प्र हणानुगुणस्तथा ।

ध्वनि प्रकाशित गदे स्वरूपमवधायते ॥

शब्द के आकार-ग्रहण का प्रकार



करण को मानते हैं। इस तरह क बौद्धिक अवधारण को वातिककार न (वमकीति और उनक 'याह्याता प्रतावर गुप्त) चित्र बुद्धि' कहा है

अवधारणापरपर्याय ज्ञानमपि बुद्धयाह्यात करणाधिकरणमिति साह्या म यते । एतच्चावधारण चित्रबुद्धिरिति वातिककारीया मय ते ।

—स्फोटसिद्धि टीका पृ० १३३

स्फोट सिद्धि की व्याख्या म ऋषिपुत्र परमेश्वर न यहाँ अवधारण का समस्त वण विषयक स्मरण माना ह। उसके मत म श्रवण के बाद शब्द का स्पष्ट परिचान ही अवधारण है

अवधारण समस्तवण विषय स्मरणमित्याचक्षते । परमाथतस्तु प्रत्यक्षज्ञानमेवतत । ध्वनिसंस्कृतधोत्रेन्द्रियजनितत्वात् । न अथवा स्फुटप्रकाश उपपद्यत इति ।

—चाह्यदेव शास्त्री द्वारा वा० प० १।८५ की टिप्पणी म उद्धृत पृ० १३३

मत हरि के अनुसार शब्द का आकार 'म'विकृतके द्वारा पाव भागा म निम्न रूप म बवता और श्रोता दोनों म मूतमान होता है। 'ग'न रूप म उच्च रूप म उपागु रूप म परमापागु रूप म और सनिहितक्रम रूप म। इनम शन और उच्च अभि'यजक ध्वनियों के पीछे रहन वाली प्राणशक्ति अथवा बलाघात शक्ति की शक्ति पर निर्भर करना ह। बलाघात के तार या म'द से ध्वनि भी उच्च या 'ग'न रूप म भासित होगी। उच्च ध्वनि क विषय म महाभाष्य (१।२।२८) म आयामो दाहण्यम अणुता खस्येति उच्च करणि ग'दस्य तिया है। गात्रा का निग्रह (स्त'घता) आयाम है। स्वर की रगता (अग्नि ग्धता) दाहण्य है। कण्ठ की मवतता अणुता है। य सब 'ग'न के उच्च करण है। नीच ध्वनि क विषय म बड़ी तिया ह—अथवसगो मादवम उरुता खस्येति नीच करणि ग'दस्य। गात्रो की गिधिनता का नाम अ'ववमग है। स्वर की स्निग्धता मा'व है। कण्ठ की महता उरुता है (कण्ठविवर क महत होन के कारण वायु शीघ्र ही निरल जाती है। फलत गलावयव गुप्ता न हो पात हैं और स्निग्ध बन रहत हैं—'याम १।२।३०)। महाभाष्यकार के अनुसार उर कण्ठ और गिर के ममान प्रथम पर भा उच्च निच्च भाव अवस्थित है। कौट के मत म प्रथम का अथ स्थान है। 'ग'न (बवता) क तानु शक्ति स्थाना म जो ऊच्च और अधरभाग म युक्त है उच्च भाग म निम्न ध्वनि उच्च (उत्पात) है और अधर भाग म निम्न नीच (अनुपात) है। उच्च और नीच ग'न उच्च और अधरभाग क उपन ग'न है। षडज शक्ति स्वर त्रिषेध की तरह उच्च-नीच का अनुभव भी अस्थायमग्य है। (कप' महाभाष्य १।२।२६ ३०)। उपागु ग'न का उम अवस्था न कहन है जिनम प्राणशक्ति का मवगता रहता है किन्तु दूगग का ध्वनि उम मवगजन ध्वनि का य'ग नही कर म'ना है। य' मू'म हानी है और द्ग'म म अमवध हानी है

तत्र प्राणव्यनुपह सतवय यत्र ग'नरूप परमवेषे मयति तदुपांगु।

—वाकरणा' १।१८ हरिगि, सा'गेर मन्तरण पृ० १३

य'व ग'न प्राणशक्ति क मवगता म र'न कवन बुद्धि म मन्त्रान् र'ना है और

बुद्धि गवित म ही सचालित रहता है उम अवस्था का परमापागु गान्त स चातिन करत हैं—

अन्तरेण तु प्राणवत्यनुग्रह यत्र केवलमेव बुद्धी समाविष्टरूपो बुद्धयुपादान एव गदत्मा तत परमोपागु ।

—वाक्यपीय २।१६ हरिवृत्ति पृ० १७ ।

अव्यक्त गद म आरोपित भ्रम का बुद्धि द्वाग मा गानार तो होता है परंतु अभिध्यजक विमी भी निमित्त स उमका सम्पक नहीं हाता वह निम्पद पर बुद्धिग्राह्य त्रममय रहता है । उम अवस्था का प्रतिसहृत्त्रम कहन हैं

यत्र तु प्रतिसहृत्त्रमगवितयोगया बुद्धया निमित्तात्तरोपसम्प्राप्तमयक्ते शब्दे ध्यारोपित हि गब्दाना त्रमरूपमिथ साक्षात्त्रियते तत् प्रतिसहृत्त्रमम् ।

—वही पृ० १- ।

इमस परे भी एक अवस्था हाती है । बुद्धि म गान्त जत्र त्रमरत्निरूप म अवस्थित रहत है, मवथा उमम लीन हो गए रहत हैं वे अनिवचनीय मे हात है और व्यागपान गवित से परे हैं

गब्दाना त्रमरूपोपसहार विषयाया बुद्धावसम्प्रख्यात तत्त्वमिथ प्रतिपद्यमा नायामारभ्यत गब्दातीतो यवहार ।

—वही पृष्ठ १७

विवक्षा हान पर प्रवक्ता का गान्त बुद्धि म प्रयान म प्राण मे, जिह्वेन्द्रिय म त्रमग प्रापारित हाता हुआ यत्रन होता है और श्राना का भी त्रमरूप मे भामित हाता है ।

## अल्प शब्द और महत् शब्द

अल्पता और दीघता परिमाण है । त्रमनिण गुण है । द्रव्य कं समवायी ह । गान्त ता एक दृष्टि स स्वय गुण है त्रसनिए उममे अल्पता या महत्ता (दीघता) कस मम्भव है ? दूसरे शान्त म अल्प और दीघत्व मून पत्तय के धम है । गद तो अमून ह । अत शान्त अल्प या महत् कसे कहा जा मक्ता है ? भन हरि न इम प्रश्न का उत्तर दा तत्रह से दिया है । पहना तो यह कि शान्त अल्प या महत् उपचार (लक्षणा) के कारण कहा जाता है । एक सुई छांटी कही जाती है कयानि वह अल्पस्थान धेरती है । एक पवत बडा कहा जाता है कयोकि वह अधिक स्थान धेरता है । इस सादृश्य के सहारे जा गान्त कम स्थान मे फत्रता है वह अल्प और जा दूर तक फलता है उसे मत्तान या दीघ कहत ह । शब्द की यह व्याप्ति अनुमान से जानी जाती है । दूसरा यह कि व्याकरणशान्त लागत व्यवहार को आधार मानकर चलता है । सबत्र अथव्यवस्था का कारण लोक प्रमिद्धि है । लोक का छेत् दने पर पदाय व्यवस्था के निणय म कठिनाद् पडता है । कयानि तत्र अनवस्थित ह उमका निश्चय डावाडोल है और गान्ता मे मिद्वान्त विषयन परम्पर मतभेद पाया जाना ह । इसलिए लोकविनात उपयुक्त आधार है । लोक म शान्त का अल्प और महत् गान्त से व्यक्त करत हैं । अत गद को अल्प या महत् कहा जाना है (वाक्यपदीय १।१०४, हरिवृत्ति और वपभ टीका) ।

करण को मानते हैं। इस तरह क वीद्विक अवधारण को वार्तिककार न (यमकीति और उनके याह्याता प्रनाकर गुप्त) चित्र बुद्धि कहा है

अवधारणापरपर्यायि ज्ञानमपि बुद्ध्याख्यात करणाधिकरणमिति साह्या  
म यते। एतच्चावधारण चित्रबुद्धिरिति वार्तिककारीया मय ते।

—स्फोटसिद्धि, टीका पृ० १३३

स्फोट सिद्धि की याह्या म ऋषिपुत्र परमद्वर न यहाँ अवधारण का समस्त वण विषयक स्मरण माना ह। उसके मत म श्रवण के बाद शब्द का स्पष्ट परिचान ही अवधारण ह

अवधारण समस्तवण विषय स्मरणमित्याचक्षते। परमाथतस्तु प्रत्यक्षज्ञानमेवतत।  
ध्वनिसस्कृतश्रोत्रेद्रयजनितत्वात्। न अथया स्फुटप्रकाश उपपद्यत इति।

—चाण्डेव शास्त्री द्वारा वा० प० १।८५ की टिप्पणी म उद्धृत पृ० १३३

मत हरि के अनुसार शब्द का आकार 'मग्नित्व' द्वारा पाच भागो म निम्न रूप म वक्षता और श्रोता दानो म मूतमान होता ह। 'ग' रूप म उच्च रूप म उपागु रूप म परमापागु रूप म और सनिहित्वरूप रूप म। इनम 'ग' और उच्च अभियजक ध्वनियो के पीछे रहन वानी प्राणशक्ति अथवा बलाघात प्राप्ति की शक्ति पर निर्भर करना है। बलाघात 'क' तार या म' से ध्वनि भी उच्च या 'ग' रूप म भासित होगी। उच्च ध्वनि क विषय म महाभाष्य (१।१।२८) म प्रायामो दारण्यम अनुता हस्येति उच्च करणि शब्दस्य लिता है। गात्रा का निग्रह (स्त धता) प्रायाम है। स्वर की स्थिता (अग्नि स्थिता) दारण्य है। कण्ठ की सबलता अनुता है। य सब शब्द के उच्च करण है। नीच ध्वनि क विषय म वही लिता है—अववसर्गा माववम उरता तस्येति नीच करणि शब्दस्य। गात्रा की गिनितता का नाम अववगम है। स्वर की स्निग्धता माग्ध है। कण्ठ की महत्ता उरता ह (कण्ठविवर के महत् होन क कारण वायु शीघ्र ही निवृत्त जाती है। फलत गलावयव गुप्ते न हो पाते है और स्निग्ध बन रते हैं—याम १।२। ०)। मग्नभाष्यकार क अनुसार उर कण्ठ और गिर क ममान प्रथम पर भी उच्च निच्य भाव अवस्थित है। कय क मत म प्रथम का अर्थ स्थान है। ग' (वक्षता) क तात्तु प्राप्ति स्थाना म जो ऊध्व और अधरभाग म युक्त हैं उध्व भाग म निवृत्त ध्वनि उच्च (उगत) है और अधर भाग म निवृत्त नीच (अनुगत) है। उच्च और नीच ग' उध्व और अधरभाग क उपर ग' हैं। पडज प्राप्ति स्वर विषय की तरफ उच्च-नीच का अनुभव भी प्रायामगम्य है। (कय मग्नभाष्य १।२।०६ ०)। उपागु ग' का उम अवस्था का कय ३ त्रिमम प्राणशक्ति का मरण ता रता है किन्तु दूमग का स्थिति उम सबगजय ध्वनि का स्थान नहा कर मरता है। वह मूमम शानी है और दूमग म ममवद्य गता है

तत्र प्राणवद्यनुपह शब्दय यत्र शब्दरूप परस्मयद्य भवति तदुपागु।

—वाचस्पत्याय १।९ इतिरिति साह्यो मग्नभाष्य पृ० १३

अव ग' प्राणशक्ति क मकार म स्थित कवन बुद्धि म मशान्ता रता है और

बुद्धि शक्ति से ही मंचालित रहता है उस अवस्था का परमोपायु शब्द स चातित  
कर्म है—

अतरेण तु प्राणव्रतमनुग्रहं यत्र केवलमेव बुद्धौ समाविष्टरूपो बुद्धयुपादान एव  
गवात्ना तत परमोपायु ।

—वाक्यपनीय २।१६ हरिवर्ति पृ० १७ ।

अथवा शब्द में आरोपित श्रम का बुद्धि द्वारा या शकार तो होता है परन्तु  
अभिव्यक्त किमी भी निमित्त से उसका सम्पर्क नहीं होता वह निम्न पर बुद्धिग्राह्य  
क्रमय रहता है । उस अवस्था का प्रतिसहृत्तम कहते हैं

यत्र तु प्रतिसहृत्तमशक्तियोगया बुद्ध्या निमित्तात्तरोपसम्प्राप्तमव्यक्ते शब्दे  
ध्यारोपित हि गवात्ना श्रमरूपमिव साक्षात्किपते तत् प्रतिसहृत्तमम् ।

—वही पृ० १- ।

श्रम पर भी एक अवस्था होती है । बुद्धि में शब्द श्रमरहित रूप में अवस्थित  
रहते हैं शब्द का उमम नीन हो गए रहते हैं व अनिवचनीय स हान हैं और व्याख्यान  
शक्ति से पर है

गवात्ना श्रमरूपोपसहार विषयाया बुद्ध्यावसम्प्रस्थात् तत्त्वमिव प्रतिपद्यमा  
नायामारभ्यते गवातीतो व्यवहार ।

—वही पृष्ठ १७

विवस्था हान पर प्रवचना का शब्द बुद्धि में, प्रयत्न में प्राण में निह्वेन्द्रिय में  
क्रमय व्यापारित होता हुआ व्यक्त होता है और श्रान्त का भी श्रमरूप में भागित  
होता है ।

### अल्प शब्द और महत् शब्द

अल्पता और दीघता परिमाण है । श्रमण गुण है । द्रव्य के समवायी हैं । शब्द तो  
एक दृष्टि से स्वयं गुण है श्रमण उमम अल्पता या महत्ता (दीघता) कम सम्भव है ?  
दूसरे शब्द में, अल्प और दीघत्व भूत पन्थ के धर्म हैं । शब्द तो अमृत है । अतः  
शब्द अल्प या महत् कस कहा जा सकता है ? भन हरि न इस प्रश्न का उत्तर ना तरह  
से लिया है । पन्था तो यह कि शब्द अल्प या महत् उपचार (तथ्या) के कारण कहा  
जाता है । एक सुई छोटी वही जानी है क्योंकि वह अल्पस्थान घेरती है । एक पर्वत बड़ा  
कहा जाता है क्योंकि वह अधिक स्थान घेरता है । इस सादृश्य के सहारे जा शब्द कम  
स्थान में फलता है वह अल्प और जा दूर तक फलता है उम महान या दीघ कहते हैं ।  
शब्द की यह व्याप्ति अनुमान से जानी जाती है । दूसरा यह कि व्याकरणद्वारा शब्दगत  
व्यवहार को आधार मानकर चलता है । शब्द अथर्ववस्था का कारण लोक प्रसिद्धि  
है । लोक का छोड़ने पर पदाय व्यवस्था के निणय में कठिनार्द्र पड़ती है । क्योंकि  
तक अनवस्थित है उसका निश्चय डीवाडोव है और शास्त्रों में सिद्धान्त विषय परम्पर  
मनभद पाया जाता है । इसलिए लोकविज्ञान उपयुक्त आधार है । शब्द में शब्द को  
अल्प और महत् शब्द में व्यक्त करते हैं । अतः शब्द का अल्प या महत् कहा जाता है  
(वाक्यपनीय १।१०४ हरिवर्ति और वृषभ टीका) ।

## शब्द का स्वरूप

ऊपर ध्वनि व आधार पर गणन स्वरूप पर प्रमाण जाना गया है। अथ व आधार पर भी उसके स्वरूप पर विचार किया जाता है। शब्द का उच्चारण अथपरिज्ञान व लिए ही किया जाता है। अथ अथ व आधार पर गणन का अर्थ स्थापित है। पतजलि न भी एसा ही किया है। गणन व स्वरूप व अथ म उनन नो प्रगिड वनन है।

“धेनोच्चारितेन सास्नालाद्गूल वकुदपुरविधाणिनां सप्रत्ययो भवति स गणन।  
अथवा

प्रतीतपदाथक लोथ ध्वनि गणन इत्युच्यते।”

—महाभाष्य पू० १ वीनहान मन्वरण  
इन दाना वानया व अथ म प्राचान काल स ही निवार चना आ रहा है। पहन वाक्य का मरल अथ यह है—जिसक उच्चारण स साम्ना लाडगूल वकुद गणन और भाग वान का बोध होता हा यह शब्द है। एमम सास्ना लाडगूल श्राति का उल्नय गा गणन व प्रमण म पतजलि ने किया है उस हटा दन पर उनक मत म गणन वी परिभाषा का रूप या होगा धेनोच्चारितेन (कल्पचित) सप्रत्ययो भवति स गणन।

इमम उच्चारण और सप्रत्यय य दाना गणन गणन व लमण पर प्रमाण डालत है। गणन वह है जा उच्चारित हाता हा और किमी अथ का प्रत्यायक हो। उच्चारण शब्द गणन के ध्वन्यात्मक स्वरूप को मानने लाता है। सप्रत्ययगणन गणन व सावेतिर रूप को यवन करता है।

पतजलि व दूसर वक्तव्य का अर्थ है नि प्रतीतपदाथक ध्वनि का गणन कहा जाता है। प्रतीतपदाथक वा अर्थ है लाक प्रचलित अर्थ। एान प्रचलित अर्थवाल ध्वनिका नाम शब्द है। पतजलि न महाभाष्य म अर्थ दा स्थाना पर प्रतीतपदाथक गणन का प्रयोग किया ह।

द्वयोर्हि प्रतीतपदाथकयो लोके विनोपणविशेष्यभावो भवति। न आदच्च शब्द प्रतीतपदाथक।  
—महाभाष्य १।१।१। प० ३६  
इहहि याकरणे धे वते लोके प्रतीतपदाथका शब्दा त निर्देशा क्रियते पशु अपत्य देवतेति। या वता कृत्रिमा टिपुभस ता ताभि।  
—महाभाष्य १।६।२३ प० २२३ वीलहान)

उन उद्धरण स दा यात स्पष्ट हो जाती है। एक ता यह नि आदच्च टि व अ श्राति प्रतीतपदाथक गणन नहा ह। दूसरी यह कि पशु अपत्य देवता श्राति प्रतीतपदाथक गणन ह। एस य स्पष्ट हो जाता है कि प्रतीतपदाथक गणन का अन्निप्राय ऐस गणनो स है जा सबभावारण व लिए ममान अर्थ रखते है और निरपथ रूप स यवहार म श्रात है। प्रतीतपदाथक गणन व लिए यहा पतजलि ने प्रतीतपदाथक ध्वनि गणन का यवहार किया है। वस्तुन प्रतीतपदाथक गणन स्पष्टताथ व लिए प्राचीन समय म यवहन होना या जमा नि कौन्य व निम्नलिखित वाक्य स स्पष्ट है

**‘प्रतीतशब्दप्रयोग स्पष्टत्वम्’**

—श्रीटल्य अथशास्त्र अधिवरण २ अध्याय १०, प० १३०

भाग १ त्रिवेद्रम सस्वरण ।

इमलिए स्पष्टायक ध्वनि का शब्द कहा जाता है। यह अभिप्राय महाभाष्यकार का जान पड़ता है ।

पहले बाल वस्त्रय म दूसरे वस्त्रय म थोडा भेद है। यदि सप्रत्यायक ध्वनि को शब्द माना जाएगा टि, घ, भ आदि कृत्रिम सत्ताएँ भी शब्द मानी जाएँगी। क्याकि टि आदि म भा सप्रत्यय किसी-न किसी का होता ही है। किन्तु टि आदि मवके लिए शब्द नहीं है। इसलिए सप्रत्यय के स्थान पर प्रतीतपदायक रखना पतजलि को अधिक उपयुक्त जान पडा हागा। दूसरा भेद लाक शब्द म ध्वनित है। शब्द की दूसरी परिभाषा म पतजलि न लाक शब्द भी रखा है। अर्थात् दूसरी परिभाषा लाक व्यवहार को सामने रखकर की गई है। पहली परिभाषा व अनुसार कृत्रिम सत्ताएँ भी शब्द है। दूसरी परिभाषा के अनुसार सामान्य रूप म व शब्द नहीं हैं। पतनी परिभाषा म सप्रत्यय प्रधान है। दूसरी परिभाषा म ध्वनि रूप प्रधान है।

इम विषय पर महाभाष्य क कतिपय व्याख्याताओं के मत का मध्ये म उल्लेख किया जा रहा है।

**येनोच्चारितेन सप्रत्यय भवति—**

—इम वाक्य के तीन अभिप्राय भत हरि न भिन भिन मत व के रूप मे दिखाए है। केचित मयते घोवा यमुच्चारते क्रमवान् अवर कश्चिदय अक्रम शब्दात्मा बुद्धिस्थो विगाहते। तस्मादथप्रतीति कुत यथवार्थांतरनिबधनो नार्थांतर प्रत्यापति एव स्वहृत्निबधनो नोत्सहते प्रत्यापयितुम ।

—महाभाष्यत्रिपादा प० ३, पूता सस्वरण

इसका अभिप्राय है कि कुछ भाग के मत म जिसका उच्चारण किया जाता है वह नमवान है। इनसे भिन एक सहतक्रम अथवा अमरहित रूप है जिमम वर्णों के क्रम अक्रम रूप मे रहन है वहा शब्द है। वह बुद्धि म रहता है। उसी से अर्थ की प्रतीति होती है। जस एक अर्थ म निश्चित शब्द किसी दूसरे अर्थ का प्रत्यायन नहीं करा सकता वसे ही उच्चारित शब्द अपन स्वरूप का ही प्रत्यायन करा सकता है उसम अर्थ किसी वस्तु का प्रत्यायक वह नहीं हा सकता ।

दूसरे आचार्य मानत है कि वण म भी भाग हाते है वण का तुरीयभाग वण जाति का यजक हाता है। इसी तरह पद म कद वण होते है तुरीयवण शब्द जाति का व्यजक हाता है। वण अमजमा हात है। एक समय म नहा हात। अतिम वण पदस्थ जानि व यजक है। वक्ष शब्द क उच्चारण स वक्षत्व व्यजित होता है। अर्थात् जाति से अर्थ की प्रतिपत्ति हाती है। यह अर्थ का स्वरूप स्फाट कहलाता है। यह शब्दात्मा है। यह नित्य है।

कुछ अर्थ आचार्यों की मान्यता है कि शब्द म दो प्रकार की शक्ति है—आत्म-प्रकाशन शक्ति और अर्थप्रकाशन शक्ति। जम दीप अपने का व्यक्त करता हुआ अर्थ

अर्थों का भी प्रकाशन है। इन्द्रिय म बाह्य अर्थ के प्रकाशन की शक्ति तो होता है किन्तु आत्मप्रकाशन शक्ति नहीं होती। इनके मत में उच्चारित शब्द का अर्थ है—उच्चारण और प्रकाशन।

इन तीनों मतों को मशौष में या कहा जा सकता है। पहले मत का अनुसार शब्द ध्वनि समूह के पीछे छिपी हुई बुद्धिमत् शक्ति विशेष है। दूसरे मत में शब्द जाति है। शब्द जाति का ही नाम स्फोट है। तीसरे मत के अनुसार शब्द वह ध्वनि है जो अपने स्वरूप का साथ ही अर्थ वस्तु का प्रत्यायक होता है।

कथं शेषनारायण अन्तर्भट्ट, नागेश आदि ने यहाँ स्फोट अर्थ माना है। उनका मत में पदस्फोट अर्थवा वाक्यस्फोट वाचक है।

महाभाष्यकार के प्रतीतपदायक शब्द भक्त हरि का अनुसार प्रतीतपदायकता का लिए प्रसिद्धि के लिए है। जो शब्द प्रसिद्ध है वही शब्द शब्द में यहाँ अभिप्रेत है। उदाहरण प्रतीत पदायक को प्रतीत पदायक (कर्मधारय) रूप में लिया है और ध्वनि को इसका अभिधेय माना है। शब्द ध्वनि में ही अपना स्वरूप पाता है। इसके लिए उक्त अर्थ प्रकरण शब्दान्तर की अपेक्षा नहीं होती।

शेषनारायण ने प्रतीतपदायक शब्द में बहुव्रीहि समाप्त माना है

प्रतीत पदार्थो यस्येति विग्रहः । युक्तं प्रतीतस्य पदाभस्यायमिति वा विग्रह इति तन्न ।

—सूक्तिरत्नाकर, हस्तलेख ।

अन्तर्भट्ट के अनुसार प्रतीतपदायक शब्द के आगे शब्दान्तर छिपा हुआ है। अर्थात् प्रतीतपदायकशब्द शब्द शब्द का विशेषण है।

नागेश ने प्रतीतपदायक को पदायकबोधक रूप में लिया है। उनका अनुसार पदायक बोधक रूप में प्रसिद्ध श्रोत्रप्राप्त ध्वनिसमूह का नाम शब्द है। किसी के मत में प्रतीतपदायक वाला वाक्य उन लोगों के लिए है जो स्फोट को नहीं मानते हैं किन्तु श्रोत्रप्राप्त ध्वनि को शब्द मानते हैं। उनका मत में समुदित वणसमूह का किसी वस्तु विषय बुद्धि द्वारा उपपादित सस्कार शब्द है। (सूक्ति रत्नाकर हस्तलेख)

शब्द नित्य है। मसृतव्याकरणद्वारा शब्द शब्द को वाच्य मानकर भी विचार किया गया है और शब्द की नित्य मानकर भी विचार किया गया है। किन्तु मिथ्या रूप से शब्द नित्य ही माना जाता है। जहाँ शब्द शब्द का रूप में माना जाता है वहाँ भी प्रवाहिनित्यता रूप में नित्यत्व अप्रतिष्ठित रहता है।

पाणिनि ने तदग्नित्य सज्ञाप्रमाणत्वात् १।२।५३ कथन के रूप में शब्द की नित्यता का सूक्त किया है। यादिक ने नित्य और अनित्य विषय पर पर्याप्त विचार कर शब्द की नित्यता का समयन किया था। कात्यायन ने 'सिद्धे शब्दायसम्बन्धे' इन प्रथम वाक्य द्वारा शब्दनित्यत्व का उद्घोष किया है। शब्दान्तरवाक्यकार ने भी 'स्फोट शब्दो ध्वनिस्तस्य ध्यायामादुपजायते' के रूप में शब्द का नित्य माना है। भट्ट हरि ने (नित्या शब्दायसंबन्धा—वाक्यपदीय १।२३ आदि वाक्या द्वारा शब्द का नित्यत्व की चर्चा की है।

शब्द का नियम का विषय में कुछ तर्क भी लिए जाते हैं। सबसे पहले सभवत

वेदवादिना ने गण की निष्प्रता का समर्थन किया था। मीमामसा और वैयाकरणों द्वारा गण के नित्यत्व के विषय में जो तर्क दिए जाते हैं, नैयायिकों और बौद्धों ने उनका बड़ी निन्द्यता से स्पष्ट किया है। जमिनि के लक्ष्य तर्कों पर तरम खाते हुए धर्मकीर्ति ने लिखा है

तस्य तावदीदृश प्रज्ञास्खलित कथं वत्तमिति सविस्मयानुक्थम्य न चेत् । तम परेण्यनुब्रवीतीति निद्वयात्रात्तभुवन धिग व्यापकं तम ।

—प्रमाणवार्तिक प० ८० द्वाराणमी सम्करण

अथवा जमिनि जस विचारक ने इतने हलके स्तर के तर्क उपस्थित किए यह देख कर हमारा मन विस्मय और अनुकम्पा से भर जाता है। उस दूसरे भी दुहराने चन आ रहे हैं। ग्राह समागम कितना गहरा अज्ञान का अंधकार है!

भत हरि ने नियम के सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण बक्तव्य लिए हैं।

उन तिनो भी कुछ ऐसे आचार्य थे जो प्राकृत को मूल भाषा मानते थे और मस्कृत को उसका विकृत रूप मानते थे। उनके मत में प्राकृत प्राकृतिक भाषा है और इसलिए नित्य है।

‘केचिदेव मयते, य एवते प्राकृता शब्दा त एवते नित्या । प्रकृतौ भवा प्राकृता ।

—महाभाष्य त्रिपादी (श्रीषिका) प० २० पूना सम्करण

गण की निष्प्रता पर विचार आकृति और द्रव्य पदार्थ की दृष्टि में भी है। यदि शब्द स आकृति की अभिव्यक्ति होती है गण नित्य है क्योंकि वक्ष-व आदि आकृति नित्य है। द्रव्यपक्ष में भी शब्द नाम में अभिव्यक्ति के रूप में नित्य माना जाता है। आश्रय भेद से भेद की प्रतीति होती है। स्वरूप में भेद नहीं होता। निष्प्रता अनिष्प्रता के विषय में रूप में भी स्वीकार की जानी है। भत हरि ने तीन प्रकार की अनिष्प्रता का उल्लेख किया है—समगानित्यता विपरिणामानित्यता और वस्तुविनागानित्यता।

स्फटिक का दूसरे द्रव्य के संयोग से अपने शुद्ध स्वरूप की अनुपूर्वात् समगानित्यता है। बदरी पत्त के अपने श्याम रंग का छोड़कर रत्नरंग का आश्रय विपरिणामानित्यता है। वस्तुविनागानित्यता मवात्मना विनाग का नाम है। कथट ने इमक लिए प्रध्वसानित्यता गण रखा है। इन तीनों प्रकार की अनित्यता के विपरीत जा हो वह नित्यता है। अथवा जा ध्रुव है कूटस्थ है<sup>२</sup> अविचालि है, जिसमें अपाय उपजन, विकार उत्पत्ति बद्धि और व्यय नहीं होते वह नित्य है। गण में इन सब बाना के मिश्रण से वह भी नित्य है। अथवा वह भी नित्य है जिसमें तत्त्व का विघटन नहीं होता। यह वही है महान ही तत्त्व है। इसको प्रवाहनित्यता भी कहा जाता है। गण भी गण और बाल भेद से उच्चरित हान पर भी यह बही है इस प्रकार के प्रत्यभिमान का

२० कूट शशरूप निष्ठानि न किंचिदयं चलति कूटं ब्रह्मचरं अनुलङ्घनीयं निष्ठानि, न ह्यन्यं चिदयथा कत शनयम कूटं विश्वतो दाहं विनाशकं शोषणीपातऽपि तिष्ठति कूटं व्याजऽपि अपह्वारमनि त्रिषमाणं निष्ठानमयथा भवतीति अचलरूपतया भवन् कूटं यनि यमुच्यते ।

—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी भाग १ पृष्ठ १०६



विषय बना रहता है। अतः प्रवाहनिःसृत्यना व महार गत्य नित्य माना जाता है। अथ भी जातिलक्षणरूप म नित्य है। सम्युक्त भी व्यवहारपरम्परा म अनाति के कारण नित्य माना जाता है।

विन्मी के मत म सत्य और अथ म सम्युक्त का वर्ता वाई नहीं जाना। जिस गत्य के उच्चरित होन पर जिस विन्मी अथ की अभिव्यक्ति होती है वही उम गत्य का अथ है।  
 “अथे मय त नैह कश्चित् शब्दापसम्बन्धस्य वर्ता।

—वाक्यपनीय २।३२६ हरिवर्ति, हस्तलख

शब्द म चाह अमय का ज्ञान हा अथवा मिथ्या का प्रतिपादन होना हा गत्य अपन अथ स नित्य सम्बद्ध है।

असत्या प्रतिपत्तो च मिथ्या चा प्रतिपादने।

स्वरथे नि यसम्बद्धान्ते त शब्दा व्यवस्थिता ॥

—वाक्यपनीय २।३३३

वाई आचाय शब्दजाति का सम्युक्त अथ म मानत है, कोई शब्द-स्वप्ति का सम्बन्ध अथ म बतात ह। विन्मी के मत स जाति अथवा यक्तिसाधना क्रिया अभिप्रेत होती है। वाच्यवाचक सम्बन्ध व आधार परबुद्धिस्थ शब्द का बुद्धिम्य अथ म विनियोग होता है अर्थात् अनय अथ म म किसी एक के साथ सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध शब्दगत उक्ति के महार अभिव्यक्त होता है।

इह कश्चिदाचार्या शब्दजातिमयसम्बन्धिन मय त। केचित् शब्दव्यक्तिम्।  
 अथया तु जातिसाधना यक्तिसाधना या क्रिया सप्रत्यफला। तत्रानेनाय  
 वक्तव्य इत्युभयो परिग्रह कृत्वा बुद्धिस्थशब्दो बुद्धिस्य यत्र विनियुज्यते  
 प्रयर्णाक्रियते सयप्यनेकारथत्वे तत्रास्य सामान्यमवच्छिद्यते।

—वाक्यपदीय २।४०६ हरिवर्ति हस्तलख

शब्द और अथ का यौद्ध मानकर भी अनम नित्यत्व दिलाया जाता है। भन हरि ने इस विषय म अनक प्रवाणो का अनेक स्थाना म प्रमगवण उल्लख किया है। कुछ दशन सब कुछ वास्तविक मानत ह। एम पथ म गत्य विगिप्लाय भाग का स्पश करता है और उसका अय मे निधारण (विभाग) करता है। कुछ अय दशन किसी वस्तु की मना नगी मानते। इस पथ म गत्य उन उन अर्थो की प्रकल्पना करता है।

अथ कश्चित् वास्तव सय श्ति प्रयथिनम्। तस्य तु विगिष्टाथमागोपनिपा  
 तिन शब्दा ता ता शक्तिमवच्छिन्ति इति प्रतिपन्ना। अपरे पुन नव वस्तु  
 किञ्चिदस्ति। शब्दा एव तु प्रवत मानस्त तमथ प्रवल्पसति।

—महाभाष्यविपादा १।१।६४

कुछ अय विचारक मानत है कि कवन गत्य मुनन मात्र म बुद्धि म अयन्वित अथ का बाध नहीं होता। अथप्राथ अनुमान की प्रक्रिया म हाता ह। शब्द स जिस बुद्धि का उदय हाता है, उसस सनिष्ठा अयप्रयुक्त पथअथ का दूरी बुद्धि हाती है उय बुद्धि व महार अथ का प्रतिभाम हाता है।

अपरे तु मयते नावश्य श्रुत एव गच्छे बुद्धौ सनिपतितमथ प्रत्याययति ।  
सवथा बुद्धौ सनिविष्ट प्र स्मिन्नेव शब्देविशिष्ट रूपे वा बुद्धिरुत्पद्यते  
तथा व्यवहित बुद्धयन्तर बुद्धौ प्राप्तसनिधान तदथ प्रतिपत्तिनिमित्त भवति ।  
अपरे तु पद —वाक्यपदीय २।३२० हरिवक्ति हस्तनेत्र<sup>२०</sup>

कुछ अथ विचारका वं मत म एक ही अर्थात्मा होती है। अथ एक है। वह  
मवसाधारण है। जैसे मयोगमज्ञा दो में भी होती है, ममुदाय म भी हाती है वस ही अथ  
एक म, दा म मवम अस्थिन रहता है। केवल सनिधान म अभियक्त होता है

केचित्त मयत्त यथा सयोग सना द्वयो द्वया समुदाये चावतिष्ठते । तथा  
प्रत्येक द्वयो समुदिनेषु च स एककार्यात्मा व्यवस्थित एव । स तु सनिधानेन  
यज्यते ।  
—वाक्यपदीय २।४०१ हरिवक्ति हस्तनेत्र

जस अत्र म मव कुछ देखने की शक्ति है किन्तु जिम जिसको ज्यना ईप्सित  
हाना है उस उमये माध्यम से देखा जाता है उमी तरह गत्त में मव अथ व्यक्त करने की  
क्षमता है। जो अथ अभीप्सित हाना है उस उह प्रवाणित करता है अपन आप में अभि  
व्यक्त करता है (वाक्यपदीय २।४०७) ।

अथवा गत्त अभिधान (करण) ह। अथ अभिधेय (वम) है। गत्त म अभिधा  
नियम है।<sup>२०</sup>

अथवा शत्त और अथ का कोई भीधा सम्बन्ध नहीं है। अथ के स्वरूप का परि  
चान गत्त म सम्भव नहीं है। अथ का अवधारण अगत्त होता है। दाह शब्द में जो कुछ  
अथभाषित होता है उसम और यथाथ रूप स आग में जनन होने पर जो कुछ अनुभव  
म आता है उसम आत्मा पाताल का भेद है। हिम गत्त के उच्चारण म और वफ से  
ठिठुरन म वहुन भेद ह। गत्त केवल अथ का आभास मात्र करात है अथवा किसी नादश्य  
के आधार पर अथ की स्मृति मात्र जागन है (वाक्यपदीय २।४२४) ।

अथवा शब्द वस्तु का उपलक्षण मात्र ह। जस हम काव में स्वदत्त व गह का  
वतलाल है वम विशेष शत्त म विशेष वस्तु का वतलाया जाता ह। गत्त म एसा शक्ति  
नहीं ह कि वह पदाय की समग्रता को छू मके। जयवा शत्त स वस्तुमात्र निविशेष रूप  
म विशेष धमरहित रूप म बनाया जाता ह। गत्त पदाय का (वस्तु का) किसी रूप म  
उपकारक न्ना है। गत्त म पत्ताय के किसी भी धम के स्पग करने की क्षमता  
नहा ह —

वस्तुमात्रमनाश्रितशक्तिविशेषमपरिगही तस्वधमक येन सविनाशपदेनोप  
सक्ष्यते । न तदवस्तुकृताना शक्तिना यदुपकारिरूप तत् सत्यापार स्व कार्येण  
शक्नोती वक्तुम् । न हि स वस्तुमात्र सस्पर्शित्वात् भेदका युवकागीणि  
शक्तिरूपाणि सस्पगति ।  
—वाक्यपदीय २।४४२ हरिवक्ति हस्तनेत्र

<sup>२०</sup> पुण्य राज न ग्नुमात् मनु हरि का अभिप्राय यहा श्रुताभाषति से है।

६ अभिधानियम तामात्तानाभिधेयधे । वाक्यपदीय २।४००

अभिधानियम गत्त को अभिधावृत्ति का मूलरूप समझना चाहिये ।



म अथवना ही नहीं आती है। इस मत में कुछ अक्षरों का प्रत्यायक और कुछ अक्षरों का नातरीयक नहीं माना जाता। अपितु शब्द का अभिधेय सब आकार सहित अर्थ है। केवल वही किसी पक्ष का प्राधाय और वही क्रिमी स्वरूप का गौणभाव अभिप्रेत रहता है।

इसी तरह किसी वचन में शब्द का अभिधेय समुदाय है किन्तु उसमें विकल्प या ममुच्चय का स्थान नहीं है। वन शब्द से घव, खादिर आदि का समुदाय अभिधेय है। ब्राह्मण शब्द से तप, विद्या जाति आदि से युक्त समुदाय अभिधेय है। वन शब्द से घव है कि खदिर है इस रूप में विकल्प रूप में प्रतीति नहीं होती। वन घव भी है खदिर भी है इस रूप में ममुच्चय रूप में भी प्रतीति नहीं होती। अपितु माकल्य रूप में एक प्रतीति होती है। इसलिए विकल्प ममुच्चय रहित समुदाय शब्द का अर्थ है।

कार्द कार्द शब्द का अर्थ समग मानते हैं। समग जाति गुण और क्रियात्मक अर्थ का असंयभूत रूप है। द्रव्य का द्रव्यत्व आदि के साथ जा सम्बन्ध होता है वह गद का अर्थ है। वह सम्बन्ध सम्बन्धियों के सम्बन्ध होने के कारण असत्य माना जाता है। अथवा तप श्रुत आदि का एक में सम्मष्ट रूप में भान होने से उनका परस्पर समग, ब्राह्मण शब्द में असत्य है। अथवा घट आदि शब्दों से घट आदि की जाति आदि समग कही जाती है। अलग रूप में वह असत्यभूत मानी जाती है। सम्मष्ट पदार्थ ही सत्यभूत है। किसी अर्थ मत में असत्य उपाधि न अवच्छिन्न सत्य ही शब्द का अर्थ है —

असत्योपाधि यत् सत्य तद्वा शब्दनिबन्धनम् ।

—वाक्यपदीय २।१२८

इस वचन पर पुण्यराज ने प्रकाश नहीं डाला है किन्तु जिस आचार्य की यह भावना है उसने बहुत गूढ़ तर्क अल्प में व्यक्त कर दिया है। उसने गदशब्द और सत्यदान का एक कर लिया है। शब्द अपने अन्तिम विश्लेषण में सत्य है। इसलिए निरूपण रूप में गद का अभिधेय यदि सम्भव है तो वह सत्य है।

वमलशील ने सुवर्ण को सत्य और वलय, अंगूठी आदि का असत्य माना है। गद का प्रवृत्तिनिमित्त स्वर्ण की तरह नामार्थ रूप सत्य है। वही उसका अभिधेय है। अथवा गद का अभिजल्प स्वरूप गद का अर्थ है। म अर्थ में यह वह है इस रूप में गद के स्वरूप का अर्थ में अर्थान्वय किया जाता है। अर्थान्वय गद और अर्थ एकाकार हो गया रहते हैं। गद के दूसरे स्वरूप का नाम अभिजल्प है। अभिजल्प गदार्थ है। वचन गद ही है। गदार्थ के एकाकार रूप में होने के कारण उनका कार्द रूप कही प्रधान रूप में अवगत होता है और कही उनका कार्द अर्थ रूप अवगत होता है। लोक में उनका अर्थरूप अधिक गहात होता है। लोक में अग्निम घानम वास्य म अग्नि रूप अर्थ अभिप्रेत रहता है। शास्त्र में स्त्रीम्बो डक (८।१।१००) कहने में स्त्री वाचन साधक गद का वाच्य जाना है।

द्वान म और उत्प्रेक्षा म अर्थ का अभिधेय के रूप में ग्रहण कर गदार्थ

अपनी शक्ति का नियंत्रण कर इस गन्ध में यह शक्ति मग्न है इस रूप में बुद्धि में भ्रम होता हुआ बाह्य ध्वंसात्मक श्रुत्यन्त की प्रवृत्ति में हनु होता है। अभिज्ञाप गन्ध विनाश नशण है। अतएव शब्द है। मल्लवादि क अनुसार यह मन भव इति वा है

दशानोप्रेक्षाभ्यामथमभिधेयत्वेनोपगृह्य तत्र यगभूतस्वशक्ति बुद्धौ परिप्लवमानं अथभित्तिमनेन शब्देनोच्यत इत्यातरो विज्ञानलक्षण शब्दात्मा श्रुत्यन्तरस्य बाह्यस्य ध्वंसात्मकस्य प्रवृत्तौ हेतुः । स अभिज्ञत्वाभिधेयाकारपरिप्लवो वाह्यात् शब्दादय इति भवत्पर्यादिमतम् ।

—द्वितीयानुवचन १० ३३८

अथवा अथ अमवशक्तिः ह। अथ म शक्ति नदी न। गन्ध क द्वारा अथ म नियत शक्ति का आधान होता है। जिस रूप में शब्द अथ की शक्ति की अभिप्रक्ति चाहता न उन्ही रूप में अभिप्रक्ति होती है। इसलिए गन्ध का अथ म स्वशक्ति से उत्थापित अथ है। एक ही अथवस्तु एक ही क्षण में अनेक शक्तिद्वारा अनेक रूप में प्रवृत्त की जाती है। उभय भोजन पचाने की क्रिया का भिन्न भिन्न व्यक्तित्व या वह संभव है -- ओदन पचति । पाक ओदनस्य । पाक निवृत्त पति । करोति निवृत्ति पाकस्य । अत यदि गन्ध से अथवस्तु की अभिप्रक्ति होती तो एक ही आदन की एकमात्र वय के रूप में सम्बन्ध के रूप में भिन्न भिन्न विरोधी रूप में अभिप्रक्ति नहीं हो सकती थी। इसलिए मान लेना चाहिए कि अथ म शक्ति नहीं है। शक्ति गन्ध म है। गन्ध अपनी शक्ति का बुद्धि के द्वारा अथ म आरोपित कर देता है। अत गन्ध द्वारा नियत शक्ति ही गन्ध का अथ है। अथवा अथ अशक्त नहीं है। वह अवशक्तसंपन्न है। गन्ध से बचने उसकी नियत शक्ति का अभिधान होता है। शक्ति के द्वारा अथ कभी क्रिया के रूप में प्रकाशित होता है कभी कारक के रूप में प्रवृत्त होता है। गन्ध मवथा गन्ध द्वारा ही अथशक्ति नियत होती है। मल्लवादि क अनुसार यह मन वसुरात का है

वसुरातस्य भवत्तु पाध्यायस्य मतम् तु स च स्वरूपानुगतमथरूपमन्तर विभागेन सतिवेगयति—अशक्ते सप्रवृत्तेर्वागन्धरेव प्रकल्पिता । एकस्पाधस्य नियता क्रियादि परिकल्पना ।

—वाक्यपदीय १।१२३ द्वितीयानुवचन १० ३८०

अथवा गन्ध का कोई बाह्य अथ नहीं होता। गन्ध का बचने बुद्धि उपादान बौद्ध अथ होता है। यह बौद्ध अथ बाह्य वस्तु के लिए होता है उसका रूप बुद्धि उपादान ही होता है किन्तु अमवश बुद्धिगत अथ का बाह्य अथ ममभ क्रिया जाता है। अथवा गन्ध का प्रकार क अथ हात है जो वस्तु मूल है आकारवान है उसका अथ आकार विनाश के रूप में जात होता है। जा वस्तु धूमन है निराकार है उसका अथ बचने मवित है। अथवा गन्ध का अथ आकारमहित अथ भाव न। मवित (गानमात्र) ही है।

अथवा गन्ध का का नियत अथ न। गन्ध। अपनी अपनी वामना मन्त्रा क वर म जाता भिन्न भिन्न अथ एक ही गन्ध से प्रवृत्त रहता है। इसलिए गन्ध अथ अथ भाव क अनुसूच विभक्त विभक्त भावित जाता है। एक ही वस्तु का एक ही ममभ म भिन्न भिन्न प्रथक भिन्न रूप में प्रवृत्त है। एक ही पन्था एक ही व्यक्तित्व का

मालान्तर म भिन्न जान पड़ सकता ह। मलिए गद का नाई नियत अथ नही होता। गद के अथ के साधन भी अव्यवस्थित है। व भी नियत नही है। इसलिये एक ही गद के अनेक अथ हात ह। यही कारण ह कि एक ही पदाथ भिन्न भिन्न दानगाम्ना म विभिन्न रूप स व्याख्यात ह।

यह मत भाषाविदान के मन मिद्वान्त के अनुकूल है कि अथ एक समझाना मान ह। विभिन्न भाषाया म एक ही प्रकार की ध्वनिया विभिन्न अथ धातित करती ह। गद का अथ सामाजिक रूप म आरापित तत्व ह।

### शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

गौ गद कहन म गौ शब्द का गौरूप अथ गौ और गौरूप जान का एक साथ एक म मिला हुआ मा आभास होना ह (गौरिति शब्दो, गौरित्यर्थो, गौरिति ज्ञानम् — यागसूत्रभाष्य ११७) यह आभास सम्बन्धमापन ह। जय शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का विचार किया जाता तब अथ ग अभिप्राय वस्तु से न होकर अर्थ के शास्त्रमय रूप स होना ह। प्रतीति क कारण एसा जाता ह। शब्द क कारण भ्रम नही होता।

गद का अपन स्वरूप आर अर्थ क साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध माना जाता ह। वक्ता की दृष्टि म (वाच्य अथ न मानकर बुद्धि उपाशब्द अथ) शब्द और अर्थ म वाच्य-कारणभाव सम्बन्ध माना जाता है। एक अर्थम सम्बन्ध की भी चर्चा की जाती ह जा वास्तव म याग्यता और वाच्यकारणभाव सम्बन्ध का निश्चय ह इनम भिन्न नही है। भन हरि के अनुसार अर्थ के प्रवृत्तितत्व का गद निश्चयन ह। अर्थ की प्रवृत्तित्व के कई अभिप्राय हैं। अर्थ क प्रवृत्तित्व विवक्षा ह। मत्व क रूप मे अर्थवा अमत्व क रूप म वस्तु का स्वरूप अर्थ का प्रवृत्ति तत्व नहा है। विवक्षा याग्य गद पर निर्भर करती है। कुछ कहने की लच्छा रखन वाला व्यक्ति जिस वस्तु को अभिधेय मानकर कुछ कहन की अभिधाया रखता ह वह उम अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए याग्य गद का आश्रय लेता ह। अर्थ व्यक्त करने की शक्ती योग्यता ह।

अर्थवा अर्थ क व्यवहार म जा निमित्त होता ह उमे अर्थप्रवृत्तित्व कहा जाना त। निमित्त क आधार पर निमित्त वाच अर्था का निमित्तस्वरूपमय जान जय उत्पन्न होना है अर्थ द्वारा व्यवहार मभव हाता ह। गद निमित्त है। गदपिण्ड निमित्तस्वरूप है। जातिरूपानुकारी निमित्तस्वरूप है। जय तब पृथक्-पृथक् गदपिण्ड गद स अनुरजित नहा हात तब तक द्रव्यरूप म उनम व्यवहार की मरुता नही आती। जातिनिर्गम्य गुड द्रव्य कैवल्य की तरफ अर्थवहाय योग। दूसरे शब्दो म जाति के आधार पर अर्थ व्यवहार के विषय वनत है।

अर्थवा अर्थ क व्यवहार का तत्र ममग है। मवध म रहिन अर्थ का व्यवहार मभव नही है। ममग किया और वाचक क परस्पर मस्या रा नाम है। अर्थ साधन रूप भा हाता है और गदरूप भा हाता है। नाम पद किया मस्याट साधन का प्रति पान्न मरुत है। त्रिषापद साधनमस्याट किया ती अभिव्यक्ति मरुत ह। दूसरे पदों के

प्रमाण कारक और त्रियापत् के आश्रयविधि के उपमहार के लिए हात है। इस तरह ममग सभी पदा का सम्पन्न किए रहता है।

अथवा अथ स तापय वचन वस्तु स है। उसका प्रवृत्तित्व को ममग कहा जाता है। अथवा जान अथ के आकार के रूप में वाच्य वस्तु में आरापित होता है। यही अथप्रवृत्ति का तत्व है।

हजारों ने मम्बूत के प्रमाण में मम्बूत को पश्यती आदि वाक् के भेदा के साथ नियान का पयान किया है। उनका अनुभार चित्तगति का वाक्यनाम का व्यापार होता है। मम्बूत दूसरा नाम गन्ता है। गन्ता व्यापार ध्वनि रूप में न होता हुआ भी गन्ता प्रमाण में गन्ता कहा जाता है। वही वाचक माना जाता है। गन्ता जब अपने अविभागापत् गन्ता में रहता है जब वह गन्तायमय रहता है जब उदभेत् आरम्भ नहीं हुआ होता तब वह अपने स्वरूप में पश्यती (परवाक) के रूप में स्थित रहता है। वाक् में वह प्राणवृत्ति में अनुप्राणित और मन की भावना से अवलम्बित हाकर अपने आप का वाच्य और वाचक इन दो गन्ताओं में विभक्त करना हुआ स्थित रहता है। यह मध्यमा की अवस्था है। इसमें परामगन व्यापार होता है। परामगन वाचक गन्ता है। परामगन्ता वाचक गन्ता चतुर्थ अर्थों पश्यन्ती में मम्बूत निश्चित नहीं किए जाता है। उसका मम्बूत चतुर्थ में विवक्षित किन्तु अविभक्त पश्यता में भी असा उता रहता है किन्तु वह अपने स्वरूप का ही वाच्य के रूप में परामग करने रहता है। यह परामग सामानाधिकरण्य रूप में होता है ही अथ है। इसलिए उस वाच्य अथ का वाचक का सामान्य माना कहा जाता है। "सने पश्यन्त वहां परामग" के गन्ता पूर्व अवस्था का पश्ये हुए ही स्थान वर्ण आदि के रूप की सामान्यता में प्रवृत्ति द्वारा गन्ता स्वरूप के रूप में अपने आपका दालनर वाच्य और वाचक रूप में विभक्त होता हुआ व्यक्त होता है। गन्ता पश्यती (परवाक) का निम्पत् है। पश्यन्ती के प्रभाव से उसमें गन्ता नामक व्यापार होता है। इस व्यापार के बल से वह अपने विधि स्वरूप में विधि के अथाभिधान का उता का प्राप्त कर उता है। इसका प्रकार सामानाधिकरण्य में अथ का सम्पन्न और अर्थ रूप में एक ही व्यापार का होता है। अथ गुण के रूप में वाच्य में गुणगुण से अवभासित विद्यप्य पत् का परामग एक साथ ही का जाता है। गुणगुण का अर्थ में परामग नहीं होता। यही प्रकार पत् अर्थ में पत् के स्वरूप का परामग प्रधानभूतविशेष्य में स्पष्ट रहता है। स्थिति गन्ता और अथ का एक ही गन्तामिका प्रतीति होता है। कथना गन्ता का अपने स्वरूप में का विधि रहता है। उस अर्थ में ४१-१२ में। यहाँ गन्ता का स्वरूप ही अनुभव है। वही प्रधान है। वाच्य अथ के प्रतिपादन का उता में स्वरूप और अथ का अर्थ के रूप में अवभास होता है। गन्ता अपने का व्यक्त करता है और अथ का भी प्रकाशित करता है। अथ का प्रकाश अविधीयमान रूप में करता है। अपने स्वरूप का अविधीय गन्ता अविधीय रूप में करता है। अथाभिधान विधयभाव प्राप्त करने का अविधीयक का रूप नग है। जो गन्ता के अविधान का विषय जाता है उस अविधय का जाता है किन्तु अथ के साथ स्वरूप का सामानाधिकरण्य स्वरूप का

अर्थ के रूप में परामर्श आवश्यक है। वाचकता में अभिधायमानता नहीं होती। पश्यती (परवाक) के वक्त भूमि उपारूढ परामर्शमय प्रवागस्वभाव वाचक होता है। उसमें परामृश्यमानात्मक वाच्यता का अविराध होता है। जो वस्तु शक्ति से युक्त होता है वही वस्तुवक्ति का आधार उन्हीं समय नहीं होता। क्योंकि स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य एक साथ एक समय में नहीं रह सकते। जो प्रतिपादक है वह प्रतिपाद्य नहीं।

इस तरह शब्द और अर्थ के सामानाधिकरण्य से अभेद अघ्याम नाम का सम्बन्ध व्यक्त होता है। याग्यता और वायकारण में भी फल की दृष्टि से अघ्याम सम्बन्ध ही प्रमुख है।

जैसे इन्द्रियों की अपने विषय में योग्यता अनादि सिद्ध है उसी तरह शब्द का अर्थ के साथ याग्यता-सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। यद्यपि इन्द्रियों का कारण हान का कारण अज्ञात ज्ञान की ही उत्पन्न करनी है, शब्द चापक है वह अपने ज्ञान द्वारा अर्थ बुद्धि का हेतु होता है फिर भी पुरुष प्रयत्न की अपेक्षा न जाना दोनों में समान है।

शब्द और अर्थ में वायकारण भाव भी है। क्योंकि शब्द अर्थ का कारण है, शब्दपूर्वक अर्थ की प्रतीति होती है। थाता व मन में जो अर्थ शब्द सुनने के बाद भक्तता है उस अर्थ का जनक शब्द है। अर्थ भी शब्द का कारण है। क्योंकि वक्ता पहले मन में अर्थ को रखकर ही उसके लिए शब्द का प्रयोग करता है। इसलिए जाना धार में वायकारण भाव होने का कारण शब्द और अर्थ का अयाम लक्षण अभेद सम्बन्ध माना जाता है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध बुद्धि उपारूढ है। ओदन भुक्त जन्म वाक्य में भी शब्द और अर्थ का परिचय बुद्धि अधीन है। इसी दृष्टि में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य माना जाता है। क्योंकि अनित्य पदार्थों के नष्ट होने पर भी अभिधेयता का रूप में नियतत्व बना रहना है। घट आदि शब्दों के उच्चारण से अथाकार ज्ञान सदा उदबुद्ध होता है। इसलिए प्रवाहनियता के रूप में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य माना जाता है।

अतीत अनागत आदि शब्दों के भी अर्थ होते हैं और इस आधार पर यहाँ भी सम्बन्ध नित्यता है। गणविषाण आदि अमन पदार्थ में भी बुद्धि परिकल्पित मत्ता रहती है और इन आधार सम्बन्ध वहाँ भी है। उपचारमत्ता के आधार पर भी शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की उपपत्ति की जाती है।

सर्वोपचारसत्तारूढ एव शब्दाय इत्युक्तं भवति।

क्रियाकारकभावेनापि चार्थानां निरूपणं बौद्धमेव ॥

—हेताराज वाक्यपरिचय = सम्बन्ध समुद्देश ५१

शब्द चाहे भाव-शोधक हो अथवा अभाव-शोधक हो अर्थ का अभिधेय प्रत्यय दत्ता में होनी है। अस्तु प्रवाहनित्यता के आधार पर शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य माना जाता है।

शब्द और अर्थ का अनित्य सम्बन्ध का मानने पर अथवा शब्द का नित्यत्व



कर काय मानन पर गण और अथ की व्यवस्था लक्षण के अनुसार हानी है ।

शार्द्या शब्द इति दशने लक्षणादेव शब्दानामथयस्या ।

—कयट महाभाष्यप्रदीप २।१।६

संस्कृतव्याकरणदर्शन लोचविज्ञान लाकमत को प्रमाण मानता है इसलिए गण और अथ के सम्बन्ध के विषय में भी लाक ही प्रमाण माना जाता है

शब्दाथसम्बन्धे लोकायवहार एव प्रमाण, नायत ।

—कयट, महाभाष्यप्रदीप ४।१।६३

लाक में अथ के लिए गण का प्रयोग किया जाता है । इसलिए व्याकरणदर्शन में भी उसका नामाने रखकर ही विचार किया जाता है । गण से अथ नहीं बनाए जाते । अथ के लिए गण का आश्रय लिया जाता है

न हि शब्दरर्था उत्पाद्य ते । यथोक्त न हि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम्

—कयट महाभाष्यप्रदीप २।२।२६

अवश्य ही दार्शनिक धरातल पर अथशब्द से वस्तु अथ न कर गणाय रूप अथ लिया जाता है

इह हि व्याकरणे न वस्तुवर्थाऽथ, अपितु शब्दाथोऽथ ।

—हेलाराज वाक्यपदीय क्रियासमुद्देश १

कभी कभी गणरूप को सामान्य रखकर अथ व्यवहार जोड़ में किया जाता है और व्याकरण में भी उसे उसी रूप में अपनाया जाता है । जैसे भ्रमर के लिए द्विरेफ गण का व्यवहार किया जाता है । भ्रमर गण में दो रेफ है । इस लो रेफमय गण लक्षण के आधार पर भ्रमर को द्विरेफ कहा जाता है

यद्यप्यर्थे शब्दस्य गुणभावादथत एव साम्यं यायम तथापि शब्दधर्मणाप्यथस्य व्यपदेशो दृश्यते यथा भ्रमर शब्दस्य द्विरेफत्वात् द्विरेफो भ्रमर । तथा द्वयक्षर मास द्वयक्षरमस्थि ।

—कयट महाभाष्यप्रदीप १।१।१०

गण और अथ के नित्य सम्बन्ध का अधिक मन्त्र तन् के कारण अवपरिग्रहित जम विचार संस्कृत व्याकरणदर्शन में मभव नहीं था । गण कभी भी अपना अथ गण कर दूगर् अथ का नहीं बताता

न तु गण स्वार्थ परित्यज्यार्थांतर वक्तु समय शब्दाथसम्बन्ध धर्म्यानिर्णयता प्रसपात ।

कयट महाभाष्यप्रदीप २।२।६ २।२।११५

जहाँ अथ में परिवर्तन किया जाता था तब स्थान के लिए प्राचीन व्याकरण कर्त्तव्य काम में जान है । भन हरि तब स्थान पर गण के मूल अथ में एक दूगर् अथ का आगव करन है । उक्त अनुसार गण के अथ में परिवर्तन मभव न था है अथ का अर्थान्त में अर्थान्त मभव है ।

यद्यथा त्रिन गणा के अथ में भ्रमर गण किया जाता था उन गण का अर्थान्त अथवा गण मान लिए जाता था । प्रतीक गुणत प्रतिनाम अनुनाम अर्थान्त अथ म

रूढ शब्द है

तुलया समित तुल्यम् । व्युत्पत्त्यथमेव तुलोपादीयते । रुद्धिशब्दस्त्वय सदृश पर्याय । यथा प्रवीण कुशल प्रतिलोम अनुलोम इत्यवयवार्थाभाव एव तुल्यशब्देऽपि ।

—कथं महाभाष्यप्रदीप १।१।६

अपनी मायता के कारण वे कभी-कभी कठिनार्थ म पड़े जाते पड़ते हैं । तिल शब्द से तल शब्द तिल के तेल के अर्थ में निष्पन्न होता है । किंतु मपपतल, इट गुप्ती तल का भी लाक म व्यवहार होता था । कायायन ने इस समस्या का तलच प्रत्यय की मृष्टि कर सुलभाया था । पतजलि ने तल का सम्बंध तिल से न मानकर उसे स्वतंत्र व्युत्पन्न शब्द माना था

तल शब्दाच्च प्रत्ययो न यत्तव्य इति । प्रकृत्यन्तर तलशब्दो विकारे वतत । एव च कृत्वा तिलतलमपि सिद्ध भवति ।

—महाभाष्य ५।२।२६

कथं न उल्लेख किया है कि कुछ लोग तिल के विकार को ही मुख्य रूप में तल मानते हैं । दूसरे तल भी तिल-तल के सादृश्य से तल कह जाते हैं किंतु भेद दिखाने के लिए इड गुप्त तल जस शब्द से व्यवहृत किए जाते हैं । किंतु कथं इगम महमन नहीं है । पतजलि के अनुकरण पर वे तल शब्द का रूढ शब्द ही मानते हैं

उपमानाश्रयेणापीडगुदतलमित्यादि सिध्यति । तिलविकारे मुख्य तल, तत सादृश्यादयदपि तलमिडगुदादिभिर्विशिष्यते । गौणसम्भवे च मुख्यतलप्रतिपादनाय तिल विशेषणत तिलतलमित्यपि भवतीति केचिदाहु ।

व्युत्पत्त्युपाय एव तिलतल विकार तलमिति । रुद्धिशब्दस्त्वय स्नेहद्वयमिति ।

—कथं महाभाष्यप्रदीप ५।२।२६

प्रवीण शब्द की भी यही कहानी है । प्रकृत्यो धीणाया प्रवीण इति व्युत्पत्ति-भाष्ये श्रियते । गौणस त्वस्य प्रवृत्तिनिमित्तम् ।

—कथं, महाभाष्यप्रदीप ५।२।२६

अथवा मय शब्द महा प्रकार के अर्थ व्यक्त करने में समर्थ है सर्वे सवपदादेना —(महाभाष्य १।१।२०) शब्दव्यवहार के आधार पर विंगी शब्द का विंगी विंगप अर्थ में नियम कर लिया जाता है

सर्वार्थानिधान शक्तिपुक्त शब्दो यदा विंगित्यै सम्यवहाराय नियम्यते तदा तत्रैव प्रतीति जनयति ।

—कथं महाभाष्यप्रदीप—१।१।२०

अथवा शब्दशक्ति को नियम विषय में भी वे कभी कभी स्वीकार कर रहे हैं—

नियतविषया शब्दानां शक्तयो दृश्यन्ते यथा रुद्धिणा इत्यादी कृत्वोर्था छान्निधानमिति ।

—कथं महाभाष्यप्रदीप ५।२।२०

जहाँ शब्दशक्ति या प्रतीयमान अर्थ हान है उन्हीं शब्दों के स्वाभाविक अर्थ से ही समझाती चली चला है

भवति हि पदात्तरसम्बन्धेन गदस्यार्थात्तरे वति यथा सिंहो माणवक ।

—याम ८।१।२४

अधुतवाक्यार्थे च पदाना वति दश्यते । —कयट महाभाष्यप्रदीप २।२।२८

अस्तु गत् और अय के नित्य संबन्ध की रक्षा संस्कृत के व्याकरण किमी न किमी प्रकार वर्णन आए है । ऊपर कहा जा चुका है कि वाक्यदशन भी उनका विचार क्षेत्र के बाहर का नहीं है । इसे कयट न स्पष्ट कर दिया है

यद्यपि नित्या गद्वा तथापि ग्वास्त्रप्रक्रियायां क्वचिदुत्पत्तस्य लोपादिद्वारेण निवृत्ति क्रियते । प्वचिदपवादविधानेनोत्सगस्यानुत्पत्ति ज्ञाप्यते । ततो निवृत्तिपक्षो नानुपप न ।

कयट, प्रदीप ३।१।३१

## शब्द के प्रकार

महाभाष्य व्याकरणप्रपञ्च के नवक व अनुसार भत हरि न बारह प्रकार क गत् भेदा का निरूपण किया था । भत हरिणा द्वादशप्रकारा शब्दा निरूपिता यौगिका योगरूढाश्च सृडा ।

—परिभाषावति (पुण्योत्तमदेव) पृ० १३५

इनमें यौगिक यागरूढ आदि भेद थे । इस तरह के को भेद वाक्यपीय में उपनय नहीं है । व्याकरणदशन में चार भेद की चर्चा अवश्य है । व चार भेद यौगिक रूढ यौगरूढ और यौगिकरूढ है ।

यौगिक शब्द वह है जो अवयवगणित से ही अर्थ का प्रत्यायन होना है । यौगिक गत् के लिंग अग्निधेय की तरह हाते है । जैसे लवण गत्वम् । लवणा यवागृ । लवण मूप । यहा लवणगत् लवण से समृष्ट अर्थ में है । इसलिए यौगिक गत् है लवणेन सस्सष्टमिति सस्सष्ट इति ठक् (४।४।२२), तस्य लवणा लत्तुगिति (४।४।२४) लुक् । अतएव तद्विताथयोगे भूतत्वात् यौगिकोत्र लवणगद्द

—याम २।४।३१

रूढ शब्द—केवल समुदाय गक्ति से अर्थप्रत्यायक रूढ हैं । रूढ गत् की युत्पत्ति की जाती है किन्तु युत्पत्ति से उनका अर्थ का कोई सम्बन्ध नहीं होता । जिन गत् के विग्रहवाक्य में अर्थ अर्थ होत है और वति में अर्थ के रुद्धिगत है रूढाना हि धम नियमाय यथाकथंचित युत्पत्ति क्रियते । न तु युत्पत्तिवशेन रूढयोवतिष्ठत ।

—शृगार प्रकाश पृ० ६७

कयट व अनुसार रूढ गत् की युत्पत्ति असदर्थ के आधार पर नहीं की जाती चाहिए । जहा सदाय सम्भव हो वत् अर्थ का आश्रय रूढि में भी नहीं लेना चाहिए । जहा किसी भी प्रकार से अर्थ का सम्बन्ध नहीं बट पा रहा है वहा अर्थ अर्थ व आश्रय से युत्पत्ति की जा सकती है । जस तलपायिका आदि गत् म ।

—कयट, प्रथाप १२।८

यागरूढ अवयवगणित और समुदायगणित गत् के द्वारा एक अर्थ व प्रत्यायन गत् मान जात है । (स पत्रज गत् ।

योगिक रूढ गद व कह जाते है जो कभी रूढयथ की उपस्थापना करन है कभी योगिक ग्रथ की। जमे मण्डप गद गृहविशेष का भी बोधक है और योगिक ग्रथ के रूप म मण्ड पान करने वाले पुष्प के ग्रथ म भी आता है। कुछ लोग म भेन को नही स्वीकार करते।

## शब्द-वृषभ

पतञ्जलि न गद म्वरूप के प्रमग म वपभ का प्रतीक रखा है जिमन गद के मभी अवयवो का परिपान हो जाता है। वद म आता है —

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तास अस्य ।

त्रिधा बद्धो वपभो रोरवीति महो देवो मत्या आविवेश ॥

—ऋग्वेद ८।५.८।३

इस मत्र म चार शृंग तीन पर दो सिर मान हाथ तीन म्यान पर बद्ध ग द करने कियी वरम का उल्लेख है। व्याकरण के क्षेत्र म, यहा वपभ, गद म्वरूप का प्रतीक माना जाता है और उसक अनुरूप इस मत्र की गाय्या पतञ्जलि आदि न प्रस्तुत की है।

चार सिग स अभिप्राय चार पदजाता स है—नाम, आख्यात उपमग और निपात। कुछ लोग कमप्रवचनीय को भी पदजात मानत है। चार पभ म कमप्रवचनीय का निपात म अतभाव समझना चाहिए। कुछ लोग केवल दा ही पदजात मानत है— नाम और आख्यात

कमप्रवचनीया निपातध्वेवात्तभू ता इति चत्वापु च्यते। अयेया द्वे पदजाते नाम आख्यात च ।

—महाभाष्य नीपिका प० १३

उपसगशब्देन कमप्रवचनीया इह गह्यते। क्रियायोगमत्तरेणापि प्रयोग दगनात ।

—मूक्तिरत्नाकर हम्पलम्ब

कुछ लोग चार सिग का अभिप्राय चार प्रकार क वाक स मानत है। आचार्यों का एक ऐसा भी वग था जो नाम आदि की व्याख्या वाक भेद के आधार पर करता था उसका उल्लेख मलवादि ने किया है

न हि काचिदपि चेतना श्रग्दवास्ति। अनादिकालप्रवत्तशब्दयापाराभ्यास वासितत्वाद विज्ञास्य। चतयमेव पश्यत्यवस्था मध्यमा वल्लययोरवस्थयो द्त्याने कारण नामेदपुच्यते। कारणात्मकत्वात् कायस्य ।

—द्वाद्वारनयचत्र प० ७७८

इमका अभिप्राय यह है कि चेतना गदमयी ही हानी है। कोई चेतना अगना नहा है। विज्ञान (चतय) अनादिकाल से गदयापार के अभ्यास स, पुन पुन प्रवृत्ति स वासित होता है। चतय ही पश्यनी अवस्था है। वह मध्यमा और वल्लगी क

उत्थान म कारण होता है। फलत उस नाम का जाता है। दूसरे शब्दा म ग् वा बाह्य रूप काम है। श् का भीतरी रूप चतय है नित्य है। तीन पर से अभिप्राय तीन बाल से है। य बाल ग्दस अभिधेय है। अथवा अभिधान करने बाल व ही तीन बाल होत ह ।

दो तिर का अभिप्राय दा तरह के श् म है—नित्य और काय । कुछ लोगो क मत म ग् अनित्य है और कुछ लोगो क अनुसार वह नित्य है। अथवा दा स तात्पय जाति और व्यक्ति से है। अथवा स्फोट और ध्वनि स है। य तीना अथ भव हरि क अनुसार है। वाक् के वैयकरण यज्ञ व्यय और व्ययक भाव मानत है

तेन द्वौ शब्दौ । यययजको स्फोटनादौ ।

—मूक्तिरत्नाकार, हस्तलख

सात हथिम तात्पय सात विभक्तिया स है। मु औ जस आदि प्रतीकवाणी सात विभक्तिया है। अथवा गप (सम्बन्ध) क साथ छ कारक हा सात विभक्ति रूप म उल्लिखित है। तीन स्थान पर वद्ध स अभिप्राय ध्वनि अभिव्यक्ति क तीन स्थाना— उर, कण्ठ मिर (मूधा) म है। रोख ग् रव का प्रतीक है। वृषभ (महादेव) ग् रूप म मानव म अवस्थित है।

यम प्रतीक म ग् क अन्त स्वरूप (उरस्थ रूप) बाह्य स्वरूप (रव ध्वनि) ग् क व्याकरणप ा वाच रूप मजरा ग् साथ निर्यो है। साथ ही उग युग म द्रम तथ्य का साक्षात्कार हा चुन था कि ग् मानव की अनुपम उपनधिया है। वृषभ गति का प्रचार है। श् गति है। वृषभ मजन का प्रतीक है। ग् ग विराम जाता है। ग् क का रूप है। ग् काय है वह दृष्टिम है बलना है न् हावा है। ग् निर्य है वृष्ट मनन है अविच्छिन है। उमर मून (भोक्ति) रूप क पाद उमरा ममून (चतुसमय) स्वरूप जिया है। ग् व्याक्ति क ग् म मिट्ट है।<sup>१</sup>

## शब्द एकरवधाद और शब्द नानात्वधाद

ग् एकत्वधाद का मत है निम्न अनुसार अथभ् जान पर भा ग् एक हा रहता है। गी ग् का अथ साथ शिश्य विरक्त आदि है पर अथभ् क कारण ग् भ् नगी जाता। ग् गी एक हा है।

नानात्वधादा ग्रन्थ क अनुसार एक हा ग् भिन्न भिन्न अथ म भिन्न भिन्न

१०. अथ भ् क अन्त स्वरूप (उरस्थ रूप) बाह्य स्वरूप (रव ध्वनि) ग् क व्याकरणप ा वाच रूप मजरा ग् साथ निर्यो है। साथ ही उग युग म द्रम तथ्य का साक्षात्कार हा चुन था कि ग् मानव की अनुपम उपनधिया है। वृषभ गति का प्रचार है। श् गति है। वृषभ मजन का प्रतीक है। ग् ग विराम जाता है। ग् क का रूप है। ग् काय है वह दृष्टिम है बलना है न् हावा है। ग् निर्य है वृष्ट मनन है अविच्छिन है। उमर मून (भोक्ति) रूप क पाद उमरा ममून (चतुसमय) स्वरूप जिया है। ग् व्याक्ति क ग् म मिट्ट है।<sup>१</sup>

शब्द के रूप में गृहीत होना चाहिये। गाय का वाधक गो शब्द और इन्द्रिय का बोधक गो शब्द भिन्न भिन्न हैं। उनमें एकता का भाव सादृश्यनिबन्धना प्रत्यभिज्ञा के बल पर होता है।

शब्द के कायत्व पक्ष में और नित्यत्व पक्ष में एकत्ववादी और नानात्ववादी अपने अपने सिद्धांत अपनाए रहते हैं।

एकत्ववादी दशन के अनुसार जाति-व्यक्ति व्यवहार की संभावना नहीं है। क्योंकि जाति के बिना भी एक बुद्धि या एक प्रत्यय की प्रवृत्ति स्वयमेव हो जाये करेगी। इसलिए उनके मन में जाति भेद निबन्धन सनामनि-समग्रह भी नहीं है।

एकत्ववादी के अनुसार शब्द के नित्यत्वपक्ष में एकत्व मुख्य होता है, अर्थात् उपचार से एकता नहीं होती बल्कि स्वाभाविक रूप में ही है। कभी कभी कारण-भेद से प्राप्त भेद में उपचरित एकत्व मानना पड़ता है किन्तु भेद में भी अभेद ज्ञान के सदा हान में प्रकटित एकत्व मुख्यसदश ही है। शब्द के कायत्व पक्ष में भी एक वण या एक पद के एक बार उच्चारण के बाद पुनः उच्चारण करने पर यह वही वण है वही पद है ऐसी बुद्धि सदा देवी जाती है। इस अभेद बुद्धि से शब्द के एकत्व की कल्पना की जाती है।

एकत्व दशन का ही भाव कर कायायन न एकत्वादकारम्यसिद्धम (वार्तिक अद्वयण) कहा है। उपलब्धि के व्यवधान से वण या शब्द की एकता नष्ट नहीं होती। वस्तुतः व्यवधान उपलब्धि में होता है, वण में नहीं। वण की अभिपक्ति के साधन की त्रियाशीलता से वण की उपलब्धि होती है, अर्थात् नहीं होनी। जैसे भिन्न दशा में स्थित द्रव्य में एक नाथ ही गृहीत सत्ता सत्ता के रूप में एक ही रहती है अपना एकत्व नहीं छोड़ती वस ही वण भी भिन्न काल में उच्चरित होकर भी अभेद प्रत्यय के कारण एकत्व नहीं छोड़ पाते हैं।

नानात्ववादी दशन के अनुसार शब्द के नित्यत्व या कायत्व पक्ष में, नानात्व मुख्य रहता है और एकत्व औपचारिक होता है। नानात्ववादी को भी औपचारिक एकत्व मानना पड़ता है। क्योंकि शब्द-यवहार एकत्व के बिना सिद्ध नहीं होना। एक शब्द का उच्चारण किया गया पुनः उसी शब्द का द्वितीय बार उच्चारण किया गया। अब यदि उस शब्द के प्रथम उच्चरित स्वरूप से द्वितीय उच्चरित स्वरूप का भेद माना जाए तो अर्थ में गड़बड़ी संभव है। एक व्यक्ति जब गो शब्द कहगा और उम गो शब्द के अर्थ को पहले से जानने वाला व्यक्ति उसका अर्थ समझ जाएगा, परन्तु किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उच्चरित गो शब्द का वही व्यक्ति नहीं समझ पाएगा क्योंकि उस उम अर्थ व्यक्ति द्वारा उच्चरित गो शब्द का संकेत जान नहीं है। अतः नानात्ववादी भी गौण-रूप में एकत्व की सत्ता स्वीकार करते हैं। गो शब्द के लगभग नव अर्थ होते हैं। इन नव अर्थों में नव तरह के गो शब्द हैं। किन्तु गो द्रव्य का वाधक गो शब्द एक ही है। इसी तरह किरण द्रव्य का बोधक गो शब्द एक है। इसी तरह विभिन्न अर्थों के साथ उनका एकत्व लगा हुआ है। भिन्नार्थक एक पद में और भिन्न पदा में स्थित एक ही वण में, नित्यत्व और काय व दोना पक्षा में नानात्व मुख्य है और एकत्व औपचारिक है।



वणमात्रमेव पदम् । तेषामपि सावयवत्वात् भ्रमप्रवृत्तावयवानामा ध्यवहारविच्छेदात्तुरीयतुरीयक विभक्त्यपदेश्य रूप व्यवहारात् अस्ति इति न वणपदे विद्यते ।

—वाक्यपदीय १।७३, हरिवर्ति, पृष्ठ ७५

जब वण का समुदाय उपयुक्त दृष्टि में मभवं नहीं है, परिच्छिन्न रूप वाली और सीमित अर्थ वाली शब्द नाम की कोटि वस्तु भी नहीं है ।

नानाववादी मानते हैं कि पद में वण नहीं होता और न वण में अवयव होने है । वाक्य में पदा का कोई अत्यन्त अलगवयव नहीं होता । वे इस बात का तो मानते हैं कि वण की विवक्षाजय ध्वनि से अभिव्यक्त वण की प्रतिपत्ति (ज्ञान) पद की विवक्षाजय अभिव्यक्ति की प्रतिपत्ति से विलक्षण है । क्योंकि पद में समुदाय विषयक प्रत्यय की जरूरत पड़ती है वण के उच्चारण में उतनी नहीं । फिर भी तुल्य स्थान वरण आदि के कारण वणों की ध्वनियां में एक सादृश्य आ जाता है । फलतः वण-विभाग का ज्ञान पद की प्रतिपत्ति में आभासित होता है । अर्थात् पद जिसमें कोई विभाग नहीं है विभाग वाला जान पड़ने लगता है । वस्तुतः पद एक है । अविच्छिन्न है । नित्य है । अभेद्य है । वह अन्तिम वण (तुरीय वण) से मानो अभिव्यक्त होता है । वणों के तुरीय (वह अन्तिम अवयव जिनसे उनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है) वन्वित है क्योंकि वे व्यवहारातीत और अर्थपदेश्य हैं । इसलिए शास्त्र-व्यवहार में नाना एकत्व प्रसिद्ध है । परन्तु सांख्यिक व्यवहार में वाक्य का प्रयोग होता है । वाक्य प्रतिपत्ति में उपायस्वरूप पद प्रतिपत्ति है । वाक्य अविच्छिन्न है । निर्भाग है । वाक्य के उच्चारण करने पर वण पद आभास वाली भ्रमवृत्ति जो बुद्धि पदाहारी है वह अनात्मिक है । वाक्य में अभिव्यक्ति-ध्वनि भेद के अभाव के कारण उनमें पद वण का विषय अवास्तविक है । सप्रहकार ने कहा है

न हि किञ्चित्पद नामरूपेण नियतं ब्रवीति ।

पदानामयं रूपं च वाक्याद्यदेव ज्ञायते ॥

—सप्रह वचनपदीय २।३१८ में पुण्यराज द्वारा उद्धृत

और वाक्यपदीय १।२६ हरिवर्ति में भक्त हरि द्वारा उद्धृत ।

शब्द के भेदाभेद दर्शन की वार्तिककार और महाभाष्यकार नाना ने अद्भुत सूत्र के विवचन में स्पष्ट किया है । कात्यायन ने एकत्वदर्शन की अपेक्षा में हुए एतत्त्वाकारस्य मिद्धम यह वार्तिक लिखा है और नानात्वदर्शन का मानते हुए 'आद्यभाष्य तु कालशब्दप्रवायान्' यह दूसरा वार्तिक लिखा है ।

भाष्यकार के अनुसार अक्षरसमाख्याय में पठित अक्षर अनुवृत्ति (शास्त्र का लक्ष्य में प्रवृत्ति) में उपलब्ध अक्षर और धात्वादि स्थित अक्षर एक है । अ मूल वाल प्रत्यय जन्म अण क आदि में अनुवृत्ति काय मान्य नहीं हो सकेगा क्योंकि उनमें विनियम स्थला के लिए विशेष अनुवृत्ति इसी दृष्टि से किया गया है कि कितने आदि के स्थान में कितने आदि काय न होना पावे और उदात्तादि की पहचान स्पष्ट रहे । यह आशेष निजम एक घट से अनेक वृत्ति एक माय ही काम नहीं ले सकत उमी तरह वण एकत्व



मानन पर एउ वण का उच्चारण कई व्यक्ति एक साथ नहीं कर सकत ठीक नहै ह । जिम तरह एक ही घट के दशन और स्पग जैसे काय अनेक व्यक्ति भी एक साथ कर सकत है वमे ही अकार आदि वण का उच्चारण भी अनेक व्यक्ति युगपत कर सकते हैं ।

भाष्यकार ने नानात्व पण का भी समथन किया है । कालव्यवधान स शब्दव्यवधान से (शब्द के व्यवधान में भी कालव्यवधान रहता है) और उपात्तादि गुणा के भिन्न भिन्न होने से अकार को भी भिन्न भिन्न मानना चाहिए । भिन्न होते हुए भी उभवा प्रत्यभिज्ञान अत्व आदि सामान्यनिबन्धन है । अकार अक्षर अक्षर, अथ जस विभिन्न पदस्थला में एक साथ ही उपलब्ध हो जाता है । एकत्वदर्शन के अनुसार एमा संभव नहीं है । एक ही देवन्त एक साथ ही मुष्ण और मथुरा में अवस्थित नहीं देखा जा सकता । अकार विभिन्न स्थला में एक साथ देखा जाता है । अतः अनेक हैं एक नहीं । यह नहीं कहा जा सकता कि जस एक ही मूल अनेक स्थाना में युगपत देखा जाता है वगैरे एक ही अकार विभिन्न पदा में युगपत देखा जा सकता है क्योंकि एक द्रष्टा अनेक स्थानगत मूल को एकसाथ ही नहीं देख सकता । शब्द प्रयोगमय ध्वनि से अभिव्यक्त होता है श्रोत्र द्वारा उसकी उपलब्धि होती है बुद्धिद्वारा उसका ग्रहण होता है और उभवा ऐश आशय है । जिम तरह एक ही पृथ्वी के विभिन्न नगरों के आधार पर विभिन्न देश का व्यवहार होता है उसी तरह एक ही आकाश में विभिन्न समशीतोष्ण की सीमा के कारण अनेक आकाशवाणी का व्यवहार होता है । अनेक अविवरणस्थ मूल की तरह अनेक अधिकरणस्थ मनार की भी युगपत उपलब्धि नहीं हो सकती ।

शब्द पण का मान कर भाष्यकार ने लिखा ग्राम शब्द का बहुत अर्थ है—शान्त समुदाय वाटपरिक्षेप (गाँव की रक्षा के लिए उनका चारा घास का घेरा) मनुष्य और अरण्यावाला सीमावाला और जमीन वाला । पुनः अनेक पण को मानते हुए यह कहा जा सकता है कि ये शान्त ग्राम एक में मिले हैं तो वही ग्राम शब्द का तात्पर्य सारण्यन समीपन मस्थणित्य म है ।

—महाभाष्य १।१।७

व्याकरणज्ञान दोन पणों का अर्थ मानना है । धुनि के अर्थ में अनन्तार्थता में भाष्यकार शब्द और अर्थ से एक धुनि होने पर भी अनेक शब्द मानने हैं । एक के मत में अर्थ शोषचारिता और अर्थव्युत्पत्ति । दूसरे के मत में अर्थव्यवहारिता और अर्थव्युत्पत्ति (अर्थ) मुख्य है । एमा तरह अनेक अर्थव्युत्पत्ति और अर्थव्यवहारिता के नियम में भी विचार है ।

अनुहरित एवञ्चान और नानावचन का अर्थ वाच्य म भाष्यकारों ने । विहित शान्त म प्रमाण (विमी के मत में अर्थव्युत्पत्ति) सामर्थ्येना अर्थव्युत्पत्ति । समीपनाथ हान के कारण अर्थव्युत्पत्ति का भी सामर्थ्य है । इनमें प्रथम और अन्तिम अर्थव्युत्पत्ति का तीन-तीन बार आवृत्ति का जाता है त्रिगुण इतनी मर्यादा मर्यादा (अर्थव्युत्पत्ति) हो जाती है । आवृत्ति मर्यादा है अर्थव्युत्पत्ति की मर्यादा मर्यादा शब्द विहित अर्थव्युत्पत्ति की विभिन्न (अर्थव्युत्पत्ति) माना गया है । एमा अर्थव्युत्पत्ति मर्यादा मर्यादा अर्थव्युत्पत्ति का जान पड़ता है । एमा तरह एक ही मत विहितार्थ व अर्थ म भिन्न भिन्न

माना जाता है जमा कि ऊहमत्रा म भी दवा जाता है  
 सामिधेय तर चवमाव तावनुपज्यते ।  
 मत्राश्च विनियोगेन लभते भेदमूहवत ॥

—वाक्यपनीय २।२६०

इसी तरह सावित्री मत्र सस्कार म हूमरा यत्र म हूमरा और जप में भी  
 भिन्न माना जाता है यद्यपि उमका स्वरूप एक ही मालूम पड़ना है  
 अथा सस्कारसावित्री कमथ्य या प्रयुज्यते ।  
 अथा जपप्रवधेषु सा त्वेकव प्रतीयते ॥

—वाक्यपनीय २।२६३

इसके विपरीत कुछ लोग वद मत्रा म अथ ही नहीं मानते । इसलिए उनके  
 लिए अथ भेद म गण भेद की चचा का मूल्य नहीं है । कुछ लोग गण-स्वरूप का ही  
 अथ मानते हैं

अनथकाना पाठो वा शेषस्त्वय प्रतीयते ।  
 गणदस्वरूपमथस्तु पाठोऽयथवप्यते ॥

—वाक्यपनीय २।२६१

वाक्यपनीय में एक गणदशन म शब्दोपचार प्रसिद्धि अप्रसिद्धि निमित्तक माना  
 गया है और अर्थोपचार स्वरूपायत्व और बाह्याय व भेद से दो तरह का माना गया  
 है । इस प्रसंग में भत हरि ने गण के गौण मुख्य पहलू पर भी विचार किया है क्याकि  
 गौण मुख्य का स्वरूप गण के भेदाभेददान म प्रभावित है ।

## गौण-मुख्य विचार

गण एक-ववादी के मत में गौण मुख्य भाव प्रसिद्ध अप्रसिद्ध भेद पर आधित  
 है । गोवाहीक शब्द में गो शब्द का ही अथ वाहीक भी है । अंतर इतना ही है कि  
 गौ के अथ म गो शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है और वाहीक के अथ म कम प्रसिद्ध  
 है (वाक्यपनीय २।२।१) ।

यदि बवल शब्दोपचार माना जाए तो शब्द और अर्थ के संबन्ध में अनिश्चयता लोप  
 आ जाएगा इसलिए भत हरि ने अर्थोपचार भी माना है । गण का अथ दो तरह का  
 होना है—स्वरूप और बाह्य । गोवाहीक म गो शब्द का अथ गो व है । जाड्य आदि  
 के आधार पर गाव वाहीक स भी जुट जाता है यही बाह्यार्थोपचार है । अंतर बवल  
 दानना ही है कि गौ में गोत्व मुख्य है और वाहीक में उपचरित है ।

—वाक्यपनीय २।२।७

इसी तरह गण का स्वरूप भी सभी अर्थों से अनुपकत माना है । मत्र गण  
 का उमका अपना स्वरूप ही है । गो गण का अथ अपना गो शब्द-स्वरूप स्वरूप है । वह  
 स्वरूप कभी गो जाति म जुटता है और कभी वाहीक जाति म । इस विषय की  
 मुख्यता और विभा की गौणता प्रसिद्धि और अप्रसिद्धि पर निर्भर है ।

गणभ्रवाणी (नाना उवादी) के अनुसार गौण अथ यक करने वाला गौ शब्द

अथ ह और मुख्य अथ व्यक्त करन वाला गौण अथ ह । शब्द भेद वाच्य व्याकरण दशक के एक माय मिश्रण पर अवलम्बित है । व्याकरणशास्त्र में शब्द गौण अथ म अध्यासलक्षण संबन्ध माना गया है । यदि एक शब्दवाद माना जाएगा तो एक शब्द का किसी एक अथ म अध्यास माना जाएगा और वह उस अथ म अभेद प्राप्त करेगा फिर एक अथ के साथ अभेद होकर वह किसी अथ के साथ कस अध्यास प्राप्त करेगा ? अतः शब्दभेद पक्ष मानना चाहिए । महाभाष्यकार ने भेद पक्ष और अभेद पक्ष दोनों का स्वीकार किया है (एतच्च भेदाभेदस्वाभाव दानद्वय गन्तव्यो भाष्यकारेण वातिकव्याख्यानावसरे वर्णितम् । (पुण्यराज वाचस्पतीय २।२।६) । भेद पक्ष दान पर भाष्यकार के मतों का ऊपर विचार किया जा चुका है ।

अनक शब्दभेद पक्ष म अथभेद स शब्दभेद मानन के कारण गौण अथ अथ ह और मुख्य अथ अथ ह एगा माना जाता है ।

गौण—मुख्यभाव के संबन्ध म एतद्वैवाच्य और अनक शब्दवाच्य म एत मोक्षित भेद यह भाव है कि अनक शब्दवाच्य अनुसार शब्दोपचार ही उपयुक्त माना जाता है क्योंकि उसके मन म सादृश्य के कारण अभेद प्रतीत होता है मुख्य अथ के अधिन प्रसिद्ध होने के कारण उसमें वाचक शब्द म उपचार मानना उचित है । जबकि एकत्व वाच्य अनुसार अर्थोपचार का आश्रय लिया जाता है । एकत्ववाची अर्थोपचार का आश्रय शब्द और अथ के सम्बन्ध म अनि पताचोपक निवारण के लिये तब है । भवति न शब्दोपचार और अर्थोपचार माना जाय या अन्तर घातय लिया है (पुण्यराज वाचस्पतीय २।२।६) ।

गौण मुख्य भाव का निमित्त क्या है—गौण मुख्य का टान स्वरूप क्या है शब्द पर भवति न अनक मना का उत्पन्न किया है । कुछ प्रसिद्ध मन निम्नलिखित है

### अर्थप्रकरणशब्दांतरसंनिधानपक्ष

शब्द मन के अनुसारमभा तन्त्र के अथ स्वीकारन म ममथ शब्द का गौण मुख्य विभाग निमित्तका होता है । निमित्त के आधार पर क्या शब्द कभा मुख्य और कभी गौण कहा जाता है । ये निमित्त अथ प्रकरण और शब्दोपचार के माग है । गौण शब्द जस मानना सामान्य बात अधिन का स्वीकार करना है तथा तन्त्र वा शब्द का भाव स्वीकार करता है । इनम मुख्य और गौण शब्दोपचार प्रसिद्ध और अर्थोपचार पर निमित्त है ।

महाभाष्यकार के अनुसार मुख्य शब्द और अथ शब्द है त्रिगुण निमित्त । व्याकरण म ना स्वाय का अभिप्राय है । जो शब्द अपना अभिप्राय के लिए या प्रकरण अथवा शब्दोपचार का संनिधान का शब्द मानता है वह गौण है

पुण्यराजवाच्यकारेण स्वाय प्रसिद्धा चयव मन्वय ।

स मुख्य इति द्विगुण शब्दोपचारनिर्वाचन ॥

महाभाष्यकारेण प्रयोगेण चानादि निपुण्य ।

एतद्वैवाच्य मन्वय गौणाय द्विगुणैवित्यम् ॥

इसका कुछ लोग इस रूप में भी कहते हैं कि निमित्तता मुख्य ग्रथ होना है और निमित्ती गौण होता है। गो शब्द वाहीक के ग्रथ में प्रयुक्त होता हुआ साम्ना आदि वाले ग्रथ को व्यक्त करने वाले गो शब्द के सम्बन्धी ग्रथ को निमित्त के रूप में ग्रहण करता है इसलिए उस विषय में मुख्य ग्रथ निमित्त है और निमित्ती गौण है। दूसरे शब्दों में जहाँ शब्द की गति स्थलित नहीं होती वहाँ मुख्य ग्रथ और जहाँ शब्द की स्वल्पगति होती है वहाँ गौण ग्रथ होता है। यह मत अर्थोपचार पक्ष में एक शब्दवाद के अनुसार है। यहाँ शब्दभेद कल्पित समझना चाहिए क्योंकि एकशब्ददान पक्ष में शब्द भेद संभव नहीं है।

परन्तु भन हरि ने अर्थप्रकरण के आधार पर गौण मुख्य विभाग को प्रथम नहीं दिया है। बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनके ग्रथ का निणय ग्रथ प्रकरण आदि के आधार पर किया जाता है जैसे पुरा, आरात आदि। पुरा और आरात शब्द का क्रम भूत और भविष्य और कभी दूर और समीप ग्रथ होता है। प्रकरण के अनुसार उसका निश्चय ही जाता है। यदि प्रकरण मह्य ग्रथ को गौण माना जाए तो पुरा आरात में भी गौण मुख्य भाव होने लगेगा पर होता नहीं है। इसलिए ग्रथ प्रकरण के आधार पर गौण मुख्य विवेचन उतना युक्ति युक्त नहीं है।

एकशब्दवाद और अनन्यशब्दवाद दोनों पद और पदार्थ का मत्त मान कर चलते हैं। परन्तु अखण्डवाक्यवाद्या के मत में पद और पदार्थ अमत्त है। पलन पद और पदार्थ पर अन्तर्गत गौण मुख्य भाव भी संभव नहीं है। गौर्वाहीक यह अखण्ड वाक्य है और इसमें गौणतम से अविच्छिन्न वाहीक लक्षण ग्रथ अखण्ड रूप में ही प्रतिपादित किया जाता है। जहाँ एक ही पद है वहाँ भी त्रिया चरित (छिपी) रहती है। इसीलिए कोडयम के प्रश्न में गौ (अन्ति), अश्व (अन्ति) आदि के रूप में त्रिया छिपी रहती है। इसलिए एक अखण्ड वाक्य ही वाचक है। फिर भी अपाठार पद्धति का आश्रय लेकर पद पदार्थ की कल्पना की जाती है और प्रसिद्धि अप्रसिद्धि के आधार पर गौण मुख्य विभाग किया जाता है।

## न्यूनाधिकभाव

कुछ लोग गौण मुख्य विभाग का आधार न्यून और अधिक भाव मानते हैं। धर्मा का न्यून भाव गौणता का प्रतीक है और अधिक भाव मुख्यता का द्योतक है परन्तु भन हरि के मत में यह मत अन्वैज्ञानिक है। क्योंकि न्यून और अधिकभाव अनवस्थित है। किसी धर्म का आधिक्य या प्रसिद्धि भी कभी किसी दृष्टि से न्यून हो सकती है इसलिए न्यून अधिक भाव का गौण मुख्य विभाग का निमित्त नहीं माना जा सकता।

## सादृश्य निमित्त के रूप में

कुछ आचार्यों के मत में गौण मुख्यभाव में निमित्त सादृश्य है। वाहीक में गान् जानि नहीं है। फिर भी गो शब्द वाहीक के ग्रथ में प्रयुक्त होता है क्योंकि गो व्यक्त के

जाह्य मात्र प्राप्ति गुणा का बाह्य गत जाह्य मात्र प्राप्ति गुणो रा साह्य है। इसी साह्य के आधार पर गाना गाव रहित वाचीय व लिए भी प्रयुक्त होता है।

पुष्पराज के अनुसार यह मत भी प्रयुक्त नहीं है क्योंकि वाच्यप्रतिवृत्ति वाच्यप जसे स्थला म साह्य निमित्त ता है परन्तु गौणता नहीं है। इसलिए मवत्र साह्य को गौण मुख्यभाव का निमित्त नहा माना जा मता।

## विपर्यास

गौण और मुख्य भाव के विवचन म एक मत विपर्यास पर भी अवलम्बित है। बाह्य रूप अथ विपर्यास स मानो गो रूप हा जाता है। बाह्य का गो रूप होना अर्थात्तर होना है। इसलिए उसका वाचक गो गत गौण है। विपर्यास दो तरह म होता है—अध्यारोप रूप म और अध्ववसाय रूप म। गौवाचीय इस गत म गो गत गुणा का बाह्य म अध्यास होता है। अत यहाँ विपर्यास अध्यारोपित है। रजत म्दम इसम विपर्यास अध्ववसाय रूप म है। अध्यारोप और अध्ववसाय म अन्तर यह है कि अध्यारोप म आरोप्यमाण और आरोपविपर्यास दोनों का भेद अपहृत नहीं होता जबकि अध्ववसाय म आरोप्यमाण के द्वारा आरोपविपर्यास निगोण (अत कृत) होता है। अध्यारोप म वा वस्तुआ म भेद होन हुए भी ताद्रूप्य की प्रतीति मुख्य प्रयोजन है जबकि अध्ववसाय म सबथा अभेद का परिचान प्रयोजन होता है। वस्तुतः जहाँ अध्यारोप है वहा गौण मुख्यभाव हो मकता है परन्तु जहाँ अध्ववसाय है वहाँ गौण मुख्यभाव स्पष्ट नहा होता। इसलिए केवल अध्यारोपलक्षण विपर्यास को गौणमुख्यभाव का निमित्त माना जा मकता है।

## रूप-शक्ति

गत रूप और शक्ति स स्वभावतः सपन्न रहता है। औपत्तिकस्तु शास्त्रस्या धेन सम्बन्ध (मीमांसा सूत्र १।१।५) म्सा याय म भी गत म स्वाभाविक शक्ति निहित है। गत रूप और शक्ति दोनों म उत्पत्तिकाल म ही युक्त रहता है। गत म अनेक शक्तियाँ हैं। इसलिए गत अपनी शक्ति व बल म अनेक अर्थ कर सकता है। अतएव कुछ विचारका के मत म गौण मुख्य-व्यवहार रूपशक्ति निमित्तक है। मीर (हल) मुमल खग प्राप्ति अपने रूप और अपनी शक्ति स समन्वित होकर नियत अर्थ रखन हुए भी कभा कभी अन्य अर्थ को प्रकट करत है। जम किमी के मग लाओ म्सा वाच्य स लडाई की वान आ गत है इस अर्थ का अभिप्रायि हानी है। यह अभिप्रायि रूप शक्ति की महिमा है। रूप शक्ति के वन स गौण मुख्य विभाग को प्रकिया म्सा है कि गत श्रवणमात्र स अपन जिस स्वाभाविक अर्थ का व्यक्त करता है वह मुख्य अर्थ है और जहाँ अभिधान शक्ति व हान हुए भा अग्रिमिद्धि के कारण प्रकरण प्राप्ति के मगर मन्पूर्वक उमका अर्थ अर्थ किया जाना है व अर्थ गौण है

धृतिमात्रेण यथास्य तादात्म्यमवसोषते ।  
 मुख्य समथ मयते गौण यत्नोपपादितम् ॥

—वाङ्मयपदीय २।२८०

अनभट्ट व अनुमार मुख्यता और गौणता यथा गणान्तर निरूपण और गणान्तर मापन अथ प्रतीति के आधार पर माननी चाहिए

यथा अग्रेषु मुख्यस्य प्राधाय तथा शब्दान्तरनिरपेक्षतया प्रतीयमानस्य मध्यस्य प्राधान्यम् । शब्दस्यापि स्वशक्तिविषय-सादृश्याय प्रतिपादकत्वेन मुख्यत्वम् ।

—अनभट्ट महाभाष्यप्रतीपाद्योक्त द्वितीयभाग प० २३

व्याकरण मप्रदाय के अन्तर्क आचाय गणाय का बौद्ध मानत है । उनका अनुसार गण म गौण मुख्य विभाग सम्भव नहीं है । वक्ता जिसे अभिप्राय से गण का प्रयोग करता है प्रतिपत्ता को उस गण में उसी अर्थ का जाना होगा अतः मुख्य रूप में ही रहना कभी गौण न हो सकेगा । फलतः गौण मुख्य विभाग भी उपयुक्त न होगा । परन्तु अतः हरि इस मत का प्रथम नहीं हैं । एक तरह के गण या जान जाने पर भी शब्द में सत्य और असत्य का भेद दिया जाता है । दयन में मृग मरोचिका में जल दिखाई पड़ता है परन्तु मगमरोचिका जल नहीं है चित्रा में नदी, पर्वत आदि के स्वरूप निम्न और उन्नत दिखाई देते हैं परन्तु चित्रमन उच्चता या निम्नता में प्रतिघात आदि काद वाच्यभेद नहीं होता । देव कान इन्द्रियगत भेद में वस्तु अथवा रूप में (अपन शुद्धरूप व विपरीत) दिखाई पड़ती है परन्तु जोर में क्रियाभेद के आधार पर और प्रसिद्धि के आधार पर उस वस्तु का अविपरीत (यथाथ) रूप में ही ग्रहण होता है । वस्तुतः जो सत्य के विपरीत उपघातक जान है और जा अलौकिक जान है उन दोनों में व्यवहार नहीं होता । गण शब्द व्यवहार के निमित्तभूत होते हैं । इसलिए प्रसिद्धि या अप्रसिद्धि अथवा स्वनदगति या अस्वनदगति के आधार पर गणाय के बौद्ध होने पर भी गण के गौण मुख्य विभाग सम्भव हैं ।

गौण मुख्यभाव मानकर ही गौणमुख्ययो मुख्ये काय सप्रत्यय (परिभाषा वृत्ति सागन्द १०३) में परिभाषा प्रतिष्ठित है । अग्ने ढक (४।२।३३) में मूत्र में मुख्य अग्नि गण में ढक प्रत्यय होता है अग्निर्माणवक जस उपवरित (गौण) अग्नि गण में नहीं होता । अग्नौ गौ सपद्यते गौऽभवत् जस स्थाना में गौणाय होने के कारण आन्त के निपातन होने पर भी ओल (पा० १।१।१५) में प्रगृह्य सता नहीं होती ।

वार्तिककार ने गौऽभवन जस स्थला में प्रवृत्तिभाव के निषेध के लिए ओलद्वय प्रतिषेध इन तरह का प्रयत्न किया है । इससे यह जान पड़ता है कि वार्तिककार के मत में गौऽभवन में अर्थ लगाने का गण का मुख्य अर्थ ही है । सभी अर्थ मुख्य ही होते हैं । अतः गौण मुख्य भाव विभाग सम्भव नहीं है परन्तु महाभाष्यकार ने गौण मुख्य भाव के आधार पर यहाँ प्रगृह्य सता का निर्देश किया है । उसी तरह अग्निपोम गण में स का लता होता है परन्तु अग्निमामो माणवको में नहीं होता क्योंकि दूसरे गौण हो गया है । महाभाष्यकार ने दयवी पुष्टि के लिए कहा है कि यथा गौरनु-



(४।१।६२), भाव (३।३।१८) जैसे स्थला म पुलिग द्वारा निर्देश किया गया है। अतः नपुं सर्वलिग और स्त्रीलिग से प्रत्यय नहीं होना चाहिए। इसके उत्तर म भाष्यकार ने कहा है कि यहाँ लिग और सख्या नातरीयक हैं, अतः अविबक्षित है। जिस तरह अन्न की कामना से कोई व्यक्ति 'तुप और पलाल सहित' गालि लाता है पुनः उसमें से अन्नादि जो कुछ लान योग्य होता है उस लेता है। शेष को छाड़ देता है। अथवा जिस तरह मासार्थी शकल और कण्ठक महिल मन्थ लाना है क्योंकि गन्ध और कटक नातरीयक हैं पुनः लेने योग्य अन्न को लाने गन्ध कटक आदि का फल देता है उसी तरह गान्ध शास्त्र म भी तद्धिताय निर्देश आदि म तद्धिताय का ता ग्रहण किया जाता है और नातरीयक रूप म व्यक्ति लिग और सख्या को छोड़ दिया जाता है। वे विवक्षित नहीं हात। इसी का पुण्यराज ने 'पदायैकदेशाविवक्षा' कहा है।

कथं क अनुमार कही-वही सख्या विवक्षित होती है जस मुपमुपा म —  
सवत्रव हि शास्त्रस्मिन् नातरीयकत्वाद्दुपात्त लिगसख्य न विवक्ष्यते।  
क्वचित् सख्या विवक्ष्यते यथा मुपमुपेति।

—कथं महाभाष्य ४।१।६२

सकलपन्था अविबक्षा यहाँ हाती है जहाँ शब्द क द्वारा उपात्त पदाय का त्याग कर दिया जाता है और अनुपात्त अथ गृहीत होना है। जस तस्यादित उपात्त मद्द ह्रस्वम (१।२।३२) मे अद्द ह्रस्व गन्। अद्द ह्रस्वका अथ ता होना चाहिए ह्रस्व का आधा। पर इस अथ के लेने पर दीध और स्वरित क अद्दमात्रा का ग्रहण नहीं होगा परन्तु होना चाहिए। इसलिए अद्द ह्रस्व गन् का अथ अवमाना कर दिया जाता है। यहाँ ह्रस्व गन् उपलक्षण है दीध और स्वरित का भी अद्द ह्रस्वमित्यनेन अद्दमात्रा लक्ष्यते, ह्रस्वग्रहणमतत्रम।

—वाशिना १।२।२२

कुछ लोग ऊवालो उभ्रस्वदीधप्लुत (१।२।२७) म ह्रस्व लीध और प्लुत के एक साथ निर्देश होने के कारण ह्रस्व शब्द से दीध और प्लुत भी लानि है एमा मानत है। कुछ लोग क अनुसार अद्द ह्रस्व प्रमाण के अथ म रुचि शब्द है। निरवयव है अद्दह्रस्व शब्द प्रमाणवाची रुचि शब्द। 'पुत्पत्यथ च ह्रस्वस्यापादानम्। अद्दमात्रात्वोनामधीयते।

—कथं महाभाष्य १।२।२२

उपात्त पदाय के अपरिस्थान द्वारा अथ अथ का उपलक्षण भी मुख्य और नातरीयक का एक प्रकार है। जत्र कोर् कहता है अभी बहुत चलना है मूय का देखा तो उसका उद्देश्य दिग् के अप शेष भाग का लिखाना रहता है। एम स्थला म प्रधान अथ ही अथ अथ का उपलक्षण हो जाता है। इसी तरह कान मे दधि की रक्षा करो इस वाक्य का कान गन् अथ जीवा जम कुत्ते आदि का भी उपलक्षण है। गान्ध म भी विध्यत्यधनुपा इस वाक्य म अधनुपा पद से करणमागामाय मात्र का निर्देश माना जाता है। भाजनमस्योपाद्यताम एम वाक्य क कहने पर नातरीयक क रूप म आमनन्तान पात्र प्रनालन, आदि भाजन क अथ के रूप म मानित



हान ही है।

पुष्पराज क अनुगार सवतपथाय अविद्यया और उपातपथाय क अपरित्याग द्वारा अथअथ का उपलक्षण यदा मुक्त्य-नान्तरीयन क विभाग अविद्ययित धाच्यनशना (ध्वनि) और विद्ययिता-परवाच्य नशना (ध्वनि) क सूचक है—

—वाच्यपत्नीय २।० १५

मुक्त्य और गौण सप्रधी उपयुक्त मना म पुष्पराज न निम्ननिमित्त चार को अधिन महत्व दिया था

१ प्रसिद्ध अप्रसिद्धि महित प्रवरणात् ।

२ प्रवरणात् महित प्रसिद्धि अप्रसिद्धि ।

३ अघपारोपनक्षण विपर्याम ।

४ रूपग्विन ।

भन हरि शन म ग न अनवधमा है सवग्विनमान है। एक हा गा ग न कभी जाति विनेप का अभिधायी होता है तम गौरनुबध्य म और कभी जानिविनिष्ट द्रव्य का अभिधायक होता है जैसे गौ अनायताम म। कुछ लोग इस केवल जातिमात्र का वाचक मानते हैं। कभी गौ ग न परिच्छिन्न द्रव्य विनेप क लिए प्रयुक्त होता है जैसे अस्त्यत्र काचित् गा पर्यमि म। वही हृद सम्बन्धो म त्रिया गुणा म गो ग न का प्रयोग लेखा जाता है जैसे जाडय के कारण अथवा उच्छिष्ट (भाजन क कारण) अथवा सब कुछ मह लेने क कारण अथवा बहुत अधिक भोजन करने के कारण वाहीक को गौ कहा जाता है। इस तरह गो ग न सवग्विनमान है। उमका सामध्य दूसरे निमित्तो के कारण नियमित होता है। इसलिए गौणभाव प्रसिद्धि अप्रसिद्धि पर निर्भर करना है। ग न सुनने मात्र से ही जिस अथ म वह अवरद्ध हा जाता है किसी दूसरे शब्द स वाच्य प्रसिद्ध अथवा तर को नहा समेटता, वह मुख्य माना जाता है।

जहा शब्दान्तर से अभिधेय अथान्तर का अवलम्बन कर लोक म अथ गृहीत होता है वहाँ गौण माना जाता है।<sup>३३</sup>

३२ एक एवाय गोशब्दो वाच्ये क्वचित् जातिविशेषाभिधायी  
 तं यथा गौस्तुव'य' इति । क्वचित्कनायुपसंज्ञने  
 द्रव्यमात्रे वतते । ग न यथा गौरानीयताम्' गौ दुष्यनामिति ।  
 क्वचिदत्र जातिमात्राभिधायित्व मयते । तं यथा 'क्वचित्'  
 गोशब्द परिच्छिन्न एव द्रव्यरोपे वतते । तं यथा  
 अस्त्यत्र काचित् गा पर्यमोति महति गोमटले आसीन यदा  
 गोपालक पृच्छसा (ती) नि । क्वचित्तु रूपि सम्बन्धेषु त्रियागुरोषु  
 गोशब्द प्रयुज्यमानो दृश्यते । तद यथा 'ताड्या' औद्दिष्ट्यात् (१)  
 सप्तसहस्रान महाराजनाद् वा गौवाहीक इति ।  
 तस्य शब्दशक्तौ गोशब्दय निमित्तान्तरात्क्वचिद्व्यपमान  
 साप दरय प्रसिद्धिप्रसिद्धिभ्या गौणत्व विजायते ।

वाच्यपदोय २।०५५ हरिवृत्ति, हर्यलेग न गार प्रकारा ५० २५८ में भा उपलभ्य ।

किमी आचार्य के मत में शब्द की वृत्ति स्व विषय में मुख्य में होती है। भुग्य में अयत्न नहीं होती। बचन रूपांतर का अध्यारोप अयातर में किया जाता है। और इसका आधार बुद्धि का विपर्याय है। जस समाह अथवा भ्रम से रजु में सप के विपर्याय हा जाने पर सप शब्द स्वविषय में (मुख्य विषय में) प्रयुक्त होता है। एमी तरह में भूतकाल में दन्ने गय किमी धम व मादृश्यता में, अथवा भविष्य में हान वाले भूत सम्पर्गी किमी धम से बुद्धि में विपर्याय हा जान में बाहीक में गात्व लाकर मास्नावाले गो पिण्ड में ही गो शब्द का प्रयोग करता है। यहाँ केवल अथ रूप मात्र विपर्याय है। शब्द का अर्थ मुख्य विषय में व्यभिचार नहीं है।<sup>२६</sup>

महाभाष्यकार ने भी ताद्रूप्य का समर्थन किया है। जैसे तस्य इदं मम्यध होना है वम ही म अयम के रूप में भी सम्बन्ध होता है। यह वह है मम्यध चार प्रकार से होता है—तानस्थ्य से तान्धम्य से, तन सामीप्य से और तत साहचर्य में। महाभाष्य में इन चारों का उदाहरण दिया है

तात्स्थ्यात् मत्ता हसति । गिरि बह्यते ।  
तादधर्मात् जटिन पीन ब्रह्मदत्त इत्याह ।  
तत्सामीप्यात् गगाया घोष । कूपेगगकुलम् ।  
तत् साहर्चायत् कृतान प्रवेशम् । यष्टी प्रवेशम् ।<sup>२७</sup>

महाभाष्यकार की यह उक्ति लक्षणा शक्ति का बीज है। यही से लक्षण का विकास हुआ है। भत मित्र ने महाभाष्यकार की इस उक्ति के आधार पर पाँच प्रकार की लक्षणा का उल्लेख किया था

अभिधेयेन सामीप्यात् सारूप्यात् समवायत् ।  
वपरीत्यात् क्रिया योगात् लक्षणा पचधा मता ।

—ध्वयानोक्त लोचन में उद्धृत प०, २८

उपचार के रूप में भी लक्षणा के संकेत महाभाष्य में मिल जाते हैं  
धुवत्व लोके ईप्सित पूजेत्युपचयते<sup>२८</sup>  
लोके हि सख्या पवत मानामुपचरति<sup>२९</sup>

२४ ०नेपाभाष्यारशा मुख्यात् स्वविपर्यादन्यत्र शब्दस्य वृत्ति नाम्नि ।  
रूपात्ता यारोपतु अध्यान्तरे क्रियते । यथर्वक समोहान रजुव्ये  
प्रान्तविपर्यास सपशब्द स्व विषये प्रयु क्ते । विपर्यातरे तु विषयातर—  
रूपमध्यारोपयति । तथा करयच्चिदेव सारथ धर्मस्य भूतस्य दशानात् भाविनी  
का भूतपदात्मनात् गोत्वमासाद्य (आमज्य) बाहाके प्र त रूपविपर्यामा  
बुद्धौ गोशब्द साग्नादिमत्येव पिरते प्रयु क्ते । तत्राथरूपमात्रविपर्याय ।  
शब्दस्य तु विषये व्यभिचारो व दृश्यते वाक्यपदाद्य २०५६  
हरिवृत्ति ह्यतलेत् । शृ गार प्रकाश ६००५६ में भी उपलब्ध है ।

२५ महाभाष्य ४।१।४८

२६ महाभाष्य ४।१।१६३

२७ महाभाष्य ४।१।६३

इम पर गणन का स्थिणी है

उपचार-तीत्यनेन लक्षणाबीजसम्बन्ध प्रदानम् ।<sup>३८</sup>

लक्षणा गणन का मूल भी महाभाष्य में मिल जाता है और वहाँ है महाभाष्य पार का 'लक्ष्यत, शब्द का प्रयोग — श्रवत्य सत्यपि सोके लक्ष्यत महामाष्य ४।१।६६

मुख्य और गौण व' आधार पर मुख्य वृत्ति और गौणी वृत्ति का गणन वृत्ति का रूप में विचार प्रारम्भ हुआ । मुख्य व' आधार पर मुख्य और जपन व' आधार पर जपन्या वृत्ति की कल्पना बहुत पहल की जा चुकी थी । जपन्या गणन का प्रचलन कम पड़ता गया और उपचार गणन का ही प्रचार दशम के क्षेत्र में प्रथित रहा । धीरे धीरे गुण गणन उपचार का स्थान लेता गया । प्रारम्भ में गुणा-कल्पना और उपचार-कल्पना समानाधिकरण थे । काणिका वृत्ति में गुण-कल्पना का प्रयोग उपचार-कल्पना के रूप में हुआ है

द्विगु निमित्तको तर्हि गुणकल्पनया

—काणिका वृत्ति ४।१।८८

'यासकार न यहाँ गुण कल्पना का उपचार कल्पना माना है

गुणनिमित्ता कल्पना गुणनिमित्तकल्पना । सा पुनरुपचारात्मिकव वेदितव्या

—यास ४।१।८८

किंतु बाद में गुण-कल्पना और उपचार कल्पना में थोड़ा भेद माना जान लगा । गुण कल्पना का सबंध विशेष्य से और उपचार कल्पना का सबंध विशेषण से होता है । गुणवृत्ति का अतर्भाव उपचारवृत्ति में नहीं होता किंतु उपचारवृत्ति का अतर्भाव गुण वृत्ति में हो जाता है ।<sup>३९</sup> इसी तरह लक्षणा और उपचार गणन के भी प्रयोग प्रारम्भ में समानाधिकरण रूप में देखे जाते हैं ।

जयादित्य और वामन ने लक्षणा और उपचार के समानाधिकरण प्रयोग किए हैं यदा तु लक्षणया वृत्तते तदा पुनरुपेण समानाधिकरण्य भवति

काणिका ४।२।२२

'यासकार व' अनुसार यहाँ लक्षणा का अर्थ उपचार है—लक्षणा उपचार — याम ४।२।२२ । यासकार ने अत्र भी लक्षणा या उपचार के रूप में लिया है ।

लक्ष्यतेऽनयेति लक्षणा । सा पुनरिहोपचार एव ।

—याम ४।१।८८ पृ० ८८८

कुमारिल भट्ट ने लक्षणावृत्ति और गौणीवृत्ति में भेद माना है । अभिधेय से सत्रय में प्रवृत्ति को लक्षणा कहा जाता है अभिधेय से लक्ष्य गुण के योग से गौणी वृत्ति होती है ।

३८ महाभाष्य प्रतीशेषोत् ४।१।६३

३९ तामहि विशेष्यपु गुणकल्पना विशरणधूपचारकानयेति प्रतीशेष पुरस्तान् । न च गुणवृत्तिश्च उपचारकानयेति अकिन्वुपचारवृत्ति गुणवृत्तौ शृ गार प्रकाश, पृ० ३५८ मैथूर मन्तरण ।

अभिधेयाविनाभूते प्रवृत्तिलक्षणेप्यते ।

लक्ष्यमाणगुणयोगाव यत्तेरिष्टा तु गौणता ॥<sup>४०</sup>

अभिधेयसम्बन्धित्वरूपापरित्यागप्रदशनायोऽविनाभूतशब्द

—यायमुष्ठा, पृ० ४६५

अभिनवमुष्ठा न भी लक्षणा और गौणीवृत्ति म भेदमूत्रक वक्तव्य उद्धृत किया ह

यदाह गौणे शब्दप्रयोग, न लक्षणायांमिति ।<sup>४१</sup> कथं न भी गौणीवृत्ति का आश्रय लिया है (गौणीवृत्तिः उत्रा इत्याथयवणीया—प्रदीप ४।४।६२) किंतु अधिवतर इनका एक मानकर विशेष विचार हुआ है । यायमूत्रकार ने लक्षणा को भी उपचार रूप म दिया है ।<sup>४२</sup>

व्याकरणदान म अथण्ड वाक्याय की महत्ता होने के कारण लक्षणा की स्वतंत्र सत्ता नहीं स्वीकार की गई है किंतु कल्पित पद पदाय विचार के अन्वय पर उसके स्वरूप के मक्त अन्वय मिलत हैं जसा कि ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है । नापेग ने लक्षणा पर विस्तृत रूप म विचार किया है । किंतु वह साहित्यशास्त्र की छाया से सस्पष्ट है । भत हरि न मुख्यावृत्ति और गौणीवृत्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है ।<sup>४३</sup>

भतृ हरि न नानात्व वाद के प्रसंग म प्रतीयमान शब्द और प्रतीयमान अर्थ का सकेन किया है । प्रतीयमान अर्थ ही आनन्दवधन का 'ध्वनि सिद्धान्त' है जिसके सहारे व्यञ्जनावृत्ति पल्लवित हुई है । कुछ आचार्यों का मत था कि श्रूयमाण शब्द ही सदा प्रत्यायक नहीं होता अनुमीयमान शब्द भी प्रत्यायक होता है ।

केचित्तु मयते नावश्य श्रूयमाण एव शब्द प्रत्यायक । किं तर्हि । नियमेना अनुमीयमानोपि श्रूयमाणशब्देव प्रत्ययमुत्पादयति ।<sup>४४</sup>

अनुमीयमान शब्द का भाई प्रतीयमान शब्द है । किसी न विप्रतिपत्ति उठाई थी कि प्रतीयमान शब्द अर्थ का अभिधायक नहीं हो सकता ।<sup>४५</sup> इससे स्पष्ट है कि ध्वनिसिद्धान्त का बीज व्याकरणदशन म मिल जाता है । केवल प्रतीयमान अर्थ का ही नहीं आनन्दवधन के अविबक्षित वाच्य आदि वादा का भी मूल भतृ हरि के वचन है । भतृ हरि न प्रश्न उठाया है कि शब्द के प्रयोग होत हुए भी अर्थ अविबक्षित कैसे रह सकता है ? स्वयं उसका उत्तर घटप्रदीप याय के आधार पर दिया है । दीपक का उपयाग घट आदि द्रव्य वस्तु के लिए किया जाता है । दीपक घट के साथ साथ

४० सत्रवार्तिक, पृ० ३१८ काव्यप्रकारा में 'अभिधेयाविनाभूतप्रवृत्ति' पाठ मिलना है जो अनुद्ध ह ।

४१ ध्वन्यालोकलोचन, पृ० १४३, चौखम्बा सरकारय

४२ यायमूत्र २।२।६३

४३ वाचपरितोषेऽग्य मुरयावृत्ति । पुरपादिषु तु गौणी ।

—महाभाष्यनिपादा पृ० १३८ पूना सरकारय ।

४४ वाच्यपदीय २।३६५ हरिवृत्ति । हरतलेख

४५ कथ प्रतीयमान रयाच्छब्दोऽर्थत्याभिधायक ।

—वाच्यपदीय २।३६३

गन्निहितं तूष्णं शोभते अन्विष्टं चो भी ध्यानं कर देता है। प्रकाशनं शक्तिं केवलं रश्मितं वा ही अभिव्यक्तं नही है। किंतु सभी अभिव्यक्तं इष्टं नही भी हो सक्त है। अवि यक्षितं अथ वा यही आधार है

तत्रेदं विचार्यते । अथमभिधीयमानोऽथ गन्धवान् अविचक्षित इति । तस्मादिव प्रशम्यते । प्रदीपो हि प्रकाशनं गन्धस्या युक्तं तमसि यस्य प्रकाशयि तस्यस्य घटादेरपलिप्तितस्य अथस्य दग्नाथमुपादोयते । ततो सौ अर्थांतरस्यापि सयोगिनः समानदेशस्य तणपामुक्तीटसरीसपादे घटादिवदेव प्रकाशनं करोति । न ह्यत्र प्रकाशनं गतिरिष्टविषयमेव परिगृह्णाति ।<sup>४६</sup>

यह उल्लेखनीय है कि आनन्दवधन न भी वायु और प्रतीयमान के प्रसंग में दीपशिखा का उदाहरण दिया है ।<sup>४७</sup>

४६ वाक्यपदाय २।३०० हरिवृत्ति हस्तलेख  
४७ आलोकार्थी यथा दीपशिखाया यन्वान जन ।

## पदार्थ-विचार

अपने देश के विचारको विशेषकर वयाकरणों की यह मान्यता रही है कि पदार्थ सत्ता के निर्देशक हैं (न पदार्थ सत्ता व्यभिचरति—महाभाष्य ५।२।६४)। शब्द-प्रयोग सत्तापक्ष ही होता है। अतः हरि भी इस बात का मानते हैं कि सभी शब्दों की प्रवृत्ति में मूल कारण सत्ता है।<sup>१</sup> अतः शब्द के आधार पर भी अभिधेय का विवेचन किया जा सकता है। अभिधेय के रूप में सम्पूर्ण विश्व ही है। इसके विवेचन के लिये पदार्थों का वर्गीकरण किया जाता है। वयाकरणों में शब्दों की प्रवृत्ति के आधार पर चार पदार्थों का उल्लेख किया है। जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य। और इसी के अनुसार शब्द प्रवृत्ति भी चार तरह की मान ली गई है जाति शब्द, गुण शब्द क्रिया शब्द और द्रव्य शब्द (यदच्छा शब्द)। यथा भेद प्रायः स्वीकृत हैं। वस्तुतः शब्द प्रवृत्ति के वर्गीकरण के विषय में विवाद है और वह प्राचीनकाल से ही है। जिन द्रव्यद्वि के अनुसार, निरन्तर और आकटायेन प्रयोगेण प्रवृत्ति को मानने वाले हैं। उनके मत में जाति शब्द, गुण शब्द और क्रिया शब्द हैं। यदच्छा शब्द नहीं। कुछ लोग केवल क्रिया शब्द मानते हैं। जाति शब्द और गुण शब्द भी क्रिया शब्द से ही विनिर्मित हुए हैं। अतः शब्दों की प्रवृत्ति एक ही है और वह है क्रिया शब्द।

तदेव निरन्तरकारणाकटायेन प्रयोगेण शब्दानां प्रवृत्तिः। जातिशब्दानां गुणशब्दानां क्रियाशब्दानां च। न सति यदच्छा शब्दानां इति। अथवा जातिगुणशब्दानामपि क्रियाशब्दत्वमेव। धातुत्वात्। ततश्चक्रव शब्दानां प्रवृत्तिः क्रियाशब्दानां इति।

—याम ३।२।१, पृष्ठ ६७४

कुछ आचार्य केवल जाति शब्द ही मानते हैं। उनके मत में तथा कथित गुण शब्द क्रिया शब्द और यदच्छा शब्द भी जाति शब्द ही हैं। क्योंकि पयः शब्द, वनना शब्द में परमायत भिन्न रूप में स्थित शुक्ल गुण का शुक्ल रूप में तान शुकनत्व के आधार पर होना है। गुड तण्डुल आदि की पाक क्रिया में भी पाकत्व मामात्र है। यदच्छा शब्द इत्य आदि में भावित्यत्व है। शब्दों की दृष्टि से बाल वृद्ध, शुक

<sup>१</sup> प्रविहित सर्वेषां शब्दानामप्यधिकान्।

एतं तथा पदार्थो हि न कश्चिदनिवन्ते ॥

आदि क द्वारा विभिन्न रूप में उच्चरित शब्द एक ही अक्षरगुणकार प्रत्यय शब्दत्व क गतारे ही सम्भव है। अथ की दृष्टि से भी उगम शब्दत्व वाला वृद्ध आदि अक्षरगुण भेद से भेद हात हुए भी यह वही शब्द है इस प्रकार के ज्ञान हान क कारण सम्भव सम्भव है। शक्तिय सभी प्रकार क शब्दा का प्रवृत्तिनिमित्त जाति को ही मानना चाहिये। इस दृष्टि से महाभाष्य का शतुष्टयी शब्दप्रवृत्ति वाला मन ठीक नहीं बढता। अत महाभाष्यकार के समयक केवल जाति शब्दवादिया का उत्तर न्त हुए कहन है कि गुण शब्द प्रियाग आदि का ग्रहण जानिग क रूप म नहा किया जा सकता। क्याकि पथ, शय, बलाग आदि का गुण गुण परमायत भिन्न भिन्न नहीं है। उनम भिन्नता आशयभेद से जान पडती है जस एक ही गुण का प्रतिशिव सङग मुकुर आदि आशय भेद से भिन्न भिन्न जान पडता है। वस्तुन गुण गुण एक ही है। गुण शक्ति क एक ही होन क कारण अन्व म गमवाय सम्बन्ध से रहन वाली जाति का लक्षण गुण शब्दो म घट ही नहीं सकता। इसी तरह किया भी आशयभेद से भिन्न भिन्न जान पडती है। वस्तुत वह भी एक ही है। इसलिय केवल जाति शब्द न मान कर भाष्योक्त मत स्वीकार करना चाहिये।

गुणप्रियायद्वेक्षागदानामपि जातिशब्दत्वाच्चतुष्टयो शब्दप्रवृत्तिनात्पथत।  
अत्रामिधीयते-गुणप्रियाशब्दसन्निव्यक्तोनामेव तत्तदुपाधिनिबन्धनभेदबुधामेका  
कारतावपतिनिबन्धनत्व न तु जातेरिति नगवतो महाभाष्यकारस्याशानिमित्तम।

—मुकुलभट्ट अभिधावृत्तिमातका, पृष्ठ ५

पाणिनि चारा भेद मानत जान पडत है। जाति गुण श्रोत्र क्रियापरक तो उनक अन्वक सूत्र है। यदच्छा शब्दो की मायता का आधार कैयट क मत म उनका अथ वदधानुरप्रत्यय प्रातिपदिकम (१।२।४५) सूत्र है। पतालि ने इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया है। परन्तु इस सूत्र की रचना से जान पडता है पाणिनि शतुष्टय न यच्छा शब्दा की सत्ता स्वीकार करते है—

अथवत सूत्रारम्भाच्च अशुष्टय ना यदच्छा शब्दा सतोत्पन्नगम्यते।

—कयट प्रदीप महाभाष्य प्रत्याहारसूत्र अलक

यदच्छा शब्दा का ग्रहण शब्दादृष्टि के आधार पर होता है। शब्द की आवृत्ति का अथ म वह यह है (सोऽयम) के रूप म आरोप करते है। शब्दादृष्टि का ग्रहण कस होता है इस पर का तरह क मत है। पहले मत के अनुसार एक शब्द म कई वण हात हैं। अम से उनका उच्चारण करता करता है। अन्त्यवण के उच्चारण के बाद एक विगिप्त मन्वार या ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञान को अन्त्यवणवाकत्वमन जान कहते हैं। या ता पूव क वणों से भी कुछ न-कुछ सस्वार हाता ही है परन्तु वह सस्वार धुधला होता है या अस्पष्ट हाता है। अतिमवणजयज्ञान पूववणजयज्ञान की सहायता से जाति का ग्रहण हाता है। दूसरा मत अन्त्यवण जान को भुष्यता नहीं दता। उनम अनुसार सभी वणजाना से जिसम अन्त्यवण जान भी गृहीत है बुद्धि विगप मन्वार वाली हो जाती है। अन्त्यवण क जान के बाद एक विगप प्रकार का जान पदा हाता है जो जाति का ग्रहण हाता है (अत्रानेक दानम। केचित मायते अत्यवर्णाव

सम्बन्ध यजमान तत् पूषयणज्ञानाहितसस्कारसहाय जातेर्प्राह्वयम् । अपरे मयते  
 अत्ययणज्ञानसहित सर्वैरेषपूषयणज्ञान सस्कारारम्भ । अत्ययणज्ञानान्तरतुजाति  
 प्राह्वय ज्ञानमुपपद्यते—वपभ वाक्यपदीय टीका १।२३, पृष्ठ ३३) य गृहति की मत्ता  
 म प्रमाण यह है कि गुण मास्त्रिवा, मनुष्य आदि द्वारा उच्चरित वश आदि विनोप गद  
 यह वही वश आदि गद हैं इस ज्ञान को जगत हैं । इसी अनुगताकार प्रतीति या अभे  
 ज्ञान के आधार पर गदावृत्ति की मत्ता या अनुमान किया जाता है । (तस्यास्तु गदा  
 वृत्तेरस्त्व गुणकारिका मनुष्यादिप्रपुषत्पु यक्षादिगदव्यवितविनेपेपु स एवायमिति  
 प्रत्ययामेदादनुमोयते—वाक्यपदीय ह्रिचिनि १।१५ पृष्ठ ३३) । जो भाग ग गृहति  
 अथवा गद के महत्तमस्वरूप की मत्ता को मानते उनका मन म भी वक्तयदच्छामनि  
 वगित कल्पनिक समुदाय रूप श्रित्य आदि गद सज्ञा के अभिधान म समय होत ही हैं  
 (ययामपि च डकारादिवणव्यतिरिक्तसहृत्तमस्वरूपामावान न डित्यादिगदस्वरूप  
 सहृत्तम सज्ञित्यव्यस्यत इति दगन तेषामपि वक्तयदच्छामिव्यग्यमानगवितमेदा  
 नुसारेण कल्पनिकसमुदायरूपस्य डित्यादे शब्दस्य तत्त सज्ञाभिधानाथ प्रवतमा  
 नत्वाद् मदच्छाशब्दत्व डित्यादीनामुपपद्यते एव—अभिधावनिमातका, पृष्ठ ४ ) ।

महाभाष्यकार ने त्रयी गदप्रवनिबाल पश वा भी उल्लेख किया है और  
 पच्छा गदवा की सत्ता नहीं भी स्वीकार की जा सकती है इसका उल्लेख भी किया  
 है । कयट ने भाष्यकार का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रसम्यरूपा क्रिया  
 और गुण व अयारोप स त्रयीपश मानने पर भी काम चल सकता है ।

### सम्बन्ध पदाय

कुछ लोग सम्बन्ध को भी पदाय के रूप म मानते हैं । कुछ बौद्ध आचार्य द्रव्य  
 गद के स्थान पर सम्बन्ध को मानते हैं

यापि जाति गुण क्रिया सम्बन्धमेवेन चतुष्टयी शब्दानां प्रवति साप्यनेनव  
 वस्तुधममेवेन सगहीता —वणकगामिन प्रमाणवार्तिक टीका पृष्ठ १४१) ।  
 कयट ने स्वाय व रूप म सम्बन्ध को स्वीकार किया है ।

स्वोय स्वाय । स चानेकप्रकारो जातिगुणक्रियासम्बन्धस्वरूपलक्षण

—कयट महाभाष्यप्रदीप ५।३।७४

### सादृश्य पदाय

मीमांसका म प्रभाकर के अनुयायी सादृश्य को एक अनिरिक्त पदाय के रूप म  
 मानते हैं । व्याकरणो म नागश ने सादृश्य पदाय की सत्ता व्याकरण की दृष्टि से भी  
 मानी है । गम्भीरश्यामा दवदत्ता व भाष्य पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है

“सादृश्यमतिरिक्त पदाय इति मतेनेदम ।”

—महाभाष्य प्रदीपोद्योत, २।१।५५



मजूपा म भी नागेण ७ तिग्रा है

“सादृश्यं तु साधारणपदसम्बन्धप्रयोग्यं सादृशादिपदसम्बन्धयत्तावच्छेदकतया सिद्धम्, सादृशवगने साकारोद्बोधकत्वस्य सप्तममत्तत्वेन तत्त्वेन तत्कारणता-वच्छेदकतया च सिद्धमलण्डमतिरिक्तं पदार्थः ।” —मजूपा पृष्ठ ६३४ ६३५

नागेण च मत म सादृश्यको अनिरिक्तपत्त्य मानत म गौनम वगणाणि गुहीत पत्त्यो की सत्ता के साथ विराध नहीं हागा क्योंकि गौनमोक्त प्रथम पत्त्य म उगना अन्तर्भाव हो जायगा ।

वाक्यप्रज्ञा म उपमा पर विचार करत हुए भी नागेण न सादृश्य पत्त्य की आवश्यकता रबीजार की है

सादृश्यप्रयोजकसाधारणपदसम्बन्धो ह्युपमा, सादृश्यं चातिरिक्तं पदार्थ इति ।

इसी तरह पश्चितराज जगन्नाथ की—

अतएवात्कारिकाणामपि सादृश्यं पदार्थांतरं न तु साधारणपद रूपमिति विज्ञापते

—रसगगाधर, प० ४२३

इस उक्ति पर टीका करत हुए नागेण न कहा है कि आलंकारिका के साथ साथ क्या करणा के मत म भी सादृश्य अतिरिक्त पदार्थ है

अपिना वयाकरणादिसमुच्चयः । निरूपितं चतत कुवलयानन्दव्याख्यायामञ्जूषायाश्च ।

—रसगगाधर की ममप्रकाशिनी टीका प० ४२३

“नञ्चिद्युक्तमयसदशाधिकरण तथा ह्यधगति —इस परिभाषा की याख्या म नागेश के निष्पन्न वचनाय न भी सादृश्य पदार्थ का सत्ता स्वीकार की है ।

## अभाव आदि पदार्थों का गुण में अन्तर्भाव

वैयाकरण अभाव का अतिरिक्त पदार्थ नहीं मानत । य उस गुण के अंतगत मानते है । द्रव्य, जाति और क्रिया के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ गुण के भीतर मान लिये गये है ।

एवमप्यभावस्य कथं गुणबहिर्भावः ? जातिश्रियाद्व्यातिरिक्तस्य चतुष्टयो शब्दानां प्रवृत्तिरिति वदद्भिः वयाकरणं तदनुसारिनिश्च आलंकारिकगुणत्वा गीकारात्

—वचनाय कुवलयानन्द की चन्द्रिका टीका प० ४८

तत्त्वबोधिनीकार न भी द्रव्य, जाति और क्रियापदार्थ से अतिरिक्त पदार्थों को गुण माना है ।

सज्ञा जाति क्रिया गन्तान् हित्वाये गुणवाचिनः । चतुष्टयो शब्दानां प्रवृत्तिरित्याकरणादिति कर्वादेव निगम इति ।

—मिहान्त कीमुदी तत्त्वबोधिनी वकटश्वर प्रस वन्द्य, १६३६ प० १४८

चतुष्टयी शब्द प्रवृत्ति के आधार पर चार पदार्थ ही प्रमुख रूप म माय रहें । कालिदास न इन्हे या यवत किया है

पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मु खसमोरिता ।

प्रवृत्तिरासीच्छब्दानां चरितार्थां चतुष्टयो<sup>२</sup> ।

—कुमारसम्भव २।१७

## भर्तृहरि के अनुसार अष्ट पदाथ

भत हरि के स्वतंत्र दशन म पत्नय एक ही है और वह है शक्ति । शक्ति क ही रूपांतर माधन, क्रिया दिक् काल आदि है

शक्तिरूपे पदाथनामत्य तमनवस्थिता ।

दिक् साधन क्रिया काल इतिवस्त्वभिधायिन ॥

—वाक्यपदीय ३, दिक् ममुद्देशे १

परतु व्याकरण का लोकिज दशन स सम्बन्ध हान के कारण उसके विवचन क लिय भत हरि न अपनी स्वतंत्र विचार परम्परा के अनुकूल आठ पदाथों की कल्पना की है और इन आठ पदाथों म व्याकरण का सबस्व आ जाना है । वाक्यपदीय म आठ पदाथों का विवेचन है । आठ पदाथ इसके गरीर है

इह पदाथार्थाष्टकविचारपरत्वात् वाक्यपदीयस्य

—हेलाराज वाक्यपदीय ३।१

य आठ पदाथ निम्नलिखित है—

- (१) अपोद्धाङ्ग पदाथ
- (२) स्थित लक्षण पदाथ
- (३) अचाम्ब्यप पदाथ
- (४) प्रतिपादक पत्नय
- (५) वायकारण भाव
- (६) योग्यभाव                      सर्वत्र पदाथ
- (७) धम
- (८) साधु असाधु ज्ञान (अथप्रतिपादन)                      प्रयाजन पदाथ

इन पदाथों का उल्लेख भत हरि ने स्वयं किया है ।<sup>३</sup>

वयम ने भी इन आठ पदाथों का शास्त्र का गरीर माना है

तदेव गद्वाथसम्बन्धफलानां प्रत्येक द्विविध्याद् अष्टौ पदाथा भवन्ति ।<sup>४</sup>

२ भाष्यव्याख्यानप्रपञ्चकार ने ब्रह्मा क चार मुख क आधार पर चतुष्टयी शब्द प्रवृत्ति को मायता महा दी है क्योंकि सम्बन्ध आदि भी शब्द प्रवृत्ति के भीतर आ जाते ह । उसके मन से जिन्य मानुष का 'समय' (व्यवहार) ही शब्दप्रवृत्ति है—

तथा चोक्तं ब्रह्मणश्चतुस्तु सोऽनं चतुष्टया शब्द प्रवृत्ति चरितार्थेनि न नियम ।  
अन्ये हि सम्बन्धस्य शब्दानां तत्त्वद्विकिरपि । अतः समये दिव्यमातुषैः शब्दप्रवृत्तिरिति ।

—पुराणोक्त परिभाषा वृत्ति एषेऽष्टिकम् ३, पृ० १२७

३ वाक्यपदीय १।२४ २६

४ वाक्यपदीय १।२४, वयम टाका पृ० ३६

## अपोद्धारपदाथ

अपोद्धार विभाग को कहते हैं (अपोद्धारो विभाग) \* । एतत् अविभक्त रूप म ग्रथित वस्तु के अवयव को लेकर विचार करने की अथवा एक अण्ड नाम्य व अलग अलग शब्दों पर विचार करने की पद्धति अपोद्धार नाम से प्रसिद्ध थी । परन्तु अपोद्धारपदाथ के ठीक ठीक अभिप्राय के विषय में टीकाकारों में भी मतभेद है । प्रसिद्ध टीकाकार वपभ को भी कुछ संशय था क्योंकि उसने 'सर्वे अथ कई प्रकार से किये हैं

अपोद्धियते इत्यपोद्धारा पदार्थाश्चिति । अपोद्धताना वा पदार्थानामर्था । अपोद्धारेण परिकल्पिता वा अर्था इति शाकपाथिवादि । अपोद्धारसम्बन्धि धनो वेति पठोत्तमास ।<sup>५</sup>

वपभ के अनुसार यहाँ पदाथ नाम म पद पारिभाषिक नहीं है । अपितु जिसस अथ जाना जाए उसक अथ म है । पद्यते नेनाथ इति पद न पारिभाषिकम् । तस्याय पदार्था ।<sup>६</sup>

मत हरि के मत म अपोद्धार पदाथ उक्त अनुमानित अथवा कल्पित प्रक्रिया का नाम है जिसस किसी अत्यन्त ससप्त वस्तु के उक्त सम्बन्धों के आधार पर विभाग किये जाते हैं । अत्यन्त अविभक्त वस्तु व्यवहारातीत होती है । परन्तु अपनी परम्परा अथवा अपने आगम के आधार पर लोग उत्प्रेक्षा से काम लेते हैं और भावना अम्याम से व्यवहारातीत के भी व्यावहारिक रूप कल्पनिक ही मही देखते हैं । 'मी तरह 'मा'मा जो अपने यथारूप म अविभक्त है काम चलाने के लिये कल्पना द्वारा विभक्त मान लिया जाता है । अवयव्यतिरेक के आधार पर समुदाय के भीतर से अलग अलग उक्त रूपों की कल्पना की जाती है ।<sup>७</sup>

तत्रापोद्धारपदाथो नामात्य तससप्त ससर्गादनुमेयन परिकल्पितेन रूपेण प्रकृत प्रविवेक सनपोद्धियते । प्रविविक्तस्य हि तस्य वस्तुनो व्यवहारातीत रूपम् । तत् स्वप्रत्ययानुकारेण यथागम भावनाभ्यासवशादुत्प्रेक्षया प्रायेण व्यवस्थाप्यते । तथैव चाप्रविभागे गदात्मनि धार्याथम वषण्यतिरेकाम्यां रूपसमनुगमकल्पनया समुदायादपोद्धतानां गदानामभिधेयत्वेनाधीयते ।<sup>८</sup>

हजारों न अपोद्धार पदाथ के विषय में वाक्यवाणी और पदाथाना दाना के मना का विवेचन किया है । वाक्यवाणियों के मत म वाक्य अगम है । उक्त की श्रुतिपति

५ वाक्यवाण्य, ११०४ वृत्त टाकी, पृष्ठ ३५

६ वदा, पृष्ठ ३५

७ वदा, पृष्ठ ३६

८ वृत्त न प्रविभक्त के स्थान पर प्रविभक्त पाठ रत्ना है । 'महा अनुमा' का तात्पर्य है कि प्रविभक्त पदाथों म प्रकृति ने कृत्रिम्य व्यवहार मन्वत् नता है (अथवा नै पदाथों नै प्रकृतिनिष्ठा । लक्षणो व्यवहार) । परन्तु दत्त अथ भद्र हरि के मूल अन्वय म कत नहीं मता ।

९ वाक्यवाण्य हरिणी ११०४ पृष्ठ ३६

के उपाय के रूप में उपोद्धार का आश्रय लिया जाता है और अपोद्धार अग्रण्ड वाक्य सगण्य का कल्पना-श्रुद्धि में अन्तर्गत वह पन्थाम दन का नाम है। इस मत में पन्थ्युत्पत्ति काल्पनिक है।

पदवाचियों के मत में पद अग्रण्य है। कल्पना द्वारा पद में प्रवृत्ति, प्रथम, आगम, आत्मा आदि की व्यवस्था की जाती है। पदवाचियों के मत में वाक्य का अग्रण्ड मान कर पन्थ्युत्पत्ति करना इमलिय उपयुक्त नहीं है कि वाक्य अन्त है और इमलिये उह आधार मान कर पद व्युत्पत्ति करना महज नहीं है। परन्तु सगण्य पद के द्वारा पन्थ्युत्पत्ति समझना अशक्य महज है।

परन्तु पदवादी और वाक्यवादी दोनों ही अपोद्धार को अग्रण्य मानते हैं। यही इनमें समानता है। दोनों पन्थ में अपोद्धार के लिये अग्रण्यतिरेक का आश्रय भी समान है। अपोद्धार के लिये अग्रण्यतिरेक का उन्नेय वार्तिककार ने भी सिद्ध 'स्वव्यतिरेकाम्याम' के रूप में किया है।<sup>१०</sup>

अपोद्धार का पन्थाय और वाक्याय की दृष्टि में द्विवचन स्वयं भत हरि ने भी किया है। उनका मत में वचन एक शब्द कहने में उसके अर्थ की मत्ता या अमत्ता का परिचय ठीक से नहीं होता। केवल वक्ष्य शब्द कहने में वक्ष्य है कि नहीं है यह सदेह बना रह सकता है। एते स्थला में ह्यम अस्ति (है) या नास्ति (नहीं है) जैसे क्रिया पन्थ का आक्षेप करत है और तब वही अर्थ स्पष्ट होता है (वचन के अनुसार वस्तुतः क्रियापद का आक्षेप नहीं होता अपितु क्रिया लक्षणरूप अर्थ का ही स्वायं के रूप में आक्षेप होता है। केवल 'स' पद में अभिधेय होने के कारण उस पद से क्रियापद का आक्षेप कहा जाता है अथवा आक्षेप फल होने के कारण वमा कहा जाता है)। वाक्य से ही ऐसे स्थलों में भी बोध होता है इसलिये वाक्यायरूप अपोद्धार उपयुक्त है। परन्तु प्राचीन आचार्यों ने पूर्वपन्थाय उत्तरपदाय प्रातिपदिकाय, धात्वथ प्रत्ययाय जस गण्य का व्यवहार किया है और एक ही गण्य की व्युत्पत्ति के लिये विभिन्न तरह की कल्पनाएँ की हैं इससे पदाय के रूप में भी अपोद्धार लक्षित होता है।<sup>११</sup>

अपोद्धारपन्थाय शब्द अपोद्धार और अर्थ अपोद्धार दोनों रूप में गीत है। हलाराज के अनुसार अर्थ अपोद्धार ही अधिक उपयुक्त है क्योंकि वाक्य में उद्धत पद का वाक्यार्थान्तर के रूप में कल्पना की जाती है। अर्थ अपोद्धार ही पन्थ अपोद्धार का निमित्त है। यदि अर्थ अपोद्धार को पद अपोद्धार का निमित्त न माना जाय वण अपोद्धार भी होने लगेगा और उसकी व्युत्पत्ति की चिन्ता करनी पड़ेगी

अर्थपोद्धार एव हि पदापोद्धारस्य निमित्तम् । अनिमित्ते हि तस्मिन् वर्णापोद्धारस्यापि प्रसगात्तपोमपि व्युत्पाद्यता स्यात्<sup>१२</sup>

१० हलाराज, वाक्यपदीय २, 'निसमु' श १

११ वाक्यपदीय हरिवर्ष ११०४ पृष्ठ ३७

१२ हलाराज, वाक्यपदीय ३ 'नानिसमु' देश ४

## स्थितलक्षण पदार्थ

स्थित लक्षण पदार्थ उगवा कहत है जिगरा लक्षण (स्वरूप) स्थित रहता है जा अपन स्वरूप स च्युत नहीं हाता। वृषभ व अनुगार मनभद म स्थितल ण पदार्थ भी हाता है और वाक्याथ भी। प्रवृत्ति और प्रत्यय व अथ पदार्थ म तिराहित हा जान हैं पर पदार्थ तिरान्ति नहीं हाता। इगलिय पदार्थ स्थित लक्षण है। इसी तरह वाक्य वाक्या की दृष्टि म पदार्थ वाक्याथ की प्रतिपत्ति म उपाय मात्र है, वाक्याथ व जान हा जान पर व त्रिभक्त रूप म पृथक्-पृथक् नहीं जान पडत उनरा वाक्याथ म तिरा भाव हा जाता है जज कि वाक्याथ ज्या-ना त्या रहता है। इस दृष्टि स वाक्याथ स्थित लक्षण है। हेलाराज न वाक्याथ का स्थित ल ण व रूप म ग्रहण किया है उस निरुण माना है साथ ही उम त्रियास्वभाव स सपूक कारकागरीरवाला भा माना है।

वाक्याथश्च स्थितलक्षण निरुण कारकोत्कलित गरीरत्रिया स्वभावतः १३

भत हरि न व्याकरणदान म स्थित लक्षण को पदार्थ और वाक्याथ दाना रूप म मानन का आधार सग्रहकार और महाभाष्यकार को माना है। सग्रहकार न कहा है कि पदनाम की कोई निश्चित वस्तु नहा है। पद का रूप और उसका अथ वाक्याथ स उत्पन हावे ह।

न हि किञ्चित्पद नामरूपेण नियत वच्यते ।

पदाना रूपमर्थो वा वाक्यार्थादेव जायते ॥१४

महाभाष्यकार न भी न वा पदस्यार्थे प्रयागात् (१।२।६४) और यदत्राधिक्य वाक्याथ स (महाभाष्य २।३।४९) कहा है जिसस पदार्थ और वाक्याथ दोना के स्थितलक्षण हावे की पुष्टि होती है।

परन्तु भत हरि का भुक्ताव स्थितलक्षण को वाक्याथ रूप म लेने की और है। स्थितलक्षण का विवरण देत हुए भत हरि ने कहा है कि वह वाक्य रूप का उपग्रह अथवा उपग्राहक (वाचक) है। उसके उद्देश्य विभाग (क्त आत्ति) कल्पित होत है। वह विगिष्ट (नियताश्रय) है। एक है। किया उसकी आत्मा है। वह अविच्छिन्न निरन्तर उच्चरित गत्या के अथग्रहण का उपाय है। अथवा विच्छिन्न (अपादार पद्धति म उद्धत) पदा व अथ के ग्रहण का उपाय है। विच्छेद प्रतिपत्ति जस नमस्यति म नम तथा करोति के रूप म अलग अलग प्रतिपत्ति यद्यपि अथ कहने के लिए किया और माधन भेद स जान पडती है परन्तु वस्तुतः वहाँ इस तरह का किया नावन भेद नहीं है। विनोपकर प्रतिभा व उपसहार कात म अर्थात् अथ के जान कात म अभिन्न एकाकार प्रतिभा के परिवोध म वाक्याथ स्थितलक्षण सिद्ध हाता है। हेलाराज व अनुगार स्थितलक्षण और अपादारपदार्थ म भेद यह है कि स्थितलक्षण म प्रक्रिया

१३ हेलाराज वाक्यरत्न ३, नाभिमु १ श १

१४ वाक्यपदीय हरिवृत्ति १।०४, पृष्ठ ४० पर उद्धृत ।

भेद से भेद नहीं होता अपाठार म हाता है ।

—वृत्ति समुद्देश ०४०

## अन्वाख्येय पदाथ

अन्वाख्येय पदाथ भी दो रूप में स्वीकृत हैं । पद अथवा अन्वाख्यान और वाक्य अथवा अन्वाख्यान के रूप में । इस पर अथवा विचार किया जा चुका है । पद के अन्वाख्येय पक्ष में ही प्रातिपदिक शब्दों की व्यवस्था की जाती है । उभो पक्ष में विशेषणविशेष्यभाव ठीक से बैठता है । नीलो पत्र शब्द में नील में विशेषणता और उत्पल शब्द में विशेष्यता है । यदि पद अन्वाख्यान पक्ष नहीं मानेंगे तो पद स्थला में विभाग की पहचान सम्भव नहीं होगी फलतः विशेषण विशेष्यभाव भी नहीं होगा । वाक्यसंस्कार पक्ष की मान कर वाक्यकारण न न वा सर्वेषां द्वन्द्वे बहुवचनत्वात् (महाभाष्य ०।४।६२) कहा है । युगपदधिकरण शिबभा में द्वन्द्व होता है ।

चाहे पद अन्वाख्यान पक्ष हो अथवा वाक्य अन्वाख्यान पक्ष हो दाना में अनियम देना जाता है । पद में प्रवृत्ति प्रत्यय के विभाग में अनियम देखा जाता है जस मन्त इन्द्र एकागारिक, गिरिणा आदि शब्दों में । मन्त शब्द में कुछ लाग भरताज्य सन्ति इस अर्थ में तत्पदमन्तम्याम् (महाभाष्य ५।२।१०३) से तत् प्रत्यय मानत है । कुछ वाग मन्दि दत्त इस अर्थ में प्रत्यय मानत है । इसी तरह गिरिणा शब्द गिरी गत इस अर्थ में ड प्रत्यय में बनाया जाता है, गिरिस्थिति इस अर्थ में क प्रत्यय से बनाया जाता है । भन हरि न गिरी गिरा एक एमा भी विग्रह गिरिणा शब्द के निये किया है (वाक्य पदीय २।१७२ हरिवृत्ति) । वाक्य अन्वाख्यान पक्ष में भी कल्पितपदा द्वारा अर्थ निर्णीत हाता है

अर्थात् पद साभिधेय पदात् वाक्यायनिणय ।

पदसघातज वाक्य वणसघातज पदम् ॥<sup>१५</sup>

## कार्यकारणभावपदाथ और योग्यभावपदाथ

कार्यकारणभावपदाथ और योग्यभावपदाथ शब्दों के निमित्त रूप और उभक्त योग्यरूप पर आश्रित हैं । पक्षभेद से सम्बन्ध के चोत्रक है । कार्यकारणभाव सम्बन्ध और योग्यभाव सम्बन्ध दाना ही कार्यकारणद्वयन में मान्य हैं । अथाकार बुद्धि का वस्तु क साथ अध्यवसाय हान पर उभ अर्थ के उदवाधन में शब्द निमित्त हाता है । इसी तरह अर्थ (वस्तु) के दान में भी शब्द स्वरूप का उसके अर्थ में यह वही है (सोऽयम्) इस रूप में अध्यवसाय करत हैं । यहा नाद से अभियक्त पर वस्तुतः अन्तःकरण सनिवेशी शब्द की प्रवृत्ति में अर्थ दर्शन ही कारण है । दूसरे शब्दों में, गा आदि वाय हैं और शब्द कारण है तथा शब्द वाय है और गो आदि कारण हैं । भन हरि इस मत के पोषक है कि वाक ही गो आदि में परिणत हो जाती है अथवा गा आदि वस्तु ही

<sup>१५</sup> वाक्यपदीय १।२४ हरिवृत्ति में उद्धृत । वृषभ के अनुसार यह मन्त्रकार का श्लोक है । परन्तु शौनक के बृहद्देवता ०।१।७ में भी है ।



की साधु असाधु व्यवस्था मुनित्रय वं मत पर बहुत दूर तक अबलम्बित है।

नियतकालाच्च स्मृतयो व्यवस्था हेतव इति मुनित्रयमतेन अद्यत्वे साध्वसाधु  
प्रविभाग —कैयट, महाभाष्य प्रदीय ५।१।२१

भेद अभेदपूर्वक होता है इस 'याय' के आधार पर हेलाराज ने असाधु (अप्रभ्र 'ग') की प्रकृति साधु शब्द को माना है। उनके मत में शब्द विद्या की भाँति है और अप्रभ्र 'ग' अविद्या की भाँति। जिस विद्यावस्था अभिन्नब्रह्मात्मिका होती है उसी तरह साधु-ग-दमयी विद्या भी। जैसे विद्या के भेद मिथ्या अथवा काल्पनिक है उसी तरह शब्दविद्या वं भेद भी अवास्तविक हैं। महाभाष्यकार ने जो अप्रभ्र 'श' और साधु शब्द दोनों में अर्थ बताने की शक्ति एकसी (समान) मानी है वह अविद्यादशा को सामान रख कर है।<sup>१६</sup> पुण्यराज न 'ग' शब्द के छ प्रकार माने हैं और असाधु शब्द को भी उनके भीतर ग्रहण किया है। उनके अनुसार शब्द दो तरह के होते हैं। साधु और असाधु। साधु शब्द शास्त्रीय और प्रायोगिक रूप में दो तरह के होते हैं। शास्त्रीय 'ग' तीन तरह के होते हैं—प्रतिपाद्य, प्रतिपादक और उभयरूप। दार्ष्टिक आदि निपातन सिद्ध शब्द प्रतिपाद्य माने जाते हैं। प्रकृति प्रत्यय आदि प्रतिपादक माने जाते हैं। इतना जैसे शब्द उभयरूप माने जाते हैं। इस तरह असाधु शब्द को लेकर 'ग' दो प्रकार के होते हैं।<sup>१६अ</sup>

उपयुक्त आठ पदार्थों में 'याकरण' की दृष्टि से अपोद्धारपदाथ अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें पद अपोद्धारपदाथ दो तरह का है। सिद्ध और साध्य रूप। इसी को नाम और आख्यात भी कहते हैं। सिद्ध रूप कारक से व्यक्त है और साध्यरूप क्रिया से। य दो रूप अक्ष और अक्षी की कल्पना पर आश्रित है।

तत्र चाशाक्तिकल्पनयाऽपोद्धारे कारकात्मा क्रियात्मा च प्रविभागाह इति सिद्धसाध्यलक्षणान्द्वयविषय पदापोद्धारो द्विविधो नामाख्यातरूपः।<sup>२</sup>

हेलाराज के अनुसार यद्यपि नामपदा में प्रत्ययाय की प्रधानता शब्द की दृष्टि से रहती है फिर भी अर्थ की दृष्टि से प्रातिपदिकाय रूप द्रव्य की प्रधानता मानी जाती है। सिद्ध रूप ही प्रधान है।

उपमग, निपात और कमप्रवचनीय का नाम और आख्यात में अन्तर्भाव हो सकता है। क्योंकि नाम सिद्ध अर्थ का व्यक्त करत है और उन सिद्ध अर्थों की विशेषता घोषित करने वाला निपात सहज ही नाम के भीतर गहीत हो सकता है। निपात चाह सिद्ध अर्थ का साक्षात् व्यक्त करना हो अथवा सिद्ध अर्थ की किसी विशेषता को बतलाता हो उसके नाम के भीतर लेने में कोई विरोध अडचन नहीं है। अव्यय में स्व आदि जिस कुछ सत्वप्रधान (द्रव्य प्रधान) है इतलिय वं भी नामपद ही हैं और जो क्रिया प्रधान अर्थ हैं जस हिसक आदि उनका आख्यात में अन्तर्भाव हो जायगा क्योंकि केवल तिङन्त ही आख्यात नहीं है। आख्यात के भीतर वह सब कुछ गहीत है जो

१६ हेलाराज वाक्यरदाय ३ सम्बन्ध समुदेश ३०

१६अ पुण्यराज, वाक्यरदाय २०३

२० हेलाराज वाक्यरदाय ३ आनि समुदेश १, पृष्ठ २



त्रिया प्रधान है। इसी दृष्टि से उपसर्ग और वमप्रवचनीय को भी आख्यातपद माना जा सकता है। क्योंकि उपसर्ग और वमप्रवचनीय साध्य अथवा चोतक होते हैं।

कुछ लोग पञ्चपाठार का चार भाग में विभक्त करते हैं। नाम, आख्यात उपसर्ग और निपात। यही सबसे प्राचीन विभाग है। यास्क ने ऋग्वेद के चत्वारि वाक् परिमितता पदानि<sup>२१</sup> की व्याख्या वयाकरण की दृष्टि से नाम आख्यात उपसर्ग और निपात के रूप में की है। महाभाष्यकार ने इसका समर्थन 'चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च'<sup>२२</sup> कह कर किया है। नाम आख्यात से उपसर्ग निपात इस दृष्टि से अलग मान जाते हैं कि नाम और आख्यात साक्षात् वाचक हैं जब कि उपसर्ग और निपात साक्षात् अथवान् नहीं हैं व विशेष अथवा चोतक मात्र है।

उपसर्ग और निपात में परस्पर भेद यह है कि निपात सिद्ध (कारक) और साध्य (त्रिया) दोनों के अथवा विशेष ने चोतक होते हैं जबकि उपसर्ग केवल साध्य के अथवा विशेष के छातक होते हैं।

वयाकरण की दृष्टि से निपात को वाचक इसलिये नहीं माना जाता है कि व आदि निपातो का वाक्य के आरम्भ में प्रयोग नहीं होता उनका स्वतंत्र प्रयोग भी नहीं होता जैसे इव आदि का उनके साथ पठ्ठी आदि विभक्तियों नहीं लगती लिंग और संख्या का योग भी उनके साथ नहीं होता।

वयाकरणग्रहेषु हि प्राक्प्रयोगस्वात्म्यप्रयोगामावात् पठ्ठयाद्यश्रवणात् लिङ्गसंख्याविरहाच्च वाचकत्वलक्षण्येन चोतक निपाता इत्युद्धोष्यते एवेति।<sup>२३</sup>

निपात का प्रयोग पाद पूरण के लिये भी होता रहा है।

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृतः।

सत्वाभिधायक नाम निपात पादपूरण ॥<sup>२४</sup>

शाक्य के अनुसार उपसर्ग स्वतंत्र रूप में भी वाचक थे। उत्तर (उत्+तर) उत्तम (उत्+तम) निवृत्ति (नि+वृत्) उद्धत (उत्+वृत्) आदि पाद इस बात के छातक हैं कि कभी उपसर्ग भी स्वतंत्र अथवा रजत अथवा अथवा उनसे तर तम आदि प्रत्यय सम्भव नहीं थे। परन्तु शाक्ययन यास्क के अनुसार उपसर्गों का नाम और आख्यात से अलग रूप में वाचक नहीं मानते थे। वयाकरण-संप्रदाय में उपसर्ग चोतक रूप में ही ग्रहीत है।

वमप्रवचनीय भी क्रियाजनित सम्बन्ध विशेष के चोतक के द्वारा त्रिया विशेष के प्रकाशक हात है इसलिए कुछ लोगों के अनुसार वमप्रवचनीय का उपसर्ग में अन्तर्भाव सम्भव है। फलतः पद चार प्रकार के माने जाने चाहिये।

कुछ आचार्य वमप्रवचनीय का चार प्रकार के अतिरिक्त पाचवाँ पद मानते

२१ ऋग्वेद १।१६४।४५ यास्क निरुक्त १३।१ परिशिष्ट

२२ महाभाष्य भाग प्रथम, पृ० ३ कालहानि मल्लिकार्जुन

२३ ध्वन्यालोक लोचन, पृष्ठ ३५५ (चोतकत्वमकारण)

२४ दुर्गाचर्य श्री निरुक्त १।६

हैं। उनके मत में उपसर्ग और कमप्रवचनीय में मौलिक भेद है। कमप्रवचनीय अति नान्त क्रियागत संबन्ध को द्योतित करते हैं जबकि उपसर्ग वर्तमान क्रियागत विशेषण को द्योतित करते हैं। यहाँ वर्तमान पद का तात्पर्य क्रियाविशेष के सम्बन्ध के द्योतन से है। क्रियागतविशेषणनपूर्वक हि सम्बन्धवाचकश्रेयसमत्र वर्तमानम्—हैलाराज वाक्य पत्नीय ३, जातिममुद्देश १) महाभाष्यकार ने इसके निय सपति शब्द का प्रयोग किया है। अतिक्रान्त क्रिया का तात्पर्य अप्रयुज्यमान से है। भाव यह है कि सभी प्रकार के सम्बन्ध क्रिया-कारकपूर्वक होत है। कभी तो क्रिया सम्बन्ध को उत्पन्न कर विरत हो जाती है जैसे, राजपुरुष म। यह राजा का पुरुष है क्योंकि राजा इसका पालन-पोषण करता है इसलिए पालन रूप क्रिया आश्रयआश्रयीभावलक्षण सम्बन्ध का उत्पन्न कर अलग हो जाती है। कभी क्रियापद स्वयं श्रूयमाण होन हुए सम्बन्ध व्यक्त करता है जैसे मातु स्मरति म माना सम्बन्धी स्मरण के रूप में स्मृति क्रिया श्रूयमाण रूप में ही निमित्तनिमित्तभावलक्षण सम्बन्ध को उत्पन्न करती है।<sup>२५</sup>

क्रिया-पद जब सम्बन्ध का उत्पन्न कर निवृत्त हो जाता है उस दशा में सदेह हा सकता है कि वह सम्बन्ध क्रियाजनित है कि नहीं। ऐसी अवस्था में कमप्रवचनीय काम देता है। वह उस अश्रयमाण क्रिया के विशेष सम्बन्ध को द्योतित करता है

“तदयमश्रुतक्रियाविषयसम्बन्धे कमप्रवचनीयाना महिमा

—हैलाराज वाक्यपदीय ३ साधन शेष ३

क्रिया कृत विशेष सम्बन्ध के द्योतक होन के ही कारण इन्हें कमप्रवचनीय कहत है

अतएव कमप्रवचनवत्, क्रियाकृतविशेषसम्बन्ध द्योतयतीति कमप्रवचनीया उच्यते।<sup>२६</sup>

अश्रूयमाण क्रिया का आक्षेपक कमप्रवचनीय नहीं माना जाता। जिस शब्द में क्रिया का आक्षेप होता है वह कारक विभक्ति से जुटा है। जैसे प्रादेग विपरिलिखति' इस वाक्य में वि शब्द मान क्रिया का आक्षेप करता है क्योंकि इस वाक्य से प्रादेश विमाय परिलिखति यह अर्थ भासित होता है। विमान क्रिया से प्रादेश रूप कम का आक्षेप हुआ है इसलिये उसके साथ द्वितीया का याग हाता है। यदि कम प्रवचनीय के द्वारा अश्रूयमाण क्रियापद का आक्षेप होगा, उनके योग में भी कारक विभक्ति ही होगी फलत कमप्रवचनीय युक्ते द्वितीया २।३।८ इस मूल की वार्ड आवश्यक्ता नहीं रह जाती, वह व्यर्थ होता। पुन शब्दार्थस्य संहितामनु प्रावपत् जसे स्थाना में आक्षेप संभव भी नहीं है। क्रिया कारक में ही परम्पर आक्षेप सम्भव है, जसे

२५ काशिकाकार और वाक्यपदीयकार में, पुण्यराज के अनुसार मातु गुणै रमरथम् के विषय में विवाद था। काशिकाकार अधिगद्यदेशा कमणि (२।३।५२) में कमणि शब्द का प्रयोगन यह मानते हैं कि वरण में न हो। उनके मत में गुण रमरथम् यथा होता है न कि गुणाना रमरथम्। मनु हरि ५ अनुसार करण को शेष विवक्षा में गुणाना रमरथम् गुण रमरथम् भी होता है।

—पुण्यराज, वाक्यपदीय २।२००

२६ पुण्यराज, वाक्यपदीय २।२०१

प्रविण, पिण्डा आदि स्थला म । गतिता म ता वापनीय विभक्ति है इगणित की भाषण मभव गरी है । इगणित गितामयति त्रिया क अग्रमुपवमा हात हूण भी गतिता ओर प्रयपण म हनुदुमदभाव मव्यय अतु म आता हाता है ।

गु घति, अग घना वा त्रिगम सम्बन्ध त्रियागत घति गरी है कमप्रवचनीय सजा उपगय ओर गति सजा क त्रियप क त्रिण की जाता है त्रिगम अतिम्नुतम् अग घना म पत्र वा निषेध हा जाता है । यहा कमप्रवचनीय सजा म्यापनिरपण रूप म है—

व्यधितु प्रयसिनिमिताभाये वि यचनसामर्थ्यादिय सजा प्रवर्तते । यया गु पूजायामिति परवारिनिवहाये गत्युपसगतता वाचनायर्था ।

—वयं महामाप्य १।४।८३

पत्रत कमप्रवचनीय त्रिया का वाचन (घानर) नहा हाता । यति त्रिया का घानर हाता हा उगम वारवविभक्ति (द्वितीया) स्वभावत हा जाता वह सम्बन्ध का भी वाचन नही हाता पट्टी क अपवात्भूत द्विताया स ही सम्बन्ध उक्त हा जाता है इगणित सम्बन्ध का भी वाचन कमप्रवचनीय नही माना जाता । वह त्रियापत् का भाषण भी नहा माना जाता । जगाकि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है । वह त्रियाविण्य घानर भी पूण रूप स नही माना जा सकता क्पाकि 'अनु हरि सुरा अस वाक्या म त्रियापद का सानिध्य नही दया जाता । इतलिए कोई इमरा उपाय न देतकर (पारिणोप्यात) कमप्रवचनीय ही त्रिया जनिन सम्बन्ध का भेत्क (विशेषण) अर्थात घोनर मान लिया जाता है । भाव यह है कि कमप्रवचनीय क प्रयोग के गाय त्रियाजनित सम्बन्ध की प्रतीति हाती है वह सम्बन्ध किसी अय पत् द्वारा ठीक ठीक अभिव्यक्त नही किया जा सकता है क्पाकि उन पदो की शक्ति सीमित है और वे अपना स्वाभाविक अय ही व्यक्त कर सकते है । अत सम्बन्ध के घेतक किसी अय के न होने क कारण अन्तत कमप्रवचनीय ही क्रियाजनित उस सम्बन्ध का घोनर मान लिया जाता है । जहाँ अधिक अय की अभिव्यक्ति होती है वहाँ उस अधिक अय को वाक्याय भी माना जाता है । परन्तु शाकत्यस्य सहितामनु प्रावपत म क्रियाजनित सम्बन्ध को वाक्याय नही माना जा सकता । क्योकि अधिक रूप म वाक्याय सदा उपात्त साधन का उपात्त साध्य के ससग के रूप म होता है अथवा उपात्त विशेषण का उपात्त विशेष्य क ससग के रूप म होता है । यहा तो अनुपात्त पदाय का वाक्याय स प्रतीति होती है । इसलिए अपदाय रूप वाक्याय के रूप म सम्बन्ध का ग्रहण यहा सम्भव नही है । अनु की केवल परचादभाव मात्र अय म शक्ति मान कर क्रियाजनित सम्बन्ध के अवच्छेत्क क रूप म उस स्वीकार करना उचित है । भत हरि के अनुसार सम्बन्ध का निमित्तनियम शब्द से सदा गृहीत नही हाता । निमित्त विशेष के प्रहण के लिए ही माना कमप्रवचनीय है—

निमित्तनियम गदात सम्बन्धस्य न गृह्यते ।

कमप्रवचनीयस्तु स विभेदेऽनुहृष्यते ॥

—वाक्यपदीय ३, शेष समुद्देश ३

क्रियाया द्योतको नाय सम्बन्धस्य न वाचकः ।

नापि क्रियापदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु भेदकः ॥

—वाक्यपदीय २।२०६

कमप्रवचनीय के सम्बन्ध के भेदक के विषय में भी दो तरह के विचार हैं। एक तो यह कि कमप्रवचनीय के द्वारा सम्बन्धान्तर विलक्षण सम्बन्ध स्वरूपतः अवच्छेद्य होता है। दूसरा यह कि क्रियाविभेदजनितत्व के रूप में सम्बन्ध कमप्रवचनीय द्वारा अवच्छेद्य होता है। सम्बन्ध के स्वरूपतः अवच्छेद के पक्ष में विशेषक्रियाजनितत्व की प्रतीति सम्बन्ध विशेष के पर्यालोचन से हो जाएगी। जैसे, अधिब्रह्मदत्ते पञ्चाला इमं वाक्यं मं स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अधि से द्योतित है। यहाँ ब्रह्मदत्त का स्वामी (ईश्वर) है। पञ्चाल जनपद (स्व) है। दोनों का सम्बन्ध परिपालन करदान आदि क्रिया द्वारा ही प्रभावित है। इसी तरह अभिमन्युरजुनतः प्रति इस वाक्य में सादृश्य लक्षण सम्बन्ध प्रति द्वारा द्योतित है। फिर वह सम्बन्ध सप्रहरण आदि क्रिया कृत है यह पर्यालोचना से जान पड़ता है। शाकन्वम्य सहितामनु प्रावपत इस वाक्य में, स्वरूप पक्ष के अनुसार अनु स हेतुहेतुमदभाव सम्बन्ध द्योतित है। अधिक-से अधिक अनु का इतना ही व्यापार है। इसके आगे अनु की शक्ति नहीं है। सहिता के पाठ विशेष रूप में होने का कारण निगमन क्रिया की प्रतीति होती है। 'सहिता पाठ स वया हुइ यह नाम ही विशेष क्रिया से प्रभावित होना ध्वनित करता है।

जो क्रियाजनितत्व पक्ष का पक्षपाती है उनके अनुसार अनु का व्यापार निगमन क्रिया की अभिव्यक्ति तक है। सहिता और प्रवषण में जो हेतुहेतुमदभाव संबन्ध है वह निगमयति क्रियाजनित है इतना अनु से द्योतित है। अधिब्रह्मदत्ते पञ्चाला में परिपालन क्रिया हेतुवाला स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अधि से द्योतित है। इसी तरह अयत्न भी समझना चाहिए। हेलाराज ने इसी मत का प्रथम दिया है। उनके अनुसार क्रियाफलरूप सम्बन्ध का द्योतन कमप्रवचनीय का कार्य है। उनके अनुसार भन हरि का भी यही पक्ष जान पड़ता है—

'वस्तुतः क्रियाफलस्यैव सम्बन्धस्य प्रकाशनात्। यथा तु तत्रमब्रवमत हरे-स्तत्र तत्रामिप्रायो लक्ष्यते तथा निमित्तविभेदावच्छेद एव कमप्रवचनीयकृत इति रादात् ॥'

—हेलाराज वाक्यपदीय ३।१ पृष्ठ ५

कमप्रवचनीय पर मप्रह्वार के मत का उल्लेख भन्नु हरिन अपनी वक्ति में किया है। कमप्रवचनीय सम्बन्ध निर्धारण में हेतु माना जात है। मप्रह्वार का अनुसार दो प्रकार के सम्बन्ध हात है

निरोधन क्रियापद और अनिहित क्रियापद। तिराभूत क्रियापद से अभिप्राय क्रियापद के अप्रयुक्त रूप से है। दो द्रव्यों के परस्पर सम्बन्ध में क्रिया स्वरूप कृ-तिराहित हा जाने पर भी सम्बन्ध अभिव्यक्त रहता है। सम्बन्ध क्रिया का आधार

पर होता है। कारकवक्तियों की अनभिष्यक्त रूपा में भी क्रिया उनके सम्बन्ध की अभिवक्ति करा सकती है। जैसे राजपुरुष शम्भु राजा म क्त गतित है वह पुरुष का कुछ दता है। पुरुष म सम्प्रदान शक्ति है, वह राजा से कुछ बना है। 'राजपुरुष' म दोनों शक्तियों के तिरोहित हान पर भी ददाति क्रिया स्वस्वा मिभाव सम्बन्ध को प्रकट कर देती है। 'तान' आदि क्रिया के अश्रुत होने के कारण यहाँ सम्बन्ध अश्रूयमाण क्रियाविषय माना जाता है। सनिहित क्रियापद सम्बन्ध बहा होता है जहा कारकपद और क्रियापद म सम्बन्ध दिखाया जाता है। इसका उदाहरण मातु स्मरति वाक्य है। यहाँ क्रियापद श्रूयमाण है और क्रिया और द्रव्य म सम्बन्ध दिखाया गया है। कर्मत्व की अविवक्षा म स्मरण क प्रति मातु शब्द का विनोयण भाव प्रतिपादित होता है। क्रिया दो अर्थों की जाडन वाली मानी जाती है। इसलिए किसी के मत म, मातु स्मरति म भी क्रिया और द्रव्य म उपश्लेष के लिए किसी क्रियानर का आधार होना चाहिए। दूसरे आचार्य मानते हैं कि क्रिया अर्थ सनिदिष्ट क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। क्रिया सम्बन्ध क लिए क्रियानर की अपेक्षा नहीं मानी है। दो वाक्यों क संश्लेष म जतु आदि द्रव्य तो आवश्यक हैं किन्तु जतु और वाक्य के संयोग म अर्थ की अपेक्षा नहीं होती। सप्रहकार का मूल उद्धारण निम्नलिखित है

कर्मप्रवचनीयविषयविभागप्रदशनाथ सम्बन्धोपपन्नः । द्विविधो हि सम्बन्धः सप्रहृ पठयते । तिरोभूः क्रियापदः, सनिहितक्रियापदश्च । एव ह्याह—  
'उपयुक्ताथ द्रव्य सम्बन्धेषु क्रियातानु नष्टरूपानु गिना घमतो विगुणोपय सम्बन्धात्मा प्रकाशते । श्रूयमाणक्रियावद द्रव्ययो सम्बन्ध विषयभूतत्वात् क्रियाया' इति । —वाक्यपदीय २।१६६ हरिवर्ति हस्तनख मत हरि ने एक दूसरा उदाहरण भी दिया है जो सप्रहकार का जान पता है

किन्तु स्पष्ट रूप म नाम का उल्लेख नहीं है

तथय केचित् पक्षपञ्जातानि नामाख्यातोपमगनिपातकर्मप्रवचनीया इति पठति । तयामप्यथभेदेनोपसगनिपातेभ्य उत्पद्य क्रियते, अत आह—'विषय रूपनागे न तिरोभवती य सम्बन्धमुपजनयति तस्या निमित्तभूताया क्रियाया सहचारी वाक्यातरेषु विनोपदष्टसामस्य कर्मप्रवचनीय क्रियाधिनोपोपादानेन सम्बन्धमवच्छिन्नति, निमित्तानुपहानुगममात्राया सम्बन्धरूप विषयमवतीति ।

—वाक्यपदीय १२०१ हरिवर्ति हस्तनख

पाणिनि ने कर्मप्रवचनीय ग्यारह गिना लिए हैं—अनु उप अथ परि भाड प्रति यभि घधि, सु अति, अपि । और 'नर वाम' अर्थ लिए हैं—'नृत्तमण मन्वय हीनता आधितय वान मयागवचन लक्षण ल्यभूतादान भाग विना प्रतिनिधि प्रतिदान आनधक्य पूजा अतिश्रमण, पत्नय मभाजना अत्रवगण गता ममुचय स्वाम्य और घनिवार । 'नम पत्नय सम्भाजता और अत्रवमण अत्रय प्राधान वाक्य मन्वय है जितना उन विना विषय अर्थ होता था और पाणिनि ने १।४।६६ म उन्हा अर्थों म 'नरा प्रदाय क्रिया है ।

## श्रीदुम्बरायण दर्शन

वातांग और श्रीदुम्बरायण नाम व आचार्यों ने नाम, आंगान उपसर्ग और निपात रूप म पदविभाग का अनुपपन्न माना था । व वाक्य को अल्पण मानत थे । उसका भी सप्रथय (पान) युद्धि म समृष्ट रूप म रहता है । गन् (वाक्य) बौद्ध है । अथ भी बौद्ध है । गन् भी युद्धि म समृष्ट रूप म रहता है अथ भी समृष्ट रूप म रहता है । युद्धि से जो कुछ जाना जाता है वह सब समृष्ट रूप म रहता है अनिष्ट युद्धि भी समृष्टायप्रथयानमंगिनी है । समृष्ट का प्रविभाग अवास्तविक होता है । अत चार पदनाता का कल्पना भी अवास्तविक है ।

समृष्ट शब्द अथवा समृष्ट अथ व परिचान का एक कल्पित साधन है जिसे अपोद्धार कहा जाता है । अपोद्धार पद्धति व आधार पर लोक म और गान्ध म भी व्यवहार के लिए वाक्य को पद म विभक्त किया जाता है । मूलम अवहित विप्रकृष्ट उपादात्तर मे जिम विभी तरह म नही समझा जा सकता, उन मत्र अर्थों व जानने का साधन गन् है । व्याप्ति और वाच्य व आधार पर गन् का आशय लिया जाता है । गन् व्याप्तिमान है क्योंकि वह मूल अमूल समवा स्था करता है । गन् लघु है क्योंकि वह एक मे अनक का अर्थ म मूढन का अवबोधक है । एन एन गन् अपन समानधमा अनन्त गन्दा व प्रतीक है । अत्यन्त समृष्ट अथ वा अत्यन्त अविभक्त गन्दा के परिचान के लिए अपाद्धार का कल्पना कर ली जाती है ।<sup>१</sup> परंपरा म जोन म और गान्ध म भी पद-व्यवहार प्रसिद्ध है । अपाद्धार रूप म पद की सना मानकर नाम आंगान नियत आदि के रूप म पद का विभाग उपपन्न होता है

एतस्माद् एव श्रीदुम्बरेदंगानात् तत्र चतुष्टय नोपपद्यत इत्युच्यते । यद्यत्र तु व्याप्तिमत्त्वात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेष्वर्थेषु बहुभिरपि प्रवार द्वापितुम अशक्येषु लाघवात् शब्दव्यवहारो लोक प्रसिद्धि गत, एवमत्यन्तसमृष्टे प्वर्थात्मसु शब्दसु वा विभक्त्येषु अपोद्धार कल्पित । पदव्यवहारो व्याप्तिमत्त्वात् लघुत्वाच्च लोके गान्धे च लटि प्रसिद्धो व्यवस्थित इति ।

—वाक्यपनीय २।२८ हरिवर्ति हम्ननेत्र

<sup>१</sup> प्राट्टकरायण गान्धवाक्यशास्त्रे व इसका पुष्टि मन्मथान्य का एक ज्ञान नामगता प्राका शित वाक्या से हो जाता है—

निभात कोटवन्निनु भावः श्रीदुम्बरायणमन्त्रानुसारिण एवमात् ।

मन्मथान्य वाक्या, हन्तोम्य, पृ० ०१ मन्मथ श्रीशिवदल मनुवाक्य लक्षणोरो न० भा० ४४३ ।

भरतमित्र ने भी इसका पुष्टि का है—“ह व शिष्ट द्वापतिरित्तनया पदात्मकारप्रथय निभासमान्यवत्तरक्षणाथ ह्युतया व त्वागमे ति दशवा” इत्यनेन व्याखन प्रसिद्धमपि भगवदशुम्बरायणाथदिगात्पदभावमाप ।

—कोटिशिद्ध, पृ० १



## श्रीदुम्बरायण दर्शन

वाताम और श्रीदुम्बरायण नाम के आचार्यों ने नाम, आख्यात उपमग और निपात रूप में पदविभाग का अनुपपन्न माना था। वे वाक्य को अक्षण्ड मानते थे। उसका भी सप्रत्यय (नाम) वृद्धि में समृष्ट रूप में रहता है। गद (वाक्य) वीद्ध है। अथ भी वीद्ध है। गन् भी वृद्धि में समृष्ट रूप में रहता है, अथ भी समृष्ट रूप में रहता है। वृद्धि से जो कुछ जाना जाता है वह सब समृष्ट रूप में रहता है इसलिए वृद्धि भी समृष्टप्रत्ययवाचकमानी है। समृष्ट का प्रविभाग अवास्तविक होता है। अतः चार पदानाता की कल्पना भी अवास्तविक है।

समृष्ट शब्द अथवा समृष्ट अर्थ के परिचय का एक कल्पित साधन है जिसे अपोद्धार कहा जाता है। अपोद्धार पद्धति का आधार पर लोभ में और गाम्भ्र्य में भी व्यवहार के लिए वाक्य का पद में विभक्त किया जाता है। सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट उपायांतर से निमित्तों के तरह से नहीं समझा जा सकता उन सब अर्थों का जानना का साधन गद है। गद और वाक्य का आधार पर गद का आश्रय लिया जाता है गद व्याप्तिमान है क्योंकि वह मूल अमूल सबका स्पष्ट करता है। गद तब ही व्याप्तिमान है जब तक वह मूल अमूल सबका स्पष्ट करता है। गद तब ही व्याप्तिमान है जब तक वह मूल अमूल सबका स्पष्ट करता है। गद तब ही व्याप्तिमान है जब तक वह मूल अमूल सबका स्पष्ट करता है। गद तब ही व्याप्तिमान है जब तक वह मूल अमूल सबका स्पष्ट करता है।

एतस्माद् एव श्रीदुम्बरदशनात् तत्र चतुष्टय तोषपद्यत इत्युच्यते। यत्र तु व्याप्तिमत्त्वात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टैस्त्वर्थेषु बहुभिरपि प्रकारेण दशयितुम् अशक्येषु साधनात् गदप्रवहारी लोके प्रसिद्धि गत, एवमत्यंतसमृष्टे प्वर्थात्मसु गदेषु वा विभक्तेषु अपोद्धार कल्पित। पदप्रवहारी ध्याप्तिमत्त्वात् लघुत्याच्च लोके गाम्भ्र्ये च हृदि प्रसिद्धो ऽयस्त्विति।

—वाचस्पतीय २।२८८ हरिश्चित्ति ह्यनेनैव

१. श्रीदुम्बरायण नाम आचार्यश्री धर्मका पुत्रि महाभाष्य का एक उदाहरण नामाना अत्रका शिल या या से ना हीना ह—

निर्वाण कावचान्ति-तु भगवन् श्रीदुम्बरायणमजानुमारिण एवमाहुः ।

महाभाष्य व्याख्या, पृ. ११२, ११३) महास ओग्यन्त मनुश्रुत्वा लाद्वेरी न० आर ४४२ ।

भरतमित्र में भी इसका पुत्रि का ह—द कश्चिद् दशयितुम् पदः नवाकारेण यथ निर्भासमानमपनन्तरापर्य्यं ह्युत्तमं च 'एताम हि दशवन्' इत्यनेन 'यानेन प्रसिद्धमपि भगवन्श्रीदुम्बरायणाचार्यनिर्वाणभावमपि ।

—कश्चित्ति, पृ. ११३





नेवायस्याक्षा पादा भाषा इत्यादावभिधानदग्नेव्येवगेपमतरेणादाग  
नाद यजेत इत्यादौ च कृत्तिकायद्योयु नपल्लिङ्गामिधोयमानयोरपि विगोषण  
विगोष्यभावस्य प्राणाकाररन्मुपगमात्स्वदेव विगिष्टामिधान मयत ।  
अस्माकमध्यमेव पक्ष । —पद्मजरी २।३।१ पृष्ठ ४१८

चतुष्क प्रातिपदिकाय पक्ष की व्याख्या दो तरह से की जाती है । स्वाथ द्रव्य  
विग और कारक रूप म तथा स्वाथ द्रव्य विग और सन्धा रूप म । इनम प्रथम  
चतुष्क सन्धा के छा, च पक्ष म पट्टिन हा १ है (कथं महाभाष्यप्रदीप ४।१।१) ।

वस्तुत व्याकरणशास्त्र म भाव्यदत्तानुसार कभी त्रिन पक्ष का और कभी  
चतुष्क और कभी पञ्च प्रातिपदिकाय पक्ष—य मभी माय रह हैं । नागेश के अनुसार  
भाष्यकार विभक्तिना को छा,तक रूप म मानत हैं छोटत पक्ष ही सिद्धान्त पक्ष है ।  
अस्माद भाष्यात् छोटतदक्षपक्ष एव सिद्धान्त इति मयन । नागेश—महाभाष्य ४।१।१०

कथं क अनुसार प्रातिपदिकाय ही अनन्य गतिपाग के कारण कम आदि गद  
म वाच्य गना ह । जिम हम विभक्ति विपरिणाम कहत है वह भी वस्तुत प्रातिपदिक  
का ही विपरिणाम है । विभक्ति का विपरिणाम कवल औपचारिक रूप म होना है

प्रातिपदिकाय एव हि नानाशक्तियोगात् कर्मादिगदवाच्य इति स एव विगिष्ट  
गतिपुक्तो विभक्त्यतवाच्य । अथवा तात्त्विकरूपि भेद गदस्य सारण्यात्  
तस्वाध्यवसायाश्रयेण विभक्तिप्रत्ययतयागोपादानाम्ना प्रातिपदिकस्य  
विपरिणामयवहारोऽवस्यते । विभक्तस्तूपचरितो विपरिणामयवहार । न  
हि प्रथमाया सप्तमीहोत्रेण विपरिणाम समव ।

—कथं, महाभाष्यप्रदीप ५।३।६०

प्रातिपदिकाय स्वाथ अनन्य प्रकार का है स्वाथ गद म स्व गत् आत्मीय का  
वाचक है और अथ गत् अभिधेय का वाचक है । (स्वाथ स्व्वाथ) । वह स्वरूप जाति  
द्रव्य गुण क्रिया सम्बन्ध रूप म कई तरह का होना है । जब यो एमा गत्स्वरूप  
म विशिष्ट जाति कनी जानी है गत्स्वरूप विगोषण होत के कारण स्वाथ है और  
जाति विगोष्य हान क कारण द्रव्य है (द्रव्य गद स यहा यानरण गान प्रमद इद  
तत इम रूप म परामग योग्य वस्तु से अभिप्राय है) । पट्टम गुप्तो गुण जस स्थला  
मे जाति मे विगिष्ट गुण का अभिपान हाता है दसनिय विगोषण हान के कारण जाति  
यहा स्वाथ ह और गुण विगोष्य हान क कारण द्रव्य है । गुवन पट जैसे शान्त म गुण  
विगिष्ट द्रव्य का उल्लेख होत क कारण विगोषणभूत गुण स्वाथ है और विगोष्यभूत पट  
द्रव्य है । कभी कभी द्रव्य भी द्रव्यान्तर का विगोषण होना है जस पट्टी  
प्रवणय कुतान प्रवणय जम वासया म । ऐम स्थला म विगोषणभावापन यष्ट्यादिक  
द्रव्य तो स्वाथ है और विगोषणभावापन द्रव्यान्तर (पुष्पात्क) द्रव्य ही हैं ।  
गणी विपाणी गम गत् म जहा सम्बन्ध निमित्तक प्रत्यय हान हैं सम्बन्ध ही  
स्वाथ है । कभी क्रिया भी स्वाथ मानी जानी है उत पाचक पाठक आदि म ।  
इनम क्रियानिमित्तक प्रथम दृष्टा है । पाचक जस स्थला म कुछ नाग क्रियाकारक  
सम्बन्ध को स्वाथ मानत हैं । जस प्रवृत्तिनिमित्तलिपनप्रापनिरिन विग और सन्धा  
का अभिधान हाता ह वहा विग और सन्धा भी स्वाथ ह जम स नपुमकाऽभरत  
भावाविशति आदि स्थना म । इसी तरह काक भी उम वर्ण आदि क रूप म स्वाथ  
होना है । परन्तु जहाँ प्रवृत्तिनिमित्तव्यतिरिक्त विग और सन्धा असम्भव है—जस

स्त्री पुमान् एत, द्वौ बहव आदि भ- वही निगमना का अभिधान नया हाता ।

यद्यपि तान्त्रिक म पद के उच्चारण कर्तृ ही पाँचा प्रातिपदिकाएँ एत माय ही (मुणपत) प्रताय हात है क्योकि गण-व्यापार विरम विरम कर नया हाता और न मय के माय उगता कभी विपाय हाता है फिर भी गाम्प्र म व्यवहार की मुद्रिया के नियमों पन अचय अतिरिक्त के द्वारा प्रम का आश्रय लिया जाता है । प्रातिपदिका मय प्रयाग के योग्य रहा होत । उनका मयवता भा वर्णित हा है फलन तिनन गाय के मत पर उनम प्रम माना जाता है । गाम्प्र म प्रम अन्तर प्रसार का माना जाता है जैसा अतिप्रम अथप्रम पाठमम गण्डप्रम प्रवलिप्रम प्रतिपतिप्रम प्रयागप्रम बुद्धिप्रम आदि । पुष्पगज न वारणप्रम - १८० की टीका म इनका उच्चारण गाम्प्र के उच्चारण द्वारा विपायत किया है । जहाँ तक प्रातिपदिकार्थों का सम्बन्ध है तन्म प्रतिपत्तिप्रम माना चाहिये । परन्तु नान हरि के अनुसार प्रतिपत्तिप्रम आता की दुर्लभ म और वाता की दृष्टि से भी व्यवस्थित नया है (न हि गण-स्य कर्मवता विरम्य विरम्य स्वाधीदियु वृत्ति सम्भवति । सट्टुदुस्वरणात् । अमेत च नित्यमवियोगात् । प्रतिपत्तिप्रमोह्य धोतुरभिधानु वा न व्यवस्थित (वाचस्पतीय ११२६ हरिवर्ति, पृष्ठ ४१) । मध्यमा म जो प्रम है वह गण-व्यापार से नयी होता अपितु वह एत तरह का कल्पित हाता है । कभी-कभी धोता या अभिधाना को प्रम की प्रतिपत्ति हानी है । नागहीनविगपणा विगय बुद्धि इस गाय के अनुसार पहले स्वाय का तत्र विगिष्ट लिंग आदि की प्रतिपत्ति हानी चाहिये । नान हरि के अनुसार प्रम ग्रहण के आधार निम्नलिखित पाच है—

- (१) प्रत्यासत्ति
- (२) महाविपयता
- (३) अभिव्यक्तिनिमित्तोपव्यजनपक्ष
- (४) उपलिप्ता
- (५) बीजवतिनाभरानुगुण

प्रत्यासत्ति के द्वारा प्रातिपदिकार्थों म प्रतिपत्ति क्रम का निर्धारण किया जाता है । प्रत्यासत्ति का अर्थ शासन अथवा मभीषणत है । प्रत्यासत्ति उपरान्भाविता मानी जाती है । उच्चरित गण्ड मे सभी प्रातिपदिकाएँ स्वाय द्वय लिंग आदि सम्पन्न रहते ह । इनम प्रतिपत्ता जिसको समीप ममभ्रता है उसको पहले अचगत करता है । प्रातिपदिकार्थों म आमन उपवारक जाति है । जातिस्वरूप के बिना द्वय का अवधारण दुष्कर है । अतः सबप्रथम प्रत्यासत्ति के आधार पर जाति का जान होना है । जाति द्वय के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकती और न व्यवहार के योग्य हा सकती है । लिंग आदि भी आश्रय के बिना नहीं टिक सकते । अतः जाति के बाद परन्तु लिंग सम्पन्न आदि के पन्ने द्वय का भाव हाता है । लिंग तथा सम्पन्न और वारण के लिंग प्रत्यासन है । क्योंकि लिंग द्वयान्तर अनुपपन्न होता है जबकि मर्या और वारण दूसरे वस्तुओं की अपेक्षा गृह्यते है । दान्तीन आदि मर्याएँ एवं वस्तु से अतिरिक्त वस्तु की अपेक्षा गृह्यता ही ह । एवं सम्पन्न भी द्वित्व आदि के व्यवहारेण के रूप म द्वयान्तर

मापना ही मानी जायगी। फलतः वहिरग सख्या और कारक की अपक्षा अतरग िग की प्रतिपत्ति पहले मानी जाती है। सख्या और कारक में सख्या सजातीय पदाय की अपक्षा रखती है जबकि कारक विजातीय क्रिया की अपक्षा रखत हैं। अतः वहिरग कारक की अपक्षा अतरग सख्या का अवधान पहले होगा। अतः प्रत्यासत्ति के आधार पर प्रातिपत्तिकार्यों में जाति, द्रव्य लिंग सख्या और कारक इन तरह का क्रम होगा।

महाविषयता के द्वारा भी क्रम की प्रतिपत्ति होनी है। जाति और द्रव्य में जाति का क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि जाति सब व्यक्ति में अनुगत है। स्फुटतर परिच्छेद हान के कारण पहले जाति का ही ग्रहण होगा। द्रव्य और लिंग में द्रव्य महाविषय है क्योंकि द्रव्य सभी लिंगों के साथ है जबकि एक लिंग दूसरे लिंग से व्यापक है। अर्थात् स्त्रीलिंग पुलिग आदि सबके साथ द्रव्य मिलेगा परन्तु जहाँ स्त्रीलिंग है वहाँ पुलिग नहीं है। लिंग और मर्यादा में लिंग महाविषय है क्योंकि लिंग सभी सख्याओं में है जबकि एक सख्या दूसरी सख्या से भिन्न है। मर्यादा और कारक में सख्या महाविषयवती है। मर्यादा का सम्बन्ध प्रातिपदिक और ग्राह्यता दोनों में है जबकि कारक का सम्बन्ध केवल प्रातिपदिक से है। अतः महाविषयता की दृष्टि से भा जाति द्रव्य, लिंग आदि का क्रम मभव है।

अभिव्यक्तिनिमित्तापव्यजनप्रकथ भा प्रतिपत्ति क्रम में साधन है। अभिव्यक्ति के निमित्त में जिनका ही अधिक उपयजन हाग उतना ही शीघ्र उमका पान हागा। जाति और द्रव्य में जाति के उपयजन अधिक हैं क्योंकि जाति सबमाधारण हान के कारण अनेक व्यक्ति से व्यप्य जाती है। जबकि द्रव्य अपन अवयवा द्वारा व्यक्त क्रिया जान के कारण अपव्यजनवाला है। इसी तरह द्रव्य और लिंग में लिंग और सख्या आदि में उपव्यजन क्रम अल्प होता गया है।

उपनिष्ठा के द्वारा भी क्रम का बोध हाता है। सबप्रथम जिसकी उपलक्षि डष्ट हानी है प्रतिपत्ता का उमी का मान सबप्रथम होता है।

बीजवत्तिलाभ अनुगुण्य के द्वारा भी क्रम का पान हाता है। प्रत्यय (पान) उत्पत्ति में जो आन्तर कारण है उम बीज वस्तु हैं। उमके वत्तिलाभ का तापय प्रबोध सं है। आनुगुण्य का अभिप्राय वाय के उत्पान के अभिमुख हाता है। जितन पान हात हैं वे पूव पूव आहित मन्तार के प्रबोध के फलस्वरूप उत्पन होत हैं। जाति पान द्रव्य पान का बीजवत्तिलाभानुगुण्य है। अर्थात् जाति के पान हान पर द्रव्य का पान हाता है। इसीसे सबप्रथम जाति का पान होगा। इसी तरह प्रतिपत्ति (द्रव्य) का पान आश्रय परलन लिंग आदि के पान का अनुगुण्य है। इसी तरह जाति व्यक्ति, लिंग आदि का क्रम बीजवत्तिलाभानुगुण्य के सहारे भी भासित होता है।

उपयुक्त क्रम का उल्लेख महाभाष्यकार ने भी किया है प्रातिपदिक चाप्युपदिष्ट सामासभूतेषु वतते। सामास्ये धतमानस्य यकिरूपजायते। यत्तस्य सतो लिंगसख्याभ्यामवितस्य बाह्ये नाथेन घोषो भवति—महाभाष्य १।१।५७। भाष्यकार ने उपयुक्त मन्तार लौकिक आधार पर व्यक्त किया है। व्यक्ति प्रातःकाल उठ कर पहन गीर-काय करता है। तब मित्रा का तब मन्त्रघोषो वा वाप करता है। यही वाप-

प्राप्तम प्रातिपदिकार्थो म नी षाम दन है ।

फिर भी वाक्यपदीयकार व मा म षम म अनियम ग्रा जाता है (वाक्यपदीय  
मात्रागु अन्तिमयेन बुद्धिप्रभो व्यसक्तिष्ठते—वाक्यपदीय हरिवर्ति १।२६ पृ० ४२  
जाति शानि की प्रत्यासक्ति म व्यभिचार ग्रा जाता है उस द्यम् एतस्य एतन् कम  
जस स्थना म जाति व विना भी त्रिय शानि द्रव्य ता व्यग्रहार माग्य बनान है ।  
भनूहरि न अपन मत की पुष्टि व त्रित्तिम्भित्तिन्य कारिका उद्धत की है

एको य शक्तिभेदेन भावात्मा प्रथिमज्यत ।

बुद्धियत्यनुकारेण बहुधा ज्ञानवादिमि ॥

यस्तुन भन हरि के दान म ग्रात्मा और अयात्मा का रूप विभागातीत है (समीहित  
पौर्वापर्योऽर्थात्मा स्वरूपादप्रच्युतोपि मयो विभागातीत तस्य एष—वाक्यपदीय हरिवर्ति  
२।१३) । भन हरि न प्रतिपत्ति का लघुप्रथमा और गुणप्रथमा इन ११ रूपा म व्यवन  
निया है । लघुप्रथमा ता वह है जिमक द्वारा सामान्यविशेष व विचार के साथ विभाग  
व द्वारा अविभक्त की प्रतिपत्ति की जाती है । गुणप्रथमा उस प्रतिपत्ति का नाम है  
जिमक द्वारा सस्य रूप का अविभक्त रूप म ही जान जाता है । कुशल प्रतिपत्ति वही  
ह जो भेद को अर्थ व भाषात व बिना ही दपता है (वाक्यपदीय हरिवर्ति २।१३) ।

### प्रातिपदिकार्थ-जाति अथवा व्यक्ति

वाक्यपदीय व मत म ग्रा का वाक्य जाति है । व्याडि के मत म ग्रा का  
वाक्य व्यक्ति है । पाणिनि के मत म अवाक्यकृतानुसार जाति और व्यक्ति दोनो है ।  
भन हरि के अनुसार यन् आकृतिवाद पक्ष को माना जायगा, ग्रा म विप्रतिषेध  
बाध और शब्दतर प्राप्ति की उपपत्ति सम्य नही है । यदि व्यक्तिवाद पक्ष माना  
जायगा उत्सग और अपवाद बकार सिद्ध हाग

‘पाणिने सवशाक्तर्भावात् सक्तगत विप्रतिषेधबाधन शब्दतरप्राप्तिश्च  
नोपपद्यत । अथ द्रव्यमेव पदाथ एवमपि सर्वासा व्यक्तीनां सर्वाभिश्चोदना  
भिरङ्गीकरणात् उत्सर्गविवादो न प्रकल्पेत ।’—महाभाष्य त्रिपानि पृष्ठ २३  
ब्रह्मदत्तजी त्रिपानि ता हस्तलग्न पृ० १८ पूना संस्करण

इसलिए पाणिनि न जाति और व्यक्ति दोनो का दृष्टि म रूप बन सूत्र रचे  
है । लक्ष्यानुरोध म कही जाति का और कही व्यक्ति का आशय लिया जाता है । जाति  
पक्ष म जाति ही ग्रा का अभिधाय है उसक आधारभूत व्यक्ति की प्रतीति  
नातरीयक रूप म मानी जाती है । इस पक्ष म जाति क स्थानित्व आदेगत्व एव,  
अप्रबाहितत्व शानि धम व्यक्ति क द्वारा ग्रादमस्कार म उपयोगी होत है । इसलिय  
यराबुभासित्वेनुनासिको वा दादा१४ जस लक्षण जातिमती व्यक्ति म ही प्रवत होत  
है । कण्ट के अनुसार स्वरूप ग्रादमस्कारता १।१।६८ म रूप ग्रा का अर्थ सामान्य  
भी है आर व्यक्ति भी है । दाना प्रकार व अर्थ मानन पर भी कन क वाक् भे नहा है ।  
क्योकि व्यक्ति सामान्य स युक्त रूप म ही सामान्य व्यक्ति क आशय स हा प्रतिपत्ति  
होता है (महाभाष्यप्रदीप १।१।६८) । भन हरि भी उस ज्ञान को मानत है कि जाति

घोर व्यक्ति के विवाद में बवल प्रतिनाभेद है न कि वस्तुभेद है। तापय व अनुभार जाति और व्यक्ति में कोई बड़ा प्रधान घोर वही नान्तरीयक होता है (तात्पर्येण तु विवक्षाभिद्यते)। किञ्चदत्र प्रधानम किञ्चिन्नातरीयकमिति। तच्च प्रतिज्ञाभेदमात्रम्। जाति शास्त्रे वाययोगिनी सचिकीर्विता, व्यक्ति शास्त्रे वाययोगिनी सचिकीर्वितेति।

—वाचस्पतीय १।७० हरिविनि प ७३

व्यक्ति में अयत्रियाकारिता हात हुए भी व्यक्तिपक्ष में आनन्द्य और व्यभिचार दोष मान जात हैं और जमा कि मम्मट ने कहा है गो गुवन चल डिल्य आदि में विषयविभाग भी न हा सरेगा। परन्तु व्यक्तिपक्ष का समर्थन करत हुए कौण्डभट्ट ने इन आक्षेपों को निराधार माना है क्योंकि जिस रूप में व्यक्तिग्रह हागा उमी रूप में पदार्थोपस्थिति भी हागी

यद्यपि काव्यप्रकाशकारेणाक्त गो गुवल चलो डिल्य इत्यादीना जातिगुण क्रियासजागदस्त्वेन विषयविभाग शुद्धवृत्तिवाच्यत्वे न स्थाव इति तच्चिरूपम्। येन रूपेणापस्थिते अतिप्रहस्तेन रूपेण पदार्थोपस्थिति।

उक्त च भट्टपाद अरणाधिकरण आनन्द्येऽपि हि भावानामेक कृत्वोपलक्षणम्। न च सुकरसम्बन्धो न च व्यभिचरिष्यति ॥

—श्लोक वातिक वयाकरण भूषण, पृष्ठ ११६ वम ससृत्त भीरीज।

इस सम्बन्ध में भन हरि न जाति और व्यक्ति में व्यतिरेक लिखात हुए दृष्टाभिधानपक्ष और अदृष्टाभिधानपक्ष का उल्लेख किया है। कुछ आचार्य मानत हैं कि व्यक्ति के स्वरूप भेद निश्चित रूप में होत हैं। ऐसा नहीं होना कि व्यक्ति का स्वरूप अमवद्य अव्यपदेश्य अथवा अविद्यमान हो। व्यक्ति ही गी है आकृति नहीं। गुण ही नील है न कि गुण सामान्य नील व।

कुछ लोगों के मत में न जाति के रूप में ही स्वरूपवान होत हैं और जानि व द्वारा ही अव्यपदेश्यस्वरूप व्यक्ति के बोधक जान है। स्पष्टि देखा जाता है कि निमित्त और अनिमित्त वाले अथ में निमित्त वाल अथ का पहल जान होता है। निमित्त दृष्टाभिधानवाले और अदृष्टाभिधानवाले होत हैं।

जिसके निमित्त का अभिधान दृष्ट है उसे दृष्टाभिधान कहत हैं जस गोत्व आति। गो शास्त्र शास्त्र की अभिधा है (गो शब्दादयो हि तेषा अभिधा—वचन वाचस्पतीय १।७०)

जिसके निमित्त का अभिधान दृष्ट नहीं है उसे अदृष्टाभिधान कहत हैं। जस उत्पन्न व आति। उत्पन्न व न उस व्यक्त नहीं करता। क्योंकि सम्बन्ध में अवच्छिन्न सम्बन्धी का अभिधान हाता है (न हि उत्पन्नमथ शब्दस्तदाह। सम्बन्धावच्छिन्न सम्बन्ध्याभिधानात् (वही पृष्ठ ७२)

निमित्त कभी तो एक रूप व सारूप्य में और कभी अल्प सादृश्य स न जान में प्रवृत्त हात है। एक रूप व सादृश्य स जस ध्वनि अथवा कोई अथवा चन्द्र लखकर प्राणी शास्त्र की प्रवृत्ति होती है। गो शास्त्र की प्रवृत्ति और उसका जान अधिक अवयव मन्त्रिवेग व सादृश्य स हाता है।

मुक्त धान यह है कि दृष्टाभिधान म जाति शब्द और प्रत्यय (जान) इन तीनों का अनुधान होता है। घट्टाभिधान म केवल जानि और बुद्धि इन दो का ही अनुवचन होता है।

तत्र दृष्टाभिधानेषु प्रथमनुवचते जाति शब्द प्रत्यय इति। घट्टाभिधानेषु द्वय जातियु द्विचेति।

—यपम वाच्यपत्नीय टीका १। ०, पृष्ठ ७२

एक तरह जानि व्यक्ति म परस्पर प्रतिनाभाव रूप म बतल है। एतन्म यदि भेद ह तो बत सापेक्षता स है। जानि की विषय त म जानि प्रधान ह और व्यक्ति का विवक्षा म व्यक्ति प्रधान है शब्द नातन्गीया है। अतः जानि और व्यक्ति एक दूसरे क सम्कारक है। यही पक्ष व्याकरण मप्रत्यय म गृहीत है और यही पक्ष भक्त हरि का भी अभिमत है।

### कात्यायन के मत में जाति और व्यक्ति

जाति और व्यक्ति पर विचार कात्यायन न वाजप्यायन और शांडिलि क आधार पर किया ह। वाजप्यायन क अनुगार आहृति एक है। शब्द म उगी का अभिधान होता है। उमकी गता और उमक एकत्व का जान बुद्धि की शास्त्रता स जान है। पर्यायविशेषण १।२।६८ ६। श्वत कृष्ण शक्ति रग म भेद हान हुए भी प्रमाण जाति क भिन्न भिन्न हात हुए भी गौ व्यक्तिता म गौ गौ रूप तरह का शास्त्रकार प्रत्यय होता है। इस अनुगताकार प्रत्यय क आधार पर सामान्य का स्वभाव और उमका एकत्व माना जाता है। शब्द स जाति का अभिधान होता ह इसम प्रमाण म वार्तिककार न वार्तिक लिखा है—अपवगगतश्च १।२।६४ ३७। अपवग का भाव है अर्भे अविच्छेद या अविशेष उसकी प्रतीति का अपवगगति कहत है। गौ बहन से अपवग गुबल नील पीत शक्ति भेद का भाव नहीं होता। शब्द द्वारा जाति क अभिधान हान पर उमके आधार स व्यक्ति म बाहन दाहन आदि अपापर उत्पन्न हो जात ह। जाति और शब्दान म अर्भेतापचार ने गौ गुबन जस सामानाधिकरण्य व्यवहार भी उत्पन्न हो जाता है। पर्यायविशेषण स वार्तिककार न प्रत्यभिन्नाप्रत्यय क आधार पर जानि क एकत्व का प्रतिपादन किया है क्योंकि अन्वभिधीयमान भी जाति मन्निधि मान से पर्यायविशेषण म निमित्त हो जाती है। अपवगगति स भी यहा ध्यान सिद्ध हाती है। पर्यायविशेषण स जानि म प्रथम प्रमाण का संकेत किया है। चायत चक्रोपदिष्टाम १।२।६४ ३८ वार्तिक द्वारा अनुमान भी सहायक क रूप म अभिप्रेत है। देशभेद कालभेद अवस्थाभेद पिण्डभेद के हात हुए भी अबाधित रूप म अनुगताकार प्रत्यभिन्नाप्रत्यय होता है। इसकी अर्थयानुपपत्ति स सामान्य की गता अनुमय है। घमशास्त्र म भी जानिवाच की पुष्टि होती है। ब्राह्मण न ह शब्द स ब्राह्मण मान का नहा मारत है। ऐसा नहीं कि एक का न मारकर शेष के विषय म कामचारिता है। घमशास्त्र च यथा १।२।६८ ३९ वार्तिक स कथक क अनुसार यह भी अभिप्रेत है कि भाव प्रत्यभिन्ना न ग्रहण की जाय। कभी कभी साहचर्य एकनिधानाकारित्व शक्ति के

निमित्त से भ्रान्त प्रत्यभिज्ञा ही जाती है। ऐसा न हान पावे इमं लिए घमशास्त्र वाला वार्तिक है। स्मृतिवार भी ज्ञानि क आश्रय से व्यवहार का विधान करते है। एन का अनेक अधिकरण अथवा अनेक उपलधि के लिए वाजप्यायन और उनक अनुमान वाप्यायन न एन आदित्य और विभिन्न भागा म एक वद का दृष्टान्त अपनाया है। यदि एन का अभिधेय द्रव्य माना जायगा आकृति का ज्ञान नही हागा एक शब्द अनेक अर्थ को नही व्यक्त कर सकगा। श्रुति स्मृति व्यवहित व्यवहार विच्छिन्न हान लगेंगे।

व्यक्ति के पक्ष म वात्स्यायन का वार्तिक है—द्रव्याभिवान व्याडि १।२।६४ ८६। आचार्य व्याप्ति क अनुसार शब्द का अभिधेय द्रव्य (व्यक्ति) ह। इमी आधार पर लिंग और वचन की निद्धि हाती है। वद की आना स भी द्रव्य ही अभिधेय जान पन्ता ह। आकृति अभिधेय पक्ष म आलभन आदि काय अमम्भव है। एक वस्तु अनकाधिकरणस्य नही हा सकती उसकी प्राप्ति गुणपन ही हो सकनी। अथवा मवका प्रादुभाव और मवका नाग एक माय होता। एन अश्व के निघन क वाच अश्व का नाप लाक म मिट जाना। अभियजक क विनाग म जाति के विनष्ट हा जान के कारण उमी दग क पिण्णतर का मान दुप्कर हा जाता। अथवा आश्रय क अपाय म आश्रित का अपाय (विनाग) अवयवी के अपाय ने अवयवी T अपाय की भानि हा जाता। गो पिण्ड स गो जानि की यदि अभिव्यक्ति मानी जाएगी तो एक गापिण्ड का दग्धर मभी गापिण्ड का प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए। इसक अतिरिक्त वरप्य भी है—अस्ति च वरप्यम १।२।६४। एक तरह के गो को किनी को दण्ड और किनी वा मुष्ण कहत है। एक ही वस्तु के भेद और अभेद दोनों विरुद्ध घम नही हा सकत। गार्ध्व गोश्च जम विाह भा सामाय के एकत्व पक्ष म युक्त नही हा सकत। क्याकि समुच्चय भेदायित हाता है सामाय के एकत्व और अभिधेयत्व पक्ष म यह सम्भव नही ह। इसलिए द्रव्य की ही मत्ता माननी चाहिए सामाय की नहीं।

वार्तिकवार न आकृति पक्ष पर जगाय गय दाया के निराकरण के लिए भी वार्तिक लिये ह

लिंगवचनसिद्धिगुणस्यानित्यत्वात्—गुणवचनाद्वा १।२।६४ ८३, ५४ अर्वाति—

आकृति पक्ष मे लिंग और वचन की अनुपपत्ति का समाधान गुण को अनित्य मानकर गुणवचन शब्दों के आश्रयगत लिंगसंख्या के आधार पर किया है।

अधिकरण गति साहचर्यात् १।२।६४ ५१ के द्वारा वद आजाजय आलभन आदि का समाधान किया है। आकृति पक्ष म आकृति म आलभन आदि का अचरितायता देवजर आकृति सहचरित द्रव्य म आलभन आदि क्रियाएँ हागी।

अविनागोन्नाधितत्वात् १।२।६४ ५७ वार्तिक द्वारा विनाग और प्रादुभाव वाल आश्रय का उत्तर दिया है। द्रव्य क विनाग हान पर भी आकृति का विनाग नही हाता। क्याकि भाष्यकार की यास्या के अनुसार, आकृति और द्रव्य का आत्मा अनेक है।

वरप्यविग्रही द्रव्यभेदान १।२।६४ ५८ के द्वारा गा गो आदि वरप्य



कारण द्रव्य का भेद माना है। अतः प्रथम भेद का उपचार मूल्य है। अतः प्राटिनि म गमुत्तय विरुद्ध नहीं है।

अथर्ववेद च सामान्यगतं गिञ्जम् १।२।६४ २६ याचित् द्वारा अन्वयगत गण्य पर के अन्वय का समाधान किया है। विभिन्नार्थों में भी सामान्य मानना न काम चल जायगा। विभिन्न प्रियाओं में भेद हात ही भी अन्वय प्रथम हुआ करता है उन्वय निमित्त सामान्य है और वही सामान्य द्रव्य में भी निमित्त है। जगत्पञ्च म आध्यात्मिक नही सामान्य समस्तसमवाय का कारण स्वयं म उपकारक होता है। जगत्परिवर्तन जोहिय सधुन समवाय रूप होने पर भी जोहिय प्रथम का जगत् करता है।

इस तरह वातिककार ने प्राटिनि पक्ष का जवाब का पक्ष पर उन्वय प्रति अपना भवाय चोदित किया है। अन्वय की म व्यापकता का कारण ही अन्वय दान सामान्य में भी सामान्य और अभाव में भी निरूपण्यव सामान्य की कल्पना करता है। मुख्य उल्लेखनीय बात यह है कि वाक्यान्वय न बतल प्राटिनि पक्ष और व्यक्ति पक्ष का विद्वेषण ही नहीं किया है मूलकार के अन्वय मूल्य का म धरातल पर लाकर उन्वय अन्वयान किया है।

## महाभाष्यकार के मत में जाति

महाभाष्य में जाति की चार परिभाषाय मिलती है—

- १ जननेन मा प्राप्पते सा जाति —महाभाष्य ४।३।५५
- २ आकृतिग्रहणा जातिलिङ्गानाञ्च न सवमाक ।  
सकृदास्मात्तनिर्घाया गोत्रञ्च चरण सह ॥ —महाभाष्य ४।१।६३
- ३ प्रादुमावविनाशाभ्या सत्त्वस्य युगवदगुण ।  
असवलिङ्गा ब्रह्मथा ता जानि कवयो विदु ॥ —महाभाष्य ४।१।६३
- ४ यत्सिंह तद भिन्नत्वभिन्न स्तिनेष्वच्छिन्न  
सामान्यभूत स शब्द । नेत्याह । आकृतिर्नाम सा ।

—महाभाष्य पृ० १ कीलहान मस्वरण

इनमें जाति का प्रथम लक्षण जाति शब्द की व्युत्पत्ति का आधार पर गठित है। यहाँ भाष्यकार ने जाति का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से जनन से जोड़ा है और उसमें अपक्ष अथवा पक्ष नहीं माना है। कथन का अनुसार भाष्यकार का अभिप्राय अत्यन्तलम्बता लिखाना मान है। अथवा परमाण आति नित्य पक्षों में जनन का अभाव से जातिवि विरुद्ध होगा। अत्यन्तलम्ब अथ सन्ता ह जिमम प्रकय अपक्ष नहीं होता। यत्न से उपाय घट आति पक्षों में जाति नित्यता का आधार पर रही है। गुण में आध्यात्मिक म भेद पक्ष जाना है इसलिये उसमें प्रकय अपक्ष आध्यात्मिक का आधार पर व्युत्पत्ति किया जाता है किन्तु जाति में आध्यात्मिक से भेद नहीं होता। अतः जाति में प्रकय अथवा अपक्ष नहीं होता।

गणन न जनन से प्राप्त जातिलक्षण को अद्वयान का अनुकूल माना है।

प्रद्वतवान्' के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ जय है। ब्रह्म में कोई धर्म नहीं है घट उसमें जाति भी नहीं है। महाभाष्यप्रदीपोद्योत ४।१।५५ तथा मजूपा पृ० ४६४। नागश ने सामान्य और जाति में भेद माना है। उनके मत में 'पाचकत्व' में सामान्य है किन्तु जाति नहीं है (मजूपा पृ० ४६४)।

जाति का दूसरा लक्षण आकृति से सम्बद्ध है। जाति वह है जिसका कोई आकृति के आधार पर होना है। अर्थात् जाति अवयवमन्निवेगविशेष से व्यक्त होती है। जैसे गात्व। जानि उपदेश वाच्य लिङ्ग से भी व्यक्त होती है जैसे ब्राह्मणत्व। ब्राह्मणत्व जाति गाव की तरह अवयवसंस्थान पर निर्भर नहीं करती। किन्तु विशेष चिह्न द्वारा किसी के बनाए लक्षणों को देखकर ब्राह्मणत्व का परिचय जाना है। ब्राह्मणत्व जाति आरापित धर्म है। गोव की तरह स्वाभाविक नहीं। अथवा जा सब लिङ्ग का आश्रय न लेती है। यद्यपि तट गद मवल्लिङ्गी है फिर भी यहाँ जानि प्रतिपादन अप्राप्तप्रापण रूप में माना जाता है इसलिए जहाँ सब लिंग सम्भव है वहाँ भी जाति हो सकती है और जा असवल्लिङ्गी है वहाँ भी जाति नहीं हो सकती। जैसे तट गद और दवदत्ता गद में। एक बार के कथन से ही पिण्यान्तर में भी जिसका वाद्य हो वह भी जाति का लक्षण है जैसे गौ गद मान कहने से दूसरे गा-प्रकृत में स्थित गोव का भी वाद्य जाना है। चरण के साथ गात्र भी जाति व्यक्त करता है। नागश के अनुसार कारिका में उल्लिखित सभी लक्षण गदपरक हैं

आकृतिग्रहणायक गद, सकृदाख्यातनिर्ग्राह्यासवल्लिङ्गायक गद, जाति-  
गद इति गदलक्षणमेतत्

—महाभाष्यप्रदीपोद्योत ४।१।५३

जाति का तीसरा लक्षण आविर्भाव से सम्बन्ध रखता है। वस्तु के आविर्भाव और विनाश से जिसका आविर्भाव और निराभाव जाना है वह जाति है। जब तक द्रव्य है तब तक जाति है। निगुण द्रव्य की उपलब्धि नहीं होती। जानिर्गहन द्रव्य का भी उपलब्धि नहीं होती। जानि बहुत विषयों में व्याप्त रहती है और असवल्लिङ्गी है। दूसरे और तीसरे जानिलक्षण में भेद से व्याकरणप्रक्रिया में भेद उपस्थित होना है। आकृतिग्रहण के लक्षण में कुमारिभाय गद बनता है आविर्भाववाले पक्ष में कुमारिभाय रूप होगा। कथन के अनुसार आकृतिग्रहण मात्र लक्षण भाष्यकार का इच्छा है पूर्वोक्तमेव लक्षण भाष्यकारस्याभिमतम्, अपर आहेत्यभिधानादाह।

—महाभाष्यप्रदीप ४।१।५०

चतुर्थ जानिलक्षण भिन्न में भी अभिन्न छिन्न में भी अछिन्न सामान्य रूप में जाति की प्रतिष्ठा करता है। यह लक्षण ब्राह्मणत्व घटव आदि में साधारण है। भिन्न में भी अभिन्न में एकत्व लक्षण है। छिन्न में भी अछिन्न कहने से जानि का नित्यत्व अभिप्रेत है। पञ्जलि ने यहाँ सामान्यभूत गद का प्रयोग किया है। भन-हरि के अनुसार भूत गद उपमावाची है। (भूत गद उपमावाची-महाभाष्यदापिका पृ०)। इसका आधार पर कथन में भी भूत गद का उपमा के अर्थ में लिया है। पञ्ज सामान्यभूत गद का अर्थ है सामान्य इव। सत्ताम्यमहामामाय गोत्व आदि

उपमान है।<sup>१</sup> इस तरह भाष्यकार के इस वचन से जाति में एकत्व, त्रित्व और अनवानुगतत्व उपपन्न हो जाता है। आकृति और जाति में कुछ भेद माना जाता है। आकृति का सम्बन्ध मदा अवयवसंस्थान से होता है। जाति अवयवसंस्थान निरपेक्ष भी हो सकती है। त्रितु भत हरि के अनुसार भाष्यकार के उपयुक्त जाति सम्बन्ध में आकृति शब्द जातिपूरक है।

आकृतिरिति न तत संस्थानम् । किं तर्हि । जातिरेव । यथा आकृत्यामिधानं वाजप्यायन इति । आश्रियतेऽनयेति आकृति । आश्रियत इति सिद्धते पदार्था तरेभ्य इत्याकृति । आश्रियते बुद्धिश्चादावस्या इति आकृति ।

—महाभाष्यगीषरा प० ३

## भतृहरि दर्शन में जाति

भतृहरि की दृष्टि से जाति का स्थान बहुत ऊँचा है और हम पर उद्धान बद्ध दृष्टियाँ से विचार किया है। अथ दत्ताना में जाति के सम्बन्ध में उक्त समय तक प्रचलित वादा का भी उद्धान सफल किया है। 'यास्मिन् दक्षिण में गृहीत जाति की कुछ चर्चा कात्यायन और पतञ्जलि के विचार में उपर का भाग चुकी है। वाजप्यायन के जाति पदाथदत्तान के पक्ष में नामजाति आश्रयानजाति कारक त्रियाजाति सख्याजाति गुणजाति आदि के रूप में मन्व जाति-स्वभावस्था उपपन्न हो जाती है। इसका संकलन पहल किया जा चुका है और आगे भी उन उन प्रकरणा में प्रसंगगत किया गया है। जाति के त्रिपक्ष में 'यास्मिन् दक्षिण की दृष्टि से कुछ विशेष वाद हैं उनमें मुख्य हैं—  
गण जाति और सत्ता जाति। इन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

## शब्द जाति

किसी आचार्य के मत में शब्द का वाच्य शब्द का स्वरूप है। स्वरूप को ही दत्तानभेद से स्वा जाति कहा जाता है। उसी को गणजाति शब्द से भी कहा जाता है। गो गण से वाच्य गो शब्द में रहने वाली गो गणदत्त जाति है गोत्व नहीं। पहल गण अपने रूप को कहा है अथ वाद में सामने आता है। गणत्व में 'वद्धि गणत्वस्वरूप निरूपण है वह शब्दों के स्वरूप का प्रत्यायक है। इसी तरह अग्नि गण भी अपने स्वरूप का प्रत्यायक है। जो गण के स्वरूप की चर्चा की जाती है सत्ता और सत्ता का भेद के रूप में ग्रहण किया जाता है। एगी दत्तान में दा गण मान जाते हैं। श्रूयमाण और प्रतिपाद्य। प्रतीयमान भी दा हात में सम्बन्ध प्राप्त करत वान और वार्या। इसलिए अग्नि गण उच्चरित होकर अग्निशब्दमय अथ सामने लाता है। अग्निगणमय अथ स अग्नि गण अथवान् होता है। दाना में अभेद है। इसलिए अग्नि गण अग्निगणमय अथ नो निमी दूसरे अग्नि गण का अभिव्यक्त बनाने पर तु यथुति के आधार पर अग्निगण

१. राय नाशयण में प्रथमे सत्तान् नही है—यत्तु भूत शब्द उपमाधर्तित सत्ताय मत्तामामाय ।। गण नामार्थान्तरान्धोरमान निरदिष्ट सामान्यभा सामादभूतभिति। तत्र। सामान्यभूत यत्तम अथैतय वेन प्रगतय मत्ताय कारणान्गात्—यत्निरन्तर, एतन्नत।

के सनाभाव का प्रतिपादन करता है। इस तरह सना-मजिसम-घ गकिनभेद का आधार पर कल्पित शब्द भेदाश्रित होता है। प्रत्यायक शब्द का उच्चारण परायण होता है। जिसके लिए शब्द का उच्चारण किया जाता है वह उसे वायु में नियुक्त करता है। उच्चारण (शब्द) का यह स्वाभाविक धर्म है कि वह परमत्र ज्ञान है। इस आधार पर सभी प्रत्याय्य क्रिया के साधन मान जाते हैं। इसलिए जो शब्द शब्द के अभिधेय रूप में अवस्थित रहता है उनके उच्चारण में भी उसमें भिन्न अर्थ रूप की कल्पना करनी पड़ती है। यहाँ दो तरह के विकल्प हैं। कुछ लोग मानते हैं कि अभिधान का आवरण होता है। वह अपने अभिधेय से च्युत नहीं होता है। यह प्रत्याय्य है। यदि पूछा जाय प्रत्याय्य क्या है तो किसी दूसरे शब्द द्वारा उसे बनाया जाना है। वही तरह शब्द का भी प्रत्यायन होता है। शब्द का वाच्य शब्द के प्रतिनिधित्व का दूसरा नहीं होता इसलिये शब्द का ही आवरण होता है। इसी दृष्टि में अनुकरण शब्द में और सना शब्द में भेद स्पष्ट होता है। उच्चारण दत्ता में अनुकरण अभिधेय जाना है। सना का अभिधेय प्रत्याय्य ही होता है उच्चारण नहीं। अभिधेय अभिधेयस्वरूप का छोड़कर अभिधायक नहीं जाना। समझने का भी कुछ ऐसा ही मत है। उहाँ कहा है —

न हि स्वरूप शब्दानां गोपिण्डादिवत् कारणे सन्निविशते । तत्तु नित्यमभिधेय  
भेदाभिधानमनिवेशे सति तुल्यरूपत्वादसन्निविष्टमपि समुच्चारणवना  
वसोषते ।  
—वाक्यपनीय १।६६ हरिवृत्ति में उद्धृत

अथान शब्द का स्वरूप सना अभिधेय ही रहता है। जो जिसका अभिधायक जाना है वह उनके कारण में सन्निविष्ट माना जाता है। शब्द का स्वरूप अमनिविष्ट है। किंतु तुल्यरूप के कारण सन्निविष्ट सा जान पड़ता है।

इस दृष्टि पाठिना पर भन हरि न शब्द ज्ञानि की पतिष्ठा की है। शब्द के स्वरूप के विषय में भी वनिशरो में मतभेद था। कुछ के अनुसार शब्द का स्वरूप ग्राह्य जाना है चान्य जाना है प्रत्यायक जाना है। अपने विपरीत दूसरे वृत्तिकारों ने माना है कि शब्द का स्वरूप ग्राह्य जाना है चोय जाना है प्रत्याय्य जाना है —

इह केचित् वक्तिकारा पठन्ति—स्वरूप शब्दस्य ग्राह्य भवति चोत्य प्रत्याय्य  
वमिति । अपरे तु स्व रूप शब्दस्य ग्राह्य चोत्य प्रत्याय्यमिति ।

—वाक्यपनीय १।६६ हरिवृत्ति

जानिवाणी आचार्यों के अनुसार शब्द ज्ञानि में ही अपने स्वरूप का पना है और उगा रूप में वह शब्दस्य व्यक्ति का प्रत्यायन जाना है। अतएव सभी शब्द सबप्रथम अपनी जानि स्वाज्ञानि का अभिधान करते हैं। अपनी स्वज्ञानि ही शब्द का अपना असाधारण रूप है। चानिदकार न भी उ वा शब्दज्ञानार्थके मप्रथम<sup>१</sup> वर शब्दज्ञान अथपिज्ञान का समयन क्रिया है।

अथवा प्राथम्य, हेनाराज के अनुमार, सम्बन्ध व्युत्पत्तिकाल की अपना स है। सम्बन्ध के व्युत्पत्तिकाल में अथ जाति से सम्बन्ध नहीं रहता गन् जाति से रहता है। गन् जाति का सबसे प्रथम ध्यान में रखकर विभक्ति अन्ति का विनियोग होता है। अतः शब्द सबसे प्रथम अपनी शब्दजाति का अभिधान करता है। यही गन् जाति स्वरूप गन् से और स्व जाति शब्द से शास्त्र में वर्णित है। शास्त्र में जिन शब्दों का स्वरूपपरक निर्देश है वही अपन स्वरूप के प्रत्यायक होते ही हैं जिनका अर्थपरक निर्देश है वही गन् भी सबसे प्रथम अपन स्वरूप का ही सामने लाता है। हेनाराज के अनुमार जो गन् व्युत्पत्ति हैं वही गन् में अविनाश भाव से अवस्थित शब्द जाति के ही प्रत्यायक हैं। जिन गन् के उच्चारण से अथ अत्यन्त गीघ्र उपस्थित हो जाते हैं शब्द के स्वरूप के साथ ही जहाँ अर्थपरिधान होता है वहाँ भी कम रहता है और शब्दजाति का प्रथम उच्चारण होता है अथजाति का वात्त में होना है क्योंकि व्याकरणदशक में अथ शब्द के विधान हैं। इसलिए शब्द और अर्थ में तात्त्विक भेद न होते हुए भी और शब्द और अर्थ के साथ साथ अवभास होते हुए भी उनमें एकत्व है। शब्द अवभास पहले अर्थ अवभास वात्त में होता है यद्यपि सूक्ष्म काल के कारण क्रम का अवधारण नहीं होता।

अथवा सम्बन्ध के व्युत्पत्तिकाल में गी गन् के उच्चारण से गी अर्थ में अर्थ रूप में शब्द और अर्थ में अर्थ का अध्यारोप किया जाता है। जैसे गी वाहीक में किया जाता है। अथवा सामानाधिकरण्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह अध्यारोप क्यों करता है? इसके उत्तर में हेनाराज की मायता है कि जिस वाच्यवाचक भाव अनादि हैं वही ही अध्यारोप भी अनादि है अपौरुषेय है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दूसरे दार्शनिकों ने विशेषकर धर्मकीर्ति ने इसका खण्डन किया है। व्याकरणों के कहने का अभिप्राय यह है कि अध्यारोप पुरुष की इच्छा पर नहीं होता। पुरुष की इच्छा से जिस किसी शब्द का जिस किसी अर्थ के साथ अध्यारोप मानने से लोक-व्यवहार अर्थवस्थित हो जायगा। इसलिए पुरुष की इच्छा न मानकर लोकानुगत इच्छा प्रत्येक दशा में माननी पड़ेगी। लोकानुगत इच्छा को ही, व्याकरणदशक में व्यवहारनित्यता माना जाता है। इसलिए व्यवहारनित्यता के आश्रय से गी वाहीक आदि स्थलों में अध्यारोप पुरुष इच्छावृत्त न होकर लोकवृत्त है। दूसरे गन् में वह व्यवहारनित्यत्व के आधार पर अवस्थित है। इस अर्थ में वह अपौरुषेय है।

गन् जाति की अभिव्यक्ति कम होती है? शब्द वर्णसमूह है। प्रत्येक वर्ण में जाति की अभिव्यक्ति नहीं होती जाती। वर्ण भी असमयसमयभावी होता है उनकी अभिव्यक्ति में क्रम होना है इसलिए वर्णों द्वारा जाति अभिव्यक्ति संभव नहीं है। इसका उत्तर भृहृरि हेनाराज आदि न वस्तुतः दशक के क्रम के आधार पर दिया है। वर्णविक दशक में उत्त्प्रेषण अव्ययपण अन्ति कम हैं। उत्त्प्रेषण क्षण का भ्रमण क्षण से सात्त्विकता भेद अवगत नहीं होता इसलिए उत्त्प्रेषण क्षण अकाल नियत जाति के अभिधान से अपन प्राप्त असमय पाता है और दूसरे क्षण का अपेक्षा रखता है। उसमें भ्रमणपण से कोई विरोधता नहीं है क्योंकि आरम्भ में ही उत्त्प्रेषण क्रिया

क कता का भावना प्रयत्न से जनित है। इसी तरह किसी म मन म 'गो' शब्द का उच्चारण 'ग' यह भावना ज'प प्रयत्न यद्यपि गान, गगन 'ग' के प्रयत्न से भिन्न है हतु भेद के कारण ग ग म भी भेद है फिर भी माहृश्य के कारण इस भेद का अवधारण कठिन है। इसलिए वणध्वनि व्यंजक है किन्तु उमना ध्यजन अस्पष्ट है, उमका अवधारण ठीक से नहीं हो पाता आव्रतमान, दुहृगाय जान पर भी मामान विरोप रूप से विनांतर अभिव्यक्ति नहीं कर पाती है। जब वह अवयवमन्तान क्रम से उपलब्ध होता है वह 'ग' 'द' जानि कहलानी है और मय व्यवहार उससे परिचालित होते हैं। 'ग' 'द' मूकत उच्चारण से अथ अवभास उतना नहीं करता जितना बार-बार दुहृगाने पर करता है। इसी आधार पर स्फाटवादी वणस्फोट पदस्फाट आदि की कल्पना करते हुए वणपदवाक्यविषया प्रयत्नविशेषतास्था ध्वनयो वणपदवाक्याख्यान स्फोटान पुन पुनराविर्भावयो बद्धिव्यवधारोपर्यंत

—वानस्पदीय १।८३ हरिवक्ति।

इसलिए प्रथम अक्षर से कवन जाति का अवभास मात्र होता है आगे वाले वर्णों से स्फुट स्फुटतर रूप से जाति का निर्धारण होता जाता है और इस तरह मस्कार विरोप बन जाता है जिसके आधार पर अभिव्यक्ति विशेष उसी तरह से गीघ्र ग्राह्य हो जाती है जम रत्नपरीक्षक गीघ्र ही रत्नतत्त्व का ममम्क लेत है। वपाकरण के लिए स्फाटतत्त्व रत्नतत्त्व है। शब्दतत्त्व अन्तत निरवयव है और यह मवप्रथम स्वजानि का वाचक होता है। उसी का शब्दजाति कहा जाता है। जिस तरह रत्न गुण के मन्वच से मन्व भी लाल कहा जाता है वस ही शब्दजाति मय जाति के व्यपदेश के लिए हानी है। रत्नगुण और वस्तु की तरह से शब्दजाति और अमजाति से मन्वच है। अवश्य ही यह मन्वच यहा योग्यतालक्षण माना जाता है। सभी 'ग' 'द' मभी अर्थों के माय योग्यतालक्षण सम्प्रथ से सम्प्रद्ध हैं। जैसे गो शब्द मय भिन्न भिन्न अर्थों से व्यवहृत होता है किन्तु प्रकरण आदि के सहारे उमके अर्थ का अवच्छेद (निर्धारण) किया जाता है उसी तरह 'ग' 'द' जाति से शब्दव्यक्ति अभेद रूप से उपस्थित होती है अर्थजाति के द्वारा उमका निवारण किया जाता है। यह क्रम है। किन्तु प्रत्यायन से अनमता रहती है। 'ग' से चटुरित आशान होने पर भी अर्थ के स्वरूप की हानि नहीं होती। उस प्रकाश से आशान्त घट के स्वरूप का निराधान नहीं होता। शब्द स्वरूप से उपरका अर्थ के स्वरूप का लोप नहीं होता। 'ग' और प्रकाश दोनों प्रकाश मात्र है। 'ग' जाति अर्थजाति से एक होकर जाति काय से मपादन करती है यह बाजप्यायन का दशन है। 'ग' से रहने वाली 'ग' जाति की तरह 'ग' जाति शब्द में भी रहने वाली 'ग' जाति है। एक ही 'ग' जाति प्रवाचनभेद से भिन्न होकर अभेदप्रत्यय का निमित्त होता है। फलत उम में भी 'ग' जाति मानी जाती है। इस तरह अन्वय दान के आधार पर 'ग' जाति की व्याख्या हताश्रय से की है।

भन हरि न अय्याय का आशय न कर भी जाति पदाय की व्याख्या प्रस्तुत की है। 'ग' के द्वारा विगुह अर्थ जाति का अभिधान होता है। इस पं

सभी जाति का अभिप्राय होने है। जाति का भी जाति का ही वाच्य होता है। व्याख्यान में सामान्य में भी सामान्य माना जाता है। वान शीमाय धारि प्रत्यय में ग भेद मात्र दिश्य धारि धारित में भी जाति का वाच्यता की है। व्याख्यान का म जाति प्रविषा धारितान् म भिन्न रूप म ग्राह्य है। विद्यायां म धनुः युगिभ्यः प्रया को जाति माना गया है। धनुःशब्द का म बुद्धि म प्रतिभासमान धारण प्रथम रूप म माना जाता है। ह्य धीर विरूप म धर्म क धर्म्याय म उगा का सामान्य कहा जाता है। धारि क रूप म भी जाति की वलना भवति न का है। एक ही धारि ह्यशब्द क म म ब्रह्मधारि मर्यादामय क रूप म है। ध्वजान् क निर जाति धारि क रूप म उगी का धर्म्याय किया जाता है। मय धीर धर्म्याय भाष्य मयन है। जा गम्य है क जाति है। जो धारण है धर्म धारि ३ (वाच्यपदीय २ जातिममुद्गा ३२)।

### सत्ताजातिवाद

सत्ता जाति है। इस बात का मूल महाभाष्य में मिन जाता है।

स सत्त बुद्ध्या निर्या सत्तामध्यवर्ति

—महाभाष्य २। १२३

‘स सत्ता पदार्थ व्यवधरति

—महाभाष्य ५। १६४

धारि वाक्य में इस वाद की भन्व मिन जानी है। किन्तु इस पर अधिक् प्रकाश भर्तृहरि ने डाला है और यह बात प्राय उही क नाम से विख्यात है।

सत्ता भिन्न भिन्न पदार्थों में भिन्न होकर सम्बन्धित भेद क आधार पर जाति कहा जाती है। शब्द की सत्ता अस्वय है। उससे अनिरिक्त शब्द कोई वस्तु नहीं है। गो की मत्ता गाय है। इस तरह इत्य की भी मत्ता इत्यत्व है। सभी का सत्ता मात्र के वाचक है। मत्ता जाति है। वही महासामान्य है। महासत्ता है। अभाव का भी बुद्धिधरित आवार से निरूपण होता है। सत्ता से उभवा भी सम्बन्ध है। वही प्रातिपदिकाय है। प्रातिपदिकाय सत्ता उक्ति प्रसिद्ध है। वह नित्य है। महान आत्मा है। पाणिनि न त्व और तल प्रत्यय से उसी का निर्णय किया है। य प्रत्यय भाव में होन है। गच्छा के प्रवृत्ति निमित्त को भाव कहा जाता है। का का भाव सत्ता क अनिरिक्त और क्या हो सत्ता है। पदभाज विवारा की यानि भी वही है। प्रमाणाशक्ति, कालाशक्ति सबका स्रोत वही सत्ता है (वाच्यपदीय ३ जाति ममुद्गा ३३ ३६)। मत्ताशब्द का विवेचन भर्तृहरि ने सारय आदि दशना का दृष्टि में भी किया। भर्तृहरि को यह मली है कि एम प्रमग पर दूसर दशना की मायनामा का संकेत करते चलते हैं। ह्यशब्द न इस प्रमग का साराण वा किया है—सभी का वाच्य सत्ता है। फलत जाति पदार्थ की यानि उपपन्न हो जाती है। यद्यपि भव-हरि न द्रव्यपदार्थ के विवेचन में ब्रह्मद्रव्य को उपाधिभेद से भिन्न भिन्न कहा है फिर भी तात्पर्यभेद से अवस्थाभेद समझना चाहिए। जातिपदार्थ पक्ष में जाति रूप में

सबत्र ब्रह्म विवर्णित है, द्रव्यपदाय पञ्च म ब्रह्म परिनिष्ठित रूप म विवर्णित है—यह दार्शनिक विकल्प है। वस्तुतः परमाय रूप म दाना पञ्चा म अनुगत एव ही तत्त्व है। वह सत्ता है।

## द्रव्य

व्याकरण ज्ञान म वह सब कुछ द्रव्य माना जाता है जिम इद तत कहा जा सक। अथान इद तत मवनाम म वाच्य वा नाम द्रव्य है। द्रव्य क इस रूप पर तथा गुणा धार द्रव्य के रूप म पतजलि आदि के मन वा उल्लेख यथावन्म आग किया गया है। वाक्यपनीय म द्रव्य समुद्ग एव स्वतन्त्र दशन के रूप म है जा मत्रमे मिला हुआ है, सबम भिन्न है। द्रव्य क दो भेद ह व्यावहारिक और पारमार्थिक। पारमार्थिक रूप का दशनभेद से निर्देग भत हरि त वा किया है

आत्मा वस्तु स्वभावश्च शरीर तत्त्वमित्यपि ।

द्रव्यमित्यस्य पर्यायस्तच्च नित्यामिति स्मृतम् ॥

—वाक्यपनीय द्रव्य समुद्गे १ ।

आत्मा वस्तु स्वभाव शरीर तत्त्व न मत्र रूप म द्रव्य का उल्लेख उन जिन तत्र हा चुका था। भत हरि के अपन सिद्धान्त म मय वस्तु का अवधारण अमय वस्तुआ के द्वारा किया जाता है अमयोपाधिक शत्रु से सत्य का निरूपण होता है। यह ससार का वचित्रय ह। उपलक्षण द्वारा सत्य का निभास सदा देखा गया ह। वाक्य शत्रु दवदतके गह का पूण रूप स जता ज्ञाना है। अमयोपाधिक कुण्डल आदि क पीछे सत्य गुद्ध स्वण निहित है। जम नाडिका मे काल का अवच्छेद होता है वम नी आकार म मव्याप्त गति का निर्धारण होता है। वस्तुतः तत्त्व और अतत्त्व म भेद नहीं है। अविवक्षित तत्त्व विकल्प रूप म, अविभाज्य वाच्य विभक्त रूप म प्रतीत होता आया है।

आकृति के विलान हो जान पर भी जो अवस्थित रहता ह उन ही सत्य कहा जाता ह। वही पारमार्थिक मय है। व्याकरण दशन की पश्यतो वाक्य उमी का प्रतीक है सथित च पश्यतोऽपि परावाक शब्दब्रह्ममपीति ब्रह्मप्रत्यक्ष शब्दात् पारमा धिकात् न भिद्यते—हेलाराज द्रव्यसमुद्गे १।

दम प्रमग के भत हरि के अनक वाक्य नागाजु न की गली पर है, जम न तदस्ति न तत्रास्ति न तदेक न तत पथक ।

१ ससष्ट विभक्त वा विकृत न च नाशथा ।

—द्रव्य समुद्गे १५ ।

अस्तु व्याकरण दशन म जसा नि कहा जा चुका है द्रव्य क पीछे भी किमी शाश्वत गवित क दखन की चेष्टा की गई है। हलाराज कथट आदि न उम ब्रह्म नाम दिया है।

१ हेलाराज ने परावाक को अलग न मानकर उमे पश्यतो वरूप माना है।



## आख्यात और आख्यातार्थ

आख्यात व श्रवणा साम वह जात ह और अपि भास्वाज हे

मारद्वानाम्माख्यात भागध नाम भाष्यते ।

वाग्निष्ट उपसर्गसु निपात काश्यप स्मृत ॥<sup>१</sup>

अग वद गान श्रुता हे रि आख्यात का सवप्रथम प्रयोग पारिभाषिक रूप म आख्यात ग किया था । अगवा सवप्रथम प्रयोग गोपथ ब्राह्मण म मिलता है

ओषार वच्छाम को धातु, कि प्रातिपदिकम कि नामाख्यात, कि लिंग कि वचनम का विभक्ति व प्रत्यय इति ।<sup>२</sup>

पाणिनि आख्यात गत् का प्रयोग पारिभाषिक रूप म नहीं करत । अष्टाध्यायी म वद आख्यातापयोग (१।४।२६) और द्वयजद्ब्राह्मणक प्रथमाध्वर पुरश्चरणा माख्याताट्टा (४।२।७२) इन सूत्रा म आख्यात गत् का प्रयोग हुआ है । परंतु पाणिनि व पूर्ववर्ती आचार्य आख्यात गत् का प्रयोग पारिभाषिक रूप म करत थे । वाग्जस्मिन् सूत्रा म आख्यात गत् पारिभाषिक रूप म मिलता है । जस—

धातु साधने दिशि पुरुष चिति तदाख्यातम ।<sup>३</sup>

का वाचन न आख्यात माधयनारकविशेषण वाक्यम जस वातिवा म और महा भाष्यकार न त्रियाप्रधानमाख्यातम (५।३।६६) जस वाक्या म आख्यात गत् का पारिभाषिक अर्थ म प्रयोग किया है । आख्यात गत् का मूल अर्थ जो कहा जा चुका है ।

आख्यात गत् की व्युत्पत्ति आख्यायतजन इम रूप म की जाती है

आख्यायते नेन त्रिया प्रधानभूतेत्याख्यातरितङ्गत्, कृत्यलुटो बहुलम इति करणत् स्वनिकायप्रसिद्धिरेषा । टुगाच्चाप न आख्यात की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या यो की है

१ वानसनेयि प्रातिशाख्य, उ वटभाष्य, पा५

२ गोपथ ब्राह्मण प्रथमप्रपाठक, १।२४,

३ वपभ न वानयपत्याय १।२२ का टाकार्म तसे काशाट्टनन का सूत्र कल कर उद्ध त किया है । अभिनवगुण न त दशकप्रबंध म । विवित्त्विकर्मिणी, त्रितीयभाग, पृष्ठ २६५ पर इस सूत्र को उद्ध त किया है ।

ग्रन्थात्तेऽनेन गुणभावेन वतमाना अनेकारकप्रविभक्तता स्फुरमाणैव प्रधानद्रव्यभावामिष्यते युमुखीभूता क्रिया तस्याद्वय प्राधान्येन वतमानो भाव स्वात्मलानप्रधान इत्याद्यातम ।

अथवा

ग्रन्थात्ते स्त्रीपुंनपुंसकानि क्रियागुणभावेन वतमानायनेन क्रिया च तेषामुपरि प्राधान्येन वतमानेत्याद्यातम ।<sup>४</sup>

चन्द्रकीर्ति के अनुसार भू आदि के रूप जिमसे व्यक्त हो वह ग्रन्थात् है अथवा जो वक्ता के व्यापार को व्यक्त कर वह ग्रन्थात् है

ग्रन्थात्ते कथ्यते अर्थात् निष्पाद्यते स्वादीना रूपाणि येन तदाद्यातम । अथवा ग्रन्थात्ति आचक्षते क्तु ध्वरिपरमित्याद्याता ।<sup>५</sup>

नधुयामकार के अनुसार क्रिया का प्रधान रूप में अथवा मात्र्य अथवा का व्यक्त करने वाली के रूप में होना ग्रन्थान है

ग्रन्थात्तेऽनेन क्रिया प्रधानत्वेन साध्यर्थानिधायितया वेत्याद्यातम ।<sup>६</sup>

भत हरि के पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा किये गये ग्रन्थात् के कुछ उभय निम्न लिखित हैं

भावप्रधानमाद्यातम । पूर्वापरीभूत भावमाद्यातेनाद्यटे ।

—निरुक्त ११६, ११

तदाद्यात येन भाव सधातु ।—ऋषिप्रतिशाह्य १।२।१६ ।

क्रियामु बहु बोधमिसधितो य पूर्वापरीभूत इहैक एव ।

क्रियामिनिव त्तवशेन सिद्ध ग्रन्थात्तत्त्वेन तमयमाह ॥

—बहद देवता १।४४ ।

आविष्टलिंग ग्रन्थात् क्रियावाचि

—कौटिल्य अथशास्त्र २।१०।२८ ।

येषा तूत्पत्तावर्थे स्वे प्रयोगो न विद्यते तानि ग्रन्थात्तानि ।

—मीमांसा सूत्र २।१।४ ।

क्रियाप्रधानम ग्रन्थात्तम ।

महाभाष्य ५।३।६६ ।

उपयुक्त सभी उभयों में ग्रन्थान का क्रियावाचकत्व समान है । वाक्यपनीय

में भी जहाँ क्रिया ग्रन्थात्तत्त्वं निबधना (वाक्यपनीय १।१३ हरिवर्ति) आदि स्थला में ग्रन्थान का क्रियाप्रधानरूप ही अधिक वर्णित है । क्रिया के स्वरूप पर आग विचार किया जायगा ।

ग्रन्थात् चार रूपा में लखा जाता है—कर्त्ता में भाव में तम में और कर्म-कर्त्ता में । पक्षति जैसे शब्द में कर्त्ता में । भूयते पक्ष्यते जन्म शब्दों में भावत्तम में ।

४ दुर्गाचार्य, निरुक्त-टीका १।१।६

५ श्री चिन्मोगरू चन्दा द्वारा ऐकनिकत्व त्म एतत् ऐकनिक आद्य मन्त्रेण आभर, प्रथमभाग, पृष्ठ ६६ पर उद्धृत

६ महा, पृष्ठ ६८

## आख्यात और आख्यातार्थ

आख्यात व दवना साम बह तात ह और अपि भारद्वाज है

भारद्वाजकमार्यात भाषण नाम भाष्यत ।

वाग्निष्ठ उपसर्गस्तु निपात आख्यात स्मृत ॥<sup>१</sup>

इसमें यह जान पड़ता है कि आख्यात का सर्वप्रथम प्रयोग पारिभाषिक रूप में भारद्वाज ने किया था । इसका सर्वप्रथम प्रयोग गोपथ ब्राह्मण में मिलता है

ओकार पक्ष्याम को धातु, कि प्रातिपदिकम् कि नामाख्यात, कि विग, कि वचनम् का विभक्ति क प्रत्यय इति ।<sup>२</sup>

पाणिनि आख्यात शब्द का प्रयोग पारिभाषिक रूप में नहीं करते । अष्टाध्यायी में बचल आख्यातार्थयोग (१।४।२६) और द्वयजदब्राह्मणक प्रथमाध्वर पुरस्चरणना माख्याताट्टा (४।१।७२) इन सूत्रों में आख्यात शब्द का प्रयोग हुआ है । परन्तु पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्य आख्यात शब्द का प्रयोग पारिभाषिक रूप में करते थे । वाग्वृत्तम् सूत्रों में आख्यात शब्द पारिभाषिक रूप में मिलता है । जैसे—

धातु साधने दिशि पुरुषे चिति तदार्यातम् ।<sup>३</sup>

आख्यात में आख्यात माध्यपकारवर्धिवर्धण दास्यम् जम् वातिवा म और महा भाष्यकार ने किया प्रयोग आख्यातम् (५।३।६६) जम् वाच्यम् में आख्यात शब्द का पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग किया है । आख्यात शब्द का मूल अर्थ जो कहा जा चुका है ।

आख्यात शब्द की व्युत्पत्ति आख्यातत्वन इति रूप में की जाती है

आख्यायते नेने रिया प्रधानभूत-याख्यातस्तिङ्गत्त कृत्यतुगे बहुलम् इति करणत्त स्वतिकायप्रसिद्धिरेषा । दुगात्वाप न आख्यात की व्युत्पत्तिमात्र-यास्या या नी ह

१ वाग्निष्ठाव प्राविशाख्य, उ वभाष्य, ८।।

२ गोपथ ब्राह्मण प्रथमपाठक, १।२४,

३ उपम ने वाग्निष्ठाव १।२ का ट का म नस काशाङ्गन का सूत्र बह कर उद्ध न किया है । अभिनवगुप्त ने भाष्यप्रथम । विविधवर्धनी विनायभाग, पृष्ठ २६५ पर इस सूत्र को उद्धृत किया है ।

ग्राह्यायतेऽनेन गुणभावेन वतमाना अनेककारकप्रविभक्तता स्फुरमाणैव प्रधानद्रव्यभावामिद्वयवत्पुंमुखीभूता त्रिया तस्याश्च प्राध्यायेन वतमानो भाव स्वात्मलानप्रधान इत्याद्यातम ।

अथवा

ग्राह्यायते स्त्रीपुंनपुंसकानि क्रियागुणभावेन वतमानायनेन क्रिया च तेषामुपरि प्राध्यायेन वतमानेत्याद्यातम ।<sup>४</sup>

चन्द्रनीति के अनुसार भू आदि के रूप जिमसे व्यक्त न बह ग्राह्यात है अथवा जो वक्ता के व्यापार को व्यक्त कर वह ग्राह्यात है

ग्राह्यायते कथ्यते अर्थात् निष्पाद्यते भवादीना रूपाणि येन तदाह्यातम । अथवा ग्राह्यायति आचक्षते कतु र्वापारमित्याद्याता ।<sup>५</sup>

उद्युयामवार क अनुसार क्रिया का प्रधान रूप म अथवा भाव अथ को व्यक्त करन वक्ता के रूप म होना ग्राह्यात है

ग्राह्यायतेऽनेन क्रिया प्रधानत्वेन साध्यर्थानिधायितया वेत्याह्यातम ।<sup>६</sup>

भत हरि के पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा त्रिय गये ग्राह्यात क कुछ लक्षण निम्न लिखित हैं

भावप्रधानमाह्यातम । पूर्वापरीभूत भावमाह्यातेनाचष्टे ।

—निरक्त ११६, ११

तदाह्यात येन भाव सधातु ।—शुक्लप्रातिशाह्य १।२।१६ ।

क्रियामु बहु वीप्वनिसश्रितो य पूर्वापरीभूत इहैक एव ।

क्रियाभिनिव त्तवशेन सिद्ध ग्राह्यातशब्देन तमयमाह ॥

—बृहद् देवता १।४४ ।

ग्राह्यिष्टालिग ग्राह्यात क्रियावाचि —कौटिल्य अथशास्त्र २।१०।२८ ।

येषा तूत्पत्तावयौ स्वे प्रयोगो न विद्यत तानि ग्राह्यातानि ।

—मीमांसा सूत्र २।१।४ ।

क्रियाप्रधानम ग्राह्यातम ।

महाभाष्य ५।३।६६ ।

उपयुक्त सभी लक्षणा म ग्राह्यात वा क्रियावाचकत्व ममान है । वाक्यपनीय म भी 'जमाति क्रिया ग्राह्यातप' निरुधना (वाक्यपनीय १।१३ हरिवर्ति) आदि स्थला म ग्राह्यात वा क्रियाप्रधानरूप ही अधिक वर्णित है । त्रिया के स्वरूप पर आगे विचार त्रिया जायगा ।

ग्राह्यात चार रूपा म ग्ता जाता है—कर्त्ता म भाव म, रम म और रम-कर्त्ता म । पचति जसे ग्ता म कर्त्ता म । भूयत पच्यते जैसे ग्ता म भावम म ।

४ दुर्गाचर्य, लिम्बन-टीका १।१।६

५ श्री त्रिशाराङ्ग चर्जा द्वारा टेकनिकल र्मम एग्न उकनिक आष मन्तुत ग्रामर, प्रथमभाग, पृष्ठ ६६ पर उन्भूत

६ बर्षा, पृ ७ ६८

घोर दण्डा मयमय जग म्याना म कमजता म । इत चाग म्या म मरुत क मय परिचित हा म इत्य धप्रथा हा है विरा ही प्रथा हा है । उम विरा को कथा हुआ घोर मय उम विरा म मयमान हा है म्या म्यात म्याता का मता गात है ।

### आख्यात के अर्थ

प्राति जम म्याता क उच्चारण म मरुत म्याो की प्रतीति हात है । ताक म्याि विरा की प्रतीति हाती है । यामात म्याि काम की प्रतीति हाती है । प्रथम मध्यम म्याि पुरुष की प्रतीति हाती है पचास म मरुत पुरुष या पचास म सुप्रमथ की घोर पचासि म मरुत की । कतू म्यािमरुतामिथ ल ण म उपग्रह की प्रतीति हाता है पचास मरुत म्याि म्यामनप क उच्चारण म कतू म्याि पल का प्रतीति हाता है घोर पचासि यज्ञि म्याि मरुतमरुत क प्रथम म मरुतामिथ की प्रतीति हाती है । माधन की भी प्रतीति हाती है प्राति म मरुत पचास म मरुत की । मरुता भा प्रतीति हाती है । प्राति सणाय पल म मरुत मरुत म मरुत म्याि । मरुत विरा काल पुरुष उपग्रह माधन घोर मरुता य मरुतात म मरुत मय मान जान है । फलत इह हा व्याकरणमात म मरुताताथ कय जाता है ।

त्रिया काल पुरुष उपग्रह माधन घोर मरुता य मभा मरुतात क मय है इम कोई विवात नहीं है । सभी व्याकरण म मरुत का मानत है । मावधातु क यक २।१।६७ मरुत क भाष्य म पलञ्जि न विरा है

तिडमिहितन भावेन कालपुटपोपग्रहा अनिध्यज्यते तिडमिहितो भावा कर्त्ता सप्रयुज्यते ।

मरुताता रूप २।१।६६ क भावविवरण म कय न भी मरुतात क क्रिया काल उपग्रह म्यादि मय मान है

कालसह्यासाधनोपग्रहामिधानेप्याह्यातस्य क्रियाप्रधानत्वावगम ।

सी तरह महाभाष्य क क पुनस्तिथ पर लिपणी करत हुय कय न लिखा है कि काल माधन, मरुता पुरुष, क्रिया घोर उपग्रह य तिथ है । (कालसाधनसह्या पुरुष क्रियोपग्रहसहितइय —महाभाष्यप्रदीप २।२।१८) ।

मत हरि न भी विरा काल पुरुष म्यादि हा पट्टण मरुताताथ क रूप म क्रिया है

प्रवत्तिज मादि क्रिया आह्यातपदनिबन्धना । तस्या प्रवत्तिरिति समाख्याता यास्तस्य साध्यस्य साधनाकाक्षता क्रमरूपोपग्रहकालाभिर्ग्यक्तिहनुत्त्वम ।

—वाक्यपदीय, हरिवत्ति १।१३ ।

क्रियासाधनकालादयोर्जपि षडिचत कथञ्चिदभिधेयत्वेन प्रविभक्ता ।

—वाक्यपदीय, हरिवत्ति १।२६ ।

दुन उच्चारणाम स्पष्ट है कि वाक्यपदीयकार क मत म मरुतात के उपपु कत ही मय है । विरा काल, पुरुष म्यादि का मरुताताथ के रूप म ग्रहण म्यावकारिक भी

वर्त हैं। अभिनवगुप्त ने स्पष्ट ही लिखा है

तिङ्-तपदानुप्रविष्टस्यापि अथकलापस्य कारककालसंश्लेषोपग्रहलक्ष्यस्य मध्येऽ-  
वप-प्रतिरेकाम्ना सूक्ष्मदत्ता भागगतमपि व्यजकत्व विचार्यम् ।<sup>७</sup>

माधन कान आदि का आख्याताय के रूप में मन्त्र प्रथम सकेत का गृह्यस्तन सूत्र में मिलना है। एक सूत्र का रूप है— धातु माधन दिक्षि पुंस्त्वे चिति च तदास्यातम्। लिङ् निमित्ति विभक्तौ एत-नाम'। इस सूत्र के काशकृत्स्न व्याकरण के होने में वपम दव और अभिनवगुप्त के प्रमाण ऊपर दिये जा चुके हैं। यह सूत्र अत्यन्त प्राचीन है। इसमें प्रमाण यह भी है कि इस सूत्र में मर्या के अर्थ में चिति शब्द का प्रयोग हुआ है। दिक् का अर्थ क्रिया और काल है (दिक् शब्द न क्रियाकालश्चाच्यत वपम (पृष्ठ ४१)। आख्यातान् ग = का प्रयोग और आख्यात के अर्थ रूप में क्रिया, काल माधन पुंस्त्वे मर्या आदि का उल्लेख भी एक साथ हुआ गया है।

अप्युक्त आख्यातायों का व्याकरणद्वारा की दृष्टि से विवरण अगले अध्याय में वाक्यरूपीय के आधार पर किया जाएगा।

## क्रिया विचार

### आख्यातायों में क्रिया की प्रधानता

क्रिया आख्यातगम्य है यह पूरे के अध्याय में सिद्ध किया जा चुका है। आख्यातायों में क्रिया ही प्रधान मानी जाती है। महाभाष्यकार ने क्रिया प्रधानमाख्यात भवति<sup>१</sup> कहा है। यामकाय ने भी क्रिया आर माधन दाता का आख्यात का वाच्य मानते हुए क्रिया का ही उसका प्रधान अर्थ माना है<sup>२</sup>

आख्यातस्य यद्यपि क्रियासाधनञ्चोन्मय वाच्य, तथापि तस्य क्रियैव प्रधान मय ।<sup>३</sup>

यद्यपि जय पूछा जाता है केवल कया कर रहा है तो ऐसे प्रश्न का उत्तर क्रिया द्वारा ही दिया जाना है जम वह पवा रहा है (पचति)। एक पद उपात्त कारक की अर्थता भी क्रिया की प्रधानता दर्शाती है (एकपदोपात्ताय पेक्ष च क्रियाप्रधानत्वमनिधीयते महामाध्य प्रदीप 131:66)। श्रीहीन प्रवर्तित जस वाक्या में श्रीही द्रव्य के सस्कारक होने के कारण धवपात की अधिधानता है। अथवा यद्यपि अर्थ (द्रव्य) की दृष्टि से श्रीही की प्रधानता है फिर भी क्रिया के माध्य हान के कारण शब्द की दृष्टि से उसी की प्रधानता है न कि श्रीही की। भूत की अर्थता भविष्यकाल में हान वाता (भाव्य) ही

७ ध्वन्यालोक लोचन २:१६ पृष्ठ १५  
(धौल-वा मरकरण)।

१ मन्मानाय, ५:११:६६

२ वाशिका त्रिवर्णपरिचया ५:११, पृ० ५७

तिर न पत्रा ताता है अतिग मास्य प्रवस्था म हान व तारण वारण की अपणा व्यापारमयी क्रिया की प्रथाता मानी जाती है। अतएव अग दृष्टि म क्रिया म भा उर वर पत्र की प्रथाता है अति पत्र व तिल प्रथित गी है तिर भा पत्र की प्रथाता वस्तु की दृष्टि म है। व्यापार व व्यापार म ता क्रिया की प्रथाता की तिहित हानी है। अति पत्र म अग वर व पत्र का ग व द्वाग उरुय ग। हाता धनितु उगत तिर पत्रार का प्रवाग रगा पत्रा है। अर पत्र म उर म अति प्रथी की अभिधति हानी है ता उरम गुण शोर प्रथाभाउ का ग विचार गता है। पत्रि ग म अभिधत पाररूप पत्र शोर पाररूप क्रिया म क्रिया अध ही प्रथा है। पत्र उर म अध म प्रयुत पत्रा म भी पाररूप क्रिया की हा प्रथाता जान पडता है अति पत्रा का अध पार निरयत रूप म गामन घाता है। उर पात्र पत्र की गिद्धि व तिर ह। अग अभिप्राय म ह्य पत्र की घा ता विश की गीग गमभन है पत्रु यथाधन मागान रूप म ग व्यापार र द्वाग क्रिया का ही प्राधा य गिद्ध हाता है। तात म क्रिया का हा अनुष्ठान गता गता है पत्र ना उरुभामध्य म होता है। क्रिया का प्रधानता म ही वातयाध ता क्रिया व रूप म र्वाकान क्रिया जाता है। अता अति कारण जो गिद्ध रूप म हात ह साध्य क्रिया व गुणीभूत रूप म ही व्यवहत हात है। कम वा भी क्रिया व प्रति गुणभाव ही है। अता उर ही पत्र रूप म हाता है वहा उरकी प्रधानता पत्र की दृष्टि म अवश्य हानी है पर गत्र वहा भा क्रिया की ही प्रधानता रहती है। अतिग व्याप्याताथ माधन शोर क्रिया म क्रिया ही प्रधान है। मरया शोर पुरप भी माधन व आधय म क्रिया व उपरारी हात है अत व भी क्रिया की अपणा गुणभूत है। बाल शोर उपग्रह क्रिया व मागान उपकारक है। पत्र वे भी क्रिया व गुणभूत है। जहा भाव म उकार हाता है वहा क्रिया की प्रधानता सदा की अपणा होती ही है। वस्तुत जो सास्य रूप म है अनिव त है वह दूसरे का अग भाव (गुणीभूत) नहीं हा पाता है। क्रिया साध्य है। अत प्रधान है। इनीतिग भाप्य म क्रिया की अमत्या भेदाभाव इत्यका क्रिया वहा गया है। हलाराज व अनुमार म वावय म एक गत्र भेदाभाव का प्रसनपरक है न त्रि मर्या वाचक। अमत्वभूत हात व कारण क्रिया नि सरय हाती है अम मर्या सभव नहीं है (हेताराज वाचयपीय ३ क्रियासमुद्ग ८०)। अत साधन बाल पश्य सग्ता अति की अपेता क्रिया प्रधान हाती है।

### क्रिया अनुमेय होती है

क्रिया का प्र यक्ष नहीं हाता। वह अनुमेय मानी जाती है। यदि क्रिया न होती द्रय हा द्रय हाता तो फलजनकता का रूप ममभावा नी जा मरता। यदि पात्र शोर पाठ म कोई भेद न हो उनवे पत्र म भी भेद होना कठिन है। अतएव कारण व अतिरिक्त किन्तु कारण व अतिरिक्त नमस्वरूपवाती भिन्नलक्षण वाद वस्तु है मसा अनुमान करना पन्ता है। वही क्रिया है। महाभाष्य म भूवादया ज्ञातव १।३।१ सूत्र की याख्या म इस मवाद पद्धति से या यवत क्रिया गया है

क्रिया किस कहत ह ?

क्रिया इहा वा कहत ह ।

इहा किस कहत ह ?

इहा चष्म का कहत ह ।

चेष्टा किस कहत ह ?

चेष्टा व्यापार का कहत ह ।

आप तो केवल एक शक्ति के प्रत्यक्ष रूप कहत चले जा रहे ह । यदि अर्थ स्वरूप मानने नहीं लाते जिससे बात ही कि क्रिया क्या है ।

क्रिया एक एकी वस्तु है जो अत्यंत अपरिच्छिन्न (अपरिच्छिन्न) है उसका प्रत्यक्ष नहीं होता । परमाणुआ व पिण्ड की तरह क्रिया का पिण्डाभूत कोई रूप नहीं होता । बुद्धिस्थ गम की तरह क्रिया अप्रत्यक्ष होती है अथवा जैम कुम्भि म बाहर आय ग्य गम का प्रत्यक्ष जाना है वम क्रिया का प्रत्यक्ष नहीं होता । यह अनुमान म जानी जानी है । सभी साधना के रहते हुए कभी पचति का व्यवहार पाता है और कभी नहीं पाता । जिस मायने क रहते हुए पचति का व्यवहार होता है और जिसके न रहते स नहीं होता है वह अवश्य क्रिया है । अथवा श्यामतरप्राणिलक्षण काय म क्रिया रूप कारण का अनुमान जाना है । स्वप्न यहा था कुछ समय बाद पात्रिपुत्र म दिखाई देता है । उसके स्थानांतर जान म अवश्य कोई न कर्त्त व्यापार कारण है । उही क्रिया है । अतः क्रिया अनुमान म जानी जानी है ।

क्रिया के अनुमान म कुछ कठिनाइयाँ हैं । पहल प्रत्यक्ष के आधार पर सम्बन्ध ग्रहण हा तो अनुमान न संभवता है । फल और व्यापार म जयजनक भाव के प्रत्यक्ष जान के बाद ही कार्यकारण भाव का अनुमान संभव होगा । यहा जब प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति ही नहीं है क्रिया विषयक अनुमान भी संभव नहीं है । हम आनेप का उत्तर यह है कि एक एक क्षण का प्रत्यक्ष जाना है । धातुवाच्य समूह का युगत मतिधान संभव नहीं है । अतः उनका प्रत्यक्ष भी नहीं होगा कि तु एक एक क्षण का (अधि श्रयण स्थान्युपस्थापन आदि का) प्रत्यक्ष होता है । बुद्धि के महार उन सभी क्षणों का एकत्र संकलन कर पचति का प्रयोग किया जाता है । जब एक ही क्षण के लिए (कवन अधिश्रयण शक्ति के लिए) पचति का प्रयोग किया जाता है एक ही क्षण म समूह का आरोप कर दिया जाता है । यह शक्ति के स्वभाव के कारण एक क्षण धातुवाच्य नहीं माना जाता । कुछ लोग क म म अधिश्रयण शक्ति भी एक शक्तिक न मानते । उनमें भी शक्ति का समागम पात्र का आदान चुल्ही मयाजन शक्ति अथवा यव जान है इसलिए अवल अधिश्रयण भी समूह रूप जाना है । उनका भी जो अवयव परमाणु रूप होगा व शक्ति के स्वभाव के कारण न तो वाच्य जाना है और न उनका प्रत्यक्ष जाना है । अतः शक्ति के वन पर सम्बन्ध का ग्रहण कर क्रिया विषयक अनुमान जाना है ।

कुछ लोग मानते हैं कि पचति यह प्रस्था (बुद्धि)निरात्म्य जानी है । निरात्म्य होने के कारण भाव नहीं है । अतः शक्ति के कारण अनुमापन नहीं हो सकती ।



फनन क्रिया का अनुमेय मानना ठीक नही है। यदि पचति की प्रथ्या सालम्बना मानी जाय तो त्रिशा का प्रत्यय मानना ही उचित है (ननु पचतीति प्रत्याया निरालम्बनत्वान् भ्रान्त्यादनुमापनत्वमयुक्तं स्यात् । सालम्बनत्वं तु प्रत्ययव क्रिया प्रख्याविशेषविषयत्वान्) ।<sup>३</sup> इसके उतर में यह कहा जाता है कि 'कारणजन्य' म वस्तुरूप अथ अयन् ही है अपितु 'ग' का अय अय है। अथ 'यतिरेक' के आधार पर धातु भाग का जो अय निश्चित किया जाता है उसकी उपलब्धि साक्षान् मभव नहीं है। द्रप्य स्वभाव सिद्ध होता है। घ क्रियन् जिस वाक्या में जिनमें साध्यावस्था भी व्यक्त है द्रप्यस्य समासकारावलम्बन प्रत्यय मत्तान् उत्पन्न करत हैं। किन्तु घट क्रियते में घट की जो भाव्यमानावस्था है जो शिबक स्तूपन आदि अवस्थायां स क्रमण अभिषक्त होती है उसकी प्रतीति घट शब्द से नहीं होती। उसकी प्रतीति तो क्रियते जिस क्रिया पद के प्रयोग से ही मभव है। किन्हीं 'ग' का वही अर्थ होगा जो पदांतर निरपेक्ष रूप में अवयव व्यतिरेक के द्वारा सिद्ध होता हो। इस आधार पर घट से कवल मत्ता आकारक बोध जाना है। इसीलिए सत्ता को प्रातिपदिकाय माना जाता है। क्रियापद के प्रयोग से (जग क्रियते शब्द से) आश्रितकर्मण्य अर्थ की साध्यावस्था की प्रमानि हाती है। इसलिये तिङ् शब्द का अर्थ भाव्यमान रूप में गहीत होता है। तात्पर्य यह है कि 'ग' अर्थ अभिधय के रूप में नित्य माने जात है। जहा भूत या भविष्यतकाल का उल्लेख हाता है जिस घट अभूत घट भविष्यति आदि एव स्यना में भी अर्थ अभिधय के रूप में नित्य मान जात है क्योंकि उन स्थला में भी सत् आकारक जान हाता ही है। इसलिये 'ग' रूप में भाव्यमाना क्रिया होती है। 'मी' तिङ् ध्वनति जग 'ग' म क्रियात्व माना जाता है। फनन अथव्यतिरेक के आधार पर द्रप्य में क्रिया का अनुमान हाता है (तदेवमवयवयतिरेकाभ्यां द्रप्यादनुमिता क्रिया हेताराज यही)। अनुमान का प्रकार नागेण न निम्नलिखित रूप में प्रकृत किया है—

अनुमान त्वेवम उत्तरदेगसयोगादिकल कारणजय कायत्वादिति । तच्च कारण प्रतिष्ठातिरेके इतरबाधकबलात् क्रियारूपमेव प्रतिष्यतीति भाष्यता त्पयम् ।—महाभाष्यप्रणीपोद्योत १।३।१

भत हरि न क्रिया विषयक अनुमान या स्पष्ट करन में क्रिया कई प्रकार के ता मामन रूप में है। क्रिया का सम्प्रथ मन वस्तु में हा जाना है। क्रिया जग क्रमण म् मत् रूप जान है ममूह रूप में जान है 'मति' तिङ् शायमतिरूपमान के विषय व गीह में नहीं आ सकत। जहा क्रिया का एक हा क्षण है वहा भा ममूह का पौत्राय रूप में अध्यात हाता है पौत्राय रूप में ही क्रियात्व जाना है। 'मति' क्रिया-क्षण तिङ् शयविषय रहा है। फिर भा उनका जान जाना है और वह अनुमेय ही कहा जायगा। जो अर्थ आदि वण ममुत्थाय जिम तरह मस्कारकर्म में परिणामप्राप्त अन्त्यरुद्धि निवाह्य जान हैं उसी तरह क्षणममात्रागमिका क्रिया ममुत्थायरूप में फनानुमेय माना

३ हाराज बाधक्य ३, क्रियामनुरो २ ५० २८, त्रिशा म ममूह मराज काग क ममूह ममूह का घट ममूह ममूह है।

जाती है। उनमें वतमानभणगत इन्द्रियसम्बन्ध के आधार पर प्रत्यक्षत्व आरोपित रहता है और उसमें एकत्व का भान भी आपातत हाता है। भन हरि न इसने स्पष्टीकरण में अलातचक्र का उदाहरण दिया है। जिस तरह तजी से घूमते हुए अलातचक्र में भ्रान्ति से चक्राकार का अध्यासाप हाता है उसी तरह क्रियाभणाम में भी एकत्व की परिकल्पना और प्रत्यक्ष का अभिमान हाता है। जिस तरह स पचति के अधिश्रयण आदि भाग है उसी तरह अधिश्रयण आदि में भी स्वसस्वारक अवयव है। अतः पौत्रापय उन अवयवों में भी ज्ञान के कारण वे प्रत्यक्ष से पर की वस्तु है। जो पयनवर्ती निरग क्षणमात्र है उसके लिए क्रिया शब्द का प्रयोग नहीं हाता। ता-य यह है कि 'याकरण' में वास्तविक भेद का विचार नहीं है। जहां तक शब्द का सम्बन्ध है शब्द से क्रिया समूहात्मा रूप में ही भासित हाती है यद्यपि वह क्षणमात्रस्वभावमयी है और विप्रकीर्ण अवयव वाली है। अतः क्रिया का सत्त्व होना और अतीन्द्रिय हाता दाना मिद्ध हाता है। और यदि कभी निरग क्षणमात्र (अपवयवपय) अनुप्राप्त के लिए क्रिया शब्द का प्रयोग हा भी ता वहा भी पूर्वोत्तर भाग की कल्पना से पौत्रापय में अध्ववसित हाता है। फलतः वह भी आर्यात वाच्य है। इसी आशय से निष्कर्षकार ने भी पूर्वोपरीभूत भाव का आर्यातवाच्य माना है (वाक्यपदीय ३, क्रियाममु हेतु ६ १०)।

कुछ लोग मानते हैं कि क्रिया अनित्य है। जिस तरह व्यक्ति में आकृति अभिमान होती है उसी तरह अधिश्रयण उदवासेचन तण्डुलावपन आदि में क्रिया अभिमान्यक हाती है।

कुछ अन्य आचार्य मानते हैं कि क्रिया उत्पन्न हाती है अभिमान्यक नहीं हाती। जब दीप से घट की अभिमान्यक होती है घट की सत्ता पूर्व सिद्ध हाती है। क्रिया के लिए अभिमान्यक पक्ष स्वीकार करने में अधिश्रयणादि में पूर्व क्रिया की सत्ता माननी पड़ेगी।

कुछ आचार्य मानते हैं कि जिस व्यापार के अनन्तर फल की निष्पत्ति हाती है वहा क्रिया है। पचति में वस्तुन क्रिया विचटन (तण्डुल के अवयवों का फूल जाना विकलित्ति रूप व्यापार है। क्याकि विचटन के बाद ही आग्नि रूप फल की निष्पत्ति हाती है। अधिश्रयण आदि विचटन के पूर्व के व्यापार आदन की निष्पत्ति में सा नात उपकारक नहीं होत। इसलिए उह यथाय रूप में कारक (साधन) नहीं कहा जा सकता। अधिश्रयण आदि के लिए पचति का प्रयोग प्रधान विचटन क्रिया के अधिश्रयण में अध्यास से हाता है। अथवा यों कह सकते हैं कि अधिश्रयण आदि विचटन क्रिया के साधन है। अतः उनमें क्रियात्वं उपचरित है वास्तविक नहीं। उनमें क्रियात्वं तादर्थ्य के आधार पर माना जाता है। जिस तरह से तादर्थ्य के कारण म्यूणा में इन्द्र का आरोप करत है उसी तरह से अय अवयवों में क्रिया रूप का आरोप करत है। महाभाष्य का अर्थ के पंचे प्रधानोऽय मासौ तण्डुलाना विकलित्तिरिति यह वाक्य भी इस मत का पापक है। इसी मत के आधार पर क्रिया और व्यापार में क्रिया क्रिया जाता है। जिसमें फल की निष्पत्ति हाती है। उम अन्त्य भाग में

मात्र म है न ति धातुमात्रत्व म । जिस कारण को जा प्रवृत्ति है वही क्रिया है । पाक क्रिया भा घात कारण म सम्बन्ध होने क कारण घनता है । धातु म कवल कुछ का ही अभिधान होता है कभी कभगत क रूप म जैसे पच्यत और कभी कतु गत क रूप म जस पचति । घनत्व कता और कम म ही कारण का सम्बन्ध होता है उहा क व्यापार का ही धातु स अभिधान होता है ।

कुछ व्याख्याता प्रवृत्तिविशेष म विशेष पद पर जोर देत ह । प्रवृत्तिवा क विशेष को व प्रवृत्तिविशेष मानत हैं । कभी शरका स अथ विवृति श्रान्ति रूप भूति (भवत) क्रिया है क्यकि कारण की प्रवृत्ति का फल वही है ।

कुछ लोग के अनुसार यहा कारण स अभिप्राय प्रधानकारक-कर्ता-म है अप्रधान कारण श्रान्ति म नही । कारणवाणा पद म बहुवचन इस बात का ध्यानक है कि क्रिया भेद से कत भेद होता है और अनेक क्रिया क अनन्त वन है । अनन्त वनत्व को दृष्टि म रख कर कारण श्रान्ति म बहुवचन का प्रयोग हुआ है । कोई कह सकता है कि तब कारणवाणा क स्थान पर वन पद का ही प्रयोग क्या नही किया । इसका जमा ध्यान यह है कि कम म भी कारण भेदा जाता है उनका निराकरण न हा इसलिए कत के वन्ते कारण श्रान्ति का व्यवहार उस लक्षणवाच्य म किया गया है । जहाँ कम की सम्भावना है वहाँ कम का व्यापार भी क्रिया है । विशेष बात यह है कि कम का विषय उतना व्यापक नही है जितना व्यापक कता का है इसलिए व्यापक होने क कारण कर्ता ही यहा विवृति है । इसम प्रमाण—अथवा च कारणवाणि गुणोत्पन्न प्रवृत्ते अथवा च मासोत्पन्ने—(महाभाष्य १।३।१) यह वाक्य है । कर्ता मूले ओदन की ओर मन्द रूप म प्रवृत्त होता है पर मास युक्त ओदन की ओर उसकी प्रवृत्ति वगमयी होती है । म दप्रयत्न या सरम्भमय प्रस्थान स यह स्पष्ट हो जाता है कि यहा कारण श्रान्ति के कता ही अभिप्रेत है । उसी की प्रवृत्ति देखी जाती है । वही चेतन भी ह अत प्रवृत्ति उसी मे सम्भव भी है । भाष्यकार ने क्रिया को मन्द प्रवृत्ति अथवा वगमयी प्रवृत्ति क रूप म स्वयं व्यवहृत किया है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि कर्ता की विशेष प्रवृत्ति ही क्रिया है । इस मत म कुछ लोग भ्रुटि दिखात हुए कहत है कि यदि क्रिया को प्रवृत्तिविशेष रूप म मानगे तो चेतन कर्ता तो गहीत हाग परन्तु अचेतन कर्ता गहीत न हा सकग । अचेतन होने के कारण उनम प्रवृत्ति सम्भव नही है । इसक अतिरिक्त मासोत्पन्न म कारण आदि का भी हाथ ही सकता है । इसलिए कारण श्रान्ति स कवल कर्ता ही निदृष्ट है एसा मानना युक्तिसंगत नही जान पडता । इस आशय का उत्तर यह है कि सरम्भ सामान्य का कर्ता म ही होना सम्भव है । घाली अथवा अथ अधिकरण आदि कारण स्वयं ओदन की ओर मन्द रूप म अथवा वेगरूप म प्रवृत्त नही हाते । कर्ता कम का सामान्य रूप म ग्रहण होने क कारण अचेतन प्रवृत्ति उनम भी सम्भव है । वातिवकार ने न वा तुल्यकारणत्वाद इच्छाया हि प्रवृत्तित उपलधि (महाभाष्य ३।१।७) कहा है चेतन जोर अचेतन म इच्छा की प्रवृत्ति देव कर ही । इच्छा चेतन दन्दत मे जस है वस ही अचेतन कूल म भी है । इसीलिए कून पिपतिपति प्रयोग किया जाता है । भाष्यकार ने इस स्पष्ट करत हुए

कहा है कि प्रवृत्ति स इच्छा जानी जाती है। दबल जब चटाई बनाना चाहता है कि ना चिन्ता कर नहीं कहता कि मैं चटाई बनाऊंगा अपितु उसके हाथ म रज्जु कातक पून आदि को देख कर उसकी चटाई बनाने की इच्छा का पता चल जाता है। इसी तरह कूल की प्रवृत्ति में उसकी इच्छा जानी जा सकती है। कूल जग गिगन को हाना है लोप्ट विगीण हाकर गिरन लगत है दरार पड जाती है और कून एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिर कर चला जाता है (कूलस्यापि पिपितपतो लोप्टा गीघते भिशोपजायते, देशाददेशा तरमुपसक्रामति महाभाष्य ३।१।७)। मवस्य वा चतनत्वान वानिक महाभाष्य ३।१।७ में उल्लिखित दशन के अनुमार अचतन में भी चतनना संभव है। पदार्था की उपलब्धि विचित्ररूप में होने के कारण सवत्र चतय उपलब्ध नहीं हाना (वचिशयेण च पदाथानामुपलम्भान सवचेतनधमप्रमग मवशनोभावनीय — महाभाष्यप्रतीप ३।१।७)। दूसरी बात यह है कि भाष्यकार ने आदान या माम आदान की ओर मद या वगवनी प्रवृत्तिको दिख कर प्रवृत्तिविशेष की ओर संकेत किया है। इसका तात्पर्य यह है कि कता की विशिष्ट प्रवृत्तिको निया कहते हैं। प्रवृत्तिविशेष का भाव प्रवृत्ति का ही विशेष (प्रवृत्तरव विगप) है। कारण के स्थान पर स्वल वत पर नहीं कहा इसलिए कि कम का भी यथा स्थान ग्रहण हो सके कम का भी व्यापार निया के रूप में प्रतीत होता है जसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस मत में एक कठिनाई और है। भाष्यकार ने एक स्थान पर कहा पच का प्रधान अथ क्या है? तण्डुला की जो विकृति है वही प्रधान अथ है (अथ के पचे प्रधानोथ — यासौ तण्डुलाना विकृतिरिति—महाभाष्य ३।१।२६)। अब यदि वत व्यापार का ही निया माना जायगा और वही धातुवाच्य हागी महाभाष्यकार के उपयुक्त कथन के साथ विरोध हागा। क्योंकि विकृति कता का व्यापार नहीं है कता का व्यापार अत्रिक से अधिक विभिनदना है। विकृति कता पर है व्यापार नहीं। परम आनेप का समानान सरल है। वस्तुन विरोध नहीं है। महाभाष्यकार ने विकृति का पच का प्रधान अथ वस्तु अथ की दृष्टि से कहा है न कि शब्ध की दृष्टि से। अथ की दृष्टि से विकृति ही प्रधान है और शब्ध की दृष्टि से विकृति सहित विकलदन अथ प्रधान है। कम में लकार मानन पर विकृति अथवा विवेदन सहित (उपमजन रूप में) विकृति अथ प्रान है ऐसा कुछ लाग कहते हैं। अस्तु इस मत के अनुसार कर्ता और कम के व्यापार ही क्रिया है और क्रिया ही धा वथ है। सम्प्रान अपादान आदि के व्यापार धातु वाच्य नहीं है इसमें कारण शक्ति स्वभाव है। परंतु कथत के अनुसार सम्प्रान अपादान आदि में भी व्यापार है। जैसे सम्प्रान का अनुमनन अपादान का अर्थ रूप में अवस्थान आदि। प्रतीयमान व्यापार भी कारण के व्यपदन में निमित्त हाता है—

श-दशवित्वाभाव्याच्च अपादानसप्रदानव्यापारे धातुन वतते। वस्तुतस्तु अपादानस्य अर्थि भावेनावस्थान व्यापारोस्ति। सप्रदानस्यापि अनुमनना दिल्क्षण। प्रतीयमानोऽपि व्यापार कारणव्यपदेशनिबधनम्। यथा प्रविग



अन्ते या वा क्रिया भागे जाति सव क्रिया स्मृता ।

सा ध्यक्तेरनुनिष्पादे जायमानेव गम्यते ॥

—वाक्यपदीय ३ क्रिया समुद्देश २०, २१

जातिक्रियावाद व आचार पत्रजलि के क्रियामामायात सिद्धम (महाभाष्य १।२।६६) और सामाज्यभूता क्रियावतते (महाभाष्य १।६।२३) जैसे कथन माने जा सकन है ।

## सत्ता क्रियावाद

सत्ता क्रियावाद जातिक्रियावाद वा ही एक रूप है । सत्तावादी जाति का सत्ता ही मानत ह । एम दशन के अनुसार प्रति पदाथ का एक सत्य रूप है और एन असत्य रूप है । जो सत्य रूप है वह जाति है जो असत्य रूप है वह यकिन है । वह मत्य रूप मना है । उसे ही परमसत्ता अपरसामाज्य महामत्ता आदि नाम से व्यक्त करत है । सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य पदाथ का अस्तित्व ही नहीं है । विचित्र यकिन धोग व वन मे वह सत्ता स्वयं भाता भोग्य साधना आदि क रू म व्यवहार का कारण ज्ञाती ह । भाग्य भक्ति आदि म ममान ही सविद रूप म सत्य ह । नानात्न कल्पित है । मोत्वादि जाति उमी महामत्ता का विवत रूप ह । सम्वाचभेद स वही सत्ता गाव आति भि न भि न रूप म जाति रूप म आभासित हाती ह । सभी प्रकार के न द सत्ता रूप जाति म व्यवस्थित हैं । उसी का प्रातिपदिकाथ उमी का धात्वथ बहन है । वह निय है । महान आमा है त्व तल आदि प्रत्यय उमी के व्यजक हैं । यहा तक कि अभाव भी सत्ता विगीन नहीं ह । उसकी भी बौद्धिक सत्ता (अना वस्थापि बुद्ध याकारेण निरुपणात) । साधन के परिस्पद के कारण वही सत्ता नमरूप को प्राप्त हाकर क्रिया के रूप म अभिपकन हाती ह । अत साप्तात सत्ताक्रिया ही सभी धालुआ का विषय है । (वाक्यपदीय ३ जातिममुद्देश ३२ ३५) ।

महासामाज्यरूप महामत्ता क्रिया ह । उनका क्रियाजातिव साधना के यापार से भी सिद्ध है । क्याकि कता कम आदि साधना के क्रियाभेद म सत्ता ही समवायिनी हाती है । इमनिय कर्ता कम क यापार स अबच्छिन्न सत्ता क्रियाजाति है । अथवा या भी कह सकत है कि यापारा म समवाय रूप स रहन वाली सत्ता आश्रय भेत् स भेत् मयी होकर क्रिया कहलाती है ।

पहल कहा जा चुका है कि कुछ लाग जिम व्यापार के वाट पत्र निष्पन्न हाता है उमे ही क्रिया मानत है । उमी आधार पर सत्तावाकिया म भी कुछ अत्ययापारभाग की सत्ता को क्रिया मानत है (अये वात्मनि या सत्ता सा क्रिया कश्चिद्विष्यते— वाक्यपदीय क्रियासमुद्देश २३) ।

## बुद्धिसत्ता क्रियावाद

जो लोग बुद्धि का अन्दाज मानत हैं उनके मन म बुद्धिमत्ता ही क्रिया है । इम मन के अनुसार दृश्य और विकल्प म अभेद हाता है उसी आधार पर बुद्धि का भाव म अद्या-

रूप कर लिया जाता है। भाव व सहाय बुद्धिविया म मापन की घातात्ता और माध्यम भागिन हान हैं।

## भावसत्ता क्रियावाद

कुछ लोग सत्ता को भाव रूप म ला है और उमा का क्रिया मानत है (सत्त व भाव गद्दवाच्या पुरय क्रियेति मयते—हेताराज वाक्यपदीय३ क्रियासमुद्गे २३)। घाताय वाप्यायणि न पत्तभावविकार का निर्णय किया या। (यद् भावविकारा भवतीति वाप्यायणि)। म घातार पर भी भन हरि ने क्रिया का विवेचन किया है। भावविकार व विषय म व्याप्याकारा व वर्द्ध प्रसार व मन है। कुछ लोग मानत है कि भाव का अर्थ क्रिया है। द्रव्य म विकार दग कर उमव भाव स्वल्प या अनु मान किया जाता है। क्याकि अर्थ मय्य अपन आप म विकार नहा पत्त कर सक्ता अपन आप म क्रिया नहीं हाती। (स्वामिनि क्रियाविराधात्) और क्रिया अपन वस्तु स विकारवता नहीं घा मक्ती। ऐसा अगभव है। विकार सत्त यद्यपि प्रकृतिविकार भाव आदि म कायवचन व रूप म दया जाता है फिर भी यहा उस प्रकार-वचन व रूप म मानना गार्हित। क्याकि क्रिया व प्रति क्रिया का कारणत्व रही होना कम कमसाध्य नहीं लया जाता। मलिए भावविकार का भाव है क्रिया प्रकार क्रियाभेद और व छ हान ह।

कुछ विद्वान मानत है कि भाव गत्त पत्तय का पर्याय है। कस्यचित् भावम्या चिरव्यासा म्मम्भकुम्भादयाभावा इत्यादि प्रयागा म भाव शत्त पदायपयाय व रूप म देखा जाता है। मलिए वाप्यायणि व सूत्र म भाव का अर्थ पत्तय है। यद्यपि वह एक ही है फिर भी उसवे छ भेद मसगिभत्त स होत हैं जस स्पष्टिक म समगवाली वस्तु के धम (गुण) स भत्त आ जाता है। कुछ अर्थ आचाय मानते हैं कि भाव गत्त का भाव गत्त ह। इसीलिए यद्वा सर्वे भावा स्वन भावेन भवति स तपा भाव व भाव गत्त के लिए गत्त गत्त का प्रयोग पत्तजलि ने किया है—यद्वा सर्वे गत्ता स्वे नाथेन भवति सतपामथ। गत्त यहा अर्थवान और वाक्यभूत रूप म गहीत है। क्याकि जब तक क्रिया पत्त का प्रयोग नहा होता प्रवृत्ति या निवृत्ति मत्य या भूठ का पता नहीं चलता। केवल अकुर गत्त कहने स अर्थवा केवल वध्यामुत्त कहने स ठीक से अर्थ वाध नहीं होता। जब इनके साथ किसी क्रिया पत्त का प्रयोग करत है जस अस्ति नास्ति आदि का तभी ठीक स बोध हाता है। अत्त भावनत्त का तात्पय इस मत व अनुमार वाक्यभूत गत्त भेत्त म है।

किन्तु भन हरि भाव शत्त व सत्ता अर्थ वाल पत्त का अधिक मत्त्व दत है। वाप्यायणि व भाव शद का अर्थ सत्ता महासामा य है। इसी सत्ता को कुछ लोग

६ निरुक्त १। ८, महाभाष्य १।३।१

७ वाचिनिस्त ५।१।११ पर काय दन-व तव

८ महाभाष्य ५।१।१६

परमात्मा अथवा परमब्रह्म के हर म स्वीकार करत है। वही भक्ता परा प्रकृति भी है। वह सबविकारा की अनुयायिनी है। वही मलय है। इसकी पुष्टि के लिए भक्त हरि ने निम्नलिखित अंग उद्धृत किया है—

पयिबोधायते कि सत्य विकल्प विकल्पे कि सत्य विज्ञान, विज्ञाने कि सत्य ऊ अथ तद ब्रह्म इति ।

—महाभाष्यत्रिपादी, मेनुस्मृत्योऽ, पृष्ठ २४ (थी ब्रह्मदत्त जो जिज्ञासु का हस्तलेख) १६

अत भावविकार से ता पय महासामान्यात्मक सत्ता के जन्मादि विकार स है। वह विकार दशभेद से परिणामरूप म अथवा विवतरूप म हाता है और उत्तरात्मक विकार प्राप्त कर जायत अस्ति विपरिणमन बभूव अपभोयत और वितनयति एत रूपा म व्यक्त किया जाता है।

## घटभाव विकारो का विश्लेषण

छ प्रकार के भावविकारा म पहली अवस्था जायत गत् से अभिव्यक्त की जाती है। याम्ब के अनुसार 'जायत से पूर्वभाव का आदि व्यक्त हाता है।' भक्त हरि के अनुसार जायत म उत्पन्न होन की प्रक्रिया मात्र की अभिव्यक्ति हाती है। ज म का हो जाना नहीं अपितु जम का हात रहने वाला रूप जायत से व्यक्त किया जाता है। मम अथवा मम पूर्व अवस्था को पूण रूप म अभी छोड़ता नहीं है और उत्तर अवस्था का केवल मस्मान्मात्र करता है। दूमरे गदो म, जायत अस्ति का पूर्वभाव है और अस्ति जायत का उत्तरभाव है। पूर्वभाव को छोड़न और उत्तर भाव मे मयाग होन के पूर्व तक जो अंतरात्मक अवस्था है उसे जम गत् मे कहते हैं। मम भक्त हरि ने या पकन किया है—

पूर्वावस्थामजहत सस्पशन धममुत्तरम ।

समूच्छित्त इवार्थात्मा जायमानोभिधीयते ।<sup>११</sup>

यहा प्रश्न यह है कि जायत की प्रक्रिया म कत त्व प्रकृति का है अथवा स्वयं भावविकार का। हलाराज के अनुसार दोना का है। पूर्व अवस्था (कारण अवस्था) का पूण रूप म न छोड़न म प्रकृति के कत त्व की संभावना है और उत्तर अवस्था के प्राप्त करने के प्रयत्न म विकार का भी कत त्व है। प्रकृति और विज्ञान दाना के सामानाधिकरण्य हात म दाना म कत त्व मानना उचित है। अत जायत म उम दाना का ममभना चाहिए जा पूर्व और अपर दाना अवस्थाया की उपाधिया म अवच्छिन्न है, जो पूर्व अवस्था म सवया विच्छिन्न नहीं है पर उत्तर अवस्था के प्राप्त करने म उन्मुख है, और जा प्रचीयमान है। मत्वायवाद के अनुसार जायत का अभिप्राय अभिव्यक्ति है और धमत्वायवात् के अनुसार उमरा अभिप्राय जम है। जायत

६ हलायग ने भी मम अश का जति समुदेश ३० का गीका म उद्धृत किया है।

१० निरुक्त भाग है

११ वायव्यदाय सासनममु देश ११६ द्रष्टव्य नियमसुदेश २५ और जति समुदेश ३६





चौथी अवस्था वधत गद स व्यक्त की जाती है। कोर् भी वस्तु मुहूत भर भी अपन आप म ज्या क त्यो अवस्थित नही रहती। वह या तो वढती रहती है अथवा घटती रहती है। वस्थी हु दना को चौथा भाव विकार माना गया है।

पाचवी अवस्था अपशोयत ग द म द्यतिन की जाती है। वधत व विपरीत अप शोयत का व्यापार है।

अनिम अवस्था विनश्यति म यक्त की जाती है। इमम सवथा नास का व्यापार रत्ता है। म कावशनी इम नाग न कह कर तिराधान या तिराभाव कहत है।

कुछ साग मून भाव विकार तीन ही मानन ह जायत अग्नि और विनश्यति। इन म हो नेप तीन का अतभाव न जात है। ज म म अवस्था की वद्धि अतभूत रहती है। अत वधत का जायत म अतभाव हो जायगा। इसी तरह परिणमत का भी अतभाव जायने मे हा जायगा, क्योंकि परिणाम घर्मांतर आविभाव का व्यक्त करता है जा जायत व व्यापार म भी है। अशोयत का अतभाव नश्यति म महज ही हा जायगा।<sup>13</sup>

वाक्यपतीयकार न पञ्चभावा की समीक्षा करत हुए मूलभाव दो ही मान है और व भी शीपकारिक रूप म। वस्तुत उनके मत म एक ही भाव है और वह सत्ता लक्षण है। पर व्यवहार की दृष्टि म आविभाव और तिराभाव अथवा जम और नाग की कल्पना कर नी जाना है। मन्तल लण भाव निय है उमम उत्य और ध्वम सभव नही है। मदा एक स्वरूप होन व कारण उसम आविभाव और तिराभाव भा सभव न। है। क्मलिए व कल्पित गत म और कल्पित रूप म नियायव्यवहार व विषय होत हैं। इही व भीतर गव भाव विकार किसी न नियी रूप म आ जान हैं। अत भाव विकारा म एक सत्ता ही रह जाती है (अतो मावधिकारेषु सत्त का ध्यवतिष्ठत)। वह निय गनी हु भी अम भाव प्राप्त कर मा ध्वभाव क्रिया क रूप म व्यक्त हानी है।

## विवतवाद के अनुसार क्रिया

वाक्यपदीय म विवतवाद क आधार पर भी क्रिया का लक्षण ममभावा गया है। भन हरि व मत म मूल तत्त्व एक ह। व अथ रूप म शिवाद् पद सङ्ग है पर इम विप्रिया म उमन मूल रूप म कई भेद नती पटता। व ज्या का त्या रत्ता है। मगार म अथ पनाथ किमी दूमर पनाथ क समय म अपन स्वरूप को खात नुग जान पन्न हैं स्पष्टि ताव रग व महा म ताव रूप म शिवाई रत्ता है। पर वह मून तत्व कभी भी धपन स्वरूप म चुन नती जाना। किन्तु भे व अवाभाम के कारण

<sup>13</sup> तेलगत वाक्यपदीय ३ म वचन मनुष्य हा ५८



‘प्राणाग को भिन्न मानत ॥’

## विमर्श-क्रियावाद

प्राणाग व अनुसार क्रिया विमर्श स्वभावा है। विमर्श रूप हान व कारण त्रिधा वा मूल रूप सवेदन है। प्रकाश वा स्वात्मविश्रांतिक्षण परा वाक वा रूप विमर्श त्रिधा है। पश्यती म अहम् एव की महीण भावना (विमर्श) रहती है। उमम प्रराह नही रहता। किन्तु इदमभाव अहमभाव म प्रस्त रहता है। इदमभाव वा सूचक पश्यती की क्रिया है। मध्यमा इदभाव वा अहम् म स्वीकती है— म इसको जानता हूँ मैं इसे करता हूँ आदि। एसी रूप म दूसरा स कहने की भावना जस प्राण म परिष्फुट हाती है वह स्वरी कही जाती है और शरीर म स्पन्दन रूप त्रिधा हाती है। यहाँ तक मवत्र विमर्श रूप क्रिया स्व म अनुगत है। मैं चन्ता हूँ मिर हिलाना हूँ जस विमर्श हान पर ही शरीर आर उसक अग म चप्पा दखी जाती है। एसी क्रियाए जिनम परिष्फुट शक्तिगोचर नही जाना जस ठहरना गडे रहना आदि म उनम भी खडे रहने वाला म (वर्त्ता म) जमिक परामगमयी (मैं गडा हूँ एव रूप म) त्रिधा है। इसी कारण वह (खडे रहन की क्रिया) जस शिवा आदि म स्थिर रहन की क्रिया से विलक्षण है। जड पदाद्यगत क्रिया भा विमर्श रूप है। उयाकि जड पश्य स्वय आत्मनिष्ठ नही हो सकना। उनम जा स्वात्मनिष्ठा ह वह यन्तुन प्रमाता की सक्ति म परिनिष्ठित होन के कारण। जान गक्ति क मूल म अह के माव एव भी जुडा है। इद (वस्तु) म गतिशीलता अह के विमर्श म युक्त है। अत मभी त्रिधाग विमर्श रूप है।<sup>१८</sup>

त्रिधाभेद म आभास और परामग भिन्न होत हुए भी एक परामग म व्यवहृत हात है

क्रिया भेदेन च आभासपरामगौ निनावपि एकपरामशप्रतिष्ठिती भवन निपीयमान मधु मदयति, कुम्भकारोऽप्य क्रियते इति।<sup>१९</sup>

## भावना-क्रियावाद

मीमांसा वा अनुसार भावक पुरुष वा भाव्य स्वग व त्रिण यज शानु करणक आग्यात प्रययत्राच्य अकार भावना त्रिधा है।

<sup>१७</sup> ब्रह्मा, त्रियाममूर्देश ०२ ३८, मानस समुद्र ज २० ४, हेलागत न शब्दमार यह मना ०२ मा मामर्का वा है शब्दा साय दशी वा ह। (सांनारानि प्रवृत्ति सान्ना त्रिधाऽपकपान वदतान व त्रिपरमासाकानामागम। एते लक्षण वा प्रवृत्ति नि वा स भावधनुशक्तिनी ववाप्यसुवममथा वाशक्ति नयतानि साग्यनय। सांनममुदेश ०० पृ १ १६७।

<sup>१८</sup> इश्वरप्रय मन्नाचिनादिभाशनी प्रथम भाग, पृष्ठ १०१।

<sup>१९</sup> वही त्रिनीयभाग, पृष्ठ ०१०

उपयुक्त सभी कारणों से प्रवादा में प्रिया का पुरातरीभूत प्रमित रूप और मायस्वरूप आधारण है। आग्यान में प्रिया की प्रतीति हाती है यह निश्चित है। भाव का निश्चितपन माय रूप माध्य है और कृत्तन पन माय रूप मिद है।

## तिडभिहितभाव और कृदभिहितभाव में भेद

निश्चित मन्त्राधिकार व अनुरोधवत्त स पुरातरीभूत भाव का वाच्य हाता है जस पचति स। कृदभिहितभाव का मिद रूप माय हाता है जस पात्र म। कृदभिहितभाव म भी धातुभाग स माध्यमान अवस्था वाली प्रिया का ही वाच्य हाता है। अंतर यत्त है कि आग्यान म उसका वाच्य प्रधान रूप म हाता है जयति कृत्तन म वत्त प्रपद्यते म गुणोभत रहती है।

मन्त्राधिकार व अनुरोध निश्चितभिहितभाव का प्रिया व माय समवाय नहीं हाता पचति पत्ति ऐसा प्रयोग नहीं दखा जाता। वस्तुतः यह नियम करण आदि भाव का दृष्टि म रख कर है। कत कमभाज से प्रिया आख्यात वाच्य प्रिया व माय सम्बन्ध प्राण करती है जस भवति पचति पश्य मगा धावति आदि म। इसीलिए भाष्यकार ने पचादि प्रिया का भवति प्रिया का कता माना है (पचादय प्रिया भवति प्रियाया कर्त्तव्य भवति)। यथा उक्त माध्यसाधनभाव होना है न कि सामान्य-विशेष भाव। यद्यपि प्रिया स्वय माध्य है अतः किसी दूसरी प्रिया व प्रति उमका स्वय यता या कम होना सहज नहा है फिर भी विषयभेद स एव ही वस्तु का अपन आप म साधनमाय सम्बन्ध देखा जाता है। जस पश्य मगा धावति म आख्यात कता भी है कम भा ८—गरण प्रिया धावति की दृष्टि म साध्य है और ऋत की दृष्टि म साधन म। भाष्यकार इच्छति जस वाक्या म दा प्रियाया का सम्बन्ध स्पष्ट है। भाष्यकार न स्पष्ट कहा है कि प्रिया भी प्रिया म वसित हाती है मन्त्रार्थ प्रिया म प्राथमिक प्रिया स और अध्वरम्यनि प्रिया म—

प्रियापि प्रिययेत्सिततमा भवति। कदा प्रियया। सपश्यति प्रियया प्राथम्येत् प्रियया अध्वरस्यति प्रियया वा। इह य एव मनुष्य प्रेक्षापूर्वकारी भवति स बुद्ध या तावत् कचिदय सपश्यति सद्दृष्टे प्रायता प्रायिते, अध्वरसाय, अध्वरसाये आरम्भ आरम्भे निवसि निवसि फचावाप्ति। एव प्रियापि कुत्रिम कम।<sup>११</sup>

कृदभिहितभाव का लिंग म वाच्य हाता है जस पचति पचन पात्र। निश्चितभिहित भाव का लिंग स वाच्य नहा हाता। लिंग स वधम है। आग्यान अन्वयभूत है। जिस तरह आग्यान स सख्या आदि की अभिव्यक्ति हाती है उसी तरह आग्यान स लिंग का अभिव्यक्ति कया नहीं हाती इसका ठीक ठीक समाधान मन्त्रत के व्याकरण न नहा

क्रिया है। क्यट न इस भावशक्ति का वचित्रय माना है—

आख्यातस्य शक्तयाश्रयदध्यसत्या प्रतिपादने सामध्य न तु लिगप्रतिपादने,  
वचित्रत्वादभावशक्तौनाम् ।

—महाभाष्य प्रतीन १।२।८७ पृष्ठ ७२

वृत्तिमिहितभाव म भी घञादि अभिहित भाव से ही लिग माग हाता है अपपकृद-  
मिहित से नहीं होता। क्योंकि अव्ययकृदमिहितभाव सा-प्रम्बभाव सा ही जान पड़ता  
है न कि सिद्धस्वभाव सा। उस क्रिया की तरह माना जाता है द्रव्य की तरह नहीं।  
अतः उससे साथ लिग सख्या आदि का योग नहीं हाता। क्रियावत् मान जाने के कारण  
ही उससे कृत्वसुच जस प्रत्यय देख जाते हैं जबकि घञादि अभिहितभाव से कृत्वसुच्  
प्रत्यय नहीं होत। शायिनण्यम भवता त्रि भुवन दक्त्तेन द्वि भुवनवा गन जम  
प्रयोग देख जाते हैं पर तु द्वि पाक जम प्रयोग नहा होत। महाभाष्यकार पञ्चकृ-  
व पचति इम वाक्य का तो उचित समझत है परतु पञ्चकृ-व पाक इसका प्रयोग  
पसद नहा करत है। कुछ लोग घञान्त आदि के प्रयोग के साथ भी कृत्वसुच् प्रत्यय का  
प्रयोग उचित समझत है। स्वय पाणिनि ने द्विवचनञ्चि १।१।५६। म द्विवचन ग द का  
प्रयोग किया है। द्विरावत्ति द्वि प्रयागाद्विवचनम जस प्रयोग दखे ही जाते हैं।

कृदभिहितभाव का मर्या के साथ सम्बन्ध होता है तिङ्मिहितभाव का सत्या  
म माग नहीं माना जाता। यद्यपि मर्या आख्याताथ है फिर भी क्रिया नि मर्या मानी  
जाती है। पचति, पचन पचति आदि म जो मर्या की प्रतीति हानी है वह साधन  
गतमर्या की होती है पचति अथात् पाक क्रिया का कर्ता एक है आदि। अन क्रिया  
नि मर्या हाने के कारण एक मानी जाती है। आख्यात वाच्य क्रिया मवत्र भेद रहित  
ही प्रतीत हानी है। भवदमि आस्थनाम जस प्राक्या म कल भेद मे कस्तु स्थिति के  
कारण भेद होत हुए भा तिङ्गत से भेद की प्रतीति नहा हानी। एक क्रिया की भी  
जम आवत्ति की जाती है उसमे आवत्ति निबन्धन भेद सत्या स सम्पन्न हाता है उस  
मर्या का अनुभव हाता है। इसी कारण कृत्वसुच् आदि आवत्ति छातक प्रत्यय की  
उपत्ति भी उससे हाती है। नलाराज के अनुसार अत्यन्तभेद अथवा अत्यन्त अभेद मे  
आवत्ति सम्भव नहा है। जहाँ भेद और अभेद दाता हा वही आवत्ति हानी है।<sup>२</sup>  
फिर भी क्रिया म स्वतः सख्या माग नहीं हाता। क्यट के अनुसार भी प्रकप (जम  
पचति तराम) और अम्यावत्ति (जम द्वि पचति) क्रिया के एक-व के वाचन नहीं  
होत। क्योंकि वे आश्रय के प्रकप अथवा अम्यावत्ति के भेद के निमित्त होत हैं।

प्रकर्षाम्यावत्प्रादयस्तु भेदनिबन्धना आश्रयप्रकर्षाम्यावत्प्रादिभेदनिमित्ता  
नक्त्य क्रियाया विध्नाति ।<sup>२३</sup>

जहाँ क्रियापयकत्व है वहाँ भी क्रिया म सख्या नहीं हाता। पञ्चधा गच्छति  
म एक ही गमन क्रिया का पाँच प्रकार स हाता निश्चित है। म सम्बन्ध म पाणिनि

२० वाक्यपथ्ये ३, क्रियासमु श ६१ टीका ५० ४० त्र म म्-करण ।

२३ मर्यानायप्रदाय १।२।६४ १७ ११३

पठता है उनका मत भविष्यो म उपमानोपमेय भाव सम्यक् । जगत् वारय नीजिय--

इय नु वग्ग ग ता या एव पाप्ने निष्पाति

यह कथ पठचर्गी तत्र इग तर्ह ग रर हान रही है (अर्थात् विनाशक कारण न पट्टक सङ्गो) "म वायय म भविष्यन्मामा य क अथ म अनद्यतनमामाय वा प्रयाग हुआ ह । धातुकारर के मत म यहा उपमानोपमेयभाव है वानप्रत्यय क आसार पर अर्थात् व गता एव गन्ता क रूप म ऋग्गी व्याख्या करत हैं । महाभाष्यकार क अनु सार तिड त क साथ उपमान सम्यक् नहीं है अन् व अनद्यतन इव अनद्यतन क अर्गा पर २म ममभात है । गमन म ऋग्गवाल क वान क सभावना मान कर भविष्यत सामाय क अक्षर पर अनद्यतन का प्रयाग हुआ ह । यहा भविष्यतकाल अनद्यतनकाल क सदन है यह तापय ह । महाभाष्यकार क अनुकरण पर भन हरि भी त्रिषाद्यो म उप मानोपमेय भाव नये मानत ।<sup>१९</sup>

## पूर्वकालिक क्रिया

यद्यपि पूर्वकाल क अथ म वनमान धातु म भाव म वनवा प्रत्यय का विधान हाता है फिर भी धातु सम्बन्ध क बल से वाक्याथ क अनुप्राणन क रूप म वनवान्नाथ की पतीति होती है । उदाहरण क लिए--

(१) पूर्व आसव पिबति ततो गायति

(२) आसव पीत्वा गामति

इन दो वाक्या म पूर्व क वाक्य म जमा पीवोपय भलकता है ठीक वसा ही दूसर वाक्य से नहीं भलकता । अपितु दूसर वाक्य म पीवा गत् क बल से आसवपान प्रधान वाक्याथ के अनुप्राणक क रूप म सामन आता है । स्नात्वा भवत्वा पीवा व्रजति जस वाक्यो म भी व्रज निया के प्रति स्नान भोजन आदि त्रिषाद्यो की पीवकालिक सत्ता है । साथ ही आरपात वाच्य निया के विनोप्य होने क कारण व्रज त्रिया के प्रति स्नानादि त्रियाए विशषण है फलत उनम परस्पर असम्बन्ध है जसा कि "याय है गुणानाञ्च परायत्वा दसम्बन्ध सप्तम्वति । अथात् प्रधानत्रिया म अन्वय यदि सम्भव है गुणमत त्रिया म अन्वय करना उचित नहीं है । क्वा प्रत्यय से पीवकाल्य के द्योत्य हाता क कारण मुग्ग व्यादाय स्वपिति दस वाक्य म यादाय गद का प्रयाग क्हा तक उचित माना जायना । क्योंकि मुख का खल्लो सोने की क्रिया क बाद म हाता है वह पूर्वकालिक व्यापार हाता है । वार्तिककार का ध्यान २म पर गया था और उहाने "सकी मिद्धि उपमग्यान क वन पर करती चाही । परतु उहाने स्वय यह भी सुभाव दिया कि क्षणभर भी मुग्ग खोल कर यदि कोई सोता है तो सोने की क्रिया के पूर्व ही मुख खोलने की क्रिया चलि हाती ह । अत यहा भी पूर्वकालिक है । क्यट क मत म यद्यपि स्वप्नगण

पहन है और मुख्यतः वही बात म घोटन जाता है फिर भी दूसरा स्वप्न त्रिया म (प्रथमस्वप्नगणा व बात जो गती ॥११ की त्रिया होती है) पहन जाता है (यद्यपि स्वप्नगणानां दशाशनात पूर्वकालता तथापि दशाशतरतावित्यन्तिकाधारक्ष दशाशनास्य पूर्वकालत्वमस्ति) ।<sup>१३</sup>

पहनवा घान भुवा स्वना

पहनवा घान भुवन दहन्तन

उन जाना घाषया म सवा प्रत्यय द्वारा बना और वम व अनभिधान जान पर भी द्वितीया और तनाया विभक्तिया पाव की अप ता म गयी जाती । यद्यपि घानवा व य त्रिया विनाप्य जान व कारण प्रधान जाती है । विनाप्यभूतत्रिया अप्रधान जाती है । इसी घाघार पर उन त्रियाया व साधक गतिवया म भी गुण प्रधानभाव जाता है । प्रधान गति व अनिधान म गुणत्रियागति अभिहित व रूप म प्रकृत जाती है । घाघार वा मुख्याधी गुण जाता है उमक विशद नहा चन मरता ।<sup>१४</sup> परन्तु हस्त त अनु मार एक बार ही गुण जान वान वा एक ही माथ ता त माथमममथ नहा हा बनता । अनिघ प्रधान व माथ गात्र अत्रय और अत्रय व माथ घाय प्रवय मात वता गतिघ (पम्पजरी ३।६।२८ पृष्ठ ७२८) । परन्तु नाप्य न हस्त की उक्ति वा मुक्तिमगत नहीं माना है । हस्त व मत व मान नेन पर प्रामाद्य गनु इच्छति प्रयाग मभय त हा सकया । राम म चतुर्थी न हा मवगी । परन्तु महाभाष्यकार न स्वय मवा प्रयाग सन् सूत्रम्य भाष्य म त्रिया है (महाभाष्यप्रत्यापाद्यान २।६।२६ पृष्ठ ३१०) । नाप्य न वयत व शुभ प्रतिन्तु गवयम इग प्रयाग की भी आलाचना की है । यहा यह जान सना चाहिय कि भाष्यकार न गवय चानने श्रुत प्रतिहन्तु वाच्य वा प्रयाग त्रिया है । मामान्यतौर पर क्षुत् व स्त्रीलिंग जान व कारण गवया वा प्रयोग जाना चाहिय । वयत न निम्नलिखित तीना तरह व प्रयाग वा उपपत्ति समझाई है—

- (१) गवय चानन क्षुत प्रतिहन्तुम्
- (२) शक्या चानन क्षुत प्रतिहन्तुम्
- (३) गवय चानेन क्षुध प्रतिह तुम् ।

—महाभाष्यप्रतीक पस्पशाह्निक पष्ठ ५७, गुप्प्रमाद शास्त्री सम्पादित ।

१३ महाभाष्यप्रत्या २।६।१ पृष्ठ ३६६, गुप्प्रमाद शास्त्री द्वारा संपादित ।

१४ इस सन्धान म पाद्य क वैवाकरणा म दिनाद था । उपशु वन सत वयत वाई व द्वान्द्वीय वा निम्नलिखित कारिकाया पर आश्रित ह—  
प्रानेतरवो यत्र द्रव्यस्य शिथल पृथक ।  
शक्तिं युक्तानया तत्र प्रधानमनुहयते ॥  
प्रधानविषया शक्तिं प्रयत्नानिवायने ।  
यदा गुणो तदा तद्वन्तुतापि प्रकाशते ।



## तत्स्थाक्रिया

पहल कहा जा चुका है कि अर्थात्संप्रदायनामसाध्य धात्वर्थ का भाव कहत है और मपरिस्पृशाधनसाध्य को क्रिया कहत है। परन्तु इस भेद का ध्यान म न रखकर सामान्यरूप स तत्स्था क्रिया का विचार किया जाता है। स्वयं पाणिनि म लगण हत्वा क्रियाया (२।२।१२६) और यस्य च भावनभावलक्षणम् (२।३।३७) तम सूत्रा म क्रिया और भाव म अभेद माना है। तत्स्था क्रिया कहा जाना है जहा क्रियावृत्तविशय कभी कता म और कभी कम म दिखाई देता है। इस आधार पर क्रिया भी कभी कन स्था और कभी कमस्था हानी है। यद्यपि एसी कोई क्रिया नही होनी जिसस कत गन विशेषता कुठ न कुछ लगित न हा फिर भी प्राधाय क कारण व्यपदेश हात है। इस उक्ति क आधार पर कत स्था और कमस्था क्रिया कहत है। गच्छति धावति हसति आति म क्रियावृत्त विशय कता म दिखाई देता है। चलना, दौडना हसना ये सब व्यापार उसी म दिखाई पडत है। गाम अवहगति क करोति जैसे वाक्या म क्रिया कमस्था है कयाक क्रियावृत्तविशयताए गाय और क म लख पडती है। नायेदा के अनुसार जिस वातु क द्वारा कन कमसाधारण फल गत् स प्रतिपादित जानाहै वह कत स्थभावक है। जस पश्यति गच्छति आति म। पश्यति म विषयता और समवाय के आधार पर ज्ञान उभयनिष्ठ है। गच्छति म भी समोग उभयनिष्ठ है। जहा वातु स कता म न रहने वाला धमहपफल श म द्वारा प्रतिपादित होना है कहा क्रिया कमस्वभावक है। जैसे भित्ति आदि म।<sup>१८</sup> कभी कभा क्रिया कन स्था और कमस्था दोनों जान पडती है। चनाय रोचत मोक्' इस वाक्य म माक् प्रीणयिता है और चैत्र अभिलाषवान जान क कारण कम है। अत क्रिया का यहाँ कमस्था ही कहना चाहिए। परन्तु रोचत क्रिया अपने विषयक अभिलाष उसम पदा करती है। इसलिए विषयविषयभाव सम्बन्ध के आधार पर रोचत क अभिलाष ही प्राधायरूप म प्रकट जाना है। रोचत क्रिया अपने कता को अप्रधान सा करती है और अपने प्रयाजक व्यापार को भी गौण रूप देती है कवन यह सप्रधान सज्ञा हानी है। सम्बन्ध सम्बन्धिभाव की दृष्टि स भी चत्र अभिलाषा करन म कता है इसलिए क्रिया कत स्था भी है। हलाराज के अनुसार ऽस्यत स्वयमव प्रयोग नहा जाना चाहिए। क क्रिया यवस्था का गत् के आधार पर विचार करने वाले पक्ष का समर्थन करत हुए जान पडत है। कवन विगपदान क आधार पर यति क्रिया व्यवस्था की जावनी तो कुछ कठिनाई पड सक्ती है। पच जसी क्रियाए कमस्वभावक है। परन्तु पवान की क्रिया म कता म भी परिश्रम आति दख जान है, क भी क्रियावृत्तविशय किमीन किमी रूप म है ही। अत श म क द्वारा विगप का उगति क स्वीकार कर क्रिया यवस्था करनी चाहिए। गत् प्रमाणका क लिए गत् का आशय ही उपयुक्त है। वस्तुन जसा कि ऊपर लिखा जा चुका है प्राधायन व्यपदेशा भवति क आधार पर

क्रिया विशेष दर्शन के आधार पर तत्स्या क्रिया की व्यवस्था की जा सकती है। भृ-हरि न दोना पशा का निर्देग कर दिया है—

विशेषदशन यत्र क्रिया तत्र व्यवस्थिता ।

क्रियाव्यवस्था त्वयोपा गन्दरेव प्रकाशयते ॥

—वाक्यपदीय, ३ साधन समुद्देश ६६ ।

## क्रिया का सकर्मक-अकर्मक रूप

क्रिया का सकर्मक और अकर्मक रूप भी क्रिया के स्वरूप से प्रभावित है और दर्शन में स यहा भी विभिन्न प्रकार के विचार हैं। तत्स्या क्रिया के विचार के समय स्पष्ट किया जा चुका है कि क्रिया स क्रियाकृतविशेष का आभास होता है। एक तरह से प्रत्येक क्रिया किसी न किसी ईप्सा का द्योतक है उससे किसी-न किसी भाव का अभगमन होता है। हम दृष्टि ने सभी क्रियाएँ सकर्मक ही होनी चाहियें। फिर भी व्याकरण शास्त्र में सकर्मक अकर्मक का विवेचन है। क्या क्रिया की ईप्सा होने पर भी प्रत्येक क्रिया स वाह्य विषय की सम्भावना नहीं व्यक्त होती। कुछ क्रियाएँ कर्ता में ही विश्रान्त देखी जाती हैं व किसी बाह्यभाव की अपेक्षा नहीं रखती। जैसे, द्योतते गते आदि। गयन पूण रूप से कृत विश्रान्तलक्षण है। शयन करता है इस अर्थ में सोन की भावना का पयवसान देखा जाता है शयन की भावना का 'भाव्य गयन ही है। इसलिए किम (क्या) जन प्रश्न नहीं पूछे जाने जो वस्तुतः बाह्यभाव विषयक हैं। कुछ एमी क्रियाएँ हानी हैं जा बाह्यभावा की अपेक्षा रखती हैं जिनमें बाह्य निष्ठ भावना होती है। जैसे, पचति आदि। इस तरह की क्रियाया का उत्तर बाह्यभावविषयक प्रश्न किम (क्या) स मिल जाना है। जस क्या पका रहा है प्रश्न का उत्तर शोन्न है जो बाह्यभाव है। इन दो तरह की क्रियाया में बाह्यभाव की अपेक्षा न रखन वाली क्रिया अकर्मक और बाह्यभाव की अपेक्षा रखन वाली क्रिया सकर्मक मानी जाती है।

वाकरण दर्शन में भावना और क्रिया में कुछ भेद माना जाता है और वह यह है कि भावना सदा सकर्मक ही होती है जब कि क्रिया सकर्मक भी होती है और अकर्मक भी होती है। फिर भी साध्य रूप दोनों में समान है और साधारण तौर पर भावना और क्रिया गन्द पयाय क रूप में प्रायः प्रयुक्त हातें हैं

भावना सकर्मिकव अकर्मिकापि क्रियेति सत्यपि भेदे साध्यत्वाविशेषाद् अभेद एवानयो । यथा धात्वयभूता क्रिया साध्यरूपव तथा भावनापीति कथम धातरभेदाद् भेदेऽनयो भवत ।

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।१

हलाराज न भी भावना और क्रिया में जरा सा भेद माना है—

यद्यपीह दशने भावना धात्वय एव तथापि फलपयतासौ क्त व्यापाररूपा दीघतरावयवत्रियामात्रात् पृथग व्यवहारसज्ञा ।

—साधन समुद्देश ८६, पृष्ठ २३४ ।

परन्तु यहाँ भावना और क्रिया में अन्तर्भाव मान कर ही सक्रमक अक्रमक का विचार किया जा रहा है।

महाभाष्यकार ने कम की व्याख्या क्रियावृत्तविशेष के आधार पर की थी (अथ कश्चित् क्रियावृत्तो विनाप उपजायते नानाथ्य कमिति)। इस के प्राचुर्यकम (स्थाभावित्) कम समझने थे। परन्तु स्वाभाविक कम को क्रियावृत्तविशेष के रूप में तब पर आन्वित्य पश्यति हिमवान् श्रूणोति जैसे वाक्यों में कम की सत्ता सिद्ध करना कठिन होगा। क्योंकि सूय को दखने आदि की क्रिया में कोई क्रियावृत्तविशेष सूय में नहीं लिखा देना है। प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा हम सूय में दशनक्रिया के कारण कोई विचार नहीं समझ पाते हैं। कुछ लोग आदित्य का दशन क्रिया का ईप्सिततम होना ही क्रियावृत्तविशेष यहाँ मानते हैं और आन्वित्य का कम समझने हैं और क्रियावृत्तविशेष के आधार पर सक्रमक अक्रमक का विभाग किया जा सकता है ऐसा स्वीकार करते हैं।

महाभाष्यकार का यह भी भावना जान पड़ती है कि काल, भाव आदि की सचय सत्ता होने के कारण कोई भाषा धातु अक्रमक नहीं है, काल आदि के कारण सभी सक्रमक हैं। परन्तु स्त्रीकार करने में भी सक्रमक अक्रमक का विभाग अनुपपन्न हो जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि अविबक्षा के आधार पर अक्रमक धातु माने जा सकते हैं। जब उनका व्यवहार कम की विवक्षा किये बिना ही होगा तो अक्रमक माने जायेंगे। परन्तु अविबक्षा के आधार पर तो पक्ष आदि भी अक्रमक कहा जा सकता है। इसलिए, कथं व अनुसार जिसे धातु के कम कभी सम्भव ही न हो अक्रमक पद में उन्हीं का ग्रहण होना चाहिए। पाणिनि ने गतिबुद्धि ११।५.२ सूत्र में अक्रमक शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। अक्रमक शब्द से अर्थ पत्न्य प्रघात के बल पर धातु का ग्रहण होना चाहिए न कि धातु के अर्थ का। अर्थ का आशय लेने पर कम की अविबक्षा होने पर अर्थ का नाम भी अक्रमक पड़न लगता है। धातु को अक्रमक मानने पर पक्ष आदि अक्रमक नहीं कहे जा सकते हैं। क्योंकि एक बार भी जो धातु कम के सहित देना गया रहेगा उस प्रत्यभिन्ना अथवा सादृश्य प्रतिपत्ति के आधार पर अविबक्षा दशा में भी सक्रमक कहा जा सकेगा। अर्थ तो वारकभेद में भिन्न भिन्न हान है इसलिए सक्रमक अर्थ और अक्रमक अर्थ हान। यदि अर्थ में भी स्वतन्त्र भेद नहीं होता इस सिद्धान्त को माना जायगा तब अर्थ में अर्थ पदाथ के रूप में बोध सम्भवा चाहिए।

अर्थास्तु वारकभेदात् भिन्ना एवेत्यथे सक्रमका अ म एवाक्रमका इति स्यात् व्यपक्ष्णः । यथा त्वयस्यापि नास्ति स्वतो भेद इति स्थाने तदायैर्व्याप्यपदा यैर्व्यपक्ष्णः ।  
—महाभाष्यश्रीय १।१।२ पृष्ठ ४०१

कुछ लोग का अनुसार अक्रमक क्रिया उस कहते जहाँ पक्ष और व्यापार एक निष्ठ हो जाता है। जहाँ पक्ष और व्यापार एकनिष्ठ न होकर अन्तः अन्तः आधार वान हो वहाँ क्रिया को सक्रमक समझना चाहिए। व्याकरणभूषणकार का यहाँ मत है। इन मत में ही कुछ कठिनाई है। आशय जानानि कम वाक्य में जानानि

त्रिया का फन और व्यापार एतन्निष्ठ है, फलतः इसे अवमक होना चाहिए परन्तु यह सक्मक है। कुछ लोग इसका समाधान महाभाष्यकार के दो आत्मा वाले कथन के आधार पर करते हैं। महाभाष्य में एक स्थान पर लिखा है आत्मा दो हैं। अतरात्मा और शरीरात्मा। अतरात्मा के त्रिया कलाप से शरीरात्मा मुख-दुःख का अनुभव करती है और शरीर की क्रियाओं से अन्तरात्मा मुख-दुःख का अनुभव करती है।<sup>३०</sup> आत्मान जानाति न फल और व्यापार के आधार दो आत्माओं के अलग अलग ही ज्ञान से सक्मकत्व अक्षुण्ण रहेगा।

कुछ लोग के अनुसार जब धात्वथ साप्तात और अव्यभिचरित रूप में कम का भागी होता है उस धातु को सक्मक कहते हैं। यदि साप्तात न हाकर परम्परया कम का भागी होता है वह त्रिया अवमक होती है। इस मत में अत्रयोयाथय दोष-सा आ जाता है। कम के निरूपण के बाद ही सक्मक का विचार होगा और सक्मक होने पर ही कम का निरूपण होगा। यही अत्रयोयाथय है।

कुछ लोग मानते हैं कि जिस त्रिया के उच्चारण में कम की आकाशा हाती है वह सक्मक है जहाँ आकाशा नहीं हाती वह अवमक है। परन्तु यह मत भी निर्दोष नहीं माना जाता है। आता है (गच्छति), गिरता है (पतति) जसी क्रियाओं में कम की आकाशा नहीं दली जाती फिर भी ये त्रियाएँ सक्मक हैं। पतति क्रिया के सक्मक होने में प्रमाण पतित शब्द के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास का विधान ही है जो द्वितीयाश्रितातीतपतित० २।१।४ सूत्र से सिद्ध है।

नागेन न सक्मक अवमक को साथक शब्द माना है। उनके अनुसार व्याकरण शास्त्र से संपादित कम सना में युक्त धातु सक्मक है और उससे रहित अवमक है। इस आधार पर ही अध्यासिता भूमय जने प्रयाग सभव हो पाते हैं।<sup>३१</sup>

वस्तुतः सक्मक अवमक सापक्ष शब्द हैं और एक दूसरे के स्वरूप धारण करते रहते हैं। बाह्यकर्म के सदभाव हात हुए भी त्रिया अवमक हो सकती है और किसी कम के न रहने पर भी त्रिया सक्मक कही जा सकती है।

मनु हरि न बाह्यकर्म के सदभाव हात हुए भी त्रिया के अवमक कहे जान के निम्नलिखित चार कारण बताये हैं—

- (१) धातु के प्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त अर्थ अर्थ का अभिधान
- (२) धात्वथक्रिया में कम का अन्तभाव,
- (३) प्रसिद्धि
- (४) अविवक्षा।

३० महाभाष्य १।१।८७ पृष्ठ १५६

३१ व्याकरणभूषणमाल की टीका काशिका में उद्धृत पृष्ठ ३२४

जब धातु अपने प्रसिद्ध अर्थ के प्रतिरिक्त किसी अन्य अर्थ में व्यवहृत होता है, सक्रमक होता हुआ भी कभी कभी अक्रमक हो जाता है। जैसे 'भाग्यं बहति' इस वाक्य में बहति (ढोता है) सक्रमक है। परंतु बहने के अर्थ में वह अक्रमक हो जाता है जैसे नदी बहति। बहने में जो जल का प्रवाह प्रतीत होता है वह नचात्मक जल से भिन्न नहीं है।

धातु के अर्थ बदलने में उपसर्ग आदि भी कारण होते हैं। फलतः सक्रमक क्रिया अक्रमक होती रहती है। चरति क्रिया देशान्तरगमन अर्थ में सक्रमक है परंतु उत्त उपसर्ग के साथ उत्तर उठने के अर्थ में वह अक्रमक मानी जाती है जैसे वायु उच्चरति, धूम उच्चरति। यहाँ उच्चरति अक्रमक है।

कभी-कभी आत्मनपद के प्रयोग से भी सक्रमक क्रिया की अक्रमक के रूप में अभिव्यक्ति होती है। जैसे तपति सक्रमक है परंतु उत्तपत अक्रमक है। उत्तपत का अर्थ भासित होना है। यावत् भुक्तमुपतिष्ठत, सपिपा ज्ञातेत जैसे वाक्या में आत्मनपद का प्रयोग क्रिया के अक्रमकत्व का सूचक है।

कभी कभी वाक्य के सामर्थ्य से अक्रमकत्व की अभिव्यक्ति होती है। जैसे वायुबहति में। इसमें वायुलक्षणत्वं विशेष के सामर्थ्य से बहने की क्रिया में अक्रमकत्व भासित होता है।

पृथक् आदेश स्वयमेव, भाष्यत वत्स स्वयमेव जैसे स्थला में कर्म के कर्ता के रूप में व्यवहृत होने के कारण अक्रमकत्व की प्रतीति होती है।

धात्वर्थक्रिया में जब कर्म का अंतर्भाव हो गया रहता है तब क्रिया अक्रमक मानी जाती है। जीवति क्रिया में प्राणधारणरूप कर्म अंतर्हित है इसलिए वह अक्रमक है। इसी तरह म्रियते में प्राणत्यागरूप कर्म छिपा है। म्रियते में आत्मधारणरूप कर्म का अंतर्भाव है। कर्म का अंतर्भाव नहीं दया जाता है जहाँ स्वशब्द से उसका निर्णय संभव न हो। पक्ष और भिद जसी क्रियाओं में कर्म का अंतर्भाव संभव नहीं है। क्योंकि इनके कर्म का स्वशब्द से उल्लेख संभव है जैसे पक्षि पाकयम म्रियति भेषजम्। जहाँ अंतर्भाव होगा स्वशब्द से निर्णय संभव नहीं होगा जहाँ जीवति जीवति जैसे प्रयोग नहीं दया जाते।

कभी कभी व्याकरण सम्बन्धी अवास्थान व्यवस्था के कारण उनका भी अन्तर्भाव मान लिया जाता है जिसे स्वल्प निर्धारण माना जाता है, जैसे पुत्रायति में पुत्र कर्म का अन्तर्भाव है। वस्तुतः यहाँ पुत्र कर्म क्रिया के भीतर अंतर्हित है कर्म प्रक्रिया स्थान के लिए पुत्र इच्छति इस तरह का विग्रह किया जाता है। उस स्थिति में भी कभी-कभी पुत्र उपसर्ग के रूप में सामान्य माना है इसलिए उसका अन्तर्भाव नहीं माना जाता परन्तु क्रिया सक्रमक ही होती है जैसे पुत्रायति छानम्।

कभी-कभी सामान्य कर्म के अंतर्भाव मान लिए भी विशेषण के द्वारा अन्तर्भाव अर्थ बना होता है। जैसे मृगयति माणवकम्। म्रियति क्रिया आति। कभी-कभी विशेषण अन्तर्भाव रहता है जैसे धूमयत रामायत आति।

व सक्रमक क्रियाएँ भी अक्रमक के रूप में प्रयुक्त होती हैं जिनका कर्म संज्ञा

अव्यभिचरित रूप में उनके साथ दृष्टिगोचर होता है। जस, वपति। वपण की त्रिया में देव की कर्ता के रूप में और जल की कम के रूप में प्रतीति स्वभावतः हा जाती है। इसलिए कम यहा अन्तर्हित-सा है। फलतः वपति अकमक है। अकमक मान कर ही ब्रह्मा देव जैसे प्रयोग निष्पन्न होते हैं यहा कर्ता के अर्थ में वन प्रत्यय अकमकत्व के आशय से हुआ है। परन्तु जब कम प्रसिद्ध नहीं होना वपति त्रिया सकमक मानी जाती है जस अधिर वपति लाजान वपति आदि। उत्पल ब्रह्म म कम म वन प्रत्यय हुआ है।

प्रसिद्धि के कारण सकमक त्रिया के जो अन्तर्गत रूप हात हैं उनमें भी देव, बाल आदि के भेद से अन्तर्गत भेद पाये जाते हैं। जैसे दक्षिणापथ में यदि दापहर के के पहने पच्यताम् कहा जाता था तो इसका तात्पर्य यवार्थ जाना था। परन्तु यदि दापहर के वान पच्यताम् कहा जाता था तो उसका अभिप्राय आदन होता था। यवार्थ और आदन रूपी कम दस और बाल के आधार पर समझ लिये जात थे।

त्रिया के स्वरूपसामर्थ्य के बल से कभी प्रसिद्ध कम प्रतीत होता है उस केवल वपति से जल रूप कम की प्रतीति हा जाती है। कभी कभी कर्ता के स्वरूपसामर्थ्य के कारण भी कम की भवक मिल जाती है जैसे सज्जन करोति इस वाक्य में सज्जन शब्द के बल से उपकार रूपी कम की व्यजना हो जाती है। इस तरह प्रसिद्धि के बल से सकमक के रूप में अभिव्यक्ति के अपरिमित रूप संभव हैं।

कम के रहत हुए भी यदि त्रिया मात्र के प्रतिपादन में तात्पर्य हा कम की वित्तुल ही विवक्षा न हा वहा भी अकमकत्व देखा जाता है। उदात्त पचति जुहोति त्रिया सकमक है परन्तु यदि ऐसा कहा जाय दीक्षितो न ददाति न पचति न जुहोति यहा कम की विवक्षा न होने से इनका प्रयोग अकमक रूप में माना जाता है। क्याकि दीक्षित व्यक्ति न देना है न पकाता है न हवन करता है यह कहत समय कवन विशेष त्रियाया के निषेध के प्रति संकत है न कि किसी कम के प्रति।

अविवक्षा का उद्देश्य भी कभी-कभी कम के सादृश्य मात्र के प्रतिपादन से रहता है जस, अनुदत्ते कठ कलापस्य इस वाक्य में कठ और कलाप का भाषण-सादृश्य प्रतिपाद्य है कम की विवक्षा नहीं है। इसी तरह यदि पूछा जाय देवदत्त क्या कर रहा है और यदि इसका उत्तर हा देवदत्त पका रहा है (पचति) अथवा पढ रहा है (पठति) तो ऐसे स्थला में भी विशेष कम (कममन्वध) अविवक्षित ही रहता है। इसी तरह पचति एव ददाति एव जस स्थला में त्रियाप्रबंध का अखण्डरूप ही अभिप्रेत रहता है—वह सदा पक्ता ही है देता ही है कहने में कक्ता का अभिप्राय कम में न होकर त्रिया के बराबर पचित होने वाले स्वरूप से रहता है। अतः ऐसे स्थला में भी कम की अविवक्षा होने में त्रिया अकमक मान ली जाती है।

इसी तरह अकमक क्रियाएँ भी उपसर्गमयाग अर्थात्तरवत्ति आदि कारणों से सकमक रूप में परिणत हो जाती हैं। भवति त्रिया अकमक है परन्तु अनुभवति सकमक है। उपसर्ग के योग से वह सकमक हो गई है।

मयतिरयममक । अमकमि अति य धातय सोपगर्गा सत्रमक  
भयति ।—

—महाभाष्य ३।१।१०३

यदा भयति त्रिया प्रातिपदस्य म सत्रमक है—

मयतिरयमक । प्राप्प्रमथ सत्रमकमिति ।

—महाभाष्यपरी ३।१।१०३

प्रातिपदस्य धातु पर मभी त्रियात् सत्रमक की जा सकता है । यदा ऊपर उक्त त्रिया जा चला है ।

## त्रिया और उपसग

त्रिया और उपसग का अर्थ धातु गन्धक है । एत उक्त म उपसग नाम त्रिया म मनुता हान पर हा पत्ता है । एत मा यह भी है कि उपसग त्रिया म अतिरिक्त मत्ता नहीं मता । उपसग मति ता धातु का रूप है उक्त ही धातु का स्वभाव समझना चाहिए । धातु म जो उपसगों का विधान है वह अर्थात् पदवि पर है और व्याकरण क नियमों क निर्वाह क लिए है जब अत द्वियत्त धाति क । एत एत धाति लकार म अत धातु क पूर परतु उपसग क वाच्यता जात है । यदि उपसग मति धातु का धातु माना जायगा अत धाति उपसग क पूर मगो नयेक । अत तास्व म प्रतिया निर्वाह क निय उपसग क धातु स पथक हाने का वाच्यता का जानी है । यन्तुत उपसग मति धातु नी धातु है । मनीति अतसमयत म उपसग क पूर अत सगा है और मित प्रागयियत म उपसग मति ता द्वित्व हूमा है ।<sup>३३</sup>

सोपसग धातु क मानत स हा धातुपसग क आथय स हात वाल गु धादि अतसग मान जात है । उपसग युक्त हातर हा त्रिया कारक के साथ गन्धक प्राप्त करती है । अतएव अनुभूयते म कथ क अथ म लकार हाता है । अतएव अतस्यस्यत

३३ महाभाष्यकार क अनुसार मत्ताम मं सम् उपसग है । यैवा कि उक्त 'अवर सत्तामक सोपसगपुर्णत्ववन्तया' (महाभाष्य ३।१।१२) इम वाच्य मे पट है । अत हरि अत कथ का भी वहा ता है । परत तासता संग्राम क सम का उपसग ता मानते—यद्यपि मत्ताम शब्दे शब्दो सोपसगतथापि सापसगादिभ्यः सापसगसत्ताक सन्निधौ बाध्य । परतु कैथ क अनुसार मत्ताम गत्ता ही युक्त करने क अर्थ मं है सम् शब्द कवल चोरक है । जैसे इत् मरणे इह अ चयने म अति प्रोक्त है । यदि सत्ताम' को शब्द माना जायगा यदा वा पत्ताय का १६ से परसवत् विकल्प सं ता हा सकता । महाभाष्यकार ने सत्ताम शब्द की नियमार्थक माना है अथान् सत्ताम क नियम करना है कि यदि सापसग धातु स अत धाति हा तो सत्तामयत से ही हा अ य सोपसग धातु से न हा । इसलिये अय सोपसग धातुआ से उपसग क बाद परतु धातु स पूर अत तादि हात है ।

यन्तुत कथत इमा एक (अथयामयदा) उदाहरण क बल पर स मात्र नियम बनाना उचित नहा है । या तो इमे अथका मा लेना चाहिए, अथवा ईमा कि नायेरा ने माना है, सत्ताम क सम् का उपसग नहीं मानना चाहिए ।

यदि इस मूल की आवश्यकता नही मानी जाती। नामेग ने इस मूल को इमीलिए अनाप माना है। (एवञ्चाङ्ग्यासव्यवायेपीत्यनाप सूत्रपाठ—महाभाष्यप्रदीपो-  
 चो ६।१।१३५)। इही आधार पर कहा जाता है कि धातु पहले उपसर्ग से जुडता है बाद म साधन (कारक) स अविन होता है। (पूव धातुसर्गण युज्यत पश्चात् साध-  
 नम्)।<sup>३३</sup> कारका की विशय प्रवृत्ति का ही क्रिया कहते हैं। उपसर्गयुक्त विशिष्ट  
 क्रिया ही साधन के साथ अथ लाभ के लिये जुडती है। विशिष्ट क्रिया साधन (कारक)  
 स साध्य हाती है न कि साधन द्वारा लभ स्वरूप क्रिया किमी अथ स विशेषता प्राप्त  
 करती है। यह ठीक है कि साधन स सम्बन्ध के पूव क्रिया का विनोपसर्ग निष्पन्न नही  
 हाता फिर भी धातु—उपसर्ग के सम्बन्ध का अन्वयत मान कर धातु का साधन स  
 सम्बन्ध होता है। वह बुद्धि निरूपित हाना है और भावि साधन का मान कर हाता  
 है। इसलिये धातु उपसर्ग समुदाय स ही विशिष्ट क्रिया की अभिव्यक्ति हाती है।  
 फलत 'पूव धातु उपसर्गण युज्यत' इस पथ का अधिन महत्व देना चाहिए। यदि यह  
 माना जायगा कि धातु का सम्बन्ध पठन साधन से हाता है मान म उपसर्ग स हाता है  
 तो उसके लिए इस समझना कठिन हो जायगा कि क्या आस्यत गुरुणा म क्रिया  
 अकर्मक है परन्तु आस्यत गुरु म सकर्मक है।

जा लोग धातु का सम्बन्ध पठन साधन से मानत हैं और मान म उपसर्ग म  
 मानत है उनका तक यह है कि साधन म सम्बन्ध हाकर क्रिया साध्य स्वरूपवाली कही  
 जाती है। साधन ही क्रिया का निवृत्तक है। जब तक साधन न याग गही हागा क्रिया  
 अनिष्पन्न रहगी फलत किमी विनोपसर्ग की भी आका स उभय ग हा सकगी। अत  
 धातु पठन साधन स सम्बन्ध प्राप्त करता है बाद म उपसर्ग स जुडता है —

इह प्रतिष्ठ विशोष्यमनेकप्रकार समवे सति दष्टप्रयोगेण शब्देनाभिधीयमान  
 विशयणविशयभाव परिपद्यते। साध्यत्वाच्चक्रियाया साधनसम्बन्ध  
 निवृत्ति। तस्मात् प्राक् साधनसम्बन्धानुपज्ञात् क्रिया निरात्मिका  
 छोत्सेनापसर्गेण सह विनोपसर्गविशेषसम्बन्धोत्सहते प्रतिपत्तुम्। पूव धातु  
 साधनन युज्यते इत्येकपा दशनम्।

—वाक्यपदीय हरिवृत्ति २।१८४ लाहौर संस्करण

## क्रिया के साथ उपसर्ग की प्रवृत्तिया

क्रिया और उपसर्ग म विशेषणविशयभाव सम्बन्ध माना जाता है और वह प्रथमद्वारक  
 माना जाता है

अथद्वारकश्च तेषां सम्बन्धो विशेषणविशेष्यभावलक्षण। स चोपसर्गैरेव पर्या  
 दिमि सन्नवति नाथ।

— वाम १।१।१८

क्रिया के साथ उपसर्ग के मयांग हान पर प्राय अथपरिवर्तन दगा जाता

है —



उपसर्गेण धात्वर्थो यत्तादयत्र नीयते ।

गगानसिलमाप्य सागरेण यथाग्मसा ॥<sup>३४</sup>

फिर भी उपसर्ग की कई प्रकार की अथा तत्र प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं । कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

### असदेहार्थ उपसर्ग

कभी-कभी असदेहाथ उपसर्ग का आश्रय लिया जाता है । महाभाष्यकार ने लिखा है कि मनायने के स्थान पर सुमनायत इत्यत्र कहा जाता है कि श्रोता को सदह न हा । अथवा मनायत कहने से यह नहा पता चलना कि उसका मन शुभ रूप में हा रहा है अथवा दुःखी हो रहा है

तत्र मनायत इत्युक्ते सदेह स्यात् अभिमन्वतो सुभवतो उदभवतो, दुभव ताविति । तत्रासदेहाथमुपसर्ग प्रयुज्यते ।

(यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अभिमन्वत् सुमन्वत् उमन्वत् दुमन्वत् आदि का उपसर्ग सङ्घि ही पाठ मिलता है । ये उपसर्ग सङ्घि ही प्रवृत्ति माने गये हैं । इस विषय का लेकर समाकरण में प्रत्ययविशेषणपक्ष और प्रवरयविशेषणपक्ष रूप में विवाद है । मन शब्द का मु उत दुर, अभि आदि उपसर्गों के साथ यदि समास माना जायगा तो वे उपसर्ग प्रत्ययविशेषण पक्ष में माने जायेंगे । मन शब्द यहाँ तद्धान — मनस्वी अर्थ में है । अतः सुमन्वत् का अभिप्राय प्रत्ययविशेषण पक्ष में मनस्वी अर्थ (सुष्ठु) होता है अथ हाता है । जब मु अभि आदि का मन शब्द के साथ बहुव्रीहि समास माना जायगा, वे उपसर्ग प्रवृत्त्यर्थ के विशेषण होंगे ।)

### उपसर्ग क्रिया का अर्थान्तर व्यवहृत करता है

उपसर्ग धात्वर्थ के धात्वर्थ रूप में भी प्रसिद्ध हैं । तिष्ठति का अर्थ ठहरना है परन्तु प्रतिष्ठते का अर्थ प्रस्थान करना है । उपसर्ग की इस शक्ति के कारण सङ्घत भाषा की क्रियाओं का क्षेत्र विस्तृत हो गया है । धातुपाठ में सीमित धातुओं का उद्भव होने हुए भी उपसर्ग के बल से अर्थों पर व्यञ्जन करने की क्षमता का ज्ञान के कारण उनके रूप का विस्तार हो गया है । कभी-कभी उपसर्गों के द्वारा बिल्कुल विरुद्ध अर्थ व्यक्त किया जाता है जैसे,

पतति (गिरता है)

ददति (देता है)

उत्पतति (उठता है)

आन्ददति (स्वीकार करता है)

मलीमसीमाददति न पद्धतिम्

(शुद्धता १।१६)

३४ व द्रकर्मि, माध्यमिक आरिका टाका पृष्ठ ५

३५ महाभाष्य १।१।२ पृष्ठ ६३, मुद्रासद शास्त्री द्वारा संपादित ।

मृजति (रचना करता है)

उत्मृजति (छोड़ता है)

उत्मृष्टसकलव्यापारतया  
(कादम्बरी पृ० २४०)

सीदति (डुखी हाता है)

प्रसीदति (प्रसन्न होता है)।

## उपसर्ग धात्वर्थ का अनुगामी होता है

कभी-कभी उपसर्ग धात्वर्थ का अनुवर्तन करता है। जैसे मृत, प्रमृत। अर्थात् गच्छति पर्यागच्छति म अग्नि और परि उपसर्ग अनर्थक से हैं। इनका प्रयोग केवल स्पष्टार्थक है। अर्थात् अग्नि जैसी क्रियाओं में यह धातु का सहायगी है। कुछ लोग इट और इक् धातु को निरर्थक मानते हैं, उपसर्ग के कारण वे साथक मान जाते हैं। महाभाष्यकार के अनुसार अग्नि म अग्नि का अर्थ उपरिभाव है अर्थात् अग्नि का अर्थ विशिष्टार्थ युक्त गच्छा का अध्ययन है (तत्तद्वाग्नि इत्यस्य विशिष्टार्थयुक्तानां गच्छानां पठन विधिपूर्वक करानीत्यर्थ — महाभाष्यप्रतीप १।२।१)।

## उपसर्ग की ससाधनत्रियावाचकता

बहुत म प्रयोग उपसर्गों से क्रिया जाते हैं। ऐसे स्थानों में उपसर्ग साधनसहित क्रिया की अभिव्यक्ति करत है—

त एते उपसर्गोन्मो विधीयमाना ससाधनाया त्रियाया भविष्यति—महाभाष्य १।२।२८ विगाल, विगकट गच्छ विउपसर्ग से शालक और शकटक प्रत्यय लगा कर बनाय जाते हैं। विशाल का अर्थ है बड़ी मींग वाला बल। सकट, प्रकट उत्कट आदि शब्द भी उपसर्ग से बनाये गये हैं। इन सब स्थानों पर उपसर्ग साधनत्रियवचन माने जाते हैं।<sup>२६</sup>

## उपसर्ग का क्रिया द्योतकत्व

कुछ आचार्य उपसर्ग को द्योतक मानते हैं। इसका उल्लेख पदाद्य विचार के अन्वय पर किया जा चुका है। धातु को अनेकाथ मान कर उपसर्ग का द्योतकत्व प्रकट किया जाता है। निष्ठा का अर्थ गमन भी है प्र उपसर्ग इस गमन का द्योतकमान है। भत-हरि के अनुसार उपसर्ग का द्योतकत्व दो तरह के अनुमान से सिद्ध होता है। मामा-यतो दृष्ट से और विगोपतो दृष्ट से। प्रपचति म प्र गच्छ आदि कर्म का द्योतक दत्ता गया है। इस सामा-य दृष्ट के आधार पर सभी प्रकट आदि कर्म के द्योतक है प्र उपसर्ग है अतः सभी उपसर्ग द्योतक है।

इसी विशेषतो दृष्ट अनुमान से भी द्योतकता निश्चित की जाती है। प्रकट कर्म मानधमा सभी प्राप्ति हैं। प्रकट म द्योतकत्व है। अतः सभी उपसर्गों में द्योतकत्व है। इसी तरह धातु भी सामा-यतो दृष्ट और विगोपतो दृष्ट द्विविध अनुमान

<sup>२६</sup> कैयट के अनुसार ये सब शुभ शब्द हैं। केवल 'युत्सु' मात्र उपसर्ग के प्रकार से का जाती है—  
'पुपत्यनुसारण रुदमुत्सु'। शुभशब्दानु विगालत्वात् । साधुत्वारयानाय तु कच्चिदुपायमा  
श्रिय शुभनि क्रियते। यथा प्रतिबोमोनुलोम इति ।—महाभाष्य १।२।२८, पृष्ठ १६८.

के बल से अनावाह है ।<sup>३७</sup>

भक्त हरि के अनुसार छोटकत्व भी दो तरह का होता है

(१) अनाविभूताविभाजन और

(२) सहाभिधान

छोटतमपि द्विविधम् । अनाविभूताविभाजनम् । अव्युदासप्रसंगे वा प्रकारान्तरव्युदासेन वस्यसिद्धवधारणम् । तद्वयथा प्रतिष्ठते उत्पुच्छप्रते अभिमनायत इति । तदपि प्रसिद्धाप्रसिद्धावियुतप्रयोगाणाम् । उपास्ते प्रपचति अघोत इत्येतौति यथा । सहाभिधानं वा । वाक् गोपायिता ब्रह्मणाधीनं जगुः सत इति ।

— वाक्यपदीय हरिवन्ति २।१६५ १६६ लाहौर संस्करण  
सप्तमवार के अनुसार भी उपसर्ग छोटक हात है— शब्दांतरोपग्रहम् तरेण समवि सन अस्त्यनिवमो या थस्त्य छोटका नियमन वाचकतामति प्रामताति सप्तकार आह ।—

— वाक्यपदीय २ १६६ हरिवन्ति हस्तगत

### उपसर्ग का वाचकत्व

उपसर्ग के सयोग से निया क जा अवांतर अथ जान पटल है उनक वाचक बुद्ध आचार्यों के अनुसार उपसर्ग है । निष्ठति कहने में स्थिर रहने का अभिव्यक्ति हानी है परन्तु प्रतिष्ठत कहने से चान का जो अर्थ भासित होता है वह प्र उपसर्ग के कारण अतः प्र का विग्रह अर्थ का वाचक मान लेना चाहिए । भक्त हरि ने उपसर्ग के वाचकत्व का निर्णय वाचका विशयाणाम् बट्ट कर किया है । यद्यपि वाक् के समाकरण उपसर्ग का छोटक ही मानते हैं परन्तु भाषा की दृष्टि से यह अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है कि उपसर्गों में कभी स्वतंत्र अर्थ थ । और उनके साथ मानने का अर्थ ही है उनमें वाचकत्व स्वीकार करता । महाभाष्यकार ने स्वयं कई उपसर्गों के अर्थों का उद्घाटन किया है जो प्रायः निश्चित म दिया हुए अर्थों से मिल सता है । आदि अभिमुख्ये वक्त प्र शब्द आदि कर्मणि निरय बहिभाव वक्त जसी उक्तिपा उपसर्गों के साथक हात का सबत करती हैं । वाद में उनका व्यवहार प्रतीक के रूप में होने लगा था । सम उपसर्ग समता सतुतन का प्रतीक था । अभि मामने अथवा प्रथम का प्रतीक था और अभिनेत्र अर्थ में भी प्रयुक्त होता था । अम्यता वाच (व शय या धन जिन पर पत्रचान के लिए नये चिह्न लग ही) में अभि शब्द गतिव अथ म प्रयुक्त है (अभिगता अभिवाये वने—यास २।१।१६) ।

३७ वाक्यपदीय २।२० १ तथा २० पर पुस्तकालय का टोका । भक्त हरि के उपसर्ग में वाचकत्व, छोटकत्व और सहाभिधान का मत है— शब्दक व वाचकत्व सहाभिधानकत्वमित्युपसर्गेषु त्रिविधा प्रति पत्तरायाणाम् । तत्रानभिहितार्थमवधारयन् वाचक इति प्रतिष्ठापन । तन्निबन्धमन्वन्नि यत्न- यत्ने प्रकृतं यत्नं दन्तुः शब्दे । स्वधारा प्रानिदशानिमानमान्यन्त्वाधिकवत् मन्ना निगादा नव धायक— वाक्यपदीय २।११० हरिवन्ति हस्तगत

भत हरि न वत्ति के विषय म उपसर्गों की साथकता कण्ठ खोत कर स्वीकार की है और उह मत्त्वाभिधायी कहा है—

त्रियाया साधने द्व ये प्रादयो ये व्यवस्थिता ।

तेभ्य सत्त्वाभिधायीभ्यो वति स्वार्थे विधीयते ॥

—वाक्यपदीय, वत्तिसमुद्देश ५८३

उद्धत ( उत+वत) निवत(नि+वन) इसवे स्पष्ट प्रमाण हैं कि उपसर्ग यहा साथक है। जयादित्य ने भी प्रादयो हि वत्तिरिपय ससाधना त्रियामाहु —(वागिका ६।२।१६२) कह कर उपयुक्त भायना की पुष्टि की ह।

बहुत से एन प्रत्यय ह जो उपसर्गों से स्वाथ म हुये है। यह तभी सम्भव है जब कि उपसर्गों के स्वतंत्र अर्थ हा। उगाहरण के लिये पाणिनि का यह सूत्र लाजिये अनुकाभिकामोक्त कविता ५.२।७४

इसम अनुक् (अनु+क्) अभिक् (अभि+क्) और अभीक् (अभि+इ+क्) उपसर्गों से वन प्रत्यय लगा कर बनाय गय है।

उत्तर उत्तम का उल्लेख पहन किया जा चुना है। भाष्यकार ने इस अनुत्पन्न शब्द होन का संकेत किया ह और कयट ने भी स्पष्ट ही कहा है कि उत गद्वात् तमवेव, नास्ति, अद्युत्पन्न एवतूत्तमगद् स्वभावात् त्रिप्रभतीनामत्यमाह (महाभाष्यप्रदीप ४।१।७८)। परन्तु कोई भी भाषाविदान का विद्यार्थी कयट के मत से सहमत नहान हा सकता। जसा कि उट्टा उट्टी म उन से प्रत्यय हुए है वस ही उत म तर और तम प्रत्यय हुए है। कयट न स्वयं उट्टा म उत को साथक माना ह (उदगतमस्यास्तीति ससाधनत्रियावचनात् उपसर्गान् प्रत्यय—महाभाष्यप्रदीप ४।२।१०८)

यह मायता कि उपसर्ग असम्बद्ध रूप म स्वतंत्र रूप म अर्थ व्यक्त नही करत पूण रूप से ठीक नही है। कविया न स्वतंत्र रूप म भी इनक साथक प्रयोग किय हैं जस—रेखामात्रमपिक्षुष्णाद् आ मनो वत्मन परम (रघुनश १।१७) इसम आ का स्वतंत्र रूप म प्रयोग हुआ है। जसा कि मलिनार्थ ने कहा है आ और मनु यहा दा गत है (आ मनो। मनुमारभ्यइत्यनिविधि। पबद्धय चतत। समासस्य-विभाषितत्वात्)। कुछ गत ता पूण रूप से उपसर्ग म ही वन है और आ न स्वतंत्र गत से जान पडत हैं। जस अणु गत। यास्क के अनुमार अनु उपसर्ग ही अणु गत बन गया है।<sup>५</sup> धन आर और मन्त शब्द का उपसर्गों के भीतर समावेश भी उपसर्गों के बाधकत्व का परिचायक है। कभी-कभी उपसर्ग तद्धित प्रत्यय के अर्थ म भी व्यवहृत जान दस गय है। दुर्गाचार्य ने प्रसंग द (कुमीनी की मतान) गत म प्र का अपत्याक माना है।<sup>२६</sup> प्रस्वप्न म भी प्र शब्द अपत्याक है। अभिरूपाशक्यायेया का भाव अभिरूपतमाय कया गया है अर्थात् अभि का प्रयोग यहा तमप अर्थ म हुआ है।

## धातु और उपसर्ग के सघात में वाचकत्व

कुछ विचारका की यह धारणा है कि उपसर्ग और धातु दोनों मिलकर सघात रूप में अर्थ के वाचक होते हैं। उपसर्गों का अलग विवरण अतः प्राप्ति की व्यवस्था के लिए है—

परमाथत धातूपसगसघात एव नियमावाची ल्यगुपदेगस्तु धातूपसगयोरश्च  
दियवत्साथ ।<sup>४</sup>

## क्रिया और अव्यय

अप्यया में कुछ विभक्तयप्रधान होते हैं और कुछ क्रिया प्रधान होते हैं। जिस हिरण्य पृथक् य नियमप्रधान अप्यय है। क्रिया विक्षेपण हान व कारण एव क्रिया प्रधान माना जाता है। पृथक् दन्त जसे प्रयोग अवश्य देय जाते हैं इसमें कोई क्रियापद नहीं है फिर भी एष प्रयोग स्विनि आदि क्रियापद व आक्षेप की आकाशा रखते हैं। क्रियाप्रधान हान व कारण तथा अप्यय हान के कारण इनका साथ लिंग और सख्या का योग नहीं होता। क्रिया में तो एकत्व सख्या मानी भी जाती है और पचतिरूपम जिस प्रयोगा में नपुंसक लिंग भी देखा जाता है परन्तु क्रिया प्रधान अव्यय व साथ लिंग और सख्या नहीं जुड़ते।

## क्रिया और रूढि शब्द

रूढि शब्द उस शब्द को कहते हैं जिसके विग्रह वाक्य में अप्यय अथ प्रतीत होता है और वक्ति में अप्यय।  
येषां तु वाक्यप्रथमोऽय एवाथ क्रिया सम्बन्धी वक्तिक्रमोऽय एव तेषां  
रूढिगत्वम् ।

— वाक्यपदीय हरिवक्ति २।३७ लाहौर संस्करण  
क्रिमी शब्द व विग्रह वाक्य में सादृश्य की कल्पना की जाती है। फिर भी क्रिमी को रूढि शब्द कहते हैं। जम तलपायिका। इस शब्द का विग्रह तल पिवति (तेल पीना है) व रूप में किया जाता है और इसमें यही अर्थ भवता है परन्तु वस्तुतः तलपायिका का अर्थ बोट विंगण है। तल पीना सादृश्य काई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये तलपायिका रूढि शब्द है।

रूढि शब्दों में क्रिया का आशय क्वचित् 'युपति' व लिए किया जाता है। गौरी शब्द की व्युत्पत्ति गच्छन्तीनि व द्वारा समझाई जाती है। परन्तु यह 'युपति' मात्र है वास्तविकता में इसका रूढि सम्बन्ध वाक्य नहीं है। अतः जा गमन नहीं करती है।

उस गाय को भी गौ कहते हैं और गमन करन वाली गाड़ी आदि को गौ नहीं कहते हैं ।

क्रिया का जो सम्बन्ध रुद्धि शब्दों के साथ है वही ताच्छीलिक शब्दों के साथ है । ताच्छीलिक भी एक तरह के रुद्धि शब्द ही हैं । रुद्धि शब्द में और ताच्छीलिक में केवल यही अंतर है कि रुद्धि शब्दों में किसी का गति से सम्बन्ध नहीं होता जबकि ताच्छीलिकों में कुछ का गति से सम्बन्ध होता है और कुछ का गति से सम्बन्ध नहीं होता । ताच्छीलिक शब्दों में क्रिया विषयक ताच्छीलिक के आश्रय से प्रयुक्त हात है यद्यपि उनमें क्रिया का आवेश नहीं रहता । उनमें कुछ गति से जुड़ते हैं जैसे आगामुक, प्रवपुव । कुछ नहीं जुड़ते । जैसे कामुक । प्रकामुक नहीं होता । व्याघ्र जैसे शब्द उपसर्ग सहित ही रुद्धि शब्द माने जाते हैं, इनके साथ किसी दूसरे गति की आश्रयता नहीं है ।

## क्रियाभ्यावृत्ति

एकवचनक तुल्यजातीय क्रियाओं का बार बार घटित होना अभ्यावृत्ति कहलाता है । अभ्यावृत्ति क्रिया में ही सम्भव है द्रव्य और गुण में नहीं । यद्यपि शब्द से प्रतिपाद्य द्रव्य और गुण स्वभाव सिद्ध होने हैं अभ्यावृत्ति साध्यस्वभाववाली क्रिया में होती है । कभी-कभी पुन पुन दण्डी 'पुन पुन स्थूल' जैसे स्थला में द्रव्य और गुण की भी अभ्यावृत्ति देखी जाती है परन्तु ऐसे स्थला में भी वस्तुतः सामर्थ्यवत् क्रिया की ही अभ्यावृत्ति होती है । पुन-पुन दण्डी भवति पुन पुन स्थूलो भवति इस रूप में क्रियापद का आश्रय ऐसे शब्दों में सम्भना चाहिए ।

महाभाष्यकार ने कहा है कि आवृत्ति अभ्यावृत्ति नहीं है अपितु अभिमुनी प्रवृत्ति को अभ्यावृत्ति कहते हैं ।<sup>४१</sup>

अभ्यावृत्ति भिन्न काल की क्रियाओं में होती है (अभ्यावृत्तिर्हि भिन्न-कालानां क्रियाणां भवति) — यास २।४।१७

## नित्य, आभीक्ष्ण्य और क्रियासमभिहार—

क्रियाभ्यावृत्ति की तरह नित्य और आभीक्ष्ण्य भी क्रिया में सम्बद्ध हैं । बार बार क्रिया की प्रवृत्ति का आभीक्ष्ण्य कहते हैं । आभीक्ष्ण्य साधारण रूप में ही सम्भव है द्रव्य में नहीं । द्रव्य के सिद्धरूप हान में उगम पुन-पुन प्रवृत्ति नहीं होती । नित्य भी आभीक्ष्ण्य का अर्थ रखता है । पाणिनि ने नित्यवीर्ययो ८।१।८ में नित्य शब्द का व्यवहार आभीक्ष्ण्य के अर्थ में किया है । जिन क्रियाओं को कर्ता प्रधानरूप में लगातार करता है उसे नित्य वृत्त है । आभीक्ष्ण्य और नित्य में अंतर या अंतर है । आभीक्ष्ण्य में क्रिया की आवृत्ति प्रकृत होती है जबकि नित्यता में क्रिया का

अविच्छेद जान पड़ता है। जैसे भूराया भुक्ष्या प्रजाति' इग वाय म त्रिया वसिन्द्र होने पर भी बार-बार गाता है और बार बार जाता है इग एग म त्रिया का घातित प्रतीत होती है। घत यदा घाभी ण्य है। जीरति जीरति यदन म त्रिया का अविच्छेद प्रतीत होता है यह जीता हा है यह अय भागित जाता है। उगम यह जीकर मरता है अथवा मर कर जीता है इग एग म घातित नहीं जात पन्ती। व्यक्ति का दाघकाल तक अत्रिच्छिन रूप म जीवित हाता हा ध्यात होता है।

त्रियागमभिहार गत्र त्रिया व बार बार जान का अथवा उगम घातित नीय स्वरूप का व्यसन करता है। त्रियागमभिहार का रूप प्रायः यत्र म घातित हाता है—

वीन पुय भगाथो वा त्रियागमभिहार ।—वागिका ३।१।२२

### त्रिया की प्रत्येक परिसमाप्ति—

सुष्ठु विनेप त्रियाघा को स्वर भत हरि त त्रिया के सम्बन्ध म यह भी त्रिवार त्रिया ह त्रि त्रिया का वाक्य म प्रत्येक परिसमाप्ति माना जाय अथवा सम्प्रदाय परिगमाप्ति अथवा उभयपरिसमाप्ति। वाक्यपदीम म तीना तरह व मत उल्लिखित है उनका विवरण संग्रह म यहाँ त्रिया गा रहा है।

एक मन यह है त्रि वाक्यायसुत्र त्रिया का अवस्थान प्रत्येक से सम्बद्ध है। उस अवस्थान का सामध्यलक्षण गत्र से व्यक्त त्रिया जाता है। सध एग एग द्वन्द्व म त्रिया का प्रत्येक म परिगमाप्ति देवी जाती है। उदाहरण व लिए भोजन की त्रिया (भजि त्रिया) को लीजिए। जब कहा जाता है तई ब्राह्मण अथवा एक ब्राह्मण अथवा देवन्त यन्त विष्णुमित्र भाजन कर तो इग वाक्य म ब्राह्मण वत व भाजन त्रिया का प्रत्येक म सम्बन्ध होता है। क्योंकि भोजन त्रिया का फल तपित है और वह प्रत्येक भोक्ता म अलग अलग होती है। भोजन के व्यापार भी जैसे पाद प्रक्षालन घासन पर बठाना दूसरे द्वारा परोमे जाना घाति—प्रत्येक नाकता के अलग अलग क्रिय जाते है। अथवा प्रत्येक भोक्ता स्वयं इन व्यापारों को करता है। इसलिये फल की दृष्टि से और स्वरूप को दृष्टि म भां भाजन त्रिया की परिसमाप्ति प्रत्येक म होती है।

भुजित्रिया नाटयत्रिया की तरह नहीं है। नाटयत्रिया अनेक साधन से साध्य है और सब साधनों व सहायण से फलवती होती है। भोजन त्रिया वही नहीं है। वह तो प्रत्येक कारक (यहा भाक्ता) से निवृत्त है। यह भेद वस्तुगति की दृष्टि से है। वस्तुगति नियत होती है [नियत स्वरूपा हि वस्तुगमयो वश्य त]।<sup>५२</sup> वस्तु-स्वभाव व कारण हा दीपन की प्रकाश त्रिया एक अधिवरण [आधार] पाकर भी चारा चार प्रकाश फल देता है। परंतु भोजन त्रिया विभक्त रूप म ही प्रत्येक म तपित फल उत्पन्न करती है।

इस मत का समर्थन शास्त्र में भी किया जा सकता है। व्याकरण का परिभाषित वृद्धि 'अ' आ 'ओ' इत्यादि प्रत्यय में परिणाम प्राप्त माना जाता है अर्थात् प्रत्यय वृद्धि मङ्गल कहा जाता है।<sup>४३</sup>

## क्रिया की समुदायपरिसमाप्ति

एक मत यह भी है कि क्रिया की परिणामाप्ति समुदाय में होती है। यदि यह कहा जाय 'दत्त, दत्त, और विष्णुमित्र दत्त' ता दत्त की क्रिया दत्तनीय वस्तु में समुदाय में परिणामाप्ति होती है। और अनक्रिया का पत्र भी युगपत् ही होता है।

जिस क्रिया में भिन्न भिन्न व्यापार विभिन्न कारणों के देय जाते हैं उसकी परिणामाप्ति समुदाय में सम्मिलितरूप में (संभूय) माननी चाहिए। जम, दत्त, वाच्य स्वात्म्यामोहन पश्चात् इस वाक्य में वाक्यायतन पदान की क्रिया में दत्त, वाच्य स्वात्मनीयानि विभिन्न कारणों का व्यापार भिन्न भिन्न है। कर्ता व भी दत्तान, प्रायत्ता अर्थात् वाच्य कर्ता कई व्यापार हैं। उग्युक्त सभी व्यापार मध्य रूप में पाव क्रिया में साधक मान जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि क्रिया चाह कत स्था हो या कमस्था पश्चात् क्रिया कम में ही समवेत होती है। कुछ लोग मानते हैं कि पश्चात् क्रिया के कम में समवेत होने पर भी उसमें अधिश्रयण, उपसर्जन, विनित्ति आदि कई व्यापार भी उसने अर्थ के भीतर हैं उन सबके द्वारा पश्चात् क्रिया निष्पन्न होती है अतः उसकी समुदाय में ही परिणामाप्ति माननी चाहिए।

गगा गत दण्डयन्ताम् जम वाक्यों से सौ व दण्ड की परिणामाप्ति समुदाय में ही दत्ती जाती है। यहाँ प्रत्यय गग का सौ का दण्ड अन्त अर्थात् नही है। यदि यहाँ प्रत्यय में दण्ड की परिणामाप्ति मानी जायगी तो शत के स्थान पर गगानि सत्या का अर्थय लना पड़ेगा जिससे वाक्य में विरोध होगा प्रधानकर्म का स्वरूप भ्रम होगा और वाप्ता की भी प्राप्ति नहीं होगी। अतः गगस्य पर ही शत दण्ड ममभा जाता है।

शास्त्र में भी वाक्यपदान्यायान्—दत्तान के अपनाने पर समुदायपरिसमाप्ति पत्र देखा जाता है। समास सज्ञा और अभ्यस्त सत्ता समुदाय की ही होती है।<sup>४४</sup>

<sup>४३</sup> वाक्यपदीय २।३७६ ३८४ आ, ऐ, औ प्रत्यय वृद्धिसहक हे इममें प्रमाण परिणाम का संज्ञेन है। प्रत्ये वृद्धमकनवादीनाम् ६।२।८७ मध्य प्रत्यय उत्तरपद रहते पूर्वपद उदात्त करता है कर्त्वादि और वद्ध' को छोड़ कर, मालादीना च ६।२।८८ यह सूत्र भा प्रत्यय उत्तरपद रहते पूर्वपद को आदि उदात्त करता है। वद्ध' यहाँ परिभाषिक है 'ता वृद्धिपश्चात्वात्परिणामवद्धम् २।३।७३ के अनुसार होता है। अथ आ, ए, आदि को प्रत्येक का वृद्धि सहा केव होगी तभी मात्रादि उपपन्न सत्ता (२।३।७३) से वद्ध कहे जा सकेंगे—

—पुण्यरत्न वाक्यपदीय २।८४



## उभयपरिसमाप्ति

कुछ क्रियाप्रा म ऐसा देखा जाता है कि उनकी परिसमाप्ति प्रत्यक् म भी और समुदाय म भी एक साथ ही देखी जाती है। जैसे यह कहा जाता है कि वपल को इस मंत्र म घाना मना है ता यथा नियधत्त्रिया का सबध वपल स एकाकीरूप म भी हाता है और वपलमय के साथ भी होता है। ग्रास्त्र म भी णत्व करन म अट वयग वयग आडनुम आदि का यवधान प्रत्यक् रूप म और सामूहिकरूप म भी माना जाता है।<sup>४४</sup>

वस्तुत वाक्याथक्रिया की परिसमाप्ति कही प्रत्यक् म होती है और कही समुदाय म होती है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि केवल प्रत्यक् म ही हो अथवा वाक्य म ही हो -

प्रत्येक वाक्यपरिसमाप्ति समुदाय वाक्यपरिसमाप्तिरित्येत न राजा ज्ञायमान यवस्थाप्यते ।—पुण्यराज वाक्यपदीय २।३८५

## क्रिया एक अथवा अनेक

क्रियाओं के सम्बन्ध म भत हरि ने उनके एकत्व और नानात्व पर भी विचार किया है। भुजि क्रिया एक है अथवा अनेक। एक भी है और अनेक भी है। भोक्ता की दृष्टि स भोजन क्रिया का समारम्भ होना है उहा वह एक ही मानी जायगी। क्योंकि तत्त्वित्व समान है। परन्तु देशभ्र बालभद आदि के कारण एक होने हुए भी अनेक जान पत्ती है। इसक विपरीत कुछ लोग मानत हैं कि भोजनभ्र स फलभ्र होता है। इसलिए भोजन क्रिया म भी स्वभावत भद माना जायगा। उसम यदि अनेक की प्रतीति होती है तो इसलिए होती है कि भोजन यापार के पात्र आदि प्राय एन स भासित हात है। पात्र के अनेक स उसम एकत्व और स्वभावत अनेकत्व है। फल की दृष्टि स भी क्रिया म भद जान पत्ता है। कोई स्वग क लिए यजन करता है बाद पुत्र क लिए कोई धन के लिए। एन पत्र भद स कृतिकत यता म भी भ्र आ जाता है और इस कारण क्रिया म अनेकत्व भनलता है। परन्तु वस्तुत क्रिया एन है। (एसाहि क्रिया महाभाष्य १।२।६४)। आख्यात वाय क्रिया सबभ्र निवत नी हाती है यही सिद्धांत है। पत्र और साधनभ्र स यजन—क्रिया म भ्र अथ का दृष्टि म भल ही अगगत हा गत्र की दृष्टि स वह सग सामान्यरूप म एन है। प्रत्यय या आवृत्ति क कारण क्रिया का एनक विपटित नहीं हाता। क्रिया क एकात्र की रणा क लिए भन हरि न क्रिया म व्यक्तिभाग और जातिभाग की कल्पना का है —

व्यक्ति क्रिया व्यक्तिभागरूपकारे प्रवतते ।  
सामान्यभाग एवास्या व्यक्तिभ्यस्य सापक ॥<sup>४५</sup>

<sup>४५</sup> दृश्य वाक्यं य ०। ५८७-३६०  
<sup>४६</sup> सामान्यं य ०। ६२५

त्रिया का एक व्यक्तिभाग है और एक उसका सामान्यरूप जातिभाग है। समीहित सिद्धि के लिए कभी व्यक्तिरूप में त्रिया प्रवृत्त होती है और कभी जातिरूप में। वाधा विकल्प, समुच्चय, अत्रिणय, प्रणमा<sup>४७</sup> आदि में त्रिया व्यक्तिभाग के रूप में प्रवृत्त होती है क्योंकि त्रिया के सामान्यरूप से प्रवृत्ति मानने पर समुच्चय विकल्प आदि की उपपत्ति नहीं हो सकती। अतएव त्रियाघ्रा व अध्याहार का समुच्चयपद्धत है। तुल्य वनवासी अद्विराधी त्रियाघ्रा का अध्याहार भी समुच्चय है। जस—देवदत्त भोजय सवणेन सर्पिया शाकेन च, अथवा—

अहरहनयमानो गामश्व पुरुष पशुम ।

यवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुग्ध ॥

इसमें एक ही नयति त्रिया में गौ अश्व पुरुष आदि का समुच्चय है। इस स्थिति में क्रिया का जातिस्वरूप प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि जाति में समुच्चय सम्भव नहीं है। विकल्प भी तुल्यवत्त्व के विरोध में होता है। जस कौण्डिन्य को दधि और तक्र दिया जाय में विकल्प है। यहाँ भी त्रिया व्यक्तिभाग के द्वारा उपकारक है। इसी तरह अत्रिणय आदि स्थानों में समभना चाहिए। परन्तु नोक-व्यवहार की सिद्धि के लिये क्रिया जातिरूप में भी प्रवृत्त होती है जस पचति, यजत आदि में त्रिया का सामान्य रूप ही वाक्याय में अधिन उपवागी होता है। कालभेद अथवा साधनभेद से क्रिया-भेद की प्रतीति त्रिया के जातिरूप का विघातक नहीं होती।

जहाँ त्रिया विजातीय और विभिन्नपदवाच्य है परन्तु साधन एक ही है वहाँ भी कालभेद से साधन में भेद मानकर त्रिया की प्रयत्न के साथ परिणामाप्ति सिद्ध होती है जस अथा भयता भयता दीप्यन्ताम म अथ साधन एक शान्तापात्त है और क्रिया भिन्न जाति वाली और भिन्न शान्तापात्त है फिर प्रतिपत्ति बला में अथ शब्द से वहाँ गाडी की धूरी और जूब की प्रतिपत्ति होने से विभिन्न क्रियाघ्रा का इन विभिन्न साधनों से पृथक् पृथक् सम्बन्ध हो जायगा। क्योंकि विभीतक का ही भक्षण होना है न कि शकटाथ अथवा त्वनाथ का। इसी तरह शकटाथ का ही भजन होता है न कि विभीतक अथवा दवनाथ का। इसीलिये त्रिया का योगपद्य अवस्था में भी क्रमवाली माना जाता है—

त्रिया तु योगपद्येऽपि क्रमह्पातुपातिनी<sup>४८</sup> ।

वस्तुतः क्रम और योगपद्य शब्द की शक्तिविशेष है जिन्हें क्रम भेदशक्ति और ससग-शक्ति कह सकते हैं। ये शब्द के आधार हैं जो शब्द से भिन्न से जान पड़ते हैं।

४७ त्रिप्रकारा हि प्रशसाशब्दा । केचित् जाति शब्दा परार्थे प्रयुज्यमाना प्रशसामाचक्षते यथा सिन्हादे दत्त इति । कश्चिद् गुणशब्दा । गुणशुक्तिसम्बन्धन प्रशसा वचना भवन्ति यथा रमणीयो आम शोभन पाचक इति । कश्चिद् रूपशब्दा मनल्लिकादयः । तेषां प्रशसैव पदार्थ —  
याम २।१।६६

४८ वाक्यरदीय २।४७।

### आख्यातशब्द धापयम्

वाक्य का मुख्य क्रिया पर धापयम्बिधा है। अर्थात् क्रिया का निगार वाक्य की दुष्टि म भी क्रिया है। वाक्य का निगारवाक्य व धापयम् म वाक्य सम्बन्धी प्राड तरह व कितने उक्तिगत है। उक्त म परन्तु आख्यात शब्द है। कुछ निगारवाक्य अनुसार निगारवाक्य वाक्य है। कभी कभी एत ही क्रियाएँ स कर्ता धोर क्य व क्रय सहित बाध दगा जाता है। अग कर्ता म। कर्ता क्रिया म दव कर्ता का धोर जन क्य का बाध हो जाता है। परन्तु कर्ता वाक्य है। १५

वाक्यपरारविपण वाक्यम्। यदा आख्यात पत्र म एव क्रियाएँ का प्ररण हाता ह। प्रव्य कर्ता विपण सन्नि आख्यात वाक्य ह। प्रव्य महित जस उक्त पठति। वाक्य महित जस आन्त पचति। क्रियाविपणसहित अग मुष्टु पचति। म मय प्रत्य अलग धोर समुन्निरूप म भी गहीन होत है। प्रव्य यद्यपि कर्ता धोर विपण भी हाता ह फिर भी प्रपचाय उसरा प्ररण यहा क्रिया गया ह। प्रत्यात सविपण अन्ता ही लक्षण पर्याप्त ह। प्रत्यात पत्र स यदा क्रिया की प्रधानता लीत ह इत्यर्थि दव दत्तेन गमितव्यम् भी वाक्य ह। यह वाक्य का गार्वीय लक्षण ह। कयट व अनुसार वाक्य का लौकिक लक्षण अर्थवत्ताक वाक्य सावाश चद विभाग स्यात् ५ है कर्ता सानाक्ष एवाय पद समूह को वाक्य कहत है। यह भीमासका का मत है जिम कयट न लौकिक माना है। यह वाक्यलक्षण व्याकरणान्त म माय नहीं है। क्रय दण्णे हराणेन (यह लाठी है इसस पाया का ल जाओ) आन्त पच तव भविष्यति (भोजन बनाओ कर्ता इनम दो आख्यातएँ है। इह दो वाक्य मान कर ही वातिकार ने ऐसे स्याता म निघात आदि के निवेध के लिए समानवाक्ये निघातपुष्पमदस्मदादेगा ८ इस वातिक म समानवाक्य गार रखा है। लौकिक अथवा भीमासक वाक्यलक्षण के अनुसार उपयुक्त वाक्यो म एक वाक्य होने स निघात आदि की प्राप्ति होने लगगी। अत वातिकार का ही वाक्यलक्षण अधिक उपयुक्त है।

वातिकार व इस वाक्यलक्षण व अनुसार ही व्रजानि देवन्त जसे वाक्य म पाणिनिमूत्र ८।१।१६ स निघात सिद्ध होता है। क्वाचि यहा जान की क्रिया सवोध्य देवदत्त व जाने की क्रिया स अथवा यज्ञतविपयक जाने की क्रिया स पृथक होने के कारण विगिष्ट मानी जानी है फलत देवदत्त क्रियाविपण होने व कारण वाक्य की परिभाषा के भीतर आ जाता है। क्रिया का विपण सामानाधिकरण धोर क्यधि करण्य दाना रूप म देया जाता है। शोभन करोति मुष्टु करोति जस वाक्या म क्रिया की मुष्टु आदि विपण युक्त रूप म ही प्रतीति होती है। इसलिय करोति क्रिया

५६ वाक्यदोष २।३२७  
 ० भीमासायन २।१।४६ महाभाष्यप्रदीप ८।१।१६  
 १ पाणिनि सूत्र ८।१।१८ पर धार्तिक

का मुष्टु शोभन के साथ सामानाधिकरण्य है। असत्यभूतक्रिया के विशेषण होने के कारण ही त्रियाविशेषण सदा नपु सक लिंग वाले ही होते हैं। क्रिया के निवृत्य होने के कारण क्रियाविशेषण म कर्मत्व भी स्वाभाविक ही है। व्रजानि देवदत्त म वयधि-करण्य के रूप म विशेषण है। यहा देवदत्त और जाने की त्रिया का सामानाधिकरण्य नहीं है। देवदत्त को आमरण करके जान म केवल बिना आमरण क जाने की अपेक्षा आमरणपूर्वक जान वाली त्रिया विलक्षण हो गई है इसलिय आख्यात इम वाक्य म सविशेषण है। नागेश के अनुसार सविशेषण का अर्थ साक्षात् अथवा परम्परा विशेषण सहित है अत नद्यान्तिष्ठति कूले' मे समान वाक्यत्व सिद्ध होता है।

भद्र हरि न वार्तिककार के दूसरे वाक्यलक्षण पर भी विचार किया है और वह है 'एकतिङ वाक्यम'। वार्तिककार के प्रथम वाक्य लक्षण म आख्यात शब्द म एकत्व की अविवक्षा की शका किसी को न हाने पावे इसलिय ही वार्तिककार न 'एक तिङ वाक्यम पुन कहा है अर्थात् दा आख्यात वाले वाक्य एक वाक्य न मान जाय यह उनका अभिप्राय है। परन्तु पाणिनि न तिङतिङ ८।१।२८ सूत्र मे अतिङ ग्रहण किया है। इससे जान पड़ता है कि उनके मत म अनक तिङ तपद के रहते हुए भी यदि अर्थ साक्षात् है तो एक वाक्य ही मानना चाहिये।

कुछ लोग मानते हैं कि वार्तिककार और सूत्रकार म यहा मतभेद नहीं है। वार्तिककार का एकतिङ त्व प्रधानतिङ त की अपेक्षा प्रतिपाद्यमान है अत सूत्रकार के मत के अनुकूल ही वार्तिककार का भी मत है। परन्तु कुछ लोग इम व्याख्या को स्वीकार नहीं करत और दोना मुनिया म वाक्यविषयक मतभेद मानत हैं।<sup>५२</sup> कुछ लोग अनेक त्रियापत्ता वाले वाक्या म भेदाभेद सिद्धांत को अपनाते हैं। पश्य मृगो याति इस वाक्य म दो तिङ तपद हाने के कारण यहा वाक्यभेद है साथ ही मृग पद का याति पद से और उसका पश्य से योग हाने के कारण एक ही वाक्य है अभेद है—

तिङ ता तरयुक्तेषु युक्तयुक्तेषु वा पुन ।

मृग पश्यत यातीति भेदाभेदो न (च) तिष्ठत ॥<sup>५३</sup>

## क्रियावाक्यार्थवाद

वाक्यपदीय म वाक्याय छ प्रकार के विवक्षित ह—सप्तम, प्रयोजन ममृष्टि निरा-काशपदाय प्रतिभा और त्रिया। इनम त्रियावाला पश त्रिया वाक्यार्थवाद क नाम से प्रसिद्ध है। इसके भी पश वाक्यार्थवाद और कर्मवाक्यार्थवाद नाम के अवांतरभेद होत ह। जो लोग आख्यातपद का वाक्य मानते ह उनके मत म त्रिया ही वाक्यार्थ है। त्रिया के अनुपग से ही पदाय की प्रतीति हानी है। बिना त्रिया के किमी वस्तु क अस्तित्व अथवा नास्तित्व का पना नहीं चलता। जहा एक ही पद निराका न सत्ता का प्रतिपादक हाता है वहा भी है था नहीं हुआ आदि रूप म अनुभूति हाने पर ही वाक्य की परिसमाप्ति दखी जाती है। अत एमे स्थला म भी किमी न किमी रूप में त्रियापत्ता का सम्बन्ध अनिवाय है। त्रिया वाक्यार्थ हाने क कारण ही एक

५२ पश्यराज वाक्यार्थवाद २।४।१०

५३ वाक्यार्थवाद २।४।२२

## आख्यातशब्द वाक्यम्

वाक्य का मूलतः क्रिया पर ध्यानस्थित है। भू-शक्ति क्रिया का विचार वाक्य की दृष्टि से भी किया है। वाक्यपदीय त्रितीयपाठ के आरम्भ में वाक्य सम्बन्धा आठ तरह के विलक्षण उल्लिखित हैं। उनमें से पन्ना आख्यात शब्द है। कुछ विधानों के अनुसार क्रियापद वाक्य हैं। कभी कभी एक ही क्रियापद से कर्ता और कर्म के अर्थ सहित बोध दया जाता है। परन्तु यद्यपि वाक्य है।<sup>४६</sup>

वाक्यपदीय वाक्य वाक्यम्। पर आख्यात पद से एक क्रियापद का अर्थ होता है। अर्थ वाक्य वाक्य विधान सहित आख्यात वाक्य है। अर्थ सहित जस उच्च पदति। वाक्य गहित जस घोषण पति। क्रियाविधानगति जस सुष्ठु पति। य सब अलग अलग और समुच्चिन् रूप में भी गहीत होत हैं। अर्थ सहित वाक्य और विधान भी हाता है फिर भी प्रपञ्च उसात प्रहण यहा किया गया है। अर्थ सहित वाक्यपदना ही लक्षण पर्याप्त है। अर्थ सहित पद से यहा क्रिया की प्रधानता सहित है इतिथि दब दत्तेन गमितव्यम् भी वाक्य है। यह वाक्य का शास्त्रीय लक्षण है। कर्म के अनुसार वाक्य का लौकिक लक्षण अर्थवत्त्वादेव वाक्य साक्षात् चद् विभाग स्यात् ५ है अर्थात् साक्षात् एकाथ पद समूह को वाक्य कहत है। यह भीमासक का मत है जिस कर्म न लौकिक माना है। यह वाक्यलक्षण व्याकरण ज्ञान में माय नहीं है। अर्थ दण्डा हरानन (यह लाठी है इससे गाया को ल जाया) घोदन पच तव भविष्यति (भोजन बनाया तुम्हारा अर्थवा तुम्हारे स्वामी का होगा) जस वाक्य वस्तुतः दो वाक्य माने जाते हैं।

क्याकि इनमें दो आख्यातपद है। इन्हें दो वाक्य मान कर ही वाक्यकार ने ऐसे स्थानों में निघात आदि के निषेध के लिए समानवाक्य निघातपुष्पदस्मवादेना<sup>४७</sup> इस वाक्य में समानवाक्य दत्त रत्ता है। लौकिक अर्थवा भीमासक वाक्यलक्षण के अनुसार उपयुक्त वाक्यों में एक वाक्य होने से निघात आदि की प्राप्ति होन लयागी। अतः वाक्यकार का ही वाक्यलक्षण अधिक उपयुक्त है।

वाक्यकार के इस वाक्यलक्षण के अनुसार ही ब्रजानि देवन्त जैसे वाक्यों में पाणिनिदूत ८।१।१६ से निघात सिद्ध होता है। क्योंकि यहा जाने की क्रिया सर्वोध्य देवदत्त के जाने की क्रिया से अर्थवा यज्ञतविषयक जाने की क्रिया से पृथक् होने के कारण विशिष्ट मानी जानी है फलतः देवदत्त क्रियाविषयण हान के कारण वाक्य की परिभाषा के भीतर आ जाता है। क्रिया का विधान सामानाधिकरण्य और व्यधि करण दाना रूपा में देखा जाता है। शोभन करोति सुष्ठु करोति जैसे वाक्यों में क्रिया की सुष्ठु आदि विशेषण युक्त रूप में ही प्रतीति होती है। इसलिये करोति क्रिया

४६ वाक्यपदीय २।३२७  
 ४७ भीमासक २।१।४६ मत्प्रत्ययप्रदीप ८।१।१६  
 ४८ पाणिनि सूत्र ८।१।१८ पर धार्तिक

का सुष्ठु, सोमन के साथ मामानाधिकरण्य है। असत्त्वभूतक्रिया के विशेषण होने के कारण ही त्रियाविशेषण सदा नपुंसक लिंग वाले ही होते हैं। त्रिया के निवृत्त्य होने के कारण क्रियाविशेषण में कर्मत्व भी स्वाभाविक ही है। प्रजाणि देवदत्त में वयधि-करण्य के रूप में विशेषण है। यहाँ देवदत्त और जाने की त्रिया का सामानाधिकरण्य नहीं है। देवदत्त को ग्रामत्रण करके जान में केवल बिना ग्रामत्रण के जान की अपेक्षा ग्रामत्रणपूर्वक जान वाली त्रिया विनयण हो गई है इसलिए आख्यात इस वाक्य में सविशेषण है। नागेश के अनुसार सविशेषण का अर्थ साक्षात् अथवा परम्परा विशेषण सहित है अतः नद्यान्तिष्ठति कृते में समान वाक्यत्व सिद्ध होता है।

भट्ट हरि न वातिकवार के दूसरे वाक्यलक्षण पर भी विचार किया है और वह है एकतिङ् वाक्यम्। वातिकवार का प्रथम वाक्य लक्षण में आख्यात शब्द में एकत्व की अविवक्षा की शका किसी का न होने पावे इसलिए ही वातिकवार ने 'एकतिङ् वाक्यम्' पुनः कहा है अर्थात् दा आख्यात वाक्य वाक्य एक वाक्य न माने जाय यह उनका अभिप्राय है। परन्तु पाणिनि ने तिङ्तिङ् ८।१।२८ सूत्र में अतिङ् ग्रहण किया है। इससे जान पड़ता है कि उनके मन में अनेक तिङ्-तपद के रहते हुए भी यदि अर्थ साक्षात् है तो एक वाक्य ही मानना चाहिये।

कुछ लोग मानते हैं कि वातिकवार और सूत्रकार में यहाँ मतभेद नहीं है। वातिकवार का एकतिङ्-त्व प्रधानतिङन्त की अपेक्षा प्रतिपाद्यमान है अतः सूत्रकार के मत के अनुकूल ही वातिकवार का भी मत है। परन्तु कुछ लोग इस व्याख्या को स्वीकार नहीं करते और दोनों मुनियों में वाक्यविषयक मतभेद मानते हैं।<sup>५२</sup> कुछ लोग अनेक त्रियापदा वाले वाक्य में भेदाभेद सिद्धांत को अपनाने हैं। परन्तु मृगो याति इस वाक्य में दो तिङ्-तपद होने के कारण यहाँ वाक्यभेद है साथ ही मृग पद का याति पद से और उनका पश्य से योग होने के कारण एक ही वाक्य है अर्थात् भेद है—

तिङ् ता तरयुक्तेषु युक्तयुक्तेषु वा पुनः।

मृग पश्यत यातीति भेदाभेदो न (च) तिष्ठत ॥<sup>५३</sup>

## क्रियावाक्यार्थवाद

वाक्यपदीय में वाक्यार्थ छः प्रकार के विवक्षित हैं—ससग प्रयोजन मसृष्टि निराकाशपदाथ, प्रतिभा और क्रिया। इनमें क्रियावादा नाम क्रिया वाक्यार्थवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इसका भी फलवाक्यार्थवाद और कर्मवाक्यार्थवाद नाम के अन्तर्गत भेद होते हैं। जो लोग आख्यातपद का वाक्य मानते हैं उनका मत में क्रिया ही वाक्यार्थ है। क्रिया के अनुपग से ही पत्था की प्रतीति होती है। बिना क्रिया के किसी वस्तु का अस्तित्व अथवा नास्त्व का पता नहीं चलता। जहाँ एक ही पद निराकाश सत्ता का प्रतिपादक होता है वहाँ भी है या नहीं हुआ आदि रूप में अनुभूति होने पर ही वाक्य की परिममाप्ति देखी जाती है। अतः ऐसे स्थलों में भी किसी न किसी रूप में त्रियापद का सम्बन्ध अनिवाय है। क्रिया वाक्यार्थ होने के कारण ही एक

<sup>५२</sup> पुण्यराज, वाक्यपदीय २।४५०

<sup>५३</sup> वाक्यपदीय २।४५०

त्रिया दूसरी त्रिया से विनिष्ट होती है, फलतः भिन्न होती है। त्रिया के आकार और साधन नियत होते हैं इसी से त्रिया में वसिष्ठ्य आता है। याच्य में त्रिसपणा (साधनो) के प्रयोग त्रिया के मुख्य रूप के उच्चारण में गहाया होता है।<sup>५४</sup> जब फल पर अधिक दृष्टि रहती है तब त्रिया का प्रयोग फल होता है। फल पर त्रिया फल का जगभूत हो जाती है। एक स्थला में ही फलवाक्यायवात् का सिद्धान्त धरनाया जाता है। इस भन्वृत्ति ने साम्यप्रयुक्ततायद्गानि फल तथा योजकम् (वाक्यपदीय २।४३४) के रूप में व्यक्त किया है। फलवाक्यायवात् में भी त्रिया कम के लिए होती है। इस दृष्टि से कम त्रिया से प्रधान ठहरता है —

पक्षित्रिया करोमीति कमत्वेनाभिधीयते  
पक्षित् करणरूप तु साध्यत्वेनप्रतीयते ॥५५

फलवाक्यायवात् कमवाक्यायवात् और त्रियावाक्यायवात् एक ही के विभिन्न पहलू हैं। त्रिया मुख्य है। कम त्रिया से ही निष्पन्न होता है और फल तो फल है। त्रिया के बिना फलकी सत्ता नहीं है। इसीलिये भन्वृत्ति ने त्रियावाक्यायवात् को महत्त्व दिया है।

वस्तुतः भन्वृत्ति के अनुसार प्रतिभा वाक्याय है। प्रतिभा पर भाग विचार किया जायगा। परन्तु वाक्यायरूप प्रतिभा भी त्रियात्रि ही है। पुण्यराज ने इसकी पुष्टि में निम्नलिखित वाक्यपदीय का श्लोक उद्धृत किया है यद्यपि यह श्लोक छप वाक्यपदीय में नहीं मिलता —

प्रतिभा यत् प्रभूतार्था (प्रभूत्यर्था) यामनुष्ठानमाश्रितम् ।  
फल प्रसूयेत यत् सा त्रिया वाक्यगोचर ॥

—वाक्यपदीय २।१ की टीका में पुण्यराज द्वारा उद्धृत ।

## कालविचार

शक्त्यात्मदेवतापक्षे भिन्न कालस्य दशानम

—वाक्यपदीय ३ वानममुद्देश ६२ ।

आगयातार्यो भ क्रिया क वाद प्रमुख स्यान् काल वा है । भन हरि न काल पर विचार एव दार्शनिक की भाति मिथा है । इनके काल सत्र धी अपन स्वतन्त्र विचार हैं जो व्याकरण मप्रत्यय म प्रसिद्ध नहीं रह हैं । आगे हम दंगें कि इनका काल-दशन बश्मीर शवागम की मायनाग्रा मे मेल साता है । परंतु अपन स्वभाव के अनुसार भन हरि न काल सम्बन्धी उन दार्शनिकवादा का भी वाक्यपदीय मे सकेत किया है जो उनके समय तक प्रसिद्धि पा चुके थे ।

अपने दंग म काल सम्बन्धी विचार वैदिक काल म ही प्रारम्भ हो गय थ । यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि ममार परिवर्तनशील है । रात बीतती है । दिन आता है । गरद, हेमन्त आदि वारी वारी से आत जात रते हैं । ग्रह और नक्षत्र अनवरत गतिशील हैं । कोई भी वस्तु अपन आप म क्षण भर स्थिर नहीं रहती । वह या तो बढ़ती रहती है अथवा घटती रहती है । इस परिवर्तन की अवस्था विज्ञेप के बोध के लिये और अवग्याग्रा के पूवापरसबध ज्ञान के लिये किसी न किसी उपाय का आश्रय लेना पड़ेगा । वह उपाय काल है । ब दिक् ऋषिया न ऋत नाम की एक शक्ति का कल्पना की थी जो माव भीम नियम के रूप म थी ।<sup>१</sup> ऋतावा(वरुण) यह दखन थ कि सूर्य और चन्द्र, नरिया तथा सभी जन यथास्थान यथावसर अपने अपने व्यापार करत हैं । वरुण कालन थ । वे बारह महीना को और उनस उत्पन्न हान वाले मास (मलमास) का जानते थे —

वेद मासो घतव्रतो द्वादश प्रजावत ।

वेदा य उपजायते । ।<sup>२</sup>

१ अत शब्द का सम्बन्ध अवेग्ना के अश शब्द से है । अवेग्ना में अश क क रूप मिलत हैं । अश, अशरी परा और परत । ऐतन वैदिक अत शब्द का ह। रूपांतर ह । यह निरिञ्चन सा है कि आयकाल में, जबकि भारतीय आय प्रार इरानी आर्य अलग नहीं हुए थ अत वा कान पूण रूप म फैल चुका था । अवेग्ना के परत ग्रीक वेद के अत दोनों का अथ अपरिवर्तनीय शास्त्रन नियम है ।

२ ऋक्संहिता १।२५।८



वत्सर परिवत्सर आदि शब्द तथा भूत भव्य इत्यादि बाल भूत घातन गण  
ऋग्वेद म मिलन है। बाल दशन व बीज भी ऋग्वेद म हैं। यह कहा गया है कि  
दश बाल आदि पुरुष के ही विचार है। सूर्य और चन्द्र पुरुष स ही प्रसूत हैं वसन्त  
ग्रीष्म शरत् पुरुष की त्रिया है (वसन्तो ऋष्यामीदारय ग्रीष्म इध्म शरद् हवि) ।<sup>३</sup>  
बाल भी पुरुष ही है

पुरुष एषेद सद्य यद्भूत यच्च मध्यम ।<sup>४</sup>  
अथवत्स म वाता परमदेवता के रूप म स्थित है। बाल ही सृष्टा है। बाल  
ही भर्ता है। बाल म सन कुछ प्रतिष्ठित है। बाल स विन्व वा विनाम हुआ है —

बाले भूतिमसजत बाले तपति सूर्य ।  
बालो ह विश्वा भूतानि बाले चक्षु विपश्यति ॥५

कालादाय समभवन कालाद ब्रह्म तरो दिग ।  
बालेनोदेति सूर्य बाले निविणते पुन ॥६

बाल व स्वरूप वा विचार उपनिषदा म मिलता है। सभी भाव किसी देग  
और किसी बाल म उत्पन्न होत है। अत बाल रचना प्रपंच वा कारण हो सकता है  
कि नहीं इसका विचार विमश उपनिषदा म मिलता है —

काल स्वभावो नियति यदच्छा  
भूतस्य योनि पुरुष इति चिन्त्या ।<sup>७</sup>  
पुराणा म बाल व देवता स्वरूप वा ही अधिक विवरण है। महाभारत म

बाल पंचति भूतानि बाल सहरत प्रजा आदि व रूप म अथववदोगत बाल के  
अलौकिक महिमा वा विवरण पाया जाता है। भन हरि न इन सब मता वा सकत  
गवया मदेवतापक्ष भिन बालस्य दशनम इम वाक्य से किया है और य सब विचार  
आगे व बाल दशन के विवरण म पीठिका रूप स उपयोगी है।

बाल गण की युक्ति जटिल नहीं है फिर भी प्रकारभद दमा जाता है।  
यास्क व अनुसार बाल शब्द गत्ययक बालय से निष्पन्न हुआ है—बाल बालयते  
गति क्रमण ।<sup>८</sup> पाणिनीय धातुपाठ म कन शब्दसंस्थानयो कल तपे कल गती सन्धान  
च इस रूप मे कल धातु के कई अर्थ उल्लिखित है। क्षीरस्वामी ने कलयत्प्रायु बाल  
एसा कहा है ।<sup>९</sup> फिर भी स कला बालयन सर्वा कालाख्य लभत विभु ।<sup>१०</sup> बालो

३ षट्सहिता, पुरुषसूक्त १०।६०

४ बाला १०।६०।२

५ अथव सहिता १।१५.२।६

६ बटी १।१५.४।१

७ श्रेणारवतरोपनि द १।२

८ निरवत २।२५।१

९ अमरकोश १।१।५६

१० वाचस्पतदीय ३ कालसमुत्पेश १।४

उय कलनामक ' 'काल कलयनामह ' ' इत्यादि वाक्या म इमका प्रयोग गति और सग्यान अथ म ही बहुधा दखा जाता है । इसनिये काल शब्द का व्युत्पत्ति लब्ध अथ गति और सग्यान है । वान के विचार मे व्युत्पत्तिल ध अथ का भी घाडा सा प्रभाव है ।

## न्याय-वैशेषिक के मत में काल

कानसमुद्देश की प्रथम कारिका म भत हरि ने काल के सम्प्र ध म 'पाय-वैशेषिक' दशा के मत का उल्लेख किया है । न्यायिक और वैशेषिक काल की वाह्य सत्ता मानत हैं । उनके मत म काल द्रव्य है । कान की सत्ता अनुमान स सिद्ध होती है । पर अवर चिर शिप्र श्रान्ति लिगा क द्वारा काल की सत्ता का अनुमान हाना है

काल परापरव्यतिक्तरयोगपटचिरक्षिप्रप्रत्यर्वालगम । तेषा विद्येषु पूव प्रत्ययविलक्षणानामुत्पत्ती श्रयनिमित्ताभावात् यदत्र निमित्त स काल ।<sup>१३</sup>

पर अपर चिर शिप्र श्रान्ति का ज्ञान श्रान्तिय के परिस्पन्द क द्वारा जाना जाना है । केवल श्रान्तियपरिस्पन्द का ही काल इसलिए नहीं कह सक्त कि काल युगपदादि ज्ञान स भी श्रुमय होता है । केवल श्रान्तिय परिवतन म युगपदादि ज्ञान सप्त का सम्भव नहीं है । वैशेषिक के मत म काल सभी कार्यों का हतु है । नित्य है । विभु है । एक है ।

न्यायिका म रघुनाथशिरामणि काल की पृथक् सत्ता अपीकार नहीं करते । उनका मत म दिक् और काल ईश्वर के अनिरिक्त नहीं है उनका ईश्वर म ही अन्तर्भाव सम्भव है

दिवकालो नैश्वरादनिरिच्छते मानाभावात् । तत्र तत् निमित्तविशेषसमवधा नवनाद ईश्वरादव तत तत् कायविशेषाणामुत्पत्ते ।<sup>१४</sup>

कि तुरघुनाथ शिरामणि ने सक्डा वप पूव भनृ हरि ने इस मत का प्रतिपादन भी वाक्यपदीय म किया था जो निम्नलिखित कारिकाया स स्पष्ट है—

चतयवत स्थिता लोके दिवकालपरिकल्पना ।

प्रकृत प्राणिना ता हि कोऽयया स्वापिच्छति ॥<sup>१५</sup>

कालविच्छेत्परूपेण तदेवकमवस्थितम् ।

स ह्यपूर्वापरो भाग पररूपेण लभ्यते ॥<sup>१६</sup>

११ मूयसिद्धान्त ११०

१२ भगवद्गीता १०।३०

१३ प्रशान्त्यान्भाष्य, पृष्ठ ३३०

१४ पलाय तत्व निरूपण, पृष्ठ १०

१५ वाक्यपदीय ३, दिक् समुदेश १८

१६ वदा मान्य समुदेश ४२



ने इसे इस रूप में व्यक्त किया है कि जितने क्षण-मत्तान् बुद्धि के द्वारा सकलसर्व-रूप से एक के रूप में गृहीत हाते हैं तब तक एक काल होता है। इसी आधार पर मानव वप आदि का विभाग समझना चाहिए। क्षण में और मन्वन्तर आदि में भेद केवल यह है कि उपचय का पराकाष्ठागत काल क्षण है और उपचय का पराकाष्ठागत काल मन्वन्तर है। सर्वथा काल भेद बुद्धि भेद पर आधारित है। बाह्य त्रिया के अभाव में भी बुद्धि निवेदिनी त्रिया द्वारा विरिप्र आदि काल भेद का ज्ञान संभव है। यागी प्राणचार की प्रक्रिया से क्षण आदि का परिचय करके देते जाते हैं। साव में भी प्राणगति से कालगति की कल्पना होती है। प्राणसंचारमयी त्रिया काल है। एम मत का दार्शनिक आधार जसा कि भृगु हरि ने लिया है यह है कि सभी रूपों की ज्ञान में सन्नति होती जाती है सभी वस्तुओं का परिचय उनकी बुद्धि में मन्वान होने के बाद ही होता है। साथ ही ज्ञान के द्वारा ही उन सब का अनुसंहार प्रथवा सकलन भी होता है। (ज्ञाने रूपस्य सन्नति ज्ञानेनयानुसंहति)।<sup>२१</sup> काल की बौद्धिक प्रातिभासिक सत्ता ज्ञान के कारण ही काल सापेक्ष रूप में ज्ञान पड़ता है। योगवासिष्ठ में काल के सापेक्ष रूप को अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है। विरह पीड़ित किसी व्यक्ति का एक दिन भी वप की भांति ज्ञान पड़ता है। और ध्यान में लीन व्यक्ति को दिन रात का पता नहीं चलता। काल की लघुता और दीघता सर्वथा सापेक्ष हैं (देश दृष्य यथा नास्ति कालदृष्य तथाङ्गने)।<sup>२२</sup> योगवासिष्ठ में काल का सर्वप्रमाण माना गया है।<sup>२३</sup>

बौद्ध दर्शन में भी काल की बाह्य सत्ता नहीं मानी गई है। उसके अनुसार क्षणिक प्रवाह रूप विज्ञान सतति ही काल है।

## अद्वैतदर्शन के अनुसार काल

हृदाराम ने अद्वैत मन का उल्लेख करते हुए कहा है कि ब्रह्मत्व क्रमरहित है। परन्तु अविद्याका प्रम रूप में उसका विवर्त होता है और विवर्त देश काल में होता है। कोई भी वस्तु मवप्रथम किसी देश और किसी काल में होती है। काल की वास्तविक सत्ता नहीं है। परब्रह्म में अध्यारोपित उसकी प्रातिभासिक सत्ता है। वाक्य का आधार पर जा भेद प्रभेद नियमित जाते हैं सब अविद्या ज्ञेय हैं। त्रिया के आदि भूत होने पर सभी प्रपच का विलय हो जाता है। काल का भी विलय हो जाता है। अतः काल के विषय में मुक्तयुक्त विचार करने में प्रयत्नमात्र फल है।<sup>२४</sup>

२० वा ७०

२१ योगवासिष्ठ १/१०/१०

२२ विप्रमकल्पमात्रोत्ती कालो ज्ञानि तिष्ठति—

योगवासिष्ठ ५/१४/६४

२३ वाक्यपदीय ३, कालसमुद्देश, टीका ६०

## ज्योतिष में काल

जातिपत्र सप्तप्रतिष्ठ ग्रहा की गति पर अथवा अथवा काल-स्वरूप का निर्देश भवति न निर्मलितवित कारिका म किया है—

आदित्यग्रहणक्षत्रपरिस्थदमयापर ।

भिनमासतिभेदेन काल कालविदो विदु ॥<sup>२४</sup>

## व्याकरण-दर्शन में काल

पाणिनि न काल सम्बन्धी नियम अतिव्यक्त माने थे । काल का मात्र लोचन से मन्त्र ही ही जानने का कारण काल विशेष छात्रक अथवा अनन्य आदि शब्दों की परिभाषा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी । फलतः पाणिनि का व्याकरण अकालक कहा जाता था (पाणिन्युपनिषत्कालक व्याकरणम कारिका २।४।२१) । परन्तु महाभाष्यकार आदि न काल पर एक न्यायिक की भाँति विचार किया है । महाभाष्य में काल सम्बन्धी कई तरह के वक्तव्य हैं ।

कुछ व्याकरण मानते हैं कि क्रिया ही काल है । क्रिया में काल का बोध होता है अथवा क्रिया की ही काल मानना चाहिए (नाचरेण क्रिया धतमविव्यक्त वतमानकाला व्यज्यत—महाभाष्य १।१।७०) । इस मत के पावन कर्म है । उनका मत में उन प्रसिद्ध परिमाणवाली क्रिया को काल कहते हैं जो अप्रसिद्ध परिमाणवाला दूसरी किसी क्रिया की परिच्छिन्ना है —

कालो हि प्रसिद्धपरिमाणक्रिया अप्रसिद्धपरिमाणस्य क्रियात्तरस्य परिच्छेदिका—महाभाष्यप्रदीप १।१।७०

कथन न क्रिया का प्रसिद्ध परिमाण की सूयादिकत का माना है । निरसमधीने इय वाक्य में दिवस १२ से सूय की गति क्रिया अभिप्रेत है जो उक्त से लेकर अन्त काल तक व्याप्त है । वह निम्न (आदित्य क्रिया प्रवृत्त) अवयव क्रिया का परिच्छेदक है अथवा उस का काल कहते हैं

प्रसिद्धपरिमाणक्रिया सूयादिकत का अप्रसिद्धपरिमाणया क्रियाया परिच्छेदोपात्ता अह्रादिध्यपदेश्या काल इत्याहु ।

—महाभाष्यपदीप ३।२।८४

इस मत की पुष्टि महाभाष्यकार का भी कुछ वक्तव्या में हाता है । एक स्थान पर उन्होंने कहा है—वाह्यश्च पुन आस्यात काल अथवा काल मुख्य ग्राह्य है । यह उक्ति क्रिया का काल मान कर हा सभर है (क्रियव कालो नातिरिक्तमते इदम्)<sup>२५</sup> प्रसिद्ध परिमाण वाली क्रिया बाह्य क्रियान्तर का परिच्छेदक हीनी है । उस बाह्यत्व का आधारे पर उस क्रिया को बाह्य काल कहा गया है । गार्दोहमान्त —गाय क दोहन

२४ बड़ा कालसमुत्प्रेष ७२

२५ महाभाष्यप्रदीपदीप, अ ३ उ ग

काल तक ठहरता है—इस वाक्य में गोदोह क्रियाविशेष है। उसके काल की इयत्ता अच्छी तरह नात होना के कारण वह क्रिया प्रसिद्ध परिमाण वाली है। इसलिये वह दबदबत क ठहरना की क्रिया का परिच्छेदक है। फलतः वह काल है। जहाँ पर बाह्य-क्रिया नहीं है, जहाँ मूल मन्त्र अथवा नालिकाश्रुति [काल नापने का यन्त्र] आदि प्रसिद्ध परिमाण बतानेवाले साधन नहीं हैं वहाँ बुद्धिनिवेशिनी क्रिया ही क्रियातर का परिच्छेदक हा जाती है। प्राणप्रवाह के आधार पर काल की गणना संभव है। प्राण प्रवाह के आधार पर अधिक बुद्धि के उदय से चिरकाल का और अल्प बुद्धि के उदय से अल्पकाल का परिमाण हो जायगा।

यदि क्रिया से अनिश्चित काल की सत्ता नहीं है तो 'भूता सत्ता' जस वक्तव्य कम सम्भव है क्योंकि क्रिया स्वयं सत्ता रूप है उसका किसी सत्ता रूप क्रिया से याग संभव नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट भव हरि न दिया है। जिस तरह से 'भूता घट' इस वाक्य में सत्तारूप क्रिया की ही भूतता मानी जाती है वैसे ही 'भूता सत्ता' इस वाक्य में भी सत्तारूप क्रिया की ही सत्ता मत रूप में मानी जाती है। भाव यह है कि 'भूता घट' में भूतता घट की संभव नहीं है। घट द्रव्य है। द्रव्य का काल से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। साध्य स्वभाववाली क्रिया का कारणभूत काल के साथ सम्बन्ध होता है। निष्ठा प्रत्यय के द्वारा धातु वाच्य सत्तारूप क्रिया की भूतता अभिव्यक्त होती है। वह सत्तारूप क्रिया यहाँ घट में है। इसलिये काल का क्रिया के सम्बन्ध में घट से भी परम्परया सम्बन्ध हा जाता है और घट की भूतता जान पड़ती है यहाँ द्रव्य और काल का सीधा सम्बन्ध नहीं है। वही तरह 'भूता सत्ता' इस वाक्य में भी धातु वाच्य क्रिया रूप सत्ता अर्थ है और प्रातिपदिक पद [सत्ता सत्ता] वाच्य द्रव्यमय अर्थ है। यहाँ भी धातुवाच्य सत्ता की भूतता के द्वारा ही द्रव्यायमाण सत्ता के भूतत्व की प्रतीति हाती है। इसलिये क्रिया का काल मानना में कोई अनुपपत्ति नहीं है। सत्ता नित्य है। फिर भी आश्रय भेद से उमम भेद मान कर भूत वतमान आदि त्रिवानभेद की व्यवस्था भी सम्भव है।

कुछ व्याकरण काल का क्रिया से भिन्न मानना है और काल का क्रिया का परिच्छेदक मानता है। क्रिया अनन्तरण का समाहाररूप है। क्षण युग्मत नहीं हाता। प्रथम से हाता है। इसलिये क्रिया सत्रमा हाती है। प्रथम काल का धर्म है। अत्र सत्रमा क्रिया काल गति में अनुगृह्यता हाती है। दो क्रियाया का उदय और अन्त समान हाता हुये भी एक चिर से सम्पन्न हाती दग्नी जानी है और दूसरी अल्प सम्पन्न हाता श्ची जाती है। यह त्रिवानण परिच्छेद क्रिया की उपाधिमत सम्बन्धी क सम्भव रहा है। क्रिया में आश्रयभेद से भेद हाता है। अत्र एक क्रिया चिरता और क्रिया की प्रतीति का कारण नहा हा सकनी। आश्रयभेद से भेद हाता के कारण उमम भेद की अनुवृत्ति हो जाया क्नेगी। जिसम भेद की अनुवृत्ति हाती है वह अभिन्न व्यपन्न का अनुवृत्ति हो सकता। दग्नी आधार पर अल्प द्रव्य भी यहाँ निमित्त नहीं हा सकता। उमम भेद भेद हाता है। कारण भी निमित्त नहा हा सकना। उमम भेद की अनुवृत्ति हाती है। अत्र अल्प वितरण परिच्छेद का जा निमित्त है वह काल है। जिस तरह से तुना

एक रत्न मय घाति द्रव्य को गुग्गुलु को एक घाति क रूप में परिष्कृत करना है उगी गरत का भी घण्टी गति का घाति का परिष्कार का परिष्कार रूप में परिष्कृत करना है ।

त्रिया भू क परिष्कार है । क कारण ही काय हाया [मधुसूदन] कहा जाता है । हाया का घण्टी त्रिया का हाया (जहाति किमा इति हाया) । हाया घाति का भी कहा है कदाचि घाति भा गत घण्टिया उक्त का हाया है । हाया क भागार जाणन (कृत् जाणन)<sup>२२</sup> रूप क भाग का हाया कहा है (जाणनहेगोरमका कचिद घोह्यो हाया हायाट्ट - परमजरी ३।१।१४८) । सभी हाति म पाणिनि ने भी हाय घातिनामया ३।१।१४८ सूत्र क द्वारा हाया गत की गति घाति घोर काय दाया घण्टी म अभिज्ञान की है ।<sup>२३</sup> त्रिय गरत म गत घण्टिया जन म घाति का उपकार हाया है उगी गरत म हाया म काय भाया का उपकार कहा है ।

विशेषण मूर्ति त्रिया क भीतर घा जाता है । हाया विशय वचन त्रिया जा चुका है । हाया मति क परिष्कार प्रमाण परिष्कार उक्त घाति । त्रिय विनमि घाति म त्रिय विभाग क घण्टी म वस्तु क परिष्कार हाया है । हाया प्रमाण कृत है । प्रथम भाग घाटक घाति घाटके घोर परिष्कार क द्वारा घाय घाति क परिष्कार हाया है । हाया परिष्कारकृत है । निरत पत्र घाति मुखण घाति क मुख क परिष्कार हाया है । हाया उमान कृत है । य मय मूर्तिभू क त्रिय मान जात है । परन्तु काल त्रिया का परिष्कार है । यह त्रिया क भू क त्रिय है (त्रिया भेदाय वाचस्तु) ।<sup>२४</sup> सूत्र घाति घाट की मकार त्रिया काय म मायी जानी है । उस माय को माय सबलम घाति क द्वारा व्यक्त करत है । परिष्कार की दृष्टि स हाया और काल म यह भेद है कि काल कृत त्रिया का परिष्कार हाया है जय त्रि सत्या मूत प्रमूत सब को परिष्कारिहा है । जय दू घटी । बहुय आत्मान । हे त्रिया । एका विनमि । दू इमती । त्रयार प्रस्था । पञ्च पलानि । सत्या सत्या की भी परिष्कारिहा है जय दा बीम (दू विगती) पांच पचाम (पञ्च पञ्चागत) ।

सभी पदायों की उत्पत्ति स्थिति और उनके विनाग देखे जाते हैं । पदायों की उत्पत्ति स्थिति घादि का अलग अलग रूप काय क आधार पर ही मभव है । पदाय त्रिसी न त्रिसी काल म उत्पन्न हात है । त्रिसी न त्रिसी काल म स्थित हात है और त्रिसी न त्रिसी काल म विनमि हात है । इसलिय ज घाति अवस्था वाले पदायों का निमित्तकारण काल है । फलत ज मादि त्रिया का परिष्कार है । यद्यपि यह एक है फिर भी उपाधिभेद स भेद प्राप्त करता है और ससर्गों त्रियाघा म नद करत म

२२ अ तु क्तागल ननयत् पृथक् (वनमान पिनेवा) क दक्षिण पश्चिम में था । भाग कल का हृदयाना कुम्भजाल है । हासा, हिसार, फतहावात् सिल्ला आदि इमो म है ।

२३ काशिकाकार ने काल के अर्थ में हायन शब्द को युक्ति निराने से की है—जिहीने भावान् इति । इमका यात्वा हरदत्त ने दा को है—भावा पदाया तान जिहीने गच्छति परि च्छेदकत्वा यातानात्यथ—परमजरी ३।१।१४८

२४ वाचस्पदीय कायसमुद्धेरो २

समय जाना है। मास आदि भेद व्यवहार और भूत आदि व्यपदेश ससर्गिसूयादि क्रिया के भेद से हात ह।<sup>२५</sup>

जिस तरह से द्रव्य न ता गुण है और न कृष्ण है फिर भी ससर्गि गुण के कारण गुण और कृष्ण आदि रूप में व्यक्त होता है उसी तरह काल भी भेद अभेद से अनिवाच्य है। उत्पत्ति आदि क्रिया के सम्बन्ध के कारण काल का उत्पत्तिकाल स्थितिकाल विनाशकाल जैसे भेद जानने योग्य में व्यवहृत करते हैं। वस्तुतः भूत हरि के अनुसार भेद अभेद, एकत्व अनैकत्व आदि किसी के भी स्वाभाविक नहीं होता। इसीलिए कहा है—'न हि यौ स्वरूपेण यौ नाप्यगौ गोत्वामिसम्बन्धात्तु गौ' इति।<sup>२६</sup>

महाभाष्यकार ने काल की एक परिभाषा या नी है—

येन मूर्तानाम उपचयादचापचयाश्च लक्ष्यन्ते त कालमित्याहुः।<sup>२७</sup> तत्र तण लता आदि का कभी उपचय होता जाता है और कभी अपचय। पदार्थों के इस वृद्धि-ह्रास से काल का अनुमान जाना है। उपचय और अपचय काल ऋत हैं।<sup>२८</sup> उसी काल का किसी क्रिया से सम्बन्ध जानने पर दिन और कभी रात्रि आदि नाम पड़ता है। वह क्रिया भाष्यकार के अनुसार आन्तरिकगत है। यद्यपि आख्यात से क्रिया की अभिव्यक्ति सत्ता निवृत्तभेद रूप में ही जानी है और अन्तरिक क्रिया एक मानी जाती है फिर भी आदित्य आदि साधन भेद से क्रिया भिन्न भिन्न ही होती है। काल का उपयुक्त स्वरूप भी काल क्रिया का भेदक है इस पक्ष की परिष्कृष्ट करता है।

पर तु नागना इस मत में सहमत नहीं है। उनके मत में काल को क्रिया का भेदक मानने पर क्रिया में क्षण—उपाधि सम्भव नहीं है। उत्तरदेश-सयोगावच्छिन्न क्रिया को मानने पर भी क्रिया के विघेयण विघेय्य और सम्बन्ध रूप में होने के कारण जानने के स्थिर रहने के कारण उसके लिये क्षण का व्यवहार सम्भव है। नागना ने क्रिया ही काल है इस पक्ष में भी यह स्पष्ट दिखाया है। साथ ही प्रसिद्धपरिणामा क्रिया का काल मानने में नागना के अनुसार अनवस्था भी है। यदि क्रिया से काल को अतिरिक्त माना जाय तब भी काल का अखण्ड न मान कर उस क्षण पदार्थ के रूप में मानना चाहिये। क्षणा के प्रचय से मूर्त आदि व्यवहार की उत्पत्ति हो जायगा

आद्यपक्षे क्षणोपाधेर्निवक्तुमशक्यत्वम्। उत्तरदेशसयोगावच्छिन्नक्रियेति चेत् तस्या विघेय्यविघेयणसम्बन्धरूपत्वे त्रयाणामपि स्थिरत्वात् क्षणव्यवहारनियम

२५ वाक्यपदीय ३ कालसमुद्देश ३

२६ म.म. के अनुसार यह वाक्य वाक्यपदीय का है। परन्तु अब तक का प्रकाशित बर्तमान वाक्य नहीं है। इसे कहा न कहा जाना चाहिए। म.म. वाक्य का उल्लेख हेलारान ने सम्बन्ध समुद्देश ४० को टीका में किया है।

२७ महाभाष्य २।१।५

२८ इस मत को भा. हरि ने निम्नलिखित कारिका में व्यक्त किया है—

मूर्ताना तत्र भिन्नानामावयवत्रया पृथक्।

लक्षन्तु परिणामेन सत्रानां भेदयोगिना ॥ कालसमुद्देश ३३



महाभारतः । अतिसिद्धये तिस्रो तिस्रिस्तुतस्य इति तत्र प्रथमदश  
 कथागुणैर्निर्दिष्टाः शोचनीयौ तिस्रस्तद्वेन तेन ।

किञ्च प्रसिद्धपरिमाणगुणैरसंगता तस्या अत्र विद्यापरम्य  
 परिशेदकतय अत्रस्यपरिनिर्दिष्टः ।<sup>११</sup>

तान् । । तान् यदात्त वा हा कान् माता है और अनाधीन मान् पापानो  
 व ८ अन्त्याना क परिणाम वा । वा क भी गया । त्रिया है

प्रकृत परिणामस्य विषयस्य अतिमहत्त्वस्य विमोक्षणस्य धाराया काम  
 स्यात् । यदा परममात्रपरिणाम एव विषय काम ।<sup>१२</sup>

अन्तः हा तान् यदात्त वा हा कान् माता है और अनाधीन मान् पापानो  
 कान् मन्व भी मायता व्याकरण मन्व म प्रसिद्ध मायता क विन्दु है । अतः मा  
 क अन्तः उदात्त भाव्य क अन्त्याना वा ताद मन्व कर अथ त्रिया है । तान् वा  
 उदात्त वा मन्व हा ही मन्व गीत है । अन्ति तान् वा अन् वा मन्व मन्व मन्व मन्व  
 है । अन्तः अन् भी त्रिया मन्व क भीतर है । अन्ति तान् वा अन् वा मन्व मन्व मन्व  
 है त्रिया अन् क विषय कान् भी मन्वता अन्तः वा है । व्याकरण की दृष्टि म अन्ति  
 अन्तः, अन्तः अन् त्रिया अन् को त्रिया काम क अन्तः क अन्तः ही तन्व जा  
 मन्व ।

## भतृहरि का काल-दशन

### काल स्वातन्त्र्य-शक्ति है

भतृहरि क मत म काल शक्तिविषय है ।

स्वातन्त्र्य शक्ति को काल कहते हैं ।

स्वातन्त्र्य रूप काल शक्ति के आश्रय से जन्मति पदभावविचार विश्व के  
 विनास म सहायक हात हैं । काल शक्ति लाक्यत्र का सूत्रधार है । कान् विश्वारमा  
 है—काल एव हि विश्वारमा व्यापार इति कथ्यते ।<sup>१३</sup> भतृहरि के अनुसार सत्य भाव  
 परमब्रह्म है । उसम नानाशक्ति योग समाविष्ट है । उस शक्ति योग द्वारा भावा की  
 कला का वह विवेकता है (कालशक्ति) इसलिये उस काल कहते हैं । अन्तः कत शक्ति  
 के कारण कान् शक्ति का स्वातन्त्र्यशक्ति कहते हैं ।<sup>१४</sup> हेतुवाज न भतृहरि के काल  
 विचार का निष्कर्ष दो बार स्वातन्त्र्यशक्ति क रूप म व्यक्त किया है —

११ महाभाष्य दासोद्योत ३:१:८४ और मजूना, पृष्ठ ८४७

१२ मजूना पृष्ठ ८२६, ८४०

१४ वाचस्पत्यय ३, कालसमुद्देश १२

१५ पदो, १४

अतएव स्वातन्त्र्यशक्ति काल इति वाक्यपदीये सिद्धातितम् ।<sup>१</sup>

तथा

कालाख्या स्वान्त्र्यशक्तिबहुण इति तत्रमवदमत हरेरभिप्राय ।<sup>२</sup>

भत हरि न स्वय भी काल वा स्वातन्त्र्यशक्ति क रूप म उत्तरय त्रिया है —  
कालाख्येन हि स्वातन्त्र्येण सर्वा परतत्रा जमवत्य शक्तय समाविष्टा काल  
शक्तिवत्तिमनुपतति । ततश्च प्रतिमाय वश्वरूपस्य प्रतिबन्धाम्यनुज्ञाम्या  
शक्तयवच्छेदेन क्रमवानिवावनासोपगमो लक्ष्यते । सर्वेषां हि विवाराणां  
कारणातरेष्वप्यपेक्षावता प्रतिबन्धजननामाम्यनुज्ञयासहकारिवारणकाल ।

—वाक्यपदीय १।३ हरिउक्त लाटीर मन्वरण

भत हरि के अनुसार कालशक्ति की सहकारिणी कई अवातर शक्तियाँ हैं ।  
वाक्यपदीय में प्रतिबन्धशक्ति, अभ्यनुज्ञाशक्ति, क्रमशक्ति, समवायशक्ति और जराभ्या  
शक्ति का उल्लेख है । इनमें प्रथम दो महत्वपूर्ण हैं ।

## प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा शक्ति

जिसी क्रिया के साधनशक्तियों के व्यापार का विघात प्रतिबन्ध है और इसके  
विपरीत अभ्यनुज्ञा है । कोई शक्ति प्रतिबन्ध करती है और कोई प्रतिबन्ध का हारी  
है । ये व्यापार सबत्र होते हैं । जैसे किसी एक वक्ष में पहल किमलय की अभ्यनुज्ञा  
और पल्लव का प्रतिबन्ध होता है । पुन किमलय का प्रतिबन्ध और पल्लवकी अभ्यनुज्ञा  
हानी है । भावा का स्थगन और उमज्जन जम और नाश इन दो शक्तियों से परि  
चालित है । पौर्वापय का ज्ञान इही शक्तियों की क्रिया है । कात प्रतिबन्ध और  
अभ्यनुज्ञा के द्वारा विश्व को विभक्त करता है ।

भत हरिके अनुसार यदि प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा अपने व्यापार न करें तो भावा  
की युगपत उत्पत्ति होने लगे बीज अकुर नाल, काण्ड आदि में पौर्वापय क्रम  
विच्छिन्न हो जाय और सबत्र साक्य छा जाय ।<sup>३</sup> साग, स्थिति और प्रलय भी कान  
वृत्त प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा के वग से होते हैं ।

अतीत और अनागत भी क्रमश प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा के ही पयाय हैं ।

प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा में विरोध नहीं है । दोनों एक ही शक्ति से परिचालित  
हैं । वाक्यपदीयकार ने इसे स्पष्ट करन के लिये शकुन्त-ततु का उदाहरण दिया है ।  
पहले कभी ऐसा होता था कि बहलिये किसी छोटे पक्षी को सूत्र में बांध दत्त थे । यथा  
वसर उह उडातं थे फिर सूत्र खीच नेतं थे । पक्षी उतनी ही दूर तक उड सकते थे  
जितनी सूत की तन्वाई होनी थी । उनका उडना और उनका पुन वापस आना सूत

३६ हेलारान वही

३७ हेलारान वाक्यपदीय कालसमुदेश ६२

३८ वाक्यपदीय १, कालसमुदेश ६



आधार पर होना है। काल की गति वृत्ति प्रतिबन्ध और अभ्यनुा स लगित होती है। काल वृत्ति न विद्व अथवा न विभक्त होता है। वह विभाग प्रमित होता है। प्रम मुख्यत त्रिया का धम है पर त्रिया भी काल के सम्बन्ध में ही अपना स्वरूप पानी है। इसलिए काल न भी प्रम है। भाव सतत परिणामी है। उनमें मदा परिवर्तन होना रहता है। उम परिवर्तन का आधार भी प्रम ही है। काल ही प्रम का रूप धारण कर लेता है—

प्रतिबन्धम्यनुज्ञाम्या वृत्तिर्या तस्य गाम्बती ।  
तया विभज्यमानोऽसौ भजते प्रमरूपताम ॥५१

अदृष्टवग स परमाणुआ न त्रिया उत्पन्न होती है। परमाणुआ के परस्पर मिलन स द्वणुन आदि वनत हैं और उनके द्वारा सभी प्णाय स्वरूप प्राप्त करते हैं। इन सभी व्यापारा में प्रामाण्य काल शक्ति का हाथ रहता है— “अत्र च सयत्र प्रमात्या कालशक्ति स व्यापारे यम्यनुज्ञेयम ॥”<sup>५२</sup> कुछ लोग मानते हैं कि विश्व अपन मूल रूप म अत्रम है। वह ब्रह्म का वित्त ह। काल ब्रह्म की गति है। वह अविद्या का सहकारी है। अविद्या ने कारण अत्रम त्रमवान मा हान लगता है। प्रम के अभ्यास में ही कानभेद का जान होना है। फनत प्रम को ही काय कहत हैं। निमप आदि भी मूयम प्रम रूप काल में परिच्छिन्न ह। अत सभी भावा न प्रामाण्या कालशक्ति मूयम रूप में अनुम्युत है। सभी प्रकार के सवित प्रम स अनुप्रमाणित रहत हैं। पश्यन्ती स्वरूप सवित प्रम का आश्रय लेकर ही अभिव्यक्त होता है—

अत्रमा हि पश्यती रूपा सवित प्राणवृत्तिमुपाहृत्वा कालात्मना परिगृहीतक्रमेव चकास्तीति वृत्तनिणय वाक्यपदीये गन्दप्रभायामस्माभि ।

—हलाराज कालसमुद्देश ६२

## समवाय शक्ति

काल के प्रमग म समवाय शक्ति जमादि त्रिया के विश्लेषण म व्यवहृत हुई है। समवाय शक्ति वह शक्ति है जो कारण और काय क भेद का तिराहित करती है। इस शक्ति के माहृचय स कारण और काय अभिन से लगने लगत हैं। भृ हरि के अनुमार विशिष्ट काल के सम्बन्ध स परिपाकप्राप्त शक्तिया म नित्य त्रिया अभिव्यक्त होती है। सामायभूत प्रवृत्ति त्रिया है। परमाणुआ म कायजनक शक्ति के अभिमुख हाने में परस्पर सरनेप होता है अथवा मूल तत्त्व म प्रेरणामय कम विनेप अभिव्यक्त होता है। उनमें किसी अत्रभूत शक्ति क द्वारा फन की अभिव्यक्ति होती है। फल व्यक्ति (काय) और उनके कारण न एक्त्व की सी बुद्धि समवाय शक्ति से हानी है—

५१ वाक्यपदीय ३ कालसमुद्देश २०

५२ हलाराज, वाक्यपदीय कालसमुद्देश २०

ततस्तु समययायाया गविभेदस्य साधिका ।

एवमयमिव ता शकनोरापादयति कारण ॥११

इत गय व्यापारः स जय की अभिव्यक्ति प्राप्ति है और जय भी वात का ही व्यापार है । इसी तरह म स्थिति भी वात परतत है । य सब वात की ध्वन्यनुता पतिन व भीतर घा जात है ।

उपयुक्त सभी गतिव्यो स्वान्त्यगति रूप काल की ही गामायें हैं ।

### स्वातन्त्र्यशक्ति और कतु शक्ति

भत हरि न स्वातन्त्र्य शक्ति और कतु शक्ति म कोई भेद नहीं माता है । वहा की वत शक्ति प्रम रूप पातर वात शक्ति व रूप म व्यक्ता प्राप्ति है—

अप्याहितकरी (अप्याहता कता) यस्य कालशक्तिमुपाधिता ।

तस्य प्रमवदभि मात्रारूप कतु गविन प्रथिमन्वयमात्र विकार मात्रागत भेदरूप तत्राप्यारोपयति ।

—वाचस्पतीय १३ हरिवृत्ति

वपम न भी स्वान्त्य को वत शक्ति व रूप म प्रकृण किया है —

(स्वातन्त्र्य कतु शक्ति । पदाथनिष्पादनोपसहारयोग्या कतु गवित ) ॥११

### भतृहरि का कालदर्शन और कश्मीर शंवागम में काल

भत हरि की काल गविन की कल्पना कश्मीर शंवागम म गहीत काल स्वरूप स बहुत दूर तक भेन राती है । भत हरि जिस तरह स काल का द्रव्य नहा मानते उसी तरह शंवागम म भी काल द्रव्य नहीं है । भत हरि जिस तरह प्रम का काल का धम मानते हैं उसी तरह शंवागम म भी प्रम को त्रिया का भवस्व फलत काल का आधार माना गया है । प्रम को आभासित करने वाली भगवान की गविन काल गवित है । वपाकरणो की तरह कश्मीर शंवागम म भी सूर्यादिमचार रूप प्रतिद्ध परिणाम वाता त्रिया को अन्य प्रप्रतिद्ध क्रियाया का परिच्छेदक माना गया है और नावा के अचच्छेदक हान क कारण उसे काल माना गया है । इस मत म अनवस्था दोष, जसा कि नाग्य न बताया है, बताना ठीक नहीं है । अभिनव मुक्त ने अनवस्था दोष का परिहार कतु प्रतिवत क के दृष्टान्त से किया है । प्रतिवत क (सोने को नापने के लिए सोने की ही मासे जसा वस्तु) स सीना नापा जाता है । एउ मासे स्वण का जो परिच्छिन्न रूप है वह स्वण क रूप स भिन्न नहा है । मास (प्रतिवत क) म त्रो स्वण है वह उपलक्षण मात्र है न कि प्रतिवत कगत स्वण परिच्छिन्न स्वण म जागर मिलता है अथवा आभात होता है । इसी तरह सूर्यादिसचार की त्रिया उपलक्षण रूप म है । वसात काल म प्रम के दशन करक, मुकुल विक प्पर आदि विविन्न परिवतना म हा सवते हैं सूर्य की गति तो उपलक्षण मात्र है । फलत अयोपाधय और अनवस्था जस दोष प्रतिद्ध

१० वाचस्पतीय कालमुनेश १८

११ वाचस्पतीय टिका १३ पृष्ठ ११ लाहौर सचरर

या नियत परिणाम वाली क्रिया के पक्ष में नहीं सम्भव है (अनवस्थादि च फलरूप-प्रतिबन्धकवृत्तातेन कृतसमाधानमेव)।<sup>४५</sup> सूर्याग्नित ज्ञान नियत स्वभाव भेद है वह नम है और वही काल है। अभिनवगुप्त के अनुसार सभी दर्शना के कालस्वरूप का अतन्त्रि त्रम-दर्शन में हो जाता है। वैशेषिका का द्रव्य रूप काल परत्वं अपरत्वं आदि के द्वारा त्रम मय है। मात्स्य दर्शन में काल रज स्वभाव है और रजोगुण प्रवक्तव्य के रूप में त्रम मय ही है। व्याकरण का काल स्वरूप नित्य अनाश्रित ? (आश्रित) प्रवृत्ति स्वभाव है और प्रवृत्ति त्रमाश्रित होती है। बौद्ध का भी सत्त्वान प्रवाहमय काल त्रम स सबथा रहित नहीं है—

तेन सूयसञ्चारादिभि यो-यो लक्ष्यते प्रवहण धर्मा चिरशीघ्रताद्यसकीण भावस्वभावोत्थापको वैशेषिकाणा द्रव्यरूप, कापिलाना रज स्वभाव प्रवतनात्मकत्वात्, व्याकरणाना नित्यानानाश्रितप्रवृत्तिस्वभाव, सौमताना सत्त्वयमान भावपरमाथ, सोऽपि वस्तुत त्रमरूपता न अतिक्रामतीति त्रम एव नाम बहि काल इति व्यवहृत्यते ।

—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवर्तिविमर्शिनी, तृतीयभाग प० ५

भक्त हरि की स्वातन्त्र्य शक्ति और कश्मीर शवागम में गृहीत स्वातन्त्र्य शक्ति भी समान है। दाना दर्शना में वह काल का दूसरा नाम है। एक में वह ब्रह्म की शक्ति है और दूसरे में परमेश्वर की।

शवागम में भगवान की इच्छाशक्ति का नाम स्वातन्त्र्य शक्ति है। (स्वतन्त्र इति तस्येच्छा शक्ति स्वातन्त्र्यमजिता)<sup>४६</sup>। प्रकाश और विमल भी स्वतन्त्र के रूप में गृहीत होते हैं। शवागम में प्रकाश ज्ञान का और विमल क्रिया का प्रतीक है। स्वातन्त्र्य शक्ति भगवान की कृत शक्ति है। भगवान में जब अपने आपकी अथवा अपने अतन्त्र्यवस्थित विमान रूप भाव जगत् का अवभासित करने की इच्छा होती है भगवान की कृत शक्ति निर्माण करने वाली माया शक्ति के सम्बन्ध में काल-त्रम के रूप में अवभासित होने लगती है। अपने आप को इस तरह स प्रकाशित करने की परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति कालोत्थापक होने के कारण उभक्त का त्र शक्ति वहां जाती है। वही स्वातन्त्र्य शक्ति प्रमातृ प्रमेय आदि रूप में क्रिया के आधार से विस्तार पाता है। क्रिया प्रधान रूप से प्रतिभासित होती हुई भी काल शक्ति से अनुविद्ध होती है। सबथा का त्र शक्ति स्वातन्त्र्य शक्ति का ही रूप है

यस्या परमेश्वरस्वातन्त्र्यशक्ते, सा कालोत्थापकत्वात् भगवत् कालशक्ति रिति उच्यते, त्र याहृतकला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिता इत्यादी ।<sup>४७</sup>

अभिनवगुप्त ने यह स्वातन्त्र्य शक्ति के सम्बन्ध में अपने चर्कचर्च की पुष्टि के लिये वाक्यपदीय की कारिका उद्धृत की है। यह इस ध्यान का प्रमाण है कि ज्ञान दाना

<sup>४५</sup> ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवर्तिविमर्शिनी, तृतीय भाग, पृ ८ ५

<sup>४६</sup> अभिनवगुप्त, मालिनादित्रय वार्तिक ६७

<sup>४७</sup> वाक्यपदीय विवर्तिविमर्शिनी तृतीय भाग, पृ ८ ६

म बाल का स्वरूप एक सा है और स्वातन्त्र्य गति भी एक ही है।

भक्त हरि क स्वातन्त्र्यगति म और वायगमगुहीन स्वातन्त्र्य गति म यदि अन्तर है ता यह कि वायगम म स्वातन्त्र्यगति क ई विभिन्न रूप म उपचरित है जस कि भक्त हरि न उस पर विचार चर्चा नही का है और उसका स्वभाव भी अज्ञान कृत सीमित है। दूसरा अन्तर यह है कि वायगम म स्वातन्त्र्यगति का सम्बन्ध परावाक स है—

विनि प्रत्यक्षमनात्मा परावाक स्वरसोदिता

स्वातन्त्र्यमतमुप्य तत्राप्य परमात्मन ॥५८

जब कि भक्त हरि परावाक का भक्ता स्वीकार नही करत। यदि जान स स्वातन्त्र्यगति रूप बाल का सम्बन्ध जान भी जान ता प यही क गाय जाइना उचित हागा जैसा कि हलाराज ने किया है

अनमा हि पश्यतीरुपा सवित प्राणवत्तिमुपाष्टा कालात्मना परिगृहीतप्रभव चकास्ति ॥५९

स्वातन्त्र्य गति का मूल स्रोत क्या है / महाभाष्य म स्वातन्त्र्य गति जसा किसी गति का सन्दर्भ नही है। वायगम म जितन लख सप्रति पात ह व सय भक्त हरि क वाक हुए ह। पर तु यह कल्पना किसी न किसी आगम की हा जान पवती है। बहुत सभर है वायगम का परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन हा। भक्त हरि आगमा से अधिक प्रभावित ये और व्याकरणदर्शन को भी आगम मानत थ।

कुछ लोग स्वातन्त्र्यगति का मूल उद्भवक पाणिनि का मानते हैं।<sup>५८</sup> उनके मत क आधार पाणिनि का स्वतन्त्र कर्ता १४५६ यह सूत्र है। स्वतन्त्र गति से अपने आपका प्राधाय्य अभिव्यक्त होता है (स्व आत्मा तत्र प्रधान अन्य स स्वतन्त्र उच्यते। महाभाष्यप्रणीप १।४।५४)। स्वातन्त्र्य गति म भी अपनी इच्छा का अविघात और आत्म प्राधाय्य है। फिर भी व्याकरण सप्रदाय म कर्ता क स्वातन्त्र्य का न ता गति क रूप म ग्रहण किया गया ह और न उसका सम्बन्ध बाल म जोड़ा गया है। स्वयं भक्त हरि न भी स्वतन्त्र कर्ता का प्रारम्भ म स्वातन्त्र्यगति का सन्दर्भ नही किया है। स्वयं पाणिनि न स्वातन्त्र्य को प्रयाजन हेतु के अर्थ म भी लिया है और कतकरणयाम्ना ताया २।३।१८ जस सूत्र म उम नायन क रूप म भी व्यवहृत किया है।

## काल एक, नित्य और विभु

काल व्यापक है। पर अणु, चिन्मिष्र आदि का काल मय को सब दण म समान हाता

५८ वह पृष्ठ १८७

५९ वास्यदीप काणमसुदेश ६२ का टीका

५० दा० ३० स० पृ० ५, एन हिस्टोरिकल एण्ड फिलामफीकल स्टडी आफ अभाष्युक्त, पृ० २०३ २०४

है इससे काल की व्यापकता स्पष्ट है। काल समूह है। अद्वैत है। अन नित्य है। वह एक है। उमम भेद कल्पित है।

महाभाष्यकार ने काल को नित्य माना है (नित्ये हि कालनक्षत्रे—महाभाष्य ४।२।३)। शब्द को नियम और एक मानने में एक कठिनाई सामने रखी गई थी। पाणिनि ने ऊक्तान्वाजह्रस्वन्तीघञ्चुत १।२।२७ इस सूत्र में कालभेद का सबत किया है। महाभाष्यकार ने भी द्रुता मध्यमा और त्रिभङ्गिता वसिष्ठा के सम्बन्ध में काल भेद का उल्लेख किया है।<sup>५१</sup> ह्रस्व के उच्चारण में नालिकायत्र से जलविन्दु अल्पमात्रा में चूने हैं दीघ के उच्चारण में उममे अधिन और च्लुत के उच्चारण में उममे भी अधिक चूत हैं। इनमें ८ १२ १६ पानीयपल का आनुपातिक सम्बन्ध माना जाता है। अब यदि काल के कल्पित भेद के आधार पर ह्रस्व आदि में भेद की कल्पना की जाय तो यह उचित नहीं है। क्योंकि सलिल मृत्ति का यथाय सत्ता है एक कल्पित वस्तु का यथाय वस्तु न अवयव सम्भव नहीं है। भाव यह है कि कल्पना के आधार पर ह्रस्व आदि में कल्पितिक भेद मानने पर जल मृत्ति के प्रकृत को एक की अपेक्षा दूसरे में अधिक पानीयपल के चूने का—सममाना कठिन हो जायगा। जो लाग शब्द का नियम मानते हैं वे ह्रस्व आदि में कल्पितिक भेद ही स्वीकार करते हैं। जिसे तरह यह शीघ्र किया “यह देर में किया इन दाना ज्ञान के समानकाल काल होने पर भी विषयगत विस्तार अथवा अविस्तार के आधार पर काल भेद प्रतिभासित होता है उसी तरह में शब्द के नियम होने के कारण समानकाल होने पर ह्रस्व आदि में कालभेद उपचरित होना है। अब कालभेद उपचरित मानने पर ह्रस्व आदि के उच्चारण समय जो पानीयपल में अंतर देना जाता है वह नहीं होना चाहिये। पर होता है। इससे जान पड़ता है कि ह्रस्व आदि स्वभावतः भिन्न भिन्न काल वाले हैं। फलतः शब्द की नित्यता में व्याघात पहुँचता है। इस कठिनाई का समाधान भन हरि ने किया है। उनके अनुसार शब्द का तत्त्व अभिन्न है वह प्रचित या अपचित नहीं होता। अभिन्नकत के निमित्त ध्वनिवृत्त कालभेद उसमें आभासित होता है। प्राकृत ध्वनिमा स्वयं कालभेद को शब्द में भी प्रतिविम्बित करता है। अर्थात् व्यञ्जक का धम व्यङ्ग्य में जान पड़ता है। फलतः कालभेद स सलिलमृत्ति में भी उपचय अपचय का ज्ञान भेद जान पड़ेगा ही। इससे शब्द की नित्यता में बाधा नहीं पड़ती। वृत्तध्वनि जनि भेद शब्द का भेद नहीं होता। ह्रस्व दीघ आदि शब्दधम मवया व्यञ्जकाधीन है—

वृत्तध्वनिजनितस्तु वसिष्ठभेदो न भेदक इति निर्णयमेव पूर्वकाण्डे। वक्ष्यते चाद्ये “सवश्च ह्रस्वदीर्घानुनासिकवादि धमव्रात शब्दात्मनि व्यञ्जकाधीन” इति।<sup>५२</sup>

सबथा काल भेद औपाधिक है। नालिका यत्र की जल मृत्ति ही काल नहीं

५१ किं पुत्र कारण न सि यति। कालभेदान्—महाभाष्य १।१।७०

५२ इल्लाराज द्वारा, कालसमुद्देश ६५ का टीका में भन हरि के वाक्य के रूप में उद्धृत।





याय से पहचान किया जा चुका है। मूय गति के अतिरिक्त दिया की द्यता के परिचायक निमेष व्यापार प्राणप्रवाह बुद्धिभ्रम आदि है। सूर्यादि संचार भी लोक म दिन रात के रूप म निश्चित परिमाण के रूप म प्रसिद्ध हैं।

भन हरि न स्पष्ट रूप म काल को नित्य माना है—

न नित्य परमात्रामि कालो भेदमिहाहति

—वाक्यपदीय, २।२४

भनू हरि के अनुसार काल गति प्रतिबंध और अभ्यनुता के आधार पर पर-अपर की पहचान कराती है (कालाद्या हि कत शक्ति फायेंप्येव प्रतिबंधाम्यनुज्ञाम्यां पौर्वापय प्रकल्पयति—वाक्यपदीय २।२२ हरिवक्ति)। यदि काल नित्य है तो उसम पौर्वापय सम्भव कन है? इसके उत्तर म भनू हरि का कहना है कि वह काल शक्ति की महिमा है कि एन हान हुए भी अम के रूप म प्रतिभासित होगी है। यहा भनू हरि न बौद्ध दशन और यन तदशन की अम भीमामा का उल्लेख किया है। बौद्ध दशन म बुद्धिलक्षण अश्रम है। उसम मत्र का विरुद्ध रूप भी अविरुद्ध रूप म प्रतिभासित होना है अम एकत्व का अतिश्रमण नहीं करता। वेदांत की दृष्टि स विन्वात्मा एक है नम का अवभान उसके एकत्व का याघातक नहीं हाता—

अमप्रत्यवभासत्तम एवत्वानतिक्रमेण अश्रमे बुद्धिलक्षण क्षणिकवादिन सयस्य विरुद्धरूपमिधाविरुद्ध भयति। न्यतविदां तु विदवात्मयेकत्वानतिक्रमेण अमप्रत्यवभासत्व भवति।

—वाक्यपदीय २।२२ हरिवक्ति लाहौर सस्वरण

भनू हरि ने इस प्रसंग म एक ऐसे दशन का भी उल्लेख किया है जिसके अनुसार मात्रा भेद के आधार पर कान भेद सम्भव नहा है कयाकि मात्राया की सत्ता उदय अस्तमयी है व स्वय अमत् सी है और उनके अभाव मानने पर अम भी जो मात्राया के परिणाम पर निर्भर करता है सभव नहीं है। इस दशन के अनुसार विद्व की मात्रा, परिणाम जयभेद अनित्य है पूव का अपर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सब कुछ एक दूसरे से असस्पृष्ट है। पूव और अपर भी निरुपाय्य है। इनम सम्बन्ध अहंकार द्वारा होता है जा पूव और अपर का परामश सा करता है। मूयम (अपरापययत) अभेद और परिमाणभेदरहित हात हुए भी पूवापर का सम्बन्ध मिथ्या अभ्यासवश अनुध यकिन को दीघ मा जान पडता है। इस दशन के अनुसार सभी व्यवहार एक धम स आरुद्ध एक धम म प्रतिष्ठित और अभिन काल बाल हात ह। मात्राभेद असत है। असत का अनन से अथवा असत् का सत स सम्बन्ध म कोई नम नहीं हाता। खरहे की साग का ऊँट की सीग के साथ म अथवा हिमालय के साथ म कोई अम नहीं होता

तदेतस्मिन् पक्ष एकधर्मावबद्धेषु एकधमप्रतिष्ठितेषु अभिनकालेषु सब प्रवहारेषु कीदश सनात्मव्यतासता च मात्राभेदानाश्रम । न हि

श्राविषाणस्योद्भविषाणन हिमवता वा कश्चिदपि क्रमो विद्यते ।

—हरिवर्ति वाक्यपदीय २।१४

इस दृष्टान्त के अनुसार किसी एक अथवा समानकालिक अथवा भिन्न कालिक व्यापार के साथ भी क्रम सम्भव नहीं होता । क्रम की संभावना न देखकर और कोई दूसरा उपाय न पाकर एक व्यावहारिक रूप मान लिया जाता है । मूर्तियाँ वा जो परिमाण भेद है वही भेद है । उनमें अतिरिक्त कोई कल्पित परिमाण भेद नहीं है । इस मत के अनुसार सह उत्पन्न सभी भाव काल में उत्तर अथवा क्षण जैसे कल्पित कालांतर अवस्थाओं में आत्म तत्त्व का अतिरमण नहीं करने और न किसी आगतुक अथवा अनागतुक भेद से सस्पृष्ट होत ह । उन भाषा के अतिरिक्त क्षण काल में वर नाम सभी कोई वस्तु ही नहीं है जिसके आधारे पर उह कालांतर अवस्थायी नित्य अथवा क्षणिक कहा जा सके (हरिवर्ति वही) ।

यदि यह कहा जाय कि परिमाण भेद की वात्सा प्रचित और अप्रचित बुद्धि के आधारे पर कर लिया जायगा काल की वाक् अवस्थकता नहीं तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि बुद्धि एक है । इसलिए बुद्धि प्रत्यक्षमण भी भाग रहित ही हागे । भत हरि ने इन सब के समाधान के लिए उमाग्या शक्ति का आशय दिया है । उस शक्ति के सामर्थ्य से भाषाओं में क्रम का आभास होता है—

भेदभावनानुगतबुद्धीनामेकत्वेन यवहरताम अनादिना मिथ्याभ्यासेन विहित समवायानाम एकस्यां बुद्धौ अघतिरिदतासु अनपायापायिनीषु मवमात्रासु क्रमात्पाया शक्ते सामर्थ्यमवियमान प्रकल्पते क्रम प्रसिद्धये ।

—हरिवर्ति वाक्यपदीय २।२७

अत काल में क्रमभेद संभव होता है । काल औपधिक भेद से भिन्न है । स्वतः अभिन्न है । नित्य है ।

### काल का प्रत्यक्ष अथवा अनुमान

किसी के मत में काल प्रत्यक्षगम्य है और किसी के मत में वह अनुमय है । महा भाष्यकार के मत में काल अनुमान गम्य है । जैसे क्रिया का पिप्पीभूत दृष्टान्त सम्भव नहीं है वस हा काल का भी । वत मान लए १।२।१२३ के भाष्य में स्पष्ट ही सूत्रों में भावाऽनुमितेन गम्य बहु कए काल को अनुमय माना है । वाक्यपदीय में भी अनुमान पत्र का समयत किया गया है । भत हरि के अनुसार वा विभिन्न आश्रमवाली क्रियाओं में उनके उदय और अस्त ममान हान पर भी उनके शीघ्र या ऋत में मिद्ध हान का गान बिना किसी सम्बन्धी परिच्छेद के सम्भव नहीं है । कान के अनुमान में यह भी एक हेतु है

त्रियदारपवतिष्पोर्नानायसमवेतयो ।

सम्बन्धना चितकन परिच्छेद षय मवेत ॥११॥

मूल 'दायों का उपचय और अपचय भी काल के अनुमान में सहायक हैं।

कुछ लोग काल का अतीन्द्रिय मानते हैं और दिक् के विपरीत परत्व अपरत्व के आधार पर काल का अनुमान करते हैं।

नागेश 'इस समय दस रहा हूँ, 'इस समय मूष रहा हूँ जने अनुभवों के आधार पर काल का पट इन्द्रिय वक्ष्य मानते हैं (क्षणसमूहत्वाच्च म पट्टिन्द्रियवेष - मजूपा षष्ठ ८४६)। मीमांसकों का भी यही मत है (स च काल पट्टिन्द्रियग्राह्य)।<sup>१७</sup> कुछ लोग काल का प्रत्यक्षत्व स्वीकार करते हैं। काल में रूप न होना काल के प्रत्यक्ष होने में बाधक नहीं है क्योंकि इन्द्रियग्राह्यता का नाम प्रत्यक्ष है और वह काल में है।

वशेषित प्रसिद्ध काल गुणा का उल्लेख महाभाष्य में मिलता है जम—

कालपरिमाण	(महाभाष्य २।२।५)
कालप्रथक्त्व	(महाभाष्य २।१।२६)
कालविभाग	(महाभाष्य ३।२।३२)
काल सयाग	( , ३।१।२६)

इसके अतिरिक्त तत्रभव ४।३।१३ सूत्र के भाष्य में कालाभिसम्बन्ध का और तपरम्तकालस्य १।१।० सूत्र के भाष्य में कालसहचरित' शब्द का उल्लेख है।

## कालभेदविचार

काल का स्वरूप चाहे जो हो गान्धर्व्यवहार में वह भिन्न रूप में ही देख पड़ता है। व्याकरण-ज्ञान का सम्बन्ध मुख्यरूप में गान्धर्व्यवहार वाले काल के स्वरूप से है। अस्ति अभूत भविष्यति आदि त्रिधा भेद की विवेचना उस करनी ही पड़गी

नास्माभिर्दग्गनविधेक प्रारब्ध किन्तु गान्धर्व्यवहारे यदङ्ग तत परीक्ष्यम् । अस्ति च भिन्नकाल गान्धर्व्यवहारोऽभूत अस्ति भविष्यतीति । तत्र यथा यागमविचारितरमणीय कालोऽभ्युपगतय ।<sup>१८</sup>

फलत व्याकरण-ज्ञान काल का वत मान भूत और भविष्यत इन तीन रूपों में विभवा कर देता है। पर तुल्य विभाग के पीछे भी कुछ दार्शनिक प्रवाद हैं जिनका उचित भव हरि न किया है।

## काल की तीन शक्तियाँ

कुछ लोग मानते हैं कि काल तो एक है किन्तु उसकी तीन शक्तियाँ हैं। काय के भेद में वारण भेद का अनुमान जाता है। शक्तिभेद से ही कायभेद सम्भव है। इस आधार पर काल की शक्तियाँ स्वीकार की जाती हैं। इन शक्तियों के आधार पर भाग का

<sup>१७</sup> नारायणभट्ट मानसबोध पृष्ठ १७, भागमकारण

<sup>१८</sup> हेनाराम, वाचस्पत्योय काण्डमुद्रेश ५८



‘नाभावो विद्यते सत’ वाले सिद्धान्त के आधार पर यह मानते हैं कि जो तिरोभूत है वही वत मान होता है। सभी भाव मानो किन्हीं प्रवेशक (वोरे) के भीतर रहते हैं वही से अपने आपका व्यक्त करते हैं और पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। हला राज क अनुसार पञ्चाधिकरणदशानस्थ मारपी का यह दान है।<sup>५६</sup> यह विचार धर्मों और धर्म में कुछ भेद मानकर है। धर्मों स्थायी सदा रहता है और उसके धर्म तीन अथवा चार (यवान) अतीत वत मान और अनागत के रूप में प्रकट होते हैं।

जा लाग धर्म को धर्मों से अतिरिक्त नहीं मानते उनके मत में भी धर्मों का एकसाथ ही अतीत वत मान आदि चारदश धर्म के द्वारा सम्भव है। वत मान के समय में भी अतीत के कुछ धर्म स अतीत, और अनागत के कुछ धर्म होने से अनागत कहा जा सकता है। अतः धर्मों सदा वतमान होता हुआ भी धर्म के तीन तरह के हान के कारण तीन अवावाना अथवा तीन काल वाला कहा जाता है। हेतु के आधार पर जब कोई क्रिया-व्यपार प्रत्यक्ष होने लगता है उसे वत मान कहते हैं। जब हेतु व्यापार वृत्त जाते हैं उन्हें कुछ करने का नहीं रहना तब भावा का अदशन हाता है उसे अतीत कहते हैं। जब हेतु अथक्रिया के लिए चपटा नहीं करते उसे अनागत कहते हैं। इस तरह एक के ही उपाधि भेद में भिन्न भिन्न नाम हा जाते हैं। इसमें मात्रादोष नहीं है। ज्योति वृत्ति वित्य है। आदिर्भाव और निराभाव तम रूप स घटित हात हैं। दशन और अदशन यही वृत्तिया का व्यापार है और वह विलक्षण है। वत मान शक्ति से दशन और अतीत अनागत शक्ति से अज्ञान यह एक दूसरे को वादा न देने घटित हात है। इसलिये सत्त्व सम्भव नहीं है। दृष्ट और अदृष्ट अवस्था में भी धर्मों एक है। मत्त्व ने असत्त्व का भेद नहीं है। मत्त्व तिरोभूत होकर असत्त्व कहा जाता है। इसलिये भावा स शक्ति के अतिरिक्त न होत हुए भी और सत्त्व एक साथ रहते हुए भी साव्य गही होता। हलाराज क अनुसार यह महाभाष्यकार का मत है

धर्मधर्मिणोरपतिरेक भाविकमाश्रित्य धर्मिणो पुण्यदपि व्यपेक्षय धर्मद्वारक प्रवतत इति महाभाष्यमतम्।<sup>५७</sup>

हलाराज के अनुसार ब्रह्मज्ञान ? के अनुसार भी शक्ति रूप का वत के तीन गुणामय परिणाम सम्भव है। जीवात्मा में जान क्रिया और शक्ति ( चडा ? ) के रूप में तीनों गुण रहते हैं—त्रिगुणपरिणामादच ब्रह्मदशनेऽपि कालस्योपपत्तमेव शक्ति रूपस्यापि। जानक्रियाशक्तिसि जीवात्मनि गुणत्रयम्।<sup>५८</sup>

क्रिया के आधार पर भी कालभेद की भीमासा की जाती है। व्याकरणज्ञान इसी मत का प्रथम दान है

५६ हेतारान, वाच्यपदाय, कालस्मृश ५३

५७ वही ५४, यह मत बलुत वाच्यसूत्र भाष्य का है। प्राचीन टीकाकार व्यासभाष्य को पाल मानते हैं। इसी आधार पर हेतारान में उपयुक्त बलुत मन्त्रा यकार का माना है।

५८ वही ५३ त्रिविधम समकाल्य म दत्त वाच्य मन्त्रिन ह उमर्मे अददशन’ पाठ नहीं है। यह ‘व्य कानी वाले संस्करण में है। इससे सत्त्व उदत विद्या गया है।

तस्याभिनस्य कालस्य व्यवहारे क्रियाकृता ।  
भेदा इव प्रथे सिद्धा घांतोको तातिवतने ॥<sup>६२</sup>

नूत, भविष्य और वत मान क्रियापाधिक <sup>६१</sup> । जब क्रिया उत्पन्न होकर घटित हो जाती है उनका उपाधि-काल को नूत कहते हैं । जब क्रिया के माधन मनिहित रहते हैं और उनका आरम्भ समीप रहना है उगने उपाधि काल को भविष्यत कहते हैं । जब क्रिया प्रारंभ हो गई रहती है परंतु अभी समाप्त नहीं हुई रहती उगने उपाधि-काल को वत मान कहते हैं ।

क्रिया जो वीत गत है जा अब वतमान नहीं है वह काल में भूतकाल में क्या जाती है ? इसी तरह जो क्रिया अभी हुई नहीं है वह काल में भविष्यत का स्वरूप क्या दिखाती है ? इसका उत्तर में भक्त हरि का कहना है कि जो क्रिया वीत जाती है वह काल में अपना सम्बन्ध छोड़ जाती है । बुद्धि या स्मृति के द्वारा उस सम्बन्ध का ग्रहण कर काल में भूतकाल का व्यवस्था किया जाता है । इसी तरह अभी सम्पन्न होत वाली क्रिया का भी प्रतिबिम्ब काल में पता है । उस होने वाली क्रिया के प्रतिबिम्ब का ज्ञान में सम्पन्न कर काल को भविष्यत काल कहते हैं । भक्त हरि के अनुसार काल एक स्वच्छ शब्दों की तरह है

काल निधाय स्व रूप प्रजया यतिगह्यते ।  
भावास्ततो निवृत्ते तत्र सङ्गान्तभावतप ॥  
भाविना च यद रूप तस्य च प्रतिबिम्बकम्  
सुनिमित्त इवादर्शो काल एवोपपद्यते ॥<sup>६३</sup>

### वतमान काल

वाक्यपदीय में वतमानकाल पर विचार महाभाष्य की पद्धति पर है । पत्रजलि के पूर्व ही वतमानकाल के विषय में कुछ विप्रतिपत्तियाँ सामने आ गई थी जिन्हें मुलमान का प्रयत्न वाक्यायन ने किया था । पत्रजलि ने भी अपनी पद्धति से उन्हें भुनकाया और अब दर्शना में भी जमा कि वाक्यायनभाष्य से ज्ञान पता है उन पर विचार होना रहा ।

वतमान काल के सूचक लट की प्राचीन मना भवती थी । वाक्यायन ने इसे अभीमह इह वसाम जस वाक्या में वतमान के ज्ञान में उस आधार पर आता प लगत्या था कि अध्ययन करने और रहने के बीच में दूसरी भी क्रियाएँ होनी रहती हैं । इन अध्ययन घाति क्रियाएँ विच्छिन्न हो जाती हैं । वतमान काल से हम उसी क्रिया की अभिव्यक्ति करके जा आरम्भ तो कर दी गई है परंतु जिसका उपरम अभी नहीं हुआ है । बीच में स्थित होनी हुई क्रिया का वतमान रूप नहीं देना ।

क्योंकि समाधान के तरह में कर दिया गया था । वतमान काल उसकी माना जायगा जहाँ क्रिया का आरम्भ समाप्त न हुआ हो (एक नाम 'याम्यो वतमान काल

यत्रारम्भोऽनप्यव्यक्त महा—माष्य ३।२।(१२३) । अतः अध्ययन जब तब समाप्त नहीं होगा हम उसे वतमान काल में व्यवहन कर सकते हैं । बीच बीच में जो भोजन आदि की क्रिया व्यवधानरूप में जान पड़ती हैं वे नान्तर्रीयक हैं । अतः वे व्यवधायिता नहीं हो सकती । 'दयदत्त भोजन कर रहा है' इस वाक्य में भोजन की क्रिया का वतमान काल में विना किसी हिचक अथवा संशय के व्यवहन करत है । परन्तु भोजन के व्यापार में भी बीच बीच में चालना टसना पानी पीना आदि व्यापार हान ही रहता है । जिस तरह स इन व्यापारों के होते हुए भी 'भुक्ते' में वतमान काल की अनुपपत्ति नहीं मानी जाती उन्ही तरह 'इह अधीमहे' जैसे स्थला में भी अन्वितर क्रियाप्राप्ति होत दृश्ये भी कोई अनुपपत्ति नहीं होगी ।

अतः हिंसा के अनुसार ऐसी कोई क्रिया नहीं है जो किसी न किसी अथ क्रिया से सक्तीण सी न जान पड़नी हो और नहीं तो निमित्त क्रिया स्वास क्रिया जसी क्रियाएँ सभी व्यापारों के साथ रहेंगी ही । अतः अन्तरान्वर्ती क्रियाप्राप्ति से मुख्य का व्यवधान नहीं मानना चाहिये । अन्तरालवर्ती क्रियाप्राप्ति को मुख्य क्रिया का अवयव मान लेना चाहिये । इस तरह भोजन के बीच में ठहाने आदि के व्यापार भोजन क्रिया के अवयव हैं अतः व्यवधायक नहीं हो सकते । भोजन की प्रवृत्ति हो जाने पर भी ऊपर से दिये गये क्रिया का वाद में परोक्ष जाना जैसे भोजन क्रिया का अंग ही माना जाता है वैसे ही मित्रा का परस्पर वानचीत करते, हसन बोलत भोजन करना भोजन क्रिया का अंग ही है ।

अथवा तब फल की दृष्टि से क्रिया मतान की व्याख्या करेंगे । भोजन की क्रिया का फल तपति है । अध्ययन की क्रिया का फल ज्ञान है । जब तब इन दोनों के लिये प्रयत्न जारी है बीच में अथ व्यापारों के हान दृश्य भी वे अविच्छिन्न माने जायेंगे इसलिये अथ व्यापारों के करत दृश्य भी अधीमहे कहा जा सकता है ।

अथवा भौतिक व्यापार के उपरत होने पर भी मानसिक व्यापार के द्वारा क्रिया मतान का एकत्व जहा बना रहगा हम उसे वतमान काल में व्यक्त कर सकते हैं । पढ़ने क्रिया विचार के अन्वय में यह स्पष्ट क्रिया जा चुका है कि जिस तरह क्रिया में सदागन प्राथना आदि अव्यवसाय होत हैं । जानाति दृच्छति तां यतते—मनुष्य पहले जानता है तब इच्छा करता है और तब उस इच्छा की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होता है यह सब तरह के व्यापार का मनोवैज्ञानिक पहलू है । अतः मानस व्यापार जब तब विरत न हो तब तब क्रिया भी उपरत नहीं मानी जायगी

सदशनादिफलपय त क्षणसमूह क्रिया । तत्र च भौतिक व्यापारोपशब्दे  
 'अन्तरा सदागनप्राथनादे मानस व्यापारस्य यावत्  
 फलाधिगम तावदविराम एव ।'<sup>१४</sup>

तात्पर्य यह है कि प्रत्यवयव क्रियाममाप्ति न मान कर फलपयतक्रिया समूह के आश्रय से क्रियामतान का विवचन करना चाहिये ।



वर्तमान काल के सम्बन्ध में दूसरी समस्या यह थी कि जो नित्यप्रवृत्त भाव है जिनका कभी बीच में विच्छेद नहीं होता उन्हें हम वर्तमान काल से क्या बताने कर रहे हैं। क्योंकि वर्तमानकाल भूत और भविष्यत् काल का प्रतियोगी है। नित्य प्रवृत्त वस्तुप्राप्त में भूत और भविष्यत् सम्भव नहीं है। अतः वर्तमान भी सम्भव नहीं है। यह कहना ठीक नहीं होगा कि अविच्छिन्नरूप में सदा प्रवृत्त भावों में भूत, भविष्यत् तात्पर्य नहीं है परन्तु उनका सदा वर्तमान होने के कारण उनका साथ वर्तमान काल का सम्बन्ध सदा बना रहगा ही। क्योंकि यहाँ काल का सम्बन्ध उही भावा से होता है जो नियत अवधि वाले होते हैं। साधन के सन्निहित होते हुये जिनकी उत्पत्ति आसन्न होती है उनका सम्बन्ध हम भविष्यत् काल से जोड़ते हैं साधना के बल पर जन्म प्राप्त कर जब तक ठहरे रहते हैं उन्हीं हम वर्तमान काल से प्रकट करते हैं और जो नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं जिनके शरीर विलुप्त हो जाते हैं उन्हीं हम भूत काल से व्यक्त करते हैं। इसलिये वर्तमान की सत्ता भूत और भविष्यत् के बीच में होती है। फलतः जहाँ भूत और भविष्यत् की सम्भावना नहीं है वहाँ वर्तमान भी सम्भव नहीं है। दूसरी बात यह है कि काल तो क्रियोपाधिक है। नित्यप्रवृत्त भावा में किसी क्रम के अन्तान के कारण समाश्रित साध्यस्वभाववाती क्रिया ही सम्भव नहीं है इसलिये वहाँ काल विभाग ही सम्भव नहीं है।

इसके उत्तर में व्याकरण मप्रदाय के अनुसार भक्त हरि का कहना है कि जिसका स्वस्वरूप में आत्मा में भेद नहीं होता। भेद परत होता है। सभी भावजात वस्तु उपाधिससग से भेद प्राप्त करती है। अतः नित्य प्रवृत्त वस्तुप्राप्त में भी कालभेद सम्भव है और जब कालविभाग सम्भव है तो वर्तमान काल भी सम्भव है। अस्तु पवन ही नदियाँ बहती हैं जिस नित्यप्रवृत्ति के अन्तर्गत बाध्या में भी तन तन वाली नगराशा की क्रिया के आधार पर काल विभाग किया जा सकता है। राजाशा की क्रियाप्राप्त में काल प्रतिकल्प और साध्यमानता है। अतः उनका साहचर्य से पवता आदि के साथ प्रकार्य सम्भव है। फलतः पवन ही प्रयाग इसी आधार पर ही जहाँ भूत भविष्यत् सम्भव होंगे वर्तमान की उपपत्ति भी उनके साथ होगी ही (वाचस्पतीय कालसमुद्देश ८०)।

अथवा एक विरुपावयव क्रिया होती है अतः एक सत्पावयवक्रिया होती है। पवन के स्थितिरूप व्यापार में सत्पावयव क्रिया है। आत्मकरणरूप क्रियावयव एक दूसरे के सदृश है। साध्य के कारण जन्म भद्र की अभिव्यक्ति उत्तनी मरत गता है जिनकी क्रिया पवन आदि के व्यापार में विरुपावयव क्रिया होती है। राजाशा की क्रिया विरुपावयव है। अतः उनमें विभाग सम्भव है। प्रसिद्ध परिमाणवादी क्रिया ही किसी दूसरी क्रिया के परिच्छेद द्वारा काल कहना ही है। स्थिति भूत आदि के रूप में राजाशा का क्रिया भिन्न भिन्न प्रकार पवन की स्थिति आदि का भेद द्वारा कालगणना व्यवधान नहीं है। अतः नित्यप्रवृत्त भावा में भी क्रिया और काल काल के योग उत्पन्न है। राजाशा का मूल-मन्त्र आदि का अन्तर्गत मानना चाहिये। क्रिया पदार्थों में भी अपने आपका प्रतिष्ठा कारण करने

की क्रिया म क्रियाय है। एव व्यवहार म शब्द का अर्थ ही अर्थ रूप म गहीत होता है। निष्कृति आदि क्रियापदा म अर्थ की अभिव्यक्ति हाती है। अत क्रिया-भाग नित्य पदार्थों क साथ भी एव शक्ति के कारण है। साहचर्य से वान व्यपदेश क उल्लेख वस्तु म है। कलापी उस वान का कहने हैं जिस समय मयूर बनापी हात ह (पस्मिन काले मयूरा कलापिनो भवति स कलापी—वाग्विवा ४।३।४६)। महाभाष्यकार के माना है कि यह साहचर्य से वान व्यपदेश है (कलापिसहचरित काल कलापी काल—महाभाष्य ४।३।४८)। इसी तरह अर्थ और वस्तु म भी वान वाच्य एव ह जा साहचर्य क आधार पर गणित हुए ह।

### वर्तमानकाल की सत्ता पर आक्षेप

कुछ लोग मानत ह कि यदि काल विभाग है तो वह दो ही है भूत और भविष्यत। वर्तमान काल नाम का कोई तीसरा विभाग संभव नहीं है। कोई भी वस्तु या तो मत होनी है अथवा असत् हाती है। बाद तीसरी कोटि नहीं है। जा क्षण बीग गया वह सिद्ध स्वभाव का हा गया। फलत क्रिया भी अतीत कहलावेगी। जो क्षण अभी आया नहीं है वह भावी है। इसलिए उसकी छातक क्रिया भविष्यत् स सम्भव जाड़ेगी। बीच म कोई तीसरा क्षण जा सत भी हो और असत् भी हो नहीं है। अत वर्तमान काल भी नहीं है। पतनि मे पतनक्रिया की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सती। क्योंकि पात क्रिया का जो अनागत रूप है वह असत् है उसे पतति शब्द से नहीं कहा जा सता। और जो पातक्रिया का अतीत रूप है वह भी अतिजात होने के कारण असत् है, इस लिय उमक क्रिये भी पतति का प्रयोग नहीं हा सकता और इस दशा म भी कोई पतनि का प्रयोग कर तो उसने लिय हिमवान अपि चलति—हिमालय भी हिलता डोलता है—कहना सरल है।

दूसरी बात यह है कि वस्तु या तो सत् रूप है या असत् रूप है। इन दाना रूपा म अर्थ संभव नहीं है। जो मत है वह विद्यमान होने के कारण अनिवार्य है उसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है और इसीलिये उसे अर्थ के आश्रय लेने की भी आवश्यकता नहीं है। जो असत् है वह भी असत् अवस्था मे है सिद्ध किय जान की कोटि म नहीं है इसलिये उमम भी अर्थ संभव नहीं है। इन दोनों अवस्थाओं म निश्चयमान अर्थ क्रिया रूप के अभाव ज्ञान के कारण वर्तमानता संभव नहीं है।

तीसरी बात यह है कि सदा एक ही क्षण की उपस्थिति होनी है। एक म कोई अर्थ नहीं होना। भद न होने से उमम को अर्थ संभव नहीं है। एक ही क्षण म गमन आदि क्रिया का संभार संभव नहीं है इसलिये गच्छति—जाता ह—जसे वर्तमान कालिक वस्तु अनुपपन्न है

एक एव क्षण उपलभ्यते, नातीतो नापि अनागतो न चकस्य क्षणस्य गमनादिक्रियावेग संभवति—महाभाष्यप्रदीप ३।२।१२३

### इसका समाधान

उपयुक्त आक्षेप के उत्तर म यह कहा जाता है कि देवदत्त के एक स्थान मे

यत्नमा काल क सम्बन्ध म दूसरी गम्या यह था कि जा नित्यप्रवृत्त भाव है, जिन्का अभी बीन म विच्छेद नहीं हाना उह हम यामान काल म गम ध्यता करण । क्याकि यत्नमानकाल भूत और भविष्यत् काल का प्रतिपादी है । नित्य प्रवृत्त वस्तुग्रा म भूत और भविष्यत् सम्भव नहीं है । यत्न यत्नमान भी गम्या गहा है । यह कहना ठीक नहीं हागा कि अविच्छिन्नरूप म सदा प्रवृत्त भावा म भूत भविष्यत् ता सम्भव नहा है परन्तु उनका सदा यामा हाा क कारण उनका साथ यत्नमा काल का सम्बन्ध सदा यत्न रहगा ही । क्याकि यहाँ काल का सम्बन्ध उहा भावा म हागा है जा नियत अर्वाधि काल हात है । साधन क सति नहिण हान ह्युय जिन्की उत्पत्ति आसन हाती है उनका सम्बन्ध हम भविष्यत् काल स जोन्त हैं साधना क वत पर जन्म प्राप्त कर जब मर ठहरे रहत है उह हम यत्न मान काल म प्रकट करत हैं और जो नष्ट अष्ट हा जात है, जिनका शरीर विनष्ट हा जात है उह हम भूत गम ध्यक्त्त करत है । इसलिये यत्नमान बी सत्ता भूत और भविष्यत् क वाच म हाती है । फलत जहा भूत और भविष्यत् की गभावना नहीं है वहा यत्नमान भी सम्भव नहा है । दूसरी बात यह है कि काल तो क्रियोशाधिव है । नित्यप्रवृत्त भावा म किसी क्रम के न हान क कारण प्रमाश्रित साध्यस्वभाववाना क्रिया ही सम्भव नहीं है इसलिये वहा काल विभाग ही सम्भव नहीं है ।

इसका उत्तर म "मावरण सप्रणाय के अनुसार भक्त हरि का कहा है कि किसी क स्वरूप म, आत्मा म भेद नहीं हाता । भेद परत होना है । सभी भावजात वस्तु उपाधिसमग म भेद प्राप्त करती है । अत नित्य प्रवृत्त वस्तुग्रा म भी कालभेद सम्भव है और कालविभाग सम्भव है ता यत्न मान काल भी सम्भव है । अस्तु पवत है नदिया बहती है जस नित्यप्रवृत्ति के चोना वाक्या म भी तत् तत् कालीन राजाग्रा की क्रिया के आधार पर काल विभाग क्रिया जा सकता है । राजाग्रा की क्रियाग्रा म प्र काल्य प्रमिकता और साध्यमानता है । अत उनके साहचर्य स पवता आदि क साथ प्र वारण सम्भव है । पवत ये परत हागे ऐसे प्रयाग इसी आधार पर जग भूत भविष्यत् सम्भव हाग, यत्न मान का उपपत्ति भी उनका साथ होगी ही (वाक्यपदीय कालसमुद्देश ८०) ।

अथवा एक विरूपाक्षयव क्रिया होती है और एक सत्पाक्षयवक्रिया हाती है । पवत क स्थितिरूप व्यापार म मरूपाक्षयव क्रिया है । आत्मभरणरूप क्रियाक्षयव एक दूसरे क सदाग है । सादश्य के कारण उनका भेद की अभिव्यक्ति उतनी सरल नहीं है जिन्की कि पक्के आदि के व्यापार म विरूपाक्षयव क्रियाए होती हैं । राजाग्रा की क्रिया विरूपाक्षयव है । अत उनका विभाग सम्भव है । वे प्रसिद्धपरिमाणवाली ह । प्रसिद्ध परिमाणवाली क्रिया ही किसी दूसरी क्रिया क परिच्छिन्न होकर काल कहलाती ह । स्थिति भूत आदि क रूप म राजाग्रा की क्रिया भिन्न भिन्न होकर पवत की स्थिति आदि का भेद हाकर कालगद स यवहत हाती ह । अत नित्यप्रवृत्त भावा म भी क्रिया और तीना काल के साथ उपपन्न हैं । राजक्रिया को सूय-संचार आदि का उपपन्न मानना चाहिये । निय पन्थियों म भी अथन आपको प्रतिपाण कारण करन

का त्रिगुण म क्रियाच है। गण यज्ञहार म शब्द का अर्थ ही अर्थ रूप म गहीत होता है। निष्पत्ति आदि क्रियापत्ता से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। अतः त्रिगुण-योग नित्य पत्ताओं क माय भा शब्द शक्ति क कारण है। साहचर्य से काल ध्यपदश क उदाहरण बहुत म हैं। कलापी उम काल का कहन हं जिस समय मयूर कलापी हात हं (यस्मिन् काले मयूरा कलापिनो मवति स कलापो—वाग्वि ४।३।४६)। महाभाष्यकार ने माना है कि यहा साहचर्य स काल ध्यपदश है (कलापिसहचरित काल कलापी काल—महाभाष्य ८।३।४८)। इसी तरह अश्वत्थ और यववुस भी काल वाचक गण ह जो साहचर्य क आधार पर गठित हुए हैं।

### वर्तमानकाल की सत्ता पर आक्षेप

कुछ लोग मानत ह कि यदि काल विभाग है तो वह दो ही हैं भूत और भविष्यत। वर्तमान काल नाम का कोई तीसरा विभाग संभव नहीं है। कोई भी वस्तु या तो सत् होती है अथवा अस्त होती है। कोई तीसरी कोटि नहीं है। जा क्षण बीत गया वह सिद्ध स्वभाव का हा गया। फलतः त्रिगुण भी अतीत कहनावगी। जो क्षण अभी आया नहीं है वह भावी है। इसलिये उसकी शोक्त क्रिया भविष्यत से सम्बन्ध जाडेगी। बीच म कोई तीसरा क्षण जो सत् भी हो और अस्त भी हा नहीं है। अतः वर्तमान काल भा नहा है। पतति म पतनत्रिगुण की सत्ता सिद्ध नहा की जा सकती। क्याकि पतनत्रिगुण का जो अनागत रूप है वह अभाव है उसे पतति शब्द मे नहीं कहा जा सकता। और जा पातत्रिगुण का अतीत रूप है वह भी अतिश्रात होने के कारण असत्त्व है इस लिये उमक लिय भी पतति का प्रयोग नहीं हो सकता और एम दशा म भी कोई पतति का प्रयोग कर तो उसके लिये हिममान अपि चलति—हिमालय भी हिमता डोलता है—कहना मरल है।

दूसरी बात यह है कि वस्तु या तो सत् रूप है या असत् रूप है। एन दाना रूपा म अर्थ मभय नहीं है। जो सत् है वह विद्यमान होने क कारण अनिवार्य है उसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है और इसीलिये उसे अर्थ के आश्रय लेने की भी आवश्यकता नहा है। जा असत् है वह भी अस्त अवस्था मे है सिद्ध किये जान की कानि म नहीं है इसलिये उमम भी अर्थ संभव नहीं है। एन दोनों अवस्थाया म निवर्तमान अर्थ त्रिगुणरूप के अभाव हाने क कारण वर्तमानता संभव नहीं है।

तीसरी बात यह है कि सत्ता एव ही क्षण की उपनधि होती ह। एक म कोई अर्थ नहीं जाना। भेद न हान स उमम का क्रम भी संभव नहीं ह। एव ही क्षण म गमन कानि त्रिगुण का सभार संभव नहीं है इसलिये मच्छति—जाता है—जैस वर्तमान कानिक वस्तुव्य अनुपपन्न है

एक एव क्षण उपनश्यते, नातीतो नापि अनागतो न चकस्य क्षणस्य गमनादित्रिगुणावेण संभवति—महाभाष्यप्रदीप ३।२।१२३

### इसका समाधान

उपयुक्त आशय क उत्तर मे यह कहा जाता है कि देवन्त के एक स्थान मे

दूसरे स्थान पर जान म कोई न कोई हेतु अशक्य है । और वह गमन क्रिया है । गमन क्रिया ही उमक एक स्थान से दूसरे स्थान में होने का निमित्त है । उम गमन क्रिया के अवनम्य से जाना है एसा ज्ञान अधाधित रूप में व्यक्त होता है । अत क्रिया का भी सत्व है । पुन गत्व ही वतमान का लक्षण नहीं है । वतमान का लक्षण प्रारब्ध अपरिममपत्तत्व है । श्रिया क अरम्भ से लेकर समाप्ति क समीप तक जितने क्षण हैं उनक समूह में वह अध्यम्न रहता है । कय मम्पादन के लिए मात्तमित व्यापार में लनर गारीरित चेत्य तक गव उत्तरे नीतर गहीत है । अम रूप में समूह को जा विद्यमानता है वही वतमान है । एक एक क्षण में भी अम अध्यम्न ह । एक पत्र क उद्देश्य में प्रेरित होने के कारण क्षण समूह भी एक है । अथवा अनन क्षण समूहमय क्रिया प्रवच का बीडिर सकलन कर जाता है जसा प्रयोग क्रिया जाता है । श्रिया-वजाप के अथयव विस्तरे रहत ह फिर भी जाात्मा में उता आकार मपान रहता है जानामा क एक हान में व भी एक जान पत्त है । इस आधार पर वतमान का भी अनन क्षण समहातन और एक माना जाता है

श्रियाप्रवचरूप यदध्याम त्रिनगल्लते ।

सटवत्तविविधमेकव तामाहुवतमाननाम ॥—वाच ममुद्ग ६०

दुमगी वाच पत्त है कि यत्ति उत मान की गला न मानो जायगा तो भूत और नरिष्यत की गला भाग्यकर में पत्त जायगा । वतमा के अभाव में उता नी अभाव हागा । वतमा के आधार पर ही भूत और भविष्यत का भिनि गडी है । वतमा की गिडि में ही अनी और अनगत की गिडि सम्भव है अथवा नहीं

वतमानारथाभावे च भूतभविष्यतारण्यभारयसण, वतमानो हि भूतय भविष्यतवच्य प्रतिपद्यते ।—महाभाष्यप्रबोध ३।२।१२३

महाभाष्यकार क अनुनासिकान्त क तात विभाग योगिया क अनुभव में गिडि है । वगुण क गम है और अमान गय \*

अस्तानि तां वेदयन् त्रिमासा शुभो हि तावोत्तमिगे गय्य महाभाष्य ३।२।१२०

## दो प्रकार का वतमान काल

अनरि क अगाव वतमा का दो तरह का है । एक ता मुद है जा प्राण क अरिगमता अध्य म जाता है । दुमग य है जा वतमान मामान्य वतमान का । १।१।१ गव क अगाव भूत और भविष्यत अध्य म हाया है । कभी कभी क्रिया का अमी त क अा भा क्रिया क अगाव गेग एक जान है । गगा आधार में भूत विस्तरे वतमान सम्भव हाया है अगाव भूत काव क अध्य म वतमान काव का अगाव क्रिया जाता है । भविष्यत विस्तरे वतमानमा त वग हाया है अत भविष्यत क्रिया का अगाव अगाव में वग म त अग हा जाता है । वतमान का अग अग अरिगम काल अगाव है । अत अध्य अगावमि अम अगावम अगावमगव अग वाव

एक ही अवसर के लिए प्रयुक्त होते हैं।

आशसा के अर्थ में भी वतमान काल का प्रयोग वकल्पिक रूप में देखा जाता है। अप्राप्त प्रिय अर्थ के प्राप्त करने की इच्छा को आशसा कहते हैं। यद्यपि प्रायना अथवा इच्छा का सम्बन्ध वतमान से है परन्तु आशसा का विषय भविष्यत् काल होता है। इस आधार पर महाभाष्य में वस भविष्यत् काल का माना है (आशसा नाम भविष्यत्काला—महाभाष्य ३।३।१३२)। भविष्यत् काल से सम्बन्ध होते हुए भी उसके साथ भूतकाल (भूत सामान्य) के से प्रलय होते हैं। फलतः वतमान भूत और भविष्यत् तीनों काल आशसा की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त हात हैं। कुछ लोग आशसा और सभावना को समानार्थक मानते हैं। कुछ लोग सभावना का आशसा का अवयव मानते हैं। कुछ लोग दोनों में कुछ भेद मानते हैं। भेद की दृष्टि से इनमें अन्तर यह है कि आशसा में इम्प्लिट अर्थ की प्राप्ति साधन बल से शक्य और अशक्य दोनों होती है जब कि सभावना में उसकी प्राप्ति शक्य होती है—

आशसा नाम प्रधारितोर्थोऽभिनीतश्चानभिनीतश्च । समावन नाम प्रधारितोऽर्थोऽभिनीत एव ।—महाभाष्य ३।३।१३२

वस्तुतः आशसा प्रयाक्तधर्म है। वह शक्य नहीं है। फिर भी आशसा शब्दस्वरूप में निमित्त होती है। पुरुषधर्म में भी शास्त्र की प्रवृत्ति होती है प्रथम वाक्यपदीयकार का मत है (पुरुषधर्मोऽपि शास्त्रमधिकृतमिति विचारित वाक्यपदीये—हेलाराज, कालसमुद्देश १०५)।

कभी कभी भूत अर्थ में भी वतमान काल का प्रयोग हाता है जैसे कस और बलि की घटना को बीत मँकड़ा वर्ष हो जाने पर भी कस घातार्थान् बलि वधयति एव वतमानकालिक प्रयोग देखे जाते हैं। भाष्यकार के अनुसार इन वाक्या में वतमान काल के प्रयोग का आधार वतमान काल में रगमच पर दिखाय जाने वाले कस वध और बलि वधन के व्यापार हैं। शौभिक (नटा के आचार्य) और ग्रन्थिक (कथक) उन व्यापारों का प्रत्यक्ष संदिग्ध हैं। कथकग्रन्थिक के मत में उन व्यापारों की बुद्धिविषयकसत्ता रहती है इसलिए वे उन्हें प्रत्यक्ष या व्यक्त करने में समर्थ होते हैं—

शदोपहितरूपाश्च (रूपास्तु) बुद्धेर्विषयता गतान् ।

प्रत्यक्षमिव कसादीन् साधनत्वेन गयते ॥

—वाक्यपदीय ५ साधनसमुद्देश ५ ।

केवल वतमान का ही नहीं भूत और भविष्यत् का भी ऐसे अवसरों पर प्रयोग देखा जाता है। उम एक ही घटना के तीनों काल में इस तरह प्रयोग देखा जाता है—

जाग्रो देखो कस मारा जा रहा है (गच्छ हयते कस) । जाग्रो देखा कस मारा जायगा (गच्छ भविष्यते कस) । अब जाने से क्या लाभ कस मार डाला गया (किं गतेन हत कस) ।

कभी कभी मुख्य वन मान के क्षेत्र म, प्रारंभ अपरिसमाप्त की अवस्था म भूतकाल का व्यवहार दसा जाता है । कोई पाठलिपुत्र क लिए चल पडा । एउ दिन बीत जाने पर रास्त म ठहर गया । अमो वट पाठलिपुत्र पहुँचा नहीं है और जब तक नहीं पहुँचेगा उसकी गमन त्रिया अपरिसमाप्त मानी जायगी । फिर भी रास्त म एक दिन के बाद ठहर जाने पर भी “भाज इतना रास्ता बीत गया (इदमद्य गतम्)” एसा भूतकालिक प्रयोग करते हैं । गमन त्रिया के समाप्त न हान पर भी जितना अग समाप्त हो चुका है उसी का मान कर समाप्ति सूचक भूतकाल का प्रयोग किया जाता है । वस्तुत त्रिया क कई अवयव होत हैं । शत्रु क आघार पर समूह रूप त्रिया का जिस अवयव के साथ सम्बन्ध होता है उसी म उसरी समाप्ति भी हानी है । अवयव का तीना काल से सम्बन्ध हाने के कारण त्रिया का भी तीना काल स याग उपपन है

शादेन प्रत्याप्यमाना येन येनावयवेन संबध्यते समूह रूपा क्रिया तस्मिन्नेवाय वये समाप्यते । तत्र अवयवानां कालत्रययोगात् त्रियाया अपि कालत्रययोग  
—कयट महाभाष्यप्रदीप ३।२।१०२

## भूतकाल

जिसकी अपनी सत्ता समाप्त हो जाती है वह भूत शब्द से व्यक्त किया जाता है (यस्य स्थ सत्ता व्यपवकता तत्सव भूत शब्देनोच्यते—महाभाष्यप्रदीप २।२।८४) । कभी-कभी अल्प सत्ता की परिसमाप्ति पर भी भूतकाल माना जाता है (एष च याम्यो भूतकालो यत्र किंचिदपवृक्त दश्यते—महाभाष्य ३।२।१०२) । उत्पन होकर ध्वस्त हुई त्रिया की उपाधि के रूप म भूतकाल का प्रयोग किया जाता है । भत हरि के अनुसार भूतकाल पाच तरह का होता है । हेलाराज के अनुसार य पाच प्रकार निम्नलिखित हैं—

- (१) सामान्य भूत,
- (२) अद्यतनभूत
- (३) अनद्यतनभूत
- (४) अद्यतनानद्यतनभूत
- (५) भविष्यत के स्थान पर आरोपितभूत

## सामान्यभूत

भूत विशेष का आश्रय न लेकर केवल सामान्यभूत के अर्थ मे त्रिया का प्रयोग देखा जाता है । पाणिनि ने लुड लकार से ऐसे ही भूत सामान्य को द्योतित किया है । विशेष मे भी सामान्य होता है और इस आधार पर कभी-कभी विशेषभूत के अर्थ म सामान्यभूत का व्यवहार देखा जाता है । जैसे अगमाम घोपान अपाम पय जस

वाक्यो म विशेषभूत की सम्भावना होते हुए भी उसकी अविश्वसा से सामान्यभूत का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः विवक्षारूढ अर्थ ही शब्द प्रयोग का निमित्त होता है। विशेष-भूत की विश्वसा होने पर उपयुक्त वाक्यो म विशेषभूत के द्योतक लट आदि लकारा के प्रयोग हो सकते हैं।

ननु शब्द के साथ प्रश्न के उत्तर देने पर सामान्यभूत के अर्थ में वतमानकाल का प्रयोग होता है जैसे— अकार्षीं कट दवदत्त ननु करोमि भो (दवदत्त तुमने चटाई बीन ली जी, अवश्य मैंने चटाई बीन ली)। नु शब्द के साथ प्रत्युत्तर देने में भी सामान्यभूत के अर्थ में वतमानकाल व्यवहृत होता है परन्तु विवक्ष्य स। जस, अकार्षीं कट दवदत्त, नु करोमि भो। अथवा, नावापम।

### अद्यतनभूत

अद्यतन की परिभाषा दो तरह की व्याकरण संप्रदाय में प्रसिद्ध है। यासवार, क्यट, हरदत्त आदि के अनुसार पूरा दिन बीती हुई रात का अंतिम (बीथा) पहर और आने वाली रात का पहला पहर अद्यतनकाल है

दिवस सकल अतिक्राताया रात्रेश्चतुर्थो याम आगामि-याश्च प्रथमो याम इत्येषोऽद्यतन कालः ।

न्याय ३।२।११०

भट्टोजि दीक्षित के अनुसार बीती हुई पिछली आधी रात से लेकर आगे आने वाली आधी रात तक का समय अद्यतन है

अतीताया रात्रे पश्चात्तं आगामि-या पूर्वात्तं च सहितो दिवस अद्यतनः ।  
—सिद्धांत कौमुदी पृष्ठ ३०१

वस्तुतः अद्यतन और स्वस्तन शब्द पाणिनि के पूर्व के आचार्यों के ह और अपने मूल रूप में इनका भाव अद्य भव अद्यतन काल स्वो भव स्वस्तन काल के रूप में था।

जब अद्यतन में कोई क्रिया समाप्त हुई रहती है उसे अद्यतन भूत के रूप में व्यक्त किया जाता है। यद्यपि महा सामान्यभूत की भी सत्ता है। फिर भी सामान्य में विशेष रहता है। इस आधार पर हम अद्यतन को विशेष मान लेते हैं और सामान्यभूत से अद्यतनभूत को अलग करते हैं।

महाभाष्यकार के अनुसार अद्यतन में भी अद्यतन संभव है। (अद्यतनेऽपि अद्यतनो विद्यते। कथम। व्यपदेशिवद् भावेन—महाभाष्य ३।२।१११)। अद्यतन का भी एक सामान्य रूप है और उसके भीतर मुह्य क्षण आदि के रूप में अद्यतन का एक विशेष रूप भी है। इस तरह समुदाय और अवयव के रूप में भेद मान कर समुदाय अद्यतन में अवयव अद्यतन है ऐसा कहा जा सकता है। वस्तुतः यहाँ अवयव में व्यक्ति रिक्त रूप में समुदाय की सत्ता आधार रूप में नहीं है। एक काल का दूसरे काल के



साय आधाराद्येयभाव सवथा कल्पित होता है यथाथ नहा । इस भत हरि न इस रूप मे व्यक्त किया ह—

कालस्याप्यपर काल निर्दिश्यत्येव लोबिका ।

न च निर्देशमात्रेण व्यतिरेकोऽनुगम्यते ॥

—वाचस्पदीय ३, सम्बन्ध समुद्देश ८३

## अनद्यतनभूत

अनद्यतन शब्द म बहुव्रीहि समास माना जाता है । जिसम अद्यतन न हो वह अनद्यतन ह । अर्थात् जहा अद्यतन का गंध भी ह वहाँ अनद्यतन भूत नहीं होता ह । अनद्यतन भूत का प्रतिनिधि लकार लट है । अकरोत् अहरत् जसी क्रियाएँ अनद्यतनभूत का व्यक्त करती ह ।

परोक्ष भी अनद्यतनभूत का ही एक भेद है । इसलिय पाच प्रकार क उपयुक्त भूत भेदा स अतिरिक्त क रूप म इसकी गणना भत हरि न नहीं की है । परोक्ष का प्रतिनिधि लकार लिट ह । परोक्ष शब्द म अग्नि शब्द केवल आल मात्र का बोधक न होकर सभी इन्द्रिया का वाचक माना जाता ह । इसलिय जो इन्द्रिया स परे ह, जो वस्तु इन्द्रियगोचर नहीं ह वह परोक्ष ह । एक तरह स सभी धात्वध परोक्ष ही होते ह क्योंकि धात्वध वह निया ह जा साध्य ह । जा अभी साध्यमान ह वह असत् ह । जो असत् ह वह इन्द्रियो का विषय नहीं ह । अत धात्वध परोक्ष होगा । फिर भी जहाँ पर साधन प्रत्यक्ष ह उसवे आधार पर क्रिया के प्रत्यक्ष की बात लोक म देखी जाती ह । साधन यद्यपि गतिरूप ह फिर भी द्रव्याश्रित होने क कारण द्रव्य के प्रत्यक्ष के द्वारा वे भी प्रत्यक्ष होने वाले मान लिये जात ह । अथवा गति और गतिमान में अभेद की विवक्षा से साधन का ही द्रव्य मान लिया जाता है । जहा द्रव्य का प्रत्यक्ष होता ह वहाँ प्रत्यक्ष का और जहा द्रव्य का परोक्ष होता ह वहाँ परोक्ष का व्यवहार लोक म दसा जाता है ।

पतञ्जलि के समय म परोक्ष के विषय म कई तरह की मायताए प्रचलित थी । किसी के अनुसार सौ वष पहन का वस्तु परोक्ष था । किसी के अनुसार किसी दिवाल या कुटी से अतिरिक्त वस्तु भी परोक्ष था । कुछ लोग दा तीन दिन पहल बीती हुई घटना का भी परोक्ष मानत थे । कथट के अनुसार इन्द्रिय से अगोचर साधन से साधित सभी अनद्यतन क्रियाकाची अर्थ एक तरह स परोक्ष ह और एस परोक्ष म लिट का प्रयोग साधु ह । फलत 'वल पवाया' इस अर्थ म 'ह्य पपाच वावय गुद्ध ह —

इन्द्रियागोचरसाधनसाधितानद्यतनक्रियावाचिनस्तु

धातोर्लिटि प्रत्यय इति निणय । तथा ह्य पपाचेत्याद्यपि भवति । महा-  
भाष्य प्रदीप ३।२।११५

उत्तम पुरुष म 'जहा क्रिया आत्ममाध्य हाती है परोक्ष का व्यवहार चित्तव्या-  
क्षेप अथवा अपह्लव के आधार पर माना जाता है । भाष्यार ने इस प्रसंग म

शाक्यगण की तल्लीनता का उन्मुख किया है जो राजमाग पर स्थित हात दृश्य भी सामन से जाते हुए शकटा को नहीं देख सके थे। पतञ्जलि के अनुसार मन संसयुक्त होकर इन्द्रिया उपलब्धि में कारण होती हैं। मन यदि पास में नहीं है तो वस्तु प्रत्यक्ष होती हुई भी परोक्ष ही है—

किं पुन कारण जाग्रदपि वतमानकाल मोपलभते । मनसा संयुक्ताणि इन्द्रियाणि  
उपलब्धौ कारणानि भवति, मनसोऽसान्निध्यात् । मगभाष्य ३।२।११५

स्वयं अनुभूत न होने का कारण जो परोक्ष घटनाएँ हैं परन्तु वक्ता के समय में ही घटित हुई हैं उनके लिये परोक्ष के अर्थ में अनद्यतन का व्यवहार किया जाता है। अर्थात् लिट के स्थान पर लड लकार का प्रयोग किया जाता है जैसे 'अरण्यत यवन साकेतम्'। इस वाक्य में वक्ता के स्थिति काल में साकेत पर यवना का आक्रमण हुआ था। यह भाव लड के प्रयोग से जान पड़ता है। (अरण्यत इत्युदाहरणे तु तुल्यकाल प्रवर्ततेति बोध्यम्—महाभाष्यप्रदीपोद्योत ३।२।११५)। इसी तरह शश्वतघोरआसन काल प्रवन के सम्बन्ध में भूत अनद्यतन परोक्ष के अर्थ में लड लकार का प्रयोग पाणिनि ने उपयुक्त माना है।

वस (निवास करना) में साथ अनद्यतन के अर्थ में सामान्यभूत का लकार (लुङ) प्रयुक्त होता है। कोई प्रातः काल साकर उठता है। उसमें कोई पूछता है 'आप ने रात कहा बिताई'। वह उत्तर देता है— इस स्थान पर रहा (अमुत्र भवात्सम)। परन्तु यहाँ लड लकार का प्रयोग तभी होता है जब कि जागरण सतति अर्थ गम्य हो अर्थात् रात के चौथे पहर में जग जाने के बाद वक्ता फिर नहीं सोया था। यदि चौथे पहर में जग जाने के बाद वह एक मुहूर्त के लिये भी सोता है 'अवात्सम' के स्थान पर उस 'अवसम' कहना चाहिये। कथक के अनुसार जागरण सतति का अभिप्राय यह है कि यदि प्रयोक्ता रात्रि के प्रथम तीन पहर जागे जाग ही बिताया था तभी अवात्सम प्रयोग होगा, यदि बीच में सोकर पुन उठ कर अपने साने की बात वह करता है तो उसे अवसम कहना चाहिये।

पुरा और स्म क साथ (उपपद रूप में) अनद्यतन भूत के अर्थ में वतमान काल का व्यवहार देखा जाता है पुरा शब्द के साथ वक्तृत्व रूप में ही वतमान काल मिराता है। जैसे वसतीह पुरा छात्रा । इति स्तोपाध्याय कथयति ।

### अद्यतन-अनद्यतनभूत

भूत काल का एक अद्यतन और अनद्यतन का मिश्र रूप भी भठ हरि ने स्वीकार किया है। अद्यतन और अनद्यतन का समुदाय अनद्यतन संभिन्न है। इसलिये अद्यतना नद्यतन नाम से एक अलग भूतभेद मान लिया गया है। इसका उदाहरण 'अद्य ह्य अनुधमहि' है।

### भविष्यत् के स्थान पर आरोपित भूत

पाणिनि ने आशसाया भूतवच्च ३।३।१३२ जस सूत्रा द्वारा भविष्यत काल के अर्थ में

भूतकाल के प्रत्ययो का विधान किया है। ऐसे स्थला के लिये भविष्यत् के स्थान पर आरोपित भूत होने से इसे एक अलग भूत भेद मान लिया गया है।

## भविष्यत् काल

भत हरि के अनुसार भविष्यत् काल चार प्रकार का है—

- (१) सामान्य भविष्यत्,
- (२) अनद्यतन भविष्यत्,
- (३) अनद्यतन भविष्यत्
- (४) अनद्यतनानद्यतन भविष्यत्।

इनमें सामान्य भविष्यत् का निर्देशक लट लकार है। अनद्यतन भविष्यत् के लिए भी लुट का प्रयोग किया जाता है। अनद्यतन भविष्यत् अनद्यतन भूत की तरह है। [इसका चोतक लुट लकार है। अनद्यतनानद्यतनसमुदाय अनद्यतन और अनद्यतन भविष्यत् से भिन्न है।

जिस तरह भविष्यत् के स्थान पर आरोपित भूत होता है उसी तरह अनद्यतन भूत के अथ म भविष्यत् काल का भी आरोप देखा जाता है विशेषकर स्मरणाद्यक धातुआ के साथ। जैसे, अभिजानासि देवदत्त यत बश्मीरेषु वत्स्याम। परन्तु भत हरि ने इसे अलग भविष्यत् भेद के रूप में स्वीकृत नहीं किया है इसी तरह अनद्यतन भविष्यत् होत हुए भी अिनमें सामान्यभविष्यत् के प्रत्यय आदि प्रतिषेध के आधार पर किये जाते हैं उन्हें सामान्य भविष्यत् में ही परिगणित करना चाहिए (यस्तु अनद्यतनवत् प्रतिषेधात् भविष्यत् सामान्यकार्याणि प्रतिषेद्यते सोऽनद्यतनोपि शास्त्र व्यवहारो भविष्यत्सामान्यभेद—हेलाराज काल समुद्देश २८)।

परिदवन (खेत्) के अथ म अनद्यतनभविष्यत् के लिये अनद्यतन भविष्यत् का प्रयोग साधु माना जाता है जैसे इय वदा नु गता या एव पादो निदधाति (जब यह इस तरह से पर रख रही है तब जब पहुँच सकेगी)। पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्य लुट को श्वस्तनी और लट का भविष्यन्ती कहते थे।

लोक में भविष्यत् के अथ म भूत का प्रयोग एक वाक्य में देखा जाता था। वह वाक्य यह है—द्वदक्षं वष्ट निष्पन्ना गालय (यदि पानी बरसगा धान की फसल अच्छी होगी)। वस्तुन सपत्स्यन्त गालय बहना चाहिये क्याकि अभी धान होने बाल हैं वे अभी निष्पन्न नहीं हुए हैं। फिर भी जनना भविष्यत् काल का प्रयोग नहीं करती थी और यदि कोई भविष्यत् काल का प्रयोग (सपत्स्यन्त) कर देता था तो उससे क्या जाता था कि सपत्स्यन्ते के स्थान पर सपन्ना बहना। वाक्य पत्नीयकार में यहाँ भूतकाल के प्रयोग के पक्ष में कुछ अपन सुभाव दिया है।

उनके मत में निष्पत्ति गालय दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो आरम्भ या फल का उत्पत्ति के कारण है और दूसरा फल का सिद्ध होना। जहाँ तक धान की निष्पत्ति का प्रश्न है पहले अर्थ के अनुसार जल और गालि का संयोग ही निष्पत्ति है। धान के सिद्ध हान में जल गालि का संयोग सम्पन्न हान वाली अवस्था का एक अवयव

है। वह वषण क्रिया मात्र से सिद्ध है। धान की जो फसल होगी उसके बहुत पहले ही जल शक्ति का संयोग घटित हो गया रहता है। इस आधार पर क्रिया श्रुत मान ली जायगी और भविष्यत् के स्थान पर भूत का (निष्पन्न शब्द का) प्रयोग उपपन्न हो सकेगा।

यदि निष्पत्ति शब्द का दूसरा अर्थ, फल प्रसव रूप अर्थ लिया जायगा तब भी उपयुक्त वाक्य में भूतकाल के व्यवहार का समर्थन किया जा सकता है। धान की निष्पत्ति का अर्थ फल रूप धान का सम्पन्न होना है। उसका कारण जल शक्ति संयोग आदि है। वायु के घम का कारण के घमों में अध्यास किया जाता है। इस आधार पर फलनिष्पन्नरूप वायु का जल शक्ति संयोग में अध्यास हो जायगा। जल शक्ति का संयोग केवल वषण क्रिया से सिद्ध हो जाने के कारण क्रिया श्रुत मान ली जायगी। फलतः फल निष्पत्ति भी अधस्त रूप में श्रुत ही मानी जायगी और इस तरह निष्पन्न शब्द का व्यवहार भविष्यत् के अर्थ में भूत का प्रयोग उपपन्न हो जायगा।<sup>11</sup>

अथवा वायु में कारण के घम का अध्यास किया जायगा। धान की फल निष्पत्ति वायु है। जल शक्ति का संयोग कारण है। उसका वषण क्रिया श्रुत घम है उस घम का निष्पत्ति में आरोप कर निष्पत्ति को श्रुत मान निष्पन्ना शक्ति कहा जा सकता है। पूर्व वाले मत से इस मत में इतना ही अंतर है कि पहले कारण घम में वायु घम का आरोप रहा गया था इसमें फल में कारण घम का अध्यास कहा गया है। कात्यायन ने हनुभूतकालसम्प्रतिष्ठितत्वात् (वातिक, महाभाष्य ३।३।१३३) के द्वारा इसी मत का समर्थन किया है। धान की निष्पत्ति में हनुभूत वषण आदि हैं। वर्षा के काल का (श्रुत का) धान की संपन्नता रूप वायु में अर्थात् की जाती है अर्थात् वायु और कारण में अभेद मान कर कारण का ही वायु रूप में व्यक्त किया जाता है। इस तरह औपचारिक व्यवहार करके प्रयोजन किसी विशेष कारण या अर्थ कारणों की अपेक्षा अधिक शक्ति सम्पन्न जाता है। यदि इस तरह से शक्ति निष्पन्न माना जायगा तो उससे भोजन आदि के व्यापार (गणक्रिया) भी तुरन्त क्यों नहीं होन लगते? उनके उत्तर में महाभाष्यकार ने कहा है कि जो धान यथाथरूप में निष्पन्न हो चुके हैं और खलिहान में उठा कर बाठना (कोष्ठ) में रखे गए हैं वे भी तुरन्त बिना किसी दूसरी क्रिया के सहारा लिये अथ क्रिया के उपयोगी नहीं होते। उन्हें भी भोजन के योग्य होने के लिये अवहनन (मूल से छाटना) आदि व्यापारों की अपेक्षा होगी है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई विद्यमान वस्तु अथ क्रिया को नहीं कर रही है तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें अथ क्रिया की शक्ति ही नहीं है। उसमें भी अथ क्रिया की शक्ति अभिन्वयत रूप में हो सकती है। इसलिए निष्पन्न कहे जाने वाले पर अभी अनिष्पन्न शक्ति भी जनन आदि क्रिया की प्रतीक्षा करने वाले कहे जा सकते हैं। और अथक्रियाशक्ति सम्पन्न मान जा सकते हैं।

इस प्रसंग में भूत हरि न निष्पत्ति और सिद्धि में थोड़ा सा भेद दिखाया है

जा घना दो मोल है । भूत हरि क मंगुलार तिराति क हेतु घनगमिया हात है, उगती कारण गति की परिवर्तना टीर टीर गती हा पाता है । जबकि गिद्धि का माया तग गति गति घोर व्यगमिया हात है । निर्यागि का सम्बन्ध हेतु न घोर पयजम माना ग है जबकि गिद्धि का सम्बन्ध पय न ही है । निर्यागि वास्तु माया के अधीन है जब कि गिद्धि घोरत माया क अधीर है

निष्पत्ताद्यधि कश्चित् क्विं चतु प्रविष्टिना ।  
हेतुमन्मयपेमान पतत्रामेति बोध्यते ॥  
अद्वैतसाधनाधीना सिद्धि यंत्र विषयिता ।  
तत् साधनांतराभावात् सिद्धिमित्युपदिश्यते ॥

—वाक्यपदीय ३ कालममुद्रा १०९ ११०

भूत हरि न अविद्यमान क आधार पर उगुत वास्तु म भूत भविष्यत् घोर वास्तुमान नीना मान क प्रयोग का समया दिया है निर्यागि साधन निर्याग्यन्त साधन निष्पत्तये साधन यतीना वास्तु विषय तानुसार प्रमुद्रा हा गता है । भूत हरि न मन्त्र माना काना की माया पर जार दिया है । इगद पीत उतरा गता-गता है । गता म एत रूप है । जा पथिक उस प्रत्येक गता है उगन निय रूप की वनमान-गता है जा उग देग चुवा है उसक लिए उग रूप की भूत गता है घोर जो उग अधी ग्येता उगन निय उग रूप की भविष्यत्-गता है । इन्द्रिय सम्बन्ध या अमम्बन्ध क आधार पर एत ही गता भिन भिन व्यपदेश घाली है । साथ ही यस्तु की बोद्धि गता गता वनमान रूप म उपलब्ध हो सक्ती है । इग आधार स रूप है जग वतमानरातिर प्रयोग गवया उपपन्न है । इग तरत की उपलब्धि म भूत भविष्यत् घाति की दिवशा प्रापायरूप म नही उठती, कयत यस्तु क सामान की दिवशा मानसिक ग्रहण म देली जाती है

सत्तामिन्द्रियसम्बन्धात् सव सत्ता विगिष्यते ।  
भेदेन व्यवहारो हि यस्त्वन्तरनिबन्धन ॥  
अस्तित्व अस्तुमात्रस्य बुद्ध्या तु परिगृह्यते ।  
य समासादनाद् भेद स तत्र न विवक्षित ।

—वाक्यपदीय ३ कालममुद्रा ११२ ११३

### त्रियातिपत्ति में भूत और भविष्यत्

जब किसी प्रतिबन्धन क कारण अथवा सामग्री की विकलता स किसी त्रिया की उत्पत्ति बिल्कुल नही हो पाती है उस त्रियातिपत्ति कहते हैं कुतश्चिद् अगुण्याद् अनभिनिवृत्ति त्रियाया त्रियातिपत्ति —वाशिका ३।३।१३६। अथ प्रश्न यह है कि त्रिया की अनुत्पत्ति के साथ भूत या भविष्यत् का सम्बन्ध नहा जोडा जा सकता । कयाकि भूत उत्पन्न के अतिशय अवस्था का चोचित करता है जो अनुत्पन्न है उस के साथ उसका सम्बन्ध दुषट है । इसी तरह साधनसति तधान क हाते हुए सभावित उत्पत्ति भविष्यत् का क्षेत्र है । अनुत्पन्न स उसका भी सम्बन्ध कठिन है ।

भक्त हरि ने इस प्रश्न का समाधान अवधिभेद से विषयभेद के आधार पर किया है। यदि कमलकम आह्लास्यन न शकट पर्याभविष्यत (यदि कमलक को मुलाता गाड़ी नहीं टूटती)। कमलक एक ऐसा व्यक्ति है जो शकट को सभालन में कुशल है उसकी कुशलता पूर्व के अवसरों पर परीक्षित है। इसलिए भविष्य में भी कमलक का आह्वान शकट की सुरक्षा में साधक हो सकता है एसा सम्भवा स्वाभाविक है। शास्त्रीय शब्द में यही लिंग है और कमलक का आह्वान सामान्य धर्म है। यहाँ कमलक के पुकारे जान की और गाड़ी के टूटने की अतिपत्ति है और वह प्रमाणांतर गय है। कमलक के पुकारे जान की अतिपत्ति उसके दशान्तर चले जाने से सम्भव है और गाड़ी का भग हाना भी अत्यधिक भार आदि से सम्भव है। इस बात को समझते हुए ही वक्ता ने उपयुक्त वाक्य का प्रयोग किया है। इसमें कमलक के आह्वान और शकट के न टूटने में हेतुहेतुमदभाव है। इस वाक्य से इन दोनों की अतिपत्ति भविष्यत कालिक जान पड़ती है। बतमान में तो वह देख ही रहा है कि कमलक को बुलाया नहीं जा सकता और न गाड़ी ही टूटने से बचाई जा सकती है। अतः यहाँ भविष्यत काल सम्बन्धी क्रियातिपत्ति है। अर्थात् काल का अवच्छेद भविष्यत रूप में होने के कारण क्रियातिपत्ति का सम्बन्ध भी भविष्यत से हो गया है।

इसी तरह क्रियातिपत्ति का सम्बन्ध भूतकाल से भी हो जाता है। जैसे कोई किसी से कह रहा है— मैं अब पके भूले पुत्र को भाजन की फिराक में इधर-उधर घूमते देखा है एक दूसरे आदमी को भी देखा जो भोजन कराने के लिये ब्राह्मण की खोज में घूम रहा था। यदि उसे देखा होता अवश्य खिलाता परन्तु उसने भोजन नहीं किया वह दूसरे रास्ते से चला गया। इस उक्ति में न भोजन कराने का व्यापार जो भोजन का प्रतिद्वन्दी है, भूतकाल के रूप में व्यक्त किया गया है वह अतीत को विषय हुआ गया है। इसलिये क्रियातिपत्ति भी अतीत विषय वाली जान पड़ती है। इसलिये यहाँ उसका व्यवहार भूत रूप में किया गया है।

नागार्जुन के अनुसार ऐम स्थान में भविष्यत आदि का आरोप किया जाता है और इस आरोपित अर्थ के द्वारा ही क्रियातिपत्ति का भविष्यत आदि से सम्बन्ध हो पाता है—

साधनाभावाद अमविष्यदपि वस्तुनि भविष्यत्वम् आरोप्यते निषेधप्रतियो  
गित्वायेत्यदोपात्तः। सुमिक्षाभवन हेतुमुबिष्टिभवन भविष्यत्वेन असम्मादयन  
एकमभियते। एव हि क्रियातिपत्ति अवगता भवति—मजूपा, पृष्ठ ६२३

## व्यामिश्र काल

संस्कृत में ऐसे बहुत से वाक्य मिलते हैं जिनमें दो विरुद्ध काल एक साथ उक्त रहते हैं जैसे—

(१) भावि कृत्य आसीत्

(२) अग्नि नामवाग्म्य पुत्रो जनिता

- (३) साटोपमुर्वीमनिश नदन्तो ये प्लावयिष्यन्ति मम ततोमी  
 (४) गोमान आसीत् आदि ।

इनम प्रथम वाक्य म भावि शब्द म भविष्यत्काल का प्रत्यय है आसीत् भूतकाल का है । द्वितीय वाक्य म अग्निष्टोमयाजी शब्द म भूत काल का प्रत्यय है- जनिता भविष्यत् काल है । ततीय वाक्य म नदत्त वतमानकाल का प्लावयिष्यन्ति' भविष्यत् काल से सम्बन्ध है । चतुथ वाक्य मे वतमान काल का भूतकाल से सम्बन्ध है । पाणिनि ने इस तरह के प्रयोगा की साधुता दिखाने के लिये धातु सम्बन्ध प्रत्यया' ३।४।१ इस सूत्र का निर्माण किया था । धात्वर्थों मे परस्पर सम्बन्ध सम्भव है । वह विशपण विशप्यभाव रूप म होता है । सुवत्वाच्च अथ विशेषण होता है और तद्धित वाच्य अथ प्रधान होने क कारण विशप्य होता है । अग्निष्टोमयाजी म भूतकाल विशपण है जनिता गद म भविष्यत् काल विष्प्य है । विशपणविशेष्यसम्बन्ध के बल पर भूतकाल भविष्यत् काल से मिल कर भविष्यत्काल हो जाता है । अत उपयुक्त वाक्य का भाव हो जाता है— इसको ऐसा पुत्र होगा जो अग्निष्टोम से यज्ञ करेगा । इसलिये पाणिनि का उपयुक्त सूत्र से अभिप्राय यही था कि धातु के सम्बन्ध म कालांतरविहित प्रत्यय वाले शब्दा का किसी अर्थकाल के साथ सम्बन्ध सम्भव हो सक और उह साथ माना जाय । पर तु महाभाष्यकार ने इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया है और सत् हरि आदि न इस सम्बन्ध म महाभाष्यकार का अनुकरण किया है । कात्यायन क अनुसार प्रत्यय के यथाकाल विधान से काम चल जायगा । जिस तरह से 'इन सूत्रा स साडी बनाओ इस वाक्य स साडी की भावि व्यपदेश रूप म प्रतिपत्ति होता है उसी तरह अग्निष्टोमयाजी क भूत का जनिता क भविष्यत् क सहारे भावि व्यपदेश हो जायगा । उपपत्त म विशपण म विशप्य के काल स अर्थ काल का हाना अस्वाभाविक नती है परन्तु वाक्य क सामर्थ्य स विशेषण का काल विशप्य के काल स सम्बन्ध होकर ही भासित होगा । इसलिये सूत्र के बिना भी काम चल सकता है । किन्तु भूत-हरि न सूत्र की सायकता क पक्ष में भी अपने विचार यस्त किया ह । व्यामिश्रकाल म भूत और भविष्यत् आदि के एत साथ प्रयोग को मायता देने के लिये सूत्र की साथ-कता है—

गुड च काले द्याह्यातमामिधे न प्रतिष्यति ।

साधुत्वमयथाकाल तत्र सूत्रेणोपविष्यते ॥<sup>१</sup>

अतः तरह म वाक्यपत्नीय में ग्यारह तरह क वाचभू का विवचन किया गया है

भूत पञ्चविधस्तत्र भविष्यच्च चतुर्विध ।

वतमानो द्विधा श्यात् इत्येकादश कल्पना ॥<sup>१८</sup>

परन्तु भूतहरि-दशन में ये सब भेद व्यवहार की सुविधा की दृष्टि से कल्पित हैं, यथाथ नहीं हैं। कालाख्य स्वतःशक्ति भेद से सबथा रहित है—

विकल्परूप भजते तत्त्वमेवाविकल्पितम् ।

न चात्र कालमेदोस्ति कालभेदश्च गृह्यते ॥<sup>६६</sup>

## दिक् और काल

भारतीय विचार परम्परा में दिक् और काल साथ-साथ आते रहते हैं। व्याकरण में भी इनका साहचर्य है। पाणिनि ने कई नियम दोनों के लिये साथ-साथ व्यक्त किये हैं जैसे दिग्देशकालोबस्ताति ॥३॥२७॥ भूत हरि ने भी काल की तरह दिक् पर भी विचार किया है।

भूत हरि के दशन में दिक् और काल में कई तरह के साम्य हैं। जिस तरह वे काल को शक्ति मानते हैं वैसे ही दिक् का भी शक्ति मानत हैं —

शक्तिरूपे पदार्थानामत्यन्तमनवस्थित ।

दिक् साधन त्रिया काल इति वस्त्वभिधायिना ॥

—वाक्यपदीय दिक् समुद्देश १

कालशक्ति त्रिया का भेदक है और दिक् शक्ति मूर्ति का (कालात् त्रियाविभज्यते आकाशात् सव मूतय —वाक्यपदीय २, साधनसमुद्देश, अधिकरण ६)।

दिक् और काल दोनों क्रम व आघार पर भेदक होते हैं। दृग् भेद चलने वाले (गता) की गति से स्पष्ट है। ठहरने (तिष्ठति) में भी दृग् भेद है। काल भेद ता क्रमागत है ही। योगपद्य में भी परमायत क्रम रहता है।

भूत हरि के अनुसार दिक् अवधि और अवधिमान में भेद का हनु है। ऋजु या वक्र व पान का निमित्त भी दिक् है। क्रम के त्रियक ऊर्ध्व आदि व व्यजक भ्रमण उल्लेपण आदि जातिभेद की अभिव्यक्ति भी दिक् के ही आश्रय से होती है। दिक् शक्ति एक है फिर भी उपाधिभेद से दत्त प्रकार की मानी जाती है। दिक् के सहारे ही परत्व और अपरत्व विवेचन होता है। मूर्ति (भवगतद्रव्यपरिमाण) में क्रमरूप की कल्पना दिग्शक्ति है। अमूर्त आकाश में भी परत्व अपरत्व वस्तुग्रा व संयोग विभाग के आघार पर औपाधिक रूप में माने जाते हैं।<sup>६७</sup> इसी पूर्व अपर आदि पाना के बल पर दिक् की सत्ता का अनुमान किया जाता है (यथा पूर्वापरवि प्रत्ययलक्षणैर्ण कार्येण अनुमित सत्त्वा तथाम्युपगतत्वा शक्तिरूपा दिक्—हेलाराज, दिक् समुद्देश ७)

भूत हरि ने दिक् की बाह्य सत्ता व अनिश्चित उमकी आंतरिक सत्ता भी मानी

६६ बहो द्रव्यसमुद्देश =

७० वाक्यपदीय २, दिक् समुद्देश २-५।



है। उनके अनुसार दिक् अक्षरों का एक धर्म है जो बाह्य रूप में, पूर्व अक्षरों के रूप में प्रकट होता है। दिक् का कोई बाह्य रूप नहीं है (न बाह्या काचिद दिगस्ति—हेलाराज, दिक् समुद्देश २३)।

अक्षरों के धर्मों का बहिरेव प्रकाशते।<sup>७१</sup>

## उपग्रह-पुरुष-सख्या-विचार

उपग्रह शब्द पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यों का जान पड़ता है यद्यपि निरुक्त और प्रातिशाख्यो में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु कात्यायन, पतञ्जलि आदि न इनका व्यवहार पारिभाषिक रूप में किया है। पाणिनि-सूत्रों में यह शब्द नहीं है। पाणिनि के एक सूत्र 'चूर्णाद्यप्राणिवृत्तया' ६।२।१३४ का पाठभेद 'चूर्णादीयप्राण्युप-ग्रहात्' इस रूप में मिलता है। इसका उल्लेख काशिका में वामन ने किया है। इसमें उपग्रह शब्द है। वामन के अनुसार पूर्व के आचार्य पठयत्त को उपग्रह कहते थे

चूर्णादीयप्राण्युपग्रहादिति सूत्रस्य पाठात्तरम । तत्रोपग्रह इति पठयत्तमेव  
पूर्वाचार्यान् आरोधेन गृह्यते ।—काशिका ६।२।१३४  
पूर्वाचार्या हि पठयत्तमुपग्रह इत्येवमुपचरन्ति स्म ।

—याज्ञ ६।२।१३४

किन्तु आख्यातगम्य उपग्रह पठयन्त-उपग्रह में भिन्न है। आख्यातगम्य उपग्रह शब्द का प्रयोग कात्यायन ने उपग्रह प्रतिपद्यच्च (वातिक ३।२।२२७) में किया है। महाभाष्य में पारिभाषिक उपग्रह शब्द का व्यवहार कई स्थलों पर मिलता है। जैसे—

न निष्ठापरस्यानुप्रयोगेण पुरुषोपग्रहो विधेयिती स्याताम ।

महाभाष्य २।१।८०

मुपतिङ्गुपग्रह सिद्धमनराणा कालहलचस्वरक्त यडा च ।

व्यत्ययमिच्छति नास्त्रकृदेया सोपि च सिध्यति बाहुल्येन ॥

—महाभाष्य ३।१।८५

तिट्निहितेन भावेन कालपुरयोपग्रहा अभिव्यज्यते ।

—महाभाष्य ३।१।६७

### उपग्रह की परिभाषा

सन्दर्भस्वामी ने उपग्रह के स्वरूप बतलाते हुए उसे वत गामी और परगामी लक्षण बाना माना है। घात्मनेपद के उच्चारण से फल वत गामी जान पड़ता है और परस्मैपद

२४६ / सञ्चत व्याकरण-दशान

के उच्चारण से फल परगामी जान पडता है —

उपग्रह क्त गामि परगामित्व लक्षण । स्वर्णितञ्जित आत्मनेपद उच्चारिते ज्योतिष्टोमेन स्वगकामो यजेत इति क्त गामिकलत्व प्रतीयते । परस्पपदे तु यजति याजका इति परगामिकलत्वम् ।<sup>१</sup>

जिनेन्द्र बुद्धि के अनुसार उपग्रह एक तरह का क्रिया विशेष है परन्तु उससे आत्मनेपद और परस्मपद इसलिय गहीत होते हैं कि वे ही उसकी अभियक्ति में निमित्त हैं—

सादेश व्यङ्ग्य क्रियाविशेषो मुख्य उपग्रह । इह तु तद व्यक्तनिमित्तत्वात् परस्मपदात्मनेपदयोवतते ।<sup>२</sup>

इसको भट्टोजि दीक्षित ने यो कहा है —

सादेश 'यङ्ग्य क्रियासाधनविशेषरूप स्वाथपराथत्वादिश्चोपग्रहशब्दस्य वाच्य ।<sup>३</sup>

इन सब उक्तियों का आधार वाक्यपदीय है । उपग्रह की परिभाषा वाक्यपदीय में ही सबप्रथम दल पडती है । वह या है —

य आत्मनेपदाद् भेद क्वचिदथरय गम्यते ।  
अथतश्चापि सादेशामयते तमुपग्रहम् ॥<sup>४</sup>

आत्मनेपद या परस्मपद के प्रयोग से क्रिया या साधन व किसी विशेष अर्थ की अभि व्यक्ति हाती है जिसका सम्बन्ध सीध कर्ता से होता है अथवा कर्ता से अर्थ किसी दूसरे में होता है । इसी क्रिया या साधन व विनाय को उपग्रह कहा जाता है । हला राज व अनुसार पूर्वाचार्यों ने इसी अर्थ में उपग्रह का व्यवहार किया था और उसी आधार पर उन्ही अर्थ में यह शब्द सप्रति 'वाकरण-दशान में गहीत है — (पूर्वाचार्यप्रसिद्ध योपग्रहशब्दवाच्योऽयमर्थो व्यवहृतः सत्र शास्त्र—हेताराज, उपग्रह समुदाग ?) ।

साधन उपग्रह रूप में

कम कर्ता जैसे साधन आत्मनेपद से व्यय हान व कारण उपग्रह कही कहा कट जात है । उस पच्यत गम्यत जैसे शब्दों में आत्मनेपद से कम छातिन हाना है । एधन

१ निरुक्तमन्त्र १७८ ह ८०० तदमय रत्नप द्वारा सम्पादित ।  
२ काशिका विवरण पत्रिका ३/१/१८५  
३ शब्द कोशुभ शब्द ८६६ (चौखन्वा सम्क २)  
४ वाक्यपदीय ३, उपग्रह समुदाग ?

याति जैसे शब्दा में आत्मनपद और परस्मैपद से कर्त्ता व्यंग्य है। कभी कभी भाव भी साधन के रूप में व्यवहृत होता है और वह आत्मनपद से अभिव्यक्त होना है। जैसे आस्त शब्दों में जस पद में आत्मनेपद के द्वारा ही भाव की अभिव्यक्ति होती है, भाव क्रिया का एकपदवाच्य साधनावग को अभिव्यक्त करता हुआ स्वयं साधन हो जाता है। कभी कभी उपग्रह साधन के विशेषणरूप में व्यक्त होना है विशेषकर व्यक्तवाक के अर्थ में। जैसे सप्रवदन्त ब्राह्मणा' इस वाक्य में उपग्रह साधन का विशेषण है। यद्यपि गुण, सारिका आदि के उच्चारण में भी वर्णों के स्पष्ट उच्चारण जान पड़ता है किन्तु वे सीमित या इन गिने वर्णों में ही स्पष्ट जान पड़ते हैं और वह भी पुरुष के प्रयत्न से बहुत दिन तक मिथान रटान से संभव हो पाता है। इसलिये उनके लिये वदन्ति शब्द का ही प्रयोग होता है वदत शब्द का नहीं।

## क्रियाविशेष उपग्रह रूप में

कभी कभी क्रियाविशेष उपग्रह होते हैं। जैसे गंधन (पीछा पट्टचाने वाली निंदा) और अवगण (भत्सना) धातु से वाच्य क्रियाविशेष होते हुए भी जब तक आत्मनपद में न व्यक्त किया जाय तब तक अनभिव्यक्त ही रहते हैं। जैसे उक्तुरत। इस शब्द से हिंसात्मक निंदा का अर्थ आत्मनेपद के प्रयोग से ही जान पड़ता है। इसी तरह 'श्येन वनिकाम उदाकुरुते' इस वाक्य में श्येन द्वारा वनिका की भत्सना उदाकुरुते में आत्मनेपद के प्रयोग से अवगत होती है। इसी तरह कमव्यतिहार भी क्रियाविशेष रूप में आत्मनपद से व्यंग्य होकर उपग्रह होता है। कमव्यतिहार का अभिप्राय यही क्रिया-व्यतिहार है। जब एक सम्बन्धी क्रिया को कोई दूसरा व्यक्ति करने लगता है और दूसरे के लिये नियत क्रिया का जब पहला व्यक्ति करने लगता है उसे कम व्यतिहार अथवा क्रिया-व्यतिहार कहते हैं (यत्राय सर्वाधनी क्रियामय करोति, इतर सम्बन्धिनी चेतरे स कम व्यतिहार — काणिका १।३।१४)। क्रिया के माध्यस्वभाव के होने के कारण क्रियाविशेष होने के कारण उनमें व्यतिहार अथवा विनिमय यद्यपि संभव नहीं है फिर भी साध्य साधन का विपर्यास संभव है। योग्यतावश से अमुक व्यक्ति की यह क्रिया साध्य है और अमुक का यह साधन है इस तरह के पान होते हुए भी जब साध्यसाधनभाव में व्यत्यास हो जाता है उस क्रियाव्यतिहार कहते हैं। वस्तुतः क्रिया अभी करने वाले को अभीष्ट रहती है 'मैं इस क्रिया को करूँगा' इस तरह के विचार उसके मन में रहते हैं तभी कोई दूसरा व्यक्ति उस क्रिया को करने लग तो क्रिया व्यतिहार होता है जैसे-व्यतिलुनीते। इसका अभिप्राय है कि अर्थ द्वारा काटे जाने वाले धान को पहले ही कोई दूसरा काट रहा है। यही आत्मनपद से यही व्यत्यास द्योतित है। फलतः क्रियाव्यतिहार भी उपग्रह माना जाता है। क्रिया व्यतिहार में ता आत्मनपद होता है परन्तु साधनकम व्यतिहार में नहीं होना जैसे देवदत्तस्य धाय व्यतिलुनीते (देवदत्त द्वारा सग्रहीत धाय का कोई अर्थ सग्रह कर रहे हैं)। यही अर्थ सम्बन्धी धाय का अर्थ द्वारा सग्रह किया जाने के कारण साधन-

कर्म व्यतिहार है। इसे परस्मपद से ही व्यक्त किया जाता है। कभी कभी परस्परकरण भी क्रिया व्यतिहार होता है जैसे—'सप्रहृत राजान्। इस वाक्य में एक ही क्रिया संचारिणी सी जान पड़ती है। क्रिया व्यतिहार प्रायः उपसर्ग से चोतित किय जात है (उपसर्गाश्च प्रायः कर्मव्यतिहारद्योतनाय प्रयुज्यन्ते—कण्ट, महाभाष्यप्रदीप १।३।१६) उपसर्गों में भी प्रायः व्यति (वि और अति) ही क्रियाव्यतिहार के लिए प्रयुक्त होते हैं। कभी कभी सम भी प्रयुक्त होता है। क्रिया व्यतिहार प्रायः अनेक क्त क होता है इसलिये उसके लिये क्रियाशब्द सदा बहुवचन में ही जाना है ऐसा कुछ लोग मानते हैं। किन्तु 'अया व्यतिस्तु ममापि धर्म' जैसे वाक्यों में एकवचन का प्रयोग भी देता जाता है।

### विषयभेद के आधार पर क्रिया विशेष उपग्रह रूप में

एक ही क्रिया विषयभेद से भिन्न भिन्न भान ली जाती है और उसके भिन्न स्वरूप आत्मनपद और परस्मपद से चोतित किय जात है। पचति और पचन में अन्तर है। पचति शब्द में परस्मपद इस बात का द्योतक है कि पकाने वाले की पकाने की क्रिया जीविका रूप में है वह कवल भृत्य की तरह का व्यापार है। यहाँ प्रधान क्रिया फल क्त गामी नहीं है भृत्य के लिये वेतन मात्र फल है। किन्तु पचते में आत्मनपद से यह द्योतित होता है कि पाक क्रिया का प्रधान फल कर्त्ता का मिलना। कर्त्ता अपने लिये ही पका रहा है। विषयभेद के आधार पर क्रिया का भेद वाक्य में भी दिखाई दे सकता है। जैसे स्वयं यजति और स्वयं यजति। यह भ्रम हो सकता है कि परस्मपद से द्योतित (यजति) प्रधान क्रिया फल क्त गामी नहीं होगा। इस भ्रम के निवारण के लिये ही 'विभाषापपदन प्रतीयमान' (१।३।७७) सूत्र की आवश्यकता है। अर्थात् उपपद (समीप में उच्चरित न कि पारिभाषिक) से द्योतित क्रियाफल क्त गामी होगा चाहे वह आत्मनपद से द्योतित हो अथवा परस्मपद से। फलतः स्वयं कट करोति और स्वयं कट कुम्भ में फल की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः इन वाक्यों में प्रधानफल का क्त गामित्व के रूप में द्योतित स्वयं शब्द की शक्ति के कारण जाना है। अतः विषयभेद से क्रिया भेद के आधार पर कहीं कहीं क्रियाविशेषण भी उपग्रह हो सकते हैं।

इस प्रसंग में महाभाष्यकार ने यह प्रश्न उठाया है कि याति वाति जैसे क्रियाप्रायः आत्मनपद क्या नया जाना। क्या कि जय क्रिया फल क्त अभिप्राय जाना (क्त गामी) हो आत्मनपद जाना है। एक तरह से सभी क्रिया फल क्त अभिप्राय जाना जाना है। इसका समाधान स्वयं उद्घाटन किया है। उनका कहना है कि उन धातुप्रायः आत्मनपद जाना जिनके क्रिया फल क्त अभिप्रायजान और अन्तः अभिप्राय जान भी होंगे। या या जैसे धातु क्त गामी और अन्तः गामी भी क्रिया फल

वाले नहीं हैं। इसलिये इनसे आत्मनमद नहीं होता। पाणिनि न, महाभाष्यकार के अनुसार एन भी स्वरित त्रित धातु पड़े है जिनके त्रियाफल वत गामी भी हैं और अवन - गामी भी हैं। फलत स्वरितत्रित वत्र भिप्राय त्रियाफने १।१।७२ इस सूत्र म स्वरितत्रित की आवश्यकता नहीं है।<sup>६</sup> यद्यपि पाणिनि ने धातुघा म अ आदि अनुबध को लक्ष्य कर ही स्वरितत्रित ग्रहण किया होगा और इन दृष्टि से स्वरितत्रित की साधकता भी है परन्तु प्रत्याख्यान के पक्षपाती अकार आदि अनुबधा को धातु की स्वाभाविक शक्ति के छातक मानत हैं (स्वाभाविको हि धातूना शक्ति नियतविषया अकाराद्यनुबध तदवगमाय कृता गणकार — हेलारान उपग्रहसमुद्देश ११)। मत हरि के अनुमार अकार आदि अनुबध स्मरणाथक हैं। जा लोग केवल प्रयाग स धातु के स्वाभाविक अर्थ के समभन म अममथ हैं उनके लिये अनुबधा का विधास किया गया है। प्रयागन के लिये उनकी आवश्यकता नहीं है

### अनुबधश्च सिद्धे ऽथे स्मृत्यथमनुपज्यते<sup>७</sup>

कुछ लोगो के अनुमार स्वाथ की दृष्टि से जब क्रिया आरम की जाती है आत्म नपन होता है। पराथ की दृष्टि से जत्र क्रिया का आरम होना है परम्भपद होता है परन्तु एक तरह स सभी त्रिया स्वाथ के लिये ही होती हैं। महाभाष्यकार न इसे इस रूप म व्यक्त किया है—'सभी व्यक्ति अपन अपने लाभ के लिये ही त्रिया मे प्रवत्त हात हैं। जा गुरु की सवा त्रिन गत किया करत है वे भी वस्तुत अपन स्वाथ के लिये ही ऐसा करत हैं। हम पुष्य मिलेगा और प्रमन होकर गुरु हम पढावेगा एमी उनकी भावना गुरु सवा म अन्तहित रहती है। जा कमकर (कमकर) हैं व भी स्वाथ भावना से ही काम करत हैं। हम अन-वमन मिलगे और फटकार न सुननी पडेगी ऐमी उनकी अमिलापा रहती है। तिलपी भी वेतन और मित्र की अमिलापा स ही अपन काम म प्रवत्त होते हैं।<sup>८</sup> स्वाथता ही पारमाथिक (सत्य) है और पराथता अमत्य है। अत कुछ लोग स्वाथता-पराथता को विवक्षाधीन मानत है। कुछ लोग स्वाथता म स्वा भाविक प्रवृत्ति हाने के कारण उस विवक्षा निमित्त नहीं मानते, केवल पराथता को विवक्षा निबधन मानत हैं। कुछ लाग प्रधानफल की दृष्टि से स्वाथता और पराथता दाना को वास्तविक मागत हैं। कयट न स्वाथपराथता की दृष्टि स भी स्वरितत्रित ग्रहण को प्रत्याख्यय माना है क्यकि जहा स्वाथ पराथ दोना की विवक्षा होगी वही सूत्र की प्रवृत्ति हागी। यानि आदि क्रियाघा म पराथता सभव नहीं है इसलिये वहा आत्मनेपन की प्राप्ति ही न हागी। फलत उपयुक्त सूत्र म स्वरितत्रित ग्रहण की आवश्यकता नहीं है।

६ महाभाष्य १।१।७२

७ वास्यपत्नीय ३, उपग्रहसमुद्देश १२

८ महाभाष्य, १।१।२६



साहचर्य में और वाक्याय के पयालाचन में समझ पड़ता है। ऐसे उदाहरणा में अथ क सामर्थ्य में जिन शब्द की उपनयि हानी है उसकी आत्मनपद में ही उपनयि का भ्रम होना स्वाभाविक है। और इस भाँति के आधार पर आत्मनपद और णिच् के विकल्प का सिद्धांत खड़ा है। परन्तु नाग्य इस मन से महमत नहीं हैं। उनके मन में विकल्प-उक्ति भ्रमगत है। वपन, विनुत आदि प्रयोग अतर्भावितव्यय के आधार पर उपपन्न हो सकते हैं। अथवा प्रकरण आदि के वन पर उनका तात्पर्य समझा जा सकता है और इस तरह का वान परम्परा के प्रयोग के साथ भी दिया जा सकता है—

चित्ते इत्यादिप्रयोगश्च अतर्भावितव्ययतया उपापाद्य प्रकरणादिक च तात्पर्यग्राहकम् । कदाचित् परस्मैपदोपि तत् प्रतीत्या तस्याव्ययवृत्त्याच्च । वस्तुतः णिच् प्रेरणावाची । किञ्च सामान्यविहितस्य णिचो धानुविनेपाद विहितेनात्मनेपदेन बाध एवोचितः ।<sup>१</sup>

अब हमें अभिप्राय किया कि हम भी आत्मनपद देना जाता है यदि अण्यन्तावस्था का कम पद्यन में कम होना हुआ भी कर्त्ता के रूप में व्यक्त होना है। जिस आराहण हस्ती स्वयमेव । अण्यन्तावस्था में यह वाक्य आराहण हस्तिन हस्तिपत्वा के रूप में था। हस्तिन आदि कम था। वही कम अण्यन्तावस्था में कम होना हुआ कर्त्ता हो गया है। इसलिए यहाँ आत्मनपद है। एक ही समय में एक ही शब्द कम और कर्त्ता दाना कम हो सकता है? उसका उत्तर यह है कि कम भेद से ऐसा सम्भव है। एक वस्तु धम है दूसरा विवशा धम है। हस्ती पर आराहण किया जाता है वह आराहण है, अतः वस्तु धम के कारण उसमें कम है। स्वातन्त्र्य का विवशा में उसमें वनत्व भी है। आराहण कहें धानु से दो त्रियाँ अण्यन हस्ती है अण्यन (जीव भूतना) और अण्यन (भूकवाय जाग)। अण्यन किया में हस्ती कर्त्ता है। अण्यन किया में हस्तीपत्वा कर्त्ता है। भूत हूए हाथी का हस्तीपत्वा (पितृवत) भूतना है। किन्तु अण्यन तरह से मित्राया हुआ और मरल हाथी अण्यन किया में अण्यन हो जाता है। उस अण्यन में हस्ती हस्तापत्वा के प्रयाजक होना है और हस्तीपत्वा प्रयाज होना है। मुझ पर आराहण करो' इस भावना में हस्ती हस्तीपत्वा का प्रयाज होना है। प्रयोग प्रयोगक भाव की विवशा में णिच् होना है। पुन हाथी दाना कृत्त हो सकता है कि उस किसी प्रयाज की अपातन है। उस अण्यन में एक का अण्य अण्यन मात्र है और एक ही समय पर आराहण हस्ती स्वयमेव" प्रयोग किया जाता है। प्रयाज प्रयाजक भाव की निवृत्ति नान पर भी णिच् की निवृत्ति कहा जाती। प्रयाज निवृत्ति के कारण का अण्य अभाव है। उस देवता के व्यापार की निवृत्ति होने पर भी 'पच्यत आदन स्वयमेव' कहते हैं अण्यन पत्वा की पाक में निवृत्ति

१ महाभाष्यप्रयोगोद्योत १३।७० पृष्ठ २२१, पुष्पमन्त्र शास्त्री संपरण ।



नही होती वसे ही प्रयोज्यप्रयोजक 'यापार' के निवृत्त हो जाने पर भी णिच् की निवृत्ति नहीं हाता। कमवत् की अवस्था को भत हरि ने पचमी अवस्था मानी है। अथ विभाग भूमि की अंतिम अवस्था पाचवी अवस्था मानी जाती है और वह प्राया णिच् होनी है —

यावनीषु सोपानस्थानीयामु पद विच्यस्येय प्रायोगिकी पयत्तभूमि प्राप्यते ता अतरालमाविच्यो गम्यमाना भूमयोऽवस्थाशब्दाच्चा ॥<sup>११</sup>

'यग्भवन' और 'यग्भावन' दो रूप शुद्ध रह (णिच् रहित रह) से प्रतीत होते हैं। ये दो रूप णिच् सहित रूप से भी व्यक्त किए जाते हैं। ये चार अवस्थाएँ हैं। पाचवा अवस्था कमवत् अवस्था से च्योतित होनी है

यग्भापना यग्भवन र्हो गुढे प्रतीयते ।  
 'यग्भावना यग्भवन ण्यत्तऽपि प्रतिपाद्यते ॥  
 अवस्था पचमीमाहु ण्यथे ता कमकर्तरि ।  
 निवृत्तप्रपणाद् धातो प्राकृतेऽर्थे णिजुच्यते ॥<sup>१२</sup>

- (१) आरोर्हात् हस्तिन हस्तिपवा,
- (२) आरह्यते हस्ती स्वयमेव
- (३) आरोह्यति हस्तिन हस्तिपका,
- (४) आरोह्यत हस्ती स्वयमेव ।

इन वाक्या मे एक ही 'यापार' को सौकाय असौकाय के आधार पर विभिन्न रूपा में व्यक्त किया गया है। क्यट न इसे एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया है —

- (१) लुनाति वेदार दवदत्त
- (२) लूयत वेदार स्वयमेव,
- (३) लायवत् वेदार स्वयमेव ।

इनमें प्रथम दो वाक्या का कमकर्ता ण्यत्त वाले तीसरे वाक्य में भी कमकर्ता है। ऐसा इसलिए होना है कि लुनाति त्रिया का अथ द्विधाभवन और द्विभाभवन भी है।

लुनाति वेदार दवदत्त' ऐसा कृत्न से सण्ड होत हुए धान को सण्ड सण्ड कर रहा है' ऐसा अर्थ प्रतीत हाता है। जब धान के सौकार्यातिगय को प्रकट करने की इच्छा होती है दवत्त व 'यापार' की विवक्षा नहा की जाती है। तब लुनाति त्रिया का अर्थ केवत्त द्विधाभवन है। धातु के अनेक अर्थ होत हैं इस आधार पर ऐसा कहा जाता है। अथवा भिन्न भिन्न अर्थ वाले धातु वस्तुतः भिन्न भिन्न होत हैं। सादृश्य के कारण व एव-स जान पडत है। अस्तु द्विधाभवन में वेदार का वनत्व है उसमें कम-काय

११ हलाराज वाक्यपटाय माधनमसुरा प० २११, महामाधनदीपोधन १।१।६७

१२ वाक्यपटाय सारनमसुरा ५६ ६०

का अतिदेश किया जाता है। फलतः 'लूयते वेदार स्वयमेव' प्रयोग उपपन्न होना है। जहाँ पर देवदत्त वाच्य म हमुवा (दात्र) लिए दिवार्द देता है वहाँ भी सौवाय की विवक्षा से उपर्युक्त वाच्य का प्रयोग किया जाता है। सूत्र की किरणा से सूत्रे हुए जजर धान के डठल स्वयं विशीण हो जाते हैं—उह काटन म कुछ भी कठिनाई नहीं पडती। यह दूसरी अवस्था है। पहली अवस्था म केदार के द्विधाभवन की बुद्धि होनी है कदार म काट जाने की योग्यता त्व कर ही व्यक्ति उमम प्रवक्त हाता है। द्वितीय अवस्था म यह भाव भनकना है कि धान अग्र द्वारा नहीं स्वयं अपने आप ही कट रहा है। इस अवस्था म भी स्वयं पद कहन की विशेष आवश्यकता नहीं है। "लूयते वेदार इतना पयाप्त है। क्वाकि यदि स्वयं का अग्र अपन द्वारा है ता अपनी अपणा स कमत्प ह ही। अथवा स्वयम" तत् स अपना करणत्व प्रतिपादन किया जाता है न कि वन त्व। प्राधान वक्तिकार स्वयं पद से अग्र कर्त्ता का परिहार समभन य। एसने वाद तीसरी अवस्था आती है। द्विधाभवन अग्र वागी लुनाति श्रिया म देवदत्त प्रयोजक व्यापार म णिच उपपन्न हाता ह और 'लावयति वेदार देवदत्त यह वाच्य सामन आता है। इस वाच्य का वही अग्र है जो लुनाति केदार देवदत्त इस वाच्य का है। 'लुनाति केदारम इस अवस्था की अपणा तीसरी अवस्था म णिच विशेष है। णिजयव्यापार प्रकृत्यथ और जनसमानाधिनरण व्यापार के त्याग मे चतुर्थी अवस्था होती है। स्वयं द्विधा भवन म प्रवक्तकेदार को क्षेम के लिए काटने वाला (लविता) प्रवक्त करता है। यह चतुर्थी कथा है। इसके वाद सौवार्या निशय की दष्टि से जब देवदत्त के व्यापार की भी विवक्षा नहीं होती है द्विधाभवन काय लावयति निया म समभा जाता है। लूयते वेदार स्वयमेव का जो अग्र है वही अग्र "लावयते वेदार स्वयमेव" का है। यही पचमी अवस्था है। इनम प्रयाक्न व्यापार की अविबन्धा हाती है। प्रयोज्य प्रयाजकभाव की निवक्ति हान पर भी णिच की निवक्ति नहीं होनी। उपाय के निवक्त हान पर भी उपाय निवक्त नहीं हाता। सिद्ध शब्द की व्युत्पत्ति के त्रिए प्रकृति प्रत्यय की कपना करनी पानी है और अग्र का आदान या त्याग भी उसी दष्टि से किया जाता है। लौकिक व्यवहार म सौवार की अपेक्षा म प्रायः लावयते वेदार ' इतना ही कहत ह। यह पथ व्याकरण सप्रदाय म 'निवक्तप्रेषणपक्ष' क नाम मे प्रसिद्ध है। इससे कुछ भिन एक दूसरा पथ है जिस 'अयारोपितप्रेषणपथ' कना जाता है।

अयारोपितप्रेषणपक्ष के अनुसार प्रक्रिया या है—

- (१) लुनाति वेदार देवदत्त
- (२) लावयति वेदारा देवदत्तेन,
- (३) लावयते वेदार स्वयमेव।

यहाँ दूसरे वाच्य म केदार के व्यापार म णिच हुआ है। काटत हुए देवदत्त का प्रयोक्ता केदार हो रहा है सौवार्यानिशय से। प्रयोज्यप्रयोक्ता की अविबन्धा से तीसरा वाच्य उपपन्न हाता है।

निवक्तप्रेषणपथ और अयारोपितप्रेषणपक्ष म व्याकरण की दष्टि से यह

जनी होनी उस ही प्रयाग्यप्रयाजरा ध्यापार का निरूपण है। जान पर भी गिन् की निवृत्ति नहीं है। यमराज की अन्त्या को भय हरि १ वामी अन्त्या माना है। अथ विभाग भूमि का अतिम अन्त्या पाचवा अन्त्या मानी जाती है और वद प्राया गिर हाती है —

यावतोऽसौपानस्यानोऽपानु पद विमस्येय प्रायोगिणी पयत्तभूमि प्राप्यते ता अतरालमाधियो गम्यमाना भूमयोऽवस्थागच्छवाच्या ॥<sup>११</sup>

यमभजन और यग्भावा द्वा रूप द्वादह (णिञ् रटिञ् रट् )म प्रतीत हान है। य दो रूप णिञ् रटिञ् रूप म भी व्यसन रिण जा है। य चार अन्त्याए है। पाचवा अन्त्या यमवत् अन्त्या स टोनिन हाती है

यग्भावा यमभवन द्वा गुड प्रतीयते ।  
यग्भावा यमभवन ष्यतेऽपि प्रतिपाद्यते ॥  
अवस्था पचमीमाह ष्यते ता कमक्तरि ।  
निवृत्तप्रपणाद घातो प्राट्तेऽर्थे णिनुच्यते ॥<sup>१२</sup>

- (१) आरोहति हस्तिन हस्तिपत्रा
- (२) आह्वयते हस्ती स्वयमेव
- (३) आरोहयति हस्तिन हस्तिपत्रा
- (४) आरोहयते हस्ती स्वयमेव ।

इन वाक्या म एक ही व्यापार का मोरार्य अमीरार्य के आधार पर विभिन्न रूपा म व्यवन किया गया है। कयट ने इस एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया है —

- (१) तुनाति वेदार दवदत्त
- (२) तुमन वेदार स्वयमेव
- (३) लापवते वेदार स्वयमेव ।

इनम प्रथम दो वाक्या का कमक्तरि ष्यत वाले तीसरे वाक्य म भी कमक्ता है। एसा इसलिए होता है कि तुनाति निया का अथ द्विधाभवन और द्विभाभावन भी है। तुनाति वेदार देवदत्त एसा कहन स सण्ण होत हुए धान को खण्ड खण्ड कर रहा है एसा अथ प्रतीत होता है। जब धान के सौकरार्यार्य की प्रकट करन की इच्छा होती है, देवदत्त का व्यापार की विवक्षा नहीं की जाती है। तब तुनाति निया का अथ केवल द्विधाभवन है। धातु के अनक अथ हात है इस आधार पर एसा कहा जाता है। अथवा भिन्न भिन्न अथ वाले धातु वस्तुतः भिन्न भिन्न होते है। साहचर्य के कारण व एक से जान पडत है। अस्तु द्विधाभवन म वेदार का कत व हैं उसम कम वाय

११ हेलासज वाक्यपदीय साधनसमुद्र सं ५० २११ महाभाष्यपदांशोपांत १।३।६०

१२ वाक्यपदीय साधनसमुद्र सं ५१ ६०

का अतिदेन किया जाता है। फलतः 'लूयते केदार स्वयमेव' प्रयोग उपपन्न होता है। जहाँ पर देवदत्त हाथ में हनुमान (दान) लिए दिखाई देता है वहाँ भी सौकाय की विवक्षा से उपयुक्त वाक्य का प्रयोग किया जाता है। सूत्र की विरणा से सुने हुए जजर धान के टठल स्वयं विशेषण हाँ जाने हैं—उहँ कान्ने म कुछ भी कठिनाई नहीं पडती। यह दूसरी अवस्था है। पहली अवस्था में केदार के द्विधाभवन की बुद्धि होती है केदार म काट जान की योग्यता दंग कर ही व्यक्ति उमम प्रवत्त होता है। द्वितीय अवस्था म यह भाव भनकता है कि धान अग्र द्वारा नहँ स्वयं अपने आप ही कट रहा है। इस अवस्था म भी स्वयं पद कहने की विनोप आवश्यक्ता नही है। 'लूयत केदार इतना पयाप्त है। क्योंकि यदि स्वयं का अग्र अपन द्वारा है ता अपनी अपक्षा स कमत्प्र हँ ही। अथवा स्वयं गत् स अपना करणत्व प्रतिपादन किया जाता है न कि वत् त्व। प्राचीन वक्तिकार स्वयं पद मे अग्र कर्ता का परिहार समभन थे। इसके बाद तीसरी अवस्था आनी है। द्विधाभवन अग्र वाली लुनाति किया म देवदत्त प्रयोजक व्यापार म णिच उत्पन्न हाता हँ और 'लावयति केदार देवदत्त' यह वाक्य सामने आता है। इस वाक्य का वही अग्र है जो लुनाति केदार देवदत्त ' इस वाक्य का है। लुनाति केदार म इस अवस्था की अपेक्षा तीसरी अवस्था म णिच विनोप है। णिजयव्यापार प्रवृत्त्यथ और पनसमानाधिकरण व्यापार के त्याग म चतुर्थी अवस्था हाती है। स्वयं द्विधा भवन मे प्रवत्तकेदार को क्षेम क' लिए काटन वाला (लविता) प्रवत्त करता है। यह चतुर्थी कक्षा है। इसके बाद सौकार्या निगय की दष्टि से जब देवदत्त के व्यापार की भी विवक्षा नही होती है, द्विधाभवन काय लावयति किया म समभा जाता है। लूयत केदार स्वयमेव का जो अग्र है वही अग्र लावयत केदार स्वयमेव' का है। यही पचमी अवस्था है। इनम प्रयात्त व्यापार की अविवक्षा हाती है। प्रयात्त प्रयाजकभाव की निवन्ति होने पर भी णिच की निवत्ति नही हाती। उपाय क निवत्त हान पर भी उपय निवत्त नही होता। सिद्ध शब्द की व्युत्पत्ति के लिए प्रवृत्ति प्रत्यय की बन्पना करनी पन्नी है और अग्र का आदान या त्याग भी उगी दष्टि स किया जाता है। लौकिक व्यवहार म सौकार्य की अपेक्षा स प्राय 'लावयते केदार इतना ही कहन हैं। यह पथ व्याकरण मप्रदाय मे 'निवत्तप्रेषण पथ' के नाम म प्रसिद्ध है। इससे कुछ भिन्न एक दूसरा पथ है जिस 'अध्यारोपितप्रेषणपथ' कहा जाता है।

अध्यारोपित प्रेषण पथ के अनुसार प्रक्रिया या है—

- (१) लुनाति केदार देवदत्त
- (२) लावयति केदारो देवदत्तेन
- (३) लावयत केदार स्वयमेव।

यहाँ दूसरे वाक्य म केदार क व्यापार म णिच हुआ है। काटत हुए देवदत्त का प्रयोक्ता केदार हो रहा है सौकार्यानिगय म। प्रयाज्यप्रयोजक की अविवक्षा से तीसरा वाक्य उपपन्न हाता है।

निवत्तप्रेषणपथ और अध्यारोपितप्रेषणपथ म व्याकरण की दष्टि म यह

नही होती वस ही प्रयाज्यप्रयाजा व्यापार व निवृत्त हो जान पर भी शिच् व निवृत्ति गनी होती । कमवत् का अर्थव्या का भन हरि न पचमी अर्थव्या माना है । अथ विभाग भूमि का अतिम अर्थव्या पाचवा अर्थव्या माना जाती है और वह प्राय गित हाती है —

यावन्दीप सावानस्थानीमानु पद विचयेय प्रायोविकी पद्यतभूमि प्राप्यते ता अंतरालमाविचो गम्यमाना भूमयाऽवस्थागम्याच्चा ॥<sup>११</sup>

यम्भवन और यम्भावना दो रूप शुद्ध गृह (शिच रहित गृह) म प्रतीत हान है । य दो रूप शिच गतिन रूप स भी व्यसन विण जात है । म चार अर्थव्याए है । पाचवा अर्थव्या कमवत् अर्थव्या स चातित हाती है

यम्भावना यम्भवन दहो शुद्धे प्रतीयते ।  
यम्भावना यम्भवन ष्यतेऽपि प्रतिपाद्यते ॥  
अर्थव्या पक्षमाभाहु ष्यप तां कमवत्तरि ।  
निवसप्रेयणाद घातो प्राकृतेऽर्थे णिजुच्यते ॥<sup>१२</sup>

- (१) आरोहति हस्तिन हस्तिपरा
- (२) धारह्यत हस्ती स्वयमव
- (३) आरोहयति हस्तिन हस्तिपका
- (४) आरोहयत हस्ती स्वयमेव ।

इन वाक्या म एक ही व्यापार को तीसरा असावाय के आधार पर विभिन्न रूपा म व्यक्त किया गया है । कयट ने इसे एक-दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया है —

- (१) लुनाति केदार स्वस्त
- (२) लयते कदार स्वयमव
- (३) लायवत केदार स्वयमव ।

इनमे प्रथम दो वाक्या का कमवत्ता प्यन्त वाले तीसरे वाक्य म भी कमवर्ता है । ऐसा इमलिए होता है कि लुनाति क्रिया का अर्थ द्विधाभवन और द्विभाभावन भी है । लुनाति केदार दखदल एसा कहन से सण्ड होत हुए धान का सण्ड सण्ट कर रहा है ऐसा अर्थ प्रतीत होता है । जब धान व तीकार्पातियाय का प्रकट करन की इच्छा होती है देवत्त व व्यापार की विवक्षा नहो की जाती है । तब लुनाति क्रिया का अर्थ ववल द्विधाभवन है । धातु के अनेक अर्थ हाने हे इस आधार पर ऐसा कहा जाता है । अथवा भिन्न भिन्न अर्थ धान धातु वन्तुन भिन्न भिन्न होते हैं । मारुप्य के कारण व एक म जान पडते है । अस्तु द्विधाभवन मे केदार का कत स्व हैं उमम कम वाय

<sup>११</sup> हलात्प्र वाक्यसदीय साधनसमुद्र श ५० २११, महाभाष्यप्रकाशकोत १।३।६७

<sup>१२</sup> वाक्यपदीय साधनसमुद्र श ५१ ६०

वम ही वत अभिप्राय त्रिधापन मविधान का उपलक्षण है। त्रिधा त्रिसी त्रिया के अनुष्ठान व कोर्द पन नहीं होता। याजक को स्वग फल किमी त्रिया द्वारा ही सम्भव है। अतः कायभूत फल स कारणभूत त्रिया लभित होती है और ऐसी त्रिया से आत्मनेपद का विधान किया जाता है।

महाभाष्यकार न उदुम्भाञ्चकार म आत्मनेपद की प्राप्ति का प्रश्न उठाया है। जिस तरह से यानि आदि त्रियाया म मविधान के अभाव म आत्मनेपद नहीं जाना है वम ही उम्भ व माय भा मविधान के अभाव म आत्मनेपद नहीं जाना चान्ति। उम्भ के सविधान वाचक न ज्ञान के कारण उम्भ माय की करानि त्रिया भी मविधान क अथ म गृहीत न हागी। फिर भी महाभाष्यकार के सदेह स ऐसा मानना पडता है कि गन्धर्विक स्वभाव के वल उम्भ आदि भी कभी-कभी सविधान अथ म व्यवहृत होते ह। उम्भ व सविधान स महयाग जाने के कारण उसने माय की करानि त्रिया भा मविधान अथ म माना जायगी। अतः आत्मनेपद की प्राप्ति सम्भव है। इसका परिहार आमप्रथयवत कुजोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३ भूत म पूव वत्पन १।२।६२ स पूववत् ग्रहण की अनुवृत्ति वर आम प्रत्ययवत सूत्र का विध्ययक और नियमायक बना कर किया जाता है। महा तात्पर्य यह है कि स्वरितत्रित म अनिस्वित घातुग्रा का सविधान म मन्था अयाग ही नहीं जाना कभी-कभी योग भी जाना है। फिर भी गन्धर्विक नियत जाने के कारण व मविधान जय आत्मनेपद लान म असम्भन होती है। इसी तरह णिच थाय्य अथ क अभिधान म समथ सभी घातुग्रा मे सविधान ही प्रतीति नहीं होती। शब्दा की अथ प्रत्यायन की शक्ति स्वाभाविक जाना है युक्तिगम्य नहीं। एत ही त्रियागत् सञ्जस पचत' से दा साधन की अभिवृत्ति हां मवनी है परन्तु दा त्रिय की अभिवृत्ति नहीं जानी। आत्मनेपद से लिंग की पुरुत्व शक्ति की प्रतीति नहीं हाती। आत्मनेपद से सन्ध्यायुक्त द्रव्यामर साधन का प्रतीति हाती है। त्वदत पचति म दसी आधार पर द्रव्य के साथ मामानाधिकरन्ध माना जाता है और इसी आधार पर द्रव्यवादी आचार्य आत्पाताय को भी द्रव्य ही मानन ह। सबया गन्धर्विक कही कही नियन्त्रित हा जाती है। फलन सविधान मवव जाने पर भी कुछ घातुग्रा म आत्मनेपद नहीं हा पाता ह।<sup>१५</sup>

सविधानाधनपण त्रिधापन क्या है। एम मन्व-ध म भी नत हरिन महाभाष्य क आधार पर विचार किया है। त्रिम अथ की सिद्धि को मन म एत कर कोर्द त्रिया आरभ की जानी है उम अथ की सिद्धि ही उम त्रिया का प्रधान फल है। मन्त्रिभानोपन ण त्रिधापन म तापय इसी प्रधान पन से है। यजन त्रिया का फल स्वग है। स्वग की कामना स ही याजक यन त्रिया आरभ करता है। उस यन म काम करने वात पुरोहित नतः शक्ति स्वग की दृष्टि स त्रिया म प्रवृत्त नहीं हुय ह। उनके लक्ष्य दर्शना अथवा वतन ह। इमन्त्रिये दर्शना द्रव्य अथवा वेतन लाभ (फल)

अन्तर है नि पहल पक्ष व अनुसार शरणो यत्नम् १।२।६७ इम मूत्र के वि  
भा 'लाबयत वन्तर स्वयमव म आत्मनपद गिद्ध हो गरता कमवभाव  
द्वारा । दूसरा पक्ष उपयुक्त मूत्र की सत्ता रहत ही मभव है । दूसरी प्रक्रिया  
कमवभाव की प्राप्ति नहीं है । कुछ लाग आरुह्यत हस्ती स्वयमव' म कमव  
भाव स्थित है । कथय व अनुसार यह उपयुक्त नहीं है । क्यात्र क्रिया का तात्पर्य  
विशेषदशन स अथवा गन्ताथ व आघार पर निश्चित होता है । य तोना ही पार  
आराण्य क्रिया की वत स्थता प्रतिपादन करत है उगना कमरयता नहीं व्यक्त व  
है । क्यात्र हस्तिनम आराहति, वधम आराहति, पत्रतम आराहति जस वाक्या  
कम व भन् हान हुय भी आराहण म वान् रूपभेद नहीं जान पडता है । इन प्रया  
म कम म तिमो प्रकार का विपता क्रियावृत्त नहा स्थित है । धातु व द्वा  
यहा वत गन ही क्रिया प्रतिपात्त है कमगन नहीं । भाष्यकार न भी रह की गि  
विशेष अथ वाला मान कर गव वन स्वक्रियाव का ही परिपुष्ट किया है ।<sup>१३</sup>

स्मरयति एत वनगुल्म स्वयमव वम वाक्य म आत्मनपदे स्मरणाथव  
निषेध के कारण नहीं होता है । आरोहति हस्तिन हस्तिपना तान आराहति हम्  
इसम भी आत्मनपद वतिकार व अनुसार नहीं हाना चाहिये । पर तु भागवतिका  
यहा आत्मनपद का प्रयोग चाहत है । माघ न भी ऐस स्थला पर आत्मनपद व  
प्रयोग क्रिया है

वत्तिवृता नेष्यते । भागवत्तिकारेण त्रिव्यते । तथा माघ प्रयुक्ते करेणुर  
रोह्यते निषादिनम इति ।<sup>१४</sup>

कही गी पचति जमी क्रियाया स भी सविधान अथ की प्रतीति हाती है  
यद्यपि पच का प्रधान अर्थ गण्डुल की विविलिन्ति है परन्तु महाभाष्यकार ने हेतुमति व  
३।१।२६ व भाष्य म प्रयण और अन्वयण का भी पक्ष का अर्थ माना है । सविधान—  
अथ सामग्री सघटन रूप अथ व व्यक्त करने पर भी पचति व अर्थ म निश्च नह  
होता । प्रयोज्यप्रेषण की विवन्धा म निश्च हाता है और पाचयति प्रयाग उपपन्न हा  
है । अस्तु पचति स द्रव्य के अधिप्रेषण उदकासवन (चावल को जल से धोना  
आदि) यापार यवन हात है पचत म सभी भाजन सम्भार यापार यवन होता है  
पाचयति स प्रयोयत्र प्रकृत होता है । सविधान हा प्रय नहीं है । अपितु सविधान  
पूर्वक प्रेरण का प्रय कहत है जिस करत दुध यवित प्रयोजक कहा जाता है  
सविधान व करत ह्य भी जब तत्र वट प्रेरणा का काय नहा करता, उस प्रयानव नह  
का जाता है ।

वत अभिप्राय क्रियाफल स सविधान क्रिया का निर्देश किया जाता है । जे  
नशत्र दष्टवा वाच विमज्जत वास्य म नक्षत्र दशन काराविप का उपलक्षण

वस ही वन अभिप्राय त्रिपापन सविधान वा उपलक्षण है। जिना किसी क्रिया के अनुष्ठान के कोई फल नहीं हाता। याज्ञक को स्वर्ग पत्र किसी क्रिया द्वारा ही सम्भव है। अतः वायभूत पत्र में कारणभूत क्रिया लभित होती है और ऐसी क्रिया में आत्मनपत्र का विधान किया जाता है।

महाभाष्यकार ने उदुम्भाच्छ्वकार में आत्मनपद की प्राप्ति का प्रश्न उठाया है। जिस तरह से यानि आदि क्रियाया में सविधान के अभाव में आत्मनपद नहीं होता है वस ही उम्भ के माय भी सविधान के अभाव में आत्मनपद नहीं हाता चाहिये। उम्भ के सविधान बोधक न हाता के कारण उमके साथ की करोति क्रिया भी सविधान के अर्थ में गृहीत न हागी। फिर भी महाभाष्यकार के संदेह से ऐसा मानना पडता है कि गच्छान्ति के स्वभाव के बल उम्भ आदि भी कभी-कभी सविधान अर्थ में व्यवहृत हाता ह। उम्भ के सविधान से सहाय्य होने के कारण उमके साथ की करोति क्रिया भी सविधान अर्थ में मानी जायगी। अतः आत्मनपद की प्राप्ति सम्भव है। इसका परिहार आमश्रययवत वृत्राजुप्रयोगस्य, १।३।६३ सूत्र में पूर्व-पठन १।३।६२ से पूर्वक ग्रहण की अनुवृत्ति के आरंभ प्रययवत सूत्र का विध्ययक और नियमायक बना कर किया जाता है। यहा तात्पर्य यह है कि स्वरितजित से व्यतिरिक्त धातुया का सविधान में सवथा अयोग ही नहीं हाता कभी-कभी योग भी हाता है। फिर भी गच्छान्ति के नियत हाता के कारण ये सविधान जय आत्मनपद लान में असफल होती है। इसी तरह णिच याग्य अथ के सविधान में समय सभी धातुया से सविधान की प्रतीति नहीं हाती। शब्दों की अर्थ प्रत्यापन की शक्ति स्वाभाविक हाती है युक्तिगम्य नहीं। एव ही क्रियाया से जन्म पचत से शोधन की अभियक्ति हा सकती है परन्तु दा लिंग की अभियक्ति नहीं होती। आख्यात से लिंग की पुस्तक आदि की प्रतीति नहीं हाती। आख्यात से सत्यायुक्त द्रव्यात्मक साधन का प्रतीति हाती है। देवत्वं पचति में इसी आधार पर द्रव्य के साथ गामानाधिकरम्य माना जाता है और इसी आधार पर द्रव्यवादी आचार्य आख्याताय को भी द्रव्य ही मानते हैं। सवथा गच्छान्ति कहा कही नियमित हा जानी है। फलन सविधान मन्त्र हाते पर भी कुछ धातुया में आत्मनपद नहीं हा पाता है।<sup>१५</sup>

सविधानोपलक्षण क्रियापत्र क्या है। इस सम्बन्ध में भी भक्त हर्षि ने महाभाष्य के आधार पर विचार किया है। जिस अर्थ की सिद्धि के मन में रख कर कोई क्रिया आरंभ की जाती है उस अर्थ की सिद्धि ही उस क्रिया का प्रधान फल है। सविधानोपलक्षण क्रियापत्र में तात्पर्य इसी प्रधान फल से है। यजत क्रिया का फल स्वर्ग है। स्वर्ग की कामना से ही याज्ञक यज क्रिया आरंभ करता है। उस यज में काम करने वाले पुरोहित भक्त्य आदि स्वर्ग की लालिसे क्रिया में प्रवृत्त नहीं हुये है। उनसे लभ्य दक्षिणा अथवा वनन है। कर्मलिये दक्षिणा द्रव्य अथवा वेतन लाभ (फल)



होते हुए भी प्रधानफल नहीं है। महाभाष्यकार ने प्रधानफल के निणय के लिये कहा है कि जिस क्रिया के बिना जो फल सिद्ध न हो सकता हो उस क्रिया का वही फल प्रधान फल है। यत्र फल यत्र क्रिया स ही सम्भव है। अतः वही उस क्रिया का मुख्य फल है। दक्षिणा और वतन ता यत्र क्रिया के बिना भी अत्रय तरह से उपलब्ध हो सकते हैं। अतः वे यत्र क्रिया के प्रधान फल नहीं हो सकते।

नन्वातरण यजि यजिफलवपि वा वपिफल लभते (लभते)। याजका पुनरतरेणापि यजि गा लभ ते भतकाश्च पार्दिकर्मात् ।<sup>१६</sup>

यह अभिप्राय कत अभिप्राय क्रियाफल से निकलता है। फलतः सविधाता की दृष्टि से आत्मनेपद (यजत) और दक्षिणा लुघ याजका की दृष्टि से परस्मैपद (यजति) का प्रयोग उपपन्न होता है।

सविधान में आत्मनेपद मानने पर भी जहाँ स्वामी और भक्त्य दोना मिल कर एक ही व्यापार कर रहे हूँ वहाँ सविधान के आधार पर आत्मनेपद आत्ति का निणय कैसे सम्भव है? क्योंकि स्वामीसाध्य व्यापार सामथी सघटन (सविधान) रूप होगा और भक्त्य साध्य व्यापार प्रधान क्रिया रूप होगा इसलिये एक धातु से भिन्न व्यापार का उदबोध न हो सकेगा। साथ ही स्वामी (सविधाता) की दृष्टि से आत्मनेपद किया जाय अथवा भक्त्य की दृष्टि से परस्मैपद यह सशय बना रहेगा। यह मान भी लिया जाय कि एक धातु के कई अर्थ सम्भव हैं और यह भी मान लिया जाय कि सविधान के अर्थ में पच से आत्मनेपद किया जाय और विक्लित आदि सस्कार अर्थ में उससे परस्मैपद किया जाय फिर भी एक ही प्रयोग में विरुद्ध दो लकारों की उत्पत्ति ठीक से न हो सकगी भन हरि ने इसका समाधान अध्यारोप के द्वारा किया है। स्वामीगत धम का भक्त्य में आरोप किया जाता है। साहचर्य के सहारे ऐसा सम्भव है। आरोप से दास स्वामी के तुल्य हो जाता है। फलतः दा स्वामी के वतत्व हान पर सविधान के अर्थ में पच से आत्मनेपद होगा। 'स्वामिगामी पचेन'।

इस तरह का आरोप भन हरि के अनुसार अत्रय भी देखा जाता है। जैसे, प्लभ गन्तु के साहचर्य से यत्राध में प्लक्षता मान ली जाती है। तभी एक दूसरे की अपभ्रंश में द्व द्व में उनम द्विवचन का व्यवहार (एक्ययत्राधी) होता है। सानिध्य के कारण अत्रय में अत्रय का आरोप लाक और वेद दोना में देखा जाता है। पुरोऽग्ना प्रचरन्ति इसमें यद्यपि गन्तु पुरोडाग बहुत्व अर्थ में व्यवहृत है परन्तु एक पुरोऽग्ना के प्रसङ्ग में भी उपयुक्त वाक्य कहा जाता है और सहचरित पुरोऽग्ना भागा में बहुत्व के आरोप में एसा सम्भव हो पाता है। वही तरह तारा में छत्रिणा यानि जस प्रयाग मरुति छत्रिसयाग न हान पर भी पट्टन के लक्ष्य छत्रसवध के आधार पर टाक मान लिये जाते हैं।

कुछ वागा के अनुसार क्रियामात्र की विवक्षा में यत्र परस्मैपद प्रयाग भा

उचित है 'स्वामिदासी पचत' ।<sup>१३</sup>

महाभाष्यकार न एक स्थान पर कहा है कि एकांत म निष्प्रिय रूप में उपचाप बड़े व्यक्ति के लिये कभी-कभी कहा जाता है—

पचमि हन वृपति" (पाच हला से जानवा रहा है गन्त, पाच हला स जात रहा है) ।

इस वाक्य में वृपति शब्द उपयुक्त नहीं है । उपचाप एकांत में बड़ा व्यक्ति एक साथ पाच हल नहीं चला सकता । अतः यहाँ अभिप्राय है कि उसके पाच हल चलते हैं वह पाच हला से लेती करवाता है । और यदि यह अभिप्राय है तो वृपति के स्थान पर 'वपयति' कहना चाहिए और महा सविधान अथ हानि के कारण आत्मनेपद भी हाना चाहिए । जहाँ तक णिच का (वपयति) का प्रश्न है, महाभाष्यकार न यह समाधान किया है कि वृप केवल जोतना या विलेपन ही नहीं है इसका अर्थ जोतवाना विलेपन करवाना (प्रतिविधान) भी है । धातु के अन्त अर्थ होने के कारण वृप का अर्थ प्रयोजक व्यापार भी हो सकता है । उपचाप के साहचर्य से धातु से ही प्रयोजक व्यापार का व्यक्त हो जाना के कारण णिच नहीं हुआ है । जहाँ तक आत्मनेपद का प्रश्न है वह भी भक्त हरि के अनुसार जटिल नहीं है । विभाष्योपपदेन प्रतीयमाने १।३।७—एतस सूत्रे म प्राप्तविभाषा पक्ष मानने पर वृपति म आत्मनेपद का अभाव संभव है

अत्र तूपपदेनायमयभेद प्रतीयते ।

प्राप्ते विभाषा विपते तस्मान्नास्त्पात्मनेपदम् ॥<sup>१८</sup>

पाणिनि ने जितना आत्मनेपद पर विचार किया है उतना परस्मपद पर नहीं । उनका नेप म परस्मपद का विधान (नेपात् क्तरि परस्मपदम् १।३।७८) इतना यापक है कि विचार का अस्वभाव भी नहीं रह जाता । अतः भक्त हरि न भी आत्मनेपद सम्बन्धी मायताओं का जोस विलेपन किया है वम परस्मपद सम्बन्धी मायताओं का नहीं किया है ।

आत्मनेपद और परस्मपद के लिये कभी आत्मनेभाप और परस्मभाप शब्द भी प्रचलित थे । कात्यायन न इन दोनों शब्दों का उल्लेख किया है—आत्मनेभाप परस्मभापयोरपसस्थानम् ।<sup>१६</sup> पाणिनि को भी ये शब्द चात थे एसा उनका क्या करणाख्याया चतुर्थ्या' ६।३। सूत्र से जान पड़ता है । परन्तु कयट न टिप्पणी दी है कि आत्मनेभाप और परस्मभाप शब्द किसी व्याकरण में पारिभाषिक रूप में नहीं पड़े गये हैं परन्तु इन शब्दों का प्रवहण होता आया है । आत्मनेपदनी धातुओं को क्या करण आत्मनेभाप शब्द से और परस्मपदनी धातुओं को परस्मभाप शब्द से प्रवहृत

१७ वाक्यपदीय ३, उपग्रहसमुदेश १६०२

१८ वही, उपग्रह समुदेश ७

१९ वार्तिक, ६।३।७

यत्त १ । तात्पर्यपरिचित ६।१०३ म भी उपपु वत् प्राय की पृष्टि वा मद्र ५ —

परस्मपद भाया उचिनरस्य इति परस्ममाप । एषामात्मनेभाप ।  
पदगणतोषो विपातनात । धातुविशेषानामिमो ध्यपदगी ११

मुपेण न पाणिनि श्रीः सववमा म म् मद्रथ म कुछ भ् म् म्गान इए निम्न-  
लितिन वारिमाए विगी है

परस्मपद्यते यस्मात् तत् परस्मप म् मृतम ।  
आत्मनपद्यते यस्मात् तदवाप्रात्मनपदम ॥  
इत्यमवथसज्ञाया विधानेनथ लभ्यते ।  
मत हि पाणिनेरेथ सम्मत सववमण ॥  
मवमवथसज्ञाया प्राया वतिरिहृष्यत ।  
अता न पाणिन सूत्र सम्मत सववमण ॥११

अस्तु उपग्रह शब्द आत्मनप और परस्मप न अथ म म् म् गा हा गया वा ।  
अप्याध्याया म उपग्रह म् का पवहार म् हान क कारण उमका व्यवहार ही एन  
तरह म व द हा गया परन्तु भन हृदि न आरुप्राताय क विवचन म उपग्रह की मायागा  
करना उचिन समभा ।

## पुरुष विचार

उपग्रह का तरह पुरुष भी पाणिनि व पूर्ववर्ती आचार्यों का पारिभाषिक  
म १ है

य क्तकमविशेषणभूत स पुरुष इति पूर्वोच्यते प्राहु १

पुरुष म् का पारिभाषिक अथ म प्रयोग निरुक्त म मिलता है

तत्र परोक्षकृता सर्वाभि नाम विभक्तिभि युज्यन्ते प्रथम पुरुषदत्ताख्यातस्य ।  
अथ प्रथोक्षकृता मध्यपुरुषयोगास्त्विति चतेन सदानाम्ना । अथाप्यातिमवय उत्तम  
पुरुष यागा अहमिति चतन सदानाम्ना ।<sup>१</sup>

वाग्वृत्तन म् म भी पारिभाषिक पुरुष म् ना पवहार हुआ था ।  
जन—

धातु साधने दिशि पुरुषे चिति च तदाख्यातम १<sup>३</sup>

०० म् भायप्रदाय ६।१।३

०१ टैकनिकल म् म् परन् टैकनिक काय सरुत आमर मं उद्धृत, पृष्ठ १०३

०२ वातन व्याकरण ३।१।७६

१ हारात, वाग्यप्रदाय ३, पुरुष समुदेश १

२ निरुक्त ७३

३ इस काशास्त्र क सूत्र होने में वचन प्रमाण ६, १२ य वाग्यप्रदाय टीका १।२२

पाणिनि न अन्त्याध्यायी म पुरुष शब्द का व्यवहार पारिभाषिक अर्थ म नहीं किया है। परन्तु वात्स्यायन और महाभाष्यकार न पारिभाषिक पुरुष शब्द का व्यवहार किया है जैसे—

“परस्मपदसज्ञा पुरुषसज्ञा”—वातिक १।४।१  
 न निष्ठा परस्यानुप्रयोगेण पुरुषोपग्रहो विनापितो  
 स्यात्ताम्”—महाभाष्य ३।१।४०

पाणिनि ने पारिभाषिक पुरुष शब्द के स्थान पर प्रथम, मध्यम और उत्तम गण का प्रयोग किया है। ये शब्द भी पारिभाषिक हैं और वस्तुतः ये भी पूवाचार्यों के पारिभाषिक शब्द हैं।

प्रथममध्यमेत्यादि महासज्ञाकरण तु प्राचामनुरोधेन।\*

आख्यातगण्य पुरुष शब्द म उसके अर्थ प्रत्यक्त्व और परगत्व गणात हान ह। प्रत्यक् स्वर्गत्व का कहत ह और परगभाव सर्वान्यगत का कहत है। त्व पचमि अह पचामि त्वपाठ्यस अह पाठ्य जस वाक्या म मध्यम और उत्तम पुरुष का प्रत्यक्त्व और परगत्व रूप क्तकम विगणन के रूप म गण्य शक्ति अर्थ म स अर्थगत हाता है। इसलिए कर्ता आदि साधना का निक्षेपण पुरुष माना जाता है। क्तकम के विगणन हान के कारण ही पुरुष नाव का विषय नहीं हो पाता और एमीतिष्ठ भाव म मध्यम और उत्तम पुरुष के प्रयोग नहीं हात। कवल गेप के कारण प्रथम पुरुष का ही व्यवहार हाता है। स्वातन्त्र्य और परगत्व सान्तर के प्रयोग स जान जात है जम आस्यते मया अथ त्वया आदि म।

वाक्यपत्नीयकार न पुरुष का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके मत म पुरुष-अर्थज्ञप्ता सत असत चैत-यात्रित है। उनके अनुसार प्रत्यङ्ग पद का भाव अन्तयामी जीवात्मा है। वह प्रतिगृह म अवस्थित है। उसका भाव (अभिव्यक्त) पुरुष म वाच्य है। इसलिए प्रयागाती अहकारास्पद चैतन्यता प्रत्यक्त्व ह। आख्यात स जब किया का अहकार समानाश्रय रूप (मै अह की प्रतीति) अभिव्यक्त हाता है, वह उत्तम पुरुष का विषय हाता है। इसलिए पुरुष अहकाराश्रय कर्ता का और तिष्ठत स वाच्य कर्म का भा उपार्धिभूत है। पचे, पचामि जैसे क्रियागण्य से कर्ता का उपार्धिभूत उत्तम पुरुष अवगत हाता है। कर्म उपार्धिभूत आत्मनपद से ही अभिव्यक्त हाता है। जैसे पथ्य रु। कर्म म आत्मनपद का विधान होता है। मध्यम पुरुष परव है। वह क्तकमविगणनभूत है प्रश्न आदि विषय के उपयुक्त है। पचमि पचम जैसे गण्य म वह क्तकम उपार्धि है और पचम जैसे आत्मनपद से कामोपार्धिरूप म लक्षण हाता है। इस तरह उत्तम और मध्यम पुरुष गण्य विगणन स लक्षण होते हैं और अपने अपने अर्थ का प्रत्यक्त्व करत है अथवा चैत-युक्त कर्ता





जाता है। अर्थात् सभी पुष्प का उतम पुष्प मध्यमगत हो जाता है। परन्तु तब उतम मन म निगप म म गभी पुष्पा का म्र य है। उतम मध्यम प्रथम पुष्प मगिन है परन्तु चिरूप का मगम त म्र मगि त है

व्याकरणप्रविषया उत्तमपुष्प अस्मदर्थे च स युष्म द्वेषाभ्यां मध्यमप्रथम पुरवाभ्यां विगविभो गजातविगया स्ति । तस्य च तत्स्थपरामप्यात प्रथमपुष्पाद युष्मदर्थो मुताच्च मध्यमपुष्पादय विगय यन्नेपपुष्पाधपत्व त विधातिधागम । सपरयेता विमपप्रद तावामव विधात । स पचति, त्य पचमि अह पचामीति विग याया ययमेव पचाम इत्यादी प्रथाने अयमेवागय इत्यास्याम । त्व तु विनि गोवाणा प्रथममध्यमात्तम पुरवालां कल्पितानां अकल्पित विद्व पाथय । ययोश्च प्र यभिज्ञापाम - प्राह्यप्राहकनाभिनावयो भात प्रमातरि ।

बृहत्तया म्रगुणार मयम पुरय म गजाधन ता अथ प्रतीत होता है विगपसर जग पप (प्ररणा वा भाव) विवा त रणा है। जस गउ भु म्र अति म । जा लाग सवाधन ता कजा गाभिमुखरण रूप म ममभन ह उतम मन म प्रप क अभाज म भा मध्यम पुष्प म मग्राधन ता भाव रहता है। उ पचमि म दम मन क अनुगार सजोयत है। पर तु बृहत्तया म्रगा कि भृ हरि न उतमन किया है दम मन का प्रथय ी दन । उ पचमि म मग्राधन काप्रनाति नहा हानी । उनक अनुगार सिद्ध क अभिमुखारण वा सवाधन क्त ह । सा प वा विधीममान का मवाधन ना होना । क्याकि गिनवा स्वरूप अभी नियत नहीं है जा अपन स्वरूप का प्रात न । हुम्रा है व अभिमुखारण क माभ्य नहा माना जाता । इन्द्रानु वरम्य गता नद म वाग्ना म रणात्व आर ताव विधीममान र सतिम प्रप क हात म्र गो नाम मग्राधन विभक्ति नी है । यु मर क साव प्रथमा सवाधन विभक्ति मानन म प म कु म्भ्वर सम्प्री विगपनाम । प्रथमात् गुष्म का आदि उगतत होना दगा क । ह जय वि वह वाक्य क आदि म रणा ह अर्थानि किमी पद से पर जय नहीं होना है । एसा उम सवाधन मात कर ही मभय है । जस

त्व न द वाजयु (ऋग्वेद ७।३।१३)

त्वमेग्ने छुमिस्त्वमोगुगुर्थाणि (ऋग्वेद २।१।१)

परन्तु किसा प म पर रहन पर उस आमणित (सवाधन) मान कर अनुगत होना है। जस दवीराप गुढा धूमम ।

भद्राजि दीति क अनुसार आदि उगत और निघात वाली उक्ति सबत्र ठीक नहीं देनी जाती। अनक एस मत्र ह जिनम युष्मद के आदि म होने पर भी वह अन्तागत है आर प क उत्तर म हान पर भी अनुदात्त ही है —

दृश्यते हि पागादावपि अतोदात्तत्व पदात् परत्वोप्यनिघातश्च । तदपया युव  
ह गभ जगतीषु घत्य । मूय घात स्वस्तिनि । ह्ये दवा मृपनिगपय स्थ  
इति ।<sup>१</sup>

मट्टोजि दीप्तिग सत्राधन का प्रातिपदिकाय क अतगत मानते ~ (सबोधनस्य  
प्रातिपदिकाय एवा तभावात्) । उन मत् भ अतिग और सम्बोधन—एक विषय  
युष्मत् का अर्थ है और सर्लिंग तथा मन्त्राध्य और अमन्त्राध्यमाधारण भवन का अर्थ  
है । फलन भवान कराति' मयम पुरुष का विषय नहा हा पाता है ।

सर्लिंग सम्बोधनविषयश्च युष्मदथ । सर्लिंग सम्बोधासम्बोध्यसाधारणश्च  
भवदथ —शब्द कीस्तुभ—१।४।१०५

अथ व भवति वदभवति—इस वाक्य म मयम प्रकृति विवृति की अभेद-  
विविगा म च्चि प्रत्यय हुआ है । मया प्रकृति क आन्य स पथम पुरुष और विवृति के  
आन्य स मध्यम की प्राप्ति है । परन्तु मध्यम विवृति कती नहीं है । प्रकृति ही  
त्रिकारणपापति म मना है । अत प्रथम पुरुष ही होता है । गौणमुख्यताय क आ गार  
पर गता सम्भव है । सधी भवति ब्राह्मणा इस वाक्य म बहुवचन 'स वाच का  
प्रमाण है कि च्वयत्त म प्रकृति का ही वत त्व माना जाता है

मदग्ने स्यामह त्व त्व घो घा स्या अहम ।

स्युटे सत्या इहाशिय ॥<sup>११</sup>

## पुरुष व्यत्यय

महामाप्यकार न पुरुष व्यत्यय क उदाहरण म 'अथा स कीर् दगभिविपूया '  
कहा है । यहा विपूयात क स्थान पर विपूया पडा गया है । पुरुष व्यत्यय का एक  
उदाहरण मम्मट ने या दिया है—

रे रे चञ्चल लोचनाञ्चितरुचे क्षेत प्रमुच्य स्थिरप्रेमाण महिमानमेणनयता  
मालोष्य कि नद्यसि । कि मये विहरिष्यमे वत हता मुञ्चातराशामिमामेया  
कण्ठतटे कृता खलु शिला ससारवारानिधी ॥<sup>१२</sup>

इस श्लोक म मयस क चञ्चल मय और विहरिष्य के स्थान पर विहरिष्यस कहा  
गया है अथात मध्यम क स्थान पर उत्तम पुरुष का और उत्तम के स्थान पर मध्यम  
पुरुष का व्यवहार कवि ने किया है और प्रहास क अर्थ की अभिव्यक्ति क लिए

१० शब्दकीस्तुभ १।४।१०५

११ अग्नेद १।४।१०५ । अत मय म अत् त्व स्थान, त्व वा अह या इस रूप म प्रकृत्याप्रय ही  
पुरुष है ।

१२ काव्यप्रकाश, चतुर्थ उदाहरण, पृ० १२९ त्रिवेद्र म संस्करण



रिया है। परिहास की अभिव्यक्ति में नियुक्त व्ययव्यय पाणिनि द्वारा समर्पित है।<sup>१३</sup>  
और भन्नु हरि न भी युक्त व्ययव्यय का समर्थन रिया है—

गुणप्रधानताभेद                      पुरुषादिविषयम् ।  
निदिष्टस्माद्यथा शास्त्रे निरूपयमान विदुष्यते ॥<sup>१४</sup>

## सरया विचार

सख्या आख्याताय का भी अर्थ है और साधन का भी अर्थ है। सख्या का एकत्व द्वित्व बहुत्व आदि का ग्रहण होता है। जिनके द्वारा सख्याय अर्थका गणना सम्भव है। वह सख्या है (सख्यायतेऽनया सख्यति—मन्त्रभाष्य १।१।२७) वचन सख्या है। वचन और सख्या पूर्वाचार्यों के पारिभाषिक शब्द हैं। एकवचन और बहुवचन शब्द का प्रयोग सब प्रथम दातपथ शास्त्रों में मिलता है

एक वचनेन बहुवचन उच्यते ॥<sup>१५</sup>

द्विवचन शब्द का उल्लेख निरूपण में है—अपि वा मदाच्च पणान्च सात्य द्विवचन स्यात् ॥<sup>१६</sup>

पाणिनि ने पूर्वाचार्यों के आधार पर सरया के अर्थ में एकवचन और बहुवचन का व्यवहार किया है। ऐसे सरया के भी पारिभाषिक रूप का बहुगणवस्तुइति सख्या १।१।२३ के रूप में उल्लेख किया है।

वाक्यपदीय में सख्या समुद्देश में सख्या के साधन मात्र रूप का ही अधिन विवचन है। परन्तु भट्ट हरि के अनुसार सख्या आख्याताय भी है यह पढ़ने सिद्ध किया जा चुका है। यद्यपि क्रिया साध्यस्वभाव वाली होने के कारण निवृत्तभेद मानी जाती है, उसमें कोई भेद नहीं होता फिर भी साधन के आधारभूत द्रव्य के एकत्व द्वित्व आदि के आधार पर क्रिया में भी एकत्व द्वित्व आदि मान लिए जाते हैं। साधन भेद सक्ती-कर्म के अभिधायक स्वरूप में द्विवचन और बहुवचन हात है। फलतः पञ्चत पञ्चति पच्यते पच्यते इस विशिष्ट त्रिरूप सिद्ध होत है। इन पदा में दो या दो से अधिक साधनों द्वारा क्रिया के साध्यत्व की प्रतीति होती है। साधन के आधारभूत द्रव्यगत सख्या से क्रिया का योग तो होना है परन्तु द्रव्यगत लिंग के साथ क्रिया का योग नहीं होता। क्योंकि आख्यायन में लिंग विदोष की प्रतीति नहीं होती। शब्दों का अपने अर्थ का प्रत्यायन अथवा उनके अर्थ की अभिव्यक्ति स्वाभाविक होती है, युक्तिगम्य नहीं होती है।

१३ ग्रहासे च म-योपपद मन्यतेऽस्तम एकवचन १।४।१०६

१४ वाक्यपदीय ३, पुरुष समुद्देश ७

१ शतपथ ब्राह्मण १३।२।१।१८

२ निरूपण ६।१६।२

एकत्वेऽपि क्रियाख्याते साधनाश्रयसत्यया ।

भिद्यते न तु लिङ्गाख्यो भेदस्तत्र तदाश्रित ॥<sup>३</sup>

पुण्यराज ने भी आख्यातवाच्य क्रिया म सम्बन्धभेद से भेद की प्रतीति का समर्थन किया है

यथाख्यातेषु धातूपात्ताया श्रियाया प्रत्ययवाच्य क्त भेदे सति सम्बन्धात् क्रियाया अपि भेद प्रतीयते पात पचतीति ।<sup>४</sup>

इसी बात का हर्दत्त न भी या व्यक्त किया है

क्त भेदेऽपि नावश्य धात्वर्थ्या भिद्यते यत ।

एकामेव श्रियाव्यक्ति बहुषूपादयस्त्वपि ॥

दृष्टमेत पचतीति क्तभेदोऽपि तादश ।

पश्यकस्या श्रियाव्यक्तौ पच्यत तण्डुला इति ॥

न कालभेदे शब्दव्यमास्यासिष्यत आस्यते ।

पाकौ पाका इति त्वग्र शब्दव्यादेकशेषता ॥<sup>५</sup>

इसके स्वारस्य से, नाधनगत सख्या का क्रिया म आरोप होने के कारण लिङ्ग सख्या का प्रवृत्त्यर्थ म अवयव होता है । इसका एक फल यह होता है कि भाव म एकवचन ही होता है, द्विवचन और बहुवचन नहीं होते । जम आस्यत भवता आस्यते भवदभ्याम, आस्यत भवदभि । अवश्य ही पाकौ पाका जैसे स्थला म, जहा घञ स साधन का अभिधान नहीं होता, भाव म द्विवचन और बहुवचन दखे जाते हैं, एकपदवाच्यनाधनसत्याश्रय पश्च म ऐसे स्थला म भी द्विवचन और बहुवचन नहीं होना चाहिए । इसका उत्तर यह है कि पाकौ पाका आदि म आश्रय भेद से द्विवचन और बहुवचन हात हैं । गुड तिल, आदन आदि आश्रयभेद से आश्रित भी पाक भिन भिन मान लिया जाता है । घञ् आदि से मत्वरूप अर्थ का अभिधान हाता है । इस लिए द्रव्यधमसख्याभेद के आश्रय से वचनभेद हाता अस्वाभाविक नहीं है ।

जहा पर प्रकारांतर स तिङन्त वाच्य भाव म सख्या की प्रतीति होना है वहा भाव म भी बहुवचन दया जाता है जैसे उष्टासिका आस्यत हतगायिका शय्यन्त । यहा पर उष्ट्र आश्रय है । उनके भेद स उनके अनक प्रकार क आसन भी भिन भिन हैं । उसन सामानाधिकरण्य स आख्यात वाच्य भाव भी भिन भिन जान पडता है । भाव भेद स आस्यत म बहुवचन का प्रयोग हुआ है । इव शब्द के प्रयोग के बिना भी इस वाक्य म इव क अर्थ की प्रतीति होती है । इसलिये 'उष्टासिका आस्यते' इस वाक्य से जिस तरह उष्टा क अनक प्रकार के आसन हात है वसे ही देवदत्त आदि क द्वारा किए जा रहे है इस अर्थ की प्रतीति होनी है । इसी तरह 'हृत्सायिका शय्यन्त' इस वाक्य मे हृत् व्यक्तिया की गयन क्रिया उत्तान, अवतान, विकीर्णवेश,

३ वाक्यपदीय ३ उपग्रह-समुदेश १६

४ पुण्यराज वाक्यपदीय २।८.२ टाका

५ पदमन्त्री ३।१।६७

इधर उधर सरके हुए वस्त्र आदि म रूप भिन्न भिन है । इस कारण आख्यात वाच्य भाव म भी स्वरूपगतभेद भ्रवभासित होता है फलत बहुवचन प्रयुक्त है । आहता की गयन क्रिया की तरह देवदत्त आदि के द्वारा भी अनेक प्रकार की गयन क्रिया की जाती है यह अभिप्राय है । 'भवदभि आस्यत' इस वाक्य म आश्रय भेद से आश्रित भेद तो सभव है परंतु पूव वाक्य म उप्त और देवदत्त क आसन म साम्य दिखाना जसा प्रयोजन था उस तरह का कोई प्रयोजन इस वाक्य म नहीं है । प्रयोजन के अभाव के कारण भावभेद भी नहीं माना जाता है । अत इस वाक्य म एक वचन ही क्रिया म प्रयुक्त है । इसी आधार पर ताम्र पलाणेषु बभूव राग इस वाक्य म भी पलाणरूप आश्रय के भिन्न भिन होने हुए भी राग गण मे एक वचन का ही प्रयोग कवि ने किया है । वस्तुतः सवन आश्रय के भेद से आश्रित म भेद की प्रतीति नहीं होती । घटान पचति जैसे वाक्यों म अभिन्न पाक का ही बोध होता है ।

कुछ लोग उप्टासिका आस्यत इस वाक्य म कम म लकार मानत हैं । क्योंकि उप्टासिका लक्षण भाव कम है । जस गोत्रोह सुप्यते म कम है । जिस तरह गोत्रोह (गाय के दुहने का काल) का स्वाप म अ वय होता है उसी तरह उप्टासिका और हृतशायिका का क्रमश आसन और गयन म परिच्छेदक के रूप म अचय होता है । केवल अतर यह है कि गोत्रोह म परिच्छेदकत्व काल उपाधिक है जबकि आसिका आदि मे सादश्य रूप म है । इस मत के अनुसार आसिका और शायिका गण उपयुक्त वाक्या म प्रथमात् बहुवचन हैं । पूव मत के अनुसार व द्वितीयात् बहुवचन है । क्योंकि क्रिया विशेषण के रूप म उनम कमत्व है । यह वचन यहा उपयुक्त न होगा कि क्रिया विशेषण होने के कारण उन शर्दों म नपुसक लिंग और एक वचन हाना चाहिये क्याकि 'स्त्रिया क्तिन' ३।३।६४ सूत्र के अनुसार यहा स्थात्व का भ्रवधारण है । अत सामान्ये नपुसकम (वातिक) की प्राप्ति यहा न होगी । और बहुत्व के बोध के कारण जसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है एक वचन की प्राप्ति नहीं है ।

भट्टोजि दीक्षित न भाव म एक वचन की उपपत्ति एक दूसरे प्रकार से की है । उनके मत म सूत्रकार ने तिड और तिड निष्ठ सस्या का भी सक्त कत कमणी शर्द से किया है । कर्ता और कम का द्वित्व और बहुत्व द्विवचन और बहुवचन बहे जाते हैं । भाव म लकार असत्वावस्थापन धात्वधभूत क्रिया का ही अभिधान करता है अथवा छोनन करता है । इसलिये यहा प्रथम पुरष—एकवचन ही होता है । मध्यम और उत्तम पुरष नहीं हात । क्याकि युष्मदम्भन् का उसके साथ सामानाधिकरण्य नहीं है । द्वित्व और बहुत्व की प्रतीति न हाने स द्विवचन और बहुवचन भी नहीं हात । एकवचन श्रोतमगिव होता है ।<sup>१</sup>

परन्तु महाभाष्यकार न भाव म भी ल विधान म बहुवचन गियाया है जसा कि उपर क विवेचन स स्पष्ट है । इसम आख्यात वाच्य भाव असत्वावस्थापन होता है इस सिद्धांत म बाधा न पड़ेगी क्याकि अभाव प्ररस्या का अभिप्राय निग और वाक्य

के अयोग से है। अतएव पचति भवति, पच्यते भवति, पश्य मृगो धावति इत्यादि वाक्या म वाक्यायभूत क्रिया का त्रियांतर के साथ कर्ता के रूप म अथवा कर्म के रूप म अभिहित होने म कोई धनि नहीं मानी जाती है। तिङ्भिहितभाव का वृद्धभिहितभाव (घञादि वाच्य)से वैपम्य म बाधा न पड़ेगी। क्योंकि वृद् अभिहितभाव मतिग होता है और सक्त्न कारकावित हाता है जन्कि तिङ् अभिहितभाव अलिग हाता है और सभी कारकों म सम्बन्ध नहीं रखता। इनक भेद दिखाने हुए महाभाष्यकार न कहा है कि तिङ् अभिहित भाव का कता क साथ योग होता है किन्तु वृद्धभिहित का कता क साथ योग नहीं होता। (तिङ्भिहितो नाथ कर्ता सप्रयुज्यते, वृद्धभिहित पुनर सप्रयुज्यते—महाभाष्य ३।१।६७)। यद्यपि वृद्ध अभिहित भाव का भी कता के साथ योग देखा जाता है जैसे ब्राह्मणाना प्रादुर्भाव, फिर भी एकपदवाच्य कर्ता के साथ उसका योग नहीं देखा जाता। पचति शब्द कहने मे जिस तरह कता की अभिव्यक्ति होती है ठीक उसी तरह पाक शब्द कहने से नहीं होती। अस केवल शुद्ध भाव का प्रत्यायन होता है। दूसरे शब्दो म तिङ्गत्वाच्च भाव सदा क्त आकाश हाता है जबकि वृत् वाच्य सदा वसा नहीं हाता। अथवा एसा कहा जा सकता है कि घञादि के द्वारा भाव के सिद्ध रूप का अभिधान हाता है इसलिए उस रूप से कर्ता का योग नहीं हाता। धातु रूप के द्वारा भाव के साध्यरूप की अभिव्यक्ति होती है इसलिए साध्यरूप म कर्ता के साथ उसका योग हाता है। अथवा "पाचक" जन् शब्दो म भाव का कता के साथ योग उपलक्षण (गौण) के रूप म हाता है जबकि तिङ् के क्षेत्र म पचति जैसे शब्दो मे साध्य होने के कारण कर्ता के साथ प्रधान रूप मे योग हाता है।

सवथा क्रिया म सख्या का अन्वय मानना उचित है। महाभाष्यकार के कई वाक्य क्रिया मे सख्या की समावता के पोषक हैं। जस भवति पुनवतमानकाल चकत्व च।<sup>७</sup> इस वाक्य का एकत्व शब्द स्पष्ट रूप मे क्रिया का सख्या क साथ संबध जोड रहा है। इसी तरह करोति पचादीना सर्वान कालान सर्वान पुह्वान सर्वाणि वचनानि अनुवतते<sup>८</sup>—इस वाक्य का सर्वाणि वचनानि शब्द क्रिया मे सख्या के समथन कर रह है। सख्या का नाम धवन है।

'तद्धितश्चासव विभक्तौ' १।१।३८ सूत्र क भाष्य म महाभाष्यकार न यह लिखा है कि कुछ अथ्यय विभक्तयश्च प्रधान हाते है। कुछ क्रिया प्रधान हाता है। उच्च नीच य विभक्तयश्च प्रधान है। द्वित्व पृथक् य क्रियाप्रदान हैं। नन्वे माथ क्रिया और सख्या का योग हाता हाता। परन्तु यहां भाष्यकार का क्रिया के साथ सख्या के अयोग दिखाने का अभिप्राय यह है कि अन्वय वाच्य इनके माथ सख्या का योग नहीं हाता।

अत सख्या का आख्यानाथत्व उपपन्न हाता है।

७ महाभाष्य १।३।७

८ वही १।३।१

## सरया द्रव्याश्रित

भत हरि व अनुमार सभी सत्वभावाप न पदाथ स ख्यायान वहे जात हैं । लोक म सरया का आधार भेदाभेद विभाग है । सख्या भेद के आधार पर खडी है । उसे भेद अंगोद्धार लक्षण वाली रहा जा मकता है । क्याकि एक से पराध तत्र जितनी सरयाए है व सब भेद के आधार पर ही अस्तित्व पाती है 'यह वह (इद तत्र) जस सवनाम स प्रत्यवमग योग्य वस्तुगत भेद होता है । फलत सभी द्रव्यात्मा (वस्तु) मे भेद हाना है और उसका व्यवहार एक दो बहुत आदि सख्याआ स युक्त रहता है । सुविधा की दष्टि स एकत्व मख्या का व्यवहार अभेदाध्यय के रूप म हाता है और दो, तीन आदि सरयाओ का व्यवहार भेद का प्रतिपादक है । इम तरह सत्वभूत (द्रव्यात्मक) अथ का एक अथवा अनक रूप म भेद सरयाश्रित है ।

वशेषित दान के अनुसार सरया एक गुण है और द्रव्याश्रित है । कुछ लोग मानते ह कि पदाथ असहाय अवस्था म एक और सहाय अवस्था म दो बहुत आदि सख्याआ स व्यक्ता किया जाता है । सहाय या विरह वस्तु के धम नहीं है । इसलिये द्रव्य स अतिरिक्तसख्या लक्षण कई गुण नहीं है । परतु यह मायता ठीक नहीं जान पडती । क्याकि सहाय ळान और दो तीन आदि का ज्ञान समान नहीं है वह भिन्न भिन्न रूप म जान पडता है । अत ज्ञान भेद के कारण उनकी एकता नहीं सिद्ध की जा सकती है । साथ ही सहाय अवस्था म भी एकत्व का भान होता है अत सहायता रहित हाना ही एकत्व नहा है । कुछ लोग सरया को द्रव्य से अव्यतिरिक्त मानते हैं । सरया और द्रव्य का भेद तिरोहित रहना है द्रव्य से व्यतिरिक्त रूप म सख्या की उपलब्धि नहीं हाती इसलिये सरया को द्रव्य से अव्यतिरिक्त मानना चाहिये । व्याकरण दशन जसा कि हलाराज ने कहा है वशपिका की तरह पदाथ विचार म रग नहीं लेता (अस्माक तु शब्दप्रमाणकाना पदाथविचारानादरात यथायथ पदाथकल्पना तीर्थिक कृता ) ।<sup>६</sup> इसलिये भत हरि का कहना है कि सरया द्रव्य स अभिन्न हो अथवा व्यतिरिक्त हा व्यवहार म एक दो बहुत आदि शब्दा स भेद की प्रतीति होती है । इम प्रतीति का कोई न कोई हेतु भूत धम होना चाहिये । उसी भेदर धम को सरया नाम स व्यक्त किया जाता है —

स धर्मो व्यतिरिक्तो वा तेषामात्मक वा तथा ।

भेदहेतुत्वमाश्रित्य सद्रव्येति व्यपदिषते ॥<sup>७</sup>

सरया मून और अमूत सत्र का भेदर है (सरया सवस्य भेत्विना) ।<sup>८</sup> जस ळ घट । अनेक आत्मा । दो त्रिया । एक बीता (वितन्ति) । दो हाथ । चार प्रस्थ । पाच पल । सख्या सख्या का भी भेदर है जस, दो बीम पाच पचास । द्रव्यगत सख्या का रूप रम आदि म आराप कर चौतीस गुण कहे जात हैं । इसी तरह अभाव वशपि

६ हलाराज, वास्यपनीय ३ मन्वानमुं श ७

७ वास्यपनीय ३, मरयममुं श ७

८ वह। काल ममुं श ७

निरुपाय है फिर भी औपाधिकभेद ने चार अभाव कह जात है। सग्या गद पदार्थों क बलक्षय का प्रतिपादन है। एक घट म भी दो तीन आदि के निराम (अलग करना) के रूप में भेद की प्रतीति होती है (यच्चेषोक्तान्त यच्चपरिमाण तस्य सवस्य सख्या भेदमात्र ब्रवीति महामाय्य ५।१।१६)। मन्त्रभाष्यकार का इषीकान्त शब्द परिमाण का उपलक्षण है। जो महान परिमाण वान हैं वे भी सख्या से गिने या व्यक्त किय जा सकत हैं जैसे मात पवत (मत्त कुलाचना)। जो अल्प परिमाण या अपचितपरिमाण वान हैं वे भी सख्या से भेद हैं जैसे तीन परिमाणु (त्रय परिमाणव)। अतः सबत्र सग्या भेदक के रूप में ग्राह्य है।

गुण द्रव्याश्रित है। स्वतन्त्र नहीं है। फिर भी पदस्य रूपम् जस वाक्या म वह द्रव्यम स स्वतन्त्र रूप में व्यक्त होता है वम ही पदस्वपदम चित्र रूपम जस वाक्यो म गद शक्ति के आधार पर सग्या का स्वतन्त्र रूप म प्रतिपादन होता है। जहा पर एसा संभव नहीं है वहा अव्ययारोप से काम चल सकता है। वस्तुतः भव हरि के अनुसार अव्ययारोप के लिए वस्तु की मत्ता अथवा अमत्ता प्रयोजन नहीं होती। अत्यंत अविद्यमान अथ म भी काल्पनिक आरोप देखा जाता है जैसे ममद्र कुण्डिका (कुण्डिका म समुद्र का आरोप)। वाकरण-द्वयन भाषाय में भी सामान्य विरोध म विशेष लिंग म लिंग और सग्या म सख्या मानना है।<sup>१२</sup> इसी आधार पर गत गत शतानि आदि व्यवहार होत हैं।

## सख्या का स्वरूपगत विवेचन

सभी भावों की सहज सख्या एकत्व है। एवत्वं द्वित्व आदि का मूल रूप है। क्योंकि भेद अभेद पूर्वक जाना है। द्वित्व आदि भेद मात्रक है, एकत्व अभेदाश्रित है। बिना एकत्व के द्वित्व बहुत्व आदि का परिमाण संभव नहीं है।<sup>१३</sup> द्वित्व ज्ञान की प्रक्रिया म मनभेद है। कुछ लोग मानत हैं कि बुद्धि सहित एकत्व और एकत्व (न एतत्वं) द्वित्व के ज्ञान म निमित्त हैं। अथवा बुद्धि निरपेक्ष दो एकत्व से द्वित्व का परिमाण होता है। कणाद ज्ञान द्वित्व के ज्ञान म तीन कारणों का उपयोग करता है। दाद्रव्या म मधु प्रथम उनके ज्ञानाय या ज्ञान होता है तत्र उनके गुण का ज्ञान होता है इसके बाद उससे विगिष्ट दाद्रव्या का ज्ञान जाना है। कणाद-द्वयन की इस मायता का मूल आधार वह सिद्धांत है जिसके अनुसार विना विगणन के ज्ञान किय विगोप्य बुद्धि नहीं होती है (नामहीतविगोपणा हि विगोप्य-बुद्धि)।

द्वित्व क स्वरूप म भी मतभेद है। कुछ आचार्य मानत हैं कि द्वित्व एकत्व का समुदाय मात्र है। वह न एकत्व म विगणन नहीं है। एकत्व के समुदाय का द्वित्व इस एत नये गत से उमी तरह कहा जाता है जिस तरह वप के समुदाय का घन जस एक नये गत से व्यक्त किया जाना है। इस मत म समुदाय-अर्थ का प्राधान्य

१२ वहा मन्व्यामसुरेश ११

१३ वाक्यार्थ ३ सरपा समुदेश १५

है। कुछ लोगो के अनुसार दो एकत्व निरपक्ष रूप में तो एकत्व है परंतु परस्पर सापेक्ष होकर वही द्वित्व कह जात है। इस मत में अवयवप्राधाय की विवक्षा है। उन दाना मता के अनुसार द्वित्व एकत्व से अव्यतिरिक्त है। परंतु ये मत समीचीन नहीं हैं। पाणिनि ने द्वयेयाद्विवचनकचचन (१।४।२२) सूत्र के द्वारा द्वित्व में द्विवचन का विधान किया है। अत्र अव्यतिरिक्त पठन में द्वित्व के एकत्व से अव्यतिरिक्त होने से द्विवचन दो एतत्त्व में होगा। फलतः द्वयेकया शब्द में तीन एकत्व (दो+एक) का ग्रहण होने लगगा और बहुवचन की प्राप्ति होन लगेगी। अतः दो एकत्व से जनित द्वित्व को उनसे अव्यतिरिक्त मानना उचित है।<sup>१६</sup> तीन से लेकर दस तक की संख्याओं के बारे में इसी तरह के विचार व्यक्त किये जाते हैं।

वीस (विंशति) और बीस के आगे की संख्याओं के सम्बन्ध में मत हरि ने महाभाष्य के आधार पर अपना विचार व्यक्त किया है। इन संख्याओं के सम्बन्ध में मूल विचार दो हैं। एक तो इनके उत्पन्न अथवा अनुत्पन्न होने के विषय में है। और दूसरा इनके संख्येय रूप से सम्बन्ध रखता है। उत्पन्न पक्ष में विंशति शब्द दशद्वयार्थाभिधायी द्विशत से शक्तिच प्रत्यय निपातन कर सिद्ध किया जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण शत ही निपातन के द्वारा सिद्ध किया जाता है। केवल साधुत्व के लिये विंशति शब्द के प्रकृति प्रत्यय का अकारण किया जाना है। शक्तिच प्रत्यय प्राथम्य में होता है। स्वाथ का अभिप्राय अतः प्रकृति के अर्थ से है।<sup>१७</sup> लोक में विंशति प्रातिशत संख्या और संख्येय दोनों अर्थ में व्यवहृत हात है। जस वीस गाय के लिये सस्कृत में 'गवा विंशति और विंशतिर्गाव' दोनों रूप में कहा जाता है। अब यदि दस के अर्थ में (स्वाथ में) विंशति शब्द का निपातन किया जायगा तो विंशतिगव यह समस्त रूप संभव न हो सकेगा। इसी तरह त्रिंशत शब्द के भी उपयुक्त विधि से निपातन करने पर त्रिंशतपूर्ती जस शब्द में द्विगु समास न हो सकेगा। क्योंकि इन शब्दों में द्विगु समास के लिये आवश्यक सामानाधिकरण्या न मिल सकेगा। विंशति शब्द से दस दस का अभिधान होगा न कि दस सम्बन्धी द्वय का अभिधान हागा।

१६ कैवट ने इस पर टिप्पणी दी है कि द्वयेक शब्द द्वित्व और एकत्व के अर्थ में है और इसीलिये द्विवचन के रूप में व्यवहृत है—द्वयकयोरित्यत्र संख्यादेन द्विशतदेन सापेक्षयादेकशब्दव्यतिरिक्त संख्यावाचिनी ग्रहणम्। त्रिवैक्ययोरत्र द्वयकशब्दावनेते तत्र द्विवचनेन त्रिवैक्ये। अन्यथा बहुवचन स्यात्। प्रसिद्ध यात्रे संख्येयवचनेकात्तानामप्यत्रान्तानामुच्यते।

—महाभाष्यप्रदीप १।४।२२

एक शब्द जब संख्यावाची हाता है वह गुणवचन होता है। जब वह असंख्यावाची हाता है गुणवचन नहीं होता। (महाभाष्यप्रदीप ६।३।२२) नागेश्वर के मत में सहस्र नहीं है। उनका मत में संख्या शब्द गुणवचन नहीं होते (मरुवाशब्दानां गुणवचनत्वाभावात्—इहो)। परंतु पाणिनि ने उपयुक्त सूत्र में एक शब्द का संख्या के अर्थ में ही व्यवहार किया है। यामकार का भी यही मत है (अत्र एक शब्द संख्याभावप्रयुक्त, न संख्येय द्वये—याम। ६।३।६२)।

१७ स्वाथ इति। प्रथमस्य स्वाथस्य प्रकृतिग्नस्य अर्थ इत्यर्थे। अथवा य प्रकृतस्य स एव प्रथमस्य स्वाथस्य प्रकृतिग्नस्य प्रथमस्य अर्थ इत्यर्थे। अथवा य प्रकृतस्य स एव प्रथमस्य स्वाथस्य प्रकृतिग्नस्य प्रथमस्य अर्थ इत्यर्थे। अथवा य प्रकृतस्य स एव प्रथमस्य स्वाथस्य प्रकृतिग्नस्य प्रथमस्य अर्थ इत्यर्थे।

महाभाष्यप्रदीप ५।१।५६

फलतः बीस साथ व अथ म मदा गवा विगति यह पठ्ठी विभक्ति वाला रूप ही होगा क्यात्रि गापी के दा दस (गवा द्वौ दानी) व रूप म अथ की उपस्थिति हो स यतिरेक उपस्थित हो जाने के कारण पठ्ठी विभक्ति ही गो गद म होगी। पठ्यन्त मा ग् के साथ विगति शब्द का समानाधिकरण न होने से द्विगु सामान्य मभव न हो सकेगा। साथ ही इस शब्द म एव वचन का प्रयोग भी उपपन्न न हो सकेगा। वस्तुतः कवल समास या केवल वचन की अनुपपत्ति न होकर समास वचन की उपपत्ति न हो सकेगी। गवा विगति से गोविगति ऐसा सामान्य होता है। यद्यपि 'पूरणगुणमुहिनाथ २।२।११ सूत्र के अनुसार गुण के साथ पठ्ठी समास नहीं होता फिर भी यह निषेध अनित्य माना जाता है और संख्या शब्द व साथ समास दखा जाता है। स्वयं पाणिनि ने शतमहस्त्राताञ्च निष्कारा (५।२।११६) म संख्या गद क साथ सामान्य किया है। गुणनिषेध अनित्य श्लोक वाक्य वाक्यायन और पतञ्जलि के भी कह है जस 'क्रोशगतयोजनशतयोरुपसंख्यानम् (वार्तिक ५।१।७४) 'स्वारीगतमपि न ददाति (महाभाष्य, पस्पशाह निष) आदि। अथवा गुण व साथ निषेध वाला नियम तत्स्य गुणा व साथ लागू होता है जस 'वाक्यस्य काण्यम' म। गुणात्मा रूप म अवस्थित व साथ वह नियम नहीं लगना। फलतः गोविगति यह समस्त पद बनता है। परन्तु व्युत्पन्न पद म सामानाधिकरण्य व अभाव म समस्त पद न बन सकेगा। साथ ही दा दस का भाव हान से द्विवचन की भा प्राप्ति हान लगेगी। स्वाधिक प्रत्यय लिंग का व्यतिरमण कर सकते है परन्तु मन्था का व्यतिरमण नहीं करत। लिंग का ता प्रतिवस्तु व माय—इय व्यक्ति अथम पन्था व वस्तु—इय रूप म तीना लिंगा का व्यवहार दखा जाता है इसलिये लिंग भेद होने पर उतना विरोध संभव नहीं है परन्तु संख्या के क्षेत्र म संख्यातरयुक्त का सामान्य म विरोध है। यदि परिमाणी अथ म स्वाय म प्रत्यय का विधान है, तो इस दोष से बचा जा सकता है। परिमाणी दा तरह का होना है द्रव्य का मघात अथवा भिन्न भिन्न द्रव्य। या सब के एक होने से विगति गद म एकवचन माघु मान लिया जायगा। द्रव्य का परिमाणी के रूप म लेने पर विगतिमव, त्रिगतपुली आदि म समानाधिकरण समास की भी सिद्धि हो सकती है। परन्तु दूसरी कठिनाइया आ खड़ी होगी। जब मघ व परिमाणी अथ म विगति शब्द का निपातन होगा वचन विगति शब्द से भी मघ का ग्रहण हान लगेगा पर ऐसा इष्ट नहीं है और न लक्ष म ऐसा देखा ही जाता है। भिन्न द्रव्य परिमाणी म प्रत्यय की उत्पत्ति मानने पर विगति गद से द्रव्य का अभिधान होगा, फलतः व्यतिरेक न हान व कारण गवा (गवा विगति) म पठ्ठी विभक्ति न हो सकेगी। और द्र व व साथ सामानाधिकरण्य हाने से बहुवचन की भी प्राप्ति हान लगेगी।

वार्तिककार ने उपयुक्त दोषों से वचन के निषेध विगति आदि गद को अयुत्पन्न मान लिया है। जिस तरह सहस्र अयुक्त भवुद आदि शब्द अयुत्पन्न है उसी तरह विगति आदि गद भी अयुत्पन्न है। इनकी प्रातिपत्तिक सना अथवत् १।२।४५ सूत्र से हो जायगी। अथवत् सूत्र के द्वारा अव्युत्पन्न गदा की प्रातिपत्तिक सना होनी





मिथान वत्ति यहा विवक्षित है और इसलिये वह प्रत्यय उत्पादन करने में ममथ हो सकेगा। यहा यह बात ध्यान देने की है कि द्रव्या का द्रव्यसध से और दगाता का दशमसध से कोई तात्त्विक भेद नहीं है। उनमें भेद बुद्धि-परिकल्पित है। शब्द बुद्धि व्यवस्थापित अथ वाचे होते हैं। बुद्धि को ही वे अर्थाकार के रूप में अभिप्रेत करते हैं। बाह्य अथ व अभिधान से उनका साक्षात् प्रयोजन नहीं होता। इसलिये वाम्निभेद न होने पर भी भेद की प्रतीति दे सकते हैं। गुणी (गाय आदि) का भेद के रूप में व्यवहार करने पर पठो विभक्ति (गवा विगति) भी सिद्ध हो जायेगी। यद्यपि विगति शब्द से दसा का सध (दाटा सध) वाच्य है इसलिये उसका गुणी गाय आदि नहीं होत, दो दम ही उसके गुणी (सख्यय) हैं फिर भी गाय और दसमध में किसी तात्त्विक भेद व न होने के कारण गाय भी विगति शब्द व गुणी हैं। कबल अन्तर यह है कि दम सध से विगति के सम्बन्ध में कोई 'यभिचार नहीं है इसलिये कभी दसत स विगति की विशेषता नहीं व्यक्त की जाती, वाइ 'दगातो विगति' नहीं कहता। कभी भी 'कृष्णम्य वाप्यम, "गुक्लस्य शौक्ल्यम' प्रयोग की आवश्यकता नही होती, इनमें व्यभिचार सम्भव नहीं है। परन्तु अश्व आदि की व्यावृत्ति के लिये विगति शब्द का गाय शब्द के द्वारा विगति रूप व्यक्त किया जाता है। और कहा जाता है 'गवा विगति'। अथवा अश्व आदि भी वीस मन्था से गृहीत हो सकते हैं। गाय का विगति से सम्बन्ध भावानयन द्रव्यानयनम् 'गाय के आधार पर हो जाता है।

वचनवाला दोष भी दोना पना म वस्तुन दोष नहीं है। समुदाय अभिधान के पक्ष में समुदाय के एक होने से एक वचन सिद्ध ही है। गुणी अभिधान पक्ष में भी दोष नहीं है। यह ठीक है कि गुणवचन शब्द द्रव्य के लिंग और उसकी मख्या का अनुवचन करते हैं। परन्तु सबन यह नियम नहीं देखा जाता। लोक में कहा जाता है— गावो धनम पुत्रा अपत्यम इ द्रान्ती दकता वदा प्रमाणम आदि। इन वाक्या में गुण और गुणी में लिंग और मख्या का साम्य नहीं है फिर भी ये प्रयोग शुद्ध हैं। गाव म बहुवचन है और धनम म एक वचन है। धन गुण है और गाय गुणी है क्योंकि धन साक्षात् भेदक है और किया पारतन्त्र्य है। जिस तरह गुक्ल शब्द वहन से द्रव्य की आकाशा होती है उसी तरह धन शब्द कहने से कौन से धा की जिनामा म गाय आदि की आकाशा होती है। जिस तरह गुक्ल वचन म गुक्ल शब्द द्रव्य का भेदक है उसी तरह गावा धनम म धन शब्द गाय का भेदक है अर्थात् दूसरे दूसरे प्रकार के धन से गाय धन अधिक प्रीतिकर है इस लक्ष्य में भेदक है। जिस तरह गुक्लमानय दसम द्रव्य ले आन म ही गुक्ल के लान की सभावना है अतः किया म द्रव्यपरतन्त्रता के कारण गुक्ल गुण है उसी तरह वनमानय जस वाक्य में गाय आदि द्रव्य की आनयन किया म पारतन्त्र्य के कारण धन गुण है। अतः जिस तरह 'गावा धनम आदि म गुण-गुणी म भिन्न भिन्न वचन हैं—एकवचन और बहुवचन साथ-साथ हैं वस ही विगतिगाव विगतिवलीवदा विगतिगोक्लानि आदि म भी विभिन्न वचन और लिंग साथ-साथ सम्भव हैं। विगति शब्द नित्य एकवचन और स्त्रीलिंग है। इस एक वचन की पौठिका म भी एक-द्वान है। जहा कही एमा होता है वहा कुछ न कुछ रहस्य

होना चाहिये । महाभाष्यकार ने कहा है कि एक गोपिण्ड घन नहीं है अपितु गाथा का समुदाय घन है और प्रीति हतु होने के कारण घन गुण एक है । उमी एक्टर की प्राधाय विवक्षा से घनम शब्द म एक वचन होता है । इसी तरह पुत्रा अपत्यम म अपत्य शब्द स अपतन एक गुण प्रधान रूप से विवक्षित है और उमी आधार पर इसम एकवचन है । लिंग क लोकाश्रय हान क कारण अपत्य शब्द का व्यवहार तपु सखलिंग म होता है । वस्तुतः इसम भी एकत्व की तरह ही रहस्य है । इसी तरह इन्द्राग्नी देवता म देवत्व (ऐश्वर्य) एक गुणही प्रधानत विवक्षित है इसलिये देवता म द्विवचन न होकर एकवचन है । विशति आदि मे भी विगति सख्या समुत्ति द्रव्यसमूह म समवाय रूप म रहने क कारण एक है । इस एक्टर गुण के कारण विगति शब्द का प्रयोग एकवचन म हाता है । वह गुणत्व की तरह प्रत्यक म परिसमाप्त नहा है । अतः सत्ता द्रव्यगत लिंग सख्या का अनुवचन नहीं करता । पच सप्त आदि नित्य सरयेय वचन है इसलिये के सख्यय लिंग-वचन का अनुगमन करते है । उनम उपयुक्त आवाह पर एकवचन नहीं होता ।<sup>१६</sup> अतः युत्पत्ति पक्ष मे भी दोष नहीं है । पर वयाकरणा का भुजाव विगति आदि शब्द को अव्युपन मानन की ओर ही अधिष्ठ रहा है । जसाकि काशिकाकार ने कहा है —

विगत्यादयो गुणशब्दास्ते यथाकथञ्चिद् व्युत्पाद्या ।

नात्रावयवार्थोऽभिनिधेष्टव्ययम । या चपा विवपभेदेन गुणमात्रे

गुणिनि च वत्ति स्थलिंगसख्यानुविधान च एतदपि सब स्वाभाविकमेव ।<sup>१७</sup>

विशति की तरह ही एकविशति आदि सख्यामा का समभना चाहिये । उनम भी अवयवार्थ कुछ नहीं है । एक सख्या और बीस सख्या के योग से एकबीस (एक विशति) सख्या बनी है । यह एक तरह का कान्पनिक् रूप ह यथाथ नहीं । नव और चारह दम और ग्यारह क द्वारा भी एक विशति का विवरण किया जा सकता ह परन्तु ये सत्र विभाग भत हरि क अनुसार काल्पनिक है । एकविशति आदि सख्यामा म कई अवयव नहीं ह । व अय ही सख्या हैं । नरसिंह की तरह उनम अय ही बुद्धि होती है । केवल ममभने क लिये नर और सिंह के रूप म जैसे अपादार किया जाता ह वस केवल अवयवान के लिए एकश्च विशतिश्च ळस वाक्य एक विगति क लिय कहे जात ह

एकविगति सख्याया सख्यांतरसरूपयो ।

एकस्यां बुद्धयनावत्या भागयोश्चि कल्पना ॥<sup>१८</sup>

यह मायता कुठ याकरण मन्वधी कठिनाइया क कारण ह । एकविगति जसा सख्याया का दा सख्यामा का योग मान लन पर और उह निरस्तावयत्र न मानने पर व्याकरण मन्वधी कठिनाइया पडेंगी । दम आदि की तरह उह असण्ट

१६ महाभाष्य तथा महाभाष्यप्रदाप ५।१।५८

१७ काशिका ५।१।५६

१८ वाक्यनदीप ३ मया समुत्ति २०



## एकवचन, द्विवचन और बहुवचन

यद्यपि ये शब्द अत्रयक है फिर भी पारिभाषिक रूप में व्यवहृत होते हैं। पुर्यादायो द्वारा व्यवहृत समासों की पाणिनि ने प्रायः परिभाषा नहीं दी है परन्तु उन्निष्ठा यथा धाति की परिभाषा की है। महाभाष्यकार ने इसका समास कहा है— एकवचन द्विवचन बहुवचनमिति शब्द समा एता ।<sup>१</sup> द्वयस्योक्त्यात् १।४।२२ मूल के द्वारा एतत्त्व के अर्थ में एतत्त्वं धीर द्वित्व के अर्थ में द्विवचन का प्रयोग होता है। एवं शब्द का कर्त्तृ अर्थों में प्रयोग होता है। एक दो बहुत धाति नामों के साथ यह समास के अर्थ में व्यवहृत होता है। एतत्त्वं जगत्त्वं मयं यह अगत्यायवाची है। मपमानो दुम्न एतास्ता जैसे वाक्यों में यह अर्थ अर्थ जाता है। जब यह समासायी होता है तभी उभय एकवचन होता है। पाणिनि ने उपसुक्तों में समास के अर्थ में ही एतत्त्वं का व्यवहार किया है। यदि एतत्त्वं समास अर्थ विवक्षित होता द्वयस्योक्त्यात् द्विवचन के अर्थ पर बहुवचन का प्रयोग उचित जाना, क्योंकि दो धीर एतत्त्वं मिल कर तीन का अर्थ व्यक्त करते। मन्वय के लिये एक धाति का व्यवहार सोच प्रसिद्धि के आधार पर किया जाता है (प्रसिद्धि या च सत्येयायत्यमकादौनाम अष्टादशात्तानाम उच्यते) ।<sup>२</sup> जगत्त्वं एतत्त्वं अत्रायक होता है वही उसकी गणना समास में नहीं होती। अतः उससे बहुवचन भी होता है। जैसे 'एक मयन्त'। अस्तु एकवचन में एक के सत्यायन होने के कारण एकवचन वस्तु की एक इनाई का द्योतक है और वस्तु में भेद भेद पूर्वक होने के कारण अर्थ सूचक एतत्त्व ही वस्तु का स्वाभाविक रूप है। पल्लव सन्वृत के व्याकरण एकवचन की औचित्य मानते हैं।

द्विवचन कभी कभी अपनी स्वाभाविक सीमा के परे भी चला जाता है। सन्वृत में शरीर के व अथवा प्रायः द्विवचन द्वारा प्रकट किये जाते हैं जो जोड़े हैं जैसे—आस आस धाति। परन्तु 'अक्षीणि म दगनीयानि, पादा म सुकुमारा' जैसे बहुवचनान्त प्रयोग भी लोक में देखे जाते हैं।

बहुत्व के अर्थ में बहुवचन का विधान पाणिनि ने बहुषु बहुवचनम् १।४।२१ के द्वारा किया है। बहुत्व तीन में लेकर पराध तक की समासों में व्याप्त धर्म है। सन्वृत में दारा शब्द बहुवचनान्त है। एतत्त्वं दारा के लिये भी दारा पद का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग इसकी उपपत्ति बताते हुए कहते हैं कि अवयवगत बहुत्व का अवयवी में यथा आरोप किया गया है। अतः यथा बहुवचन आरोपजय है। (अवयववहृतस्यावयविनि आरोपाद् भविष्यति)<sup>३</sup>। एक वक्ष म मूल, शाखा आदि अवयव के आरोप से बहुवचन नहीं होता क्योंकि कोण अथवा वद्ध-व्यवहार में एता नहीं दत्ता जाता। दारा नाम प्रति अवयव में प्रथम के कारण दारत्व का आरोप

२० महाभाष्य १।४।२१

२१ महाभाष्यप्रतीप १।४।२१

२२ शब्दकौमुभ १।४।२१

सम्भव है। जहाँ बोध आदि वाधा नहीं देते एकत्व या बहुत्व के प्रयोग वस्तु की इच्छा पर है। जैसे "आचाया आगता" भी कहते हैं और 'आचाय आगत भी कहा जाता है। कुछ लोगो क अनुसार दारा शब्द में बहुवचन साधुव के लिये है। परन्तु बहुवचन विधान सूत्रक कोई उल्लेख नहीं है उसका अनुशासन नहीं हो पाया है। आचाय धर्मकीर्ति के अनुसार दारा सिक्ता आदि शब्दों में बहुवचन वस्तु क इच्छा स्वाभाविक के कारण है वस्तु के आधार पर नहीं।

तस्मादय नियमो निवस्तुक क्रियमाण नन्दप्रयोगे इच्छास्वातन्त्र्य स्यात्पपति ।

—प्रमाणवार्तिक पृष्ठ १६०

महाभाष्यकार ने सिक्ता शब्द का प्रयोग एकवचन में किया है। जैसे एका च सिक्ता तलशनेऽसमया, तत्समुदायश्च खारोगतमपि असमयम्'। इस पर कैंपट ने टिप्पणी दी है कि "एका सिक्तेति भाष्यप्रयोगादेव सिक्ता शब्दस्वकवचनात्मवि"।<sup>२३</sup>

एकवचन आदि प्रत्ययनियम और अयनियम दोनों रूप में गृहीत होते हैं अर्थात् एक अर्थ में ही एकवचन अथवा एक में एक वचन ही होता है। इन दोनों रूपों में इनकी व्याख्या की जाती है। 'बहु रूप' जैसे वाक्या में बहु शब्द वैपुल्यवाची है। बहु शब्द भिन्न वस्तुओं के आधारार्थ्य के रूप में ही सत्यावाचक होता है।

### सख्या विभक्ति से वाच्य अथवा द्योत्य

त्रिप्र प्रातिपदिकाय पक्ष में कम आदि की तरह एकत्व आदि सख्या विभक्त्यय माना जाती है। पञ्च प्रातिपदिकायपक्ष में विभक्तिमा सख्या के द्योत्य है। कुछ लोग मानते हैं कि सख्या का अभिधान प्रत्यय के द्वारा होता है और कम आदि का अभिधान प्रातिपदिक के द्वारा होता है। इस मत का आधार अथवा 'यतिरेव' पद्धति है। वक्षी वक्षान जैसे शब्दों में प्रत्यय के भेद से सख्या में भेद देखा जाता है परन्तु साधन में भेद नहीं देखा जाता। इसके विपरीत कुछ लोग मानते हैं कि कम आदि का अभिधान प्रत्यय द्वारा होता है और सख्या प्रातिपदिक के द्वारा अभिव्यक्त होती है। क्योंकि अनिचित जैसे शब्दों में प्रत्यय के त्रिना भी एकत्व का परिचय होता है परन्तु विभक्ति के बिना कम आदि का ज्ञान नहीं होता। कुछ लोग के अनुसार प्रातिपदिक से ही सख्या और कम आदि दोनों का अभिधान होता है। कम पद्यों जैसे वाक्या में विभक्ति के बिना भी दोनों का परिचय देखा जाता है। वस्तुतः ये सब पक्ष भेद पुरुष विकल्पाधीन हैं। और 'वाकरणद्वयन में प्रसंगानुसार सभी पर यथावसर धारण है। महाभाष्यकार ने अनभिहित (२।३।१) इस सूत्र की स्थापना सख्या विभक्त्यय दान के आधार पर की है (तदेव सख्याविभक्त्यय इति दशनाश्रयेण सूत्र स्थापितम् —महाभाष्यप्रदीप २।३।१)। इसी तरह पाणिनि सूत्र ४।१।५० के भाष्य में विभक्तिवा क कर्मादि के द्योत्य होने का संकेत है और नागार्जुन के अनुसार यही सिद्धांत

पण है—

(अस्माद् भाष्याद् द्योतकस्य च न एव सिद्धात् इति भाष्ये—

—सहस्रात्मप्रत्याघात ८।१।२०)।

मन्वा प्रत्ययाध और प्रत्ययध दाता का परिष्कार है। पञ्चा गामय म मन्वा प्रत्ययाध का परिष्कार है। पञ्चा गामय म मन्वा प्रत्ययध म प्रत्ययध का परिष्कार है।

## वृत्ति में सख्या

वृत्ति म मन्वाध की निवृत्ति हो जाती है। विप्रदू वाप्य म मन्वा विनाय की प्रतीति होती है। इस राग पुण्य म राग शून्य म एतत्त्व का ज्ञान होता है परन्तु राजपुरुष दाता म उपसजन दाता म विगो मन्वा विनाय का बोध नष्ट होता। विगो मन्वाध का ज्ञान स वृत्ति म मन्वाविनाय का स्थान नष्ट है इसका अनुमान कर लिया जाता है।

## वृत्ति में अभेदकत्वसख्या

अथवा वृत्ति म अभेदकत्वसख्या होता है। भक्त हरि ने अभेदकत्वसख्या को बोधो म व्यक्त किया है। विगो सख्याया का अविभाग रूप म अवस्थिति का नाम अभेदकत्व सख्या है। इस दशन क अनुसार वृत्ति म उपसजन पण्यों म भी सख्यायोग होना चाहिये। अव्यय की तरह सवधा सरदारहित उपसजन पदाय की सत्ता उपयुक्त नहीं है। इगतिव वृत्ति म भी सख्या का एव सामान्य रूप रहता है जो सभी सख्या विगो का ससग रूप सा है। उसम सख्याया का विभाग दृष्टिगोचर नहीं होता। इसम स्पष्टीकरण म भक्त हरि न मधु का उदाहरण दिया है। मधु म सभी प्रकार की श्रोपधिया क रस अविभाग रूप म सनिविष्ट रहते हैं। मधु म श्रोपधि रसा की अलग अलग पहचान दुष्कर है फिर भी वे वहा है। काय म रस कारण गुण—रस स ही सभव है। इसी तरह यद्यपि वृत्ति म उपसजन पदाय म सख्या विशेष की प्रतिपत्ति नहीं हाती, फिर भी उसम सभी सख्याए अविभक्त रूप म हैं। इसी का अभेदकत्व सख्या मन्वा स व्यक्त किया जाता है।<sup>२४</sup>

अथवा अभेदकत्वसख्या से अभिप्राय उस मर्यादा सामान्य से है जिसम विगो परित्यक्त है (परित्यक्तविशेष सख्यासामान्य अभेदकत्वसख्या)। अभेदकत्व स्वभाव वाली सख्या म व्यक्तिभेद सवधा तिराहित रहता है और सख्या केवल जाति रूप म अवस्थित रहती है। सख्या का जातिरूप भेदापोहन ण है अर्थात् भेदो का व्यावतन अथवा हनना ही सख्या का जातिरूप है। एतत्त्व द्वित्व का व्यावतन करता है, त्वि त्वि को हनता है। इसी तरह अभेदकत्व के अर्थ सभी सख्याया के यावतक होने के कारण उसमे भेदापोट् लक्षण सख्यात्व है। पहले मत

से इस मत में यह भेद है कि पहले के अनुसार अभेदकत्व समस्त भेद का समग्र मात्र था फलतः समस्त भेदात्मक था। हमारे मत के अनुसार अभेदकत्व समस्त भेद में अनुगत सामान्य रूप और अग्र्य व्यावतक स्वभाव वाला है। समास में द्वित्व और बहुत्व सत्ता का ज्ञान नहीं होता। केवल अभेदकत्व का परिचय होता है। अतः सख्या विधेय का परित्याग कर सत्ता के सामान्य रूप का अभेदकत्व सत्ता मानना चाहिए। जिस तरह से अंधेरे में किसी वस्तु के बस आकार का ही बोध हो पाता है उससे विशेष गुण गुल, नील पीत आदि का आभास नहीं होता उसी तरह राजपुरुष आदि वतिस्यन्तो में आवार या रूप की तरह केवल सत्तावान राज व अथ का ग्रहण होता है पर विशेष रंग की तरह विशेष सत्ता का ग्रहण नहीं होता। अतः वति में अभेदकत्व सत्ता की सत्ता स्वीकार करनी चाहिए।

कभी कभी वति में भी सत्ता का बोध होता है। परन्तु इससे अभेदकत्व सत्ता पथ की हानि नहीं होती। द्विपुत्र पंचपुत्र जैसे शब्दों में समास में भी सत्ता विशेष की अभिव्यक्ति अवश्य जानी है परन्तु यहाँ प्रातिपदिकाय ही सत्ता विशेष है। इस विग्रह वाक्य से जिस द्वित्व सत्ता की प्रतीति होती थी समास होने पर वह तिरोहित हो जाती है और अभेदकत्व सत्ता का आविर्भाव हो जाता है। किन्तु द्विशब्द का प्रातिपदिकाय का द्वित्व है वह वति हानि पर भी तिरोहित नहीं होता। जहाँ स्वार्थवति पक्ष में भी उपसर्जन का अर्थ होता है। भाव प्रत्यय के बिना भी वतिविषय में द्वि और बहु शब्द द्वित्व और बहुत्व का अर्थ में दखे जाते हैं जैसे द्वयकयोद्विवचनवचने १।४।२२ के द्वयैकयो शब्द में।

अथवा भी वति में सत्ताविशेष की भलक मिलती है। जैसे 'तावकीन में एकत्व की। परन्तु यहाँ भी एकत्व की प्रतीति आदान के प्रयोग से है।

मासजात शौचिक जैसे स्थलो में एकत्व का भान यहाँ प्रातिपदिक के ही विशेष अर्थ के अभिधायक होने का कारण है। विनिष्ट काल का अवबोध ही यहाँ मुख्य है। परिमय—विशेष के अवधारण के लिये ही परिमाण शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कुण्डश ददाति, प्रस्थश ददाति वनश प्रविशति जैसे वाक्यों में एकत्व का अवधारण प्रकरण के बल पर होता है।

विग्रह वाक्य में स्तोत्राभ्यां मुक्त स्तोत्रेभ्यः मुक्त ऐसा भी कहा जाता है किन्तु समास में मदा 'स्तोत्रान् मुक्त' ही होता है। यह अलुक् समास है और समस्त पद होने के कारण इसमें एक ही उदात्त है। स्तोत्राभ्यां मुक्त में समास अन्विधान के कारण नहीं होता। लोक में समस्त शब्द के रूप में इसका प्रयोग नहीं देखा जाता। स्तोत्रान् मुक्त में अलुक् का एकवदभाव माना जाता है। फलतः वति में अभेदकत्वसत्ता का अध्यायन यहाँ भी नहीं है। गापुचर, वर्षापुज जैसे आपातत बहुवचना में समास में भी अभेदकत्वसत्ता है क्योंकि इनमें व्यक्ति बहुत्व के अर्थ में बहुवचन नहीं है अपितु जाति बोध के कारण एक के अर्थ में है। इसलिये एक व्यक्ति के लिये भी गोपुचर (कपट के अनुसार कुम्भट, हलाराज के अनुसार इन्द्रगोप) शब्द का



प्रयोग होता है। इसी तरह वर्षापूर्व म वर्षा शब्द बहुवचन न हो कर्तु विगम का वाचक है। प्रकृतिय वृत्तिगत अभेदत्वसंज्ञा की प्रतीति यही भी है। अतः वृत्ति म अभेदत्वसंज्ञा भा हरि के अनुसार माननी चाहिए। पर यह अभेदत्व पाणिभाषित रूप म ही है। व्यपहार्य वृत्ति स सरुपाविगम का भाव न हो जाता। यदि कुछ स्थला पर किसी विगम कारण स वृत्ति म सरुपा का अन्वेष हो भा तो भी सामान्य लक्षण के रूप म यही वचना उचित है कि वृत्ति म सरुपाभेद का अन्वेष न होना—

भेद सरुपाधिनेपो वा व्याख्यातो वृत्तिवाचकयो ।

सर्वत्रय विनेपस्तु नायस्य तादृशो भवेत् ॥

—वाचस्पतीय वृत्ति ममुद्देश १३२

## जाति में सरुपा

व्याकरण दशन जाति म भी सरुपा मानता है। क्योंकि सरुपा इस दशन म भेद के रूप म भी गृह्यत है। गुणपद स सदा वशेषिक प्रसिद्ध ही गुण नहीं लिया जाता गुण भेदक भी होता है

ननु च जाते सरुपा न विद्यते तस्या द्रव्यधर्मत्वात् । यद्यपि यनेपिप्रसिद्धात् प्रसिद्धा गुणपदायसंगहोता या सरुपा सा न विद्यते तथापि भेदका गुणा इत्यस्माद् वगने भेदमात्रा या सरुपा सा विद्यत एव—

—यास १।२।५८

## कारक (साधन) विचार

स्वाश्रये समवेतानां तद्देवाश्रयात्तरे ।

क्रियाणामभिनियन्तो सामर्थ्य साधनं विदुः ॥<sup>१</sup>

क्रिया की निष्पत्ति में लगी हुई द्रव्य शक्ति को साधन कहते हैं। इसे कारक भी कहते हैं। साधन शब्द की व्युत्पत्ति साध्यते अनेन क्रिया के रूप में की जाती है। महाभाष्यकार ने साधन को गुण माना है। शक्ति स्वयं आधार के परतत्र है साथ ही अन्य आश्रया से अपने आश्रय का भेदक है। भेदक होने के कारण 'भेदका गुणा' इस दशन के आधार पर उसे गुण कहते हैं। महाभाष्यकार ने यदि तावद् गुणसमुदाय साधन, साधनमपि अनुमानगम्यम्' (महाभाष्य ३। २। ११५)—यह वाक्य 'यवहृत क्रिया है। गुणसमुदाय स अभिप्राय शक्ति समुदाय से है। गुणसमुदाय शब्द में समुदाय शब्द करण आदि सभी शक्तिशक्ति का प्रतीक है। करण आदि शक्तिशक्ति क्रिया की सिद्धि में शक्तिरूप से निमित्त हैं अतः वे सभी साधन हैं। इसीलिये सर्वा शक्तयः साधनम्<sup>२</sup> यह उक्ति प्रसिद्ध है। कभी कभी द्रव्य के लिये भी साधन शब्द का व्यवहार मिलता है जैसे, 'साधनं च द्रव्यम्'। इस स्थिति में शक्ति और शक्तिमान के अभेद की विवक्षा से साधन शब्द द्रव्य का अभिधान होता है (शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया साधनशब्देन शक्तिमति द्रव्याण्युच्यते)।<sup>३</sup>

साधन के शक्ति रूप में होने के कारण क्रिया की तरह वह भी अनुमय है। शक्तिशक्ति सदा अनुमय ही होती है। शक्तिमान को शक्ति से अतिरिक्त मानन पर साधन का प्रत्यक्षत्व और परोक्षत्व द्रव्य के आधार पर होता है। लक्ष्मण द्रव्य के प्रत्यक्ष होने पर क्रिया का भी प्रत्यक्ष समझा जाता है और द्रव्य के परोक्ष होने पर क्रिया का भी परोक्ष माना जाता है वैसे ही साधन का भी समझना चाहिये।

भक्त हृत्ति ने साधन पर विचार द्रव्य-अतिरिक्त-शक्तिमान और द्रव्य-अतिरिक्त-शक्तिमान इन दोनों पक्षा की मायताओं के आधार पर किया है।

१ वाक्यपदीय ३, साधनसमुदाय १

२ कैयट, महाभाष्यप्रदीप ३। २। ११५ पृ० २४३

३ वट्ट, पृ० २४२

## द्रव्यव्यतिरिक्त शक्ति-दर्शन के अनुसार साधन

भक्त हरि के अनुसार विश्व शक्तिया का समूह है। विश्व की प्रत्येक वस्तु एक तरह का शक्ति पुत्र है। घट जस भाव (पदार्थ) जल ले आना जल रखना आदि जस कार्यो के साधक शक्तियो के समूह है। ये शक्तिया, हेलागज के अनुसार कई प्रकार की होती हैं। कुछ अपने हेतुमा से ही स्वाभाविक रूप में उदबुद्ध होती हैं जैसे दीप में प्रकाश की शक्ति। कुछ शक्तिया अपने आश्रय के अन्त स्थित होती हैं जस बाधा आदि शक्तियाँ। विप की मारण शक्ति और बीज की अकुर जनन शक्ति भी शक्ति विधेय ही हैं। योगिया की शक्ति भी एक विशेष शक्ति है। यह उपमुक्त भाव हेलागज ने भक्त हरि के शक्तिमात्रासमूहस्य विश्वास्यानवधमण वाक्य का पक्ष किया है। परन्तु इसका भाव भक्त हरि का शक्ति दर्शन के अनुरूप भी हो सकता है। भक्त हरि शक्ति-पदार्थ का समर्थक हैं। विश्व की मूल सत्ता शक्त्यात्मक है। विश्व की सभी वस्तुएँ उसी मूल शक्ति की मात्राएँ हैं उनके अवयव हैं। इसलिये विश्व को शक्तिमात्रा का समूह कहना उनके दर्शन के अनुरूप है। उस शक्ति की सवत्र सदा सत्ता है। फिर भी वही किसी शक्ति विशेष की विवशा होती है और इस तरह वस्तु बचिन्मय बना रहता है। घट देना घट द्वारा जल लाना घट में जल रखना आदि वाक्या में कम करण आदि शक्तियाँ विवशा का उन्भूत होती हैं। इसलिये कारक-साधन भी नहीं होने पाता है। शक्ति की साधन मानने पर ही इस बचिन्मय की भीमासा ठीक ठीक हो पाती है। द्रव्य का साधन मानने पर कम करण शक्ति की व्यवस्था समुचित रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि द्रव्य एकस्वभाव वाला है।

शक्ति की साधन मानने में कुछ कठिनाइयाँ हैं। जहाँ पर शक्तियाँ हैं वहाँ विवक्षा भल हो जहाँ उनकी वास्तविक सत्ता नहीं है वहाँ किस तरह व्यवस्था की जायगी। जैसे शक्तिमत्ता शक्ति या साधयति जैसे वाक्या में शक्ति शक्ति के रहने से किसी दूसरी शक्ति की आवश्यकता नहीं है। एक शक्ति का किसी अन्य शक्ति के साथ योग अनिवाय मानने पर अन्वयस्था दाप हो जायगा। इससे अतिरिक्त अन्वय वात्मक वाक्या में कम शक्ति की भीमासा होगी। धनाभावो न युक्त जस वाक्यो में अभाव में कम किसी शक्ति का स्थान होगा अभाव तो निष्पत्त्य है। इस तरह की भाषाभाषा के समाधान में भक्त हरि ने कहा है कि साधन-व्यवहार बुद्धि अन्वय विवचन है बौद्धिक है। बौद्धिक सत्ता का लिय किसी वस्तु की प्राप्ति सत्ता अन्वय परसत्ता प्रयोजक नहीं। सत् अन्वय अन्वय वस्तु का भक्त बुद्धि द्वारा वाह्य है। वाह्य जगत् में वस्तु की यथाय मत्ता हान दृष्ट भी जब तक बुद्धि द्वारा उमका निष्पत्त्य न हो जाता उसका लिय किसी शक्ति का व्यवहार न हो किया जाता। अभाव का भी बुद्धि द्वारा भावजन हाना है तभी वह शक्ति द्वारा अन्वयित हाना है। इसा तरह स्थानी पचति स्थाना पचति और स्थाना पचति इन वाक्या में एक ही स्थानी कता करण अन्वय अन्वय का ही मन्वयो काकि उमका भक्त करता कठिन है। इस का समाधान भी स्थाना में भी भाष्यमन्वय की विवशा में करण वास्तविक भाषार की

विवक्षा म अधिक्करण आदि मान कर हो जाता है। महाभाष्यकार ने बौद्धिक आधार लेकर पाणिनि के अपाठानविधायक कई सूत्रों का प्रत्याख्यान किया है। वस घातयति, वलि वधयति जैसे वाक्यों में वनमान का निर्देश भी नटा और वृषको द्वारा अतीत की घटना को बुद्धि अवस्थित रूप में प्रत्यक्ष सा स्थान के रूप में उपयुक्त माना गया है। इसलिये साधन व्यवहार का बौद्धिक धरातल मान लेने पर शक्ति का नास्त्व भी बौद्धिक रूप में सिद्ध हो जाता है। बाह्य वस्तु में जिस बौद्धिक-वस्तु का समारोप होना है—सबे लिये भू हरि ने 'बुद्धिप्रवृत्तिरूप' शब्द का व्यवहार किया है। वक्ता बुद्धिप्रवृत्तिरूप का—बुद्धि में प्रामाण्यमान विषय का बाह्य अथ म आरोप कर शक्ति के भेद का कल्पना करता है। आगेप का आधार दृश्य और कल्पित म अभेद का अर्थ वसाय है। हलाराज क अनुसार बाह्य अथ म भी शब्द प्रमाण है। बुद्धि प्रतिभास अपने आप म अवस्थित नहीं होता 'क्रियाभेद क आधार पर विवक्षाजय शक्ति भेद की कल्पना कर वस्तु को ही अन्तः शक्तिमयी मान लिया जाता है। इस सम्बन्ध म हलाराज ने बौद्ध और व्याकरण के मतभेद का उल्लेख किया है। बौद्ध दान के अनुसार विक्ल्प प्रतिबिम्ब भेद अर्थात् प्रथम स शब्द होता है इसलिये बाह्य प्रवृत्ति होती है किन्तु शब्द की प्रवृत्ति अपाह रूप म अर्थ व्याख्यानरूप म—बाह्य होती है अपाह क अतिरिक्त शब्द की बाह्य प्रवृत्ति मानने पर व्यभिचार दोष आ जायगा—शब्द का यथाय सकेत जानना दुष्पर होगा। अतः प्रामाण्य वक्ता के अनिश्चय म है। व्याकरण दशन के अनुसार बाह्य अथ म प्रामाण्य अर्थवसाय के बल पर होता है

सौमतानां तु विक्ल्पप्रतिबिम्बस्य भेदात्प्रवृत्तयस्तु बहिःप्रवृत्तिः । प्रामाण्य तु चक्रप्रतिप्रय एव शब्दानां न बाह्ये यन्निश्चयश्चकनादव्यव्याप्तिमात्रनिष्ठता तु बहिः । व्याकरणानां तु व्याख्येयवस्तुविषयता तयाप्यवसायात् तत्र च प्रामाण्य इति निश्चयमेव ४ ।

शक्ति म नास्त्व मानन पर भी उपाधिया नियत हैं फलतः परस्पर साक्य नहीं होन पाता है और साधन म भेद परिलक्षित होता है।

एक दशन के अनुसार सभी भाव निरीह है चेष्टा रहित है। फिर भी उभे वर्ता, कम, क्रिया आदि की कल्पना होती ही है। स्वानर्थ्य और पारतन्त्र्य लक्षण वक्तव्य आदि कारक हैं। क्रिया नमलक्षण वाली है। य सब क्रिया कारक भाव आदि मिथ्याग्रन्थाम वासना स सवधा निचेष्ट पदार्थ म भी बौद्धिक-कल्पना द्वारा माने जाते हैं। क्याकि शब्द व्यवहार विक्ल्प के आधारित होता है। हलाराज क अनुसार यह मत अद्वैतवाद के अनुसार है और महाभाष्यकार न अद्वैतवाद का अनुगमन किया है (?)

दशितमित्यद्वैतनयाबलम्बिनि माध्यकारप्रभतिभि क्ल  
पिपतिपतीत्यादिप्रयोगसिद्धयथमात्मातमित्यथ ४

४ हलाराज, वाक्यपदीय ३ सा. १. १. १३

५ वाक्यपदीय ३ सा. १. १. १३, तथा हलाराज की इस पर टिका

परन्तु "बूल विपनिपति" क प्रसंग म भाष्यकार ने सभी भावा को चेतन माना है, निश्चय नही माना है। हा, भद्वैतवाद की गद्य बहा अवश्य है।

द्रव्य म व्यतिरिक्त क्षतिरूपसाधन की सिद्धि का आधार अव्यव्यतिरिक्त भी है। वश, यथाय जस क्षण म विभक्त्यर्थे वा (साधन वा) व्यतिरेक स्पष्ट है। प्रकृति ता वृक्ष" एक ही है परन्तु प्रत्येक भिन्न भिन्न है। इसनिय प्रत्येक की सत्ता मानन पर साधन की सिद्धि हा ही जाती है।

महाभाष्यकार न भी ब्रह्मा है— किते साधन मानना उचित है—द्रव्य को या गुण को। गुण को साधन मानना उपयुक्त है। देखा जाता जाता है कि कोई किसी से पृच्छता है देवदत्त कहा है। वह उत्तर दता है— 'देवदत्त वश पर है। किस वक्ष पर? जो सामने है (य तिष्ठति)। एम वार्तानाप म वृक्ष पहने अधिकरण के रूप म और बाद म कर्ता (तिष्ठति त्रिया) क रूप म व्यवत्त हुआ है। द्रव्य क साधन मानने पर जो कम होगा। वह कम ही होगा जो करण होगा वह करण ही होगा, जो अधिकरण हांगा वह अधिकरण ही रहेगा। (महाभाष्य २। ३। १)। गुण का (गवित को) साधन मानने पर अनेक अर्थ त्रिया क कारण अनेक व्यपदेश मभव है। फलत क्षति नानात्व भी सिद्ध होना है

यदि द्रव्य साधन स्यात् तदा तस्यैकरूपत्वात्

निबन्धनाबाधितप्रत्यभिज्ञाविषयत्वात् नानात्वं—

क्रियाकारणनिबन्धने व्यापदेशभेदे न स्यात्। दृश्यते चासाधिति

नानागवितसदभावावगम सिद्ध।

—महाभाष्यप्रदीप २।३।१

## द्रव्य-अव्यतिरिक्त शक्ति-दर्शन के अनुसार साधन

कुछ लोग गवित का द्रव्य से अव्यतिरिक्त मानत हैं। हेताराज क अनुसार यह मत समगवादी वैशेषिका का ह। समगवादिना क अनुसार शक्ति और शक्तिमान सभी भाव है। और भावा का स्वरूप स्वकाय के उपपन्न करन म शक्ति है। अत भाव ही शक्ति है। भावो का साधनय अपात्मान शक्ति शब्दा द्वारा व्यक्त न होकर प्रययो द्वारा व्यक्त होना है। "घट पश्यति इस वाक्य म घट एगनक्रिया का विषय है वही कम है उमका द्रव्यत्व रूप अपनी क्षमिता से समपन्न होकर साधन होना है और कम कारक के रूप म व्यवहृत होता है। एभी तरह 'रूप पश्यति इस वाक्य म दगन क्रिया म रूपत्व साधन ह। एग ही वस्तु गवित और गविमान दाना वस ह इसक समाधान म समगवादी कहत हैं कि एक ही वस्तु उपकारक अवस्था म शक्ति और उपकाय अवस्था म गविमान हा सकता है। गवित अवस्था म किते अर्थ गवित से याग न हाने क कारण मनवस्था दाप भी न हांगा और अभाव क सातवें पदाथ क रूप म स्वीकार करन के कारण उसम भी गविन सम्भव हा सकती। गवित के उपकारक घम का नाम साधन है। त्रिया माध्य स्वभाववाली क्षमिता है। फलत सिद्ध स्वभाव वाल भाव (कारक) साध्यस्वभाववाली त्रिया का सिद्धि म महायक हाने क कारण उमका उपकारक मान

लिय जाते हैं। इसलिय सिद्धभाव (बारव) ही साधन है। अपन आश्रय म गतिन बंग व्यजिन हाती है इमका निष्पन्न मन हरि ने रम के दृष्टान्त स किया है। रग आति का रमनादि त्रिया साधन है और य सत्ता नियन ग्रहण वाल हैं जयानि अपने जाति बल के आधार पर ग्राह्य हैं। द्रव्य का ग्रहण णभी द्रव्य रूप मे होता है कभी गुण रूप म और कभी त्रिया रूप मे इम तरह उनका ग्रहण नियन तगी है। परन्तु रग का आधार ही उमक स्वरूप ग्रहण म हनु है और वह नियत है। रमय म रस का रस म उसके आश्रय का आश्रय हो जाया करता है। इम तरह भाव परस्पर शक्ति मान होत है। परस्पर समग ही गतिन है। गतिन नाम की कोई नियन अय वस्तु नहीं है। परस्पर ससग कभी सयोग म हाता है। जस, मन और चन्द्रिय के अय के साथ सनिकष किसी वस्तु की उपलब्धि (ज्ञान) म साधन हाता है। मुख की अनुभूति म आत्मा का अन्न करण से सयोग साधन है। इस तरह जा जिमका जिम रूप म अनु ग्रह करता है वह उसका उमी रूप म साधन है।<sup>६</sup> अस्तु मभी भावा की अतींद्रिय गतिनया है। भाव सट्कारी क रूप म स्वरूप स ही कायजनक है भावा की आत्मा ही गतिन है। विनेप सट्कारी क सपक स विनेप काय जनकता गतिन भाव म स्वाभा विव है। अत भाव स व्यतिरिक्त किसी अदृष्ट गतिन की कल्पना आवश्यक नहीं है।

सभी द्रव्य म सहज रूप म गतिन विराजमान है। ममय पर उसकी अभि व्यक्ति होनी है। कुडय म आवरण की शक्ति और गस्त्र म छेन्न की शक्ति सत्ता गतिन है पर तु त्रियानाल म अपन काय निष्पादन के समय म ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। द्रव्य म क्रिया काल क पूयकाल मे भी शक्ति है और त्रिया काल के उत्तर काल म भी है। इम विषय म आचार्यों म विरल्प है। कुछ लोग गतिन और भाव (द्रव्य) की साथ साथ मत्ता मानत हैं। कुछ लोग गतिन क पूव म भाव मानत हैं और कुछ लोग शक्ति के उत्तरकाल म भाव मानत है।

व्यतिरिक्त और अव्यतिरिक्त पक्षा म चाह सत्य जो हो याकरण न्शन व्यतिरिक्त पक्ष को प्रथय देता है। वह गत्प्रमाणवादी है। गत् स जो अभिव्यक्त होना है वही उसके लिए प्रमाण है। गत् पदार्थों का साधनरूप व्यतिरिक्त रूप म ही व्यक्त करता है। लाव म भी गतिन व्यतिरिक्त रूप म ही ममभी जाती है। अयति रिक्त मानन पर सतत त्रिया निष्पत्ति हाने की मभावना होन लगगी।

एव च यथाकरणनयानुसारिभि अस्मानि तत्साम्य्य व्यतिरिक्तमेवोच्यते।

लोकश्च गदत्रिया निमित्ताया शक्ते व्यतिरेकमेवानुगच्छति।

अयतिरेके हि सतत क्रियानिष्पत्तिप्रसंगः।<sup>७</sup>

## शक्ति एक अथवा अनेक

गतिन साधन है। वह शक्ति एक है अथवा अनक इम विषय म भी गानिन

६ वाक्यपदीय ३, साधन समुदेश ६—१४

७ हेलासाम, वाक्यपदीय, साधन समुदेश २८

प्रवाद है। कुछ लोग क अनुसार साधन शक्तिया छ (पट) हैं, नित्य हे, भगभेत् समशित है। जिस तरह भय म जानि की सता रहती है उसी तरह य भी उसम क्रिया की सिद्धि के लिए रहती है। यद्यपि द्रव्यभेद म भिन्न भिन्न अनय शक्तिया हा मकती हैं फिर भी उन सबका समावग छ शक्तिया म हा जाता है। इसलिए मूल शक्तिया छ ही हैं। वही छ शक्तिया, छ साधन प्रपया छ कारक नाम स विख्यात है।

कुछ भय आचार्य मानत हैं कि शक्ति मूल रूप म एक ही है। निमित्तभेत् स एक ही साधन शक्ति कई रूप म (छ रूप म) व्यक्त होता है और वही निमित्त भेद साधन भेद का हतु है। इस मत क अनुसार मूल रूप म वह शक्ति कत त्व शक्ति है। कत त्व शक्ति ही अवातर व्यापार की विवशा स करण सम्प्रत्यन आदि नाम प्राप्त करता है और छ प्रकार की बही जाती है।<sup>८</sup> क्रिया की निष्पत्ति म सभी कारक सहायक है। अत कत त्व किसी न किसी रूप म सभी कारका म है। पुत्र क जन्म म माता पिता नाना का कत त्व है। विवशावग पिता म कत त्व और माता म अधिकरणत्व कभी माता म कत त्व और पिता म अपादानत्व मान लिया जाता है। साध्य क रूप म क्रिया सभी कारको के लिए साधारण है। अत उस क्रिया क प्रति सभी कारका म कत त्व है। प्रधान क्रिया की निष्पत्ति म सभी कारण अपने अपने व्यापार मे स्वतन्त्र है, कर्ता के सानिध्य म भी दूसरे कारका का व्यापार बंद नहीं होता। अत कर्ता के सानिध्य म पारतन्त्र्य अस्थिता म भी उनम कारकत्व बना रहता है। जहा स्वत स्वातन्त्र्य है वही कत सना होनी है और जहा पारतन्त्र्यसहित स्वातन्त्र्य है वहा कत सना न हाकर करण आदि का विधान होता है। कर्ता की प्रधानता इसलिए मानी जाती है कि करण शक्ति की प्रवृत्ति निवृत्ति उसी के अधीन होती है दूसरा मे पहले उसीको शक्तिलाभ हाता है उसका कोई प्रतिनिधि नहीं होता। आस्ते शेत जस स्यता म जहा करण आदि का अभाव है केवल वही दिखाई देना है और बिना कता क करण शक्ति के दान नही होत। इसलिए कत त्व शक्ति ही इस मत के अनुसार प्रधान शक्ति है।

### क्रिया साधन रूप में

महाभाष्यकार ने क्रिया का भी साधन के रूप म व्यवहृत किया है। उनके अनुसार क्रिया भी कृत्रिम कर्म है। क्रिया किस तरह क्रिया स इत्सिनतम हा सकती है इसके लिए उन्होंने सदशन शक्ति क्रियाधा का उल्लेख किया है। बद्धिगाली मनुष्य पहले किसी वस्तु को बुद्धि से देखता है। देखन पर उस पान की इच्छा उसके मन मे जगती है। इच्छा (प्राथना) होने पर वह उसमे लिए अध्यवसाय करता है। अध्यवसाय से आरभ, आरभ स निवृत्ति और निवृत्तिसे फल की प्राप्ति हाती है। अतम सम्प्रत्यन क्रिया का साध्य प्राथना क्रिया है और प्राथना क्रिया का साधन सम्प्रत्यन क्रिया है। इसी तरह प्राथना क्रिया अध्यवसाय क्रिया का साधन है। इस तरह पहले जो क्रिया साध्य है वही आग वाली

क्रिया का साधन बन गई है। भत हरि के अनुसार सदशा क्रिया का साधन चतय है (सदगने तु चतय विगिष्ट साधन विदुः) ।<sup>६</sup> वैंयट के अनुसार 'कारके' १।४।२३ इस सूत्र में कारक पदस क्रिया विवक्षित है (क्रियासत्र भूत्रे कारकगध्वेनोच्यते । सा हि क्रादीनि विगिष्टयपदेश युक्तानिकरोति-महामाध्यप्रदीप १।४।२३) । पाणिनि सूत्र ४।१।११८ वं भाष्य में भी पतञ्जलि ने व पुन धातुक्तोऽथ । साधनम् ।<sup>७</sup> कहा है। वैंयट के अनुसार यहा धातु शब्द का अभिप्राय धात्वय क्रिया है। वही साधन है। हेलाराज के अनुसार 'क्रिया साधन है यह मत वार्तिककार का है (शक्तिव्यतिरेका क्रियोपकारायमाश्रिता साधनमिति सामायेनोच्यत इति वार्तिककारमतम्) ।<sup>८</sup>

### अपूर्व, कालशक्ति प्रकृति आदि साधन के रूप में

भत हरि ने साधन ज्ञान के प्रसंग में विभिन्न तत्रा के मता का भी उल्लेख किया है जमा नि उनकी पद्धति है। कुछ दार्शनिक (मीमांसक) 'अपूर्व को ही साधन मानते हैं। (मीमांसक यागजय अष्ट गवित विनोप को अपूर्व मानते हैं) । कुछ विचारक ब्रह्म की काल शक्ति को ही साधन मानते हैं। काल-द्रव्यवादी वैबल काल को साधन मानते हैं। सात्यदगान राजसी क्रिया अथवा प्रकृति को ही साधन मानता है। विद्वानजानी बुद्धि प्रकल्पितरूप को श्री नसगवादी ससगिरूप का साधन मानते हैं इनका विवचन उपर किया जा चुका है। व्याकरण दगान लाकप्रसिद्ध पदाथ भाष्य का साधन मानता है। हलाराज न इन सब मता का सग्रह निम्नलिखित पंक्तियां में कर किया है जा महत्त्वपूर्ण है

तदेव पदाथसामथ्य व व्याकरणमतेन साधनम् । शयवा बुद्धि प्रकल्पनात्प विज्ञानवादाभिप्रायेण ससगिरूप वा पदार्थांतरभूत ससगवादानुसारेण, अदृष्टलक्षणम् अपूर्वगदवाच्य वा मीमांसकदृष्ट्या ब्रह्ममन्त्रधिनी वा काल शक्ति अद्वतदगनेन क्रिया राजसी प्रकृतिरूपा वा सात्यदगानानुसारेण, नित्यमेव द्रव्यलक्षण वा कालरूप द्रव्यकालवादिना मतेन विज्ञेयम् ।<sup>९</sup>

अन गतिन गत् स यां साधन का व्याकरणज्ञान में स्थान है। उमीका कारक सामांय रूप है। कारक व सात भेद मान जाते हैं। छ कता कम आदि के रूप में और एक नेप में। कुल मिला कर सात हात हैं—

सामांय कारक तस्य सप्ताद्या भेदयोनिव  
षट् क्रमाद्यादिभेदेन नेपभेदस्तु सप्तमी ॥

[वाचस्पतीय ३ साधन ८६]

६ महामाध्य १।४।२३ तथा भाष्यदगय, सारन समुद्रेश १६ १७

७ हेलाराज वाचस्पतीय, साधन समुद्रेश १७

८ हलाराज, वाचस्पतीय, सारन समुद्रेश ४२



## कर्ता कारक

पाणिनि ने स्वतन्त्र को कर्ता माना है। जिसका स्व (आत्मा) तन्त्र (प्रधान) हो वह स्वतन्त्र है। यद्यपि क्रिया की निष्पत्ति में सभी कारका का हाथ रहता है क्रिया के द्वारा जिसका व्यापार प्रमुख रूप में व्यक्त होता है, उसे स्वतन्त्र कहा जाता है। जिसमें प्रवृत्ति या निवृत्ति स्वेच्छाधीन हो वह भी स्वतन्त्र है। कुछ-न कुछ स्वतन्त्र सभी कारका में होता है सभी कारक अपने अपने व्यापार में स्वतन्त्र होते हैं फिर भी कर्ता को ही स्वतन्त्र माना जाता है। भक्त हरि ने कर्ता में स्वातन्त्र्य के कई हेतु लिखाए हैं। कर्ता स्वतन्त्र इसलिए माना जाता है कि वह दूसरे कारका की अपेक्षा पूर्व शक्ति लाभ करता है। करण आदि में स्वातन्त्र्य कर्ता के द्वारा आता है। कर्ता अन्य कारको के उपकारक होने के कारण उन्हें अपने से नीचे करने में समर्थ होता है। कर्ता की अधीनता में दूसरे कारक क्रियाशील होते हैं। जब कर्ता विरत हो जाता है व भी निवृत्त हो जाते हैं। कर्ता अन्य कारका को निवृत्त करता है पर अन्य कारक उसे नहीं निवृत्त करते, वह स्वयं निवृत्त होता है। दूसरे कारको के प्रतिनिधि होते हैं आवश्यक्ता पढ़ने पर उनका ध्यान पर दूसरा का उपादान किया जा सकता है। कर्ता का प्रतिनिधि नहीं होता। कर्ता अधिकारी होता है अधिकारी वह होता है जो अर्थों को समर्थ हो और शास्त्र से अपेक्षा दस्त हो। जहां दूसरे कारक नहीं हैं वहां भी कर्ता रह सकता है। अस्ति क्रिया के साथ कोई अन्य कारक नहीं है, यही प्रबिंब है किन्तु यही कर्ता है। यद्यपि अस्ति क्रिया के साथ अधिकरण कारक अस्ति संभव है किन्तु उनकी स्थिति नान्तरिक रूप में है। तद व्यापार से उनका उन्मीलन नहीं होता है। कर्ता दूर में भी उपकारी होता है, दूसरे कारका में यह शक्ति नहीं है। बिना कर्ता के क्रिया नहीं होती, अन्य कारका के मिलित रूप से भी कर्ता की विशेषता सिद्ध होती है। इन सब कारणों से कर्ता में स्वातन्त्र्य माना जाता है।

उपयुक्त वक्तव्य शाब्दिक हैं। तन्त्र में जहां इनकी अभिव्यक्ति हो वहां वक्तव्य रहता है। अस्ति चेतन अध्वनय सत्र में शाब्दिक रूप में वक्तव्य समर्थ है। ह्याराज नमः प्रथम में किंगी अन्य व्याकरण के दो मूल उद्धृत किए हैं

अर्थोर्कर्ता तथा युक्तद्वय

(ह्याराज वाचस्पतीय ३ भाष्यन ममुद्गा १०२)

यत्ना मूल पाणिनि के स्वतन्त्र कर्ता १।४।१८ और तन्त्रयाजना हेतु च १।४।१५ के प्रथम अनुकरण है। किन्तु ह्याराज नमः का प्रथम चेतन और अध्वनय की स्थिति माना है।

वक्तव्य के शाब्दिक स्वल्प मानन पर ही एक कारण में विद्वत्तावधान कभी वक्तव्य कभी कर्ता और कभी करणत्व समर्थ है। प्रथम कर्ता में भी स्वातन्त्र्य है। अस्ति कर्ता क्रिया में प्रवृत्ति नहीं है उम अस्ति क्रिया में प्रवृत्ति क्रिया जाना है उमर सामर्थ्य का अर्थ ही किया जाता है। अस्ति स्थिति क्रिया द्वारा किंगी व्यापार में निवृत्त नहीं किया जाता। अस्ति क्रिया की शक्ति में समर्थन शक्ति के रूप में

प्रयाज्य मे भी कत त्व रहता है। वह आत्मसाध्य क्रिया म अत्रय कारका का प्रयोजक होता है। दूसरे द्वारा प्रयुक्त होने के कारण उसके स्वातन्त्र्य मे बाधा नही पडती। विषयभेद मे प्रयुक्त दशा म उमम पारतन्त्र्य और स्व व्यापार म स्वातन्त्र्य है। अपने व्यापार मे अनन्तरप्रयाज्य के रूप म वह अत्रय कर्ता की तरह ही स्वतंत्र माना जाता है।

कर्ता ही प्रयोजक के रूप म हेतु भी कहा जाता है। प्रेक्षण अध्येषण और प्रयोज्यक्रिया के अनुकूल चेष्टा करता हुआ कर्ता ही व्याकरणशास्त्र म हेतु नाम से व्यक्त किया जाता है। स्वातन्त्र्य को न छोडत हुए प्रयोजक व्यापार म प्रयाज्य रूप मे कभी पराधीनता का भी अनुभव करता है।

प्रयोजक दो तरह का होना है—मुख्य और अमुख्य (गुणभूत)। देवन्त कट कारयति वाक्य मे प्रयोजक मुख्य है। भिक्षा वासयति इस वाक्य म भिक्षा के वाम हेतु होने के कारण प्रयोजकत्त्व उपचरित माना जाता है।

वासकार ने कर्ता का सात्त्विक शास्त्र म तीन प्रकार से लिखाया है। निर्देग क द्वारा प्रकरण के द्वारा और सामध्य के द्वारा।

## कर्म

क्रिया के माध्यम से कर्ता का ईप्सिततम कर्म माना जाता है। जहा पर कर्म के लिए क्रिया होती है निष्पत्ति सस्कार अथवा प्रतिपत्ति हानी है वहा कर्म ईप्सित होना है। अन्यत्र क्रिया ही प्रतीक्षमान संशयन आदि क्रिया की अपेक्षा ईप्सित होनी है। ईप्सित क साथ अनीप्सित भी कर्म होता है। अनीप्सित गद से जो ईप्सित से अत्रय है उन सबका ग्रहण होता है। अकथित भी कर्म है। कुछ कर्म विनियम द्वारा निबद्ध हैं।

भन हरि ने ईप्सित कर्म के तीन भेद लिए हैं निवृत्य विक्रय और प्राप्य। तथा अत्रय प्रकार के कर्मों को चार प्रकार का लिखाया है—औशमीय रूप से प्राप्य अनाप्सित, सन्नातर से अनाख्यात और अत्रयपूर्वक। इस तरह कर्म सात प्रकार के होने हैं।

ईप्सित के तीन भेद म सदा के निवृत्य और विक्रय क उल्लेख कात्यायन न किए हैं। जिसकी प्रकृति चाहे वह सत हो अथवा अमन अभेद रूप से आश्रित नही हानी है वह निवृत्य कर्म माना जाना है।

अथवा जा अमन म उत्पन्न होना है अथवा मन हात हुए भी ज म द्वारा व्यक्त होना है वह निवृत्य कर्म है। बगैरक दान के अनुसार अमन स गन की उत्पत्ति हानी है। सतवायवाद क अनुसार सत स सत की उत्पत्ति होनी है। दोना रूप म, जम क द्वारा जिसकी अभिव्यक्ति होनी है वह निवृत्य है —

यस्योपादान कारण नास्ति तत निवृत्यम। यथा सयोग करोतीति। मदस्युपादान कारण न विवरुपत तत निवृत्यम।

यदि प्रकृति सत अथवा असत परिणामी रूप में विवक्षित रहनी है विकाय कम होता है। विटठल न निदरय का सम्बन्ध असत स अर विकाय का सम्बन्ध सत से जोड़ा है

तत्र निवत्य यदसदेव जायते । यथा घटं करोतीति । विकाय लब्धसत्ताकमेवा वस्यात्तरमापद्यते ।

—प्रक्रियाकौमुदी भाग १ प० ३८३

विकाय कम दो प्रकार का माना जाता है। प्रकृति के उच्छेद से सभूत और गुणा तर उत्पत्ति से सभूत। प्रकृति के उच्छेद से अभिप्राय अपनी प्रकृति के नाश से सर्वात्मना विनाश से है। जैसे काष्ठ भस्म करोति। हेलाराज के अनुसार यह वाक्य निवत्य का भी उदाहरण है यदि प्रकृति की अविवक्षा हो। प्रकृति की विवक्षा में यह विकाय का उदाहरण है

काष्ठानि भस्म करोति । पूयवत प्रकृति विकारयो क्रियासम्बन्धो योग्य पूर्वेषु तु लक्षणानि निवत्यमेतत् कम प्रकृतेरविवक्षायाम् । विवक्षायाम् तु विकायम् ।

—हेलाराज साधन समुद्देश २

काष्ठानि दहति इस वाक्य में विकाय सामर्थ्य गम्य है। जब प्रकृति अपने स्वरूप को न छोड़ती हुई किसी गुणा तर के सन्निधान से विकृत जान पड़ती है उससे उपलक्षण भी विकाय कम होता है। जैसे सुवर्ण कुण्डल करोति। यद्यपि सास्यमत के अनुसार इस वाक्य में भी विनाय अपूर्व है किंतु प्रत्यभिज्ञान के बल पर। लान में उह एक मानकर केवल गुणा तर का भेद माना जाता है। अतः गुणा तर के आधान से जहां दूसरा व्यपदेश हो वह भी विनाय कम है।

निवत्य और विकाय सम्बन्धी विरोध जहां प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से नहीं लक्षित हान है वह प्राप्य कम कहना है। जैसे आन्तिय पर्यति। इस वाक्य से आन्तिय में दग्ग क्रिया द्वारा कोई विनाय या विनाय प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से नहीं जान पड़ता है।

कुछ लोग कहें अनुसार प्राप्य कम नहीं है। क्योंकि क्रियावृत्त विरोध सबद उपलक्षण होता है। वही वह दृश्य होता है और वही मूर्धनता के कारण अदृश्य होता है। अतः विपरीत कथन का मायना है कि प्राप्यत्व अभी कम में है। सभी कम क्रिया में प्राप्यमाण होत है। अतः अत्रांतर को विनाय से कम तीन प्रकार के कहे जाते हैं

तत्र प्राप्तरय सबरय कमणाऽस्ति क्रियया प्राप्यमाणत्वात् । अत्रांतरविवक्षायां तु त्र विध्यमुच्यते ।

—कथन महाभाष्यप्रतीप २।०।१

प्राप्यमाण कम का क्रियानिष्ठि में निर्भरनिष्ठ साधनभाव माना जाते हैं अत्रांतरविवक्षयो व्यक्तिसादृशत्वमिति कमणः ।

विनाया प्राप्यमाणस्य क्रियासिद्धौ व्यवस्थित्या ॥—वाक्यदर्शय २ भाष्य, ५३

आभास का उपगम, योग्यदेश में प्रकाश की उपलब्धि प्राप्यकर्म के दान में साधन होती है। अथवा प्रदीप आदि के द्वारा व्यक्ति (अभिव्यक्ति) उसका अंग बनती है। अथवा सात्त्विक बोधगमता आदि प्राप्यकर्म के साधन होते हैं। य सब दशन क्रिया के हेतु हैं। आदित्य पश्यति इस वाक्य में आदित्य आभास प्राप्त होता है क्योंकि देखा जाता है अभिव्यक्ति भी प्राप्त करता है क्योंकि प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है दशन क्रिया की सहनशक्ति भी प्राप्त करता है क्योंकि सहता है।

निवृत्य में विकार्य और प्राप्य के धर्म और स्वधर्म होते हैं विकार्य में प्राप्यधर्म और स्वधर्म होता है प्राप्य में केवल स्वधर्म होता है (शृंगारप्रकाश पृ० १४७)।

शेष श्रीकृष्ण न ईप्सित अनीप्सित और औदासीन्य रूप से प्राप्य इन तीनों के निवृत्य विकार्य और प्राप्य रूप में तीन-तीन भेद किए हैं। इस तरह में नव भेद होना है। इनमें अकथित और अयपूर्वक ये दो भेद मिलाकर कुल ग्यारह भेद हो जाते हैं।

एवञ्चेत्सितादीनां त्रयाणां निवृत्त्यादिभेदात् त्रित्वे नवविधत्वम् । अकथिता यपूर्वकभेदाभ्यां सहैकादशत्व प्रतिभाति ।

—पदचन्द्रिका विवरण पृ० १६१ हस्तलेख ।

अभिनवगुप्त ने विकार्य आदि को त्रयशः कायपरिणाम, धर्मपरिणाम और वृत्तिपरिणाम कहा है।

पूर्व रूप हि तिरोदधत् कश्चिन् परिणाम काष्ठमस्मवत् स कायपरिणाम उच्यते । यस्तु अतिरोदधत् स धर्मपरिणाम य सिद्धाकारतया भाति सुवर्णस्यैव कुण्डलता । यस्तु अतिरोदधत् सात्वाकारत्वेन गच्छति बुध्यते इति यथा स वृत्तिपरिणाम ।

—ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी भाग १ पृ० १४५

कर्म के इस विवेचन में मन अगत और परिणाम की चक्षा आ जाने में उन दिना दशन के क्षेत्र में इसकी पर्याप्त चक्षा थी और भ्रम हरि की मायता के विरोध में कुछ लोग ने कई तक उपस्थित किए थे। एक आशेष नीचे लिखी कारिकाओं में है।

निवृत्य कारक नव त्रिया तस्य हि साधिका ।

विकार्यमपि भावेन विरोधानव कारकम् ॥

प्राप्यत्वात् पूर्विकावस्था न सा कर्मबुधमता ।

प्राधावस्था क्रियासाध्या साध्यत्वात् साधनं नहि ।

—पुरषोत्तमदेव द्वारा कारक चक्र में उद्धृत पृ० १०६

तात्पर्य यह है कि उपयुक्त कर्म भेद कारक कहलान के अधिकारी नहीं हैं। निवृत्य अस्तन स उत्पन्न है वह स्वयं क्रियाकृत। क्रिया के पूर्व उसकी सत्ता नहीं थी। विकार्य और प्राप्य क्रिया के साध्य हैं अतः वे साधन (कारक) नहीं हो सकते। पुरषोत्तम देव के अनुसार इन आशेष का उत्तर है कि निवृत्य आदि में स्वगन् भी व्यापार होता है। उस व्यापार के आधार पर कर्म को कारक माना जाता है (कारक चक्र पृ० १०६)।

विवाय म धातु से उपात्त फलाश्रयता के न होने का प्रश्न भी उठाया गया था। भट्टोजि दीक्षित ने इसका समाधान प्रवृत्ति और विवृत्ति म अभेद विव्या के आधार पर फल की आश्रयता मानकर किया है। अथवा 'वाप्यानि विवृवन् भस्म उत्पादयति' इस रूप म अथ कर आश्रयता सिद्ध होती है (शा० कोस्तुभ १।४।४६)।

ईप्सित वम का उदाहरण पय विवति। अनीप्सित का विप भगयति। प्रीण सीय अथवा तटस्थता से प्राप्य का उदाहरण, हेताराज के अनुसार ग्राम गच्छन् वगमून स्पगति' होना चाहिए (श्रीदासी येन ताटस्थेन यत प्राप्यम्, यथा ग्राम गतु वृक्ष मूलादि—हेताराज साधन समुद्देश ४६) किन्तु महाभाष्य वागिवा आनि क आधार पर यह उदाहरण अनीप्सित का होना चाहिए। वस्तुन इमवा उदाहरण है पयान गच्छति नदी तरति। यह आस्थित वम है इसका ईप्सित अनीप्सित से भेद इस रूप मे किया है कि आस्थित म त्रिया क दो रूप होत हैं। सनांतर से अनास्थात वम से अभिप्राय अव्ययित से है। अव्ययित मसृत्त शकरण म परिगणित है। अयपूर्वक का उदाहरण अथान नी यति है।

## करण

साधकतम का नाम करण है। जिस व्यापार के अनंतर त्रिया की तिप्पत्ति विवक्षित होती है वह करण माना जाता है। भत हरि के अनुसार करण अनिर्णय है उसका कोई नियत रूप नहीं है। अधिकरण भी विशेष अथ की दृष्टि से करण रूप मे विवक्षित हो सकता है। त्रिया की सिद्धि म प्रकृष्ट उपकारक होने के कारण पाणिनि ने इस साधकतम माना था। प्रकृष्ट उपकारकता अथ कारका की दृष्टि से है। कर्ता त्रिया की सिद्धि क लिए करण का आश्रय लेता है फिर भी स्वातंत्र्य के कारण वह प्रधान होता है। परायत्तवत्ति के कारण करण अप्रधान होता है। बिना कर्ता के करण व्यापार गीत नहीं होता। कर्ता निरपेक्ष है। करण सापेक्ष है। इसके अतिरिक्त धातु से कर्ता का व्यापार उक्त होता है, करण त्रिया धातु से अभिहित नहा होती। साधु अस्ति छिनत्ति' जैसे प्रयोग विवक्षा क आधार पर होते हैं। वक्ता विव्या म स्वतंत्र है

न हि शब्दा दाण्डवाण्डिका इव ववतारमस्वनश्रयति। किं तर्हि। सत्या शक्ती ववतु विवक्षामनुविधोयते।

चन्द्रकीर्ति प्रसन्नपदा माध्यमिकवत्ति प० २४

मण्डन मिथ न भी विषय स्थल पर अभिधान के आधार पर करण की प्रधानता स्वीकार की है

करण नाम सवत्र क्त व्यापारगोचर।

तिरोदधाति कर्तारं प्रधानं तनिव धनम ॥<sup>१</sup>

जो निमित्त व्यापारित नही होता और द्रव्य गुण त्रिया विषयक होता है

उसे हेतु कहा जाता है।

## सम्प्रदान

कमणा यमभिप्र ति स सम्प्रदानम १।४।३२

करणरूप कम क द्वारा जिससे अभिसम्बन्ध साहा जाता है वह सम्प्रदान है।

यह तीन प्रकार का माना जाना है

प्रेरक, अनुमतक अनिराक्तक। प्रेरक, जैसे ब्राह्मणाय गा ददाति। इस वाक्य का अर्थ यह है कि ब्राह्मण यजमान को गाय दान देने के लिए प्रेरित करता है। और तब यजमान उसे गाय देता है। अनुमतक जैसे उपाध्यायाय गा ददाति। उपाध्याय गाय क लिए उसे प्रेरित तो नहीं करता किन्तु गाय के मिलने पर उसे साधुवाद देता है देने वाले के व्यापार का अनुमोदन करता है। अनिराक्तक, जैसे आदित्याय पुष्य ददाति। आदित्य न तो पून के लिए प्रार्थना करता है और न अनुमोदन करता है।

भोज ने सम्प्रदान के तीन भेद को दूसरे रूप से भी दिखाया है —  
ददाति कर्माप्य, कममाश्राप्य और क्रियाप्य।

—शृंगार प्रकाश प० १५१

## अपादान

कायससग अथवा बौद्धिकससग पूर्वक अपाय की विवक्षा होने पर अवधिभूत ध्रुव अपादान कहा जाता है। यह तीन प्रकार का होता है—निर्दिष्ट विषय उपात्तविषय और अपेक्षितत्रिय। जहा धातु के द्वारा अपायलक्षण विषय निर्दिष्ट रहता है उसे निर्दिष्टविषय कहते हैं जैसे ग्रामात् आगच्छति। यहाँ क्रिया क द्वारा अपाय ग्राम गद निर्दिष्ट है। उपात्तविषय कहा माना जाता है जहाँ क्रिया अथ क्रिया के अर्थ क अर्थ रूप में स्वाय को व्यक्त करती है जैसे बलाहकात् विद्योतते यहा द्योतन क्रिया का अर्थ नि सरण है। हेलाराज ने गुणभाव और प्रधानभाव दोनों रूप में यहा क्रियाय को लिया है। उनके अनुसार बलाहकात् विद्योतन का दो रूप में कहा जा सकता है—बलाहकात् नि सत्य ज्योति विद्योतते। अथवा बलाहकात् विद्योतमान नि सरति। जहा क्रियापद की प्रतीति होती है किन्तु प्रयोग नहीं हुआ रहता वह अपेक्षितत्रिय है।

जैसे साङ्काकेभ्य पाटलिपुत्रका अभिरूपतरा।

अश्वान त्रसनात् पतित —इस वाक्य में कार्तिककार न ध्रौव्य अविविभित माना है। ध्रुव एकरूपता का नाम है। अपायविषयक ध्रौव्य आश्रित होना है निरपण (अनवच्छिन्न) नहीं। इसलिए अपाय में जो अनाविष्ट है वह अपाय में ध्रुव होता है। दीर्घत दृण घाडे से गिरने में देवदत्त कन क पतन में प्रसत अश्व ध्रुव है क्योंकि वह अपाय से अनाविष्ट है। किन्तु देवदत्त अध्रुव है। उसमें अपाय का आश्रय है। अथवा प्रसत अश्व का ध्रौव्य अविविभित है। क्योंकि कारक का पहलु क्रिया में अवयव होता है। वह श्रुतिप्रापित कहलाना है। वाद में विशेषण से वाक्यीय सम्बन्ध होता है। अतः अश्वान् पतित इस सम्बन्ध में अश्व का अध्रुव नहीं है। वाद में प्रसत क

साय सम्प्रथ होने पर भी अधोव्य मे अंतरग सत्ता का नियतन नहीं होता । विशपण के अपादान न होने पर भी सामयिकी विभक्ति हानी है । वह यिगप्य के अनुरोध पर होती है न कि अनियम से । अथवा त्रस्त ग् भी अपादान है । क्योंकि वह प्राग की अपेक्षा में तो अधोव्य है किन्तु पतन की अपेक्षा में उसमें अधोव्य है—(कथट, महाभाष्य प्रदीप १।४।२५) ।

भोजन अपादान के तीन भेदों को पाणिनि के सूत्रों में दिया गया है । उनके अनुसार ध्रुवमपायस्पादानम् १।४।२४ तिष्ठति विषय है । भीत्रार्यानां भय हेतु १।४।२५, पराज्वरसाठ १।४।२६ आदि उपात्तविषय है । पञ्चमाविभक्त २।३।४२ आदि अपात्ति विषय है । (शृंगार प्रकाश, पृ० १५३) ।

उपाध्यायात् अधीन इस वाक्य के विद्वलपण में महाभाष्यकार ने सन्ततत्व और ज्योतिवद ज्ञान का उल्लेख किया है । जिस फल वक्षसं च्युत होकर पुन वक्षसं पर नहीं होता इसी तरह शब्द भी उपाध्याय के मुख से निःसृत होकर पुन वक्षसं नहीं होता । वही शब्द पुन जान पड़ता है सन्ततत्व के कारण । शब्द का पुन पुन उत्पादन सन्ततत्व है । कथट के अनुसार उपाध्याय के द्वारा व्यवहृत की जाती हुई ध्वनियां भिन्न भिन्न होती हैं किन्तु सादृश्य के कारण वे ही जान पड़ती हैं । वे ध्वनियां सुनने वाले के श्रोत्रेण में पहुँच कर व्यक्तिस्फोट के रूप में अथवा जातिस्फोट के रूप में शब्द की अभिव्यक्ति करती हैं । अथवा ज्वालामयी ज्योति लगातार प्रवाहित होती हुई सादृश्य के कारण वही समझी जाती है यद्यपि वह भिन्न भिन्न है । उसका अनवरत प्रवाह सतत कहा जाता है । उसी तरह उपाध्याय के ज्ञान भिन्न भिन्न है । वे विभिन्न शब्दों के रूप में ढलकर सतत जान पड़ते हैं । महाभाष्यकार का अभिप्राय ज्ञान शब्दत्वापत्तिवाचकं स है—(महाभाष्य प्रदीप १।४।२६) ।

पाणिनि ने जनि वतु प्रकृति १।४।३० को भी अपादान माना था । पतजलि ने इसका प्रत्याख्यान किया है । गोमयात् वरिचको जायत जैसे वाक्या में अपत्रमण रूप में अपादाय रूप में अपादान है । कथट के अनुसार पतजलि का मत लोक आधार पर है । लोक की मायता में जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है वह उससे निकलती है । दग्धन के क्षेप में भिन्न विचार है । वाक्यिक दशम में परमाणु समवन काय कारण से अपत्रमण दग्धन में उत्पन्न होता है । इसलिए काय का अपत्रमण नहीं होता । सारयत्नान के अनुसार भी अपत्रमण नहीं है । ज में और नाश आविर्भाव और तिरोभाव के रूप में परिणामविशेष हैं । क्षणिक दशम द्रव्यांतर आरम्भ दग्धन अथवा परिणामदशम के आधार पर पतजलि ने उपयुक्त वाक्य में सन्ततत्व माना है । जो सतत है उसका जाययोग संभव नहीं है जो असतत है उसका वतत्व असंभव है । कोई तीसरा पक्ष भी नहीं है ऐसी दशा में अत्रुण जायत जिस प्रयोग के लिये उपपन्न है । इसका समाधान बौद्धिक स्वरूप मानकर किया जाता है । अथ वद्वि व्यवस्थापित है । उसका श्रिया में कारण उपपन्न हो जाना है—कथट महाभाष्यप्रदीप १।४।३०। श्रामात् नागच्छति जम निषेध वाक्या में अपादान सत्ता प्राप्ति पूर्वक प्रतिषेधत्नान के आधार पर की जाना है । इत्युक्तं भी यही मत है

तथाह इन्द्रुमिध, अय कट न करोति परशुना न धिनत्ति, ब्राह्मणाय या न ददाति ग्रामात् नागच्छति, राज्ञ नाय पुरुष, गृहे नास्तौत्यादौ द्वितीयादिभि न भवित्तयम । नञा निवेधात् । उच्यते, प्राप्तिपूर्वका हि प्रतिषेधा भवति ।<sup>१</sup>

—कारकचक्र, प० ११७ म उदधत् ।<sup>१</sup>

## अधिकरण

पाणिनि के अनुसार आधार अधिकरण ह । कारक त्रिया सापक्ष ह । अत क्रिया क आधार का नाम अधिकरण ह । त्रिया प्राय कर्त्ता म अथवा कर्म म अवस्थित रहती हैं कर्मलिए अधिकरण का भी कर्मस्थत्रियाविषयक अथवा कर्मस्थत्रियाविषयक ही माना जाय तो स्थाली आदि म अधिकरण की उपपत्ति ठीक स नहीं हो पाती ह । इसलिए कर्त्ता और कर्म से व्यवहृत क्रिया क आधार का भी अधिकरण माना जाता ह । अधिकरण तीन प्रकार का होता है औपश्लेषिक वषयिक और अभिव्यापक । आधार और आधेय या जहा उपश्लेष होता ह उसे औपश्लेषिक अधिकरण माना जाता है । जैसे कटे आस्त । वषयिक का उदाहरण गुरी वसति । जिस तरह चक्षु आदि का रूप आदि विषय माने जात है वसे ही शिष्य का गुरु म अनन्य भाव रहता ह । उस अनन्यभाव का विषय गुरु ह । बिना सयोग के भी एक दूसरे पर निर्भरता देनी जाती ह, जैसे राज पुरुष म । अत गुरु भाव का आश्रय हो सकता ह । अथवा यहा बौद्धिक उपश्लेष है । तिलेपु तल म अभिव्यापक आधार ह । तिल और तल का समाग तो सम्भव ह किंतु देगविभाग न होने स सश्लेष नहीं माना जा सकता । अत अभिव्यापक माना जाता ह । रामचन्द्र ने चार प्रकार के आधार माने हैं—

औपश्लेषिक सामीपिक विषयो व्याप्त इति ।

—त्रिया कौमुदी, प० ४५५

भत हरि दशन मे सपूर्ण विश्व मूतविवत और त्रियाविवत के रूप म अत्रस्थित है । मूतविवत का आधार आकाश है । त्रियाविवत का आधार काल है

कालात् त्रिया द्विभज्यते आकाशात् सवमूतय ।

एतावाश्चव भेदोऽयमभेदोपनिबधन ।

—वाक्यपदीय, गाथा, १/३

## सम्बन्ध

सम्बन्ध कारक स भिन्न किंतु कारक के शेष रूप म स्वाकृत है । जग शाश्व मीमांसा का त्रिया से मीमांसा सम्बन्ध होता है वमा सम्बन्ध कारक का नहा होता । शाश्व ११

१ साधार्त् हीयने में असादान क प्रथम में इडु क एक मल का उ- ११ भी क्रिया है—जगत् कर्मस्थत्रियाविवत कर्मस्थत्रियाविवत लकार ११। कौमुभ १। १। २४, प० ११७



शेष रूप म माना जाता है । कारका की अविश्रुता का नाम ण है । कम, करण आदि पठ कारको स अय सम्बन्ध शेष है ।

राज पुरुष जस सम्बन्ध विणय म, स्वस्वामिभाव म दत्तानि त्रिया का अय देना है । राजा पुरुष को दत्ता है । पूव अरस्या की दान त्रिया ण अरस्या म भी अयक्त रूप से काम करती है । ऐमे स्थला म त्रिया तारक सम्बन्ध कारणभूत होना है शेष सम्बन्ध फलभूत होना है । इगलिए ण म भी त्रियाकारक सम्बन्ध अयुयमाण त्रिया क आवार पर हो जाता है । कही कही त्रिया अयुयमाण भी रहती है जस नटस्य शृणोति । यहाँ श्रवण कवल नटा का विवक्षित है । त्रिणी निमित्त न होन से करण आदि कारक की महा प्रवृत्ति नही है । अत शेष कारक है । त्रिया क श्रुत और अश्रुत रूप क आधार पर सग्रहकार ने सबध दो प्रकार क माने थ—तिरोभूत त्रियापद और सनिहित त्रियापद । तिरोभूतत्रियापद का उदाहरण राज पुरुष है । सनिहित त्रियापद का उदाहरण मातु स्मरति है । मातु स्मरति पर कुछ विवाद था । इसका उल्लेख कमप्रवचनीय के प्रसंग म भी त्रिया जा चुका है । कयट ने साराश इस रूप म दिया है

मातु स्मरणयो अवस्थानादि त्रियानिमित्त सम्बन्ध इति केचिदाहुः । अये तु स्मरणस्य त्रियारूपत्वात् क्रियातरमन्तरेणैव द्वयेण सम्बन्धोपपत्तिमाहुः । यथा द्वयो वाप्यदो जतुकृत सश्लेष जतुनस्तु काष्ठेन स्वत एव न जत्वन्तर कृत ।

—महाभाष्य प्रदीप २।३।५२<sup>१</sup>

क्रिया के श्रवण अथवा अश्रवण के रूप म भी कम आदि की अविश्रुता म शेष सम्बन्ध उपपन्न होता है । सम्बन्ध सम्बन्धी के भेद से अनेक प्रकार का होता है स्वस्वामिसम्बन्ध जयजनकसम्बन्ध अवयवावयविसम्बन्ध स्थायादेशसम्बन्ध आगमागमिसम्बन्ध, त्रियाकारकसम्बन्ध आदि । सम्बन्ध की इयत्ता नही है । एक शान पठ्यार्थी कहा जाता है । परमाथ रूप म सम्बन्ध एक है

यद्यपि भिनोभयाश्रितक सम्बन्ध इति कज्जटीय (कयटीय) सम्बन्धलक्षणात् सयोगसमवायी एव सम्बन्धी तथापि विनेषणविनेष्यादीनामुपचरित स्वीकृत भाष्ये । अत सोपि स्वीकृत एवास्मानि । सबत्र सम्बन्धभेद एव सम्बन्धस्यभेदको द्रष्टव्य । परमाथस्तु सम्बन्ध एक एव ।

—पुरुषोत्तमदेव कारक चक्र प० ११३

सम्बन्ध द्विष्ट होना है । पाणिनि न शय म पठ्ठी का विधान किया है (णैप पठ्ठी २।३।५०) । इस पर विवाद था कि पठ्ठी विभक्ति राजा के पुरुष अथ म राजन ण स हाती है पुम्प सप्त म भी होनी चाहिए । सम्बन्ध दोना म है वह द्विष्ट है । किसी प्राचीन व्याकरण म गुणे पठ्ठी सूत्र था । इस नियम के अनुसार आपत्ति नही है (व्याकरणांतरे तु गुणे पठ्ठी—इति वचनात् नास्ति दोष—महाभाष्यप्रदीप २।३।५०) । पाणिनि सप्रदाय म इस आपत्ति का परिहार अथप्राधाय

मानर किया जाता है (न हि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम अथकृतेन नाम शब्देन भवितव्यम —महाभाष्य २।३।५०) । लोकात् परोपकारी रूप म राजा विवक्षित है । वह पराय है । पुंस्व उपकाय है । वह स्वनिष्ठ है । प्रधान है । पत्नी एक म हाती है और गुणभूत मे हाती है—

न हि शब्दस्य भावाभावाभ्यामर्थस्य भावाभावो श्रियते । किं तर्हि । अर्थस्य प्रतिपादधिपमा धिपधीकरणाकरणाभ्या शब्दस्योच्चारणानुच्चारणलक्षणो भावाभावावित्यय । तत्र परोपकारित्वेन राज्ञो विवक्षितत्वात् पत्नी भवति । पुरुषस्य रूपकायतया स्वनिष्ठत्वेन विवक्षितत्वात् प्रथमा ।

—महाभाष्यप्रदीप २।३।५०

विशेषण विशेष्यभाव क स्वेच्छा पर निभर हान से पुष्ट क राजा की विश्वा म पुरुषस्य राजा प्रयाग हाता है । इसलिए इन समय य म भन हरि की यह कारिका प्रसिद्ध है—

द्विष्टोऽप्यसौ परायत्वादगुणेषु व्यतिरिच्यते ।

तत्रानिधीयमान सन प्रधानेऽप्युपभुज्यते ॥

—वाक्यपदीय ३, साधन १५७

## सम्बोधन

अभिमुखीकरण को सम्बोधन कहा जाता है । सिद्ध पन्थ का जिया के प्रति विनियोग क लिए संबोधन का आशय लिया जाता है । व्याकरणागम परपरा म इस वाक्याय नही माना जाता । संबोधन के लिए प्रयुक्त विभक्ति आमंत्रित विभक्ति भी कही जाती है—

यो य स्वेन धर्मेण प्रसिद्धो धर्मात्तर सम्बन्ध प्रत्यभिमुखी त्रियते तत्रामंत्रित—  
विभक्ति । यथा देवदत्त क्रियात्तरसम्बन्ध प्रत्यभिमुखी करोति देवदत्त अथोत्त्व भुङ्क्ष्वेति ।

—महाभाष्यटीपिका, पृ० १०

पाणिनि ने प्रथमा द्वितीया तृतीया, चतुर्थी पंचमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति का व्यवहार किया है । इनके अर्थ विभक्तयथ कहलाते हैं । पाणिनि न मूत्र रूप म इन सत्रवे अर्थ बगला दिए हैं । जमे प्रातिपदिकायलिगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६ आत्ति । विभक्तयय प्रातिपदिकाय से भिन्न माना जाता है । पाणिनि न अर्थय विभक्ति २।१।६ सूत्र म विभक्ति शास्त्र का प्रयाग किया है इससे अनुमान किया जाता है कि उट्ट विभक्तयय द्रव्य से अतिरिक्त रूप म अभिप्रेत है । भोज ने स्वाय, द्रव्य और लिग का प्रातिपदिकाय और सन्धा कारक तथा नैप को विभक्तयय माना है (शुभारप्रकाश, पृ० १८३, १६०) । विभक्तयय पर विचार नव्य गयायिका न अधिक किया है । कौण्डभट्ट नागना आदि न मुख्य विचार याम और व्याकरण परम्परा के मिश्रित रूप म किया है ।

## लिङ्ग-विचार

लिङ्ग के विषय में दस्तोख्तवातिकार और वात्स्यायन के दत्तव्य महत्त्वपूर्ण हैं। गायत्री ही विश्व के किसी बाड़ मय में लिङ्ग पर इतने प्राचीन काल में इतने गूढ़म विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

स्त्रियाम् ४।१।३ सूत्र पर निम्नलिखित "लान्तवातिक" हैं—

स्तनकणवती स्त्री स्यात्सलोमण पुरुष स्मृत ।  
 उभयोरन्तर यच्च तदभावे नपुंसकम् ॥  
 लिङ्गात् स्त्रीपुंसयोर्जाति भ्रूकुत्से टाप प्रसज्यते ।  
 नत्व खरकुटी पश्य सटवावक्षी न सिध्यत ॥  
 नापुंसक भवेत्तस्मिन् तदभावे नपुंसकम् ॥  
 असत्तु मृगतण्णावत्त गधवनगर यथा ॥  
 आदित्यगतियस्स न घस्त्रात्तहितयच्च तत् ।  
 तपोस्तुतस्कृत दष्टवा यथाकारेण ज्योतिष ॥  
 अयोयसश्चय त्वेतत् प्रत्यक्षण विरुध्यते ।  
 तटे च सर्वालङ्गानि दृष्टवा कोऽध्यवसास्यति ॥  
 सस्त्यानप्रसवी लिङ्गमास्थेयो स्वकृतात्तत् ।  
 सस्त्यानेस्त्यायतेऽट स्त्री सूते सम्प्रसवे पुमान् ॥  
 तस्योक्तौ लोक्तौ नाम गुणो या लुपि युक्तवत् ।

आरम्भ में भाषा में लिङ्ग विकास लौकिक लिङ्ग के आधा पर हुआ होगा। यौन चिह्न स्त्री पुरुष के भेदक हैं। कुछ गारीक विगपताग्रो के कारण किसी व्यक्ति को स्त्री और किसी व्यक्ति का पुरुष कहते हैं। ये विगपताएँ नापा में लिङ्ग भेद के कारण मानी जा सकती हैं। स्तन के आदि स्त्रीत्व के प्रतीक हैं।<sup>१</sup> रोम आदि पुस्त्व के प्रतीक हैं। इन दोनों के सादृश्य का अभाव नपुंसकत्व का लक्षण माना जा सकता है। दस्तोख्तवातिक में उभयोरन्तर शब्द साभिप्राय है। इसके कारण अन्वय और

१ कुछ लोग, जिन्हें नागेश भी कहते हैं, पेश का अर्थ भगवत हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इस अर्थ में वह प्रयुक्त भी है। जैसे— अट्शूला चनपत्ता शिशूला द्विजानय । केशशूलारव कामिय

तिङ्गलपदा म लिंगयोग सभव नही है । क्याकि लिंग सत्वधम हे । अथव्य और घ्राट्या ताथ असत्वभूत हैं । 'तदभावे शब्द भी सायक है । इसके कारण मयूरी, वृषकुट आदि के समुदाय म नपुसक लिंग नही हो सकता । समुदाय समुदायी के संग्रह होना है मान कर एस स्थला मे नपुसक लिंग की प्राप्ति हो जाती ।

किन्तु स्त्री और पुरुष क विशेष शारीरिक चिह्नों के आधार पर लिंग व्यवस्था का भाषा म सबधा निर्वाह कठिन है । भ्रूकुम (स्त्री वेपधारी नट) म स्नान आदि दखे जात हैं । इस आधार पर उसम स्त्रीत्व मानकर स्त्रीत्व बोधक प्रत्यय टाप आदि होन चाहिये । यद्यपि भ्रूकुस क साथ स्त्रीत्व चिह्ना का नित्य सम्बन्ध नहीं है फिर भी दगाक को तो य सदा भामित होते ही हैं । अत इस प्रतिभास के आधार पर उसम स्त्रीत्व बोधक प्रत्यय होना चाहिये । इसी तरह खरकुटी (नापित गृह) म तोम सम्बन्ध के कारण पुस्त्व धावन प्रत्यय होने चाहिये ।

इसक अतिरिक्त लौकिक स्त्री-पुरुषगत विशेष चिह्ना के आधार पर लिंग व्यवस्था मानन पर अचेतन पदार्थों म लिंग व्यवहार का कोई रास्ता नहीं रह जाता है । खटवा म स्त्रीगत कौन भी विशेषता है कि इसमें स्त्रीत्व माना जाय । उपयुक्त लौकिक आधार पर ता अचेतन पदार्थों म स्त्रीत्व-पुस्त्व की अनभिध्यवित क कारण नपुसकत्व मानना ही उचित हागा । कुछ लोग मानत है कि असत वस्तु म भी कभी कभी प्रतीतिभावना होती है । मगतपणा म जल नहीं है, फिर भी जल का आभास होता है । इसी तरह खटवा आदि म लिंग नहीं है फिर भी लिंग का आभास होता है । तागना, पुष्य नक्षत्र जमे विभिन्न लिंगो शब्द एक ही वस्तु क लिये प्रयुक्त होत हैं । उनम वाह्य लिंग नहीं है किन्तु जिस तरह मगमरीचिका म जल की सत्ता न रहते हुए भी जल का अयाम हो जाता है उसी तरह अचेतन पदार्थों म लिंग चिह्न न रहते हुए भी चेतनगत लिंग का अध्यास हा जाता है । अथव्य ही मृगमरीचिका म सादृश्य के आधार पर जल का आराप हाता है । खटवा वग आदि म स्त्री पुरुष गत लिंग का कोई मादृश्य नहीं है । अत किम आधार पर आराप सभव है ? इसके उत्तर म कहा जाता है कि विषय माद य की उपस्था करक भी अनादि मिथ्याम्यास-वासनावग आतिया दखी जाती है । गन्धवनगर की सत्ता नहीं है फिर भी उमरी चबा होती है । वह दूर स दिखाई देता है पास पहुँचन पर नहीं दीखता । शब्द मे यथाय अथवा मिथ्या ज्ञान की अभिव्यवित की क्षमता समान है ।

अथवा खटवा वक्ष आदि अचेतन पदार्थों म भी लिंग है किन्तु उसका ज्ञान उमी तरह नहीं हाता जिस तरह सूय की गति का सत्ता होने पर भी सूय की गति का भास नहीं हाता । अथवा जिस तरह से वस्त्र म ढकी वस्तु का ज्ञान नहीं होना उसी

तरह सटवा आदि अचेतन पदार्थों में भी लिंग का प्रत्यक्ष नहीं होता। पतञ्जलि ने यहाँ प्रश्न उठाया है कि वस्त्र क' हटा देने पर वस्त्र का भावत वस्तु का भाव जाना है किन्तु सटवा आदि में इस तरह का कोई ज्ञान नहीं होता। बरद हाथ में बगूला और रगानी लेकर सटवा के गण्ड गण्ड भी कर डालें तो भी उमम कोई लिंग नहीं मिलता। इसका उत्तर में स्वयं पतञ्जलि का निवेदन है कि वस्तु की सत्ता होत हुए भी उसकी अनुपलब्धि सम्भव है। प्रायः छ कारणों से वस्तुविनाश की सत्ता रहते हुए भी उसकी उपलब्धि नहीं होती।

(१) अति सन्निकषण से जस अपनी आत्मा का अजन अपनी आत्मा से नहीं दीवता।

(२) अति विप्रक्षय से जस बहुत ऊँचाई पर उडत हुए पानी आदि नहीं दिखाई देत।

(३) मूल्य तर यवधान से, जस बीच में दिवाल आदि के कारण पार की वस्तु नहीं दीखती।

(४) तमसावन से जस अधकार के कारण गड्ढे आदि का भाव नहीं होता।

(५) अद्रिय दीवत्य से—आस की शक्ति क्षीण होन पर उपस्थित वस्तु भी नहीं दिखाई देती।

(६) अति प्रमाण से—विस्ती विपदातर में आसवन चित्त वाले व्यक्ति को सामने स्थित का भाव नहीं होता।<sup>३</sup>

अति समीप अति दूर आदि अनुपलब्धि के कारण माने जा सकते हैं, किन्तु अनुपलब्धि के कारण प्रमाणसिद्ध वस्तु के ही होते हैं। किन्तु सटवा आदि में लिंग प्रमाणसिद्ध सत्यभूत वस्तुधर्म नहीं है। इसके अतिरिक्त इस पक्ष में प्रत्यक्ष विरोध भी होता है। क्योंकि दस्य स्वभाव वस्तु का कभी भी प्रत्यक्ष से ग्रहण न होना फिर भी उसकी सत्ता स्वीकार करना अवश्य ही प्रत्यक्ष विरोध है।

कुछ लोग अनुमान के आधार पर सटवा वक्ष आदि में लिंग की सत्ता मानते हैं। जस प्रकार देवकर आनाग में मध से आच्छादित ज्योति की सत्ता का अनुमान किया जाता है उसी तरह सटवा वक्ष आदि में स्त्रीत्व पुस्तक बोधक प्रत्यक्ष दस्यतर उनमें स्त्रीत्व पुरुष की कल्पना कर ली जाती है। परन्तु इस पक्ष में अयोयाथय दोष है। लिंग ज्ञान के बाद न प्रयोग और न प्रयोग के बाद लिंग का अवगम यह अयोयाथय है। ज्योति और प्रकार में प्रत्यक्षत कायकारण न न के आधार पर काय से कारण का अनुमान सम्भव है सटवा आदि में तो कभी भी प्रत्यक्षत लिंग ज्ञान न होने से कायकारण भाव सम्भव नहीं है फलतः अनुमान भी सम्भव नहीं है। पुन तट तटी तटम जस एक ही वस्तु में सब लिंग विरोध के कारण नहीं हो सकते। यदि तट में स्त्री-पुस्त्य हो तो नपुंसकत्व नहीं हो सकता। वह उनके अभाव में ही होता है।

लौकिक विगध्यजब विह्वला के आघार पर 'दारा' 'बलत्र' जस गंगा को पुनितग और उपसवलिग म नही रखा जा सकता ।

अत वयाकरण लौकिक स्त्री-मुख्यगत निग योधव व्यजना के आघार पर शास्त्रीय लिग की व्यवस्था नही स्वोकार करते, यद्यपि कुछ दूर गन उन अपरिहाय मानत हैं । फलत लिग की टनवी अपनी गाम्त्रीय परिभाषा है और वह है

सस्त्यानप्रसवो लिगमास्थेयो स्वकृतातत ।

सस्त्याने स्त्यापतेद्दृष्ट स्त्री सूते सप प्रसवे पुमान् ॥

एव तरह स इस कारिका मे स्त्री और पुरुष गण की व्युत्पत्ति बनाई गई है । सस्त्यान के अर्थ म स्त्य धातु से डट प्रत्यय स स्त्री गण निष्पन्न होना है । प्रसव अर्थ म पूड धातु क मकार क स्थान म पसार कर पुमान् गण बनता है । प्रसूति अर्थ म पा धातु से दुममुन प्रत्यय द्वारा पुमान् गण की निष्पत्ति भी प्रसिद्ध है । कुछ आचार्य पूजा स पुमान की मिद्धि बतलात है । भट्टोजि दीक्षित इस मत के विरुद्ध हैं ('सूडो दुममुनिति माधव । यच्च उज्ज्वलदर्शन पातेदममुनित्युक्तम, यच्च पुशोऽमुड (७)१।८६) इति सूत्रे यासरक्षिताभ्यां पुनातेमङ्मुन ह्रस्वश्च इति सूत्र पठित तद्दु भयमपि भाष्यानुगुणम् - गदकौस्तुभ १।२।६४) परंतु भाष्यकार न और उनके अनुयायी मत हरि आदि न इस कारिका क आघार पर एक दार्शनिक बात बत कर दिया है । महाभाष्यकार के अनुसार लौकिक स्त्री का सम्बन्ध स्त्यापति से है और गाम्त्रीय स्त्री का सम्बन्ध भी उसी से है । लौकिक पुरुष का सम्बन्ध सत स है और शास्त्रीय पुरुष का भी उसी से सम्बन्ध है । परन्तु लोक म स्त्री अधिकरण है उसम गम का सस्त्यान होता है । और पुरुष बना है वह उत्पन्न करता है । जबकि गाम्त्रीय अर्थ म दोना भावसाधन हैं—सस्त्यान स्त्री है और प्रवृत्ति पुरुष है । गुणा का सस्त्यान स्त्री है । गुणो की प्रवृत्ति पुमान् है । गुण स अभिप्राय गण स्वयं स्वयं, रज और गण से है । कैट ने भक्त हरि क आघार पर भाष्यकार के मन्त्र की ध्याम्या साम्यगण के सहार की है । उनके अनुसार गुण स अभिप्राय सत्त्व, रजस और तमोगुण से है । सस्त्यान का अर्थ तिरोभाव है । प्रवृत्ति का अर्थ आविर्भाव है । गुणा का तिरोभाव स्त्री है । गुणा का आविर्भाव पुरुष है । गुणा की साम्यावस्था नपुमक है । गुणा की य अवस्थाए केवल शब्द गाचर हैं । साहय-दर्शन क अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । गुण सदा सन्निय रहत हैं । उनक मयाग से और उनम किसी एक की कमी या आधिक्य के आघार पर विविध विदव की सृष्टि होती है । उनन और अचेतन सब पदार्थो म गुणा की सत्ता है । अत गुणो क आघार पर सबत्र लिग व्यवहार सम्भव है । गुणा की प्रवृत्ति अथवा उपचय पुस्त का प्रतीक है । गुणा का सस्त्यान अथवा अपचय स्त्रीक का प्रतीक है । गुणा की स्थिति अथवा साम्यावस्था उपमवत्व का प्रतीक है । उपचय और अपचय सापेक्ष है । प्रकाश प्रसव, आविर्भाव सत्त्व के धर्म है । प्रवृत्ति त्रिया रजस के धर्म हैं । आवरण तिरोभाव स्थिति तमस के धर्म है । ये ही धर्म लिग हैं । रजोधर्म लक्षण प्रवृत्ति त्रिया का विशेष अथवा आधिक्य पुम्ब है पर इनमे प्रकाशियम रूप सत्त्व का धर्म और आवरण रूप तम का धर्म भी अनुगण रहता है । दूसरे गण्डा

म, सत्त्व और तमधर्मानुगत रजोगुण का आविभाज्य पदत्व है। तिरोभाव स्त्रीत्व है। प्रवृत्ति का सामान्य रूप नपुंसकत्व है। कोई कोई प्राचाय सत्त्व व प्राधिक्य म पुस्त्व, रजस के प्राधिनय म स्त्री व श्रीर तमोगुण के प्राधिनय म नपुंसकत्व मानत है।<sup>३</sup> रूप, रस आदि व समुदाय स युक्त पदार्थ म तीनों गुणा का योग तो ठीक है किन्तु केवल रूप केवल रस केवल गन्ध म गुणत्रय तिस तरह है ? इसके उत्तर म भक्तृ हरि की मायता है कि रूप भी अवस्था विशेष व त्रय रूप म परिणमित होता है। वह भी सत्त्वादि गुणात्मक है। धण धण तब नव अवस्था ग्रहण व कारण रूप म भी किसी अवस्था का आविर्भाव किसी का अपक्षय होता है। परन्तु मूक्षम हान व कारण उनका आकलन स्थूल दृष्टि स नहीं हो पाता है। फल प्राप्ति म रूपा के परिवर्तन देखे भी जात है। महाभाष्यकार ने स्वयं माना है कि कोई वस्तु अपने आप म धण भर स्थित नहीं है। या तो वह बढ़ती है या घटती है स्थिर नहीं रहती।<sup>४</sup> अतः गुणा के आविर्भाव और तिरोभाव के आधार पर लिंग व्यवस्था संभव है। हलाराज ने सप्रहकार का एक वक्तव्य उद्धृत किया है। उसमें भी उपयुक्त मन की पुष्टि हाती है —

तथाहि सप्रहकार पठति—सह्यात सहनन तमोनिवत्तिरशक्तिरूपरति प्रवृत्ति प्रतिबन्धस्तिरोभाव स्त्रीत्व प्रसवो विषयम्भावो बद्धिगत्तिय-  
स्तिलाभोऽभ्युद्वेक प्रवृत्तिराविर्भाव इति पुस्त्वम प्रविवक्षात साम्य स्थिति  
रीत्युक्त्यनिवत्तिरपरायत्वमङ्गाङ्गिभावनिवृत्ति क्वत्त्वमिति नपुंसकत्व  
मिति ।—हेलाराज वाक्यपदीय ३, लिंगसमुद्देश २।

साध्य दशन के अनुसार पुरुष गणातीत है इसलिए गुणदशन के आधार पर पुरुष शब्द में लिंग याग कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर यह है कि बुद्धि म प्रतिबिम्बित भोग्यभाव शबलित चतुर्थ का ही व्यवहार म बोध होता है। अतः प्रतिबिम्बित रूप में सत्त्व धर्म की स्वच्छता प्राप्ति से उसका योग सम्भव है। फलतः उसमें पुस्त्व आदि की अन्विष्टवृत्ति भी सम्भव है। पुरुष चिन्ति चतुर्थ—इन तीनों रूपों म तीनों लिंगों का अध्यारोप सम्भव है।<sup>५</sup>

सबसे सभी गणों म तीनों लिंगों की सत्ता हाते हुए भी किसी विषय पद से किसी विषय लिंग की अन्विष्टवृत्ति निष्ट सामाधारवत् है। इसे लोकव्यवहारानुवांशिकी विवक्षा कह सकते हैं जो लौकिक स्वच्छारूपा विवक्षा स भिन्न है। गुणा के आधार पर लिंग व्यवस्था मानने म स्थिति का प्रश्न कुछ जटिल हो जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि गुणा की स्थिति का सम्बन्ध नपुंसक लिंग स है। किन्तु गुणा की स्थिति कब सम्भव है ? गुण सत्ता परिणमित हाते रहते हैं। धणभर के लिये भी वे स्थिर नहीं रह सकते। पुनः गुणा की साम्यावस्था कब न मूल प्रवृत्ति म ही सम्भव है। विश्व की किसी भा वस्तु म गुणा का साम्य साध्यदान व अनुसार असम्भव

३ मंगलनाकर कलिलपाथ की टाका ६४१ २६२ (आनन्दा १८)

४ मन्नाथ ४।१।२ और १।१।६४

५ वाक्यपदीय ३, वृत्तिसमुद्देश ३२३—३२५

है। अतः कोई भी वस्तु नपुंसकलिंग के द्वारा कैसे अभिव्यक्त की जा सकती है ? इस समस्या का समाधान भन हरि ने कई ढंग से करन की चेष्टा की है। उनके अनुसार प्रवृत्ति की एकरूपता स्थिति है। प्रत्येक पदार्थ की दो अवस्थाएँ हैं। या तो वह बढ़ता है अथवा घटता है। उसके बढ़ने की क्रिया अथवा उपचय प्रवाह में एक प्रवृत्ति है जिसे हम बढ़याख्याप्रवृत्ति कह सकते हैं। इसी तरह उसके अपचय प्रवाह में भी एक प्रवृत्ति है जिसे अपायलक्षणा प्रवृत्ति कह सकते हैं। इन दोनों की प्रवृत्ति में अभेद है और इस अभेद का आधार पर प्रवृत्ति की एकरूपता की स्थिति ब्रह्म है। अथवा प्रवृत्ति का साम्य स्थिति है। उपचय और अपचय इन दोनों प्रवाहों में भेद मानकर भी उनमें प्रवृत्तिरूप साम्य है। बढ़न और घटने की क्रिया में प्रवृत्ति समान है और यही साम्य स्थिति है। अथवा आविर्भाव और तिरोभाव के बीच किसी प्रवृत्ति की कल्पना करनी पड़ती है जिसके कारण किसी वस्तु की किसी कला का तिरोभाव होत-होत किसी दूसरी कला का आविर्भाव होन लगता है और उम हतुभूत प्रवृत्ति की स्थिति मान सकते हैं। अथवा गुण का सामाय रूप स्थिति है। जिस कारण से ये गुण हैं ऐसी बुद्धि होती है वही गुण सामाय है। मत्त्व आदि गुण विचित्र विश्व में बदलत हुए अपनी जाति को नहीं छोड़ते हैं। गुणरूपता ही उनकी जाति है। सामाय में सभी विशेषताओं के आविर्भाव हान के कारण आविर्भाव और तिरोभाव भी उसके भीतर आ जाते हैं। इसलिये गुण सामाय ही स्थिति है। इस दृष्टि से स्त्रीत्वान्तरिणभेद का स्थिति नपुंसकलिंग हुआ। जिस तरह से उद तत सवनाम वस्तु भाव का स्पर्श कर सकता है उसी तरह नपुंसकलिंग भी विशेष की अविवक्षा में सर्वलिंग का परामश करना है और अत्यक्तलिंग के स्थान में व्यवहृत भी होता है। इस दृष्टि से स्थिति सस्त्यान और प्रभव इन दोनों अवस्थाओं में प्राप्त है और इस तरह सवनाम की तरह नपुंसकलिंग व्यापक महत्त्व पा लेता है (वाक्यपदीय ३ लिंग समुहोऽयं १७ १८)। कथन के अनुसार आविर्भाव और तिरोभाव के बीच की अवस्था स्थिति है। (आविर्भावतिरोभावांतरालावस्था स्थितिरुच्यते—प्रदीप महानाप्य ४।१।३)।

कुछ लोग प्रवृत्ति (गुणों के तिल्य परिणाम) को लिंग का सामाय लक्षण मानते हैं। वह प्रवृत्ति ही आविर्भाव तिरोभाव और स्थितिरूप में अलग जान पड़ती है। इन तीनों प्रवृत्तियों में सभी पन्था प्रवृत्ति वाले हैं। प्रवृत्तियुक्त पदार्थ ही शब्द के अभिधेय हैं। आकार युक्त पदार्थ ही शब्द द्वारा सकृत्त होते हैं। शुद्ध वस्तुत्व शब्द के अभिधान का विषय नहीं होना। शब्दविषय आदि अत्यन्त असत पन्था में लिंग योग उनकी बौद्धिक सत्ता के आधार पर हो जाता है। अपरिणामी पुष्प में भाक्त त्वधम के धारण से लिंग योग मभव है। स्त्रीत्व स्त्रीता जैसे सस्त्यान आदि में भी प्रवृत्तिलक्षणलिंगयोग है। साम्यरूप के आधार पर लिंग का उपयुक्त विधेय चित्य है। गुण शब्द से भाष्यकार का अभिप्राय साम्य दर्शन के गुणों से नहीं जान पड़ता। भाष्यकार ने सस्त्यान और प्रवृत्ति का विवेचन या किया है— किस का सस्त्यान स्त्री है और किसकी प्रवृत्ति पुमान है ? गुणा की। किन्की ? शब्द, स्पर्श, रूप, रस और



गंध की। सभी मूर्तिया ऐसी होती हैं, उनमें सस्त्यान और प्रसवगुण होते हैं और वे गन्ध स्पृश, रूप रस गंध वाली होती है। जहां अल्प गुण होते हैं उनमें गन्ध स्पृश, और रूप होते हैं। रस और गंध सबत्र नहीं होते। प्रवृत्ति भी नित्य है। कोई भी इस ससार में क्षण भर भी अपने आप में स्थिर नहीं रहता। या तो वह बढ़ता है जितना कि उसे बढ़ना चाहिये अथवा विनाश की ओर अग्रसर होता है। ये दोनों (सस्त्यान और प्रवृत्ति) सबत्र हैं। यदि सबत्र हैं तो (लिंग की) व्यवस्था किस सम्भव है? विवक्षा स। सस्त्यान की विवक्षा में स्त्री। प्रसव की विवक्षा में पुमान्। दोना की अविषक्षा में नपुसक — महाभाष्य ४।१।३

गुणां के सस्त्यान या गुणा की प्रवृत्ति में गुण गन्ध साख्यप्रसिद्ध गुण के अर्थ में महाभाष्यकार द्वारा प्रयुक्त नहीं जान पड़ता। साख्य दशन में प्रसिद्ध गुण के अर्थ में गुण गन्ध का व्यवहार महाभाष्य में कहीं नहीं है। दार्शनिक विचार रूप में जब कभी गुण शब्द का व्यवहार महाभाष्य में हुआ है सदा साख्य स्पृश रूप आदि अर्थों में ही हुआ है। गत्त्व रज या तमोगुण के अर्थ में नहीं। तस्य भावस्त्वतली ५।१।११६ सूत्र के भाष्य का कुछ अर्थ निम्नलिखित है—

किं पुनद्रव्य के गुणा। शब्दस्पृशरूपरसगंधा गुणा। ततोऽयं द्रव्यम्। गुण शब्दोऽयं बहु यथ। अस्त्येव समेत्यवयवेषु वदते। तदयथा द्विगुणा रज्जु त्रिगुणा रज्जुरिति। अस्ति द्रव्यपदायक। तद यथा गुणवानय वेण इत्युच्यते यस्मिन् गाव समानि च वदन्ते। अस्त्यप्रघाषे वदते। तद यथा यो यत्राप्रधानं नवति स आह गुणभूता यथमत्रति। अस्त्याचारे वदते। तदयथा गुणवानय आह्वण इत्युच्यते य सम्यगाचार करोति। अस्ति सस्कारे वदते। तद यथा सस्कृतमन गुणवदित्युच्यते।

गुण गन्ध के जितने अर्थ यहाँ पतञ्जलि ने दिए हैं उनमें सत्त्व रजस आदि अर्थों का उल्लेख नहीं है। गत्त्व रजस और तमस शब्दों का भी गुण के अर्थ में महाभाष्य में प्रयोग नहीं है। सत्त्व गन्ध का प्रयोग महाभाष्य में केवल दो बार है और वह द्रव्य और त्रियापत्तय के अर्थ में प्रयुक्त है। (कयत् का तत्र है कि गत्त्व रजस और तमस ये गुण हैं गन्ध आदि पाँच गुण उन्हीं के परिणाम होने में तत्रामत्र है सत्त्वरजस्तमोसि गुणारतत्परिणामरूपान्च तदात्मका एव शब्दादय पञ्चगुणा — (महाभाष्य प्रदीप ४।१।३)। किन्तु यहाँ तक लक्ष्य है। अत्र आधार पर तो किसी भी वस्तु का गुण कहा जा सकता है क्योंकि गन्ध का अनुसार प्रत्येक वस्तु गुणा का परिणाम है। इताराज ने गन्ध आदि का सम्बन्ध गत्त्व आदि गत्त्व रजस रूप में किया है। उनका अनुसार गूणम तम गन्ध व्यवहारवाच्य नया हा पाया अर्थात् उनका परिणामभूत गन्ध स्पृश आदि का प्रमाण लिंग की व्याख्या में किया गया है (गूणमतमा गुणा व्यवहार न साक्षादवतर स्तानि तत्र परिणाम रूपाणां रूपानोनामाविर्मायाद्यवस्थाप्य लिङ्गमाप्याय भाष्य—

६. ४.१.११. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

हेलाराज वाचस्पतीय ३, लिङ्गसमुद्देश २४) । परन्तु यह तक भी आपानरमणीय है । गुणों की जो आविर्भाव आदि अथवा है वह भी विवक्षाधीन है कल्पित है । व्यवहार योग्य नहीं है । पुन विचार के क्षेत्र में रूप आदि भी सत्त्व आदि की तरह मूल ही मान जायेंगे । वस्तुतः यदि शब्द आदि से पतञ्जलि का अभिप्राय सत्त्व आदि गुणा से होता है तो वे सत्त्व आदि शब्दों से ही उल्लेख करत हैं । उनकी गली अस्पष्ट और दूरस्थ कल्पनामयी नहीं है । अतः भाष्यकार के बाद स्पष्ट आदि गुण मान्य के गुण न होकर वशेषिकादि दान में गृहीत गुण हैं ।

सस्त्यान शब्द का अर्थ कथं आदि ने तिरोधान अथवा अपचय किया है । यह अर्थ भी चिन्त्य है । कोण या व्यवहार में सस्त्यान शब्द का यह अर्थ नहीं मिलता । पाणिनिघातुपाठ में सत्य धातु के दो अर्थ दिए हैं—शब्द और सघात (सत्य ण्द सघातयो—पाणिनि घातुपाठ १।६।१।) । यास्क न सत्य का अर्थ लजाना भी दिया है (स्त्यायतेरपत्रपकमण—नेहक्त १२६) । स्वयं महाभाष्यकार ने सत्य धातु का प्रयोग सघात अर्थ में किया है (स्त्यायतेऽस्यां गभ इति स्त्री—महानाप्य ४।१।३) ।

प्रवृत्ति शब्द का अर्थ भी विचारणीय है । पतञ्जलि ने प्रवृत्ति शब्द का व्यवहार अनवरत गतिगील अथवा त्रियागील के अर्थ में किया है और प्रवृत्ति को नित्य माना है (प्रवृत्ति खल्वपि नित्या । नहीह कश्चिदपि स्वस्मिनात्मनि गृह्णामप्यव तिष्ठते—महाभाष्य ४।१।३) । किन्तु कथं आदि ने प्रवृत्ति का अर्थ आविर्भाव माना है । भत हरि प्रवृत्तिको लिङ्ग का सामान्य लक्षण मानत हैं और आविर्भाव तिरोभाव तथा स्थिति के आधार पर प्रवृत्ति के तीन भेद मानत हैं । भाष्यकार प्रवृत्ति का सम्बन्ध केवल पुलिङ्ग में जोड़त हैं जबकि भत हरि उसका सम्बन्ध तीनों लिङ्गों से जोड़त हैं । यही भेद है । एक भेद और है । पतञ्जलि ने स्थिति की चर्चा नहीं की है जबकि भत हरि ने स्थिति पर विचार किया है ।

कथं ने भत हरि के आधार पर प्रवृत्ति के एक भेद तिरोधान का सम्बन्ध सस्त्यान से जोड़ लिया है और गुणा के तिरोधान अथवा अपचय से स्त्रीत्व की आविर्भाव अथवा उपचय से पुल्लिङ्ग की तथा स्थिति अथवा अंतरालावस्था से नपुंसक की अभिव्यक्ति माना है किन्तु कथं न यह स्पष्ट नहीं किया है कि गुणों के उपचय या अपचय मापने का स्थिर बिन्दु क्या है ? उपचय और अपचय निरूपण नहीं हो सकत । पुन तीनों गुणों का एक साथ आविर्भाव या तिरोभाव कस सम्भव है ? गुणा की साम्यावस्था भी यत्र प्रवृत्ति में असम्भव है ।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि पतञ्जलि और श्लाक वातिकार के पूर्व भी ण्द आदि गुणा का स्त्री से सम्बन्ध विचार के क्षेत्र में आ चुका था जमा कि यास्क के निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट है—स्त्रिय एव एता ण्द स्पष्टरूपरसगन्धहारिण्य—नेहक्त १।४।२० । इसमें यह भी स्पष्ट हो जाता है कि

७ प्रवृत्तिरिति सामान्य लक्षणं त य कथन ।

आविर्भाव तिरोभाव विधातश्चत्यथ स्थिति ॥—दा परदाय ३ व २समुद्देश २२।

शब्द आदि गुणो के सस्त्यान का अभिप्राय इन गुणा के अधिप्यान, एतन्न सप्रह म है न कि उनके तिरोधान अथवा अपचय स ।

अत सस्त्यान का अथ सघात और प्रवृत्ति का अथ गतिगोलना समभना उपयुक्त जान पडता है । इस दृष्टि स शब्द आदि गुणा क सघात स स्त्रीत्व की उनकी प्रसवधर्मिता स पुस्त्व की और दोनी की अधिवृत्ता म नपुमकत्व की व्यजना माननी चाहिए ।

प्राचीन काल म ही सारय के गुणज्ञान वाली लिंग व्याख्या सत्रको माय नही थी । अत अत हरि ने दूसरी व्याख्या भी प्रस्तुत की है । कुछ लोग न वगणित दगन के आधार पर सस्त्यान का अथ नाश और प्रसव का अथ उत्पत्ति माना था । भावा का अनौपाधिक स्वरूप ही उनका अनुसार स्थिति है । इस बाद क अनुसार पुन्य चिति आदि नित्य पदार्थो म उत्पत्ति विनाश गरीर आदि उपाधिसतय के सहारे कल्पित है

उत्पत्ति प्रसवाऽधेया नाग सस्त्यानमित्यपि ।

आत्मरूप तु भावाना स्थितिरित्यपदिन्यते ॥

—वाक्यपदीय ३ त्रिग समुदेग २७

स्वय वशेषिको ने लिंग को जातिरूप माना है । स्तनादि व्यजनविशेष स अभिपन्न स्त्रीत्व पुस्त्व और नपुमकत्व के रूप मे लिंगजाति की सत्ता है । गवत्र अभिनप्रत्यय जाति के सदभाव म प्रमाण है । स्त्रीत्व आदि गो व आदि क सदृश ही है । खटवा आदि अचेतन पदार्थो म भी लिंगजाति है इसके कारण खटवा आदि म स्त्रीत्व बाधक प्रत्यय करने की इच्छा होनी ह । अथ गत् पुल्लिङ्ग है । व्यक्ति ग द स्त्रीलिंग है । वस्तु गत् नपसर्कलिंग है । इन तीना विभिन्न लिंग वाले शब्दा म से प्रत्येक स सत्ता की किसी भी वस्तु का निर्देश किया जा सकता है । अथ अथ इय व्यक्ति इद वस्तु इस रूप म । अथ यदि प्रत्येक वस्तु म तीना लिंगा की सत्ता नही होनी तो के उपयुक्त तीना लिंगा वाले शब्दो से गहीत न होते । एक ही म उनके परस्पर विरोध को दूर करने के लिए जातिपत्र का आश्रय लेना पडता है । जाति सवगत होती ह । बहुत जातिया भी एक म समवाय सम्भव स रह सकती ह । इस्तिनी और वडवा दोना मे स्त्रीत्व बुद्धि होती ह । स्त्रीत्व और गो व साथ साथ रह सकते हैं । स्त्रीत्व और स्तनादि व्यजन म गोत्व की तरह सामान्यविशेष भाव है । व्याकरण शास्त्राथ को अथ मानते हैं । इसलिए द्रव्य गुण कम, सामान्य आदि म भी लिंगजाति का योग सम्भव है । इसी दृष्टि स भाव गत् स पुस्त्वोपाधिक सत्ता का बोध होता ह । सत्ता शब्द से स्त्रीत्वोपाधिक सत्ता का परिचान हाता है और सामान्य गत् स नपुमकोपाधिन सत्ता लक्षित होती है । तत् तनी तटम आदि म भी इसी तरह लिंगजाति की सत्ता ह । लिंग म भी दूसरा लिंग योग इस दृष्टि से सम्भव है । गत् जन कभी वस्तुरूप म अपन आपको यत्त करेग उसके लिंगापाधिसत्ति ही यत्त करेगे । इसीलिए स्त्री स स्त्रात्व स्त्रीता और स्त्रीभाव तीना लिंग सम्भव हैं । कायायन का भावस्य च भाव युक्तवान (वातिक ४।१।३ ७) भी इस मत का पोषण है । स्त्री गत् से अभिहित

स्त्रीत्वविशिष्ट द्वय म भाव प्रत्यय के द्वारा नपुंसकलिंग आदि की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। किन्तु कयट लिंगसामाय के पक्षपाती नहीं हैं (लिंगादिसामाय-सदभाव प्रमाणाभावात्—कयट १।१।३२)।

कुछ आचार्य मानते हैं कि लिंग स्वभावतः गण्यभिधेय है। वाह्य लिंग की सत्ता नहीं है। शब्द क द्वारा असत् लिंग की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए एन ही वस्तु को अथ व्यक्ति अथवा वस्तु रूप म विभिन्न लिंगास व्यक्त करते ह। इस पक्ष का भक्त हरि न शब्दोपजनितोऽयात्मा कहा है।

कुछ लोग लिंग को केवल गदसस्कार के रूप म मानते हैं। लिंग शब्द का धम न होकर गद का सस्कारक है। उदात्त अनुदात्त आदि स्वर शब्द के धम ह पर तु लिंग शब्द का सस्कारक मात्र है। क्योंकि गद के अवाच्यान के लिए उसका ग्रहण प्रक्रिया वाक्य म ना तरीयक रूप मे होता है। पाणिनि क पुवन कमधारयजातीयदशी येषु ६।१।४२ सूत्र पर वार्तिककार ने एक वार्तिक पुवन भाव के पक्ष म लिखा— कुक्कुटयादीनामण्डादिषु पुवद्वचनम। कुक्कुटी आदि का अण्ड आदि के साथ वक्ति म पुवनभाव हो जाना चाहिय जैसे कुक्कुटया अण्ड कुक्कुटाण्डम। मग्या पद मृगपदम। काक्या गाव काकगाव। पुा वार्तिककार ने इसका प्रत्याख्यान किया—न वाग्नीपुव-पद विवक्षितवान। कुक्कुटाण्डम जस पदाम पूव पद मे स्त्रीत्व विवक्षित नहीं है। अण्ड आदि के विशेषण के रूप म जो कुक्कुट आदि पद ह उनम जातिमात्र की विवक्षा है इसलिए स्त्रीत्व अविवक्षित है। पुवदभाव करने पर भी पूवपद से वाच्य जत्र स्त्रीत्व की विवक्षा नहीं है तो पुवदभाव करना भी निष्प्रयोजन है। मृग्या क्षीर मृगक्षीर जमे स्थला म भी पूवपद म स्त्रीत्व अविवक्षित है। सत वस्तु की भी अविवक्षा देखी जाती है और अमत वस्तु की भी विवक्षा की जानी है जैसे अनुत्तरा कया विध्यो वदित-कम म अमग सत की अविवक्षा और अमत की विवक्षा है। कुछ लोग प्रक्रिया वाक्य म

८ प्रक्रियाप्रमाण के लेकर ने इस मत का समर्थन किया है और पाणिनीयमतदपणकार की भा इम पक्ष में अभिमति दत्त की है—

यं वरोन इय त्रीणि लान सप्रयय म धम त्रीत्वम। म च गोदादित्त सामाय विराप। तथा च पाणिनीयमतपर्यण उक्तम्—

इयमयन्मिति येषु यपदशो दृश्यन् लोन।

त्रीषु नपु सकानि प्रोच्यन्त सानि लोन ॥

गोदादि त्रयाश्रयैरेन सामा यमुपलक्ष्यते।

यत्र वरनुत्सवात् प्रोत्पु लिक तथा ॥

भावाना शनतीना लोन प्रतियनविनय वान।

विचिन केनचिदेवाश्रयेश सामा यमुमिपति ॥

ततो षड्कवैचिंयाच नात्र रशोचमेव हि।

ययन न तु पु च्यादि सोऽथ त्वायभिरीयन् ॥

पुमान् नपसक तैव द्विलिलिंग तथैव च।

यथा गौरी गिलिंहमर्गं चम्पत्र लिक ॥

—नोपदव, पाणिनीयमतदपण, प्रक्रियाप्रमाद म उद्धृत पृ ३१८ १८ भाग १



लिङ्ग के सम्बन्ध में वैयाकरणों का उपचयापचयवाद पर आक्षेप करते हुए पक्ष धर मिश्र ने लिखा है—पुलिङ्ग आदि शब्द से उपचय अपचय आदि की प्रतीति नहीं होती। क्योंकि उपचय अपचय आदि का स्वरूप निर्धारित नहीं है। वक्ष शब्द से वक्ष गत किसी प्रकार के उपचय का ज्ञान नहीं होता। इसी तरह गगा शब्द से गगागत किसी तरह के अपचय का आभास नहीं होता। यदि ऐसा माना जायगा तो वक्ष या गगा की अवधि का ज्ञान आवश्यक होगा। इमका अतिरिक्त यदि पुस्त्र का सम्बन्ध उपचय से स्त्रीत्व का अपचय से और नपुंसकत्व का सम्बन्ध दोनों से माना जायगा तो नपुंसक शब्द की स्थिति पहली बन जायेगी। क्योंकि एक ही वस्तु में उपचय अपचय जैसे दो विरोधी धर्म कैसे भूलेंगे। साथ ही, पथिवी, सुमेरु, कुलजस निश्चित लिङ्ग वाले शब्द सत्ता एक सा अर्थ व्यक्त करते हैं, विशेष (उपचयादि सहित) नहीं। (प्रज्ञस्तपाद भाष्य-सतुटीका पृ० ८४, ८५)। वैयाकरण इस आक्षेप का समाधान उपचय अपचय को विवक्षाधीन मानकर देते हैं। उपचय अपचय दोनों से रहित दशा का सम्बन्ध नपुंसक से मानने पर पक्षधर मिश्र का नपुंसक शब्द का विषय में उपयुक्त आरोप निराधार हो जाता है (उपचयापचयरहिता यावस्था तदात्मिका स्थिति नपुंसकत्वम्—याम ४।१।३, पृष्ठ ८०६)। मत हरि के अनुसार ऐसी कोई अवस्था नहीं है जिससे लिङ्ग का याग न हो सक। जा गुणात्तात पदाथ हैं उनमें भी लिङ्ग व्यवहार होता है जस आत्मा (पुलिङ्ग) चित्ति (स्त्रीलिङ्ग) चैतन्यम् (नपुंसकलिङ्ग)। मत हरि ने सम्भवतः पञ्चमिष आचार्य के आधार पर चित्ति जस गत्तो में लिङ्गयाग के लिए प्रतिबिम्बवाद का आश्रय लिया है। चित्ति शक्ति बुद्धि में प्रतिबिम्बित होती है। बुद्धिमनान्त होने से चित्ति में बुद्धिगत (भाग्यगत) धर्म आभासित होते हैं। यही धर्म शब्दाचार है। सत्तात दशा में भोक्तृशक्ति और भोग्य शक्ति में भेद ज्ञान पडता है। चित्तिशक्ति स्वयं अपरिणामिनी है किन्तु सत्तात दशा में अचेतन में भी चैतन्य की छाया ला देती है

यश्चाप्रवृत्तिधर्माद्यश्चित्तरूपेण गृह्यते ।  
 अनुयातीव सोऽप्येषा प्रवृत्तीविष्णुश्रया ॥  
 तेनास्य चित्तिरूप च चित्तिकालश्च भिद्यते ।  
 तस्य स्वरूपभेदस्तु न कश्चिदपि विद्यते ॥  
 अचेतनेषु सत्तात चैतन्यमिव दृश्यते ।  
 प्रतिबिम्बकधर्मण यत्तच्छब्दनिबन्धनम् ॥

—वाचस्पतीय ३ वृत्तिममुद्देशे ३२० ३२१

गोत्व आदि सामान्य (जाति) भी प्रवृत्तिधर्म का चपट में आ जाता है। क्योंकि यह चैतन्य सत्तात भिन्न नहीं है

सामान्यमपि गोत्वादिकं पक्षेतरयतिग्वित्त्वात् प्रवृत्तिधर्म —

—कण्ठ महाभाष्य प्रतीप ४।१।३

तामस के अनुसार यहाँ व्यक्ति को ज्ञान से गत्यतिरिक्त मानना व्यक्ति अनुगत ब्रह्म की सत्ता वाले वाद के आधार पर है। तामस के अनुसार सामान्य भी प्रवृत्ति का

विराभी विषय विराय है । कय न अनुगार विरगा साव्यवहारानुवाचिनी मानो  
शास्त्रिय, प्रायश्ची गहा । हाराय न अनुगार विर ग अभिप्राय प्रायश्ची स है  
स्वच्छामयी लीकरी गरी—

लोकाव्यवहारानुवाचिनी विरगा आधीयने न तु प्रायोश्ची ।

—कय महाभाष्यप्रमाण ४।१।३

तथा च प्रायोश्ची विरगाय न लीकरी स्वच्छामयारण्येऽप्युक्त भवति ।

—नारायण वाचस्पतीय ३ निगमसुद्ध २१

दाता ही आभाव अत आता स्थान पर ठीक है । कय न प्राया आभायो  
का परम्परा क अनुगार निग-व्यवस्था क विषय म सात का हा प्रमाण माना है  
(लिंगव्यवस्थायां लोकाव्यवस्थायां कयट प्रदीप ८।१।३)। आ उनी दृष्टि  
म लिङ भी लिंग क विषय म सात का ही अनुगमा करत है । हाराय का अभिप्राय  
यह है कि लिंग व्यवस्था स्वच्छामयव्यवहार पर आश्रित नहा है । अपितु परम्परा स लिङ्या  
क व्यवहार क आधार पर उगता निगय रिया जाता है । कय की मान्यता है कि  
लिंग क स्वस्थ का जान जात स हा सभय है अयन उगता गा सभय नहा है  
(अनेन लिङ्गस्वरूपमपि लोकाव्यवस्थायां ज्ञायत इत्युक्त भवति—कयट प्रदीप ८।१।३) ।  
हाराय क अनुगार लान म भी निग-व्यवस्था लिङ्ग जना क व्यवहार पर ही अव  
लम्बित है । लोकाव्यवस्थात लिंगम्य जस वाच्यो म हाराय क अनुगार लान ग  
का अर्थ लिङ्ग है (इह लोकाव्यवस्थायां लिङ्ग विवक्षिता—हाराय वाचस्पतीय ३  
लिंगसुद्ध २१) । नागय का अनुगार भी लोकाव्यवस्था स लिङ्ग की आर है । उन  
अनुगार जिम ग का जिम लिंग क साथ साधुतय और धमबुद्धि स लिङ्ग न व्यवहार  
किया है उस शब्द का वही लिंग है

एवञ्च येषां शब्दानां यल्लिङ्गमुपादाय लिङ्गात् साधुत्वावगमनपूर्वक  
धमजनकस्य बुद्ध्या प्रयोग क्वचित् तेषां तदेव लिङ्गमिति नियम सिद्ध इति  
भाव ।

—नागय महाभाष्य प्रदीपोद्योत, ४।१।३

लिंग के विषय म वातिककार के कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं । उनमें एक है—लिंग  
मक्षिप्य लोकाव्यवस्थायां लिङ्गस्य । यद्यपि यह वातिक यतमान वातिक पाठ म नही  
मिलता फिर भी यह वाच्यवाच्य का वचन है । महाभाष्यकार ने स्वयं कहा है—  
पठिष्यति लिङ्गाच्च लिङ्गमिति लिङ्गाच्च लिङ्गस्य इति । पुन पठिष्यति—  
एकार्ये गदायत्वात् दष्टि लिङ्गायत्वं अवयवायत्वाच्चेति (महाभाष्य ४।१।३) ।  
इनमें एकार्ये गदायत्वात् दष्टि लिङ्गायत्वं और अवयवायत्वाच्च य दा वातिक  
४।१।६२ सूत्र पर पठित है । इन वातिका का और लिङ्गमक्षिप्य इस वातिक का वर्त  
एन ही है जा भाष्यकार क पठिष्यति और पुन पठिष्यति ग से स्पष्ट है । अत इस  
वातिक की सत्ता किसी सूत्र पर अवश्य रही होगी । अस्तु वातिककार के लिंग के  
विषय म जितने मौलिक विचार हैं उनमें लिङ्ग लिङ्ग्य वाला वचन य बहुत महत्वपूर्ण  
है । वातिककार ने यह अनुभव किया होगा कि किसी शास्त्रीय नियम स लिंग व्यवस्था

का निर्वाह कठिन है। शास्त्रीय नियम एन बार बनाए जा सकत हैं किन्तु भाषा के विकास में लिंग व्यत्यय बराबर देखे जात हैं। पुन व्याकरण लाक का अनुयायी है। अत लिंग-व्यवस्था में भी लोक ही प्रमाण है। शास्त्रीय उपदेश के बिना भी लोक व्यवहार में लिंग परिचय सुलभ है। लोक में लिंग-व्यवहार स्तन आदि चिह्ना पर निर्भर नहीं है। लिंग क स्वल्प पर भी लोक ही प्रमाण है। अत वातिककार के मत से लिंग अशिष्य है। भाष्यकार न भी अनेक बार कात्यायन के इस मत का दुहराया है और इसी आधार पर पाणिनि के सनपु सक्म २।४।१७ सूत्र का प्रत्याख्यान किया है (इदं तर्हि प्रयोजन स नपु सकमिति वक्ष्यामीति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। लिंगमशिष्य लोकाश्रयत्वा ल्लिगस्य महामाप्य २।१।१२)। भाष्यकार ने वातिककार के भी कइ वातिका का प्रत्याख्यान उपयुक्त वातिक का आधार पर किया है जैसे सर्वालिंगताच २।१।३६ वा० ५ का प्रत्याख्यान लिंग अशिष्य के सिद्धांत पर किया है। आचार्य पाणिनि भी अशिष्य सिद्धांत का ही समर्थक है। उन्होंने स्वयं पूर्वाचार्यों के सूत्र लुपि युक्तवद व्यक्तिवचन १।२।५१ विशेषणाना चाजात १।२।५२ आदि का तदशिष्य सनाप्रमाणत्वात् १।२।५३ का द्वारा प्रत्याख्यान किया है। उनका लिंगप्रकरण परम्परा पालनमान है (एव च लिंगप्रकरण जात्याख्यायामित्यादि सख्याप्रकरण च पूर्वाचार्यानुरोधेन कृतम् इति ध्वनित सूत्रकृता नागेश, महामाप्यप्रदीपोद्योत १।२।५३)। श्लाकवातिककार का तस्योक्तो लोकतो नाम (४।१।३) वक्तव्य भी लाक पत्र का ही समर्थक है। इसविषय जो लोग सस्त्यान आदि लक्षणा को अलौकिक कहते ह वे भ्रम में है—

यद्यपि अविचारितरमणीय लिंगमाश्रित्य चक्षर शब्दानुच्चारयति,  
श्रोतारश्च प्रतिपद्यत तथापि वस्तुतस्त्वनिर्णयो भाष्यकारेण कृत इति  
यदचरन्मध्यायि सस्त्यानादिलक्षणमलौकिक लिंगम् इति तदपकृत भवति।

—कथम्, महाभाष्यप्रदीप ४।१।३

हेलाराज ने वातिककार को भी गुणवादी माना है। उन्होंने अपने ग्रंथ वातिको-मेय में इसका विवरण दिया है पर यह ग्रंथ अब तक उपलब्ध न ही सका है। अत हेलाराज के कथन की ठीक समीक्षा सम्भव नहीं है परन्तु प्रवीणकप्रकाश ने इस पत्र में उनके तक खबर है। उनसे अनुमार लिंगमशिष्य वाला मत प्रत्याख्यात है और इसलिए गुणावस्था वाला मत ही वातिककार का हागा—

तदित्यमनेनकार्ये शब्दा यत्वादिना लिंगमशिष्यमिति च प्रत्याख्यानानेन शब्द  
शक्तिभेदोपवर्णनतात्पर्यरूपेण गुणावस्था सद्य सम्भवितो लिंगमिति सूचित  
भवति। वाक्यकारस्यापोदमेव दगनमिति वातिको मेवे कथितमस्माभि।

—वाक्यपनीय ३, लिंगसमुद्देश २६ टीका

किन्तु हेलाराज ने स्पष्ट नहीं किया है कि लिंगमशिष्य वाला मत कहां किस रूप में प्रत्याख्यात है। महाभाष्य में इसका प्रत्याख्यान नहीं मिलता।

लिंग के विषय में वातिककार का वातिक एकार्ये शब्दायत्वाददष्ट लिंगायत्वम् ४।१।६२ भी महत्त्वपूर्ण है। लाक में एन ही वस्तु के लिए भिन्न भिन्न पाठ प्रयुक्त होते हैं। यह शब्द भिन्नता लिंग भिन्नता का एक आधार मानी जा सकती है। एक वस्तु के लिये पुष्प तारका तथा नक्षत्र राक्ष का व्यवहार होता है।



पुप्य णद पुल्लिङ्ग तारुणा स्त्रीलिङ्ग और नक्षत्र नपुंसक णिङ्ग है। मठ, कुटी, गृह आदि भी एक ही वस्तु के नियम विभिन्न लिंगी शब्द हैं। क्यट् इम वाचिन को व्याख्या या करते हैं—प्रत्येक पदार्थ सर्वाङ्ग वाला है। उसका णव किसी णन्त स जान कराया जाता है किसी विशेष लिंग के साथ ही उसका भान होता है।

अवयवायत्वाच्च ४।१।६२ ७ वाचिन भी लिंगभेद का निर्देशक है। वचन णन्त के भेद स ही लिंगभेद नहीं होता अवयव क उपजन आदि ण भी लिंगभेद देखा जाता है। कटो और कुटीर णमी और णमीर गुणा और गुणार जम णन्त म स्वाधिक प्रत्यय क होने पर भी अवयव म भेद ण जाने क कारण लिंगभेद एन ही णन्त म देखा जाता है।

अथभेद से भी एक ही णन्त म लिंगभेद अवगत हाता है। जिस तरह स्वरभेद से एक ही शब्द विषयांतर म साधु माना जाता है वस ही लिंगभेद स भी एक ही शब्द विभिन्न अर्थ म प्रयुक्त हो सकता है। अक्ष णद दवनाक्ष और णवणाक्ष दाना का बोधक है किन्तु जब अन्तोत्पत्त होता है तब देवनाक्ष का बोधक होता है आदि उत्पत्त की अवस्था म शकटाक्ष का प्रत्यायक हाता है। अथ शब्द समप्रतिभाग अर्थ म नपुंसकलिंग है एकदेशमान के अर्थ म पुल्लिङ्ग है। सार शब्द णाय स युक्त अर्थ म नपुंसक है (नतरसारम) उत्कथ अर्थ म पुल्लिङ्ग है (चत्सार)।

कुछ लोग मानते हैं कि एकाव शब्द के भेद स लिंगभेद मे भी कोई न कोई विशेष बात रहती है। कुटी और कुटीर म केवल लिंगभेद ही नहीं है, कुछ अर्थभेद भी है। कुटीर छोटी कुटी को कहते हैं। अरण्य और अरण्यानी म भी यही भेद है। इसलिये अरण्यानी म स्त्रीत्व अरण्य के एक विशेष अर्थ एक विशेष गुण का बोधक हो जाता है। इस तरह सधत्र ही कुछ न कुछ गुणवर्णित्य के कारण एकावक णन्त म लिंगभेद की व्यवस्था करनी चाहिये। शब्द की नियतलिंगता भी किसी विशेष कारण स ही लोक म देखी जाती है। तक्षक (बद्ध) तक्षण छेन्न आदि अनक नियमों करता है। उनम से एक तक्षण नियम के आधार पर उसे तक्षक कहते हैं। कुम्भकार कुम्भ के अतिरिक्त णराव आदि भी बनाता है किन्तु कुम्भ नियम के कारण उस कुम्भकार कहते हैं। इसी तरह शब्द भी स्वभावतः अथवा अभिधानव्यभिचय के कारण किसी विशेष लिंग मे अभिहित किय जाते हैं। इस अभिधानव्यभिचय को भन हरि न उपादान कता है और उसक आधार पर भी लिंग क निम्नलिखित सान भन किय है

१—कुछ णन्त केवल पुल्लिङ्ग हैं जैसे वस आदि।

२—कुछ णन्त केवल स्त्रीलिङ्ग हैं जैसे णन्त आदि।

३—कुछ णन्त नपुंसकलिंग म ही नियत ह जस ण्वि आदि।

४—कुछ णन्त पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग वाचक हैं जस, णय णयम णम, णमम।

५—वनिपय णन्त स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिंग म नियत है जस, भागधयी, भाग धेयम्।

६—कुछ णद स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग म साधारण हैं जस यत्ता वम आदि।

७—प्रनेक शब्द तीना लिंगा म व्यवहृत होत हैं, जैसे, तट, तटी, तटम आदि ।  
उपादानविकल्पाच्च लिंगाना सप्त वर्णिना ।  
विकल्पसन्नियोगाम्या ये शब्देषु व्यवस्थिता ॥

—वाक्यपदीय ३, लिंगसमुद्देश ३

मत्र लिंग सब वस्तु म है । किसी शब्द स सकृत् वस्तु किसी विशेषलिंग का  
जक है और इस तरह नियत लिंग की व्यवस्था ससृत्त के व्याकरण न की है  
प्र सर्वेषा लिंगाना सवत्र भावात् केनचिच्चद्रेण प्रत्याग्यमान वस्तु कस्यार्चिल्लगस्य  
प्रकनिति दारादिषु नियतलंगता सिद्धा ।—कथट, महाभाष्यप्रदीप १।२।५३

काशिकाकार न लिंग की व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की है । उनके अनुसार  
एक तरह स सामान्यविशेष है । सामान्यविशेष शब्द का ठीक अर्थ आज ज्ञात नहीं  
। काशिकाकार न केवल इतना कहा है कि स्त्रीत्व आदि सामान्यविशेष हैं, गोत्र आदि  
की तरह बहुप्रकार व्यक्ति हैं

केय स्त्री नाम । सामान्यविशेषा स्त्रीत्वाद्यो गोत्वादय चद् बहुप्रकारा  
भवन्त्य । कश्चिदाप्रथमविशेषामावाद् उपदेशेऽप्यङ्ग्या एव भवति, यथा  
ब्राह्मणत्वादय ।

—काशिकावृत्ति ४।१।३

जिन द्रुद्धि क अनुसार सामान्यविशेष का अर्थ है जो सामान्य भी हो और  
विशेष भी हो । तु प्रजातीय पदार्थों म साधारण होने के कारण सामान्य है । परस्पर  
तथा विजातीय म भी भेद होने के कारण विशेष है । यदि इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट  
किया जाय तो गोत्व समझे समीप है । गोत्व सामान्य भी है । क्योंकि विभिन्न गो यति  
म अनुगतान्तरबुद्धि के आधार पर अभिन्नव्यवहार का हतु होता है । गोत्व विशेष भी है ।  
क्योंकि अश्वत्व आदि से विभेद की अभिव्यक्ति करता है । इसी तरह से स्त्रीत्व आदि  
भी सामान्यविशेष हैं । वे तुल्यजातीय सब म रहने ह और विजातीय स व्यावृत्त हैं ।  
हरन्त न सामान्यविशेष शब्द के दो अभिप्राय दिय हैं । एक तो यह अर्थ समझ है कि  
कुछ सामान्य है और कुछ विशेष । दूसरा यह सिद्धता के अतिरिक्त अर्थ जिनके  
अर्थों में सामान्य शब्द का प्रवृत्त किया जाता है उन मत्र के लिय सामान्यविशेष  
शब्द हत है

सामान्यविशेषा इति । कानिचित् सामान्यानीत्यय । यद्वया सत्तापतिरिक्तेषु  
सामान्यविशेष शब्दो हद् तिल्लो वात्तरजानय इत्यय ।

—पदमन्तरी ४।१।३ पृष्ठ १६

और इस तरह स वाक्यपदीय की निम्नलिखित कारिका स दस्ता स मत्र  
जो लिय है—

तिल्लो जानय एतता केवाचिन समप्रस्थिता ।

यद्विशद्दा विशद्धानि गोमहिष्यादिजातिभि ॥

—वाक्यपदीय ३, लिंगसमुद्देश ४

इम स मान्यविशेष क आधार क कश्चित् लिंग म नी कश्चित् प्राप्ता

कोई सामान्यविशेष किसी व्यञ्जक के आश्रय से अभिव्यक्त होता है। सब सय से अभिव्यक्त नहीं होत। क्योंकि पदार्थों की शक्ति नियतविषय वाली होती है। इसलिये जिस अर्थ (वस्तु) से स्त्रीत्व व्यक्त होता है, पुल्लिंग अथवा नपुंसकत्व व्यक्त नहीं होता, वह स्त्री है। इस तरह से जिससे पुरुष की अभिव्यक्ति हो वह पुरुष और नपुंसकत्व की अभिव्यक्ति हो व नपुंसक है। अतः पदार्थों में उनके व्यञ्जक यौन चिह्न के आधार पर लिंग व्यवस्था हो जायगी। अतः पदार्थों में लिंग-व्यवस्था उपदेश के आधार पर उपदेश-व्यय के रूप में मान ली जायगी। इसी तरह आशा, आकाश जैसे निराश्रय शब्दों में भी लिंग उपदेश-व्यय है। जैसे ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि उपदेश-व्यय हैं प्रत्यक्ष नहीं हैं उसी तरह स्त्रीत्व आदि भी विशय स्थाना में उपदेश-व्यय हैं।<sup>१</sup> कोई शब्द एक ही लिंग में शक्त है, कोई दो में और कोई तीन में। दो या तीन के व्यञ्जकत्व के आधार पर द्विलिंग या त्रिलिंग शब्दों की व्यवस्था सम्भव है।

भट्टोजि दीक्षित ने लौकिक लिंग और पारिभाषिक लिंग का जोड़कर लौकिक लिंगविशिष्ट शास्त्रीयलिंग की भी कल्पना की है—

कुमारब्राह्मणादिशास्त्रोक्तलौकिकपुंस्त्वविशिष्टशास्त्रीयेषु स्त्वे शक्ता लौकिक स्त्रीत्वविशिष्टे च शास्त्रीयस्त्रीत्वे। कथमप्यथा कुमारी कुमार इत्यादयः प्रयोगाः पवतिष्ठेरन् ।

—शब्दकोस्तुम् १।२।६४, पं० ४५

लिंग-शब्दनिष्ठ है अथवा अर्थनिष्ठ है? इस प्रश्न पर व्याकरणों में मतभेद रहा है। दाना तरह के विचार मिलते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि लिंग-शब्दनिष्ठ है, पुल्लिंग-शब्द जिस शक्ति से शब्दनिष्ठ लिंग के लिये है। स्वयंनपुंसकत्व ७।१।२३ में पाणिनि ने शब्द का ही नपुंसक कहा है। इसमें विरुद्ध कुछ आचार्य लिंग को अर्थनिष्ठ मानते हैं।

उपनिषत्काल स्थान-यज्ञपूर्वाया ७।१।६६ सूत्र में पाणिनि ने अथयम स्त्रीत्व का शब्द में आरोप माना है—स्त्रीलिंगनिर्देशस्तु तस्य समुदायस्याथयमण स्त्रीत्वेन वेदितव्यं, भास ७।३।४६, पं० ७६८। कथमिति अनुसार भी इस सूत्र में पाणिनि ने अथयम स्त्रीत्व का शब्द में आरोप किया है—अथयम स्त्रीत्व शब्दे समारोप्य निर्देशं कृतं। कथमिति ७।३।४६।

महाभाष्यकार ने कहा है—न हि नपुंसक शब्दोऽस्ति (महाभाष्य ७।१।२३)। कथमिति अथयमत्वात्लिंगस्य (७।१।२३) कह कर अर्थनिष्ठ-शब्द का समयन किया है। नागार्जुन भी, अथयमस्य स्त्रीत्वस्य शब्दे आरोप्य कह कर तथा शब्दनिष्ठमेव लिंग

१ इस बोधदेव ने पाणिनीयमन्त्रपद्य में यह श्लोक कहा है—

अथयमत्वात् शब्दोऽस्ति लौकिकपुंस्त्वविशिष्टे  
उपदेशेक-वदन्त्ये कृचिद् यथा ब्राह्मण्यं वाचि ।  
आश्रयस्थानात्पुंस्त्वत्वात् यथा वदन्त्ये कृचिद् यथा  
उपदेशेक-वदन्त्ये कृचिद् यथा वदन्त्ये कृचिद् यथा ॥

मिति नव्योक्त परास्तम (महामाध्य प्रदीपाद्योत ४।१।३) कहकर स्पष्टरूप से लिंग की अर्थनिष्ठता का समयन किया है।

नागेश का यहाँ नय से संकेत कौण्डभट्ट की ओर है। कौण्डभट्ट न शब्दनिष्ठ पक्ष का समयन किया था। उनके अनुसार भाष्यकार के मत में भी लिंग शब्दनिष्ठ है। क्योंकि वे पुल्लिंग शब्द जैसे व्यवहार करते हैं। पुल्लिंग का अर्थ पुल्लिंगवाचक करना भी उपयुक्त नहीं है। अथवा घट शब्द जन्म प्रयोग हो सकना है। उपचार अथवा आरोप के आधार पर पुल्लिंग शब्द जन्म प्रयोग का सिद्ध करने में निमित्त शक्ति की कल्पना करनी होगी। लिंग का अर्थनिष्ठ मानने में तट, तटी तटम आत्मा ब्रह्म जैसे प्रयोगों की उपपत्ति नहीं बढ पाती है। छागी का भी यन्म प्रयोग होने लगगा—

वस्तुतस्तु माध्यमते लिंगशब्दनिष्ठमेव। पुल्लिंग शब्द इति व्यवहारात् पुल्लिंग वाचकत्वात्तथेति चेत्तद्घट शब्दे इत्यपि स्यात् आरोपे निमित्तानुमरणमित्यादेरतिगौरवात्। अर्थनिष्ठत्वे तटस्तटी तटमित्यादेरात्मा ब्रह्मत्यादेरनुपपत्तेरुक्तत्वाच्च। छाग्या यागप्रसगाच्च।

—कौण्डभट्ट, अर्थनिष्ठप्रमाण, पृ० १२३

नागेश ने मजूपा में कौण्डभट्ट के उपयुक्त मत की समीक्षा विस्तार से की है और अर्थनिष्ठपक्ष का समयन किया है—

एतदवस्थानयस्य पदाथमात्र सत्त्वाद इदं केवला वयि। इयं प्रकृति इदं वस्तु अयं पदाथ इत्यादि व्यवहाराणां सर्वत्राप्रतिबद्धप्रसरत्वात्। अर्थनिष्ठ च तत्। तथा च माध्यम—एकार्थं शब्दायत्त्वात् दृष्टं लिंगा यत्त्वम अथवा वाच्यत्वाच्चेति। पुष्य तारका नश्यन्निति शब्दनानावदशनात् स्तनकेनाद्यतिरिक्तमेव लिंगम अर्थनिष्ठम्। कुटी कुटीर इत्यादौ रेफस्यावयवस्योपजने लिंगभेददङ्गनाच्चेत्यथ इति कथं। अत एवोपक्रमभाष्ये रूपरसस्पर्शशब्दानां स्थानप्रसवौ लिंगमित्युक्तम्। न हि रूपादयः शब्दगताः। पुल्लिंग शब्द इति तु वाच्यवाचकयोरभेदोपचाराद बोध्यम्। अत्र आद्यजतं वा तत्। आत्मनि सर्वस्याध्यस्तत्वेन परम्परया तत्रापि स्थानादिसत्त्वात् आत्मा अस्ति ध्यवहारोपपत्तिः। पशुना यजेतेत्यादौ पुस्त्वस्य विवक्षितत्वात् न स्त्रिया याग इति मीमांसकाः।

—नागेश, मजूपा पृ० ११४२ ४२

किन्तु भाषा की दृष्टि में हलाराज का शब्दाथय लिंग योग अर्थव उपयुक्त जान पड़ता है (अर्थनिष्ठता हि न वस्तुधर्मो लिंगमित्युक्ते, अर्थितु शब्दाथय लिंगयोग, हलाराज, वाच्यपदीय ३ अर्थिसमुद्देश ३।८८)।

जयान्तियं कं अनुमारं लिंग शक्तिं हान परं भी अर्थभेदं कं आधार परं निभर देना जाता है—

शब्दरूपाश्रया चेद्य द्विलिंगता श्रुतिव्यभेदेनापि व्यवतिष्ठते—वागिका २।४।३१। उनका अनुमार पदम और शब्द शक्ति निधि क अर्थ म पुल्लिंग हैं जन्म के अर्थ म उभयलिंग हैं। भूत शक्ति पिताच क अर्थ म उभयलिंग है किन्तु श्रिया शब्द क रूप

मन्सका लिंग अभिधय ने अनुमार होता है जस भूत वाण्टम भूता शाला भूत घट । स धवगा लवण क अथ म उभयलिंग है यौगिक गण के रूप म इसका लिंग अभिधय के आधार पर होता है जैसे स अब मत्स्य स धव जलम स धवी गफरी । मार गब्द उत्कप के अथ म पुंलिंग है च त्वनसार । कि तु अनुपयुक्त अथ म नपुंसक लिंग है नतनसारम ।

सारगब्द उत्कर्षे पुंल्लिंग यामादनपेते नपुंसकम नतत सारमिति—

पाणिनी २।४।२१<sup>१</sup>

अभयन्ती न ग न्निष्ठपथ का समयन क्रिया है—

शब्दजनितप्रत्ययवर्गा स्त्रीत्वादय इहानिप्रोता न वस्तुवर्गा । अयाप्ते । शब्दो हि श्रोत्रपथ गत लिंगसत्पावत्त स्वप्रत्यय जनपति । स प्रत्यय खटवादिपु रसादिपु अभावादिपु च शब्देषु सम्भवति ।—जने द्रमहावृत्ति ३।१।३ पृ० १५०

जानपीठ सस्करण

पाणिनि क स्त्रियाम ८।१। सूत्र पर विचार करत हुए यात्यायन ने लिंग के प्रत्ययाथपथ प्रकृत्ययविनेपणपथ और समानाधिकरणपथ पर भी विचार किया है । जिस तरह गुन्त आदि गुणगण गुण और गुणी दोना क लिए व्यवहृत हात ह जस गुन्त पठ पठस्य गुन्त उसी तरह स्त्रीगण भी गुण और गुण क आश्रय दोना क लिए प्रयुक्त होता है । जस स्त्री गण सं गुणमात्र स्त्रीत्व व्यक्त किया जाना है द्रव्य वाची प्रातिपदिक स स्त्रीत्व वाच्य अथ म टाप आदि प्रत्यय हात हैं । इम रूप म यह प्रत्ययाथ पथ है । जस स्त्रीगुन्त द्रव्य स्त्री गण स कहा जाता है स्त्रीत्वयुक्त द्रव्यवाची अगीकृतस्त्रात्प वाच प्रातिपदिक स टाप आदि प्रत्यय हात है—यह प्रकृत्यय विगणपथ है । स्त्रीत्व युक्त द्रव्य स्त्री गण स व्यक्त किया जाना है स्त्रीत्व उप लानिद्रव्यवाची प्रातिपदिक स टाप आदि हात ह—यह स्त्रीगमानाधिकरणपथ है । अत्रयपरिवर्त क आधार पर भी प्रत्ययाथ पथ की कल्पना की जाती ह । दपत् वाच आदि गण म प्रत्यय क प्रयत् जान क रिना भी स्त्री अथ वा अभिव्यक्ति होनी है इम आधार पर भी प्रकृत्ययपथ की सम्भारना की जाना है ।

स्या समानाधिकरण प र वा नश्य वर वार्तिरहार न विद्या—

स्त्रीसमानाधिकरणादिति चेद भूतादित्यतिप्रसाध ।—४।१।३ ५

पठ सप्तकम्पच्च प्रतिपथ ।—४।१।३ ४

मका अभिप्राय य ग नि निम तर म कुमार स्या म स्त्री गण म प्रया पित अथ म तुमार गण वा है और म दृष्टि म स्त्राययय वा विधान इम पर म हाता उमा तरह भूतमिय आश्रया आदि म आश्रया गण म उपलानि स्या व अथ म वनमान न्न आदि गण म टाप प्रत्यय हात लगगा । मी तर पञ्च पत् म न नर गण आश्रय म गण आदिगण म स्त्राययय क प्रमण म ग पत्स्यगाम्भ्य ( ४।१। ० )

१ य म्प न मका समया क है—यत्त य न्यना न क्के मग्गए पुं ग्गएवाि ल्प मन् । नम्—सगरसन्नादि पृ ६१

स प्रतिपेक्ष कहना पड़गा। प्रकृत्यथविशेषणपक्ष म य दोष नहीं हो सकते। क्योंकि भूतमित्य ब्राह्मणी म स्त्रीत्व विवक्षित नहीं है अपितु पौन्य विवक्षित है। स्त्रीत्व के विवक्षित हान पर प्रत्यय हात ही है जस— भूता ब्राह्मणी'। यहा सत्यवादिनी अथ है अथवा चलवमी (अनीता) अथ है पौन्य नहीं। पच पट् आदि स भी भेद वाचन गणनात्मक मर्या विवक्षित है स्त्रीत्व नहीं। इसलिए स्त्रीप्रत्यय की अप्राप्ति स प्रतिपेक्ष प्रयास्यान है। इम रूप म प्रकृत्यथविशेषण पक्ष निर्दोष है। इसको सूचित करन क लिए वातिककार ने कहा

सिद्धतु स्त्रिया प्रातिपदिकविशेषणत्वात् स्वार्थे टावाढय (४।१।३५)

प्रत्ययाथविशेषणपक्ष की भी भीमामा वातिककार ने की है—

स्त्रियामिति स्यथामिधाने चेष्टावाढयो द्विवचनबहुवचनानेकप्रत्ययानुपपत्ति (४।१।३१)

स्यथस्य च प्रातिपदिकयत्वात् स्त्रियामिति लिंगानुपपत्ति

(४।१।३२)

वातिककार का अभिप्राय यह है कि प्रत्याथविशेषणपक्ष म प्रकृत्यथामनन स्यात् का प्रत्यय म ही अभिधान हो जायगा। स्त्रीत्व प्रधान हो जायगा। स्त्रीत्व के एक हान मे कुमारी णत् मे एक वचन हो हागा परन्तु द्विवचन और बहुवचन न हो सकेंगे। यद्यपि णत् रूप आदि गुणा क अस्मयाविशेष लिंग है। अथस्या अथस्यात् स अभिन है। षत् म णत् रूप आदि अनक का गतिवर्ण है फिर भी णत् आदि क बहुत्व हान पर भा सतिवर्ण क अन्त की विव ग हान पर घट एक वचन म प्रयुक्त होना है। इधी तरह म अथस्याविशेष लिंग भी सम्भान आदि के रूप म एक है। सम्भान की विवक्षा म एक वचन ही हागा द्विवचन और बहुवचन नहीं। स्त्रीत्व के एक हाने म अनेक प्रत्यय भी प्राप्ति न हो सकेंगे। गार्ग्यायणी वारीपगव्या आदि म लो लो स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय हैं। गार्ग्यायणी म ष्फ और डीप दा स्त्री प्रत्यय हैं। अथ ष्फ म स्त्रीत्व क उत्पन्न हो जान पर टाप अनुपयुक्त हो जायगा। तभी तरह सम्भानवाची डट प्रत्यानन्त स्त्री णत् स डीप् नहा हागा क्योंकि स्त्रीत्व स्त्री म ही उत्पन्न हो जाता है।

वातिककार ने इन आक्षेपा का स्वयं समाधान भी किया है—

गुणवचनस्य वाधमतो लिंगवचनभावात् (४।१।२६)

भावस्य च भायपुञ्जतवात् (४।१।३७)

तात्पर्य यह है कि गुणवचन णत् स आश्रय के आधार पर लिंग और वचन जान है। कुमारी णत् म द्रव्य का ही अभिधान हाता है इसीलिए द्रव्यगत मर्या के आधार पर द्विवचन और बहुवचन हो जायगा। यद्यपि प्रकृत्यात्ता म स्त्रीत्वका प्रत्ययाथ मानत है कि णत् भी णत् अभिन क स्वभाव म गुणप्रधानभाव मे विषयय भा दया जाना है। इसलिए स्त्रीत्व अधिधान हो जाता है और द्रव्य प्रधान। मन्त्र प्रत्ययाथ प्रधान नहीं हाता। णत्वात्ति क आधार पर अधिधान भी प्रधान होना रहता है। अत आश्रय की प्रधानता मानकर वचन-व्यञ्जना सम्भव है। अथवा गुण और गुणी म अन्त की विव ग म कुमारी णत् म द्रव्य का ही अभिधान हाता है। अथवा सम्भान आदि धम द्रव्य म अन्तनिरिक्त रूप में ही प्रतिमानित होत हैं। स्वभावत प्रत्या

क द्वारा द्रव्य से व्यतिरिक्त स्त्रीत्व का साथ नहीं होता। एवमत्र सामानाधिकरण्यात्  
प्राक् तीन प्रकार यहाँ प्रयोग है—

१ स्त्रीत्व का सम्प्रदाय द्रव्य का प्राधान्य।

२ सम्प्रदाय।

३ द्रव्य से व्यतिरिक्त स्त्रीत्व का प्राधान्य।

सामानाधिकरण्यात् प्राक् स्त्रीत्वया एव स्त्रीत्व की सम्प्रदाय माननी  
जायगी। पाणिनि ने एक ही द्रव्य ही दिया है। अत्र न भी एक ही सम्प्रदाय  
हानी है। जस धन अथवा न धनक दापन एक एव ही सम्प्रदाय। अत्र ही एव  
दान दृष्टान्त के साथ साम्य सात के लिए द्रव्य या न प्रत्यय का धारक मानना  
पड़ेगा। वाचस्पत्युरात्। दूसरे द्रव्य से समाधान किया है जो न ही और सामानिक महत्व  
रखता है। अत्र अनुसार स्त्रीत्व का स्त्रीत्व के साथ साथ स्वाभाविक है। (भावस्य  
च भावयुक्तत्वात्। ४।१।३७) भाव का भाव न वस्तु का वस्तु न त्रिया का त्रिया से  
साथ स्वाभाविक है। स्त्री न भी द्रव्य रूप है। अत्र अत्र स्त्री य के साथ उभय साय  
सम्बन्ध है।

कुछ लोग मानते हैं कि प्रातिपत्ति न स्वरूप का सम्प्रदाय होता है और  
प्रत्यय से सम्प्रदाय का। जस उक्त प्रातिपत्ति विभक्ति प्रातिपत्ति का प्राधान्य है और प्राति  
पत्ति वस्तुभूत का। और द्रव्य तरह सम्प्रदायभक्त से स्त्रीत्व का स्त्रीत्व से साथ साथ  
जाता है। वाचस्पत्युरात् न स्त्रीत्व का प्रत्यय और प्रत्ययविभक्ति दोनों रूप से  
स्वीकार किया है। स्त्रीत्व च प्रत्यय प्रत्ययविभक्ति चेत्युभयप्रापि प्रयुज्यते।

—वाचस्पत्युरात् ४।१।३७

भाष्यकार ने लिंग को महत्व (द्रव्य) का गुण माना है स्त्रीपु नपु सकानि सत्त्व  
गुणा—महामाष्य १।१।३७ १।२।६४। यह एक महत्वपूर्ण वचन है। कयट  
नामक प्रादि इस वचन पर मौन है। सम्भवतः उनका माष्य आधारित गुण लिंग  
दशन की पुष्टि इस उक्ति से नहीं होती। भाष्यकार के अनुसार गुणवचन प्राक् अपने  
आधार के अनुसार लिंग और वचन ग्रहण करते हैं। अतः पुं वचन पुं वचन प्राक्  
शुक्ल कर्मल प्रादि प्रयोग उपन हीन है। इसी तरह स्त्रीत्व प्रादि भी अपने आधारित  
द्रव्य के लिंग को ग्रहण कर सकते हैं। एव आधार पर लिंग में भी लिंगयोग सम्भव  
है। स्त्रीत्व तीनों लिंगों द्वारा यत्न किया जा सकता है। जस स्त्रीभाव (पुंलिंग)  
स्त्राता (स्त्रीलिंग) और स्त्रीत्व (नपुंसकलिंग)।

एक ही वस्तु के लिये विभिन्न लिंगों के व्यवहार पर वाचस्पत्युरात् के मत का  
उक्त उपर ही चुका है। पतञ्जलि ने एक दूसरा मौलिक सुभाव दिया है। पाणिनि  
के पुयोगान्तर्यायाम ४।१।४८ सूत्र के विवचन के प्रसंग में भाष्यकार ने कहा है कि  
पुंलिंग के लिये स्त्रीलिंग का और स्त्री के लिये पुंलिंग का प्रयोग सम्भव है।  
और इसका कारण यह है कि पुंलिंग में स्त्रीत्व के कुछ लक्षण मिल सकते हैं। और  
स्त्री में भी पुंलिंग के कुछ लक्षण मिल सकते हैं। लक्षण न भी मिल तब भी एक के  
धर्म का दूसरे पर आरोप या अध्यास अथवा परस्पर तात्पर्य सम्भव है। तात्पर्य,

तात्पर्य, सामीप्य और साहचर्य के आधार पर जिसमें जो घम नहीं है उसमें भी उस घम का आरोप देखा जाता है। इस दृष्टि से दारा (पुल्लिंग), स्त्री (स्त्रीलिंग) और कलत्रम (नपुंसकलिंग) शब्द स्त्री के क्रमशः पुस्त्व स्त्रीत्व और नपुंसकत्व स्वरूप के द्योतक हैं। दारा शब्द विनाशक पुस्त्व श्रय को व्यक्त करता है जो पुरुष के लक्षण से मल खाता है। (दारयतीति दारा । अथवा दीयते तैर्दारा, महाभाष्य भाग २ पृ० १४७ किलहान संस्करण) । कलत्र शब्द स्त्री के प्रतिनिधि अथवा रहस्य स्वरूप का द्योतक है और इसलिये नपुंसकलिंग से व्यक्त किया जाता है। वे वस्तुएँ जिनके गुण पूर्णतया नान न हों अथवा सदिग्ध हों नपुंसकलिंग द्वारा व्यक्त की जाती हैं। (प्रतिनिधित्वे गुणसद्वे च नपुंसकलिंग प्रयुज्यते—महाभाष्य १।२।६७ भाग १ पृष्ठ २५०) तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु के विभिन्न पहलू हैं लिंग उनके विभिन्न स्वरूपों के प्रत्यायक हैं। हम बात का हलाराज न यो स्पष्ट किया है—

शब्देभ्यो वस्त्वर्थ्या एकस्वभावा अपि विस्तार भवति, तेभ्यो नानारूपाणा प्रकाशनात् । तथा च दाराशब्दस्त्रिय पुस्त्वविशेषणामाचष्टे, भार्याशब्दस्त्रित्वविशिष्टाम् ।

—वाक्यपदीय वृत्तिसमुद्देश १६७ ।

जातिपदाथक्षण और द्रव्यपदाथक्षण के आधार पर भी लिंग पर विचार किया जाता है। जातिपदाथक्षण में शब्द से आकृति का अभिवान होना है। आकृति सदा आविष्टनिगा होती है। जाति के आविष्टलिंग मानने का तात्पर्य यह है कि जाति निवर्तिलिंगवाली होती है। जाति की आविष्टलिंगता शब्दविशेष सापेक्ष है। सबत्र तीना निगा की सत्ता होने पर भी किसी विशेष शब्द से किसी विशेष निगा की अभिव्यक्ति होती है। पाणिनि ने जाति पदाथ को सामने रखते हुए ग्राम्यपुंसवेष्वतरुणेषु स्त्री १।२।७३ सूत्र का निर्माण किया था। लोक में गाव इमा अजा इमा जम प्रयोग दमे जात थे। ऐसे प्रयोगों की साधुता के लिए पाणिनि ने उपयुक्त सूत्र लिखा था। गाव इमा' इस वाक्य में गौ शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है। यद्यपि सम्बृत में गौ शब्द पुल्लिंग है किन्तु प्राचीनकाल में ही इसका प्रयोग स्त्रीनिगा में भी होना प्राया है। अति प्राचीन काल में स्त्रीगवी और पुगव जमे शब्द गौ शब्द के असंनिध्य अथ जताने के लिए चल पड़े थे। केवल गौ शब्द में भ्रम की सम्भावना रहनी थी। इसलिये गौ शब्द से यदि गाय अथ अपक्षित रहना था तो उसमें स्त्री शब्द जोड़ कर स्त्रीगवी शब्द का व्यवहार किया जाता था जैसे आज अगरेजी में बकरी के लिए गी-गोट शब्द का व्यवहार किया जाता है। अथवा अयम या व्यम सवनाम शब्द का साथ जोड़कर बल या गाय का बोध कराया जाता था जम गौ अय य शब्द बहनि गौ इय या समा समा विजायते (महाभाष्य ५। १५५) ।

त्रि नु कालान्तर म गौ शब्द गाय के निग अर्थक प्रयुक्त होने लगा। जैसा कि गाव इमा (महाभाष्य १।२।७३) के प्रयोग में जान पड़ता है। तागन ने इस स्पष्ट करत हुए लिखा है कि गौ शब्द का स्त्रीनिगा में व्यवहार भाष्यप्रयोग के आधार पर और लान व्यवहार के आधार पर समझना चाहिए—



भाष्यात् लोकाच्च गोणम् व्यवहार प्रायेण स्त्रीगवीप्वेवेति दृष्टव्यम्

—नाग महाभाष्यप्रतीपोद्योत १।२।७३

गाव इमा इस वाक्य का आभ्राय है गाव उना का भुण् । यद्यपि उम भुण्ड म बल भी रहत थे किन्तु उन जिना उस पूरे भुण्ड की गाव इमा गाया का भुण्ड कहा जाता था । पाणिनि का तात्पर्य यह है कि ऐसे आभ्य पशुमय म स्त्रीगप हाता है और पुस्त्व की अविवक्षा हाती है । इसलिय गाव उमा वाक्य से गाय बल दोनों के भुण्ड अभिप्रत हैं कि तु गाव म क्वत् स्त्रीत्व निर्देश है । इसी तरह अजा और अा दानो क भुण् म होने पर भी अजा उमा य अजा ै एमा ही प्रयोग होता था । कि तु जगली पशुमा के भुण्ड के लिए या बछटो के भुण्ड के लिए स्त्रीगप का नियम लोम म प्रचलित नहीं था । जगनी सूधर और सूधरि एना के लिए सूरा इम कहा जाता था । इसी तरह जिस भुण्ड म वाटा और बछिया दाना हात थे उनके लिए बत्सा इम इस वाक्य का प्रयोग होता था । ता उय यह है कि प्रयोग के नियत होने पर जाति कभी आश्रयनिष्ठ ग द्वारा स्त्री य स और कभी पुस्त्व से व्यक्त होती है—

अनेन प्रकरणन प्रयोगस्य नित्यत्वात् जाति क्वचिदाश्रयगतलिङ्गेन स्त्रीत्वेन व्यपदिश्यते क्वचित्तु पुस्त्वेनेत्युक्तं भवति ।

—कण्ट—प्रतीपोद्यात् १।२।७३

महाभाष्यकार ने पाणिनि के उपयुक्त सूत्र का प्रत्याख्यान किया है । उनका कथन है कि जब गाव इमा चरति कहा जाता है तब प्रायः गाया क चरन का ही निर्णय किया जाता है । बल रहत ही वहाँ है । उह बधिया बनाकर उनमे भार ढान का काम लिया जाता है अथवा उ ह धक लेने है । केवल गाव ही बच रहती है—

गाव उत्कलितपुस्का वाहाय च विश्रयाय च स्त्रिय एवावशिष्यते ।

—महाभाष्य १।२।७३

यद्यपि गाया क साथ एक लो व्यभ (उम) भी सम्भव है फिर भी आधिक्य क आधार पर स्त्रीत्वमय निर्णय कभी ही सम्भव है जब कि लो गौव म अधिक पहलवानो क हान क कारण उसे मलनग्राम कहा जाता है । जाति पशुमय गन के मानने पर सूत्र के प्रत्याख्यान करने पर गाव इमा जग स्वला म लिङ्गनिवम ग अश्रयभेद क आश्रय पर प्रवृत्त माना जाता है । जाति मग आश्रयन विङ्ग स सवृत्त रहती है । वक्ष पाप तत् इम अश्रय क नि मग पुस्त्व विशिष्ट ही हाती है कभी भी स्त्रीत्व अथवा नपमकत्व विगिष्ट नहीं । इसी तरह गिणपागन जाति स्त्रीत्व विगिष्ट हा हाती है । पनमम म ननुसाय विगिष्ट ही हाती है । अपु अगति अथवा पत्न गय उत गत् द्विलिङ्गी हैं तत् अश्रि त्रिलिङ्गी ह । इन समय विङ्ग नियत है कभी भी उमम परिवर्तन नता होता । अभी आधार पर जाति की आशिष्ट लिङ्ग रूप म स्वीकार किया जाता है । किन्तु ता म स्वन क अश्रि लिङ्ग व्यञ्जक पमो क हान हुए भी आशिष्टलिङ्ग वाला नियम सर्वत्र सफल नहीं हाता । दारा (पुल्लग) कन्दम (नपुमालिङ्ग) म लिङ्गभेद ै यद्यपि व्यञ्जक गमान है । इस परिवार क निग भन हरि न प्रवृत्ति का ही लिङ्ग का मामाद्य लक्षण माना है ।

(वाक्यप्रदीप ३, वृत्तिममुद्गा ३२१)

द्रव्यप्रायश्चित्त की दृष्टि में विचार करने पर भी आविष्टनिष्कृता का नियम उषो का त्यो रहता है। अथवा ही जाति आविष्टलिङ्ग गवानी होनी है जस्कि द्रव्य अनियतलिङ्ग वाला होता है। फिर भी शोना पश्चात् इम रूप में साम्य है कि जाति की आविष्ट लिङ्ग गता नियतजातिसंज्ञा द्वारा लिङ्गग्रहण अभाव्यरूप में होना है। केवल एकलिङ्ग का परिग्रह आविष्टलिङ्ग गता नहीं है। आकरण में लिङ्ग का ग्रहण वस्तुधर्म के रूप में न होकर गत्य के निङ्ग के रूप में होना है। द्रव्यप्रायश्चित्त में गुणावस्था लिङ्ग है। उपादानविकल्प के रूप में लिङ्ग के जा मात भेद पहल कह जा चुके हैं वही दस पथ में आविष्टलिङ्ग गता है—

लिङ्ग प्रति न भेदोऽस्ति द्रव्यपक्षेऽपि कश्चन ।

तस्मात् सप्तविकल्पा ये सवात्राविष्टलिङ्गगता ॥

—वाक्यपत्नीय ३ वृत्तिममुद्गा ३२८

जानिपदावयवक में शब्द का प्रधान रूप में वाच्य जाति है। द्रव्य उसके उपकारक होने के कारण गुणभूत रूप में अवगत माना जाता है। द्रव्यप्रायश्चित्त में शब्द का अभिधेय द्रव्य है आकृति उसके अवच्छेदक होने के कारण गुणभूत होती है। जो गत्य जातिविशिष्ट द्रव्य का अभिधायक है उनमें लिङ्गयोग आश्रय के आधार पर जाना है। जो गत्य केवल जानिप्रायक है उनमें लिङ्ग गत्या अन्वेषण के आधार पर भी अथवा इम नियम के आधार पर ही जाना है। जाति निराश्रित नहीं रह सकती। अतः साहचर्य के कारण आश्रयगन्तलिङ्ग से वह सपृक्त हो जाती है। कुछ लोग केवल जाति अभिधायक गत्य को अथवा अथवा केवल द्रव्य अभिधायक गत्य को अथवा मानते हैं। जानिप्रायश्चित्त में केवल शुद्ध जाति गत्य से वाच्य है द्रव्यप्रायश्चित्त में भी केवल शुद्ध द्रव्य गत्य से वाच्य है। शोना पश्चात् अनभिधीयमान द्रव्य अथवा जाति में निङ्गयोग आधार भेद की कल्पना से अथवा स्वगन्तलिङ्ग कल्पना से सिद्ध किया जाता है। हेनाराज के अनुसार पाणिनि का यही मत है—

केवलजात्यभिधायी गत्योऽप्यथ । अथवा केवलव्यभिधायी । उभयत्रापि चानभिधीयमाना जाति द्रव्य वा यथायोगमाधारभेदप्रकल्पनेन स्थगत लिङ्गगन्तव्यविधमप्रकल्पनेन चोपकरोतीति भगवत पाणिनेराचार्यस्याय पक्षः ।

—हेनाराज वाक्यपत्नीय ३ वृत्तिममुद्गा ६७

लिङ्ग के आधार पर, गत्य का दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। आविष्टलिङ्ग और अनाविष्टलिङ्ग। जाति द्रव्य और परिमाणवाचक गत्य आविष्टलिङ्ग है। जाति गत्य जिस त्रिग के आश्रय में व्यक्त होता है कभी गत्य नहीं होता—

आविष्टलिङ्गा जाति यत्लिङ्गपुरादाय प्रवर्तते उपपत्तिप्रभत्याविनाशान् तत्लिङ्गं जहति ।

—महामात्र १।२।५२

आकृतिव्यय और उपदगव्यय के रूप में जाति गत्य कह की है। इनमें आकृति

व्यग्य आविष्टलिङ्ग शब्द—गौ, मग, पगी, सप, सिंह, वग, कुमारी, कुण्डम स्त्री पुमान् नपुंसकसम आदि हैं।

उपदेशव्यग्यजाति वाले आविष्टलिङ्ग शब्द—ब्राह्मण, गाय्य, कठ, क्षत्रिय, वैश्य, गूढ भूत पारंगव आदि हैं। द्रव्य भी मापण और निरूपण रूप से दो तरह का है। इनमें सापेक्ष द्रव्य आविष्टलिङ्ग शब्द—गुरु पिता पुत्र भ्राता, जामाता, मित्रम माता स्वमा दुहिता भार्या आदि हैं। अनपेक्ष द्रव्य आविष्टलिङ्ग शब्द—चय मय, इन्द्र चन्द्र सूर्य, काल आवास, प्राची प्रतीची गची लक्ष्मी आदि हैं। नियत और अनियत भेद से परिमाण भी दो तरह का होता है। इनमें नियत परिमाण आविष्टलिङ्ग शब्द—द्रोण खारी पलम भार, कोण, योजनम अश्वोहिणी, आदि हैं। अनियत परिमाण आविष्टलिङ्ग शब्द—सघ, पूग, साथ, समाज वय, श्रणि कुटुम्बम परिषद पक्ति यूथम वनम् सेना आदि हैं।

गुणवाचक सरयावाचक वचन और सवनाम—ये सब अनाविष्टलिङ्ग हैं। इनमें श्वेन स्वादु शीघ्र मद दीघ, ह्रस्व युवा वड जैसे शब्द अनुरजक अनाविष्टलिङ्ग हैं। दस्य जिह्य जड प्राज खल साधु गूर भीरु लघु गुरु जस गन् अनुरजक अनाविष्टलिङ्ग हैं। सग्या दो रूप में गृहीत होती है। लिङ्गवती और अलिङ्गा। इनमें लिङ्गवती—एव एवा एकम् द्वौ द्वे द्वे आदि हैं। पञ्च पड अष्टौ आदि अलिङ्गा हैं। सवनाम में भीतर सर्वादिगण और असर्वादि दोना लिए जाते हैं।

—भोज शृंगार प्रवाण, १०७

सवनामा में युष्मद् (स्वम्) अस्मद् (अहम्) के लिङ्ग के विषय में सस्कृत व्याकरणों में कुछ विचार था। इनका उल्लेख कपट ने किया है। वातिकार और महाभाष्यकार ने युष्मद् और अस्मद् शब्दों को अलिङ्ग माना है। अलिङ्ग युष्मदस्मदी—महाभाष्य ७।१। ३। अभिधेय के अलिङ्ग होने से ये शब्द अलिङ्ग माने जाते हैं। शब्दों के स्वभाव के आधार पर ऐसा माना जाता है। इन शब्दों से लिङ्ग रहित रूप में ही अर्थ का भाव होता है। शब्दों के सहारे ही शब्द अपने अर्थ का प्रत्यायक है। शब्दों के सामर्थ्य का अवधारण लौकिक प्रयोग से होता है। ज्ञान में युष्मद् अस्मद् शब्दों से लिङ्ग का अवगमन नहीं होता। कुछ लोग मानते हैं कि युष्मद् अस्मद् शब्दों का अभिधेय अर्थ रूप शब्द है वस्तु रूप नहीं। ब्राह्मण आदि शब्दों से उसी का लिङ्गयुक्त रूप में प्रतिपादन होता है। यह नियम नहीं है कि सत्त्वभूत अर्थ अवश्य लिङ्ग युक्त होना है। क्योंकि पञ्च सध्न आदि शब्दों से लिङ्ग का भाव नहीं होता। इसीलिए कुछ वक्तव्यकारों ने पटमनन से स्त्रीप्रत्ययप्रतिषेध का प्रत्याख्यान किया है। शब्द आचार्य मानते हैं कि युष्मद् अस्मद् शब्दों से भी लिङ्ग सवनाम नपुंसक याग होता है। इसी आधार पर गिणी नुम् नुम् का तथा युष्मद् अस्मद् विभक्त्यादश का विप्रतिषेध कहा गया है। कुछ अर्थ आचार्य विप्रतिषेध का ममाधान दानभेद के आधार पर मानकर युष्मद् अस्मद् में लिङ्ग याग मानते हैं। उनका मत है कि सत्त्वभूत अर्थ का लिङ्गयोग अवश्य होता है। कपट भाष्यप्रणीत—७।१। ३३। नागण ने लिङ्ग वाले पक्ष का समर्थन किया है और इसके विरोध में कहा गया भाष्यकार के वाक्या का एकदेशीय माना है अर्थ

लिंगवत्त्वपक्ष एव युक्त सूत्रवातिकोभयसमतत्वात् ।

—नागे, महाभाष्यप्रदीपाद्योत ७।१।३३

अव्यय म लिंगयोग के विषय म भी मतभेद है । जो अव्यय अमत्त्वभूत अथ व अभिधायक हैं उनस लिंगयोग नही होता । जो सत्त्वभूत अथ के प्रतिपादक हैं उनस भी शक्तिस्वभाव के आधार पर लिंगयोग नही हाता । कुछ लाग मानत हैं कि अव्यय का लिंगविशेष से ता योग नही हाता किन्तु लिंगसामाय से याग होता है । कथट इस पक्ष के समर्थन नहीं जान पडते । उनके मत म लिंगसामाय की सत्ता म कोई प्रमाण नही है—

केचित्तु लिंगादिविशेषणयोगात्, तत्सामायेन तु योगमव्ययानामाहु । तद-  
युक्तम । लिंगादिसामायसदमावे प्रमाणाभावात्—

—कथट महाभाष्यप्रदीप १ । १ । ३८

लिंगसामायदशन यासकार का है लिंगसत्त्वाकारकविशेषस्यानुपपदानात्  
सामायरूपोपादानाच्च—यास १ । १ । २७ पृ० ८२ । उनक मत म, तत्र शालायाम  
वाक्य मे तत्र शब्द अव्यय है फिर भी इसमे स्त्रीत्व छानक टाप प्रत्यय होता है और  
अव्यय के कारण टाप प्रत्यय का लोप हा जाता है । यद्यपि तत्र शालायाम म वाक्याथ  
म स्त्रीत्व है फिर भी वाक्याथ के द्वारा तत्र म भी स्त्रीत्व है (यास २ । ४ । ८१) ।

त्रियाविशेषण नपुसर्वालिंग मान जान है । त्रिया विशेषणाना च क्लीबत्प्यत ।  
मदु पचति । शोभन पचति—वाशिका २ । ४ । १८ । यासकार के अनुसार त्रिया  
स्वय द्रव्य नहीं होती अत उसके विशेषण भी द्रव्य नहा मान जात । द्रव्य न हान से  
उनम लिंगयोग भी नही होता—

त्रियाया सायत्वात् कर्मत्वन । तद् विशेषणमपि कम भवति । तच्छासत्त्व  
भवति । त्रियव हि तावद् द्रव्य न भवति । कुत पुनस्तदविशेषण द्रव्य  
भविष्यात् ।

—यास २ । ३ । ३३

यद्यपि सस्कृत के व्याकरणों ने यह अनुभव कर त्रिया था कि लिंग के नियम  
व्याकरण द्वारा सबथा नियमित नहीं किए जा सक्ते और इसलिए यह घोषणा की थी  
कि इस सम्बन्ध म शास्त्रापदेश अनिश्चय नही है । (शास्त्रोपदेशान् वनापि सिद्धि  
लिंगस्य लोकव्यवहारगम्या—कथट, भाष्यप्रदीप ५ । ३ । ६६ ।) फिर भी याज्ञिकि  
आदि न लिंग के विषय म अनेक नियमों के उल्लेख किये हैं । विशेष नियम लिंगानु-  
दासना म वर्णित है । यहा कुछ प्रत्यया आदि के सम्बन्ध मे सकल दिए जा रह हैं ।

एक ही वस्तु शब्दभेद से—प्रत्ययभेद म अथववि म उत्पन्न करती है । जस—  
काश्य त्रिणिमा हाता । इन शब्दों म प्रकृति समान है किन्तु प्रत्ययभेद से त्रिग भेद  
है और उपयुक्त गुणदशन के आधार पर—गुणा की स्थिति प्रसव और सस्त्यान भेद  
से अथभेद की कल्पना की जा सकती है ।

जलम और घ्राप  
दारा और भार्या

जस गण म गक्तिभेद क आधार पर लिंग भेद है। द्वयम गद अलिंग है किंतु अतिवृद्धानि ग द लिंगयुक्त है।

संस्कृत म कुछ गद ऐसे हैं जिनके प्रातिपदिक रूप स भी लिंग का भान होता है जम—ममिन (स्त्रीलिंग) ददद (स्त्रीलिंग)। कुछ गण म लिंगभान प्रत्यय के आधार पर हाता है जस गौरी, निगौरी। पाणिनि न स्त्रीत्व के भान के लिए अनक प्रत्यया का विधान किया है। और कद गदो के एव स अधिन रूपा का निर्देश किया है जस—

- चंद्रमुषी — चंद्रमुखा
- अतिकगी — अतिकशा
- स्निग्धकण्ठी — स्निग्धकण्ठा
- बिम्बोष्ठी — बिम्बाष्ठा
- तिलादरी — तिलोदरा।

किंतु मुभगा पृथुजघना जस गण म दो रूप नहीं चलत थ। कही-बही दा रूपा म अवभेद हात थे जस निम्न जोडा म—

- कुण्डी — कुण्डा
- गोणी — गाणा
- स्थनी — स्थला
- भाजी — भाजा
- बाली — बाला
- नीली — नाना
- कुगी — कुगा
- कामुका — कामुका
- पाणिगहीरी — पाणिगहीरी।

किंतु व्यवहार म थ भेद निराहित हात लग थ। जस—  
 कुचलपदलनीसाकारितायात्पुन ।

—यामन, पाठ्यालकार १२। ६६

यही नीली क स्वात पर कवि न नाना का प्रयोग किया है। संस्कृत म कुछ गण म प्रत्यय क कारण अथभेद न हात हुए भा लिंगभेद गता है। जिन गण म तद्विभ प्रत्यय क कारण मून लिंग बना रहता है व तर्हि गी है। जम—मन एव मानगद। मन और मानम गण नाना नपुमक लिंग है। यथुयथ बापय। य धु और बापय गण नाना पुल्लिंग है। इता तरुयथ यावह। जिन गण म प्रत्यय क कारण लिंगभेद किया गया है व धार लिंगी है जम उताय एव श्रीगदिकम। यथ उताय पुल्लि और श्रीगदिक गण नपुमकलिंग है। एव एव रचना। एव गण पुल्लिंग और रचना गण स्त्रीलिंग है। इया गण रचना एव ददनम।

स्त्रीलिंग प्रत्यय स्त्रीत्व प्रकृतिक लिंग का अनुसरण करत है। किंतु कना कना गण निम्न म स्त्रीलिंग भी गता जाता है। जम कुटा (स्त्रीलिंग) कुटार

(पूर्विलग) इसी तरह शमी—शमीर गुण्डा, गुण्डार ।

अनक गदा म विवशा अविवशा के सहार लिंग विचार किया जाता है ।  
 र्हा, नञ्जा अस श ग म लिंग विवनिन है । घातक जम गन्द म अविवनिन है । राधा  
 वाव, ऊहा ऊर, व्रीडा व्रीर, जम गग म विवशा और अविवशा दोना होत ह ।

पाणिनि न द्वन्द्व और त पुंस्व समास म परबत लिंग का विधान किया है । मत-  
 हरि न भाष्यकार क आधार पर द्वन्द्व समास म लिंगयाग स्वाभाविक और वाचनिक  
 दाना रूप म लिखाया है । च क अथ म द्वन्द्व समास हाता है । च का अथ समुच्चय  
 नी है । समुच्चय क साथ दो तरह के विचार हैं । एक पक्ष समुच्चित को प्रधान  
 मानता है । दूसरा पक्ष समुच्चय को प्रधान मानता है । समुच्चिनप्रधान पक्ष म लिंग  
 योग स्वभावत हाता है । समुच्चयप्रधानपक्ष म लिंगयोग वाचनिक माना जाता है ।  
 कुछ लोग क अनुसार समुच्चितप्राधायपक्ष म भी लिंगयाग स्वाभाविक न हातर  
 वाचनिक होता है क्योंकि समुच्चय निमित्त है, समुच्चित नमित्तिक है । निमित्त से  
 नमिनिक का स्वरूप आच्छादित रहता है । इसलिए समुच्चित म स्वधम की प्रतिपत्ति  
 न होत स शास्त्र द्वारा लिंग का अतिदग किया जाना है । किन्तु मत हरि क अनुसार  
 यह मत उपयुक्त नहा है । उनके अनुसार समुच्चय का समुच्चिन क निमित्त क रूप म  
 प्रष्टण भ्रांमूलक है (वाक्यपणीय २, वृत्तिममुद्देश २०१)।

यद्वृत्तीहि समास म लिंग क विषय म विप्रतिपत्ति वातिककार न उठाई थी ।  
 यद्वृत्तीहि समास म पदार्थाभिधानपक्ष और विभक्त्यर्थाभिधानपक्ष क रूप म विवाद  
 प्रचलित थे । दाना पक्षा का उल्लेख कात्यायन न किया है । इनम विभक्त्यर्थाभिधानपक्ष  
 म यद्वृत्तीहि समास म लिंग योग की उपपत्ति नहीं हो पाती है । क्योंकि लिंगयोग सत्व  
 भूत द्वय से हाता है । विभक्त्यर्थ अद्रय है । उनमें लिंगातिदग सम्भव नहीं है ।

#### विभक्त्यर्थाभिधानेऽद्वयस्य लिंगसंश्लेषचरानुपपत्ति

पा० सूत्र २।२।२४ पर चातिर<sup>१</sup>

भाष्यकार न इसका समाधान किया है कि जम गुणवचन गदा म आश्रयगत-  
 धम क आधार पर लिंगयोग हाता है उसी तरह यद्वृत्तीहि समास म भी हो जाया  
 करेगा । व्याकरणान म पञ्चवधिक अवाक्यान् और वाक्यावधिन अवाक्यान्  
 दोना गीत है । पञ्चवधिक अवाक्यान् पक्ष म सामान्यमात्र का सामन रखकर पद  
 मन्वार किया जाता है अत यद्वृत्तीहि समास म भी सामान्य म अपुमकलिंग और एक  
 वचन नियम क अनुसार अनुसक्तकलिंग और एकवचन की ही प्राप्ति होनी चाहिए किन्तु  
 विगणनाना चाजान १।२।१२ सूत्र क अनुसार गुण वचना क आश्रय क आधार पर  
 लिंग और वचन प्रतिपादन किया जाता है । अतएव पदमन्वार पक्ष म लिंगविधान

१ मन्मासकार न अत्र अत्र ५ रूप में इस वाक्य का एक दूसरा पाठ भी लिखा है—अत्र प्रा-  
 —विभक्त्यर्थाभिधाने द्वयस्य लिंगसंश्लेषचरानुपपत्ति —सामान्य २।२।२४ उपरुक्त पाठि में  
 अत्र इम व नीह में अत्र अत्र इति उमने अत्र अत्र पाठ है इमने द्वयस्य समासकार  
 प्ररतपठि पाठ है ।

शास्त्रीय है। वाक्यसंस्कार पश्चिम बहुव्रीहि समास में लिंगविधान यायसिद्ध है। क्योंकि इस पश्चिम पद के सम्भार आश्रयविशेष के आश्रय से ही हात है। अर्थात् वाक्यसंस्कार पश्चिम लिंगविधान वाचनिक न होकर स्वाभाविक है। चित्रगुण शब्द में बहुव्रीहि समास है। यद्यपि चित्रगुण शब्द सम्बन्ध का अभिधान हाता है फिर भी अभ्युपचार से सम्बन्धी का ग्रहण हो जाता है। यद्यपि सम्बन्ध द्विष्ट हाता है फिर भी प्रधानता के आधार पर स्वामी की अभिधेयता मान ली जाती है और उसी के आश्रय से लिंगयोग होता है याय के आश्रय से नहीं। जिस तरह गुण शब्द वही गण का बोधक होता है और कभी गुणी का उसी तरह चित्रगुण शब्द भी कभी सम्बन्ध का बोधक होने लगेगा और कभी सम्बन्धी का। उसे केवल सम्बन्धी का ही बोधक माना चाहिए। इसके उत्तर में भाष्यकार की भावना है कि कृत्स्न पदाय की अभिव्यक्ति हाती है। पाणिनि ने अनन्तमध्यपदार्थों २।२।२४ सूत्र में अथ ग्रहण के द्वारा यह संकेत किया है कि कृत्स्नपदाय का अभिधान हो—

यदथग्रहणं करोति तस्यतत प्रयोजनं कृत्स्न पदार्थो यथाभिधीयते सद्रथ  
सलिंग संसृष्टयेति । महाभाष्य २।२।२४

बहुव्रीहि समास में यदि कृत्स्न पदाय का—सबका अभिधान मान लिया जायगा तो लिंग के भी अभिधान हो जाने के कारण लिंग विधिवाल नियम नहीं हो पायेंगे। इसका परिहार भाष्यकार ने वाचनिकता के आधार पर किया है कि समास द्वारा लिंग के अभिहित होने पर भी स्त्रीत्व श्लोक टाप आदि प्रत्यय हान में कोई बाधा नहीं है।

नञ् समास में भी लिंग याग स्वाभाविक माना जाता है। नञ् समास में तीन तरह के विलक्षण भाष्य में वर्णित हैं। अथपदायप्रधान पूर्वपदायप्रधान और उत्तर पदाय प्रधान। अथ पदायप्रधान में नञ् समास में, लिंग का प्रश्न सामने आता है। अथवा कहने से हृन्त का बोध होता है। अथ यदि अथपदाय प्रधान माना जाय तो हृन्त शब्द में जो लिंग है उस ही अथपदाय शब्द में भी होना चाहिए। पूर्वपदायप्रधान में भी नञ् के अथ के प्रधान होने के कारण लिंगयोग की प्राप्ति नहीं हो पाएगी। इसका परिहार इस रूप में किया जाता है कि विग्रह वाक्य में नञ् अस्तत्त्वभूत अथ को यत्क वारता है किन्तु समास में सत्त्वरूप अथ की अभिव्यक्ति करना है। और एसा स्वभावतः हाता है। महाभाष्य में स्वाभाविकत्वात् नञ् अनिश्चित आश्रयत्वात् के अनुसार भी नञ् समास में लिंगयाग की कल्पना मिलती है गुण वस्त्र गुणता गान्धी आदि के सदृश नञ् समास में भाजिम द्रव्य के आश्रित समास होगा, उसमें जो लिंग हाता समास में भाजिम लिंग माना जायगा। इस पर भी अथवा हृन्त अथपदाय प्रथम अथपदाय प्रयोग में लिंगयोग की उपपत्ति ठीक नहीं हा पाता है। इसलिए भाष्य में नञ् समास में उत्तरपदायप्रधान का आश्रय लिया गया है। ह्याराज न स्वाभाविक टाप के आधार पर पूर्वप्रधानपद का भी निर्णय माना है—

यद्येव गन्तव्यप्रतिनिधमादप्रयोगे पि विगणस्य दिगिष्टे लिङ्गस्येति सिध्यत  
एवेति पूर्वपदायप्रधानपदायपि न त्याग्यम् ।

उत्तरपक्षाय प्रधानपक्ष म भी अमित्र जसे शब्द म लिंगयाग जटिल हो जाता है । किन्तु हरदत्त ने अमित्र शब्द को न मित्र अमित्र रूप म न लेकर अभिघातु से अच् प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न शब्द माना है—

अमेद्विपतीति तच्चे प्रत्यय । न पुनरय नञ् समास । परवर्ल्लिगप्रसगात् । लोकाश्रयत्वात् लिंगस्य । स्वने दोष चित् स्वरो हीष्यते भूत्वचास्तु मध्यो-  
दात्तममित्रशब्दमधीयते ।

—पदमजरी = १२।१३१ पृ० ६५०

लिंग की दृष्टि स समस्त पदा मे सहजीकरण के नियम सुदूर प्रा गिनवाल मे ससृष्ट भाषा म दिखाई देन लगते हैं । इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण महाभाष्यकार का निम्नलिखित प्रयोग है—

द्रुतमध्यमविलम्बितासु चत्तिषु ।

—महाभाष्य १।४।१०६—पृ० ३५४, कीलहान सस्वरण

इस पर क्यट ने या टिप्पणी दी है द्रुता च मध्यमा च विलम्बिता चेति द्वे कृते भाष्यकारवचनप्रामाण्यात् ह्रस्व ।

—कैयट, भाष्यप्रदीप १।४।१०६

स्पष्ट है कि प्रयत्नलाघव के आधार पर समस्त पदो म आन्तरिक लिंग तिरो हित होने लग थे । कालिदास के दूढभक्ति ' (रघुवश १२।१६) जसे प्रयोग भी इसी दिशा के सबेनक हैं ।



## वाक्य विचार

संस्कृत वाक्यकरण में वाक्य शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में देखा जाता है

- १ विग्रह वाक्य के लिए । जैसे राजपुत्र्य के लिए राज पुर्य । राज पुर्य वाक्य है ।
- २ लौकिक वाक्य के लिए । जैसे 'देवदत्त ओदन पचति ।
- ३ पारिभाषिक अर्थ में । निघांत आदि की व्यवस्था के लिए शास्त्रीय वाक्य-लक्षण वाक्य शास्त्र से व्यवहृत किया जाता है ।

इस अध्याय में केवल लौकिक और पारिभाषिक वाक्य लक्षण पर विचार किया जा रहा है ।

पारिभाषिक वाक्य का लक्षण सर्वप्रथम सभवन कात्यायन ने किया । क्याकि पतञ्जलि ने इनके वाक्य लक्षण को अप्रुव कहा है—

इदमद्यान्व क्रियते वाक्यसंज्ञासमानवाक्याधिकारदत्त ।

—महामाष्य २।१।१ पृ० ३३८ निणय सागर संस्करण

अप्रुव शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि इसमें प्रुव वाक्य का लक्षण उक्त रूप में नहीं पात था जसा कि कात्यायन ने बतलाया । कात्यायन का एक नाम वाक्यकार भी है । बहुत समझ है कात्यायन का यह नाम उनके वाक्यलक्षण निर्माण के कारण पडा हो । अवश्य ही व्याकरण संप्रदाय में वाक्यिक और वाक्य पर्याय मान जात हैं और वाक्यिकार के अर्थ में वाक्यकार का प्रयोग बराबर मिलता है ।<sup>१</sup>

प्राचीन विचार क्षेत्र में जैमिनि का वाक्य-लक्षण भी प्रसिद्ध था । जमिनि के वाक्य-लक्षण और कात्यायन के वाक्य-लक्षण में पूजापर का विचार कठिन है । भाष्यकार के अप्रुव शब्द से जान पड़ता है कि कात्यायन ने ही सर्वप्रथम, शास्त्रीय दृष्टि से, वाक्य पर विचार प्रस्तुत किया । लौकिक वाक्य के स्वरूप पर कात्यायन के पूर्ववर्ती व्याख्यान सग्रह में विचार किया था और पाणिनि की दृष्टि भी उस पर गई थी ।

१ वाक्य विकल्प बार्तिक ४ । यन् करणान् कात्यायना बर्तितवन्तः उपरतः ।—राकर, इतिहास  
८३। ५० १३३ बन्द संस्करण

जमिनि और कात्यायन दोनों के वाक्यलक्षण के विषय में दो तरह के विवाद प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं। भीमासा सूत्र के प्राचीनतर टीकाकार जमिनि के वाक्यलक्षण को लौकिक वाक्य का लक्षण मानते थे। कुमारिल और उनके अनुयायियों ने उसे शास्त्रीय वाक्यलक्षण माना है। व्याकरण संप्रदाय में भट्ट हरि,<sup>१</sup> कैयट,<sup>२</sup> भोज<sup>३</sup> विटठल<sup>४</sup> आदि ने कात्यायन के वाक्यलक्षण को शास्त्रीय वाक्यलक्षण माना है। नागेश ने उसे लौकिक वाक्यलक्षण माना है अथवा उसे लोक शास्त्र-माधारण सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।<sup>५</sup>

कात्यायन के वाक्यलक्षण का रूप निम्नलिखित है—

आख्यात साध्यकारकविशेषण वाक्यम् । एकतिङ् ।

—वार्तिक महाभाष्य २।१।१

महाभाष्य में इसके विशेषण में कहा गया है कि साध्यय सकारक सकारक विशेषण और सक्रियाविशेषण आख्यात वाक्य है। एकतिङ् वाक्य है। जैसे—

साध्य—उच्चै पठति ।

सकारक—ओदन पचति ।

सकारकविशेषण—मदु विगदम ओदन पचति ।

सक्रियाविशेषण—मुष्टु पचति ।

एकतिङ्—ब्रूहि ब्रूहि ।

कात्यायन के इस शास्त्रीय वाक्यलक्षण पर इस ग्रंथ में क्रिया विचार के अवसर पर भी प्रसंगत चर्चा की गई है।

इस वाक्यलक्षण के अर्थय कारक और विशेषण में से प्रत्येक अलग अलग और समुदित रूप में भी गृहीत होने हैं। अर्थय यद्यपि कारक और विशेषण भी हो सकता है फिर भी स्पष्टताय उसका पृथक् उल्लेख किया गया है। सविशेषण शास्त्र में प्रत्यासक्ति के आधार पर जो वाक्य का विशेषण होता है उसी का ग्रहण किया जाना है न

१ निघातादिव्यव शब्धे शब्धे यत् परिभाषितम् । बान्यपदाय २ । ३

२ नानाकारकानि निघातादिनिवृत्तये, क्वचित् प्रवृत्तये च समानवान्य निघातयुग्मदादेशा बद्ध्यन्ते । तत्र लौकिकवाक्यग्रहणविशेषाद्य वाक्य परिभाष्यन्ते ।

—कैयट महाभाष्यप्रतीपोषोत् २।१।१

३ वार्तिककारस्तु शाब्दिक लौकिकान् पारिभाषिक वाक्यलक्षणमाहते । न च तेन लौकिको व्यवहारः सिद्धोति उपेक्ष्यते । ।

—भोज, शाब्दिकप्रकारा ५० ११६ सूत्र सम्बन्ध

४ वाक्यलक्षण पारिभाषिकी महाभाष्ये उच्यते ।

—विटठल, प्रक्रियाप्रमाद, भाग प्रथम, ५० ७१

५ परे तु आख्यातसद्विशेषण वाक्यमिति लक्षण लौकिकमेव पठतिमन्तार्येतन् साधारणम् । यत्तु कैयटेनायं पारिभाषिकं वसुधं तन् प्रमादान् ।

—नागेश महाभाष्यप्रतीपोषोत् २।१।१

सम्भार आवाचक्षण वाक्यस्य टरिरयन्तु शास्त्रलोकसाधारणम् ।

—महाभाष्यप्रतीपोषोत् २।१।१ ५० ४५ गुण प्रमाद साधारण

कि क्रिया के विशेषण का। आख्यातम्' इस शब्द में, लक्षणविधानसामर्थ्य के आधार पर, एकवचन विवक्षित है। आख्यात स त्रियाप्रधानता लक्षित है। पत्रन 'देवन्तेम शयितव्यम्' जैसे अतिङित स्थाना में भी वाच्यत्व माना जाता है। आख्यात में एकत्व विवक्षा के कारण 'पचति भवति' में साध्यमाधन होने पर भी दो आख्यात के कारण और समानवाक्यता के अभाव के कारण निघात नहीं हो पाता है। एतद्दिग् म एव गच्छ, कयट के अनुसार सत्यावाची न होकर समानवचन है और इसमें बहुव्रीहि समास है।

वातिक्रार के उक्त शास्त्रीय वाक्यलक्षण में दो विप्रतिपत्तियाँ उठाई गई थी और उनका परिहार किया गया था। उक्तलक्षण के अनुसार 'ब्रजानि देवदत्त' इस वाक्य में देवदत्त गण्य स पाणिनि सूत्र ८।१।१६ के अनुसार निधान प्राप्त नहीं हो सकेगा। क्योंकि देवदत्त पद यहाँ न तो अव्यय है न कारक है और न उसका विशेषण है। इसका परिहार या किया जाता है कि उक्त लक्षण में साध्यय, सकारक अति वा सामान्य रूप में अभिधान किया गया है। फलतः वातिक्रार की वाक्यपरिभाषा के अनुसार भी निघात हो जायगा। क्योंकि उक्त परिभाषा के आधार पर मत्रिया-विशेषण भी आख्यात वाक्य कहनायगा। ब्रजानि देवदत्त इस वाक्य की व्रजति क्रिया व्रजति देवदत्त इस वाक्य की व्रजति क्रिया स भिन्न है। क्योंकि एक का सबध सर्वोच्य देवदत्त स है और दूसरे का असबध य देवदत्त स है। क्रिया का विशेषण कभी सामानाधिकरण्य रूप में होता है जैसे शोभन करोति। यहाँ करोति क्रिया का अर्थ शोभन के अर्थ स सपन्न रूप में ही उपस्थित होता है। क्रिया का विशेषण कभी वयधिकरण्य रूप में होता है। जैसे ब्रजानि देवदत्त। इस वाक्य में गमनक्रिया और देवदत्त का सामानाधिकरण्य नहीं है। जाने वाला अर्थ व्यक्त है और देवदत्त अर्थ है। किन्तु देवदत्त को सम्बोधन कर गमन होने के कारण यहाँ व्रजति क्रिया विशिष्ट हो जाती है और उसे क्रियाविशेषण मानकर निघात हो जाता है।

दूसरी आपत्ति इस वाक्य में है—

'पूर्व स्नाति पचति ततो व्रजति।

इस वाक्य में तत के बाद व्रजति क्रिया के होने से वाक्यभेद के कारण निघात नहीं हो सकेगा। किन्तु हाना चाहिए। इसके उत्तर में कहा जाता है कि जिस तरह अनेक क्त्वात् गण्य तिङित के विशेषक होने हैं वैसे ही तिङित भी तिङित के विशेषक होता है। स्नात्वा भुक्तवा, पीत्वा व्रजति इस वाक्य में स्नान, भोजन और पान से गमन क्रिया ही विशिष्ट मानी जानी है। उसी तरह उपयुक्त वाक्य में स्नान क्रिया अति स व्रजति क्रिया ही विशिष्ट रूप में सामन आती है। उपयुक्त वाक्य में व्रजति क्रिया प्रधान है और दूसरी क्रियाएँ इसके विशेषण रूप में हैं। इसलिए सविशेषण क्रिया एक मानकर वाक्य भेद न होने से निघात सिद्ध हो जायगा।

भत हरि न कात्यायन और जमिनि के वाक्यलक्षणा में असमानता का संकेत किया है। जमिनि ने यजुस के अवसाननिश्चय करने के लिए वाक्य की परिभाषा बताई थी जो यहाँ है—

अर्थैकत्वादेक वाक्य साक्षात्क्ष चेद विभागे स्यात् —मीमांसा सूत्र २।१।४६

क्या तात्पर्य है कि पदममूह वाक्य है यदि यह एकायक हो और विभक्त दान म साक्षात् हो। विभाग म साक्षात्ता और अविभाग म एकायता के रूप म वाक्य को स्वीकार करने के कारण निम्नलिखित वाक्य एक वाक्य के रूप म मीमांसा गान म गृहीत जाता है—

दवस्य त्वा सवितु प्रसवे अश्विनो बाहूम्याम, पूष्णो हस्ताभ्याम अग्नये जुष्ट निवपामि ।

इमम अग्नये जुष्ट आदि पद को पयक करने पर दस्य त्वा आदि पदममूह साक्षात् है। सवितो एक साथ उन पर मपूण पदममूह का एक ही निर्वाप अर्थ है। अत उपयुक्त समूह एक वाक्य है।

मीमांसा क इम वाक्यलक्षण को व्याकरण दान म स्वीकार करने पर मत्र तरह से काम नहीं चल पाता है। उदाहरण के लिए जसा कि पुष्यराज न उल्लेख किया है अथ दण्डा हरानेन आत्न पच तव भविष्यति जैसे स्थला म, जमिनि के वाक्यलक्षण के अनुसार निघात हो जायगा क्वाकि प्रयोजन म ऐक्य है। किन्तु व्याकरण की दृष्टि म इन स्थला म निघात नहीं होता। कात्यायन के वाक्यलक्षण के अनुसार भी इनम निघात नहीं होता। अत जमिनि के वाक्यलक्षण की अपेक्षा कात्यायन का वाक्यलक्षण इस सामित दृष्टि से उद्वेक है।<sup>१</sup> कैयट ने जमिनि के वाक्यलक्षण को लौकिक वाक्य का लक्षण माना है और कात्यायन क वाक्यलक्षण को शास्त्रीय मानकर उनम भेद किया है—

अर्थैकत्वादेक वाक्य साक्षात्क्ष चेद विभागे स्यादिति लौकिक वाक्यलक्षणम । इह तु वाक्य पारिभाषितम आत्पात साध्ययकारकविगणण वाक्यमिति ।

—महाभाष्यप्रदीप ८ । १ । १८

## लौकिक वाक्य लक्षण

लोक व्यवहार म अर्थ की स्पष्ट प्रतिपत्ति वाक्य से होती है। इस तत्त्व का उमीलन प्राचीन काल म हा चुका था। फलत वाक्य के स्वरूप पर भी उहापोह मुद्गर म म ही आरम हो गये थे। भत हरि न अपने समय तक प्रसिद्ध प्राय उन सभी वाक्यवादा का निर्देग निम्नलिखित कारिकाया म किया ह—

आख्यातगद सघातो जाति सघातवतिनी ।

एकोनवयव गद त्रमो बुद्ध यनुसहृति ॥

पदमाद्य पृथक्सवपद साक्षात्प्रमित्यपि ।

वाक्य प्रति मतिभिन्ना बहुधा यायवादिनाम ॥

वाक्यपत्नीय २।१२

पुष्यराज के अनुसार इन कारिकाया म निम्नलिखित आठ वाक्य विकल्पा का

उल्लेख किया गया है—

- १ आख्यात शब्द
- २ सघात
- ३ जाति (सघातवन्तिनी)
- ४ एक अनवयव १०८
- ५ श्रम
- ६ बुद्धयनुसंहति
- ७ आद्य पद
- ८ पथक सावाश सवपद

पुण्यराज के अनुसार सघातवन्तिनीजाति एक अनवयव १०८ और बुद्धयनुसंहति य तीन वाक्य विकल्प अष्टपक्ष में हैं।

आख्यातशब्द श्रम सघात आद्यपद और पथक सावाश सवपद—य पाच वाक्य विकल्प अष्टपक्ष में हैं।

इनमें भी सघात और श्रम य दो वाक्य विकल्प अभिहितानवयवान् के अनुसार हैं। और आख्यातशब्द आद्यपद और पथक सावाश सवपद अविनाविधानवाद के आधार पर हैं।

यद्यपि इन आठ वाक्य विकल्पा में कुछ का सम्बन्ध पुण्यराज ने भीमासा दशम से दिग्गलाया है किन्तु प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल शालिकनाथ सुचिन्तितमिश्र पाथ सारथि आदि न इन आठ वाक्य विकल्पा को व्याकरण मन्त्र के रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उल्लेख किया है और इन सबका खण्डन किया है। वस्तुतः य वाक्य के आठ विकल्प एकत्र वाक्यपदीय में ही पाथ जात है। अतः वाक्यपदीयकार के बाद के लेखकों ने बिना विशेष विचार के इन आठ वाक्यलक्षणा का सम्बन्ध व्याकरणदशम से जोड़ दिया है।

एसा तत्रा पठता है इनमें से कुछ वाक्य विकल्पो का सम्बन्ध किसी प्राचीन मीमांसा दशम से अवश्य था। उपयुक्त कारिका के 'यायवान्नाम' ('यायदर्शनाम') शब्द से भी यही ध्वनित होता है। प्राचीन तत्रा में 'याय' शब्द मीमांसा दशम के लिए व्यवहृत किया जाता था। इतना निश्चित है कि इन आठ विकल्पा का मूल केवल व्याकरणदशम नहीं है और न महाभाष्य आदि आकर ग्रन्थों में इन सबका स्रोत दिखाई देता है।

उपयुक्त वाक्य विकल्पा के अतिरिक्त वाक्य के अक्षण्ट और सखण्ट पर भी विचार प्रातिशास्त्रियों के युग में आरम्भ हो गया था। वेद के संहिता रूप को मूल मानने वाले अक्षण्टवादी श्रेष्ठ पद पाठ को अधिक महत्त्व देने वाले सखण्टवादी थे।

ऋक प्रातिशास्त्र में संहिता को पञ्चप्रवृत्ति कहा गया है। पञ्चप्रवृत्ति १०८ के दो तरह से विग्रह संभव है—पञ्चाना प्रवृत्ति पदप्रवृत्ति (तत्पुरूप समास) अथवा पञ्चानि प्रवृत्ति यस्या मा पञ्चप्रवृत्ति (बन्धुश्रीहि समास)। पहले पक्ष के अनुसार पदा का मूल (प्रवृत्ति) संहिता है अथवा संहिता पहले है। पदा की सत्ता बाद में। दूसरे

गण्य म सहिता नित्य है, अपौरुषेयी है, पद अनित्य हैं, पौरुषेय हैं । दूसरे पक्ष के अनुसार सहिता का मूल (प्रवृत्ति) पद हैं । पदा की सत्ता पहले और सहिता की सत्ता बाद में है । पद नित्य हैं, अपौरुषेय हैं । सहिता अनित्य है, पौरुषेयी है ।

इनके अनिर्वचन भवृ हरि न इस सम्बन्ध में दो अर्थ मना का भी उल्लेख किया है । किसी के अनुसार पद और सहिता दोनों ही नित्य हैं । पद सामान्याय प्रतिपाद्य रूप में नित्य हैं और सहिता सामान्याय प्रतिपाद्य रूप में नित्य है । पुन कुछ अर्थ आचार्य मानते हैं कि सामान्याय नित्य है और वह एव है । उस एक ही सामान्याय की दो गतिवत्ता है—विभाग शक्ति और अविभाग शक्ति । विभागशक्ति (पद) प्रतिपाद्य है और अविभाग शक्ति (सहिता) प्रतिपाद्य है—

केषांचित्तु नित्याबुभावप्येतौ सामान्यायो । पदसामान्यायस्तु प्रतिपादकरत्वेन नित्य इतरस्तु प्रतिपाद्यत्वेन नित्य । केषांचि नित्यस्यकस्याम्नायस्य द्वे एते विभागाविभागशक्तौ प्रतिपादकप्रतिपत्तध्यरूपेण वर्तते ।

—हरिवृत्ति, वाक्यपदीय २।५८ लाहौर म०

महामाध्यकार न एक स्थल पर कहा है कि पदकारों को लक्षणा के अनुसार पद करना चाहिए । लक्षणा को पदकारों का अनुवर्तन नहीं करना चाहिए ।<sup>१</sup> इसका तात्पर्य है कि लक्ष्य नियत है । शास्त्र केवल उमका अनुविधान करता है । शास्त्र स्वयं अनुविधेय नहीं है । इस दृष्टि से भाष्यकार को भी अखण्ड पक्ष ही अभिप्रेत जान पड़ता है ।<sup>२</sup>

## श्राव्यात शब्दवाद

वाक्य के उपयुक्त आठ विकल्पा में पहला श्राव्यात शब्द है । श्राव्यात शब्द ही वाक्य है । श्राव्यात शब्द में क्रिया शब्द अभिप्रेत है । वाक्य में क्रियापद की प्रमुखता के आधार पर क्रियापद का ही वाक्य कहा गया है । भन हरि के अनुसार अर्थ की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए वाक्य का आशय लिया जाता है । वस्तु के अस्तित्व और अस्तित्व दोनों का स्पष्ट भान वाक्य के प्रयोग से होता है और वाक्य से स्पष्ट प्रतीति तभी होती है जब उसमें क्रिया पद हो । क्रिया पद श्रूयमाण भी हो सकता है और अनुमेय भी । दोनों रूप में वाक्याय के स्पष्ट आभास के लिए क्रिया की सत्ता अनिवार्य है ।<sup>३</sup>

भन हरि के अनुसार एकत्व और नित्यत्व के पक्षपाती आचार्य विगिष्ट क्रिया को ही वाक्य का प्रतिपाद्य मानते हैं । एक शब्द है वह क्रिया है । एक ही अर्थ है

१ न लक्षणेन पदकारा अनुवृत्ता । पदकारे नाम लक्षणमनुवर्त्यम्—

—महामाध्य ३।१।२०६ भाग २ पृ० ६५ कोलहान म०

२ यत्र शब्द पदा यस्यैवाति तस्य प्रतिभास ते तत्र पदमभिहितमिति भाष्यकारस्वात्म्यव्यष्टयस्योऽभिप्रेत इति दर्शितम्—

—पुरयरात्र वाक्यशास्त्र २।३६

३ तत्रमान श्रूयमाणक्रियापदम अनुमन्वयमान क्रियापद वा वच्यमेव स्वयमेवहानुपपन्नमिति ।

—वाक्यशास्त्र २।४३० हरिवृत्ति, इत्तलेख

वह क्रिया है। अपोद्धार पद्धति से, व्यवहार के लिए एक वाणी अनेक विभाग किया जाता है। क्रियाएँ बाल कारक, पुरुष, उपग्रह आदि से यथाशक्ति अनुगुण रूपा है और उगवा अर्थ एक होता है उसमें विगणविगणमाय परिवर्तित होत हैं—

एकस्वनिःस्वयादिनस्तु मन्मते विगिष्टा हि क्रिया यथात्मव जालसाधन इत्युपरोपग्रहादिभिः अनुगुणा वाचयेनाभिधीयते । स च न गदो व्यवहाराय प्रथिमक्तोद्देशेण सवविगणविगिष्टा परिवर्तितविगणविगण्यभेदे एक स्मि नये भवते । तस्य गदितरपोद्धारव व्यावहारिको विभागोज्जुगम्पते ।

—वाचस्पतीय २।४४७ ६८ हरिवृत्ति, हम्ननग

कुछ क्रियाएँ नियत साधन वाली होती हैं। उनका प्रयोग से उनका अनुसूल वर्तनीयता आदि का भाव आप से आप हो जाता है। जग— वपति क्रिया है। वपति क्रिया के प्रयोग से देव जल वपति इस रूप में वर्तनीयता और कम का अप्याहार स्वतः हो जाता है। यहाँ केवल आख्यात पर वाच्य का काम कर रहा है। आख्यातपर—वाच्यवाद का यह भी एक पक्ष है।

जिस तरह से एक क्रियाएँ संपूर्ण वाच्य है उसी तरह से कुछ विगण पर भावकले वाच्य माने जाते हैं किन्तु [एक स्वतन्त्र क्रिया चरित (गर्भीभूत छिपी) मानी जाती है।<sup>१</sup>

क्रिया के अनुगुण के बिना पत्नय के भी अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता। व्यवहार में क्रियापद के उपसहार से ही यथाथ का बोध होता है।<sup>२</sup>

यद्यपि जस नाम पद साक्षात् होते हैं वस क्रिया पर भी साक्षात् हात हैं। बिना कारक के क्रिया की आवादा नहीं मिलती। फिर भी क्रिया साध्य के रूप में प्रधान मानी जाती है। वाच्य से उपसगृहीत अर्थ के लिए पत्नय क्रिया का विभाग किया जाता है, पश्चात् कारक का किया जाता है। इसलिए क्रिया प्रधान और कारक अगभूत माने जाते हैं।<sup>३</sup>

आख्यात गद के मुख्य होने से वह वाच्य है। साथ ही वह विगिष्ट गद है वह अर्थ कारक पदा से भिन्न होता हुआ भी उसी गतिया से युक्त है। वह उन पदा के अर्थों का स्वतः आक्षेप कर सकता है। फलतः संपूर्ण वाच्यत्व की अभिव्यक्ति

१ वाच्य तदपि भवति य-पद चरितक्रियम् ।  
अन्तरेण त्रिगणशब्द वाच्यत्वेव हि दर्शानात् ॥

वाच्यपदीय २।३२६

इस श्लोक का द्वितीय चरण प्रकाशित वाच्यपदीय में नहीं है किन्तु हस्तलेख में मिलता है और कुछ असम-स है।

२ क्रियापत्नोपग्रहारे तु सत्यासत्यभावेन प्रतिपत्तुं यवहारोऽवतिष्ठते ।

—वाचस्पतीय २।४३१ हरिवृत्ति, हस्तलेख

३ विभागेन सर्वेषां साकाराणां सुपलभ्यते । साध्यत्वार्थो मा स्वफलप्रयुक्त प्रधानात् स्वव्यय वाच्यो पसग्रहत्वाधरथ पूर्व प्रविभायते । तेन तु प्रविभक्त साधनमल-व्य वादा मलाभय साम योद्धितानि साधनानि प्रतीयन्ते ।

—वाचस्पतीय २।४३४ हरिवृत्ति, हस्तलेख

म सम्य है। इमतिण वही वाक्य है। एग मन म वाक्य म आख्यात गण क अनिरिक्त कारक पण की मना केदन नियम अथवा अनुवाद के लिए होती है। सामान्य क आशेष म विशेष पण का उपादान नियम कल्पना है। जम 'पानु व परमज्यानि इम वाक्य म सामान्य के आशेष म विशेष का प्रयोग किया गया है। विशेष क आशेष म सामान्य का उपादान अनुवाद कहनाता है। 'वपनि श्रिया मे देव का जलवपण अथ स्वत आभासित हो जाता है। यदि देव जल वपनि कहा जाय तो देव और जल गण केवल अनुवाद का काम कर रह हैं।

आख्यातवाक्य क विद्वत्पण म अतः परि न समवन विज्ञान्य अनुवादाय वा एम वाक्याण का प्रयोग किया था। एम प्रमुक्त वा गण क ओ अथ किए जात हैं— ममुच्चय और विवलय। ममुच्चय अथ मानन वाता क मत म आख्यातवाद पण म कारक पण नियम और अनुवाद पण का काम करत हैं। नाम पण म अत्रयव्यतिरिक्त क आधार पर प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना की जाती है। एम प्रकृति अण प्राणिप त्रि म्य है। प्राणिपत्रि गक्ति कारक का प्रतिरूप है। आख्यातवाक्यवाक्यवाक्य के अनुवाय श्रिया म ही कारक पण का अर्थ भवन आता है किंतु यह सामान्य रूप म हाता है विशेष रूप म नहीं। प्रयुवन कारक पण का प्रकृति अण सामान्य म व्यवस्थित का विशेष म विज्ञान कल्पना है। एम तरह पद का प्रकृति अण नियामक हो जाता है। कारक पण म प्रकृति अण के अनिरिक्त विभक्ति अण है। विभक्तिया उपात्त गक्ति का ही जो अर्थ दूसरे उपाय स व्यक्त ण गया है उमी का नी प्रतिपादन करती हैं। इम रूप म कारक पण प्रकृत्यग द्वारा नियामक और प्रत्ययाग द्वारा अनुवादक भी हैं। पलन नियम और अनुवाद दाता साथ साथ काम कर रह हैं।

जा लाग वा का अर्थ यहा विवलय मानत हैं उनर मत म कारक पद या ता नियामक होत हैं या अनुवादक। आख्यात पद म व्यवहार माग्य गक्ति का अभिधान होता है गक्ति के आधार विशेष का नहीं। एमतिण उसक नियम के लिए नामपदा का वाक्य म व्यवहार किया जाता है। जम आशयपति श्रिया पद स विभी के आशय रूप म कम गक्ति का अर्थबोध हो जाता है किंतु आशयविशेष म उमे नियत करने लिए माणव कम जम पद जाणित जात है। कवन आशयश्रिया मे आशयसामान्य का अधिकरणत्व अथवा कल्प भवता है माणवक आशयपति इम वाक्य से माणवक विशेष मानन आ जाता है और सामान्य अर्थ छू जाता है। अत पूग नाम पद नियामक का काम कर रहा है। अथवा वपति श्रिया पद स जन बरमन का बोध होता है 'देव जल वपति इम वाक्य का भी वहा अर्थ है। अत देव और जन शब्द व्यक्त अर्थ का हा पुन विधान करले हैं अत अनुवादक हैं। इम तरह कारक पद या तो नियामक होत हैं या अनुवादक।

आख्यात पण का आधार कायायन का आख्यात माणवकारकविशेषण वाक्यम यह वार्तिक ही जान पडता है। यद्यपि सम्बन्धकारणसम्प्रदाय म एसा प्रसिद्ध नहीं है। कायायन न आख्यात को ही वाक्य माना था परंतु आख्यात क विशेष पण के रूप म अर्थय और कारक का भी स्वीकार किया था। व्याख्याकारा न सुक-





म समय है। इसलिए यही वाक्य है। इस मत में वाक्य में आस्थानात्वात् के अनिश्चित अर्थ वारक पदों की मता केवल नियम अथवा अनुवात् के लिए होती है। सामान्य के आशेष में विशेष पद का उपादान नियम कहलाना है। जैसे 'पानु व परमपति' इस वाक्य में सामान्य के आशेष में विशेष का प्रयोग किया गया है। विशेष के आशेष में सामान्य का उपादान अनुवाद कहलाता है। 'वपति' क्रिया से देव का जलवपण अर्थ स्वतः आभासित हो जाना है। यदि देव जल वपति' कहा जाय तो देव और जल शब्दों केवल अनुवाद का काम कर रहे हैं।

आस्थानात्वात् के विशेषण में भक्त हरि ने समस्त प्रियमाय अनुवादाय का इस वाक्यांग का प्रयोग किया था। इसमें प्रयुक्त वाक्यांग के दो अर्थ किए जाते हैं— समुच्चय और विरल्य। समुच्चय अर्थ मानने वाला के मत में, आस्थानात्वात् पद में वारक पद नियम और अनुवात् दोनों का काम करते हैं। नाम पद में अर्थव्यतिरिक्त के आधार पर प्रवृत्ति और प्रत्यय की कल्पना की जाती है। इनमें प्रवृत्ति अर्थ प्रातिपदिक रूप है। प्रातिपदिक गति वारक का प्रतिरूप है। आस्थानात्वात्वाक्यवात् के अनुवात् क्रिया से ही वारक पदों का अर्थ भक्त आना है किन्तु यह सामान्य रूप में होना है विशेष रूप में नहीं। प्रयुक्त वारक पदों का प्रवृत्ति अर्थ सामान्य में व्यवस्थित का विधान में विधान करता है। इस तरह पद का प्रवृत्ति अर्थ नियामक हो जाता है। वारक पद में प्रवृत्ति अर्थ के अनिश्चित विभक्ति अर्थ है। विभक्तियाँ उपात्त गति का ही, जो अर्थ हमारे उपाय से व्यक्त हो गया है, उपात्त ही प्रतिपादन करती हैं। इस रूप में वारक पद प्रवृत्त्यात्वात् द्वारा नियामक और प्रत्ययात्वात् द्वारा अनुवात्क भी हैं। फलतः नियम और अनुवाद दोनों साथ साथ काम कर रहे हैं।

जा लाग वा का अर्थ यहाँ विरल्य मानते हैं उनका मत में वारक पद या तो नियामक होते हैं या अनुवात्क। आस्थानात्वात् पद से व्यवहार योग्य गति का अभिधान होता है गति के आधार विशेष का नहीं। इसलिए उसके नियम के लिए नामपदों का वाक्य में व्यवहार किया जाता है। जैसे आश्रयति क्रिया पद से विभी के आश्रय रूप में काम गति का अर्थ बोझ होता है किन्तु आश्रयविशेष में उसे नियत करने लिए माणवक में जैसे पद जाड़ लिए जाते हैं। केवल आश्रय क्रिया में आश्रय सामान्य का अधिकरण अथवा कर्मत्व भङ्ग होता है माणवक आश्रयति इस वाक्य से माणवक विशेष सामने आ जाता है और सामान्य अर्थ छूट जाता है। अतः पूरा नाम पद नियामक का काम कर रहा है। अथवा वपति क्रिया पद से जल वरमन का बोध होता है 'देव जल वपति' इस वाक्य का भी वही अर्थ है। अतः देव और जल शब्दों केवल अर्थ का ही पुनः विधान करते हैं अतः अनुवादक हैं। इस तरह वारक पद या तो नियामक होते हैं या अनुवादक।

आस्थानात्वात् पद का आधार का यायन का आस्थानात्वात् साध्यकारक विशेषण वाक्य में यह वाक्य ही जान पड़ता है। यद्यपि सस्कृतवाकरणमभ्रदाय में एसा प्रसिद्ध नहीं है। कात्यायन ने आस्थानात्वात् को ही वाक्य माना था परन्तु आस्थानात्वात् के विशेषण के रूप में अर्थ और वारक को भी स्वीकार किया था।

रक विशेषण और सत्रियाविशेषण को भी बीच में ले लिया था। बाद में 'आख्यात सविशेषण' यही वाक्य का रूप निष्कण रूप में सामने लाया गया था। जिस आचार्य ने 'आख्यात अथवा आख्यातशब्द' को वाक्य के रूप में स्वीकार किया उसने सविशेषण पद को भी उड़ा दिया। क्योंकि सविशेषण पद के बिना भी आख्यात के सम्बन्ध से अव्यय पारक आदि विशेषणों का अध्याहार स्वभावतः ही हो जायगा। और जहाँ विशेषण नहीं है, वहाँ उसकी आवश्यकता भी नहीं है केवल आख्यात पद भी वाक्य माना जायगा।

## सघातवाद

सघातपक्ष वान आचार्यों के अनुसार एक अथपरक पञ्चसमुदाय वाक्य है।

पदसघातज वाक्यम्

वणसघातज पदम्

यह एक प्राचीन उक्ति है। भक्त हरि ने इसे उद्धृत किया है। वाक्यपदीय के टाकारारूप में अनुसार यह उक्ति सग्रहकार की है।<sup>१</sup> शौनक के बृहदश्वेता में भी मिलती है।<sup>२</sup> पञ्चसघातवाला पक्ष शबरस्वामी की भाष्य में भी अनुरूप है। इस मत के अनुसार सभी पद एक में मिलकर एक अथ की अभिव्यक्ति करते हैं। एकाथपरक पदममूह ही वाक्य है। जिस तरह तीनों श्राव मिलकर उला को धारण करते हैं जैसे चारा कहार मिलकर पालकी ढात हैं जैसे सभी साधन एक साथ पाक किया में सहायक होते हैं उसी तरह सभी पद मिलकर वाक्याय व्यक्त करने हैं— तत्र यथा प्रयोऽपि श्रावाण उला धारयति चत्वारोऽप्युद्यत्तार शिशिकाम उच्छ्रति, सर्वाण्यपि कारवाणि पाक साधयति तत्र पदाद्यपि सर्वाणि वाक्यायमववगमयति।

—शृंगारप्रकाश, पृ० २७७

सघातवाक्य मत में पञ्च की स्वतन्त्रता और अश्वेतन्त्रता के रूप में दो तरह के विवाद थे जो अग्र चरकर मीमांसा दर्शन में अभिहित 'व्यवाच' और अजिनाभिधान वाक्य से प्रसिद्ध हुए। किन्तु ये विचार कुमारिल और प्रभाकर से बहुत पहले भक्त हरि के समय में भी सामने आ चुके थे। सघात परावृत्ताना है इस वाक्य के अनुसार पञ्च वाक्य के लिए ही हैं—तत्रा पृथक् वाद व्यक्तित्व नहीं है। समुदाय समुदायी से भिन्न होता है इस आधार पर पञ्चसघात (वाक्य) से भिन्न हैं। समुदाय और समुदायी में अभिन्नता के आधार पर पञ्च वाक्य से अभिन्न भी हैं।

सघातवाक्य के अनुसार केवल वक्ष्य पञ्चसघातत्व जाति का सक्तक है। वण अग्नि वर नाग्नि वण छिन्न जग वाक्या में भी वृत्त पञ्चसघातत्व जाति का प्रयोग है। भाव (वण की सत्ता) अभाव छन्द अग्नि का वह नहीं व्यक्त करता है और न

१ वाक्यपदीय १।२३, मन्त्राभिधान (लांगर संस्करण)

२ बृहदश्वेता २।१२७

भाव अभाव, ऐतन आदि का जाति के साथ सम्बन्ध है। किसी अर्थ आधार पर प्रतिष्ठित वस्तु किसी अर्थ का प्रत्यायक नहीं होती। वीर पुरुष जिस वाक्य में एक पद का दूसरे पद के साथ सामानाधिकरण्य होने से विशेषण विशेष्यभाव रूप में अर्थ का आधिक्य प्रतीत होता है। यह आधिक्य वाक्यार्थ है। भाव यह है कि वीर शब्द से प्रथमा विभक्ति जब होती है स्वाधमात्र से होती है उस समय दूसरे पद के साथ की या विशेषण विशेष्य भाव की अपेक्षा नहीं होती। इसी तरह पुरुष पद से भी प्रथमा विभक्ति निरपेक्ष रूप में होती है। वाद में आकाशा आदि के आधार पर विशेषण विशेष्य भाव सामान्य आता है। वाद में भागित होने के कारण यह बहिरण माना जाता है। बहिरण अंतरगण्यत्वस्कार में बाधक नहीं हो सकता। भाष्यकार ने इस स्पष्ट किया है कि वाच्य में पदाद्य सम्बन्ध की उपनिधि होती है। देवदत्त गाम अम्याज गुलाम' इस वाक्य में यदि बसल देवदत्त मात्र कहा जाय तो कर्ता का निर्देश होगा, कम, क्रिया और गुण अनिदिष्ट रह जायेंगे। यदि गाम मात्र का उच्चारण किया जाय कम निर्दिष्ट होगा किन्तु कर्ता, क्रिया और गुण अनिदिष्ट रह जायेंगे। अम्याज मात्र कहने में क्रिया का बोध होगा शेष अनिदिष्ट रह जायेंगे। किन्तु यदि देवदत्त गाम अम्याज शकलाम इस पूरे वाक्य का उच्चारण किया जाय तो इसका अभिप्राय होता कि देवदत्त ही कर्ता है दूसरा नहीं। गौ ही कम है अर्थ नहीं। अम्याज ही क्रिया है दूसरा नहीं। गुलाम रमवाली का ही काली को नहीं। यह पद पहल सामान्य अर्थ की प्रतिनिधि करते हैं वाद में जिस विशेष अर्थ की अभिवक्ति होती है वह वाक्यार्थ है—

एषा पदानां सामान्ये वतमानानां यद विशेषे प्रवृत्तान्त स वाक्यार्थः ।

—महाभाष्य १।२।४५ भाग १ पु० २१८ कीलहान सम्भरण कथन के अनुसार इसका अभिप्राय है कि पदाद्य ही आकाशा आदि के सहारे सम्बन्ध रूप में वाक्यार्थ है। कथन यह भी मानते हैं कि ध्वनिव्यय नित्य वाच्य पदाद्यमसंगरूप विनिष्ठ अर्थ का वाचक है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो वाक्यार्थ अज्ञात होगा—

पदार्था एव त्वाकाशाद्योग्यतासिन्धिवन्तात् परस्परसमृष्टा वाक्यार्थ इत्यर्थः ।

ध्वनिव्यय नित्य वाच्य विनिष्ठस्याव्ययस्य पदाद्यसंसंगत्स्य वाचकम् ।

अथवा ह्यशाब्दो वाक्यार्थ स्यात् ॥<sup>१</sup>

—कथन प्रमाण १।२।४५

१ नागेश ने अशाब्द पर टिप्पणी करके हुए लिखा है कि शब्द प्रयोज्यत्व के रूप में शाब्दत्व नहीं माना जा सकता। अथवा प्रत्यय देखे हुए धूम के आधार पर भी वाक्य भी प्रयोग होने लगेगा। साथ ही सुने हुए धूम शब्द में उपनिधित धूमध्वनीय बलि का भा शाब्दत्वगति होने लगेगा। यदि शब्दत्व में अभिप्राय परसमन्विताहाररूप आवाजा और उसके कारण बहान शब्दवाच्य में कारण है तबसे ही पदा की पदार्थों में भागित भिन्न नहीं होगी। प्रमाण 'अशाब्दो यदि वाक्यार्थ पदार्थोऽपि तथा भवेत्' (वाचस्पत्येय २।१६) एता (अथ इति ने) कहा है। यदि ऐसा माना जाय कि असम्बन्ध में बोधानकता नहीं मानो जा सकता तबलिप पदार्थों के

महाभाष्य के उपयुक्त आधार पर सघातवादियों ने पद का पहले सामान्य भ्रम पश्चात् विशेष भ्रम वृत्ति माना है। अर्थात् पद जिस अर्थ का बोधक है वाक्य में भी उसी अर्थ को जताता है। पुनः समुदाय भ्रम पदों के परस्पर अन्वय होने पर जो अधिभ्रम (ससंग रूप) भासित होता है वह वाक्याथ है। वाक्याथ की अनेकपदसमर्थता सघात का प्रतीक है। सघात पद में भी तीन विकल्प भक्त हरि न दिखाए ह। एक मत में वाक्याथ की जाति की तरह प्रत्यक में परिसमाप्ति है। जाति अनेकाधित होते हुए भी प्रति आश्रय में पूर्ण रूप से रहती है। ब्राह्मणत्व जाति जिस अनेक में बसे ब्राह्मण समुदाय के एक अंग एक ब्राह्मण में भी अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ रहती है। उसी तरह वाक्याथ भी अनेक पदाश्रित होते हुए भी एक पदाश्रित भी है। उसमें एक पदाश्रित होने के कारण आवृत्ति यूनता नहीं आती और न वह खण्डित होता है। दूसरे मत के अनुसार सघात पक्ष में वाक्याथ की समुदाय परिसमाप्ति मानी जाती है। जैसे बीम रक्ष्या की पूर्णता बीस समुदाय में है प्रत्यक अर्थ में नहीं। किंतु रक्ष्या के प्रयापन में प्रत्येक अर्थ निमित्त है। उसी तरह वाक्य का समुदाय परिसमाप्ति होती है किंतु वाक्याथ प्रत्यक पद से प्रत्याख्य है। तीसरे मत के अनुसार वाक्याथ सामान्य अभिधानपूर्वक विशेषाभिधान करता है। स्वायत्त मान व्यक्त करने वाले सभी भेदों में सामानाधिकारण्यमया योग्यता होती है वही सामान्य है तथा अथवा अथवा सवथा रूप में सामान्य की कोई नियत अवस्था नहीं है। जो कुछ है वह विषय ही है। उस सामान्यावस्था में किसी भेद के अनिर्हण से और मत्याग से अर्थ को सवभक्त का समर्पण करने वाली योग्यता के द्वारा सवस्वामयी कल्पना की जाती है उस अर्थकल्पना को सम्प्रत्य विषयान्तर से हटकर विशेष विषय में नियमित करना है। इस तरह से अर्थ की योग्यता मात्र के अर्थच्छेद करने से अघारापनियम नहीं होता अर्थरूप में अनुपादान योग्यता भी उहा जाती और न वह अर्थरूप से भिन्न ही जाती है। पुण्यराज के अनुसार तीसरे मत अविताभिधानवाद के समीप है जो पदार्थ को ही वाक्याथ मानता है। उनका अनुमान यहाँ पहले दो मतों से तीसरे मत का भेद स्वरूप में है कि पूर्व मत में पद का वाक्य में भी वही अर्थ होता है जो उनका अर्थ (कवल) में होता है और मग्न सघात वाक्य होता है। तीसरे मत के अनुसार पद का अर्थ सामान्य रूप है जो विषय के सम्पत्त से विषय रूप में जान पड़ता है—

सुखं पदो व शक्तिरूपमात्रं को कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं जातिः समन्विताद्वारं न समगता ।  
कारणता का भी इसमें भ्रम है कहना समभवता है। अतः वाक्य में सामान्य मन्त्र मानना चाहिए ।

—नागरी, महाभाष्यप्रणीतावान १।१।६५

नागरी ने भाष्यकार के वाक्याथ शब्द का भा शब्द के अर्थ में विदा है—वाक्याथ  
वाक्याथरूप । विषयान्तरादि शब्दों के समुदायसुगतिनाम—महाभाष्यप्रणीतावान १।१।६६  
द्रष्टव्यं मन्त्रा ५० ६।८

१ वाक्याथ व १।४३ ४५ हरिवृत्ति ५० ३०

पुत्रपदाना वाक्ये तावानेवार्थो यावानेव केवलानाम सप्तगस्तु सघातवाच्य ।  
इह तु तथाभूत एष सामान्यरूप पदस्याथ यस्तत तत विशेषसन्निधौ तत्र  
तद विशेषविभ्रात ।

—पुण्यराज, वाक्यपदीय २।४५

सघातपक्ष में, सम्बन्ध रूप में जो वाक्याय अवगत होता है उस सम्बन्ध का कोई नियत रूप नहीं है। वह अनुमय है। असत्त्वभूत है। उसे यह एसा है आदि शब्दों द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता। वह विशेष शब्द के सन्निधि में विशेष हो जाता है और सभी जगहों में विविध रूप से अभिव्यक्त होता है। साधन और साध्य भी परस्पर नियत हैं। केवल आकाश आदि के सहारे अन्य पदार्थ का सन्निधान से नियम के रूप में व्यक्त होना है। भाव यह है कि वाक्याय त्रियाकारकसंज्ञक रूप है। त्रिया सम्बन्ध का बिना कारक की उपपत्ति नहीं होती। केवल विशेष में सम्बन्ध मानने में अमान्य अर्थ दोष आ जाते हैं। इसलिए त्रिया सामान्य अन्वित ही होती है। कारक पदों का सम्बन्धग्रहण कारक में होता है और सम्बन्धग्रहण का अनुसार अभिधान होता है। सामान्य में अन्विताभिधान घटित होता है क्योंकि व्यवहार काल में क्रिया विशेष से अन्वित रूप में ही कारक की उपपत्ति होती है। त्रिया की भी प्रतीति विशेष कारक से अन्वित रूप में होती है।

### सघातवाद की समीक्षा

यद्यपि पुण्यराज ने सघात पक्ष को अभिहिताच्यवाद के अनुकूल माना है किन्तु कुमारिल भट्ट ने स्वयं सघातवाद की समीक्षा की है और उनका अनुयायी सुचरित मिश्र और पायसारथि मिश्र आदि ने उनका अनुमोदन किया है। कुमारिल के अनुसार पदसघात को वाक्य इसलिए नहीं माना जा सकता कि पदा में परस्पर अग्रग्रह नहीं है—

एवमाद्यत सर्वेषा पथक सघातकरूपने ।

अथोपानुग्रहामावान पदाना नास्ति वाचयता ॥<sup>१</sup>

—श्लोकवार्तिक वाक्याधिकरण, ४६

भत हरि ने भी सघातवाद की आलाचना की है। यदि पद पहले सामान्य अर्थ व्यक्त करते हैं बाद में विशेष की अभिव्यक्ति करते हैं इस नियम का माना जाय तो सामान्य के तिरोहित हो जाने पर विशेष की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। देवदत्त नाम अभ्याज इस वाक्य में देवदत्त शब्द के उच्चारण करते ही सामान्य अर्थ सम्बद्ध देवदत्त की अभिव्यक्ति होगी और उसने विलीन हो जाते ही विशेष अर्थ की उपपत्ति न हो सकेगी। जो शब्द अपने आविर्भाव काल में विशिष्ट अर्थ न व्यक्त

१ इस पर सुचरित मिश्र का टिप्पणी है—पदाना पृथक्भूताना सघातार्तिना वा न वाचयन्तम् । पृथक् भूतेषु हि तावद् वाक्यसुद्धिरेव नोत्पद्यते । सघातकल्पनेऽपि न पृथक् सधो विशेषे तदाना मय्यन्वयोपानुग्रहस्य सम्बन्धवगमान् । अस्मिन्नाद्यदे वाक्ये कल्पनामात्रम् । परैकस्यापि तत्र प्रसंगान् । श्लोकवार्तिक काशिका ७।४६ हस्तलेख

अव्यपदेश्य हा जायगा ।<sup>१</sup>

किंतु भन हरि ने सघात पक्ष के समयन में भी कहा है कि जिस तरह सावयव वण स्वयं निरवयव हात हुए भी समुदित रूप में साथक हो जात है वैसे ही पद भी समुदित रूप में वाक्य बन जाते हैं साथक हो जाते हैं—

यथा सावयवा वर्णा विना वाच्येन केनचित् ।

अथवात् समुदिता वाक्यमप्येवमिष्यते ॥

—वाक्यपदीय २।५४

## सघातवर्तिनी जाति

कुछ आचार्य शास्त्रजाति को हा वाक्य मानते हैं । शब्दाकृतिवाद के पक्ष में जो तक दिए जाते हैं वही जाति वाक्यवादा में भी उपस्थित किए जाते हैं । इस मत में सम्पूर्ण वाक्य एक शब्द है और वह शब्द जातिनिबन्धन है । शास्त्राकृति वाक्यवाद का उपपत्ति भ्रमणत्व जाति का आधार पर की जाती है । भ्रमण आश्लेषविशेषजनित होता है । उसमें कम्पन रचन उत्प्रेषण आदि भेद हो सकते हैं किंतु भ्रमणत्व जाति एक ही है । भ्रमणत्व में उन भेदों का ग्रहण नहीं होता । यदि भ्रमण की आवृत्ति की जाय तो प्रत्येक आवृत्ति में भ्रमणाति त्रिया द्वारा भ्रमणत्व जाति अभिव्यक्त होती है । वण, पद वाक्य भी ध्वनियों से व्यंजित हाते हैं । इनमें भेद तुल्य और अतुल्य ध्वनि उप व्यंजन है । वण अपचित ध्वनिव्यंग्य है । उसका सद्गूण दूसरी ध्वनिया से निरवयव पद व्यंजित हाता है । उसी तरह तुल्य अतुल्य प्रचिततम ध्वनिया से वाक्य व्यंजित होता है ।<sup>२</sup>

पुण्यराज ने शास्त्राकृति वाक्यवादा की जातिस्फोट माना है ।<sup>३</sup>

दवत्त गाम अम्याज इस वाक्य में दवत्त आति वण से भिन्न अनेक आधारवाली किंतु एक जाति है । वह विभिन्न वणध्वनियों से अभिव्यक्त हाती है । निय है । निरवयव है । वही वाक्य है ।

## निरवयव वाक्यवाद

वाक्य एक है निरवयव है । वाक्य में अवयव का कल्पना वादा में की जाती है । मूल

१ वाक्यशास्त्र २।२८, २९ । पुण्यराज ने अनुसर इन श्लोकों में अभिव्यक्तिवादा और ध्वनियों का निराकरण दोनों को आनाया का है ।—‘द्वयं एविरुद्धो दूषणं’ ध्वनि वाक्य तन्मय इत्यंति श्लोकद्वयनर्त्तितम् ।

—पुण्यराज वाक्यशास्त्र २।२८

२ शास्त्राकृतिवादा के पक्ष में अनेक आचार्य श्लोकों का उल्लेख है । अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है । अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है । अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है ।

—वाक्यशास्त्र २।२९ ध्वनिवादा

३ अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है । अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है । अनेक आचार्यों ने वाक्यवादा का समर्थन किया है ।

रूप म वाक्य एक अविच्छिन्न, अपने आप म पूण वस्तु है। वाक्य के निरवयव रूप को स्पष्ट करने के लिए वैयाकरणान् चित्रबुद्धि, पानकरस मयूराण्डरस आदि का सहारा लिया है। चित्र एक है। अनस है। चित्र को हम सबप्रथम उसकी समग्रता म ही देखते हैं, वह अपने पूणरूप म हमारे सामने रहता है। बाद म चित्र क भिन भिन भाग म दृष्टि जाती है और उसे समभन अथवा समभाने के लिए उसने भिन भिन अवयवो और रगा आदि पर हम विचार करने लगते है। इसी तरह स वाक्य भी अपने आप म पूण है। निराकाण है। अवयवरहित है। उस समभने के लिए हम उस शब्दा म बाटत हैं, तोडन हैं शब्दा का एक-दूसरे स सम्बन्ध जाडकर हम वाक्य का विरलेपण करते हैं और इस तरह उसके भाग प्रस्तुत करते हैं। किन्तु मूलरूप म वाक्य म भाग नही है। वह निर्भाग है।<sup>१</sup>

पानकरस-याडव शबत म अपने आप म विलक्षण रस है। निरस है। किन्तु उसक विरलेपण करते समय मधुर तिक्क अम्ल, कटु कपाय आदि रसा अथवा औषधिया को सामने लाया जा सकता है। इसी तरह वाक्य अभिन्न है। किन्तु वण, पद आदि के रूप म उस विभक्त दिखाया जा सकता है।<sup>२</sup>

जिस तरह मयूर के अण्डे म—उसके रस म भावी मयूर के अग प्रत्यय चक्र आदि अविभक्त रूप म पडे रहते हैं बाद म विभक्त होकर अलग अलग अवयव के रूप म प्रत्यक्ष हाते हैं उसी तरह वाक्य म पद आदि अविभक्त रूप म होते हैं। उनकी अलग अलग सत्ता अवाक्यान के सहारे सामने आती है।

अथवा जिस तरह पद के सम्यक् ज्ञान के लिए हम उसे प्रकृति प्रत्यय म विभक्त करते हैं। किन्तु प्रकृति प्रत्यय काल्पनिक हैं, वास्तविक नही। उसी तरह वाक्य का समभान के लिए हम अपोद्धार पद्धति से उसे पदा म विभक्त करते हैं, किन्तु पद भी प्रकृति प्रत्यय की तरह कल्पित अथवा असत्य हैं। वास्तविक नही। वास्तविक केवल वाक्य है। ऋषभ, ऋषभ उदक यावक शब्दा म कुछ ध्वनिया समान हैं किन्तु अय की दृष्टि से निरर्थक हैं। केवल दूसरो को समझाने के लिए अवयव्यतिरेक दिवाने के लिए उनकी सत्ता मान ली जाती है। सब तरह के विभाग, प्रक्रियाभेद न जानने वाला को जनान के लिए कल्पित रूप म मान लिए जाते हैं। वस्तुतः वाक्य का विभाग नही हाता। विभाग का आश्रय यथासभव शीघ्र बोध कराने के लिए लिया जाता है। अविभक्त का विभक्त के आश्रय से पान करना लघुप्रश्नमा पद्धति है। गुरुप्रश्नमा पद्धति प्रतिपद पाठ की तरह दर म बोध कराने वाली है। कुशल व्यक्ति वह है जो भेद को अभेद के

१ चित्रयैक रूपस्य यथाभेदनिदराने ।  
नीनादिभिः समाख्यान त्रियने भिन्नलक्षणैः ॥  
तथैकैरव्ययैः निराकाणस्य एवम् ।

शब्दान्तरं समाख्यान साक्षादनुगम्यते ॥ वाक्यपदीय २। ८, ६

२ पानक रस का उदाहरण पुण्यदरान ने रखा है जो उपयुक्त नहीं है। इससे तो यह भी कहा जा सकता है कि जिस तरह मधुर तिक्क, अम्ल, लवण आदि रसों के योग से विलक्षण पानक रस की निष्पत्ति होनी है उसी तरह पदों के योग से विलक्षण वाक्य की सिद्धि होती है।



आश्रय स देगाः ।

एवप्रतिपत्तिपूर्विका हि सामान्यविशेषावज्ञोपाया सद्यप्रथमा विभागेना विभक्तस्य प्रतिपत्ति प्रकृतिप्रत्ययादि प्रतिपत्तिवत् । गुणप्रथमा यत्र सगच्छ रूपस्य प्रतिपत्तिरविभागेन प्रतिपरपाठवत् । बुद्धिसत्तु प्रतिपत्ता तद्यमेव भेदम भेदानतिशयेन पश्यति । प्रकृत्याभेदस्तु नात्र विभागनिबन्धनम् ।

—वाचस्पतीय २।११ हरिवर्ति

ब्राह्मणरश्मल शब्द म यदि ब्राह्मण शब्द वा अन्तर्गतात्तरण क्रिया जाय श्रोता को ब्राह्मण शब्द क सुती पर भी और एक तरह म अर्थ क प्रतीयमान ज्ञान पर भी उगव अभिप्राय की प्रतीति नहीं हागी और हमीनिग उगव निग ब्राह्मण शब्द अन्तर्गत ही हागा । \*सी तरह दशरत्त गाम अर्थात् जस वाच्य म भी दशरत्त शब्द शब्द का अन्तर्गत प्रत्यय ग्रहण होन पर भी उनका अन्तर्गत अर्थ नहीं है और इगतिए क पथक रूप म अन्तर्गत है ।

अत हरि क अनुसार अथम त्रम रूप म जान पडता है जा अविभागा है यह विभागापन्न सा हो जाता है । वाच्य का मूल स्वरूप अविभक्त है, एव है इगतिग पूण वाच्य एव शब्द है । अगण्ड है । अविभक्त का विभक्त अथभाग द्वता मध्यमा और विलम्बिता वक्तिया क आधार पर शन उच्च उपागु परमोपागु और गहनतम के रूप म हा गवता है । एतम वाच्यत्मात्मा शब्द क शन और उच्च रूप ता परमवच्य है किन्तु उपागु परमोपागु और सहतत्रम दूसरा द्वारा नहीं जान जा शकत । उपागु म प्राणवक्ति का योग ता रहता है कि तु शब्दध्वनि का अर्थ को सुन नहीं गवता । परमोपागु दगा म शब्द बुद्धिसमाविष्ट रहता है उसम प्राणवक्ति का समावेश अभी नहीं होना । सहतत्रम दगा म बुद्धि म शब्द अथम रूप म समाविष्ट मान जात हैं । शब्द भी अव्यक्त रूप म रहत हैं यदि त्रम सम्भावित है ता अघ्यारोप क रूप म ही । अत हरि के अनुसार वचना जब कुछ कहता चाहता है अथम रूप म अथवा मसष्ट रूप म अवस्थित शब्द पहले उसकी बुद्धि म पुन प्रयत्न प्राण करण शक्ति क सहारे त्रम रूप म परिणत हो जात है और श्रोता को भी त्रमरूप म जान पडत है । कि तु त्रम रूप म शब्द के उपलक्ष हाने से और उसी क वाच्यहारिक हाने पर भी शब्द के मूल अन्तर्गतस्वरूप का विघात नहीं होता । जस अवाग के अन्तर्गत विभाग आश्रयभेद से सभव है किन्तु मूल अवाग एक है वसे ही बुद्धिगत मूल वाच्य एक है एक शब्द रूप म है निरवयव है

ससष्टशक्तयश्च क्रमसंहारेण समाविष्टवाचा प्रयोक्तृणा शब्दा बुद्धी प्रयत्ने करणेषु च त्रमवक्तितामनुभूय प्रतिपत्तत्त्वपि त्रमप्रत्यस्तमयेनैव समावेशेन प्रतिपद्यते । तत्रोपलक्ष्युपायानुपाती क्रमवक्तितक्षितो भेदो वाच्यहारिकमपि शब्दतत्त्व नानुपतति । क्रमसंहारानाश्रयण (?) हि वाच्यहार एव विच्छिद्यते । तस्माच्च नमागादिवत् (?) प्राप्तदेशविभागाया यत्र बुद्धि स एताद्यतयोरेको वाच्यारथ्य शब्द इति ।

—वाचस्पदीय २।१६ हरिवर्ति

पुण्यराज ने इस अक्षर रूप का स्फोट नाम दिया है और अनवयव पद को व्यक्ति स्फोट का रूप माना है

परमाद्यतस्त्वसावक्रम एव स्फोटात्मा प्रतिभास । उपाधिवशात्तु तत्र बुद्धि विततेवानुगम्यत इति बोद्धव्यम् । अनेन एकोऽनवयव शब्द इत्युद्दिष्टस्य व्यक्तितस्फोटस्य स्वरूपमुक्तम् ॥

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।१३

मल्लवाङ्मि ने वाक्य के अनवयव स्वरूप का आधार भवन (द्रव्य) का अनवयव होना माना है । भवन अर्थात् भाव एक और अखण्ड होता है । वाक्य भी भाव है अतः वह भी अनवयव होगा

एकोऽनवयवत्वदो वाक्याथ । भवनस्यानवयवत्वात् । इह तु द्रवति भवतीति त्रय भवन भाव ।

—द्वारणासनयचन प० ३०३

वाङ्मि मूरि न किसी मत के आधार पर, आकार के आश्रय से अखण्ड-वाक्यवाद को उद्धृत किया है । इस मत में वण पद कल्पित है । वाक्य निर्विभाग है अथे तु श्लोकाराऽनवयव शब्द परिकल्पितवणपदविभागो वाक्यमित्याहुः ।

—स्यादवाङ्मरत्नाकर प० ६४५

वाचस्पति मिश्र ने निरवयव वाक्य का उल्लेख माया द्वारा वण और पद की मिथ्या प्रतीति के रूप में किया है

अनवयवमेव वाक्यम् । अनाद्यविद्योपदेशितालीकवणपदविभागमस्या निमित्त मिति केचित् ।

तत्त्वविदु प० ६ मद्रास संस्करण

अनवयव वाक्य की समीक्षा में धमनीति न कहा है

एकत्वेऽपि ह्यमिन्स्य त्रमशो गत्यसमवात्—१२५० (२।३)

कालभेद एव न युज्यते । नह्येकस्य त्रमेण प्रतिपत्ति युक्ता । गहीतागहीतयोर भेदात् । गहीतागहीताभावात् । त्रमेण च वाक्यप्रतिपत्ति दृष्टा । सववापय "याहारश्रवणस्मरणकालस्यानेकक्षणनिमेषानुक्रमपरिसमाप्त । वणरूपा सस्पर्निश्चक्रबुद्धिप्रतिभासिता गदात्मनो प्रतिभासनात् । वणानुक्रमप्रतीते । तद्विद्येऽप्यनुक्रमवृत्तत्वाद् वाक्यभेदस्यानुक्रमवती वाक्यप्रतीति । वणानुक्रमोपकारानपेक्षणे त यथाव्यचित प्रयुक्तरपि यत् किञ्चिद् वाक्य प्रतीयत । विना वा वणैः । त अनुक्रमवदभि अक्षरमस्योपकारायोमात् । अत्रमेण च द्याहन्तु अक्षरवत्त्वात् । गत्यंतराभावाच्च । न च वाक्ये यणं सति । तदकमेव शब्दरूप यजकानुक्रमवशादनुक्रमव वणविभागवच्च प्रतिभातीति चेत् अनुक्रमवता यजकेनाक्षरस्य व्यक्तित प्रयुज्यता । यक्ता यक्तविरोधात् । श्रवणभागे च वाक्येऽसकलधाविणो सकलवाक्यगति न स्यात् । एकस्य शकलाभावात् । सकलश्रुतिगता कस्यचित् ।

—प्रमाणवार्तिक—प० १२८।१२९ रोम संस्करण ।

धमनीति का अभिप्राय है कि यदि वाक्य को निरवयव माना जाय, उसमें

क्रम का आभास संभव नहीं होगा। काल भेद ही नहीं सिद्ध होगा। एक ही वस्तु का क्रम से ज्ञान संभव नहीं है क्योंकि गृहीत और अगृहीत के अभाव होने से यहाँ गृहीत और अगृहीत में अभेद है। वाक्य के ज्ञान में क्रम देखा जाता है। पूर्णवाक्य के उच्चारण, श्रवण, स्मरण में काल अनेकगुण व्याप्त हो सकता है। ऐसा शब्द नहीं होता जिसमें वण सस्पर्श का आभास न होता हो। (शब्द में) वण का अनुक्रम की प्रतीति होती है। यदि वण के स्पष्ट अस्पर्श प्रश्न छोड़ भी दें तो भी अनुक्रम के आधार पर वाक्यभङ्ग होता है और इसलिए वाक्य की प्रतीति में अनुक्रम रहता है। यदि वण का अनुक्रम के आधार पर वाक्य प्रतीति न मानी जाय तो वर्णों के प्रयुक्त होने पर भी वाक्यप्रतीति नहीं के बराबर होगी। अथवा अथवा प्रतीति होने लगगी। अथवा बिना वर्णों के भी होने लगगी। अनुक्रम वाले वर्णों का अक्रमवस्तु के साथ कोई सहयोग संभव नहीं है। अक्रम रूप में तो वाक्य का उच्चारण भी संभव नहीं है कोई दूसरा उपाय भी नहीं है।

यदि ऐसा मान लिया जाय कि वाक्य में वण नहीं है वाक्य अविच्छिन्न है एक शब्द रूप है, केवल व्यञ्जक ध्वनिया के अनुक्रम के कारण वाक्य भी अनुक्रमवाला और वण विभागवाला-सा जान पड़ता है तो यह भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि अनुक्रम वाले व्यञ्जक से क्रम रहित वाले अक्रम की अभिव्यक्ति नहीं मानी जा सकती। क्योंकि व्यक्त और अव्यक्त में परस्पर विरोध है। यदि वाक्य में वण विभाग न माना जाय उसे अखण्ड माना जाय तो वाक्य का केवल एक भाग के सुनने वाले को केवल उसी भाग के अर्थ का ज्ञान न हो सकेगा (जो कि होता है) अथवा अपूर्ण वाक्य के श्रवण में पूर्ण वाक्य का ज्ञान होने लगेगा (जो कि किसी की नहीं होता)।

निरवयव वाक्यवाद पर किए गए धर्मकीर्ति के उपयुक्त आक्षेपों के समाधान की चर्चा मण्डन मिश्र ने की है। मण्डन मिश्र ने पहली धर्मकीर्ति का आक्षेप का उत्तरेख विस्तार से किया है और इसका वाद उनका उत्तर प्रति संक्षेप में दिया है। उनका शब्द निम्नलिखित हैं

एकत्वेष्वपि क्रमशो गतिरनुपाख्येधोपाख्येयाकारप्रत्ययभेदेन पुरस्तात् प्रपञ्चिता ।

व्यञ्जकसादृश्यात् शब्दात्तरग्रहणाभिमान, तेन नाश्रवण सकलश्रवण वेति ।

—स्फोटसिद्धि प० २३८।२३६

मण्डन मिश्र का अभिप्राय यह है कि वाक्य को अखण्ड मानकर भी क्रम प्रतीति का निवारण अनुपाख्यय आकार और उपाख्यय आकार वाले पान भेद के आधार पर हो जायगी। वह पान अनुपाख्यय माना जाता है जिसे बुद्धि निश्चित रूप से (इदं तत् रूप में) ग्रहण नहीं कर पाई होती है। ध्वनिया से पहले अनुपाख्यय आकार वाले प्रत्यय (ज्ञान) उत्पन्न होते हैं और वे पुनः स्वयं अनुपाख्ययाकार वाले प्रत्यय बार-बार घटित होने से अभ्यास आदि से, उपाख्ययाकार प्रत्यय हो जाते हैं। वण या पान के क्रम रूप स्वीकार करने पर ध्वनिया का समुचित रूप में एक साथ न हाने के कारण अन्त्य बुद्धि से उनका ग्रहण भी ठीक से नहीं हो पाएगा। अपूर्ण भी पूर्ण स्वरूप अभिव्यक्त होकर भी जब तक बुद्धि में आविष्ट न हो पाय

हो तब तक वह अनुपलब्ध सा रहेगा और उस व्यवहार न हो सकेगा। इसलिए वणक्रम को मानकर अनुपात्तयाकार और उपात्तयोकार प्रत्यय भेद के आधार पर अखण्ड वाक्य की प्रतिपत्ति संभव है।

धमकीति के दूसरे आरोप—अवशयत्त म वाक्य के क्षेत्र एक भाग के सुनने पर उस भाग का अर्थ न भासित होना अथवा अपूर्ण वाक्य के श्रवण में पूर्ण वाक्य का ज्ञान हो जाना—के उत्तर में मण्डन मिश्र ने कहा कि व्यञ्जक ध्वनिया के सादृश्य से वण पद आदि का आभास होता है वस्तुतः वाक्य एक अवशय है। इसलिए अवशय अथवा सकलश्रवण का प्रश्न नहीं उठता। स्फोटसिद्धि के टीकाकार ऋषिपुत्र परमेश्वर (द्वितीय) के अनुसार वाक्य के निर्माणपक्ष में भी भ्रांति में भाग की प्रतीति होती है अतः अवशय या सकलश्रवण का आरोप असंगत है।

तत्र कारणेन परमार्थाभासपक्षेऽपि भास्यो ग्रहणमुपपद्यत एव न पुन अवशयवा सकलश्रवणवापद्यतेति ।

—स्फोटसिद्धि टीका पृ० २३६

वणकगोमी ने मण्डन मिश्र के उपयुक्त तक का महत्त्व नहीं दिया है। उनके मत में सकल अक्षर वण भाग के ज्ञान के समय अखण्ड वाक्य का श्रवण ही नहीं होता। दूसरी बात यह है कि वाक्य के ग्रहण के अवसर पर वण ग्रहण की बात भी अयुक्त है। वणात्मक और अवणात्मक महत्त्व नहीं माने जा सकते इसलिए व्यञ्जक और व्यञ्जक में भी सादृश्य नहीं हो सकता।

तेनयदुच्यते मण्डनेन "यजकसादृश्याच्च वाक्ये तदात्मग्रहणाभिमाने तेन नाश्रवण सकलश्रवण वेति तन्वास्तम । सकलासकलवणभागप्रतिपत्तिकाले निष्कलस्य वाक्यस्याश्रवणात् । न हि "व्यञ्जकयो सादृश्य वर्णावर्णात्मकत्वेन विसदन्त्वात् । ततश्च वाक्ये वर्णात्मग्रहणाभिमान इति यत् किंचिदेतत् ।

—वणकगोमी प्रमाणवातिक टीका, प० ८६८, ४६६

जयत भट्ट ने वाक्य के निरवयवत्व के विरोध में निम्नलिखित तर्क उपस्थित किए हैं— वाक्य निरवयव नहीं है। अवयव है। प्रति वाक्य में पद और उसके अर्थ का अलग अलग आभास स्पष्ट रूप से होता है। और जब अवयव विभाग का ग्रहण नहीं होता वाक्य और वाक्यार्थ का भी आभास नहीं होता। इसलिए मान लेना चाहिए कि अवयव प्रतीति होती है। उस प्रतीति को भ्रांत नहीं कहा जा सकता क्योंकि भ्रांति का कोई आधार होना चाहिए। सादृश्य को भ्रांति का आधार नहीं माना जा सकता क्योंकि किसका किसने साथ सादृश्य है यह स्पष्ट नहीं है। यदि कोई मुख्य अवयव प्रसिद्ध हो उनके सादृश्य से अन्य सादृश्य के न रहते हुए भी सादृश्य ज्ञान भ्रम हो सकता है, किन्तु ऐसी बात नहीं है। पूर्ववाक्य में आपने मत में भाग रहित हैं। नरसिंह में भी नरक अवयव और सिंह के अवयव अलग अलग लिखाई देते हैं ऐसा ही यहाँ भी माना जाय तो किसी वाक्य में अवयवों की सत्ता माननी पड़ेगी। चित्र आदि के जो उदाहरण निरवयवत्व के समर्थन में दिए गए हैं वे भी

उपयुक्त रहा है। चित्र म भी हस्तांगि दूर घाति क रूप म अवयव का आभास होता है। पाकरस म भी त्यक् इलासपी घाति द्रव्य का भाग होता है। संगीत म भी पदज श्रुतम, गाधार घाति स्वर पृथक् गता रगत है इमलिए य तव भी निर्भाग नहीं मान जा सकत। इमलिए वाच्य वा वाच्यव्य निर्भाग रूप म तनी स्वीकार लिए जा सकत।

—वाच्यमञ्जरी प० १२ ३५३

किसी दान क अनुसार वण पत्त स अनिर्वचन बाह्य सिधी वाच्य क त हान स वाच्यवाकर बुद्धि ही वाच्य है। तदनंतर द्रव्य जानि गुण क्रिया घाति क मतम क आभास न उक्त हान वाची बुद्धि ही वाच्यव्य है। माल राई वाच्यव्य रगत है। यवाकि पत्तम स अधिच या अनधिच क हन म उगवा निरूपण सभव रहा है

वेदिक वणपदातिरिक्तमहिभूतवाच्यमायात वाच्यवाकराबुद्धिरेव वाच्यम तदनंतर चानेकजातिगुणद्रव्यक्रियाससर्गाभासात् जायमाना बुद्धिरेव वाच्यार्थो न बाह्य । पदार्थातिरेक्षणानतिरेक्षण वा निरूपणात्तमेवात् ।

—पाथसारथि, 'तोरवानिव ध्यात्या प० ८३१

इस मत और व्याकरण का निरवयव वाच्य मत म कथल एतना ही भू है कि पहले मत क अनुसार वाच्य की बाह्य सत्ता नहीं है जबकि निरवयववाची वाच्य की बाह्य सत्ता मानत है।

कुमारिल भट्ट ने दोना मता की समीक्षा म लिया है कि थोडे स ही पत्ता से अनन्त वाच्य बनाए जा सकत है। निर्भाग वाच्यवाची की अनन्त अथ के लिए अनन्त वाक्या की और अनन्त कल्पित गवितया की कल्पना करनी पडेगी। यह गौरव है। स्वभाववादी (बुद्धिवादी) का भी अष्ट अनन्त गवित की कल्पना करनी पडेगी।

व्याकरण ने वाच्य क निरवयव स्वरूप को सिद्धान्तत मानत हुए भी वाच्य मे अवयव का आभास माना है। और अवयव की प्रत्यभिज्ञा भी स्वीकार की है। किंतु इसका कारण उनक मत म सादश्य है। वाच्य नानाजातीय अनन्त ध्वनियों स व्यप्य है। एक वाच्य की ध्वनियों भी किसी दूसरे वाच्य की यजक ध्वनिया क सत्ता है। इसलिए निर्भाग वाच्य दूसरे वाक्या क सत्ता जान पड सकता है। तरसिंह म कुछ भाग नर सदस्य है कुछ भाग सिंह सदस्य है, इस तरह अवयव के सादश्य के आधार पर सादश्य का आभास होता है। वाच्य मे भी साद य उपाधि क भेद स अवयव भेद भलकता है। ध्वनि के सत्ता से ही अवयव के भी साद य से प्रत्यभिज्ञा होती है।

१ श्लोकशक्तशुभ्र नेऽर्थे बहुशक्त्यप्रमाणता । श्लोकवार्तिक ७।१२० पृ० ८८०

२ वैधाकरणं निरवयव वेऽपि वाच्यानामवयवप्रतिभास अवयवप्र मभिज्ञाया सादश्य कारणमुक्तम् ध्वनय सत्तामानो विषयासत्य कारणमिति । नातातावापनेक वनि यय हि वाच्यम् । तं च ध्वनय प्रत्येक वाक्यातरयजकध्वनिसत्ता िभासायापि वाच्यस्य तत्तवाच्यसादश्यम, तरसिंह रीव केनचि भागेन नरस दश्य केनचि च सिद्धसादश्य भागश सत्ताया सादश्योपाधि-भेदावयवभेदमिव वाच्य दशयन्ति । ध्वनिसा श्यादेव अवयवानामपि सादश्यात् प्रत्यभिज्ञापि भवति ।

कुमारिल भट्ट के अनुसार निरवयव वाक्यवादी को महावाक्य और अवान्तर वाक्य में भेद नहीं मानना पड़ेगा। यदि भेद माना जायगा तो दो वाक्या से दो अर्थ स्वतंत्र रूप से सामने आयेंगे।<sup>१</sup>

किंतु इसका उत्तर ब्याकरण यह देते हैं कि जिस तरह स अपोद्धार पद्धति पर पद की सत्ता स्वीकार कर ली जाती है उसी तरह उसी पद्धति से अवान्तर वाक्य की भी सत्ता मान ली जायगी। यथाय दृष्टि से वाक्य में जैसे पद की सत्ता नहीं है महा वाक्य में अत्रांतरवाक्य की भी सत्ता नहीं है।

### क्रम-सिद्धान्त

क्रम को वाक्य माननेवाले आचार्य का अभिप्राय यह है कि क्रम के अतिरिक्त वाक्य की सत्ता नहीं है। वस्तुतः इस मत में वाक्य की सत्ता ही नहीं स्वीकृत है। ध्वनि समूह से अर्थवाचक समूह से जो कुछ अर्थ भासित होता है वह क्रम के कारण होता है। अतः क्रम ही मुख्य है। उससे भिन्न वाक्य नाम का किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। क्रम क्या है? क्रम शब्द से भिन्न वस्तु है। क्रम का सम्बन्ध काल से है। काल में प्रतिशब्द और अर्थानुशासक दो प्रकार की शक्तियाँ हैं। शब्द की ग्राह्य अभिव्यक्ति का दोनों शक्तियों की सक्रियता से होती है। इसलिए शब्दों को शब्द का श्रवण और अर्थ का अनुगमन कालवृत्ति के अधीन है। शब्दों में जो क्रम है उसे काल शक्ति का उनमें सन्निवेश समझना चाहिए। अतः क्रम कालशक्ति से भिन्न वस्तु नहीं है। क्रमों ही शब्देषु कालशक्तिरूपविशेषस्य निवेश इत्यस्य काणात्मनो न व्यतिरिच्यते।

—वाक्यपदीय २।५० हरिवृत्ति

पदों के नियत सन्निवेश में एक विशेषता आ जाती है। यदि विशेष ही वाक्य है तो यह विशेष क्रमज्ञ है। अतः क्रम ही वाक्य है। इस मत में पद में अर्थ सत्ता मानी जा सकती है किंतु वाक्य एक प्रज्ञाप मात्र है।

तेन वाक्यमित्यवस्तुक्रमेवेद अभिलापमात्र पदमेवाथवदिति।

—वाक्यपदीय २।५० हरिवृत्ति

क्रमशक्ति का आविभाव पदों के सन्निवेश में होता है केवल वर्णों के सन्निवेश में नहीं होता। यद्यपि अर्थ की सत्ता वर्णों में भी है किंतु अर्थवाचक केवल वर्ण से नहीं होता, पद में होना है। वर्णक्रम को पद और पदक्रम को वाक्य कहा जा सकता है किंतु वे वाचक नहीं हैं। वाचकता केवल क्रम में है।

सन्तानवृत्ति का नाम क्रम है। पद चाहें वे अन्तर्गत रूप में माने जाएँ अर्थवाचक के कारण साधक रूप में स्वीकार किये जाय, सब तरह से क्रम से उच्चरित होकर ही अर्थ से कुछ भिन्न वाक्यार्थ का प्रतिपादन करते हैं। इसलिए क्रम वाक्य है।<sup>२</sup>

१ श्लोकवार्तिक ७।१५० पृ० ८८६ बीजन्वा संस्करण

२ वाक्यपदीय २।५५

## क्रमवाद की समीक्षा

पत्रमवाक्य या म, कुमारिल व मन म मुख्य श्लोक य है कि पत्रम का वाच्य मानने पर पत्रम व भेद स वाच्य म भी भूत मान लयाग। गी गुन का जा त्रम है वही गुनो गो का नहीं है। यत् पत्रम को वाच्य माना जाय ता यह न वाच्य मानने पडग और वाक्य भेद स भ्रम भेद भी होने लयाग। वाच्यसारथि न इम म्पत् वरत हूय कहा है कि वणत्रम का प मान लना ता ठीक भी हा सतना है वरति यह भ्रम के पान म साधन है यत् वण व त्रम वत्त त्ति जाय ता वही भ्रम न्ना भनवगा। किंतु पदत्रम साधन नहीं है। मरुत म पत्रम व वत्त न्न पर भी भ्रम वही हागा। वाच्यार्थ पान म पत्रम उगायभूत नहीं है। उगायभूत मानने पर त्रमभेद से वाच्यार्थ भेद हागा।<sup>१</sup>

किंतु जसा कि ऊपर कहा गया है त्रमसिद्धान्त व समथर आगाय पत्रम को वाक्य न मानने वाक्य की सता ही नहीं मानत है। तन वाक्य न विद्यत।<sup>२</sup>

पदाख्या वाक्यमना व मरुत नप्यत तयो '६ आत्ति वक्तव्या द्वारा भन हरि न म्पत् वर दिया है कि त्रम का नाम वाच्य नहीं है किंतु त्रम वी वाम वत्ता है जो भ्रम दशन म वाक्य करता है। और इसी दृष्टि स त्रम को वाच्य कहा जाता है। अथवा त्रम और वाक्य भिन्न भिन्न वस्तु है। वाक्य का सम्बन्ध म म है। त्रम का सम्बन्ध काल से है। दूसरे म म में वाक्य म म धम है त्रम वातधम है। त्रम अपन आप म भ्रम द है।

## बुद्ध्यनुसहारवाद

गद का मुख्य स्वरूप बाह्य नहीं है आन्तरिक है। तिपि म म नहीं है। कि तु गद का प्रतीक भ्रमवा सकेतक है। और इसलिये अन्तर चिह्नो को गद कह दिया जाता है, किंतु अक्षर चिह्न स्वय शब्द नहीं है। वे वास्तविक भी नहीं है। इसी तरह बाह्य ध्वनि श द का सकेतक है। म म का वास्तविक रूप आन्तरिक है। बाह्य ध्वनि अक्षर चिह्न की तरह अनात्मिक है। अन्त शब्दत्व अक्षम है। यद्यपि वह त्रम वात भागो (वण अथवा नाद) स व्यक्त किया जाता है कि तु अपन आप म वह अत्रम है त्रम रहित है। त्रम वाले वण या ना या भाग अन्तर चिह्नो जस हैं और उही की तरह अयथाथ है। ये आन्तरिक शब्द को अभिप्रेत करते हैं। उस अत्रम रूपवाले आन्तरिक शब्द का दूसरा नाम बुद्ध्यनुसहार है। उसमें पदरूप विभक्त नहीं है। वह एक गद है। और एक शब्द शब्द को एक वाक्य कहते है

१ श्लोकवार्तिक वाच्यार्थिकरण ५५

२ श्लोकवार्तिक वाच्यार्थ, वाच्यार्थिकरण ७५५

३ वाच्यपदार्थ २१०

४ २१२

स च य बुद्ध्यनुसहारलक्षण आतर शब्दात्मा तत्र समाप्नात ।

तस्यचेत्थभावे विच्छिन्नपदरूपप्रविभागादशन एक एवाय वाक्याभ्य ।

—वाक्यपदीय २।३० हरिवृत्ति

भत हरि के मत म आतर शब्द दो शक्तियो से सगन है—अनपायिनी शक्ति और अपायिनी शक्ति । उस शब्दात्मा में प्रकाशक और प्रकाश्य गेना मपुवन है । शब्द प्रकाशक है । अथ प्रकाश्य है । यद्यपि प्रकाशक और प्रकाश्य चा तर शब्द में परस्पर सपक्न हैं, अविभक्त है, फिर भी प्रकाशक मे प्रकाश्य विभक्त जसा जान पडता है । इसी तरह से काय और कारण दोनो आन्तर शब्द में मखिल्ट हैं । कारण और काय एक दूसरे के आश्रित हैं । और अपने मूल रूप में उम शब्दात्मा में अभिन्न रूप से अवस्थित हैं । किंतु व्यवहार दशा में एक दूसरे स विभक्त जान पतत हैं । मिथ्याम्यास भावना के कारण अभेद में कल्पित भेद की सृष्टि हाती रहनी है और इस तरह जो अविगप है वह विगप जान पडना है । आतर शब्द की अनपायिनी शक्ति का सबध उसके अविभक्त स्वरूप मे है और अपायिनी शक्ति का सबध उसने प्रतिभासिक विभक्त स्वरूप से है । वस्तुत आतर शब्द तत्व में भाव अभाव का विभाग नही है । शक्ति भेद से भेद का आभास होता है ।

उस आन्तर शब्द में अस्तित्व और व्यस्तित्व भाव और अभाव उसके एकत्व का अतिश्रमण नही करते । दाना एक ही की दो शक्तिया है । अक्रम में जम का सबेदन अभाव स भाव दशा का उमीलन है । बुद्ध्यनुसहार पथ में शब्दाद्यतत्व अतर्मात्रा भिनिवेशी है । पुण्यराज ने बुद्ध्यनुसहार को ही आतरस्फाट माना है

आम्यतरस्य स्फोटस्य तु बुद्ध्यनुसहृतिरित्यनेतोददेश ।

—पुण्यराज, वाक्यपदीय टीका २।१

शब्द का मुख्य रूप शब्द की आत्मा वाक्यत्व एक है अभिन्न है अतनिवेशी है, अव्यपदेश्य है । जिस तरह से शब्द, मुख्य रूप में, बुद्धिगत है उमी तरह अथ भी बुद्धिगत है । बुद्धिगत अथ भी अव्यपदेश्य है किंतु जम से उपचित होकर प्रत्ययनियत रूप में उत्पन्न होकर बाह्य वस्तु रूप में व्यवहार का विषय बनता रहता है । शब्द नि यत्व पथ में, बुद्धिगत अथ अमगक्ति के सहारे विवत रूप में प्रकट होता है । जब तक बुद्धि में अथ का स्वरूप म्यान न प्राप्त कर लिया हो वह बाह्य वस्तु के रूप में याव हारिक अथ क्रिया में समथ नही हा सकता । इसलिए सभी बाह्य व्यवहार का आधार अन्तनिविष्ट अथ है । शब्द और अथ एक ही वाक्यात्मा के दो स्वरूप हैं । अथ भाग के द्वारा आतरिक अथ की अभिव्यक्ति हाती है । पुण्यराज ने इस आतरिक अथ को प्रतिभात्मक अखण्ड वाक्याय माना है । (वाक्यपदीय २।३१)

जैन लशन में बुद्ध्यनुसहृति को विज्ञान के सहारे स्थापित किया गया है । विज्ञान शब्द है । विज्ञान ही शब्दाय है । रूप रस घट पट आदि बाह्य वस्तु विज्ञान स उदबुद्ध होते है । विज्ञान कल्पना है अभिजल्प है बुद्ध्यनुसहृति है । वही वाक्य है ।



वही वाक्याप है ।<sup>१</sup>

प्रभाचद्र न बुद्धयनुसहृति को दो षण म विमलन कर बुद्धिवाक्यपण धीर अनुसहृतिवाक्यपण पी कलना की है ।<sup>२</sup> किंतु यह विभाग भतृ हरि द्वारा अभिप्रेत नहीं है ।

पुण्यराज ने बुद्धयनुसहारवात् को बौद्ध दशन न वाक्यस्वरूप न सदन माना है । उनके अनुसार वाक्य सिद्धान्त में वाक्य मातरिक् माकार विनेय का वाह्य अध्यास मात्र है । बौद्ध आजार अनात्ति वाक्यवागना न प्रवाध स उदबुद्ध होता है और क्रम रूप में भासमान किंतु अक्रम रूप में अवस्थित पदा स विगिष्ट रूप म उभरता है । उसना वाह्य अध्यास वाक्य है । और इस तरह बुद्धयनुसहृति का सहान्तर-सा है ।<sup>३</sup>

किंतु धमकीर्ति ने वाक्य की बद्धिप्राहिता को नहीं माना है । समस्त षण सस्वारवाली अन्त्य बुद्धि स वाक्य का अवधारण कपोलउत्पना मात्र है । अक्रम एक बुद्धिप्राह्य वाक्य संभव नहीं है । षणों का क्रम स ही भान होता है और बिना षण के सस्वश किए किसी को प्रतिपत्ति नहीं होती । जब कमी पद वाक्य का स्मरण होता है षण सत्ता क्रम रूप म ही भासित होते हैं । अक्रममा बुद्धि म पूर्वापर का भान संभव नहीं है । अत्रयया पद वाक्य भे ो म कोई भेद न रह जाय ।<sup>४</sup>

किंतु बुद्धयनुसहार पक्ष का आधार अत्य बुद्धि-प्राह्यता वाला सिद्धान्त नहीं है । अत धमकीर्ति की आलाचना युक्तिसंगत नहीं है ।

### आदिपदवाद

आद्य पद वाक्य है । जिस पद का वाक्य म सवप्रथम प्रयोग किया जाना है वह पद ही वाक्य है । उसी पद से अत्रय पदा का आक्षेप हो जाया करता है । जो पद आरंभ म प्रयुक्त होता है वे मा तो क्रिया पत् होता है या कारक पद । क्रिया और कारक परस्पर अविनाभत हात हैं उनम साहचय होता है । उनमे जो भी पहले प्रयुक्त होता है अपने अर्थ की सिद्धि के लिए अत्रय पद के अर्थ का आक्षेप कर लिया करता है । जैसे धूम स वह्नि का आक्षेप हा जाता है । और इस आधार पर प्रथम पद को कुछ आचाय वाक्य मानते है । प्रथम पद को ही वाक्य मान लेने पर अत्रय पद, इस मत म व्यय नहीं हाते । वे नियम अत्रयवा अनुवाद के लिए होते है जसा कि आख्यात-वाक्य वाद वाले भी माने है ।

भतृ हरि ने एक अत्रय प्रकार से भी इस मत का संकेत किया है । इस मत म

१ विद्वान शब्दाथ । विद्वानमेव हि शब्द तच्च विद्वान करपना बुद्धयनुसहृति वाक्याथ । द्वातरारनयचत्र प० ११५१  
 २ बुद्धि वाक्यम् । अनुसहृति वाक्यम् । प्रभवकमलमानएउ प० ४६०  
 ३ पुण्यराज, वाक्यपदीय २।१  
 ४ प्रमाणवर्तिक वाधानुमानपरिच्छेद ५० म् इ कारो संकरण

विनीप शब्द सामान्य के प्रतिरूपक मान जाते हैं और वे शब्दांतर के सबध से किसी आगतुक अर्थ से जुटकर केवल अनुवाद के रूप में शब्दांतर के अर्थ को व्यक्त करते हैं।<sup>१</sup>

पुण्यराज ने इस मत का सम्बन्ध अविताभिधानवाद से जोड़ा है। उनके अनुसार 'देवदत्त गाम् ग्राम्याज' इस वाक्य का देवदत्त शब्द 'देवदत्त गाम् वधान' इस वाक्य के देवदत्त शब्द से विशिष्ट अर्थ में ही वक्ता द्वारा प्रयुक्त होता है किन्तु भ्रम से सकल साधारण जान पड़ता है। बाद में (उत्तरकाल में) गो आदि पद के सम्बन्ध से विशिष्ट अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। आरम्भ में ही संपूर्ण विवक्षित अर्थ को मन में रखत हुए वक्ता विशिष्ट पद का व्यवहार करता है। अतः आद्य पद में ही सकल वाक्य और सकल वाक्यार्थ की परिमत्तापत्ति हो जाती है

तेषामेवोपगहीतसर्वविज्ञेये एकस्मिन् अर्थे  
बहुशब्दानाम्युपगच्छतामविकल्प कृत्स्न  
वाक्याय प्रतिपद प्रतिवण वा समाप्यते ॥

—वाक्यपदीय २।१८ हरिवृत्ति

इस मत की समीक्षा में प्रायः सभी आलोचकों ने यही कहा है कि एक ही पद से यदि समस्त वाक्यार्थ की अवगति हो जाय, अथ पद व्यर्थ मान जायेंगे। अतः हरि ने इस आशय के दो उत्तर दिए हैं। एक तो यह कि एक पद से सकल अर्थ का अभिव्यक्ति होने पर भी दूसरे पदों का सामान्य से उन अर्थों का जो पुनः जान होगा वह तब वह आवृत्ति, नियम के लिए हागी। अथवा आदि पद से उक्त अर्थ को अर्थ पद और अधिक स्पष्ट कर देते हैं। यही अनुवाद है। अतः दूसरे पदों की अव्ययता नियम और अनुवाद रूप में मान लेनी चाहिए। दूसरा यह कि आदि पद में संपूर्ण अर्थ व्यक्त करने की क्षमता होने पर भी अर्थ पद अभिव्यक्तक है। उनके साहचर्य से ही संपूर्ण अर्थ व्यक्त हो पाता है (यक्तोपव्यजना सिद्धि — वाक्यपदीय २।१८)<sup>२</sup>

पुण्यराज ने नियम और अनुवाद वाले पक्ष से सतोप नहीं व्यक्त किया है। व्यक्तोपव्यजना वाले पक्ष के विषय में एक स्थान पर उल्लेख होना निराशा व्यक्त की है किन्तु दूसरे स्थान पर उसका ममथन किया है।<sup>३</sup>

आद्यपदवाक्यवाद का आधार पर अर्थ पद वाक्यवाद की भी कल्पना की गई थी। यद्यपि अर्थवाद का उल्लेख या संकेत भन्तु हरि ने नहीं किया है किन्तु इस वाद की

१ वाक्यपदीय २।१७

२ वाक्यपदीय २।११६

३ पदानां नियमाद्यनुवादाय बोधवारण भवेत् । न चैतन् युक्तमिति वक्ष्याम । व्यक्तोपव्यजना इत्यसमाधानमेव ।

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।१८

'यदा पुनः सहभूतोभेदासौ प्रत्येक समाप्तोऽथ इत्युक्ते । यद्योक्तं "व्यक्तोपव्यजना सिद्धिरथरथ प्रतिपत्तिः" (वा० प० २।१८) इति । तदा नास्त्येव सहभूतानामुपपत्तौ कश्चिद् वैकल्यम् — पुण्यराज, वाक्यपदीय २।११६

श्रालोचना कुमारिल भट्ट ने की है। सुचरित मिथ्र और पायसारयि ने स्पष्ट कहा है कि किसी (व्याकरण) ने अत्यवाक्यवाद का उल्लेख नहीं किया है फिर भी उसी सभावना पर कुमारिल ने समीक्षा की है।

जो हेतु आद्यपदवाच्य पद में दिए जाते हैं वे ही अन्त्यपद वाच्य पद में भी दिए जाते हैं। मुख्य होने का कारण आद्यपद वाक्य है। इसी आधार पर अन्त्यपद भी वाक्य है।

अत्यपदवाच्यता पररपठिताऽपि भावत समयमुपयासादुपदर्शिता। एष हि ते म जन्त, मुख्यत्वाद् आद्यमेव पद वाक्यमिति। अत्यञ्च। तदनन्तरमप्यवगत।

—सुचरितमिथ्र श्लोकवातित्रवागिका ७।४६ हस्तलेख मल्लवादि क्षमाश्रमण ने अत्यपदवाच्यवाद का उल्लेख पूर्वपदानां हितसंस्कार का आधार पर किया है। भर्तृ हरि का अत्य ध्वनि से बुद्धि परिष्कार वाला सिद्धांत इस विचार का मूल हो सकता है।<sup>१</sup>

भोजराज एक पद में, चाहे वह आदि का हो या अंत का, वाक्य गणित मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनके मत में यदि एक शब्द में सभी पदों का अभिधायक्यता करने की शक्ति मान ली जायगी, उसीसे व्यवहार होने लगेगा। किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता। यदि गौ शब्द का उच्चारण से सवत् गोगत गुण और उसकी सभी त्रियाया की अभिव्यक्ति हो तो श्रोता को किसी एक गुण या त्रियाया को अवगत करने में कठिनाई होगी। ऐसा कोई हेतु नहीं है जिससे नियत गुण अथवा त्रियाया का ग्रहण हो सके। पदान्तर सन्निधान को नियामक नहीं माना जा सकता। वह भी जप, मन्त्र आदि के सदृश केवल स्वरूप मात्र से सन्निहित होता है अतः उसमें कोई विशिष्ट्य नहीं है।<sup>२</sup> किन्तु जसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कुछ आचार्यों के अनुसार साध्य (त्रियाया) नियत साधनवाला है। और साधन (कारक) नियतसाध्यवाला है। त्रियाया कारक का यह नियत स्वरूप प्रति पद में अभिधेय की भांति स्थित रहता है। यह नित्य नियतत्व नियम का हेतु ही जाता है। इसलिए दूसरे शब्दों के प्रयोग के सान्निध्य मात्र से बोधकर्ता को आदि पद से (अथवा केवल अत्य पद से) समग्र वाक्याद्य भलक उठता है। अतः आद्य पद वाच्य है।

नियत साधन साध्ये त्रियाया नियतसाधना।

स सन्निधानमात्रेण नियम सन प्रकाशते ॥

—वाक्यपदीय २।४७

## पृथक् सर्वपद वाक्यवाद

पृथक् सर्वपद वाक्य हैं। कुछ आचार्यों के मत में सभी पद अलग अलग वाक्य हैं यद्यपि

१ अतः अत्यपदवाच्यता । स च पूर्वपदानां हितसंस्कारापेक्षोऽत्यपदप्रत्ययः ।

—आदर्शरत्नचक्र, पृ० ६११

२ गार प्रकाश, पृ० ७७ मैमूर संस्करण

वे परस्पर साक्षात् होत हैं। इस पक्ष में प्रायः वे ही हतु उपस्थित किए जाते हैं जो सघात पक्ष में बड़े जाते हैं। जिस तरह से तीना आधा उल्टा को धारण करते हैं जैसे चारा बाहक शिविका को वहन करते हैं वैसे ही सभी पद वाक्य हैं और सभी पद अपने अपने अर्थ से युक्त रहते हैं।<sup>१</sup> 'देवदत्त गाम् अम्याज शुक्लाम्' इस वाक्य में इस मत में, प्रत्यक पद वाक्य है। क्योंकि सभी पद सर्वात्मक हैं। देवदत्त भी गवांमक है, अम्याजात्मक है क्योंकि वह प्रवक्तृ है और इसलिए उन उन रूप वाला हो जाता है। इसी तरह गो भी देवदत्त आदि के रूप में ढल जाता है अम्याज भी तदात्मक हो जाता है।<sup>२</sup> भत हरि की शब्दावली में, देवदत्त आदि पद की प्रत्यक परिममाप्ति है। पद्यक सवपद वाक्य पक्ष में प्रत्यक शब्द संपूर्ण व्यापार वाला (हृत्स्नव्यापारकारि) है। एक एक के रहने से संपूर्ण व्यापार संपन्न होता है, एक के भी न रहने से व्यापार संपन्न नहीं हो पाता है। अतः पद्यक सव पद का वाक्य मानना चाहिए।

सघातवाद और पद्यक सवपदवाद में यह भेद है कि सघात पक्ष में पद सघात परतत्र है जबकि पद्यक सवपद पक्ष में पद स्वतंत्र हैं। सघातपक्ष में पद की स्थिति शब्द के अवयव के रूप में है। शब्द (गाड़ी) के सभी अंग, मिलकर काम करते हैं किंतु प्रत्यक अंग शब्द से अलग अपना काम नहीं कर पाता है। पद्यक सवपदवाद में पद की स्थिति शिविकाबाहक जैसी है। बाहक मिलकर पालकी ढोते हैं पर स्वतंत्र भी अपना काम कर सकते हैं। यदि देव सूरि के अनुसार 'पद्यक सवपद साक्षात्पक्ष' में पद्यक विशेषण इसे सघातपक्ष से अलग करता है और सब विशेषण इसे आख्यातवाद से और आद्यपदवाद से अलग करता है

परिगति सघातादवच्छिन्नति । सर्वमिति आद्य पदात् आख्याताच्चावच्छिन्नति ।  
तेन सर्वाण्येव पदानि अर्थोयसापेक्षाणि प्रत्येकं वाक्यमित्यथ ।

—स्यादवादरत्नाकर पृ० ६४५

पुष्करराज ने पद्यक सवपदवाक्यवाद का भी सम्बन्ध अवितामिधानवाद से जोड़ा है। वाक्य में कारक सदा क्रिया का मुक्त देखन हैं क्रिया भी कारक का विरह नहीं सह पाती है। इस परस्पर सम्बन्ध के आधार पर पद स्वतंत्र वाक्य का अर्थ अवगत करा देते हैं। क्रिया और कारक की परस्पर उन्मुखता सनिधान मात्र से व्यक्त हो जाती है। इसमें परस्पर मुख्य या गौण भाव आकाशा पर निर्भर करता है। आकाशा व्यपेशाश्रित है। भत हरि के अनुसार व्यपेशा अर्थ में हो या न हो, शब्द में सना सनिविष्ट ही रहती है।<sup>३</sup> उसे शब्द व्यक्त करता है। कारक पद क्रिया में

१ पृथक् खेच खेनाथेन युक्तानि पदानि वाक्यम् ।

—दादशारण्य उक्त पृ० १०७८

२ वाक्य च पृथक् सवपदम् । यथा देवदत्त गाम् अम्याज शुक्लाम् इत्यनेकेषु पद वाक्यम् । तस्मादेव देवदत्तोऽपि हि गवात्मकोऽस्याजात्मकश्च । तथा प्रवक्तव्यं नत्तत्पक्षे । तावपि तथा पक्षे रिति ।

—दादशारण्य उक्त पृ० ४२६

३ अर्थेषु सनाममतीं वा शब्देषु यनुकारेण पुरुषो यपेक्षा मनोहते । ता शब्द एव प्रकाशयति । सा हि नित्यनिविष्टरूपव शब्दात्मनि ।

गुणभक्त होकर अथ पद की आवां ॥ करता है । त्रिया प्रघात रूप म रहकर वाक्य पदा की अपेक्षा रखती है ।<sup>१</sup>

यत्नवादि क्षमाभ्रमण ने मन्वन्वात् की एक दूसरी व्याख्या भी प्रस्तुत की है । वाच्यपदीय २।१२१ के आधार पर उक्त कहना है कि गभी शब्द का मत्तामान अर्थ है । शब्द का अर्थ क्वत्त प्रत्याप्य होता है । उक्त निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता । अपूर्व देवता, स्वयं जस शब्द का जो अर्थ भागित होना है व प्रत्यय नहीं हैं, उनका निरूपण संभव नहीं है । इसी तरह गां शब्द शब्द को भी समझना चाहिए । गमन, आगमन, गजन जस शब्द का अर्थ है इतना ही सत्य है उक्त अर्थ व्यक्त्या का निरूपण विशेष रूप में संभव नहीं है । इस सिद्धांत के आधार पर गभी पद वाच्य है ।<sup>२</sup> इस दृष्टि से पद्यक सवपद साक्षात् के दो भाग हो जाते हैं— पद्यक मन्वन्वात् और साक्षात् सवपदवाद । सुचरित मिश्र भी इस दा भाग में विभक्त करत जान पड़ते हैं ।<sup>३</sup>

बौद्ध सम्प्रदाय में भी वही-वही पद की वाक्य सत्ता दी गई है । पद ही वाक्य है । किन्तु उनकी पद की परिभाषा एक तरह से वही है जो एनायपरत पद समुदाय वाक्यवादिया की है

पदपर्यायो वाक्यम । यावदभि अथवदभि पद विवक्षिताथपरिपूरि (पूर्ति) भवति तावता समूह पदम इत्यभिधामिका । —अभिधम-लोप १०६

वचकगोभी ने भक्त हरि के नाम से एक उद्धरण दिया है जिसके अनुसार सभी पद अलग अलग अर्थवान हैं और उनमें प्रत्येक में संपूर्ण अर्थ की परिसमाप्ति होती है । सभी पदा में से जिस किसी का भी प्रथम ग्रहण हो उसमें दूसरे पदा के अर्थ समाविष्ट रहते हैं वे दूसरे पद केवल नियम या अनुवाद के लिए होते हैं

यदाह भक्त हरि —सर्वेषां पृथक् अथवत्ता सर्वेषु प्रतिशब्द कृत्स्नाथपरिसमाप्ते । तथा यदेव प्रथम पदमुपादोषते तस्मिन् सवरूपार्थोपप्राप्तिं नियमानुवाद निव धनानि पदांतराणि विज्ञायते ।<sup>४</sup>

—प्रमाणवार्तिक टीका पृ० ४६४

इस उद्धरण से भी ऐसा जान पड़ता है कि पद्यक सवपद और साक्षात् य अलग अलग भेद हैं ।

यागदशन भी सवपदवाक्य सिद्धांत का पोषक है । उसके अनुसार सभी पद में वाक्य की शक्ति है । पद वाक्य है । वक्ष इतना कहने पर भी वक्ष है ऐसा बोध देखा जाता है । पद्यक सत्ता निरपत्त नहीं होना । सवपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिः ।

१ वाच्यपदीय २।४७ ४८

२ द्वादशारनयचक्र पृ० १३३

३ पदकेपापयेऽपि वाक्यार्थादशानात् सवाचि वाच्यम् । परत्परोपहितानि पृथक् कल्पना वति ।

श्लोकवार्तिक काशिका ७।४६ हरतलेख

४ इस उद्धरण से भी स्पष्ट हो जाता है कि भक्त हरि ने वाच्यपदीय पर स्वयं वक्ति लिखी थी । यह अर्थ वाच्यपदीय २।१ पर होगा जो आज अनुपलब्ध है ।

वक्ष इत्युक्ते अस्तीति गम्यते । न सत्ता पदार्थो ध्यमिचरति । तथा न ह्यसाधना क्रिया अस्ति इति ।

—योगसूत्र व्यासभाष्य ३।१७

उपयुक्त वाक्य विकल्पा के अतिरिक्त पुण्यराज ने भीमात्मक, नयाधिक और शाक्य मत में भी वाक्य के स्वरूप का निर्देश किया है और उनका उपयुक्त वाक्य में अतर्भाव दिखाया है । उनके मत में जमिनि का वाक्यलक्षण लौकिक वाक्यलक्षण है और उसका अतर्भाव सघात पक्ष में हो जायगा । वार्तिककार के वाक्यलक्षण का भी अतर्भाव, पुण्यराज के अनुसार, सघात पक्ष में हो जायगा ।<sup>१</sup>

वाक्यदर्शन में पुण्यराज के अनुसार, पूर्व पूर्व पदसमृति संचित अन्त्यपद नष्ट होता हुआ भी अनुभव का विषय बनकर वाक्य का स्वरूप लेता है । इसका भी अतर्भाव प्रायः सघातपक्ष में हो जाता है । वाक्य दर्शन में गृहीत वाक्य का लक्षण बुद्धयनुमति पक्ष के समकक्ष है ।<sup>२</sup>

ऊपर जितने वाक्य विकल्पा का उल्लेख किया गया है इनमें किसी की विशेष प्रतिष्ठा नहीं हुई । लोक व्यवहार में एकात्मक पदसमुदाय को वाक्य माना जाता रहा और अनेक विचारणा न और बंधाकरणों में भी उस स्वीकार किया । इस दृष्टि से कुछ प्रसिद्ध वाक्यलक्षण यहाँ लिए जा रहे हैं ।

१ पदसघातत्र वाक्यम् ।—याडि ।

२ पदसमूहो वाक्यमथपरिसमाप्त्तौ ।—कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १७६

त्रिवे द्रम सस्करण

३ एकाय पदसमूहो वाक्यम् ।<sup>३</sup>—वागिका ८।१।८

४ सुपनिडन्तचया वाक्य क्रिया वा कारकाविता ।

—अमरकाण, प्रथमकाण्ड, शब्दाविधय

५ पदसमूहो वाक्यम् ।—यास ४।४।१

६ विशिष्टकाथप्रतिपादकनिराकाण्यपदसमूहो वाक्यम् ।

—बहनाथ पायगुण्ड चन्द्रालोकटीका पृ० ८

पुण्यराज के अनुसार इन सभी वाक्य विकल्पों में भक्त हरि का भुक्त्वा एक निरवयव वाक्यवाद की ओर था । पुण्यराज ने इसकी दूसरी सत्ता स्फोट दी है । स्फोट वाक्य रूप में और अतर्कित रूप में वाक्य है

टीकाकारश्चामुनेव पक्ष सूत्रकारस्याभिप्रायसमाश्रयेण युक्तियुक्त मयमान वाक्यरूप आ तरो वा निविभाग शब्दाथमयो बोधस्वभाव शब्द स्फोटलक्षण

१ अथवा मयानानेऽतर्भाव । वाक्यपदायटीका २।१

२ पुण्यराज वाक्यपदीय २।१,२

३ हरदत्त के अनुसार यहाँ काशिका में पाठ भेत् था—वचिन् एकनिःपदसमूहो वाक्यमिति पठ्यते वचिन् न निविदपि वाक्यलक्षण पठ्यते ।

एष वाक्यमिति ।

—गुण्यराज, वाक्यपदीय २।६

किन्तु भक्तु हरि १ स्वयं वाक्य विचार क प्रसंग म श्लो १ का प्रयोग प्रयोग नहा किया है ।

हेलाराज भी निरवयव वाक्यवा १ समयक हैं वाक्यस्य निरगम्य वाचक त्वाद् अन्तरापदप्रतिपत्ति विभ्रम इति ।

—हजारराज वाक्यपदीय ३।१

## वाक्य के भेद

व्यावहारिक वाक्य लक्षण को सामान्य रूपकर वाक्य भेद पर भी विचार मिनत हैं । वाक्य भेद के मुख्य आधार त्रिया पद हैं । एक त्रिया होता एक वाक्य, अनन्त क्रिया हो तो अनन्त वाक्य मानने चाहिए । किन्तु राजशेखर श्रुति इससे सहमत नहीं हैं

आख्यातपरतत्रा वाक्यवत्ति । अत वावदाख्यातमिह वाक्यानि—इत्याचार्या ।  
एकाकारतया कारकप्रामत्यकायतया च यचोवत्ते एषमेवेद वाक्यम इति  
यायावरीय ।

—वाक्य भीमासा पृ० २३ बड़ी १ स०

किर भी आख्यात क आधार पर दम तरह क वाक्या का उल्लेख वाक्य भीमासा में मिनता है

एकाख्यात । अनेकाख्यात । आवताख्यात । एकाभिधेयाख्यात । परिणताख्यात ।  
अनुवताख्यात । समुच्चिताख्यात । अयाहताख्यात । कृदभिहिताख्यात और  
अनपेक्षिताख्यात ।

भोज न इसमें एकान्तराख्यात नामक एक और भेद जोड़ कर वाक्य के ग्यारह भेद माने हैं ।<sup>१</sup> इनमें व्याकरण के विचार क्षेत्र में एकाख्यात और अनेकाख्यात इन दो रूपा पर अधिक विचार है । क्रिया विचार के प्रसंग में कहा जा चुका है कि इस विषय में पाणिनि और धातुविचार में मतभेद दिखाई देता है । पाणिनि के अनुसार अनेकाख्यात के योग में भी यदि पद साक्षात् हों एक वाक्यत्व रहता है ।

तत्रमव्रत मयते बहुष्वपि तिङ्तेषु येषु अयलक्षणा काचिद आकांक्षा विद्यते  
तेषाम् एकवाक्यत्व न यावत्यते ।

—वाक्यपदीय २।४२० हरिवृत्ति, हस्तलेख

कात्यायन एक तिङ् वाले मत के प्रवक्तक हैं । फलत

पश्य मृगां धावति ।<sup>१</sup>

अय दण्ड हरानेन

जस वाक्य एक भी है और नाना वाक्य भी है ।

अस्ति स म रोचत ।

नास्ति रम ।

भवेदपि भवत ।

स्यादपि स्यात् ।

अपि भवदनत भवत देवदत्त ।

अभिजानासि देवदत्त यत् कश्मीरपु वस्याम् तथोदन भाष्यामह ।

‘स स्वपिचति एष बुद्धयत्

जैसे वाक्य विचार भेद से एक वाक्य भी है और नाना वाक्य भी हैं । अनेक क्रिया पद होने से नाना वाक्य हैं । परस्पर साक्षात् होने से, क्रिया में परस्पर लक्ष्य लक्षण भाव होने से अथवा काल विशेष के लक्षण होने से एक वाक्य है । जो लोग वाक्य भेद का आधार बुद्धि में अर्थ का उल्लेख मानते हैं, उनके मत में भी उपयुक्त वाक्यों में एकत्रायता है ।’

महाभाष्यकार का एक वाक्य है

भवति च किञ्चिद् आचार्या क्रियमाणमपि चोदयति

—महाभाष्य २।४।६२, ६।१।६७

कौण्ट ने इस एक वाक्य भी माना है और दो वाक्य भी माना है

भवति च किञ्चिदित्येक वाक्यम् । अथवा चोदनक्रिया भवति क्रियाया

कर्त्री भवताति एकमेव वाक्यम् ।—कौण्ट प्रदीप ६।१।६७

विशेष उदाहरणा का छोट दँ तो संस्कृत में वाक्य के प्रकृत स्वरूप पर विशेष विवाद नहीं है । वाक्य में विषय में दो तत्त्व संकृत में सत्ता से परिगृहीत हैं । पहला यह है कि वाक्य में पदक्रम का कोई नियम नहीं है । केवल निपातो के प्रयोग पर कुछ नियम हैं । दूसरा यह कि वाक्य की कोई सीमा नहीं है वाक्य लम्बे-से लम्बे हो सकते हैं

न च वाक्यरूपावधिपरिग्रहे नियमोऽस्ति ।

—वाक्यपदीय २।७६ हरिवर्ति

प्रधान वाक्य और अप्रधान वाक्य के रूप में भी वाक्य पर विचार है । प्रधान वाक्य को केवल वाक्य, अथवा महावाक्य कहते हैं । अप्रधान वाक्य को अवयव वाक्य अथवा अवांतर वाक्य कहा जाता है ।

संस्कृत में द्विष् अथवा द्विगत वाक्य को भी वाक्य के एक रूप में माना गया है

वाक्याऽपि द्विगतानि दृश्यंते

न्येतो धावति । अलम्बुताना यातेति ॥

—महाभाष्य ८।२।३ प० ३८८ वीलहान स०

१ तत्र हि एतु वाक्यभेद उपेयते यत्रासी परामृश्यमान अथा बुद्धिरुल्लिखति ।



दो अथ अथवा दो प्रयोजन व्यक्त करने वाले वाक्य द्विष्ट वाक्य कह जाते हैं।  
‘द्वैत धावति श्वो दो वाक्या म बन्ता जा सक्ता है—

१—श्वेत धावति ।

२—श्वो इत धावति ।

ससृष्ट म वनिपय एत भी पत् है जो वाक्य क अथ म प्रयुक्त हात है । उन्हें  
पदवचन वाक्य कहा जाता है ।

श्रोत्रिय = जो वत् पढ़ता है ।

क्षेत्रिय = जिसका राग किसी अथ क माध्यम म चित्तिरम्य हाता है ।

इस तरह क शब्द पद हीनर भी वाक्य का नाम करत है ।

## वाक्यार्थ विचार

वाक्य के साथ साथ वाक्याथ पर भी विचार मुद्दर प्राचीन काल म आरम्भ हा गया  
था । एव तरह स वाक्याथ को सामने रखकर ही वाक्य पर विचार प्राचीन आचार्यों  
ने किया था । सग्रहकार व्याडि न वाक्याथ की प्रतिष्ठा की थी और स्पष्ट सिद्धांत  
स्थिर किया था कि पत् क स्वरूप और उसक अथ का पान वाक्याथ पर ही निर्भर  
करता है

पदानां रूपमर्थो वा वाक्यार्थोऽव जायते ।<sup>१</sup>

महाभाष्य म वाक्याथ सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण वस्तव्य मिलत हैं । एव तो यह  
क पद पहले सामान्य अथ व्यक्त करत हैं बाद म विनाप अथ व्यक्त करत हैं । पत्  
का सामान्य से विनाप मे अवस्थित हाता ही वाक्याथ है

पदानां सामान्ये वतमानाना यद विनेये अवस्थान स वाक्याथ ।

—महाभाष्य १।२।४५, भाग १ पृ० २१८, कीलहान सरकारण

कैयट ने इसका अभिप्राय निकाला है कि वाक्याथ पत्पससग रूप है ।

वाक्य ही मुख्य शब्द है और वाक्याथ ही मुख्य शब्दाथ है । किन्तु भाष्यकार का यह  
वक्तव्य अभिहित-व्यवाद का बीज माना जा सकता है ।

महाभाष्यकार का वाक्याथ के विषय म दूसरा वक्तव्य यह है कि जो कुछ  
आधिक्य रूप म सामने आता है वह वाक्याथ है । प्रातिपदिकार्थो म क्रिया के योग  
म क्रियाकृत विनेये उत्पन्न हो जाते हैं । वही आधिक्य है । वही वाक्याथ है ।<sup>२</sup>

गबर स्वामी का वाक्याथ निरूपण महाभाष्यकार के वक्तव्य के सदग है ।  
पद सामान्य वृत्ति वाला है । वाक्य विशेष वृत्ति वाला है । सामान्य म प्रवृत्त पदाथो

१ वाक्यपदीय १।२।४ इतिवृत्ति में सग्रहकार के नाम से उद्धृत पृ० ४२ लाहौर सरकारण

२ अदध्याधिक्य वाक्यार्थ स

—महाभाष्य २।३।४५, पृ० ४६२ कालहान सरकारण

प्रातिपदिकार्थानां क्रियाकृतविरोधा उपजायन्ते ।

—महाभाष्य २।३।५० पृ० ४६४

का विशेष में अवस्थान वाक्याय है ।<sup>१</sup>

हेलाराज ने भी ऐसे सम्बन्ध को वाक्याय माना है

वाक्यायश्च सामान्ये वतमानानां विशेषेऽवस्थापक सम्बन्ध ।

—हेलाराज, वाक्यपदीय गुणसमुद्देश १

वाक्याय सत्यभूत है। उसकी आत्मा किसी विशेष में स्थित नहीं है। पुण्यराज के अनुसार पानकरस की भाँति अथ विभागरहित है। पदाथ लोहे की छड़ (अथ शलाका) की तरह है। वाक्याय के सपक से उनमें प्राण प्रतिष्ठा हो जाती है ।<sup>२</sup>

पदाथ में अथवा समुदाय में वाक्याय की कही भी परिसमाप्ति नहीं होती। श्रुतग्राहिक ढग से उसके स्वरूप का विवचन नहीं हो सकता। केवल अवाख्यान के लिए वाक्य के पदा में सामासिकत्व की कल्पना कर वाक्याय का निरूपण किया जाता है। वाक्याय अपनं आप म एक है अखण्ड है ।<sup>३</sup>

अभिनवगुप्त ने भी नियत एकघनाकार वाक्याय का अवयव एकाकार रूप में ही सहज माना है। इसी दृष्टि से अनुपदकार आदि ने 'हनेभूते विवप में चार तरह के अवधारण का आश्रय लिया है। 'वाख्यान के लिए एक वाक्य के भीतर अवान्तर वाक्य व उत्थान से वाक्य भेद नहीं हाता ।<sup>४</sup>

जैसे वाक्य एक है अखण्ड है। वैसे अथ भी एक है अखण्ड है। वाक्याय का अनुगम चित्र परिचान के सदा है। जमे शब्द का कोई विभाग नहीं होता अथ का भी कोई विभाग नहीं होता ।<sup>५</sup> केवल समभक्त ममभाने के लिए अथ व स्वरूप पर विचार किया जाता है।

वाक्याय ससग रूप में अथवा भेद रूप में अथवा भेद ससग उभय रूप में गहीत होता है। ससग सम्बन्ध को कहा जाता है। भेद से तात्पर्य व्यावृत्ति से, अथ से अलग करने से है। रात्रि पुरुष कहने से पुरुष विशेष का स्वामी विशेष से स्वामी-विशेष का पुरुष विशेष से जो सम्बन्ध है वही ससग है। अपन से अथ से और स्वामी से अथ से जो व्यावृत्ति भासित होती है वह अथमिद्ध है। दो वस्तुओं का सम्बन्ध जब तक अथ सम्बन्धियों से अलग रूप में न दिखाया जाय, ससग नहीं कहनाता। यह ससगवादियों का मत है।

जो लोग भेद को वाक्याय मानते हैं उनके मत में व्यावृत्ति ही वाक्याय है। जब तक अथ रूप में गहीत ससग का सम्बन्धांतर से व्यावृत्तन न हो वह स्वरूप ही नहीं ग्रहण कर सकता। अतः अथ से व्यावृत्तन की प्रमुखता होने के कारण भेदवाणिया

१ शारद भाष्य १।१।१२, पृ० १५७ काशी सरकार

२ वाक्यायै योऽभिसम्बन्धो न तस्याःमा पृथक् स्थितः । व्यवहारे पदाधाना तदा मान प्रचक्षते ॥ वाक्यपदीय २।४४५

३ धर्कार्थत्व हि वाक्यस्य मात्रयापि प्रतीयते । वाक्यपदीय २।४४८

४ शरदप्रथमिहाधिवृत्तिविमर्शिनी, भाग १ पृ० २१७

५ शब्दस्य न विभागोऽस्ति कुतोऽर्थस्य भवि यति ।

की दृष्टि में भेद वाक्याय है।

कुछ आचार्य दोनों मतों को जोड़कर भेद और मसग दाना का वाक्याय रूप में स्वीकार करते हैं।

वाक्य से अर्थ की प्रतिपत्ति होती है किन्तु उस प्रतिपत्ति का बाद निश्चित प्रकार नहीं है। किसी को किसी रूप में प्रतिपत्ति होती है किसी का किसी रूप में। कोई आचार्य पाणिनि की प्रक्रिया के आशय से अर्थ का अवगोच्य करता है कोई किसी अर्थ व्याकरणसम्मत प्रक्रिया से। श्रोत्रिय शब्द से वह पढ़ने वाला व्यक्ति का बोध होना है किन्तु इस बोध की प्रक्रिया भिन्न भिन्न हो सकती है। किसी मत से श्रोत्रिय शब्द श्रोत्र शब्द से घ प्रत्यय से बना है और श्रात शब्द स्वतः छन्द शब्द का आरापित रूप है। किसी के मत में श्रोत्रिय शब्द श्रोत्र से विण गय कम क अर्थ में निष्पन्न होना है। गवाग्यान की प्रक्रिया भिन्न भिन्न होती है। भेद वाक्य विभाग के आधार पर हात है। रामपुर्य कहा से ससृष्ट रूप अर्थ की प्रतिपत्ति होती है राम पुर्य कहन से विभक्त रूप में। भत हरि के अनुमार भेद और मसग अध्यारोपसिद्धात, नियमसिद्धात अथवा अपनात सिद्धात की प्रक्रिया से भिन्न भिन्न व्यक्तियों की बाध कराने के उपाय मात्र है।

वाक्याय एव है अग्रण्ड है। जैसे पदाय के ज्ञान में वण के अर्थ पर ध्यान नहीं जाता वैसे ही वाक्य के अर्थ के लिए पदाय के ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती।<sup>१</sup>

इसके विपरीत कुछ आचार्य मानते हैं कि वाक्याय पदाय में सन्निविष्ट रहता है, पदाय वण के अर्थ में सन्निविष्ट रहता है। वण और पद भी अर्थवान हैं। इनके अर्थ के द्वारा ही वाक्य भी अर्थवान होता है। वाक्य और पद के अर्थ का स्पष्ट प्रतीत होते हैं किन्तु वण के अर्थ सूक्ष्म है अप्रत्यक्ष से है किन्तु वण वाचक अवश्य हैं। जिस हेतु के बल पर पठ्यावादी पद में अर्थ की कल्पना करते हैं उसी हेतु के बल पर वण वादी वण में अर्थ की कल्पना करते हैं।<sup>२</sup>

बुद्धयनुसहार वाक्यवाक्य के समथक जस आन्तर शब्द की सत्ता मानत है वैसे ही आन्तरवाक्याय की भी सत्ता स्वीकार करते हैं। संपूर्ण वाक्य एव शब्द है, उस शब्द के दो भाग हैं। एक भाग से अर्थ शब्द तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है दूसरे भाग से अर्थ अर्थ तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

अर्थाभागस्तथा तपामा तरोथ प्रकाशते

—वाक्यपदीय २।३१

सभी व्यवहार पटल अर्थ में बुद्धि में बद्धमूल होता है इसलिए सभी अर्थ आन्तरिक हैं।

भत हरि ने इस विचारधारा के पीछे किसी प्राचीन सारय अथवा आचार्य पचगिख का मन उद्धृत किया है। इस मत में अर्थ के ज्ञान की प्रक्रिया या है—विषय

१ वाक्यपदीय २।२०

२ वाक्यपदीय २।२१ २३

(वस्तु) का बुद्धि में सक्रमण होना है बुद्धि आत्मा से संपृक्त हाती है बुद्धि म जिस वस्तु का विम्ब है पुष्प भी तदात्मक हो जाता है, फलतः पुष्प को अथ ही उपलब्धि होती है। उस उपलब्धि का भोग (विभाग ?) विषय का भोग, अथ का परिचान होता है। इसमें सहायक दो शक्तियाँ हैं। भोक्तृ शक्ति और भोग्य शक्ति। ये दोनों शक्तियाँ असधीण हैं अलग अलग हैं फिर भी अविभक्त ही होकर भोग का निष्पादन करती हैं। यह भोग बुद्धि में घटित होता है। बुद्धि प्रकाशमयी है। उसमें चतय पुष्प और वस्तु दोनों ही प्रतिबिम्बित हैं। दूसरे शब्दों में बुद्धि पुष्परूप और वस्तुरूप दोनों हो जाती है। इसलिए जो विभक्त है वह अविभक्त-सा हो जाता है। विभक्त का अविभक्त सा हो जाना ही भोग है। भोक्तृ शक्ति अपरिणामी है और सक्रमणशील नहीं है। वस्तु परिणामी है। किंतु भाग्यशक्ति वस्तु में मग्न होती ही होकर वस्तुगत धर्म का अनुभव करती है। ज्ञान की प्रवृत्ति इस चतय युग्म बुद्धि शक्ति से अविच्छिन्न है। भोग और ज्ञान समान है। भोग की तरह अथ ज्ञान भी बुद्धिमत्तापूर्ण है। भोक्तृ और भोग्य शक्ति की तरह प्रतिपाद्य और प्रतिपत्तय शक्ति बुद्धि में अविभक्त ही रहती है। दूसरे शब्दों में शब्द और अथ दोनों बुद्धि में एकत्र अविभक्त ही संपन्न रहते हैं। य एक ही शब्दात्मा ने दो भेद हैं। विषय भेद से उनका विभाग कल्पित है।

वाक्याय की सत्ता बौद्ध है बुद्ध्यात्मक है। अथ मत्ता एक बुद्धि से अवमत्त होता है। वह आंतरिक है। बाह्य नहीं है। किंतु बाह्य बाह्य रूप में प्रतीत होता है और अपोद्धार के सहारे उसका विभाग किया जाता है। यो अथ विज्ञानमय है, बौद्ध है वह बाह्य रूप में प्रतिभासित होता है। बाह्य रूप में, हो चाहे वह सत्ता या असत्, उपचार के सहारे अपोद्धार पद्धति पर उस अथ का विभाग किया जाता है

सप्रत्ययाभांदा बाह्योऽथ सत्तत्त्वा विभज्यते ;

बाह्योऽथ विभागस्तु शब्दोद्धारलक्षण ॥

—वाक्यपदीय २।४४६

पुष्परत्न ने इस काविका के सप्रत्यय शब्द का अर्थ बुद्धि या विज्ञान किया है। उनके अनुसार निष्पन्न यह है कि यत् अथ विज्ञानाकार है किंतु विकल्प वासना के प्रभाव से बाह्य अथ का साथ एकाकार होकर सत्य रूप से बाह्य रूप में अवस्थित होता है शब्दाय बाह्य है। यदि असत्य रूप में अवस्थित होता है, शब्दाय बौद्ध है।

अथ के बौद्ध या बाह्य दोनों रूप में अपोद्धार समान है। वाक्यवाणी वाक्य की ही सत्ता स्वीकार करने वाले अथवा वाक्य की 'पुत्पत्ति' में पद 'पुत्पत्ति' को उपाय (भाषण) मानते हैं। पदवाणी प्रवृत्ति प्रत्यय आदि की 'पुत्पत्ति' को उपाय मानते हैं।

१ वाक्यपदीय २।३१ हरिकवि । भक्त हरि म यदां विन वाच्यो का प्रयोग किया है न वाच्य योगमूत्र 'यास माय २।६ और ४।२२ म वयो फ त्यां मिल जाते हैं। वाक्यपदीय मिश्र के अनुसार ये विचार पश्चिम में ह । भक्त हरि ने इस दशक का उल्लेख वर्तमानसमुद्र ३।३०५ में भा किया है—  
अथतनेपु सफल नैतन्मित्र रश्यने ।  
प्रतिबिम्बरूपमेष वा ह्यदनिव वनम् ॥

वाक्यो वं घान्त होने से जाकी श्रुति मन्त्राग ग रहा हा गयी । घन घाञ्ज् पठति वा आध्य लिया जाता है । गोना वा म घाञ्ज् भी घम्व है । घाञ्ज् म भी प् भगाञ्ज् की घा त घय घाञ्ज् घधित गुण है । कान्ता युञ्जि त प् का वृषाकरण भोज्ज् करता है । जा गात म प्रीतिविश्रित है वहा वाञ्ज् सग म् ग घाभासित हाता है । वाञ्ज् म प् का घाञ्ज् वाञ्ज् ग परिपठता वं घाञ्ज् पर हाता है । वाञ्ज् म स्वय विरग है । शिवाञ्ज् ग है । वाञ्ज् गुण विग म्भान है ।

जत वाञ्ज् वं शिवाञ्ज् म वाञ्ज् म वं शिवाञ्ज् म भी म्वाभित विचार वाञ्ज् म्भान म है । पुण्यराज वं भुगार वाञ्ज् म्भान म शिवाञ्ज् म्भान वं वाञ्ज् म्भान है—

- १—सप्तम वाञ्ज्
- २—सप्तम वाञ्ज्
- ३—तिराकाश पदाथ वाञ्ज्
- ४—प्रयाजन वाञ्ज्
- ५—शिया वाञ्ज्
- ६—प्रतिभा वाञ्ज्

इन छ प्रकार वं वाञ्ज् वं घनिरित्त मीमांसाञ्ज् की हृष्टि स विधि वाञ्ज्, नियोगवाञ्ज् और भावना वाञ्ज् तथा वाञ्ज् दान और बौद्ध दशन म गहीत वाञ्ज् पर भी पुण्यराज ने कुछ प्रमाण उल्ला है और उनका उपयुक्त भेदा म अतर्भव विख्याता है ।

### सप्तम वाक्याथ रूप में

जो आचाय पदसघात की वाक्य मानत हैं उनके मत म सप्तम वाक्याथ है । मत हरि ने इस मत वं आधार के लिए महाभाष्यकार की आधिक्यवाती उचित उद्धत की है । पदा मे परस्पर सम्बन्ध होने पर जो आधिक्य अवगत होता है वह अनेकपञ्चित सप्तम है वही वाक्याथ है

सम्ब धे सति यत्त्व यदाधिक्यमुपजायते ।  
वाक्याथमेव त प्राहुरनेकपदसध्यम ॥

—वाक्यपदीय २।४२

सप्तम वाक्याथ के रूप म स्वीकार करने वालो वं भी तीन विनल्प है । एक जाति के सदृश वाक्याथ को प्रत्येक म परिसमाप्ति मानता है । दूसरा सरया की

१ ज्ञानप्रतिनिमित्तय हि वासातुकारित्वेन सादृश्य सर्वत्र प्रकाराथ । सकल्पितसादृश्यस्य बह्वथ निवृत्तान् । वाञ्ज् च्वाणोत्त्रियमाद्यस्य पदस्य वाक्याथीशपरिकल्पनेन च अथवत् श्वापोद्धारो युक्त । अथापोद्धार च हि पन्थोद्धारस्य निमित्तम् । अनिमित्तो ह्यत्तरिमन् वृष्णोद्धारस्यापि प्रसंगान् तेषामपि व्युत्पत्त्या स्यात् । वाञ्ज् च्वाणोत्त्रियानिरश कारका कल्पितशारात्रियारवभाव ॥

तरह वाक्याथ की परिसमाप्ति समुदाय में मानता है। तीसरा, सामान्य विरोधी विरोध विभ्रात पक्ष का समर्थन करता है। इनका उल्लेख सघात वाक्यवाद के अन्वय पर किया जा चुका है।

वाक्याथ का विरोध स्वयं ससग है। जो आनाय वण या पद को साथक नहीं मानत, उनके मत में भी पद समुदाय से विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है

यथवानथक वणो विशिष्टोऽर्थोऽभिधीयते ।

पदरनथकरेव विशिष्टोऽर्थोऽभिधीयते ॥ —वाक्यपदीय २।४१६

वाक्य की असमाप्ति का म पदों से जो जान होता है वह इस मत में, प्रतिपत्ति का उपाय मात्र है।

अपरिसमाप्ते यद वाक्ये सामान्यमात्रे

पदाभिधेये देवदत्तादिश्रुते ज्ञानमुत्पद्यते ।

प्रतिपत्त्युपायएवाप्तौ पुरस्तात् व्याख्यात ।

—वाक्यपदीय २।४१७ हरिवृत्ति हस्तलेख

पद चाह अनथक हा अथवा उपाय के रूप में साथक हा, मदा नम से उच्चरित होने पर एक विरोध अर्थ के जनक होते हैं। वह विशेष ससग है

अनथकायुपायत्वात्पदार्थेनाथवर्ति वा ।

क्रमेणोच्चारितायाहुर्वाक्याथ भिन्नलक्षणम् ॥

—वाक्यपदीय २।५५

कुछ विचारकों के मत में अर्थ का निर्धारण असम्भवा होता है। शब्द अर्थ के स्वभाव का जान नहीं करा सकता। शब्द अर्थ के अवधारण में उपायभूत नहीं है। शब्द केवल एक प्रकार की स्मृति मात्र जगाते हैं जो अर्थ के अवभास रूप होती है। घट पट आदि शब्द बुद्धि में घट पट आदि के आकार से व्यक्त करत जान पड़ते हैं किन्तु द्रव शब्दों में आकार की अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं है। शब्द तो अर्थ को दूर हटाता है, वह अर्थ के अवबोध में विशेष सा उत्पन्न करता है। अर्थ का परिचान अशब्द व्यापार है। वह निर्विकल्प है। अभिप्राय हिमदाह शब्ददाह जैसे शब्दों में शब्द शब्द से भिन्न भिन्न अर्थ भक्तवने हैं। इसलिए मान लेना चाहिए कि शब्द में अर्थ के अवधारण का सामर्थ्य नहीं है। शब्द स्मृतिकल्प है।

सर्वत्र अशब्दमर्थानां स्वभावावधारणम् इत्येकेषां दण्डम् ।

—वाक्यपदीय २।४२४ हरिवृत्ति हस्तलेख

पुण्यराज ने, इस मत में पदार्थ को विपरीताभावातिरूप अथवा असतत्त्वातिरूप माना है। पदार्थ असत्य हैं। वाक्याथ सत्य है। पदार्थ अपना पथक अर्थ रखते हैं तो भी वाक्य में बिना अवस्थित हुए वे अर्थ के प्रयामक नहीं होत। इन्द्रिया में गति होती है किन्तु शरीर के आश्रय में ही वे अपने अपने व्यापार को कर पाती हैं। वाक्य से अलग पद में अर्थवत्ता नहीं है। वाक्य में अथवा पद में ससग रूप प्रतीत ही होना है। इसलिए वाक्याथ का स्वरूप पदार्थ से विलक्षण है और वह ससग रूप है

ससगरूप ससत्तेष्वथवस्तुषु गृह्यते ।

—वाक्यपदीय २।४२८

## ससृष्ट वाक्यार्थ रूप में

पुण्यराज के अनुसार जो आचार्य आद्यपत्यां और पुन्य गारांग मवपत्यां के ममयक हैं उनके मत में ससृष्ट वाक्याथ है। ससृष्ट वाक्याथ और ससृष्ट वाक्याथ में बतल यह भेद है कि ससृष्ट वाक्याथ पक्ष में वाक्यार्थ में पत्नियों में विगिष्टय माना जाता है। ससृष्ट वाक्याथ पक्ष में पत्नियों का परस्पर भाव ही वाक्याथ है, वाक्याथ में कोई आधिपत्य नहीं आता। दूसरे शब्दा में ससृष्ट पक्ष में पत्नियों का विगिष्टय वाक्याथ है। ससृष्ट पक्ष में विगिष्ट पदाथ ही वाक्याथ है। एक पक्ष अपने अर्थ में पत्न्य अनुगत होकर दूसरे पक्ष से जुटता है। अतः पक्ष पहल ही विगिष्ट हो गया रहता है। वह सदा विगिष्ट रूप में ही पत्न्यन्तर के सति ध्ययन में आता या अथोक्ता को अपना बोध कराना है

पूर्वरथैरनुगता अथार्थात्मा पर पर ।  
ससृष्ट एष प्रकृतस्तथाप्यवचस्तुष ॥<sup>१</sup>

—वाक्यपदीय २।४१८

## निराकाक्षपदार्थ वाक्यार्थ रूप में

कुछ आचार्यों की मान्यता है कि निराकाक्ष किन्तु विरोध विश्रान्त पत्न्य ही वाक्याथ है। यह मत ससृष्टवाद का ही एक पक्ष है। ससृष्टवाद में और इसमें भेद यह है कि उसमें पक्ष परस्पर साक्षात् होते हैं इसमें निराकाक्ष। ससृष्टपक्ष में पदाथ ही वाक्याथ नहीं है। इस मत में पदाथ ही वाक्याथ है। पदाथ विशेष विश्रान्त अवश्य है किन्तु उनका सम्बन्ध ससृष्ट न होकर असत्त्वभूत है उस ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। वह प्रत्यक्ष नहीं है। वह अनुमेय है। वह सम्बन्ध अभिधेय के स्वरूप का अतिव्रमण नहीं करता

कार्यानुमेय सम्बन्धो रूप तस्य न दृश्यते ।  
असत्त्वभूतमत्यन्तमतस्त प्रतिजानते ॥

—वाक्यपदीय २।४६

## प्रयोजन वाक्यार्थ रूप में

जिसी वचन में पद का अर्थ अभिधेय माना गया था और वाक्य का अर्थ प्रयोजन था। इस मत में प्रयोजन वाक्याथ है।

१ पुण्यराज के अनुसार ससृष्ट कारिका में ससृष्ट पक्ष का प्रतिपादन है जो अन्विताभिधानवात् में अनुकूल है—

अनेन श्लोकाभ्याम्बिधानसमायेक्यं ससृष्टं वाक्यं दर्शयति । तथा हि अभिहितार्थं वाच्यं पूरपूर्वार्थानुगतं ससृष्टं वाक्याथं । अन्विताभिधानान्तु उच्यते । अथोक्ताः पदाथः अन्विताभिधानसमायेक्यं ।  
—पुण्यराज, वाक्यपदीय २।४१८

अभिधेय पदस्वार्थो वाक्यस्वार्थ प्रयोजनम् ।

—वाक्यपदीय २।११४

यह मत अभिहितायवाद का ही एक पूरक रूप जान पड़ता है । तात्पर्याय और प्रयोजन समान हैं । वाक्यपदीयकार न इस मत की स्वयं समीक्षा की है । प्रयानन को वाक्याय मानने पर वाक्या में परस्पर सम्बन्ध दिखाना कठिन होगा । वाक्य लोके की गलाका की तरह होते हैं । उनमें परस्पर सम्बन्ध अग्नि जेम के द्वारा संभव है । किन्तु पद का अर्थ अभिधेय मानने से और वाक्य का अर्थ अग्नि जेम न मानने से, वाक्या में सम्बन्ध दुषट होगा ।

### क्रिया वाक्यार्थ रूप में

आख्यात शब्द को वाक्य मानने वाला के मत में क्रिया वाक्याय है । बिना क्रिया के अनुपग के वाक्याय की प्रतीति नहीं होती । कुछ के मत में क्रिया सत्ता गणित विशेष (कारक) से युक्त होकर तुल्य रूप में और अनुल्य रूप में भी विगिष्ट स्वरूप वाली ही होती है । कारक केवल बोध में उपायभूत होना है

इह केचित् भवते तुल्यरूपा चातुल्यरूपा च वाक्येषु विगिष्टेषु फलरूपाभ्याम्  
गणितविशेषेण युक्ता क्रिया मुण्डि कुट्टि चचिचत प्रजाता प्रतिपत्तणाम् ।

—वाक्यपदीय २।४२१ हरिवृत्ति हस्तलेख ।

मुण्डयति माणवकम्—गालक क सिर के बाल काट रहा है—इस वाक्य में मुण्डयति की ध्युत्पत्ति मुण्ड करानि के रूप में की जाती है । कुछ लोगों के मत में मुण्ड गण्य नामाया प्रवृत्ति को व्यक्त करता है किन्तु गिच करानि विशेष में होता है सामान्य में नहीं । कुछ आचार्यों के अनुसार मुण्ड घातु के गच्छेत् न क अर्थ में प्रयुक्त होता है । मुण्डयति से क्रियाविशेष का स्वभावतः अभिधान होता है

यद्यपि क्रियाविशेषानिघाषित्वे मुण्डादीनां भवोपात्त तयापि स्वामाविक्त्वादर्था-  
भिधानस्य प्रयोगादेव तदवसीयते ।

—कण्ट, महाभाष्य प्रदीप २।१।८

मुण्डयति क अर्थ में कुट्टयति का प्रयोग होता है किन्तु मुण्ड करानि की तरह कुट्ट करानि प्रयोग नहीं होता । अतः क्रिया तुल्य रूप में है और अनुल्य रूप में । दूसरे शब्दों में क्रिया क्रियातर में भिन्न विगण है ।

जा आचार्य एकत्व और नियत्व दोनों के अनुगामी हैं वे भी मानते हैं कि वाक्य में विगिष्ट क्रिया का ही बोध होना है । वह क्रिया काल, कारक वचन आदि में अनुगत होती है

एकत्वनिष्पत्त्वदर्शनस्तु भवते विगिष्टा हि क्रिया यथा सन्नव कालसाधन  
द्रव्यपुरषोपग्रहानि अनुगता वाक्येनानिधोयते ।

—वाक्यपदीय, २।४।७ हरिवृत्ति, हस्तलेख

कुछ आचार्यों के मत में क्रिया में भी गण भाग होता है ध्येय भाग और जाति भाग । क्रिया कभी ध्येय भाग में अर्थ को व्यक्त करती है कभी नामाया भाग में ।



इसके विपरीत कुछ आचार्य त्रिया म जानि अतिविक्रम भाव नही मानते हैं । जानि और अतिविक्रम वस्तु के धर्म हैं त्रिया के नहीं । त्रिया पूर्व और अतिविक्रम रूप म अपनी हुई इत तत जस सवनाम से बोध्य नहीं है । इसलिए उमम जानि अतिविक्रम ही गमय है । हो उसके सत्त्वभावापन जान पर बात दूगरी है । त्रिया म जानि अतिविक्रम व गमयका का मत है नि त्रिया म भी सामान्य और विशेष भाव देगा जाना है—तोना ही धर्मो रूप्य हैं । अतिविक्रमयोग, समुच्चय भाति म भेद व्यवहार म त्रिया का अतिविक्रम धर्म देगा जाता है । अथावति अतिविक्रम सग्या अतिविक्रम सामान्य धर्म देगा जाना है

इह केचित त्रियायामाकृतिव्यवित्तव्यवहारो नास्तोत्पद्य प्रतिपन्ना पदात्तर धर्ममेव त प्रतिजानते । विप्रकृता पूर्वापरीभूता साध्यावस्था त्रिया । तस्या इद तत इति प्रतिपत्तयमानवत्पनया व्यपदेत्पुनरावस्थायात् जातिव्यवित्तधर्मो नास्ति । केचित्तु मयते तस्यामपि सामान्यविशेषवतिरूपतामात्रमस्ति हेतु । सा तु अवचित्त व्यवित्तमागेनोपकरोति । अवचित्त सामान्यमागेन ।

—वाक्यपदीय २।४६५ हरिवृत्ति हस्तलेख

त्रियावाद की छाया म एक दार्शनिकवादा भी खडा हो गया था । वह मानता था नि जगत वस्तु मूय ह । बुद्धि ही भिन्न भिन्न व्यवहार का मूल कारण है । बुद्धि ही साध्य (त्रिया) रूप मे अथवा सिद्ध (कारण) रूप म व्यक्त होती है और अतः से उसी की प्रतीति होती है । जा कुछ बाह्य व्यवहार है वह माया इन्द्रजाल सा है । बुद्धि अपनी महिमा से उलसित होकर काल्पनिक आकार म परिणत होकर भेद का जनक होती है । वस्तुतः बुद्धि के अतिविक्रम अथ किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं है जिसम सिद्ध और साध्य का विवाद खडा हो । कुछ लोग बुद्धि की आकार भेदवाली त्रिया मानते हैं । उनके मत म बाह्य अथक्रिया की सिद्धि अन्तः तत्त्व स गठित होती है जो अपनी मात्रात्रा से किंचित विषय का निर्मास कराते है ।

अतः हरि न अथ को सबशक्तिमान माना है और प्रयोग करने वाल की विवक्षा के आधार पर वही अथ कभी सिद्धि रूप म और कभी साध्य रूप म प्रधान दिखाई देता है

सव शक्तेरथस्य य प्रवेणी यथा प्रकथ्यते सिद्धरूपेण साध्यरूपेण वा गपमावेन वा ।

—वाक्यपदीय २।४३५ हरिवृत्ति हस्तलेख

वाक्यपदीय म विधि वाक्याथ नियोग वाक्याथ और भावना वाक्याथ पर विचार नहीं मिलता । य तीना ही मीमासा दशन के विचार क विषय हैं । इनम विधि और नियोग लिङ लोट और कृत्य प्रत्यय के अथ हान के कारण केवल एक देश के छूने के कारण इन पर विचार नहीं किया गया है । भावना वाक्याथवाद क्रियावाक्याथवाद के समान है । केवल प्रकृत्यथ और प्रत्ययाथ को लेकर बयाकरण और मीमासक म विवाद है । इनके स्वरूप म विशेष अंतर नहीं है । भावना सबमक होती है त्रिया अवमक भी

होती है किन्तु दोनों ही साध्य हैं। और इस साध्य की एकता के आधार पर त्रियावाक्यायवाद भावना वाक्यायवाद को समेट लेता है।<sup>१</sup>

### प्रतिभा वाक्यार्थ रूप में

जो वाक्याय को अखण्ड अनश, मानते हैं उनका ही एक वग प्रतिभा को वाक्याय मानता है। भग हरि का एक अपना प्रतिभा दशन है। उन्होंने प्रतिभा को वाक्याय रूप में भी लिया है

विच्छेदग्रहणैर्ज्याना प्रतिभायव जायते ।

वाक्याय इति तामाहु पदार्थे रूपवादितान् ।—वाक्यपदीय २।१४४

त्वेवदसादि के अलग अलग अर्थ ग्रहण के अवसर पर उन पदा से एक विशेष प्रतिभा उदबुद्ध होती है। वही वाक्याय है। पुण्यराज के अनुसार शब्द स्फोट है और अर्थ प्रतिभा है। स्फोट लक्षण शब्द में कोई विभाग नहीं है। वाक्याय लक्षण प्रतिभा में कोई विभाग नहीं है, वाक्य और वाक्याय में अध्यात्मलक्षण सम्बन्ध है। पुण्यराज के अनुसार यह मत बयाकरणा का है

तत्र धयाकरणस्याखण्ड एवकीनवयव शब्द स्फोटलक्षणो वाक्य, प्रतिभव वाक्याय अध्यासश्च सम्बन्ध इति ।

पुण्यराज, वाक्यपदीय २।१

अस्त्यभूत पदार्थों से प्रतिभा की अभिव्यक्ति होती है। पदार्थों का परिचान अलग अलग भल ही हो भावायग्रहण के समय एक ही प्रतिभा उत्पन्न होती है वह पदार्थों से प्रतिरिक्त नहीं हानी। वस्तुतः पुण्यराज के अनुसार, प्रतिभा में एक अखण्ड भाव का परिचान अभिप्रेत है इसलिए अभिहितत्ववाद अथवा अविताभिधानवाद जैसे पदाय वाक्याय विचारपरक किसी वाद का प्रतिभा वाक्याय में कोई स्थान नहीं है

प्रतिभाया त्वेकरसव प्रतिप्रतिरिति न तत्र काचिदभिहिता वद्यां वताभिधान-  
चर्चा ।

पुण्यराज वाक्यपदीय २।१

वस्तुतः वाक्यायरूप प्रतिभा से भग हरि का अभिप्राय एक तरह की आन्तरिक बुद्धि से है। भग हरि इस बात को मानते हैं कि उस प्रतिभा को किसी अर्थ से ठीक-ठीक रूप में बताया नहीं जा सकता। वह स्वसवदनसिद्ध है। प्रतिभा बल से ही पदार्थों में परस्पर सन्धेप सा होता है। मानो प्रतिभा ही सब विषयों का आकार सा धारण कर लेती है। वह कभी किसी शब्द से अभिव्यक्त होती है और कभी अनादि-वासना-सस्कार से उदभूत होती है। शोक प्रतिभा को प्रमाण मानता है। पुण्यराज के अनुसार कालिदास की मता हि सदेह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमत करणप्रवृत्तय यह उक्ति प्रतिभा के प्रामाण्य का संकेत करती है। जिस तरह विनाय द्रव्या के परिपाक से किसी

इसके विपरीत कुछ प्राचाय त्रिया म जाति व्यक्ति भाव नहीं मानते हैं। जाति और व्यक्ति वस्तु के धर्म हैं त्रिया के नहीं। त्रिया पूर्व और धपर रूप म फनी हुई इत तत जैसे सवनाम से बोध्य नहीं है। इसलिए उगम जाति व्यक्ति नहीं गमत्र है। हो उसके सत्त्वभावापन जान पर बात दूसरी है। त्रिया म जाति व्यक्ति धर्म व समयका वा मत है कि त्रिया म भी सामान्य और विशेष भाव होगा जाना है—जाना ही धरी रूपेय है। प्रतिपाद्ययोग समुच्चय आदि म भेद व्यवहार म त्रिया का व्यक्ति धर्म होगा जाना है। अथावति अभेदकत्व सत्या आदि म सामान्य धर्म दगा जाना है।

इह केचित त्रियायामावृत्तिव्यवहारो नास्तीत्यथ प्रतिपन्ना पश्चात्तर धर्ममेव त प्रतिजानते। विप्रकृता पूर्वोपरीभूता साध्यावस्था क्रियाः सत्या इद तत इति प्रतिप्लवमानकल्पनया व्यपदेशुमगवपत्यात जातिव्यवहितधर्मो नास्ति। केचित्तु मन्वते नस्यामपि सामान्ययोग्यवृत्तिरवतामात्रमस्ति हेतु। सा तु अवचित व्यवहितभागेनोपकरोति। अवचित सामान्यभागेन।

—वाक्यपदीय २।४६५ हरिवृत्ति हस्तलग्न

त्रियावाद की छाया म एक दार्शनिकवाद भी खडा हो गया था। वह मानता था कि जगत वस्तु गूय है। बुद्धि ही भिन्न भिन्न प्रकार का मूल कारण है। बुद्धि ही साध्य (त्रिया) रूप म अथवा सिद्ध (कारक) रूप म व्यक्त होती है और गान स उसी की प्रतीति होनी है। जो कुछ बाह्य व्यवहार है वह माया इन्द्रजाल सा है। बुद्धि अपनी महिमा से उल्लसित होकर काल्पनिक आकार म परिणत सी होकर भेद का जनक होती है। वस्तुत बुद्धि के अनिश्चिन अथ किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं है जिसम सिद्ध और साध्य का विचार खडा हो। कुछ लोग बुद्धि को आकार भेदवाली क्रिया मानते है। उनके मत म बाह्य अथत्रिया की सिद्धि अन्त तत्त्व स गठित होती है जो अपनी मात्राओ से किंचित विषय का निर्मास कराते हैं।<sup>१</sup>

भत हरि न अथ को सवशक्तिमान माना है और प्रयोग करते वाले की विवक्षा के आधार पर वही अथ कभी सिद्धि रूप म और कभी साध्य रूप म प्रधान दिखाई देता है

सव शक्तेरथस्य य प्रवेशो यथा प्रक्रम्यते सिद्धरूपेण साध्यरूपेण वा योगभावेन वा।

—वाक्यपदीय २।४३५ हरिवृत्ति हस्तलग्न

वाक्यपदीय म विधि वाक्याथ नियोग वाक्याथ और भावना वाक्याथ पर विचार नहीं मिलता। य तीनों ही भीमासा दान के विचार के विषय है। इनम विधि और नियोग लिङ लोट और कृत्य प्रत्यय के अथ हाने व कारण केवल एक देश के छूने के कारण इन पर विचार नहीं किया गया है। भावना वाक्याथवा त्रियावाक्याथवाद व समान है। केवल प्रकृत्यथ और प्रत्ययाथ को लेकर व्याकरण और भीमासक म विवाद है। इनके स्वरूप म विशेष अंतर नहीं है। भावना सक्रमक होती है त्रिया अक्रमक भी

होती है किन्तु दोनों ही साध्य हैं । और इस साध्य की एकता के आधार पर त्रियावाक्या-  
यवाद भावना वाक्यायवाद को समेट लेता है ।<sup>१</sup>

### प्रतिभा वाक्यार्थ रूप में

जा वाक्याथ को अखण्ड अन्तः, मानत हैं उनका ही एक वग प्रतिभा को वाक्याथ  
मानता है । भन हरि का एक अपना प्रतिभा दसन है । उहान प्रतिभा को वाक्याथ रूप  
म भी लिया है

विच्छेदग्रहणैर्ज्याना प्रतिभायव जायते ।

वाक्याथ इति तामाहु पदार्थे रूपपादिताम ।—वाक्यपदीय २।१४४

देवदत्तादि के अलग अलग अर्थ ग्रहण के अवसर पर उन पदा से एक विशेष प्रतिभा  
उदबुद्ध होती है । वही वाक्याथ है । पुण्यराज के अनुसार शब्द स्फोट है और अर्थ  
प्रतिभा है । स्फोट लक्षण शब्द म कोई विभाग नहीं है । वाक्याथ लक्षण प्रतिभा मे  
कोई विभाग नहीं है वाक्य और वाक्याथ म अध्यासलक्षण सम्बन्ध है । पुण्यराज के  
अनुसार यह मत व्याकरण का है

तत्र वधाकरणस्याखण्ड एवकोनवयव श द स्फोटलक्षणो वाक्य, प्रतिभव  
वाक्याथ अध्यासद्वय सम्बन्ध इति ।

पुण्यराज वाक्यपदीय २।१

असत्यभूत पदार्थों से प्रतिभा की अभिव्यक्ति हाती है । पदार्थों का परिचान अलग  
अलग भने ही हो भावाथग्रहण के समय एक ही प्रतिभा उत्पन्न हाती है वह पदार्थों  
से व्यतिरिक्त नहीं होती । वस्तुतः, पुण्यराज के अनुसार प्रतिभा म एक अखण्ड भाव  
का परिचान अभिप्रेत है इसलिए अभिहितवाक्यवाद अथवा अविनाभिधानवाक्य जस  
पदाय-वाक्याय विचारपरक किसी वाद का प्रतिभा वाक्याथ म कोई स्थान  
नहीं है

प्रतिभाया त्वेकरसव प्रनिपतिरिति न तत्र काचिदभिहितवाक्याविनाभिधान-  
चर्चा ।

पुण्यराज वाक्यपदीय २।१

वस्तुतः वाक्याथरूप प्रतिभा से भत हरि का अभिप्राय एक तरह की आन्तरिक  
बुद्धि सं है । भत हरि इस बात को मानत हैं कि उस प्रतिभा का किसी अर्थ स ठीक-  
ठीक रूप म बताया नहीं जा सकता । वह स्वसवन्नसिद्ध है । प्रतिभा बल से ही पदार्थों  
म परस्पर सश्लेष सा होता है । मानो प्रतिभा ही सब विषय का आकार सा धारण कर  
लेती है । वह कभी किसी शब्द से अभिव्यक्त होती है और कभी अनादि-वाचना  
संस्कार से उदभूत होती है । लाक प्रतिभा का प्रमाण मानता है । पुण्यराज के अनुसार  
कालिदास की 'तता हि सदह पत्न्यु वस्तुषु प्रमाणमत करणप्रवक्तय यह उक्ति  
प्रतिभा के प्रामाण्य का संकेत करती है । जिस तरह विषय द्रव्या क परिपाक स किसी

विशेष अर्थ यत्न के बिना ही उग्न द्रव्य में मग्न गति स्वभावित रूप में घा जाती है उसी तरह प्रतिभा भी स्वाभावित रूप में मग्नार के घातित अर्थ निगी माधन के बिना ही प्रबुद्ध हो जाती है। यत्न में गायन की कृष्ण में माधुरी गीत भरता है ? पशिया का घामन बनान की गिशा गीत का है ? यत्न मर प्रतिभा का गाय है। पश पशिया में आहार द्वय तरना आति घात स घात आति प्रतिभा का ही हो है।<sup>१</sup> इस तरह भन हरि न भून प्रवृत्ति (इच्छित्त) और घान्तरिक भान-वृत्ति (अभ्युधान) को प्रतिभा भेद माना है। अभिव्यगुण न भन हरि की 'प्रतिभा' की परिभाषा निम्नरूप में दी है जो उपयुक्त तथ्या का निरूपण गा है

समाधान नमत्यात्मिका प्रतिभा इति तत्रभवद भन हरिप्रभतय ।

— ईश्वरप्रत्यभिभाविविनिविमिनी, ततीय भाग, पृ० २०६

## प्रतिभा के छ भेद

भन हरि के अनुसार प्रतिभा के निम्नतिगत छ भेद हैं —

- (१) स्वभावजया (स्वाभाविकी) प्रतिभा
- (२) चरणजया प्रतिभा
- (३) अभ्यास निमित्ता प्रतिभा
- (४) योग निमित्ता प्रतिभा
- (५) अदोपपादिता प्रतिभा
- (६) विशिष्टोपहिता प्रतिभा

## स्वाभाविकी प्रतिभा

पुण्यराज के अनुसार बर आदि में जो प्रतिभा देखी जाती है वह स्वाभाविकी प्रतिभा है (स्वभावेन यथा कवि वाक्यपदीय २।१५३)। महा का खण्डित हरिवृत्ति स एसा जान पडता है कि भन हरि स्वाभाविकी प्रतिभा का आधार सत्ता को मानत है। भावना अभ्यासबग सभी तरह के जान गदात्मरूप से सत्ता अथवा परा प्रवृत्ति<sup>१</sup> में लीन रहत है। उन पूर्व सस्कार का उदक्षोभ स्वभावत होता है। स्वभावजय ज्ञान ही स्वाभाविकी प्रतिभा है। जिस तरह सुपस्तावस्था में जान की सत्ता होने हुए भी वह अप्रबुद्ध ना होता है पर ना<sup>२</sup> के टूट जान पर स्वभावत वह अभिव्यक्त हो उठता है उसी तरह स्वभावजय प्रतिभा भी सस्कार रूप में अनानि अभ्यास बग सत्ता में पडी रहती है और सत्ता क भाविकार क रूप में विवत होने पर वह भी उदबुद्ध हो जाती है। पशिया आदि के घासले बनान की कला एक तरह की पनक प्रवृत्ति अथवा चिर अभ्यास सस्कार है। ऐस सस्कार स्वभावजय प्रतिभा के उपाकरण के घातक हो सवन है।

अथवा स्वभावजय प्रतिभा स अभिप्राय स्वत प्रबुद्ध आत्मजानमयी प्रतिभा

से है। वाक्यपदीयकार न स्वभाव शब्द का आत्मा के अर्थ में अनन्त बार प्रयोग किया है। उनके अनुसार कुछ ऋषि प्रतिभात्मा में विवृत प्राप्त करते हैं अर्थात् अपनी सृष्टि के साथ ही उन्हें प्रतिभा का भी परिचय हो जाता है। परिचय की प्रक्रिया को मन हरि न 'स्वप्नप्रबोध वृत्ति' कहा है। अर्थात् स्वप्न में बिना किसी शब्द के सुने ही ज्ञान होना है वैसे ही उन ऋषियों को बिना किसी कथनाये आपस आपस हो जाता है। अविद्या की यानि सत्ता स्वरूप महान् आत्मा का देखत हुए व प्रवाह प्राप्त करते हैं। स्वाभाविकी प्रतिभा स तात्पर्य इस तरह स्वतन्त्र ज्ञान वाली शक्ति से है। कुछ ऋषि विद्या में विवर्तित होते हैं अर्थात् विश्व का अविद्यामय समस्त व्यवहार उनके लिये औपचारिक रूप में ही सत्ता रखता है वस्तुतः व विद्या व नित्य तत्त्व की स्वभावतः समझते हैं। जिस तरह स्वप्न में बिना सुने शब्द का भी परिचय होना है वैसे ही व अपनी प्रज्ञा के बल से बिना किसी के बताये ही सभी वस्तु, सब ज्ञान समझ जाते हैं। इस तरह की प्रतिभा स्वाभाविकी प्रतिभा है

येषां तु स्वप्नप्रबोधवृत्त्या नित्य विभक्तपुरुषानुकारितया कारण प्रवर्तते तेषां रूपय केचित् प्रतिभात्मनि विवर्तते, सत्तालक्षण महात्मतात्मानम् अविद्यायोगिनि पश्यत प्रतिबोधेनानिसमवर्ति । वचित्तु विद्याया विवर्तते ते च स्वप्न इवाश्रोत्रगम्य शब्द प्रज्ञयथ सवमाम्नाय सवभेदशक्तियुक्त अभिन गतिपुक्त च पश्यति ।

—वाक्यपदीय १ । १४६ हृग्विति

## चरण निमित्ता प्रतिभा

पुण्यराज न चरण निमित्ता आदि प्रतिभा की व्याख्या नहीं की है। यह कह कर छोड़ दिया है कि इनके उदाहरण अल्पयोगी हैं (चरणादिपूजाहरणाभूत्यानि)। छपी हृग्विति में इस पर यह वाक्य है चरणनिमित्ता काचित् प्रतिभा । तद्यथा । कारणेनवावधतप्रकाशविशेषाणा यति (छादीनाम्) । इस कठिन वाक्य का अभिप्राय क्या है ? जान पड़ता है चरणनिमित्ता प्रतिभा का सम्बन्ध आचरण या तपस्याजय ज्ञान से है। ज्ञान को प्रवाण रूप में व्यक्त करना भल हरि की शली है। गिष्ट जना को अतीत और अनागत का भी प्रत्यक्ष सा देखने की शक्ति आ जाती है

आदिभू तप्रकाशानामनुपलुतचतस्रा

अतीतानागतज्ञान प्रत्यक्षानुवित्तिप्यते ।

अतीन्द्रियानसवेज्ञान् पश्यत्यापेण चक्षुषा ।

ये साचान वचन तेषा नानुमानेन वाध्यते ॥<sup>१</sup>

१ टाकाकर वदम ने प्रलय में मग तक का अवस्था को स्वप्नवृत्ति और मग से प्रलय तक की अवस्था को प्रबोधवृत्ति माना है (मलयात् मग यावत् मानवाय्यरशानात् स्वप्नवृत्ति । सर्गान् प्रलय यावत् भावव्यवस्था प्रबोधवृत्ति — बृहम-ब्रह्मवदोय १ । ११६ टीका) ।

२ वाक्यपदीय १ । ३७ ३८ । भवभूति के निम्नानिहित श्लोक में भी हरि की

गिष्वा या वसिष्ठ आदि जैसे मुनियों की यह अद्भुत शक्ति ही चरण निमित्ता प्रतिभा का प्रतीक है। परन्तु ऐसा अर्थ करने में एक कठिनाई है। एक योग निमित्ता प्रतिभा भी है। चरणनिमित्ता प्रतिभा को उपयुक्त रूप में ग्रहण करने पर योग निमित्ता से उभका भ्रं दितलाना कठिन हो जाता है। किसी किसी प्रज्ञाचक्षु में एक अद्भुत गति दृष्टी जाती है गहन स्थल में छिपी वस्तु को भी वे कभी कभी बताने देते हैं। इसी तरह बधिर में भी स्वप्न में दान् श्रवण का उदाहरण मिलते हैं (?)। मन हरि न अयत्र बधिर मीर अय की इस गति का उल्लस या किया है

स्वप्ने हि बधिरादीनां गत्यादिप्रतिपादनम् घनसनिदिष्टावयवानां च कुड्या दीनामवयवविभागमन्तरेणांतर्धेमादिषु सूक्ष्माणामर्चानां दग्न सवप्रथावेदुसिद्धम् ।<sup>१</sup>  
 काय में कारण गति का ग्रहण किया जाता है। अथ अति में अद्भुत दग्न क्षमता दग्नर उनमें प्रकाशमयी प्रतिभा रूप कारण का अनुमान करना सहज है। चरण निमित्ता प्रतिभा का अभिप्राय एसी ही प्रतिभा से जान पड़ता है।

### श्रम्यासनिमित्ता प्रतिभा

हरिवत्ति म ग प्रग पर सिगा है— श्रम्यास निमित्ता वाचित प्रतिभा। तद यया कपकपादीनाम । कृपकपादीना पाठ अगुद जान पड़ता है। मरी नम सम्मनि

अभ्यास के संगीत से परिचय रखने वाले भी ठीक से उह नहीं समझ पात । इने भक्त हरि ने स्पष्ट कर दिया है

परेवामसमाख्येयमभ्यासादेव जायते ।

मणिहृष्यादिविज्ञान तदविदा नानुमानिकम् ॥<sup>१</sup>

अत अभ्यासजय प्रतिभा का उदाहरण सौवर्णिक आदि की प्रतिभा को समझना चाहिये ।

## योग निमित्ता प्रतिभा

योगनिमित्ता प्रतिभा स तात्पर्य योगिया की उस शक्ति से है जिसके बल से व दूसरे मनुष्या व अभिप्राय आदि तुरन्त ठीक ठीक अवगत कर लेत है—जिसके बल से उनम सवक्तता आती है ।

## अदृष्ट निमित्ता प्रतिभा

भूल, प्रेन पिशाच आदि म दूसर पर सवार होने (परावेश) और अतथान होने की क्षमता देखी जाती है । उनम एक तरह की अदृष्ट शक्ति दखी जाती है । अदृष्टनिमित्ता प्रतिभा स भक्त हरि का अभिप्राय ऐसी ही शक्ति से है ।

## विशिष्टोपहिता प्रतिभा

कभी कभी कोई विशिष्ट व्यक्ति अपनी ज्ञान राशि का सज्जमण किसी अय म कर देते है । इसम दूसरा व्यक्ति भी उस विशेष ज्ञान का बाहक हा जाता है । कृष्ण द्वापयन (व्यास) न सज्ज म ऐसी शक्ति का सज्जमण किया था जिससे सज्ज को दिव्य दृष्टि मिल गई थी । इस तरह की अय द्वारा अय म आहित प्रतिभा का नाम विशिष्टोपहिता प्रतिभा है ।

इस तरह प्रतिभा के अनेक भेद ह । वह वाक्य प्रतिपाद्य है और सभी वाक्या का अधिष्ठान भी वही है । वह व्याकरण से परे की वस्तु है । व्याकरण के काल प्रम स विनष्ट हो जाने पर भी और अय शक्तियों के नाग हो जाने पर भी उसम शब्द बीज सनिविष्ट रहत हैं और समय पाकर वही प्रतिभा विवत प्रक्रिया के आधार पर वण पद वाक्य रूप म पुन आभासित होती है

एय प्रतिभा बहुविधापि सर्वैवागमिकवाक्यनिबन्धना वाक्यप्रतिपाद्या व्याकरणा त्ययेपि सवशक्तिप्रत्यस्तमये प्रत्यस्त मितनिविष्टान्दशकितबीजकारणात्तभू ता निधद्वबीजा घृत्तिकाले प्रथम सूक्ष्मेणापि चतमना विवतमाश्रामनुभूय क्रमेण वणवाक्यनियतामिरवस्थामि समूच्छती प्राप्तबीजपरिपाकाकारा पुन पुन व्यक्तेन रूपेण प्रत्यवमासत ।

—वाक्यपदीय २।१५३ हरिवक्ति ।



भन हरि के अनुसार करण, स्थान, प्रयत्न आदि का परिचान व्यक्त की प्रतिभा के द्वारा ही बिना किसी अर्थ के बताय आपसे आप हा जाता है । क्याकि शब्द भावना अनादि है वह पीरुपेय नही है

अनादिश्चया गब्द भावना । नह्येतस्या कश्चित पीरुपेयत्व सभवति ।  
तथा ह्यनुपदेशाध्या प्रतिभागम्या एव करणविद्यासादय ।

—वाक्यपणाय, १।१२३ हरिवृत्ति

प्रतिभा के सम्यक् अवगोध स क्षेम की प्राप्ति होती है  
तदभ्यासाच्च शब्दपूर्वक योगमधिगम्य प्रतिभा तत्त्वप्रभवः भावविकार प्रकृति  
सत्ता साध्यसाधन शक्तियुक्ता सम्यगवबुध्य नियता क्षेमप्राप्तिरिति ।

वृत्ती पृष्ठ ११८

भन हरि के आधार पर भोज ने भी प्रतिभा का स्वरूप लिया है  
स्व स्वमथमभिधापोपरतेषु पदेषु पदाथप्रतिपत्त्यनंतरमुपजायमाना इव तदिति  
ध्यपदेश्यानुपदेशमिद्धा हित्ताहितप्राप्तिपरिहारहेतु प्रवत्यनुकूला बुद्धि प्रतिभा ।  
तथाहि पदनिष घनाना पदावयवनिबन्धनाना चाथप्रत्यवभासमात्राणा अविच्छे  
देन प्रवती पदार्थ क्रमेण गह्यमाण आहितसस्कारामु बुद्धियु सर्वाथप्रत्यवभास  
ससर्गानुगहीता प्रत्यस्तमितभेदप्रत्यवभासा प्रवत्तिफलप्रसवानुमेया अभिन  
जातीयव प्रतिभा प्रत्यात्म विवतते ।

—शृगार प्रकाण प० २१३

प्रत्यक् और अनुमान के विषय म भी प्रतिभा सहायक है । जब तक प्रतिभा  
शब्द के माध्यम पूर्व अरपर का प्रत्यवमश नही करती प्रत्यक्ष शयवा अनुमान अपना  
काम नही कर पात है । मभी प्रमाण प्रतिभा स उपगृहीन होकर प्रमाणता प्राप्त  
करत हैं ।

प्रत्यक्षानुमानविषयेऽपि यावत् पूर्वापरप्रत्यवमश शब्दोत्प्लेतवान प्रतिभया न  
श्रियते तावत् प्रत्यक्षमनुमान वा स्वकाय न प्रसाधयति । प्रतिभोपगहीतानि  
सर्वप्रमाणानि प्रमाणता सभ ते ।

—शृगार प्रकाण प० २१३

भाज न पट प्रजार की प्रतिभा का बाल, अम्यास योग ध्यान और अनुध्या  
के आधार पर विभाजन किया है और इठ पूवज म क ग श्रवण जनित सस्कारा का  
उदबोधन माना है । नभा वाक्य क उच्चारण मात्र स ही प्रतिभा रूप अर्थ का उमी  
सन हा जाता है कभी निमित्तांतर क साग्निध्य म चिर यवहित भी विणिष्ट प्रतिभा  
भावनाधीज क सनिवग स वही वाक्य परपरया प्रतिभारूप स्वाय का आविभाव करता  
है । प्रतिभा वाग्याय है । (शृगार प्रकाण प० २१४)

कुमारिन भट्ट न प्रतिभा वाग्यायवाक्य का आगिन रूप म स्वीकार किया है और  
आगिन रूप म दमकी ममीगा की है । वाक्य क प्रयोजन अथवा जयत्व रूप मे  
प्रतिभा का स्वीकार करने म उन्हें काइ आपत्ति नहा है किंतु यत् प्रतिभा किसीन  
किगा रूप म बाह्य अर्थ स सम्बद्ध है ना इम वाद म आपत्ति है । बाह्य अर्थ नियत-

स्वभाव वाला जाना है। किन्तु यह ही अनुसंधान विचार, वीर पुण्य म ह्य और भी म भय उत्पन्न करता है। प्रतिभा वाक्यायवाच्य म इसकी उपपत्ति नहीं बटनी (इति वाचिन, वाक्याधिकरण ३२५ ३३०)।

## वाक्यार्थ के अनुग्राहक वाक्य के धर्म

भक्त हरि न पत्न्यादिबन्धन वाक्यधर्मों का उल्लेख किया है। वाक्य के ऐसे धर्म लक्षण नाम से भी उन दिना ज्ञात थे। भक्त हरि ने वाक्यपत्नीय के तृतीय काण्ड म द्वा पर विशेष विचार किया था। किन्तु वह भाग (लक्षण समुद्देश) दशवीं शताब्दी तक लुप्त हो चुका था। लक्षणा के एक भेद वाचा पर विशेष विचार 'वाचा समुद्देश' म भक्त हरि न किया था। वह भी आज अनुपलब्ध है। किन्तु वाक्यशास्त्र म लक्षणा की एक लम्बी सूची वाक्य के धर्म के रूप म मिलती है। पुण्यराज ने उह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। भोज न भी शृंगार प्रकाश म वाक्यपत्नीय के आश्रय से इन वाक्यधर्मों पर विचार किया है। डा० वी० राघवन का ध्यान इस पर गया था और उहाने भक्त हरि, पुण्यराज और भोज द्वारा व्यवहृत वाक्यधर्मों का तुलनात्मक उल्लेख अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ भोज के शृंगार प्रकाश' म किया है।<sup>१</sup>

लक्षण अनुपपत्ति के विचार के आधार पर कहा जा चुका है कि भक्त हरि ने लक्षणा की मस्या विचार भेद में छ, बारह अथवा चौतीस बताई है। किन्तु य छ बारह अथवा चौतीस लक्षण कौन-कौन हैं इसका सकेत वाक्यपत्नीय म नहीं है। भक्त हरि न जिन नामों को गिनाया है व चौतीस से अधिक हैं। पुण्यराज ने इस समस्या का सुलभाने की चेष्टा की है। उनके अनुसार इन लक्षणा का सम्बन्ध मूल रूप म मीमांसा दान से है। पद पत्न्या के विचार के अवसर पर इन लक्षणा पर विचार उप योगी समझ कर भक्त हरि ने इह अपनाया है।

जगति का मीमांसादशन बारह अध्यायों म विभक्त है। इसके पहले छ अध्यायों में प्रत्ययविहित धर्म-धर्मों की इतिवृत्तयता पर विचार है। दूसरे छ अध्यायों म अविहित इतिवृत्तयता पर विचार है।

मीमांसादशन के पहले छ अध्यायों को प्रकृति पटक कहा जाता है। इहे उपन्यास पटक भी कहते हैं।

प्रथम अध्याय म विधि अथवा मन्त्र और स्मृति पर विचार है गुणविधि और नामधेय का उल्लेख है सदिग्ध अर्थों का वाक्यगोप के सहारे अर्थनिर्णय की प्रक्रिया बताई गई है। इत्यन्त का प्रस्ताव्य (विधि) मुख्य है और अर्थ प्रासंगिक हैं।

द्वितीय अध्याय म प्रधान अप्रधान भिन्न अभिन्न पर विचार है। पठविधि वम भेद का विवेचन है। मुख्य प्रतिपाद्य भेद है।

तृतीय अध्याय म श्रुति लिङ्ग वाक्य, प्रकरण स्थान और समाख्यान द्वारा शेषविनियोगलक्षण वर्णित है। शेषगोविभाव प्रतिपाद्य है।

भक्त हरि के अनुसार करण, स्थान, प्रयत्न आदि का परिचयान व्यभिक्त की प्रतिभा के द्वारा ही बिना किसी अर्थ के बताया आपसे आप हो जाता है। व्याक्ति गद भावना अनादि है वह पौष्ट्य नहीं है

अनादिश्चया शब्द भावना । ननु तस्या कथंचित् पौरुषेयत्व सम्भवति । तया ह्यनुपदेशसाध्या प्रतिभागम्या एव करणव्यासादय ।

—वाक्यपनीय, १।१२३ हरिवक्ति

प्रतिभा के सम्यक् अवगोच स क्षेम की प्राप्ति होगी है तदभ्यासाच्च शब्दपूर्वक योगमधिगम्य प्रतिभा तत्त्वप्रभवा भावविकार प्रकृति सत्ता साध्यसाधन शक्तियुक्ता सम्यगवबुध्य नियता क्षेमप्राप्तिरिति ।

वही, पृष्ठ ११८

भक्त हरि के आधार पर भाज ने भी प्रतिभा का स्वरूप दिया है स्व स्वमयमभिधापोपरनेषु पदेषु पदाथप्रतिपत्त्यनंतरमुपजायमाना इद तदिति व्यपदेश्यानुपदेशमिद्धा हिताहितप्राप्तिपरिहारहेतु प्रवत्यनुक्ता बुद्धि प्रतिभा । तथाहि पदनिच घनाना पदाथवचनिच घनाना चाथप्रत्यवभासमात्राणा अविच्छेदेन प्रवती पदार्थ क्रमेण गह्यमाण आहितसस्कारामु बुद्धिषु सर्वाथप्रत्यवभास ससर्गानुगहीता प्रत्यस्नमितभेदप्रत्यवभासा प्रवत्तिफलप्रसयानुमेया अभि न जातीयव्य प्रतिभा प्रत्यात्म विवतत ।

—शृंगार प्रकाश प० २१३

प्रत्यक्ष और अनुमान के विषय में भी प्रतिभा सहायक है। जब तक प्रतिभा साक्ष के माध्यम पूर्व अंतर का प्रत्यक्ष नहीं करती प्रत्यक्ष अथवा अनुमान अपना काम नहीं कर पाते हैं। सभी प्रमाण प्रतिभा से उपगृहीत होकर प्रमाणता प्राप्त करते हैं।

प्रत्यक्षानुमानविषयेऽपि यावत् पूर्वापरप्रत्यक्षमश शब्दोल्लेखवान प्रतिभया न त्रियते तावत् प्रत्यक्षमनुमान वा स्वसाध न प्रसाधयति । प्रतिभोपगहीतानि सबप्रमाणानि प्रमाणता सभ ते ।

—शृंगार प्रकाश, प० २१३

भाज ने पट प्रकार की प्रतिभा का काल अभ्यास योग, ध्यान और अनुध्यान के आधार पर विभाजन किया है और इह पूज्य का अथवा जनिन मस्तरा का उल्लेख माना है। तथा वाचक उच्चारण मात्र से ही प्रतिभा रूप अर्थ का उन्मीलन हो जाता है कभी निमित्तान्तर का साग्निध्य में चिर व्यवहित भी विगिष्ट प्रतिभा भावनाधीन के अनिवार्य न वही वाक्य परंपरया प्रतिभा रूप स्वाय का आविभाक करता है। प्रतिभा वाक्याथ है। ( शृंगार प्रकाश प० २१४ )

कुमारिन भट्ट ने प्रतिभा वाक्यायवाचक का आगिर रूप में स्वीकार किया है और आगिर रूप में द्रमवी ममीगा की है। वाक्य का प्रयाजन अथवा जयत्न रूप में प्रतिभा का स्वीकार करने में उह कोई आपत्ति नहीं है किन्तु यदि प्रतिभा किसी-न किसी रूप में वाक्य अर्थ से संबद्ध है तो द्रम वाचक में आपत्ति है। वाक्य अर्थ नियत-

वभाव वाला होता है। किन्तु एक ही अङ्गुल चरित, वीर पुष्प म ह्य और भीरु म भय उत्पन्न करता है। प्रतिभा वाग्वायवा' म इसकी उपपत्ति नहीं बैठनी (शान्ति, वाक्याधिकरण ३२५ ३३०)।

## वाक्यार्थ के अनुप्राहक वाक्य के धर्म

भत हरि न पनायनिबन्धन वाक्यधर्मों का उल्लेख किया है। वाक्य के एते धर्म लक्षण नाम से भी उन जिना जाते थे। भत हरि ने वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड म द्वा पर विशेष विचार किया था। किन्तु वह भाग (लक्षण समुद्देश) द्वाबी क्षता'नी तक लुप्त हो चुका था। लक्षणों के एक भेद वाक्य पर विशेष विचार बाधा समुद्देश' में भत हरि न किया था। वह भी आज अनुपलब्ध है। किन्तु वाक्यकाण्ड म लक्षणों की एक लम्बी सूची वाक्य के धर्म के रूप म मिलती है। पुण्यराज ने उह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। भोज ने भी शृंगार प्रकाश म वाक्यपदीय के आश्रय से इन वाक्यधर्मों पर विचार किया है। डा० बी० रायवन का ध्यान इस पर गया था और उन्होंने भत हरि, पुण्यराज और भोज द्वारा व्यवहृत वाक्यधर्मों का तुलनात्मक उल्लेख अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भोज के शृंगार प्रकाश म किया है।'

लक्षण अनुपपत्ति के विचार के आधार पर कहा जा चुका है कि भत हरि न लक्षणा की सख्या विचार भेद से छ, बारह अथवा चौबीस बताई है। किन्तु य छ बारह अथवा चौबीस लक्षण कौन-कौन हैं इसका सकेत वाक्यपदीय म नहीं है। भत हरि न जिन नामों को गिनाया है व चौबीस से अधिक हैं। पुण्यराज न इस समस्या का मुलमाने की चेष्टा की है। उनके अनुसार इन लक्षणा का सम्बन्ध मूल रूप म भीमामा द्दान से है। पद पदाय के विचार के अन्वय पर इन लक्षणा पर विचार उप योगी समझ कर भत हरि ने इहें अपनाया है।

जमिनि का भीमामादान बारह अध्याया म विभक्त है। इसके पहले छ अध्यायों म प्रत्ययविहित धर्म-धर्मों की इतिवत्तयता पर विचार है। दूसरे छ अध्याया म अविहित इतिवत्तयता पर विचार है।

भीमामादान के पहले छ अध्याय की प्रकृति पटक कहा जाता है। इहें उपपन्न पटक भी कहते हैं।

प्रथम अध्याय म विधि, अथवा, मन्त्र और स्मृति पर विचार है गुणविधि और नामधेय का उल्लेख है सन्धि अर्थों का वाक्यरूप के सहारे अर्थनिर्णय की प्रक्रिया बताई गई है। इनमें वन् का प्रामाण्य (विधि) मुख्य है और अर्थ प्रासंगिक हैं।

द्वितीय अध्याय में प्रधान अप्रधान, भिन्न अभिन्न पर विचार है। पदविधि वम भेद का विवेचन है। मुख्य प्रतिपाद्य भेद है।

तृतीय अध्याय म श्रुति, निदान, वाक्य प्रकरण स्थान और समाख्यान द्वारा शेषविनियोगलक्षण वर्णन है। शेषविनियोग प्रतिपाद्य है।

चतुर्थ अध्याय म ऋक्वच, पुरुषाय पर विचार है। प्रयोजनाप्रयोजक भाव (प्रयुक्ति) प्रतिपादित है।

पचम अध्याय म श्रुति, अथ पाठ प्रवृत्ति वाण्ड और मुख्य के रूप म क्रम नियमलक्षण पर विचार है। नम प्रतिपाद्य विषय है।

षष्ठ अध्याय म अर्थों समय अधिकारी का निरूपण है।

इस तरह प्रथम छ अध्याया म नम से विधि भेद, शेषशेषिभाव प्रयुक्ति क्रम और अधिकारी का प्रतिपादन किया गया है। षट लक्षण से तात्पर्य इहा छ लक्षणा से हो सकता है

एव विधिभेद शेषशेषिभावप्रयुक्तक्रमाधिकारिणा प्रतिपादनाद्याध्याया षडिति षट लक्षणानि।

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।७७

जो आचार्य केवल छ लक्षण मानते हों और बारह अथवा चौबीस लक्षण के पक्ष में नही हों उनका अभिप्राय संभवत यह होगा कि भीमामासूत्र के प्रथम छ अध्यायो में ही मौलिक लक्षण आ जाते हैं। वा० के छ अध्याया म उनके मत में, मौलिक लक्षण प्रतिपादित नही है। सातवें अध्याय म ऐन्द्राग्न आदि के घम बताए गये हैं। आठवें अध्याय म ये घम इसके हैं बताया गया है। नवम अध्याय म उनकी प्रयोग प्रक्रिया समझाई गई है। दशवें ग्यारहवें और बारहवें अध्याया में उनकी इयत्ता, इतने प्रयोग किए जान चाहिए इससे अधिक नही का वर्णन है। अतः प्रवृत्तिपटक—प्रथम छ अध्याय से प्रतिपाद्य लक्षण ही षटलक्षण हैं।

द्वादशलक्षण के षण्ण म बारहो अध्याय स प्रतिपादित लक्षण द्वादश लक्षण माने जाते हैं। इनमें प्रथम छ अध्यायो से प्रतिपाद्य छ लक्षण और शेष छ अध्याय से प्रतिपाद्य छ लक्षण कुल मिलाकर बारह लक्षण हो जाते हैं। शेष छ अध्याया म सातवें अध्याय म सामान्यानिदेश पर विचार है। आठवें म विगोपानिदेश की चिन्ता है। नवम अध्याय म ऊह पर उहापोह है। दशम अध्याय म वाधा का निरूपण है। ग्यारहवें अध्याय म तत्र विचार है और बारहवें अध्याय म प्रसंग की चर्चा है। इन छ अध्याया की अतिदेश पटक कहा जाता है। इस तरह इनमें षण्ण स सामान्यानिदेश विगोपानिदेश उह वाधा तत्र और प्रसंग—य छ लक्षण प्रतिपादित हैं। षट् लक्षण और य छ लक्षण मिलकर कुल द्वादश लक्षण हो जाते हैं।

चौबीस लक्षण कौन-कौन हैं ? इनकी अग्रमन्त्रिण पहिचान पुण्यराज को भी नहा थी। चौबीस लक्षण का नामत स्वरूप निर्धारण करने के लिए उन्होंने एक कल्पना की है। उनका मत म जो द्वादश लक्षण द्वादश अध्याय म षट् पर स्वीकृत हैं इनका प्रतिष्ठा रूप म भी दूगरे द्वादश लक्षण इन अध्यायो म वर्णित हैं।<sup>१</sup> पूव य मूल बारह लक्षणा म पुण्यराज के अनुसार प्रमाण (विधि) का प्रतिष्ठा संभव नहा है। सामान्या

१ षट् लक्षण प्रतिष्ठाभूतत्वन्वन्वि द्वादश लक्षणयोगजन्यस्वरूपप्रयुक्तिरिति—

तिदेश और विशेषातिदेश के प्रतिपक्ष का सकेन भन हरि ने नहीं किया है। शेष के प्रतिपक्ष अथवा अपवाद होते हैं जो निम्नलिखित हैं

लक्षण	प्रतिपक्ष / अपवाद
प्रमाण (विधि)	—
भेद	अभेद
शेषशेषिभाव	गुणप्रधानभावाविवक्षा
प्रयुक्ति	अप्रयोजक
रुम	अविवक्षा
अधिकारी	क्रियातरव्युत्पन्न
सामान्यातिदेश	—
विशेषातिदेश	—
उह	सम्बन्धवाध
वाध	(क) समुच्चय (ख) विकल्प
तत्र	आवृत्ति
प्रासंगिक	भेद

इस तरह से प्रतिपक्ष अथवा अपवाद रूप में अभेद गुणप्रधानभावाविवक्षा, अप्रयोजक अविवक्षा, क्रियातरव्युत्पन्न सबधवाध समुच्चय विकल्प आवृत्ति और भेद। ये दस लक्षण और हो जाने हैं। सब मिलकर २२ लक्षण हा जात हैं। अवशेष दो लक्षण के विषय में पुण्यराज की कोई निश्चित धारणा नहीं है। उन्होंने लिखा है कि शेष दो लक्षण 'लक्षणममुद्देश' में ढढा चाहिए। अथवा सामान्यातिदेश का भी अपवाद सामान्यातिदेश का अभाव मान लेना चाहिए। इसी तरह विशेषातिदेश का प्रतिपक्ष सामान्यातिदेश अथवा विशेषातिदेश मानकर अवशेष दो लक्षणों की पूर्ति कर लेनी चाहिए। इस तरह से २४ लक्षण हो जाते हैं—

इत्येवमादिभि सह द्वाविंशतिलक्षणानि भवति । द्वे लक्षणे समुद्देशादूह्ये । अथवा सामान्यातिदेशस्य तदभाव एवापवाद । विशेषातिदेशस्य सामान्यातिदेश एव विशेषातिदेशो वेत्यनयो सप्रतिपक्षत्वमात्रित्य चतुर्विंशति सम्पद्यत इत्येवमनेन क्रमेणतानि लक्षणानि । एतदेव मनसिकृत्य षड द्वादश चतुर्विंशतिर्वा लक्षणानीत्युक्तम् ।

—पुण्यराज वाक्यपदीय २।७७

भन हरि ने वाक्यपदीय २।७७ में म जिन वाक्य धर्मों का उल्लेख किया है वे निम्न लिखित हैं प्रासङ्गिक, तत्र, आवृत्ति, भेद, वाध, समुच्चय, उह, सम्बन्ध, वाध, सामान्यातिदेश, विशेषातिदेश, आवृत्ति, सामर्थ्य, अर्थभेद, अधिकार, क्रियातरव्युत्पन्न, श्रुत्यादिप्रम, प्रमजलावल, अविवक्षितप्रम, पराङ्ग, अप्रयोजक, प्रयोजक, नान्तरीयक, प्रधान, शेष, विनियोगक, साक्षात्पकारी, आरोह, विषयक, शक्ति-यापार, भेद, फलभेद, सम्बन्धजभेद, अविवक्षितभेद, प्रसायप्रतिषेध, पद्युत्पन्न, गौण, मुख्य

व्यापि गुरु, सायय, अष्ट गान्धिभाय, विवल्प, विमय वाय्यता विगाद्भे<sup>३</sup> अवादार ।  
 भोज के अनुसार वाय के धम विम विगित है प्रपाय, गय, प्रयोत्र  
 अप्रयोजक नान्तरीयक मुख्य गीण व्यापन तय गुरु, अयय, अनुवा<sup>४</sup> भे<sup>५</sup> विवभा,  
 अभे<sup>६</sup> विव ता, व्यवविनयता उपवाययता तद्भावायति, वाय्यतायति गम्बधा  
 वाधन, विवल्प नमुताय नियम विपेय प्रविगि उह वाय तय प्रयय वायुति  
 भे<sup>७</sup> नमायानियेय विगपायि<sup>८</sup>, अविनार अघ्याहार विगिगाम वाययय, अयधि,  
 अयोदार अविनारप्रयय विगायययुवाय विगाद्भे<sup>९</sup> विगायि<sup>१०</sup> वाययययि<sup>११</sup>,  
 गतियादिभ<sup>१२</sup> श्रुत्यादिविनियोग श्रुत्यायि<sup>१३</sup> अयय श्रुत्यायि<sup>१४</sup> अययय<sup>१५</sup> ।<sup>१</sup>

भोज द्वारा विण हूण वायय व धमों वा भी उत्तरय वाययययीय श्रीर उमयी  
 स्वोपय वति म यय तय मिल जाना है । भाज न उनरय एयय अयय कर यिया है ।  
 हम पहल भय हरि द्वारा विण हूण वाययधमों पर पुण्यराज श्रीर भाज व महार विचार  
 करेग ।

प्रासगिक भत हरि न वाययधमों म सय प्रथम प्रासगिक यी अवा की है ।  
 मीमासायान म प्रसग पर विचार अतिम अघ्याय म यिया गया है, वह अतिम लक्षण  
 है । प्रमाण (विधि) अयि लक्षण है । अयि का प्रथम त लवर अतिम व प्रथम ग्रहण  
 म क्या हतु है ? पुण्यराज व अनुसार भतु हरि वायय मात्र का प्रामाण्य मानत है ।  
 वायय मात्र का चाह वह जिस किमी भी दान-अय का हो विचार व विण अपने  
 दशन म स्थान देत है । यहा सामाय रूप से वायय के धमों पर विचार अययित है जा  
 पद-ययय की यवस्था म उपयोगी है, वयविधि व प्रामाण्य अयययय से यहा कोई  
 प्रयोजन नहा है ।<sup>४</sup>

शवरस्वामी न प्रसग की एक प्राचीन परिभाषा उद्धत की है एवमेथ प्रसग  
 स्वात विद्यमाने स्वके विधी—अययय यिया गया का अययय अयययय प्रसग है । जैसे  
 किसी प्रासाद पर यिया गया आलीय राजमाग को भी प्रकाशित करता है ।<sup>५</sup> भत हरि  
 ने महाभाष्य विपायी म प्रसग की परिभाषा या दी है यदअयो प्रयोजक (यदय्या-  
 प्रयोजक ) अययद्वारेणाथ प्रतिपद्यते स प्रसग इत्युच्यते ।<sup>६</sup> अयो अयययय यदि किसी  
 दूसरे के अययय से अयय की प्राप्ति करता है प्रसग बहुलाता है जैसे 'आम्नाश्च सिक्ता  
 पितरश्च प्रीणिता इस वाक्य म आम्न सचन यिया के प्रयोजन हैं पितर अयययय  
 है आम क लिए डाल गये जल को वे भी प्रसग स पा सते हैं ।

पुण्यराज न, सभवत हरिवति व आधार पर प्रसग का लक्षण दिया है  
 द्वयोरथितो कार्येण समाविना प्रयोजकत्वेन निज्जितसामय्ययो यय अययय-

३ शृ गारप्रकाश, पृष्ठ ३०७ मैसूर सरकारण ।

४ यद्यपि परवा चोत्तैव प्रमाण प्रविद्ध तथापि टीकाकारो वाययययय प्रामाण्यमयीकरोति ।  
 अतएव जोदनायामेव प्रामाण्यथाभा ११ प्रथममव लक्षणनिदर्शन न कृतम् ।

—पुण्यराज, वाययययय २।७७

५ शवरभाष्य १०।१।१ पृ० ३०३ काशी स वरय ।

६ महायय विगिता पृ ४५ पूना मयययय ।

प्रयुक्तेन अर्थेन अपरोऽभिसम्बन्धयमान कृतत्वत्वात् पृथक् प्रयोजकत्वं गोपति स प्रसंग । तत् प्रयोजनकं प्रासङ्गिकम् ।<sup>७</sup>

जहाँ दो वाक्य होने वाले हैं जिनका प्रयोजक रूप में सामान्य बात है यदि एक के प्रयोग से दूसरा भी सम्बद्ध रूप में गूँथ सा होकर प्रयोजक नहीं बनता है उसे प्रसंग कहते हैं। प्रसंग व प्रयोजनक को प्रासंगिक कहते हैं। भाव न भी पुण्यराज वाला लक्षण लिया है। प्रासंगिक का लौकिक उदाहरण सघाताध्ययन है। 'य अत्रापक हमारे अध्यापन के लिए है तुम भी इ ही में पढो। व्याकरण में प्रसंग का उदाहरण सवादीनि सवनामानि १।१।२७ सूत्र में णत्व का अभाव माना जाता है

सर्वादीनि सवनामानोत्पन्न णत्वाभाव प्रासंगिकमुदाहरति ।<sup>८</sup>

भोज ने प्रासंगिक की एक दूसरी भी परिभाषा दी है

यच्चायद आचक्षाणोऽप्यप्याचष्टे तदपि प्रासंगिकम् ।<sup>९</sup>

दूसरी बात कहते हुए यदि कोई अर्थ बात का भी साथ ही उल्लेख हो जाय वह भी प्रासंगिक है। जैसे कुमारसम्भव में कालिदास ने काम के वाणप्रहार के समय का चित्र लेते हुए धनुर्विद्या के रूप पर भी प्रकाश डाला है।<sup>१०</sup>

तत्र दूसरा वाक्यधर्म तत्र है। एक ही अर्थ की निश्चिन्ता रखने वाले कई अर्थों के प्रयोजक के अर्थवा अर्थवा द्वारा सभ्य की दृष्टि से और लाघव की दृष्टि से उस अर्थ का एक ही प्रयोग करते हैं। वह तत्र है।

यत्राद्यिन सर्वे प्रयोजकाभेदेनावत्त्या वा योऽय प्रतिपत्तव्यस्तमयम एकमेव सम्भवात् लाघवाच्च प्रयोजयति तत् तत्रम् ।<sup>११</sup>

भोज ने भी ऐसा ही लक्षण लिया है। पत्ने वाले सभी छान गाला में एक ही दीप से काम ल लेते हैं। अथवा जैम कठाध्यायी शतपथिका की गाला में जलाया गया दीप व्याकरण पत्ने वाला के भी काम आता है। जहाँ एक ही वस्तु से कई प्रयोगानार्थी एक साथ काम निकालते हैं वहाँ तत्र माना जाता है। भक्त हरि ने श्वेतो धावति वाक्य में तत्र माना है। गाल की शक्ति का तत्र द्वारा शक्ति प्रवच्छेद मात्र किया जाता है। एक ही पुरा शत पुरा के अर्थ में भी आता है सह वचन भी है एक ही आरात गाल सनिवृष्ट अर्थ में दिया जाता है और विप्रकृष्ट अर्थ में भी। इसी तरह श्वेत शब्द अनक शक्ति से युक्त है। प्रतिपत्ता यक्ति शक्ति प्रवच्छेद के द्वारा अर्थ-

७ पुण्यराज—वाचस्पतीय २।७७

८ तुलना की गीत—लोफ्णयय श्वत्वरहित एव प्रयुज्यते ।

तत्रात्र प्रसंगेन साशुत्व प्रतिपाद्यते ॥

—कयत्, प्रदापोदोत् १।१।२७

सम्भवन पुण्यराज और कैयट दोनों ने भाष्यत्रिपादी से इस तथ्य को लिया है।

९ शृंगार प्रकारा ५० ३१६

१० कुमार सम्भव ३।७०

११ वाक्यपदीय, पुण्यराज, १।७७



बोध करते हैं। अर्थात्तर ग मातो णि वात्ता का उच्चारण किया गया हो। जैसा कि  
ही प्रतीक अर्थों व्यक्तियों को आसक्ति से (तत्र से) धातोर अन्तर काम निरान होता  
है। वात्ता म भी एगो शक्ति है कि यह तत्र ग णि वात्ता का उच्चारण जान पड़ता  
है।<sup>१२</sup> जग अथ द्विगत होता है वात्ता भी द्विगत होता है। सात् म वात्ता का प्रयोग म  
कभी त्रम और कभी योगपठ का आशय देगा जाता है। जग अथ भव्यनाम अथ  
भक्ष्यताम् अथ नीव्यताम्। इस वाच्य म भव्यनाम किया का अर्थ म त्रम ग गवय  
दिताया गया है। 'अथा भव्यता भव्यना नीव्यताम् इग वात्ता म त्रम उपागता है।  
भव्यता अर्थात् अथ म एक साथ धारण हो जाता है। यह भी तत्र का एक रूप  
है। अथेत्तर गव्या दूसरी गव्या का साथ तत्रिणी मानी जाती है। आस्यत भव्यनाम  
'आस्यत भव्यत्' इसम आस्यत म एतत् का सम्बन्ध द्वित्व यह्य से भी हो जाता  
है। प्रान म भी बहुत्व सव्या एतत् और द्वित्व की तत्रिणी होती है। 'कति भवन  
पुत्रा' इस प्रश्न म बहुत्व का सम्बन्ध एतत् और नित्य से भी है। इगो तरत्  
नपुसक का स्त्री और पुरुष म तत्र सम्बन्ध सभव है जग त्रिम जातमस्य का उत्तर  
'पुत्र जान' 'पुत्री जाना दाना हो सकता है। गोस्वामी व्रजति और गवा स्वामी  
व्रजति उस वाक्या म विभक्ति भी तत्रिणी हाती है। गोस्वामी व्रजति वाच्य स  
कम अरण्य का आशय सम्बन्धविशेष का रूप म हो जाता है। गवा स्वामी व्रजति  
कहने से पट्टीविभक्ति द्वारा स्वस्वामिभाव के व्यक्त हो जाने के कारण व्रजति क्रिया  
से कम का भान अनियत हो रह जाता है। कभी-कभी प्रधान क्रियाविषयक धातु स  
उत्पन्न प्रत्यय अप्रधानक्रियाविषयक गविन को भी तत्र द्वारा समेट लता है।  
इष्यते ग्रामो गन्तुम जैसे वाच्य मे 'इष्यते प्रधान क्रिया का प्रत्यय अप्रधान  
गमन क्रिया को भी साथ ले लेता है। पक्त्वा अन्न ओदनो भुज्यते इस वाच्य म  
भोजन क्रिया प्रधान और पाचन क्रिया अप्रधान है। अप्रधान का भी तत्र द्वारा,  
पहले पकाना है बाद म भोजन करता है के रूप म, ग्रहण हो जाता है। अथवा गुण-  
विषयक गवित अर्थात् अहित होती हुई भी प्रधान क्रिया का अनुरोध से अभिहित के सङ्ग  
जान पड़ती है। भोज ने पद और वाच्य की तरह दो प्रयोजन का सिद्ध करने वाले  
प्रकरण और प्रबन्ध को भी तत्र माना है।

व्याकरण शास्त्र मे तपरस्तकालस्य १।१।३० म तपर वात्ता तत्र का आधार  
पर बहुव्रीहिसमास के रूप मे (त परो यस्यात् सोऽय तपर) और पचमी तत्पुरुष के रूप मे  
(तादपि पर तपर) दोनों तरह से गृहीत होता है। लम्बे प्रसारितत तु को तत्र कहा  
जाता है। जस वह अनेक तिरछे किए हुए तत्पुरुष का अनुग्रहक होता है वगे ही शास्त्र  
मे जब एक अनेक लक्ष्य अनुग्रहक होता है तत्र कहलाता है—तत्र प्रधान को  
भी कहा जाता है। सिद्धांत भी तत्र शब्द से अभिप्रेत होता है। महाभाष्यकार ने  
निर्देश और विवक्षित के सम्बन्ध मे तत्र धातु का अनेक बार प्रयोग किया है।<sup>१३</sup>

<sup>१२</sup> महाभाष्य त्रिपादो पृ० ४५ पूता संस्करण

<sup>१३</sup> तत्र तरनिशा महाभाष्य १।१।३३, तत्र य प्राधाये वतते तत्रराद, तत्प्रमद्वयम्—

शरस्वामी ने तत्र को साधारण धम समूह के अथ म ग्रहण किया है ।<sup>१४</sup>

श्रावति एक क्रिया पत्त्य अथवा कारक पदाथ का अपने अभिन रूप से पत्त्य रूप म अनस्थला म उपस्थित हाना श्रावति कहता है । एक साथ न भोजन करन वाले यदि कई व्यक्ति हा और थानी एर ही ही वारी वारी से एक ही थाली सत्रक भोजन का पात्र बन जाती है । एक ही वस्त्र या भूषण रगमच पर अनेक नटा के लिए वारी वारी से उपयोगी हो जाता है । वातिककार न श्रावतिसंख्यान क रूप मे श्रावति का व्यवहार किया है । महाभाष्यकार ने इसक लौकिक उदाहरण म कहा है कि एक ही कपिला गाय को सहस्र ऋषिया न वारी वारी से सहस्र बार दकर सहस्र दमिणा का फल प्राप्त किया या ।<sup>१५</sup> व्याकरण शास्त्र म एवाच्—अनन्ताच ग्रहणा म श्रावतिसंख्यान क आश्रय से घटेन तरति जमे स्थला म द्वयचलक्षण ठन प्रत्यय होता है । कैयट के अनुमार श्रावतिभेद स भी भेदाश्रयकाय की प्रवृत्ति देखी जाती है ।<sup>१६</sup> इत्यण संप्रसारणम १।१।४५ सूत्र म तत्र अथवा श्रावति क आधार पर वाक्याथ और वग दोना के प न म दो तरह स अथ किए जात हैं । भाषा म शिपापद की श्रावति और कारक पद की श्रावति के उदाहरण अलकृत रचना मे बराबर मिलत है । जैसे—

शशिना च निशा निगाया च शशी विभाति' ।

सीता विस्मयते निरीक्ष्य हरते दष्टि भटित्याकुला ।<sup>१७</sup>

भेद जहा पर वस्तु अपने स्वरूप मामध्य से अनक्त्व प्राप्त करती है भेद माना जाता है । जस पात्र सहभोजी व्यक्तिआ के लिए भेद रूप म ही भाजन क आधार होत ह ।<sup>१८</sup> वेत् म भी 'ग्रह समाष्टि' जमे स्थला म ग्रह विषयक समाजन भेद रूप म किया जाता है । व्याकरणशास्त्र म भी न वेति विभाषा १।१।४४ इस सूत्र के प्रत्याख्यानप न म उभयत्रविभाषा का कभी विधि रूप म कभी प्रतिषेध रूप म, भेदाश्रित प्रवृत्ति हती है । भाजन इस भेद का त्रियाभेद और श्रभेत् के रूप म दिवाया ह । श्रभेत् भी पद और वाक्य भेत् स दो तरह का और वाक्यभेद भी प्राकृत, वदृत भेद से दो तरह का होता है । 'जायते च त्रियत च मन्विधा क्षुद्रजतव वाक्य मे 'क्षुद्रजनन म क्षुद्र और जतव रूप म पदभेद माना जाता है ।

धाथ अश्रित्वमामाय के आधार पर अथवा उपत्त के आधार पर प्रवृत्ति के सभव होत पर भी दष्ट अष्ट अर्थों म तुल्यबल वाल विरोधी अथवा अविरोधी

१४ तत्र माभारतो धमसामे , शाबरभाष्य १ । १ । १

१५ महाभाष्य, पृ० १७ कौलहान संस्करण ।

१६ गोड्दूच इत्यत्राश्शब्दप्रतिषेधान निगात् श्रावतिभेदेनापि भेदाश्रयकायप्रवृत्ति ।

कैयट—प्रदाप, शिवसूत्र १

१७ शृगाप्रकारा, पृ० ३१६

१८ भोजन मे उत्तरभारत की किमा परपरा की लक्ष्य कर भेद का लौकिक उदाहरण दिया है—  
गृहस्थान पत्य आयावने मभोगनवाद्नाय भेदेनेवोपामत्तं इति'

अर्थों का अप्राप्त्यनुमान बाध है। उसे बाधा भी कहते हैं। बाध अथवा बाधा वचन, असंभव, चरितायता फलाभाव, विशेष प्रत्यक्षश्रुति परिसरया आदि कारणों से उदबुद्ध होता है। 'अभययो ग्राम्य कुक्कुट' इसमें बाध वचनसामर्थ्य से उदबुद्ध है। बुभुक्षित का भक्षण न प्रवर्तित अर्थत्व साध्या है। उसका बाध उपयुक्त वाक्य से किया जाता है। यथा बाध वचनाश्रित है। भत हरि न इत्त वाक्य मे प्राप्त्यनुमानबाधा न मानकर केवल बाधा माना है।<sup>१६</sup> 'गुरुवत् गुरुपुत्रे वर्तितव्यम् अ यनाच्छिद्यभोजनात्' इस वाक्य में सामान्य उपदेश के आधार पर गुरुपुत्र के प्रति गुरुमदग व्यवहार करने की प्रवृत्ति है किन्तु उच्छिद्य भोजन में गुरुसदृश व्यवहार का निषेध है अतः यथा भी बाध वचनाश्रित है। 'सप्लाथि यूपोभवति' इस सामान्योपदेश का 'चतुरथा वाजपयसूप' इस उपदेश का एक साथ घटित होना असंभव है अतः यथा वाया असंभव के आधार पर है। व्रीहीन अवर्तित में सामान्योपदेश और अर्थत्व के आधार पर प्रवृत्ति प्राकृत अवहनन 'नखनिभिन्नाना नखानपूताना चरभजनि' इसमें नख द्वारा ही अवधान प्रयोजन के सिद्ध हो जाने के कारण चरिताय रूप से बाधित है। इसी तरह 'गनटृष्ण लश्चरुभवति' इसमें कृष्णता में फलाभाव के आधार पर अवधान नहीं होना है।

ब्राह्मणम्यो दधि दीयता तत्र कौण्डिण्याय' इसमें औत्सर्गिक दधिदान तत्रदान से विशेष में प्रत्यक्ष श्रुति से बाधित है। अर्थत्व के आधार पर पाच नख जाने और बिना पाच नख वाले दोना के भक्षण में प्रवृत्ति का पञ्चपञ्चनस्ता भक्ष्या' इस परि संख्या से बाध किया जाता है। यथा पचनसातरा की निवृत्ति अतः हरि के अनुसार शब्दवृत्ति नहीं है किन्तु सामर्थ्य लक्षण है।<sup>१७</sup> व्याकरण शास्त्र में उत्सर्ग नियम का अपवाद से बाध लिखाया जाता है। जैसे कमण्ण ३।२।१ सामान्य नियम है उसका अनानुपसर्ग के ३।२।२ इस विशेष नियम से बाध होता है। कम उपपत्त हो धातु से अण प्रत्यय होना है—यह उत्सर्ग वाक्य है। कम उपपद रहते भी अनानुपसर्ग और उपसर्गरहित धातु से क प्रत्यय होना है। यह अपवाद वाक्य है। उत्सर्ग वाक्य का अपवाद वाक्य से बाध माना जाता है। भत हरि के अनुसार उत्सर्ग वाक्य अपवाद वाक्य की परिवर्तना में ही प्रवृत्ति होता है। उनमें मत में यथा उत्सर्ग वाक्य का रूप है आकारा त वर्जित धातुमा से कम में अण होना है।<sup>१८</sup> इस सम्प्रथ में दा तरह के सिद्धांत गृहीत हैं। सर्वविशेषस्वीकारपूर्वक उत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है अथवा कतिपय विनाप स्वीकार पूर्वक प्रवृत्ति होती है। पहल मत में उत्सर्ग के विषयविभाग के लिए पहले अपवाद की प्रवृत्ति होती है इसका वास्तविक विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति होती है।

१६ अमत्या ग्राम्यकुक्कुट श्रुति। अ६मुग्य प्रतिषेध इति। न ह्यप्रारदनुमा३।१।१। १६। १६।

मन्त्रभाष्यदिवा१।१।१०।१६

२० इमा न शब्दवता। किं तर्हि। मा३।६।१६।

मन्त्रभाष्यदिवा१।१।१०।१७

२१ अत्रात्सर्गत्वं नाना धातुय कमण्ण भवतायैव भूतमेव तदुत्सर्गवाच्यम्।

वा३।२।१।१६।१६। हरिवाच, हरिभाष्य।

दूसरे मन में, अतएव विषय की कल्पना कर उत्सर्ग प्रवृत्त होता है।<sup>१२</sup> इस सम्बन्ध में भक्त हरि न कइ प्रकार स विचार प्रस्तुत किए हैं। कुछ आचार्यों का कहना है कि शब्द से प्राप्त का शब्दान्तर से बाध नहीं होता। दाना के अर्थ के परित्याग में वाइ भेद नहीं है। अथवा ही लोक में गम्यता (जाया) भुज्यमान (उपभोग करो) कहकर कुछ दोष देखकर स्थीयताम (ठहरो) कहा जाता है। ऐसे स्थल पर शब्दान्तर से प्राप्त का शब्दान्तर से निषेध है। किन्तु यहाँ अप्राप्यनुमान ही है। अप्राप्यनुमान वाक्य वाक्य रूप में दया जाता है। वस्तुतः इस प्रसंग में शब्द में अन्तर्विपर्यय दम जाते हैं जसा कि कहा जाता है— यदि प्राथिककारण तुम्हें ही प्रतिषेध विवल्पाय हाता है शक्ति। गम्यता भुज्यता जस उ समय वाक्य में दाप यदि न हा जायो ऐमा छिपा हुआ है। बाद में दोषान्तर के दयन से अथवा प्रयाजन के अभाव में, अथवा किसी अर्थ प्रयाजन से अपवात् के सम्पन्न से दोषाभाव के रूप में विशेष अनुमित होता है।<sup>१३</sup>

‘कौण्टिक्य को छात्रर ब्राह्मण को दधि दो एम वाक्य में यद्यपि तत्रान का शब्द उल्लेख नहीं है फिर भी वह वाक्य नेपभूत है और कौण्टिक्यश्रुति से उसका अनुमान हा जाता है। अथवा अनिश्चित भी ब्राह्मण शब्द है जिसकी यत्ति कौण्टिक्य बजिन ब्राह्मण में है। प्रत्येक सामान्य अर्थक प्रकार का होता है। जैसे ब्राह्मण ही कोई गाय दक्ष हो। दधितान में अनुमय कौण्टिक्य के लिए दधितान शब्द उभूत है तत्रान शब्द से प्रतीत है। हम यह नहीं कहते कि दधितान का कौण्टिक्य त्व प्राप्त है ब्राह्मणत्व उम शब्द की तरह है। यदि माना जाय कि प्रतिषेध उपयुक्त है क्याकि अवाक्य है। अप्राप्यनुमान ता निरर्थक है। आत्मरूप की कल्पना में चरिताय हा जान के कारण उपस्थित दूसरे विधि को विकल्प रूप में ही कल्पना करेगा। क्या अप्राप्ति का कम अनुमान संभव है? अनुमान की पहुँच संभव नहीं है। कस, एमा नहीं है कि प्रतिषेध जहा कही प्रवृत्त हो जाता है। वह स्वाभाविकी निवृत्ति का द्योतन है। नित्यपरतंत्रता के कारण उमका अर्थ अर्थसमवायिनी निवृत्ति को द्योतित करना हुआ अनुमान की कल्पना करता है। जहा जहाँ प्रतिषेध इस रूप में रहता है वहाँ वहाँ सामान्यविशेषभाव सहचारि रूप में रहता है। वह अनुमान के लिए पर्याप्त है। जम आग के लिए घम। सम्बन्ध से और सम्बन्ध सम्बन्ध से भी अनुमान

१२ इह दर्शनमयम सवि शेषवीकारेण बो मयस्य प्रवृत्ति कतिपर्य शेषादाहादेन वा। तत्र पूर्वमिन् दर्शने, उत्सर्गस्य विषयविभागाय पूर्वमपवात् प्रवृत्तने। पश्चान्तं सिक्तं विषये उ मय। द्वितीयं तु दर्शने, अपवात्विषय परिकल्पयो सग प्रवृत्तने।

कैशट, महाभाष्य प्रदीप, २।३।४६

१३ अथ केचित्, न शब्दं प्राप्तं शब्दान्तरस्य वाचनं भवति। उमयोरथपरिभागे भेदाभावात्। ननु च तान् गम्यता भुज्यता त्वयुक्ता दोष किंचिद ए द्वा स्थीयतामिति। न च तान्प्राप्यनुमानम् अप्राप्ति। न च (तच्च ?) वाक्यवाक्यभावो नावति उत। एव प्रकारेषु तादृककल्पितावकाशान्तरु शब्देषु विकल्पा दर्शयन्। ‘प्रतिषेधो विकल्पान्तरुत्पद्यन् प्रातिकारणम्’ इति। अथ च गम्यता भुज्यतामिति दोषदर्शना तात्पर्यस्य वाक्ये प्रसङ्गो। तच्च दोषान्तरदर्शनात् प्रयोजनाभावाच्च प्रयोजनान्तरं वापवादं प्रकृत्यभागेऽस्ति दाषाभावस्य विशेषोऽनुमीयन्—

होना है। वहीं नामान्य म प्रवृत्त होते हुए वा विनाय म कदा प्राप्तिप्रसंग वा गमक-  
वर स्वभाषयित्वत वाच्योपेय क द्वारा धपवा स्वाभाविक वाच्यत्व धपवा क द्वारा  
विनाय म प्राप्ति कराना हुआ सम्भव हो पर भी विद्यागणितयान अनुमान म उग  
विषयन बुद्धि प्रसंगि वा हाना हुआ वाच्य कया जाता है।<sup>१४</sup>

कुछ धानाय उत्सग और धपवात् म तत्र वाच्यत्व ग्योकार कया है और कुछ  
विचारक इनम तानात्प्र मानत है। वाच्य वाच्यभाषा भाषा वा म हाना है। तानात्प्र  
पक्ष वा सबत वाच्यकार कत्यायन न तत्र रूपनादि प्रातिषेधो तानावाच्यत्वत गग  
वाचिक म कया है। धपवात् क द्वारा उत्सग वा वाध समानवाच्य म हाना है। जहाँ  
नाना वाच्य है वहाँ वाध नहीं होगा। एग वाचिक की धानाकरा करत गमय तत्रत्रि  
न एकवाच्यत्व वा निर्देश कया है। उनक अनुसार एग भू क धापार पर वाच्य  
भू नहीं होता

न विदगस्यमिति कृत्वातो नाना वाच्य भवति विदगस्यमपि सदकवाच्य  
भवति।<sup>१५</sup> —महाभाष्य १।४।६७

जो नानात्व क समथक है उनक अनुसार निराकार प्रधान वाच्य म एकर  
सम्भव नहीं है वहा नानात्व ही मानना चाहिए

इह साकाक्षाणां सतर्गां परस्परमुपकारे धतमानानाम एकवाच्यत्वमपपद्यत।  
प्रधानानि तु पृथगात्मनिवृत्तौ व्यावृत्तानि। तेषां निराकारत्वात् सत्युपकारे  
नास्त्येकवाच्यत्वम्।<sup>१६</sup>

१४ कौण्डि य न दधि ब्राह्मणोभ्यो णीयतामित्येत उ सगवाच्ये प्रज्ञान तत्रवाच्यमाणयापि  
वाच्यपरस्य तत्रदानविषया कौण्डिन्यश्रुतिरनुमानम्। अधवा विदत श्वापरो माह्वण राद  
कौण्डि-वर्वावतेषेव ब्राह्मणेषु यस्य वक्ति। प्रदेशसामान्य हि बहुप्रकारम्। यन् यथा, ब्राह्मणो  
ऽसि, अत्र वाचिन् गा पश्यस्यति। ननु च दधिदाने कौण्डि यवानुमेयग्यारम्भ प्रन दधि  
दान, तत्र तु शब्दप्रतीतम्। न ब्रूम कौण्डि य व दधिनानस्य प्रापकम्, ब्राह्मणत्वं तच्छ दधदेव  
ननु युक्त प्रतिषेधोऽ वाचकत्वात् अप्रा यनुमानमनधकम्, या मरूपप्रकारने तु क्वाधम विद्यन्तर  
मुपवाच्यमान सामध्यान विकल्पमेव प्रकलयत। तत्र कथमपाग्निनुमीयेने। सवथा नाम्बपुमानस्य  
वाचसि (-यश्रुति १)। कथ न तावत प्रतिषेध क्वचित्पि प्रवतत तस्यपुपगम्यने।  
कि तर्हि, स्वाभावियया निवृत्ते घोरका स खलु नि यपरतत्त्वादरथाथ तामन्यसमवायिनी निवृत्ति  
घोतयन अनुमान प्रकल्पयति यत्र यत्र च प्रतिषेध इ ध भूत, तत्र तत्र सामान्य विशेषभावोऽन्य  
दृष्ट यभेचार सहचारिप्रतीतिवतो विद्यते। सवानुमानायादम्। यथाने धूम पतगात् धूमका  
इति सम्प्रधान सम्बन्धमन्वा चानुमान भवति। सामान्ये प्रयुयमान विशेषे क्वचित् प्राप्ति  
प्रसंगमिव बुद्ध्या स्वभावनेरत वाच्योत्तरस्य शमी विनेन वा वाच्यवाच्यत्वाच्चद्वेन विरापेप्रायमाण  
स यपेमभवे विद्यामनिधानानुमानत्वात् तद् विरव उक्तिप्रसंग यत्प्रवत्त वाचक इत्युच्यते।  
वाच्यपत्नीय २।३५२, हरिवृत्ति, हस्तलेख

१५ केय नै देश शब्द काल वा उपलक्षण माना है—न कालभेदान नानावाच्यत्व भवति। शास्त्रे  
विदेशस्थानान्यन्तरवाचयानामाकावाशदेकवाच्यत्व वदरानात्। देशग्रहण चान काचरयोरात्  
क्षणम्।

—केय महाभाष्य ५क्षीप १।४।६७

१६ वाच्यपदीय २।३५४ हरिवृत्ति, हस्तलेख

आख्यात क भिन भिन हात हुए भी उत्सग और अपवाद में एकवाक्यता के सम्यक् अपन पक्ष में नियम प्रतिषेध का विधिशेष आदि की उपपत्ति बनलात है। इन्को गुणवद्धी १।१।३ सावधानुवाधघातुजयो ७।३।८४ क गुणविधि का रूप है और उसक साथ एकवाक्यता से साथक हाता है। प्रतिषेध भी विधि के साथ एकवाक्यता से सफलता पाता है। भिन आघार में भी एक शक्ति की कल्पना से एकवाक्यता की उपपत्ति हो जाती है। पुण्यराज न आकाशा योग्यता और सनिधि क आश्रय स एवत्वपक्ष का सम्यक् किया है।<sup>२</sup>

भोज न भाषा के व्यवहार में वावा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

वामेन अण्णा एष पश्यति

किमस्य यत्र रोचत।

आदि वाक्य विशेष क वाचक हैं।<sup>२८</sup>

समुच्चय तुल्यबलवाने अविरोधिया का एकाधरक उपादान का नाम समुच्चय है। जस दवन्त भोजय सवणेन मपिषा शाकंन — इस वाक्य में लवण धी गार का उपादान एक भोजन क्रिया के लिए किया गया है। भाज क अनुसार अविरोधिया का तुल्यविधान भिन प्रयाजन वाला का एक काय क लिए ग्रहण समुच्चय कहलाता है। गुण आदि का समुच्चय भेद रूप में और अभेद रूप में दाना तरह से देया जाता है।

व्याकरणशास्त्र में प्रत्यय कृत कृत्य सनाया का प्रत्यय तद्धित, तद्राज सना का एतत्त समुच्चय अविरोध और फलभेद के आधार पर, दया जाता है।

जयात्तिय ने अनक क्रिया के अध्याहार को समुच्चय माना है (अनेक क्रियाध्याहार समुच्चय — काणिका ३।४।३)। समभिहार स समुच्चय में भेद यह है कि समभिहार पीन पुत्र अथवा एक ही की पुनरावृत्ति है वह एक ही क्रिया में होता है समुच्चय अनक क्रिया में होता है। यामशर ने समुच्चयि को समुच्चय माना है। एक साधन अथवा क्रिया के प्रति क्रियाया की चीयमानता अनकता समुच्चय है। समुच्चय तुल्यबला में और जिनका नियतक्रमयोगपक्ष नहीं है उही में हाता है जस, गाम अदव पुरुष अहरह नययानो ववस्वत — इस वाक्य में एक नयन क्रिया स गाम अदव आदि का सम्बन्ध है।<sup>२९</sup>

ऊह ऊह का सम्बन्ध लिंग, वचन विभक्ति आदि क विपरिणाम स है। दो तरह के याग होत हैं प्रकृति और विकृति। जिनमें इतिवृत्तयता आदि सपूर्ण अग समूह का उपपन्न हाता है वह प्रकृति है। जस दगापूणमाम आदि। जहा सम्पूर्ण अग का उपपन्न नहीं होता वह विकृति है। जस सोय आदि। प्रकृति की तरह विकृति

२७ वाजुनसुवाकायायोग्यता मनिपिबरादकवाक्यतागत वास्य बोद्धवम्।

—पुण्यराज, वाक्यपदान २।२५३

२८ गार प्रकाश पृ० १।७

२९ काशिकाविवरण पत्रिका २।२।२६ केसट और मन्त्रादिनीतिन क भा सग्न नन ई। द्रष्टव्य मदानाम्य दाय २।२।२६ तथा शब्दकानुम २।२।२६

करती पाठिका । यह भीमांग का 'याम' है । प्रकृति म विग मर का जो अन्विषय है यदि वह विकृति म साम्प्रदायिक रूप म गठी है मनुष्य मत्र की निरति होती है । यदि उमर एव देग ता अन्विषय गठी है तो उमरे एव देग की निरति होती है ।

अन हरि त महाभाष्यत्रिपाठी म ऊर् पर विगय प्रमाण गता है । भाज त वाक्य क धर्मो परे विचार करत ह्य उर् पर जा कुछ विगता है व मर महाभाष्य त्रिपाठी स लिया है । उसक आचार पर यहा उर् का कुछ विवेक विगता जा रग है । उर् प्रकृति म ममय मत्रा का विकृति म साम्प्रदायिक क अभाव क कारण प्रकृति म्पनिग वचनांतर क उपादान क रूप म विगता जाता है । दूसरे गच्छा म प्रकृति मत्र क ए प्रकृति विग, वचन विभक्ति आदि का दूसरे ए प्रकृति, विग वचन, विभक्ति रूप म यथावग उपादान उर् कहलाता है । जस प्रकृति याग म अन्वय त्वा जुष्ट निवपामि (प्राप्तामि) <sup>३०</sup> — इसम अग्नि ग अगार क अय म समर्थ दगा गया है । विकृति याग म अन्वय क स्थान पर सूर्याय उर् कर लिया जाता है ।

विकृत याग म एव ग की निवति हो जान पर भी त्रिया म मुख्यवृत्ति म उलटपर क कारण (बाध) और अर्थांतर क प्रसक्ति क कारण गंतर का अर्थांतर के ग्रहण के रूप म किया जाता है । यदि विचार मोन रूप म, उपागुप्रयोग के रूप म, किया जाय प्रकृति गवती होगी जसकि विचार अग हो जायगा । यदि अग न पर अग्नि ग का ही ग्रहण किया जाय अग्नि ग अपन मुख्य अगार अय म परिनिष्ठित होने के कारण सूय अय का प्रत्यायन न कर सकगा । यदि मुख्यवृत्ति (अभिधा) का आश्रय न लकर और गौणी वृत्ति के सहारे अग्नि ग का सूय क अय म प्रयोग मान लिया जाय प्रकृति क विपरीत श्प्रवृत्तिधम का आश्रय अपनाता हो जायगा । इसनिए उसी विभक्तिवाले दूसरे गद का उपादान कर लिया जाता है, अन्वय त्वा जुष्ट निवपामि के स्थान पर 'सूर्याय त्वा जुष्ट निवपामि' कहा जाता है । चतुर्थी विभक्ति दोनों म समान है कवल प्रकृति म परिवर्तन हुआ है । अग्नि के स्थान पर सूय का उपादान किया गया है । इस तरह यह प्रकृति उर् है ।

लिङ्ग का भी उर् होना है । जैसे 'देवीराय गुद्धा ययम्' <sup>३१</sup> देव आय शुद्ध स्वम । पहला वाक्य आप (जल) देवता क विनियोग म है । इसलिय गुद्धा म स्त्रीलिंग है । इस वाक्य को आज्य के साथ रखने म गुद्धा के स्थान पर गुद्ध करना पडा है । यह विग का उर् है ।

विभक्तियों का भी उर् होता है । जैसे आयुरागास्ते <sup>३२</sup> के लिए आयुरागासाते अथवा आयुरागासते । जिनका प्रकृति मे ही अथवा बिना प्रकृत्यध के साम्प्रदायिक नहीं है उनका असाम्प्रदायिक क कारण विकृति म उर् नहीं होता है । जैसे वायव स्य <sup>३३</sup>

३० वाचस्पत्येय महाभाष्य १।१.१०

३१ मन्त्राधिकारी महाभाष्य १।१।१।७१५

३२ पञ्चराय महाभाष्य २।७।१।७

३३ तैत्तिरीय महाभाष्य १।१।१

‘उपायव स्थ मे प्रकृति म ही बहुवचन के द्वारा एक वत्स का अभिधान होता है। इमलिए विवृति मे यहा ऊह नही होता। इमी तरह ‘अदिति पाशान प्रमुमावतु’<sup>३४</sup> इसम प्रकृति म ‘पाशान म बहुवचन एक प्रकृतिपाग के लिए व्यवहृत हुआ है। यहा भी विवृति मे ऊह नही होता है। किसी वाजसनयी शाखा मे ‘अदिति पागम इस रूप म एकवचनात् रूप म पढा जाता है, इस दृष्टि स यहा ऊह प्राप्त हा सकता है। यदि ऐसा नही है अदितिरशना पाग म ऊह नही होता। अथवा यहा नगमविभापा— षदिव विरल्प है। बहुवचा के प्रयोग म यथेष्ट प्रयाग होता है। मत हरि न निग ऊह क कई उदाहरण यागभेद और शाखाभेद स लिखाए ह। वेद म जूरसिधता मनसा जुष्टा<sup>३५</sup> इस रूप म स्त्रीलिंग पाठ मिलता है। इमका साद्यस्त्री मे स्त्रीगन वत्ति की उपेक्षा कर, वद म पुल्लिंग रूप में दृष्ट न होने पर भी पुनः द रूप म ऊह हाता है फलत जूरसि धनो मनसा जुष्टो आदि रूप म पढा जाता है। इमी तरह राजन्यणी-सस्तव म चित्सि मनासि धीरसि दक्षिणासि सुप्राची सुप्रतीची भव<sup>३६</sup> रूप म स्त्रीलिंग रूप म पढा जाता है। इमी को साद्यस्क मे पुल्लिंग रूप म ऊर होता है— चिदसि मनोसि धीरसि दक्षिणोसि सुप्राक सुप्रत्यक मन आदि। वाजसनयी शाखा वाल भी इसी रूप म इनका ऊह किया करते है। इमी तरह सोमकृष्णापन मन म स्त्रीलिंग पद पढे जाते हैं जेसे वस्यसि रुद्रासि चद्रासि।<sup>३७</sup> इनका साद्यस्त्री मे पुल्लिंग रूप म ऊह होता है। वसुरसि, रुद्रोसि चद्रासि। इमी तरह पशुप्रकृति म पुन्नग रूप म मन पढा जाता है—‘अस्मिन् प्रतिभुञ्चति’। इसका ‘अस्यै प्रतिवदय’ रूप म स्त्री प्रत्यय के रूप मे ऊह होता है यदि उस स्त्रीगत्री का आलभन मूर्धा स हा। ‘हुतो याहि पथिभि देवयान’<sup>३८</sup> का ऊह हुता याहि के रूप म स्त्रीप्रत्यय के रूप मे देया जाता है।

पाणिनि का घसङ्करणश २।४।८० सूत्र घस ह्रर, णश आदि से, छदम सिध (लि) क लुक का विधान करता है। ऊह मत्रो म ऐसे मूत्रो की प्रवृत्ति होगी कि नही इस प्रश्न पर विचार भेद था। कुछ आचार्यों क मत म ऊह मत्र नही है, इमलिए छादम नियमा की प्रवृत्ति इनम नही होनी चाहिए। ‘अघस्ताम’ जस प्रयोग की उप पत्ति पठित के आधार पर कर लनी चाहिए। कुछ अन्य आचार्यों के मत म ऊह विप यक मत्र मत्रांतर हैं—एक प्रकार के मत्र हैं। अघसत अघस्ताम अघसन अभीपु अक्षन य सब ऊह प्रकरण म पढे जात हैं। कही कही स्वय वद म ही तपध्वम तप्यम्ब तप्ययाम जस ऊह प्रयोग निर्दिष्ट है। इसलिए ऊह और अनूह की ‘याय से व्यञ्जसा समव हाने पर लिंग वचन और विभक्ति क विनियोग के लिए ऊह क विषय म व्याक

३४ मैत्रायणी संहिता १।२।१५ २६।२, तैत्तिरीय संहिता ३।१।१४

३५ वाजमनयी संहिता ४।२७, तैत्तिरीय संहिता १।२।४।१

३६ तैत्तिरीय संहिता १।२।४

३७ वाजमनेया संहिता ४।२१

३८ मैत्रायणी संहिता १।४।१०—६।१।१



रण शास्त्र की अपेक्षा की जाती है। ऊह म प्रविषेय क विषय म मन हरि न एव  
कारिना उद्धत की है

अट्टगानि ज्ञातिनामा युपमा चेद्रियाणि च।

एतानि नोह गच्छन्ति अग्निगो विषयम हि तत ॥

अग्निगु से अथवा अग्नि का पानिनामा का उपमा का इद्रिया का उद्ध नही जाना।  
अग्निगु म होता है। अग्नि के अनूह क उदाहरण म 'यत पशुर्मायुमकृतोरो वा पदिम  
राहते। अग्निर्मातस्मादेनसो विश्वान मुञ्चत्यहस ३६ यह मत्र उद्धत किया जाता  
है। इस मत्र म प्रकृति याग म उर गान एव वचन है और अग्नि का नाम है। द्विपशुन  
विकृतियाग म उर का उरमी रूप म विपरिणाम नही जाना जबकि पशु का पशु रूप  
म होता है। इसी तरह चतुष्पशुन विकृतियाग म पशु का विपरिणाम पशु ही जाना है  
किन्तु उर का उरानि नही होना। मत हरि क वचन-य स जान पडता है कि ऊह परि  
गणित हो चुक था और गणपाठ की तरह उनका भी एव गान्त्र था। अग्नि म पाणिपा  
णि र गीव आदि ज्ञातिनामा म माना जाता था। अग्नि, उपमा म कश्यपवा  
साच्छिद्रे श्रोणी कबराहू स्त्रोत्रगा आदि इद्रिया म चय श्रोत्र जादि परिगणित  
थे।<sup>३६</sup>

मन हरि क अनुमार इतिवत्तयता और गीति क ऊह म व्याकरण की गति  
नही है। उनकी व्यवस्था लोक से सम्बन्धान्तरा से और प्रातिगान्था आदि म सम्भव  
है। किन्तु गान्त्रविषयक ऊह म—विभक्ति आदि के विपरिणाम म व्याकरण की प्रवृत्ति  
है। ऊह का विषय वस्तुतः प्रकृतिविकृतिभाव से ही है।<sup>३७</sup>

पुण्यराज के अनुमार सबंध याग और विभक्त्यन्तर के योग जहा व्याकरणशास्त्र  
म दिखलाया गया है वे ऊह के विषय हो सकते हैं। जैसे भूवाप्यो धातव १। ३। १ सूत्र  
मे धातव प्रथमात्त है। अनुदात्तङित आत्मनेपदम १। ३। १२ म इसकी अनुवृत्ति हाती  
है। वहा धातो पञ्चम्य न अपक्षित है फलतः प्रथमात्त का पञ्चम्यत म विभक्ति  
विपरिणाम कर लिया जाता है। इसी प्रकार उपदेशेऽजनुनासिक इत् १। ३। २ तथा  
तस्यलाप १। १६ मे भी विपरिणाम का आश्रय लिया जाता है। जो विभक्ति जिस  
रूप म श्रुत है उसी रूप म जब अक्षय की उपपत्ति नही होती है तो अपथानुपपत्ति के  
आधार दूसरे के साथ सम्बन्ध की धरिताधता के लिए विभक्ति विपरिणाम कर लिया  
जाता है। यह विपरिणाम सामर्थ्य से अनुमित होता है अथवा क्षीर दधि के विपरिणाम  
की तरह भिन्न होता हुआ भी प्रत्यभिचान के बल से अभि न माना जाता है। अथवा  
तदेव इदम इस रूप म उपचरित होना है।<sup>३८</sup>

३६ तत्प्राय सहिता इ। ग। ४। ३

३७ कश्यपकवचस्त्रेकार्या कच्छपमरस्यातीयकरवीरवाचिना यथोपभेदलिग सरव्यान्तरविपरिणामो  
न भवति—  
हेलाराज, तिसमुदेश ५६०

३८ महाभाष्य त्रिपादी, पृ० ५८

३९ वाक्यपदीय, वृत्तिसमुदेश ४५६ ४६०

भाज ने मत्र क अतिरक्त भाषा म भी ऊह के प्रयोग दिखाए हैं।<sup>४३</sup>

सम्बन्धावाध—पुण्यराज के अनुसार सम्बन्धावाधन ऊह का प्रतिपत्नी है। 'देवन्तस्य उच्चारि गहाणि युवा तानि अभिजातस्य' इसम पहले वाक्य के विभक्तयत पदा का वाक्यान्तर के तदनुकूल पदा से संबन्ध ही जाता है। इसी तरह 'वदरी सूम्भकणा मधुरा वक्ष' पचाला जनपद आदि म सम्बन्धावाधन माना जाता है। वदरी क विशेषण मधुर और सूम्भकण्टक शब्द हैं, वदरी के स्त्रीलिङ्ग स उनका भी योग मान कर मधुरा सूम्भकण्टका कहा जाता है। यदि वृक्ष स संबन्ध हो तो वृक्षगत लिङ्ग सत्या याग होना चाहिए। महामाष्यकार ने ऐसे स्थला पर आविष्टलिङ्गाजाति का सहारा लिया है। जाति क सहारे उसक विशेषणा म भी युक्तवदभाव नहीं होता है। फलत पचाला जनपद प्रयोग उपपन्न होत हैं।

ध्वाकरण ग्रास्त्र म बहुगणवतुडति सख्या १।१।२३ सूत्र म बहु और गण ग्रास्त्र का बहुल्य या मध क अर्थ म ग्रहण न होकर मरणावाची क अर्थ म ग्रहण होता है। और उनकी सग्या सत्ता की जाती है। पणा ता पट १।१।२४ म पणाता म स्त्रीलिङ्ग निदेश मे सत्ता स उमका सबत्र हो जाना है। वेद म भी यजमान दण्डेन दीभयति जम वाक्या म यजमानम् का संबन्ध अवाधित रूप म हो जाता है।

भोज न संबन्धावाधन की त्मर रूप म लिया है। उनके अनुसार विगप य्युति क द्वारा भी सामायय्युति का अवाध संबन्धावाधन है। जम ब्राह्मणा भुञ्जता माठरकौण्डिन्यौ परिवविष्टाम, इस वाक्य म विशेषय्युति माठरकौण्डिन्य से सामायय्युति ब्राह्मण भुञ्जताम का बाध नहीं होता।<sup>४४</sup>

सामायानिदेश साम वातिदेश अनिदेश का एक भेद है। अर्थ धम का अर्थ प्रपण अतिदेश है। सामाय का भी अतिदेश होता है और विशेष का भी अतिदेश होता है। सामायतिदेश म अर्थ जो धम हैं उनका प्रसिद्ध अथवा अनुमपभेद सभव संबधिया द्वारा निजात भेद वाल वस्तुधा (धयो) म प्रापण किया जाता है। ब्राह्मणवत अस्मिन् क्षत्रिय वर्तित'अम्' इम वाक्य स ब्राह्मण शब्द के अति प्रसिद्ध अर्थ हैं उनसे सम्बद्ध जो प्रसिद्ध काय है अन्नभोजन आदि उन सबका क्षत्रिय म, जिसम ब्राह्मण शब्द की वक्ति नहीं है, अतिदेश किया जाता है। सामाय मे

४३ अजातुम्बिन कड कपत्रमभिन तूणीद्वय पृष्ठतो,  
भग्मस्तोत्रपवित्रवाच्यद्वन्द्वसुरोपरो खन्व रौरवाम् ।  
मौन्या मरुतया नियन्त्रिमथा वासश्च माञ्जिष्ठकम्  
पाणौ वासु वमस्रस्त्रवनयं दण्डोऽपर पैपल ॥

(उत्तररामचरित ४।२०)

इत्युत्तररामचरिते लवमेव मुदीश्य भवभूतिजनकमेत द्वलोक पाटितवान् । तमेव परचा द्वोरचरिते (१।२२) धत्तस्त्वच रौरवामित्युह्यिन्वा रामलक्ष्मणौ द्राहुदिरथ कुरा वपमपपठन् । अत्रानुर पाणिकाम वासु कादोनामामूहो न भवति । सर्वधमेदनेष मेदसिद्धे । मदन हि प्रतिरत्तत्याऽथो यावाग्मेदसि भवति ताव न भिद्यते ।



होता है एक के पर होने से शय से बाध भी नहीं होना, फलतः उपसर्गान् की आवश्यकता भी नहीं हानी। शास्त्रातिदेश और वायातिदेश में भेद यह है कि शास्त्रातिदेश में वाय उन उन शास्त्रा (सूत्रा) से होता है जबकि वायातिदेश में वाय अतिदेश वाक्य से ही होता है।<sup>४४</sup>

सभी अतिदेशों में वायातिदेश प्रधान माना जाता है।<sup>४५</sup>

पुण्यराज के अनुसार व्यपदेशातिदेश व्याकरणशास्त्र (पाणिनिशास्त्र) में सम्भव नहीं है। वह सनापक्ष से भिन्न नहीं है और वत ग्रहण भी विफल हान लनेगा।<sup>४६</sup> किन्तु कयट आदि ने अनेकस्थल पर व्यपदेशिवत्भाव का आश्रय लिया है

य शब्दो यवान तस्यार्थोपादानपरित्यागाम्या  
व्यपदेशिवत्भावो भवति बुद्ध या नानात्वकल्पनात् ।

—कयट, महाभाष्य प्रदीप ६।१।४५

भोज में व्यपदेशमान को अतिदेश का काय माना है।<sup>४७</sup> अतिदेश वत्यादि के बिना भी देखा जाता है। जैसे अन्नब्रह्मन्त के लिए ब्रह्मदत्त का प्रयोग किया जाता है। इसकी व्याख्या इस रूप में की जाती है कि ब्रह्मदत्त में जो गुण या क्रियाएँ थी उनका अन्नब्रह्मन्त में समारोप कर लिया जाता है। अथवा ब्रह्मदत्त में जो गुण आदि अभी होंगे उनका बुद्धि से आकलन कर उपमानोपमेय सम्बन्ध के सहारे उपचार से अन्नब्रह्मदत्त के लिए ब्रह्मन्त शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

उगीनरवन मद्रेषु यवा ' इस वाक्य में अतिदेश है कि नहीं? भोज के अनुसार यहाँ भी अतिदेश है। यहाँ उगीनर के यवा का भाव अथवा अभाव रूप में प्रतिष्ठो का मद्र जनपद के यव में अतिदेश किया जाता है। यद्यपि वति प्रत्यय का स्वरूप समान है। किन्तु दो नियमों से प्रवर्तित होने के कारण ये दो भिन्न भिन्न काय करत हैं। तेन तुल्य क्रिया चत वति / १ ११५ से प्रवर्तित वति प्रत्यय प्रवृत्त्यथ घम का अन्त्य अतिदेश करता है। तत्र तस्यव ५।१।११६ से विहित वति प्रत्यय आधेय सम्बन्ध घमों का अन्त्य अतिदेश करता है। तद्दृम् ५ १ ११७ से विहित वति प्रत्यय सम्भवतः सभिन्न बुद्धि वाला य नियम विधायक है। आपिणल और काण्डुत्सव व्याकरण में तदहम् नियम नहीं था।<sup>४८</sup>

४५ शास्त्रकारातिदेशोश्चाय विराप । शास्त्रातिदेशेन तेन सन शास्त्रेण कायाणि भवन्ति । कार्यातिदेशो तु अतिदेशवाक्येनैवेति—  
पदमन्तरी ७।१।६५, पृ० ७४०

४६ सर्वान्तिदेशानां वायातिदेशस्य प्राधान्यात् तद्देवेहायव्यगम् ।

महाभाष्यप्रदीप १।१।२१

४७ व्यपदेशिवत् भावस्तु व्याकरणे नैव सम्भवति संज्ञा  
पञ्चाविशेषज्ञानं यन् करणवैषम्यप्रसंगान् ।

पुण्यराज, वाक्यपदीय २।७८

४८ व्यपदेशमात्रमपिकायमतिदेशस्य

स गार प्रकाश ५० ३०१

४९ तद्दृमिति चारम्भं मूत्रं व्याकरणान्तरे ।—वाक्यपदीय वृत्तिमसुरे ५६१

आपिरानां काराणं त्वाश्च सूत्रमेतन् नाशेषम् ।

—हेलाराम, वृत्तिमसुरे ५

भोज न उपमान के प्रसिद्ध धर्मों का उपमय व आरोप व रूप म प्रतिदेग की ग्रहण किया है । यह प्रसिद्धि कभी लोक कभी प्रयोक्ता और कभी प्रत्येक भाषि प्रमाण की अपेक्षा रखती है ।

दावर स्वामी ने नाम और वचन के आधार पर पांच प्रकार के प्रतिनिधित्व माने हैं कर्मनाम, सत्कारनाम योगित, प्रत्यक्षधुन और मानुमानिक । उन्होंने प्रतिदेग के स्वरूप के दानव निम्नलिखित प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है ,

प्रकृतात् कर्मणो यस्मान् तत्समानेषु कर्मसु ।

धर्मोपदेग येन स्यात् सोऽतिदेग इति स्मृत ॥

—दावरभाष्य ७।१२

अर्थित्व सामर्थ्य और अर्थभेद—न तीन की पुण्यराज ने वाक्यधम नहीं माने हैं । किन्तु वाक्यधम के सम्बन्ध म मनुहरि ने सामर्थ्य और अर्थभेद का उल्लेख स्वयं किया है

वाक्येऽपि निपता धर्मा केचित् वक्तो द्वयोस्तथा ।

तेऽर्थभेदेन (त्वभेदेन) सामर्थ्यमात्र एवोपवर्णिता ।<sup>५०</sup>

अर्थित्व स अभिप्राय एवार्थीभाव से जान पड़ता है । सामर्थ्य से अभिप्राय भेद ससग अथवा भेदससग दानो स है । यदि वक्ति म भेद और ससग न हा, सामर्थ्य नहीं हो सकता । सामर्थ्य भेद ससगर्तमक होता है । कभी भेद सामर्थ्य होता है और ससग अनुमेय होता है । कभी ससग सामर्थ्य होता है और भेद अनुमेय होता है अथवा युगपत् आश्रित होकर दोनो सामर्थ्य कहलाते हैं । महाभाष्यकार न भेद और ससग की उपपत्ति यहा अवयवव्यतिरेक के सहारे की है । भोज ने भी ऐसा ही दिखाया है ।<sup>५१</sup> अर्थभेद वाक्य और वक्ति के अर्थ के अभेदत्व का प्रतीकमात्र जान पड़ता है ।

अधिकार पुण्यराज और भोजराज ने अर्थित्व और सामर्थ्य को स्वतंत्र वाक्य धम के रूप म न लेकर इनका सम्बन्ध अधिकार अथवा अधिकारी से जोड़ा है ।

अर्थित्व सामर्थ्य शास्त्रपपु दासयोगित्वमधिकार ।<sup>५२</sup> मीमांसादशन मे यन त्रिया मे उसी का अधिकार माना जाता है जो अर्थी हो, जो दूरफल की इच्छा रखता हो । साथ ही जा अधिकृत वण का हो, निषिद्ध जाति का न हो । अदृष्ट के विषय मे सामर्थ्य असामर्थ्य का निर्णायक शास्त्र है

त्रियामु योग्यत्वमधिकार । क पुन योग्य अर्थी समय शास्त्रेण पपु दस्त इति ।<sup>५३</sup>

५० वाक्यपदीय ३ वक्तिसमुदेश ३६

५१ किं पुनरिदं सामर्थ्यं नाम । भेद ससग उभय वा । तत्र राक्ष पुरुष इत्यत्र तावदेतदवधत्तपरायत्त वक्तिरयं पुरुष न स्वतंत्र तदा स्वामिमसगस्यावगतत्वात् । राजामिशेषज्ञानोपादीयमालो राजराश्वेभ्य स्वाम्यन्तरेभ्य पुरुष व्यावृत्तयनि । सोऽयं स्वाम्यन्तरयवच्छेदो भेद इत्युच्यते ।

—शृ गार प्रकाश अध्याय ३४ हरतलेख

५२ पुण्यराज वाक्यपदीय २ ७६

५३ शृ गार प्रकाश, पृ० ३२३

अदृष्टाथविषये (विशेषे) हि सामर्थ्यासामर्थ्ये शास्त्रादेव समधिगम्येते ।<sup>५४</sup>

अधिक्य, सामर्थ्य और अधिकार को साथ रखकर इनकी एक दूसरी व्याख्या भी संभव है अर्थात् एकार्थीभाव सामर्थ्य और अधिकार अथवा व्यपक्षा, सामर्थ्य और अधिकार । इन दोनों पक्षा का महाभाष्य में समय सूत्र २।१।१ में विवेचन मिलता है ।

व्याकरणशास्त्र में अधिकार का सम्बन्ध पुण्यराज के अनुसार, शब्द, अर्थ और पुरुषधर्म से है । यहाँ प्रसंग से पुण्यराज ने शब्द और अर्थ के भेदों पर विचार किया है जो निम्न लिखित है ।

शब्द छ तरह के हैं । साधु और असाधु । साधु शब्द भी दो तरह के हैं शास्त्रीय और प्रायोगिक । शास्त्रीय शब्द भी तीन तरह के हैं । प्रतिपाद्य, प्रतिपादक और उभय रूप । प्रायोगिक भी लौकिक और बर्दिक भेद से दो प्रकार के होते हैं । इस तरह कुल छ प्रकार के शब्द हैं ।

अर्थ अठारह प्रकार के होते हैं

- १ वस्तुमात्र—जिसके बारे में कहा जा सके जो प्रतिपादन का विषय बन सके वह अर्थ का वस्तुमात्र रूप है अर्थात् जो कुछ वस्तु है, चाहे उसकी यथाय सत्ता हो अथवा कल्पित सत्ता हो वह वस्तु मात्र अर्थ है । दूसरे शब्दा में, शब्द निरपेक्ष वस्तु की सत्ता वस्तुमात्र है ।
- २ अभिधेय—अभिधेय वह अर्थ है जो शब्द का अर्थ है । बाह्य यथाय अर्थ नहीं । जो समीहित है वह अभिधेय है । अभिधेय ही शब्द-व्यापार का विषय है । यह दो प्रकार का होता है । शास्त्रीय और लौकिक ।
- ३ शास्त्रीय वह अर्थ है जो पौरुषेय है कल्पित है, व्यभिचरित भी होता है फिर भी जो परंपरा से अव्यभिचरित माना जाता है और जो परिवर्तित होता हुआ भी अविकल्पित-मा शब्दसाधुत्व के निमित्त के रूप में प्रतिपादक माना जाता है । उसकी नियत अवधि नहीं है इसलिए व्याख्याता उसको बहुधा विभक्त कर अवाप्तान किया करते हैं । इसलिए वह अवाप्तोद्धारिक भी है उसका विस्लेषण अवाप्त उद्धार पद्धति से किया जाता है ।
- ४ लौकिक अर्थ अखण्ड अर्थ है । लौकिक अर्थ में ही शब्द का अधिकार माना जाता है शास्त्रीय अर्थ में शब्द का अधिकार नहीं होता है ।
- ५ विणिष्टावग्रहसप्रत्ययहेतु—जब अर्थ विणिष्टाकार रूप में ज्ञान विषय का प्रत्यायक होता है वह विणिष्टावग्रहसप्रत्यय हेतु माना जाता है । कम घातयति वति वधयति जस वाक्या से भूतकाल के व्यापार नर आदि के माध्यम से वर्तमान काल में दिलाए से जाते हैं । इस तरह के अर्थ के लिए विणिष्टावग्रह सप्रत्ययहेतु शब्द का व्यवहार पुण्यराज ने किया है ।

५४ पुण्यराज, वाचस्पदाय २।७२, १४ गार प्रकारा ५० ३२३ पुण्यराज और भोज के इस प्रसंग के कई वाक्य समान हैं । वा सो दोनों ने भवु हरि से लिया है अथवा भोज ने पुण्यराज से लिया है ।  
द्वितीय पक्ष में पुण्यराज के समय का अन्तिम सीमा ६० १५० हो जाता है ।

६ अविशिष्टावग्रहसप्रत्ययहेतु—बाह्य रूप म जो वस्तु जैसी है उसी रूप म उसका उदभावन अविशिष्ट अवग्रह सप्रत्यय हेतु अर्थ है जैसे गौ युक्त ।

७ मुख्य—शब्द के उच्चारण स जिस अर्थ का साक्षात्बोध होता है वह मुख्य है । जैसे गौ शब्द स सास्ना आदि युक्त गौ यक्ति ।

तस्मात् श्रुतिमात्रेणशब्दस्य येषामर्थेषु तादर्थ्यमवगोपते तेया मुख्यमथमा-  
चक्षते । यत्रश्रुतिमात्रविषय प्राकृत यत्नमतिक्रम्य निमित्तांतरात् प्रतिपत्ति  
त गौणमित्याहुः ।<sup>१५</sup>

८ परिकल्पितरूपविपर्यास—किसी निमित्त के आधार पर जिसका रूप विपर्यास कल्पित होता है वह अर्थ परिकल्पितरूपविपर्यास है । दूसरे शब्दा म गौण अर्थ का एक नाम परिकल्पित रूपविपर्यास है । किसी आजाय के मत म शब्द का अपना स्वरूप ही उसका मूल अर्थ है । उसी क साथ उसका नित्य संबंध है । शब्द के स्वरूप का अर्थ म अंगारोप किया जाता है । जो यह गौ शब्द है वही यह गौ पिण्ड है । श्रवण तो गौ रूप का होता है किंतु उसका अर्थ म विपर्यास हो जाना है । कल्पित होने के कारण इसे कल्पितरूपविपर्यास कहा जाता है । सत्र लोक व्यवहार इस विपर्यास से ही परिचालित होते है । यह विपर्यास द्वितीयस्थानापन है । इसलिए इसे गौण कहा जाता है—

अथै त्वाचार्या मयते स्वरूपे शब्दे नित्य वतते स एव तस्यांतरगो  
व्यभिचारी (अर्थव्यभिचारी) शब्दांतरइच्छासाधारणाऽथ । तत्र चानुपदेश  
प्रतिपत्ति सर्वेषाम । रूप तु शब्दानामर्थेष्वेवाध्यारोप्यते । यो गौ शब्द  
सोऽय पिण्डोऽथ । तथा यो वृद्धि शब्द त आदेच इति । तत्र स्वरूपे-  
ष्वेव श्रुतयो नित्यावरुद्धा । अपस्वरूपयोस्तु रूपविपर्यासमात्रेण सर्वो-  
सोऽध्यवहार विधते । नित्यत्वाच्चेव सवविषया गुणरूपना गौणव्यप  
देशे निमित्तत्वनापादीयते । (नियतस्वरूप श्रूयते) द्वितीयस्थानापन  
विपर्यासस्वरूप गौणव्यपदेशनिमित्त प्रतिपद्यते ।<sup>१६</sup>

९ व्यपदेश्य—भावाप उदाहर पदनि क आधार पर जाति अथवा द्रव्य व्यपदेश्य अर्थ कह जान है ।

१० अर्थव्यपदेश्य—वाक्यायत तण अग्रण्ड अर्थ का अर्थव्यपदेश्य माना जाता है ।

११ सत्त्वभावापन—भावाप उदाहर पदनि वाला व्यपदेश्य अर्थ ही सत्त्वभावापन अर्थ है ।

१२ अमत्त्वभूत—वाक्यायतणण अर्थ जत्र सत्त्वभावापन न ही, अमत्त्वभूत माना जाता है । व्यपदेश्य और मत्त्वभूत अर्थ म तथा अर्थव्यपदेश्य और असत्त्वभूत अर्थ म कवन उक्ति न म भू है ।

१३ नियतवर्ण—जा अर्थ कमा अपन सम्बन्ध का नही छोडना वह नियतवर्ण

१५ अथवा २/१२० इतिवृत्ति ह्यनन शृंग प्रकाश पृ० ३६१ में उक्त है ।

१६ अथवा २/१२० इतिवृत्ति ह्यनन शृंग प्रकाश पृ० ३६१ पर मा उक्त है ।

कहा जाता है अथवा जिसका लक्षण (स्वरूप) स्थिर रहता है वह स्थित लक्षण है। राजपुरुष में पुरुष का राजसम्बन्धित्व सदा अव्यभिचरित रहता है। वह स्थितलक्षण है। स्थितलक्षण पन्था भी होता है वाक्याथ भी होता है।

- १४ विवक्षाप्रापितसन्निधान—जिस अथ का सम्बन्ध विवक्षाधीन है वह विवक्षाप्रापित सन्निधान अथ है। जैसे राज पुरुषस्य में विशेषणविशेष्य विवक्षाधीन है, फलतः सम्बन्ध अनियत है।
- १५ अभिधीयमान—जो अथ जिस रूप में कहा जा रहा है उसी रूप में उसका ग्रहण अभिधीयमान कहलाता है। राजसख गान्त स यह राजा का सखा है—एसा अथ अभिहित होता है।
- १६ प्रतीयमान—अभिधीयमान से एक कोटि आगे का अथ प्रतीयमान माना जाता है जिस राजसख से यह राजा का सखा है—पुन राजा इसका मखा है यह अथ भक्तता है। यही प्रतीयमान अथ है। वात् म इसे ध्वनिवादिया ने अपनाया।
- १७ अभिसहित—शब्द स सपक्व जो अथ रहता है उसे अभिसहित कहा जाता है। जैसे गो शब्द स जाति अथवा द्रव्य गानो दशनभेद से अभिसहित है।
- १८ नातरीयन्—शब्द के सहचरित बणसघटना आदि नातरीयक अथ हैं। पुरुषधम क भीतर वक्तव्य और प्रतिपत्तत्व दानो गहीत हैं।
- उपयुक्त अठारह प्रकार के अथ भत हरि में स्वयं किए हागे। पुण्यराज ने वहीँ से इन्हें लिया हागा। इनका वहीँ अथप्र उल्लेख नहीं मिलता। अवश्य अथ नाम से उल्लिखित उपयुक्त गान्त भत हरि की कृतिया में बहुधा मिलत है। भोज ने अथ द्वादश प्रकार के गिनाए हैं जो व्याकरण की दृष्टि से हैं और वे हैं—क्रिया, काल कारक, पुष्प, उपाधि प्रधान उपस्काराय, प्रातिपत्िकाय, विभक्तयय वक्तयय पदाथ और वाक्याथ।<sup>१७</sup>

वस्तुतः पुण्यराज ने जिन अठारह प्रकार के अथों का उल्लेख किया है वे अथ के भेद न होकर अथ के विभिन्न स्वरूप के प्रत्यायन हैं। एक ही अथ विभिन्न यक्तियों द्वारा भिन्न भिन्न रूप से गनीन हो सकता है। भत हरि के अनुमार गान्त में विणिष्ट-अणिष्ट दाना के अभिधेय की गक्ति रहती है विणिष्टाविणिष्टानिधेयनिबन्धनत्वात् गदानाम।<sup>१८</sup> पुण्यराज ने भत हरि के विणिष्टाभिधेयनिबन्धन के लिए विणिष्टावग्रह सप्रत्यय अनु गान्त का व्यवहार किया है और अविणिष्टानिधेयनिबन्धन के लिए विणिष्टावग्रह सप्रत्ययविपरीत गान्त का व्यवहार किया है। भत हरि ने विणिष्टाभिधेय का उदाहरण चन्दन गन्ध लिया है। चन्दन गान्त विणिष्टसन्निधान स युक्त रूप रमादि को व्यक्त करते हैं। वचन रूप रस आदि गान्त सवपन्थाय साधारण ज्ञान में अविणिष्टा-



भिधेय है। दशन भेद से व्यपदेश्य अत्र्यपदेश्य का भी यही उदाहरण है। चन्दन से गंध का व्यपदेश होता है रूप स नहीं होता। अपोद्धार और स्थितलक्षण की चर्चा मत हरि न अपोद्धार पदार्थों से ये चर्चा स्थितलक्षणा (वाक्यपदीय १।२४) में स्वयं की है। अपोद्धारपदाथ के लिए ही, पुण्यराज ने आवापोद्धारिक शब्द का व्यवहार किया है। अपोद्धार की प्रक्रिया शास्त्रव्यवहार के लिए है लौकिक व्यवहार भी उसका अनुगमन करता है। किंतु अपोद्धार एतत् सञ्चारप्रय है। क्योंकि सत्य अथवा असत्य सत्ता अथवा असत्ता का बोध नहीं हो पाता है

सो धमपाद्धारपदाथ शास्त्रव्यवहारमनुपतति ।

शास्त्रव्यवहारसदश च लौकिकभेदव्यवहारम् ।

स चकपदनिबधन सयासत्यभावेनानुपाख्येम् ।

—वाक्यपदीय, १।२४ हरिवृत्ति

स्थित लक्षण अथ म भी उद्गमप्रविभागे कल्पित होत है। सग्रामयनि, नमस्यति जसी क्रियाए अविभक्ति रूप में अथवा अथ व्यक्त करती हैं वस ही स्थितलक्षण अवि-  
भक्त, अलण्ट अथ है।

मुख्य गीण आदि की चर्चा हो चुका है यथावसर अमी आग भी होगी। मत हरि न द्विवाप्रापित मनिधान अथ का व्यवहार अविभक्ति अथ के लिए किया है। जिस घट के लिए प्रकाशित दोष घट के समीप के अथ पदार्थों का भी चोतक होना है वस ही अथ भा विवक्ति अथ न सम्बद्ध अथ का प्रत्याखन हाता है

गदस्य त्वविवक्षिताथप्रतिपादने किमप्यत कारणम्  
विवक्षाप्रापितसिधान एव व्यवहारस्य अर्थात्मा ।

—वाक्यपदीय २। ०१ हरिवृत्ति हस्तलेख

त्रियांतरस्युदात्त पुण्यराज के अनुसार गत् के अथवा शास्त्र के जो धम अनधिकार के रूप में रह गये हैं वे त्रियांतर युक्त माने जाते हैं। भोजन इमी की दूसरे गत् में बना है। सामर्थ्य अथवा अर्थ की किसी स्थल पर अथागतता का नाम त्रियान्तरयुक्तम् है। गीण आधार पर कविया की ये लक्षणात्मिका प्रसिद्ध है

व्यचित क्वचित प्रगल्भत । न सत्य शक्य जानाति ।

विश्वसि कामचिद रोचते । भिन्नचिहि लोफ ।

धृत्वात्त्रिम पीठापय के आधार पर नियत अत्रम् है। पुण्यराज ने अथ के घाट प्रकार लिए हैं—धृतित्रम अथत्रम पाठत्रम वाणत्रम प्रवृत्तित्रम प्रतिपत्तित्रम, प्रयागत्रम और बुद्धित्रम ।

धृतित्रम अथ के आधार पर पदार्थों का परिपाटा का अनुगमन धृतित्रम है। अन्तर्गत अथ वाच्य मत्वा प्रथम अथ का निर्णय करता है। वह पहल स्नात करण है वाच्य मत्वा है। व्याकरणशास्त्र में वाचिनि १ यथात्मव्यमनुत्ता ममानाम् १।१।१० अथ नियम अथ-वर्णना । के लक्षण है। ममाथ्य मन्तारमम् युवानि निर्विभक्त्युत्तरि चोदनी —२पुष्पा ६।१० । अथ ममाथ्य म स्यत्र प्रथम पूर्वकाथ्य में है। विश्वस्य और परिभाषा म अथ निर्णय प्रथम द्वारा व्यक्त किया गया है।

अथक्रम सामर्थ्य के आधार पर पठित क्रम अथक्रम कहलाता है। भुक्त्वा स्नात्वा व्रजति इस वाक्य में अथक्रम के अनुसार पहले स्नान क्रिया, इसका बाद भोजन क्रिया, तत्पश्चात् गमन क्रिया—य क्रम है किन्तु शब्दतः य क्रम व्यवहरित नहीं है। अथक्रम का आधार अर्थ-स्वरूप की पर्यालोचना है। 'अग्निहोत्र जुहोति यावगू अपयति' इस विधि में यावगू के श्रवण का बाद में उल्लेख है किन्तु व्यवहार में पहले यावगू का श्रवण होता है वाच्य में अग्निहोत्र होता है।

पाठक्रम उच्चारण क्रम का दूसरा नाम पाठक्रम है। यथापठित का यथापठित स सम्बन्ध पाठक्रम है। यथासत्य नियम ही एक तरह से पाठक्रम है। विप्रतिषेधे परकायम् १।८।२ पूर्वत्रामिदम् ८।२।१ य सूत्र पाठक्रम से सम्बद्ध है

इदु स्वर्णमातगपु स्कोकिलकलापित ।

वक्त्रका तीक्ष्णमतिस्वरकेशस्त्वया जिता ।

इस श्लोक में इदु का वक्त्र से स्वर्ण का कालि आदि में यथाक्रम सम्बन्ध है। भाज न कालिदास के निम्न विहित श्लोक में पाठक्रम दिखलाया है।

अग्ने पाणौ विधिबन्धहोते महाकुलीनेन महोव गुर्वी ।

रत्नानुविद्धाणवमेखलाया दिग् सपत्नीभव दधिणस्या ॥२६

अत्र पथिवी सामर्थ्यात् दक्षिणासाधर्म्याच्च पूर्व पतिस्त्व पश्चात् करग्रहणमित्यर्थे प्राप्ते पाठसामर्थ्यात् पूर्व करग्रहण तत पतित्वमिति क्रम ।

—शृगार प्रकाश अध्याय २६ हस्तलेख

काण्डक्रम वदिक साहित्य में वण प्राचा सम्बन्धी जो आश्रय जिस प्रकरण में उद्दिष्ट है उसी प्रकार से उनका अभिमान होता है। कर्मों का विधान कारिका क्रम से शक्तिगणव्यो में देया जाता है। याकरण शान्त्र में भी अधिकार के रूप में काण्डक्रम सम्भव है। अष्टाध्यायी ६।१।१ में ६।१।१२ तक द्विवचन काण्ड तथा ६।१।१३ से ६।१।४८ तक सप्रसारण काण्ड माना जाता है। भाज न काण्ड क्रम का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु शाश्वर भाष्य में काण्ड क्रम का व्यवहार है।<sup>१</sup> भोजन स्थान क्रम का उल्लेख सम्भवतः काण्डक्रम के स्थान पर किया है। स्थानक्रम का उदाहरण शृगार प्रकाश के नवें अध्याय में भू भुव स्वर्वाकान तपयति किया है किन्तु २६ वें अध्याय में प्राङ्गत गाथा उद्धृत कर लिखा है अत्र तिन तिन सापि कृशामने रणायत च इति यम् ।<sup>११</sup>

प्रवृत्तिक्रम प्रतिपत्ता क इच्छावण प्रवृत्त क्रम का प्रवृत्तिक्रम कहा जाता है। महाभाष्यकार ने कहा है—जिस आनुपूर्वी में अर्थों का प्रादुर्भाव होता है उसी तरह

५६ भोजन क्रम श्लोक क प्रथम पाठ का पाठ 'अनेन कृत्यायि करे गृहान' इति रूप में दिया है। यह पाठ अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। भोजन की शिष्टी भी कर अशुभ को लक्ष्य कर है। शृगार प्रकारा पृ० ३० पर भाष्यी पाठ है।

६० तत् (क्रम) श्रु यथापाठप्रवृत्तिकारणमुच्यते वाक्ये—शाश्वरभाष्य ५।१

६१ शृगार प्रकारा, अध्याय २६, हस्तलेख। अतः हरि ने स्थानक्रम का उल्लेख महाभाष्यदायिका में किया है।

गन्ता का भी होता है। पटव्या, मन्त्या इनमें पहले स्त्री प्रत्यय लगते हैं इसके बाद एक वचन आदि की उत्पत्ति होती है। भोज के अनुसार प्राग्बन्धोऽपमपणानि जपति म प्रवत्तिश्रम है।

प्रतिपत्तिश्रम अवगोच के श्रम को प्रतिपत्तिश्रम कहा जाता है। जैसे राज पुम्प के स्थान पर पुम्प राज के उच्चारण करने पर भी राज सम्बन्धी पुरप के श्रम से ही बोध होता है। वदिक साहित्य में प्रतिपत्ति का उदाहरण दीक्षणीयादि का सोमयन में सम्बन्ध है। सोमयन प्रधान है। फिर भी दीक्षणायादि यागनिवृत्तन पूर्वक ही सोमयन की प्रतिपत्ति होती है। भक्त हरि के अनुसार प्रतिपत्ति श्रम थाता अथवा अभिधाना में व्यग्रस्थित नहीं है।<sup>12</sup> भोज में प्रतिपत्तिश्रम का नाम नहीं लिया है।

प्रयोग श्रम प्रयोग श्रम का उल्लेख न ता अत्ररम्भामी न और न भोज में लिया है। पण्यराज न दमक उच्चारण में दुरुज करने जम धानुषा या मकत किया है। दम धानु म गिग श्रम में अनुसंधा का प्रयोग है उगी श्रम में व मना पात है।

बुद्धिश्रम बुद्धिश्रम प्रतिपत्तिश्रम का ही एक रूप जान पड़ता है। व्याकरण में उदाहरण ६।१।७७ आदि में बुद्धि द्वारा पीडापय की कथना की जाती है। यण्यशर आदि में बुद्धिश्रम की कथा की जाती है। भक्त हरि के अनुसार एक बुद्धि में आदिप यन्तु का बद्धयन्त्र में प्रतिभाग होता है। प्रतिमान का भी एक दूसरे में सम्बन्ध बुद्धि द्वारा स्थापित है तथा अथ किया मभव हा पानी है। अन गद्य में बुद्धिश्रम नाम बताया है। एक ही भाषामा बुद्धिश्रम में विभाज की जाती है।<sup>13</sup>

पराङ्ग पराङ्ग से अनिप्राय समवत पराङ्गवत्भाव से है ।

**अप्रयोजक** जो पराथ उत्पन्न है उसी के काम करता हुआ पर का उपकार करता है वह पर उसका अप्रयोजक माना जाता है । दूसरे शब्दा में स्वयं प्रयोग करने में असमर्थ किन्तु दूसरे द्वारा किये गए काम से जिनका सम्बन्ध हो वह अप्रयोजक है । उस मांस के पाक में घृत आदि के साथ अग्नि का सम्बन्ध अप्रयोजक रूप में होता है । स्नान करने वाले के द्वारा स्नानीय द्रव्य से स्नानशादी का अप्रयोजकरूप में सम्बन्ध है । छत्रच्छाया के प्रयोजक राजा है किन्तु छत्रच्छाया में सम्बन्ध हस्ती का है हस्ती अप्रयोजक है । तत्र, अप्रयोजक और प्रसंग तीनों का स्वरूप निम्नलिखित ऋषिभाष्य में है

साधारण भवेत्तत्र पराथ स्वप्रयोजक ।

एवमेव प्रसंग स्यात् विद्यमाने स्वके त्रिणी ॥ —शाबर भाष्य १११

**प्रयोजक** जिसके द्वारा प्रयत्न हो पर प्रवृत्ति होनी है उसे प्रयोजक माना जाता है । स्वयं यत्र का प्रयोजक है । माहस्य्य अर्थापानन का प्रयोजक है । राजा छत्रच्छाया का प्रयोजक है । कभी प्रयोजक और अप्रयोजक साथ साथ समाप्त रहते हैं और उनका निणय सामर्थ्य के आधार पर किया जाता है ।

अर्थाना सनिधानेऽपि भति चषा प्रयोजने ।

प्रयोजनोऽथ गदस्य रूपाभेदेऽपि गम्यते ॥१४

**नातरीयक** प्रधान क्रिया के निवृत्तन में अनिवायत साथ गये धर्म अथवा अर्थ नातरीयक कहे जाते हैं । पाक क्रिया के लिए प्रज्वलित अग्नि के साथ धूम नातरीयक है । भाजक अनुमार जिन सम्बन्ध के साथ क्रिया प्रधान से जुटती है वह नातरीयक है (यत्र सम्बन्धमन्तरेण क्रिया प्रधानेन सम्बन्धयत तन्नातरीयकम् अङ्गारप्रकाश, पृ० ३०८) ।

**प्रधान** जो साध्य है अपराथ है वह प्रधान है । शक्यता में क्रिया और विनोप्य प्रधान है । प्रधानभाव विद्यमान पर भी निभरत होता है ।

**नेप** जो पराथ होता है उस नेप कहा जाता है । गरर स्वामी ने अत्यन्त पराथ को नेप माना है । आचार्य गान्धर्व ने द्रव्य, गुण और सम्स्कार को नेप माना था, याग फल और पुष्प का नेप कहा माना था । द्रव्य क्रिया के लिए होता है । अतः द्रव्य पराथ है । गुण भा द्रव्य के आश्रय में क्रिया का उपकारक है । इसलिए वह भी पराथ है । जिसके हाने से त्रास वस्तु किमी क्रिया के योग्य होती है उस सम्स्कार कहा जाता है । क्रिया के लिए सम्स्कार के प्रयोजन होने से वह भी पराथ है । नेप है । जमिनि ने धर्म और फल को भी पराथ माना है ।

व्याकरणशास्त्र में प्रधान और नेप भाव विवक्षावगत होता है । श्रेष्ठ विनोप्य हाना है । श्रेष्ठ विनोप्य हाना है । द्रव्य का साक्षात् क्रिया से सम्बन्ध है । अतः वह प्रधान है । गुण का द्रव्य द्वारा क्रिया से सम्बन्ध होता है अतः वह अप्रधान है

विशेष्य स्यादनिर्ज्ञान निर्ज्ञातार्थो विशेषणम् ।

परायत्वेन शपत्व सर्वेषामुपकारिणाम् ॥ ६५

इसी तरह साध्य होने के कारण क्रिया प्रधान है। सिद्ध होने के कारण कारक अप्रधान है। गेप है। विवक्षावशात् कही क्रिया भी गेप हीनी है।

विनियोगक्रम गेपशेषिभाव की इतिवत्त्वव्यता का नाम विनियोगक्रम है। भोज ने श्रुत्यादिविनियोग का उल्लेख किया है। श्रुति लिंग वाच्य, प्रकरण स्थान और सामान्या का प्रधान और अगत्व निर्धारण श्रुत्यादिविनियोग है। श्रुत्यादि का कही व्यस्त रूप और कही समस्त रूप में विनियोग दसा जाता है। भते हरि ने विनियोग क्रम का एक बौद्धिक रूप भी दिखाया है। श्रुति विनियोग क्रम के सहारे अर्थ के प्रकाशक होते हैं। जानि व्यक्ति अथवा क्रिया क रूप में वाच्य वाचक का— बुद्धिस्य गत् का— बुद्धिस्य अर्थ के साथ विनियोग होता है। अनवाच्य में से अभिप्रेत अर्थ विशेष का परिग्रहण होता है।<sup>६६</sup>

साक्षादुपकारक जो प्रत्यक्ष रूप में अपने आपका उपकारक ही उस साक्षात् उपकारक कहा जाता है। जब अलकार आदि अपने लिए साक्षात् उपकारक हैं। व्याकरण शास्त्र में प्रत्यय का साक्षात् उपकारक प्रकृति है। वेद में भी दशपूजमासयागों में अघघात आदि साक्षात् उपकारक मान जाते हैं।

आरादुपकारक जो साक्षात् उपकारक न होकर कुछ दूर से उपकारक हैं वे आरात् उपकारक कहा जाते हैं। अलकार अपने आप के लिए साक्षात् उपकारक है पुत्र-पौत्र के लिए दूर से उपकारक है। प्रकृति प्रत्यय का साक्षात् उपकारक है। प्रकृति के विनियोग आरात् उपकारक है। प्रयाज आदि दशपूजमास के आरादुपकारक है। अथवा आरात् गत् की तरह जो परस्पर विरोध के रूप में भी उपकारक हो। आरात् गत् कभी समीप अर्थ का वाचक होता है कभी दूर अर्थ का वाचक होता है।<sup>६७</sup>

भते हरि ने आरादुपकारक के लिए आरादविनियोग गत् का व्यवहार किया है। विनेय अन्वय में वाच्यधर्म नहीं जान पड़ता। भाज ने साक्षात् उपकारक और आरात् उपकारक का अन्वय नहीं किया है।

गतिव्यपारमेद गति और यापारक आश्रय से उपस्थित भूत गतिव्यपारक भूत है।

वसाह्वात् विद्योतते ।

वसाह्वा विद्योतते ।

वसाह्को विद्योतते ।

६३ इत्यादि ४३ व. मन्मुरे ७

६४ इति — इत्यादि ७ व. मन्मुरे ७

अथ साक्षात् उपकारक १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

इत वाक्या म वलाहक शब्द श्रमण उपादान, अधिकरण और कतू शक्ति के साथ भिन्न भिन्न रूप मे व्यक्त किया गया है। यह शक्तिभेद है। विवक्षावशात् इन वाक्यो म व्यापारभेद भा है इसलिए शक्तिव्यापारभेद कहा जाता है

व्यापार याति भेदाख्यस्तत स्वरथयथ क्वचित् ।

आत्मभेदानपक्षोऽस्य क्वचिदेति निमित्तताम् ॥<sup>१८</sup>

'विध्यति धनुषा' इस वाक्य म करण शक्ति अर्थात् शक्ति को अपने भीतर समेट कर विध्यति के अर्थ क साथ मिल जाती है। धनुष मे करणत्व तत्र तक नहीं आ पायगा जब तक अर्थात् शक्ति का वह न अपना ले। पुण्यराज के अनुसार शुद्ध व्यापार भेद संभव नहीं है। शक्तिभेद के बिना व्यापार भेद संभव नहीं है। भोज के अनुसार वास्तव शक्ति भेद क उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अग्निं काष्ठानि दहति अन्नं पचति पदार्थानि प्रकाशयति ।

सपि अग्निं दीपयति पित्तं शमयति, शरीरमाप्याययति ॥

वास्तव शक्ति व्यापार क उदाहरण म आभ्या नीतम—आभ्या पत्र आभ्या दत्तम है। इनम आभ्या पद का ल २ आदि पदा क साथ अर्थात् करण क्त संप्रदान आदि के रूप म अविधा व्यापार भिन्न भिन्न है।

पय पयो जरयति वाक्य मे कन कमविशेषविषय व्यापार है। इसी तरह 'गावो गावो श्रयते', 'पय पयोऽजेपयति' कुण्ड कुण्डे निधेहि जस वाक्या म नमसा द्वित्व बहुत्व कर्माधिकरण विषय स व्यापार भेद है।

फलभेद फल क अर्थात् पर भेद पत्रभेद कहलाता है। एक ही दान किया क आयु शारीर्य और ऐश्वर्य म भिन्न भिन्न फल हो सकता है। इन सत्रम एक ही फल-प्रीति विषय है। वृत्त क्रियाओ का भी एक फल हो सकता है। भिन्न फल क भी क्रिया वही आनन्द की तरह रिभक्त होनी हुई भी अविभक्त ही समुचित रूप म स्वाय की मिद्धि करती है।<sup>१९</sup> एक याग किया का फल यजमान को धमलप म तद्विज का अर्थ रूप म शौदारिक का भोजन रूप म विभिन्न हो सकता है। क्रियाभेद श्रौपाधिक भी हो सकता है जस

उष्ठासिका आस्य ते

हृत्पायिका शम्यते

रपोष पुष्यति ।

समूलकाय कर्षति ।

सम्ब धजभेद धातु से उपात्त क्रिया के सम्ब ध भेद स भेद की प्रतीति सम्ब-धज भेद है। पचत पचन्ति म धातु से उपात्त पाक क्रिया एक है किन्तु कन भेद स

१८ वाच्यपदीय ३, व चिगमुद्देश १ १

१९ क्वचित् भिन्नकत कापि क्रिया प्रविभक्तव्यरूपा वेगालेख्यादिप्रविभाजन प्रत्यासमभाषात् शक्तिगन्निवेशात् समुदायमभावेन विभागनिव प्रा त वाच्य सपयति । तामपि स्मृत्यावसम विनी क्वचित् मन्यन्ते । किंचिन् भिन्नाना क्रियाणामत्र प्रधानविषयव व्याचक्षत ।

भिन्न जान पड़ती है। सम्बन्धभेद श्रोत्रादि भी होता है जस,  
सम्पन्नोपयो ययनेषु गुष्कस्तुष्टुषु विष्ट सुराष्ट्रेषु ।  
परत भयान पटुरासीत पटुतर एपम ।

पुण्यराज न सम्बन्धभेद का एक प्रतिपन्न लिया है जहा सम्बन्धभेद ग भेद नहीं होता, जस 'आस्यत देवदत्तेन' इस वाक्य में भाव में लकार, शोधन भेद के अभिव्यक्त न होने के कारण त्रिया भेद के भी बतान में असमर्थ है। भाज न गृहचारि भेद का भी उल्लेख किया है।

अविवक्षितभेद भेद का प्रतिपन्नभूत अभेद अविवक्षितभूत स अभिप्रेत है। जहा शक्ति में अभेद है वहा भेद की अविवक्षा माननी चाहिए। परन्तु श्रान्त भुक्त' इस वाक्य में कर्ता और कर्म के त्रियाभेद से शक्तिभेद संभव है कि तु कृता द्वारा वह विवक्षित नहीं है। इसी लिए इस वाक्य में समानकृत कत्व उपपन्न होता है। भोज ने अज्ञातभाव के आधार पर भेद विवक्षा और उसके विषय में अभेदविवक्षा लिखा है। अधि ब्रह्मदत्ते पाञ्चाला में भेद विवक्षा और 'तान एव गालीन भुञ्जमह य मगधेषु में अभेदविवक्षा है।

इस तरह शक्ति शक्ति के भेद से भेद अनेक प्रकार का होता है और अभेद भी कई प्रकार का होता है। भेद और अभेद कही वास्तविक बात हैं कही केवल विवक्षा धीन बात हैं। विवक्षा भी कही लौकिकी होती है कही प्रायोगिकी होती है।

प्रसज्यप्रतिषेध जहा नञ का सम्बन्ध त्रिया के साथ होता है और वाक्यभेद होता है वहा प्रसज्यप्रतिषेध माना जाता है। जस 'याकरण गार्श्व म अकतरिच कारके ३।२।१६ सूत्र में नञ का सम्बन्ध त्रिया से है। 'असूय पश्या राजदारा अभानु भेध सम आदि में प्रसज्य प्रतिषेध है।

पयु दास जहा नञ् का सम्बन्ध त्रिया के साथ नहीं होता और एकवाक्यता होती है वहा पयु दास होता है। पाणिनि के श्रान्तोऽनुपसर्गे क ३।२।३ सूत्र में अनुपसर्ग में पयु दास है। अत्राह्वणम आनय वाक्य में अत्राह्वण में पयु दास है।

गौण तत्पुरुष समानाधिकरण १।२।४२ में अवयवा के समानाधिकरण से तत्पुरुष का भी समानाधिकरणत्व माना जाता है। गौर्वाहीक सिंहो माणवक आदि गौण के उदाहरण हैं।

मुख्य गूर माणवक जस प्रयोग मुख्य के उदाहरण है। मुख्य और गौण पर विरतत विचार देना ग्रथ में पहले लिया जा चुका है।

यद्यपि अनक विषय का रूप बनने वाला यद्यपि है। एक श्रुति द्वारा सम्पुद्धो १।२। ३ में लौकिक समोधन की व्यापकता के कारण उसी का ग्रहण होता है। भोज न इमके लिए व्यापक गत का प्रयोग किया है और उस त्रियाविषय तथा कारक विषय के रूप में द्विविध माना है।

गुरु असाप्त अभिधान गुरु है। 'साहित्यगालिमान अय ग्राम जस प्रयोगा में कर्मधारय और मत्वर्थीय का एकत्र समावग गुरुप्रथमा है। श्रावति में गुरुप्रथमा होता है।

लघु (लाघव) सन्निप्त अभिधान लघु है। शास्त्र में एक शेष, सत्ता आदि का विधान लाघव के लिए किया जाता है। तत्र और प्रसंग में लघुप्रनमा होती है।

अगाङ्गिभाव सयुक्तविधान होने पर अगाङ्गिभाव होता है। एफ का भी अवयव वाक्यान्तर से व्यवहिन होने पर भी दूसरे में सम्बन्धमान होकर सम्बन्ध प्राप्त करता है। बहुता में भी अगाङ्गिभाव होता है। एक क्रिया का अनेक वाक्यांश सम्बन्ध में भी अगाङ्गिभाव होता है। पुण्यराज ने तस्यापत्यम् ४।१।६२ कन्तरिङ्गन ३।८।६७ जैसे सूत्रों में अगाङ्गिभाव माना है। दीर्घक अलकार में भी अगाङ्गिभाव माना है।

विकल्प तुल्यप्रमाण वाले वाक्यों में विरोध होने पर विकल्प होता है। वेद में ब्रीहिभि यजेत। यवै यजेन जैसे विधान तुल्यप्रमाण विनिष्ट हैं। अग्रे इनमें साथ लेने पर विरोध है। लोक में भी 'दक्षितके कौण्डिन्याय दीपताम वाक्य में दक्षिणान और तरुणान का एक साथ विरोध है। 'पाकरण शास्त्र में भी ष्वुलनचौ ३।१।१३३ जैसे सूत्रों में विरोध उपस्थित होता है।

विधि और प्रतिषेध के तुल्यबल होने पर भी विकल्प होता है। वेद में षोडशिन गृह्णाति न गृह्णाति लोक में किञ्चिन्म्य दीयता न दीयताम् य उदाहरण हैं। विभाषा का व्यवहार भी विकल्प के रूप में होता है। विभाषा तीन प्रकार से देखी जाती है प्राप्तिविभाषा अप्राप्ति विभाषा और उभयविभाषा। वाक्य में उत्प्रेक्षा विकल्प का ही एक स्वरूप है। समुच्चय और विकल्प का साथ साथ निर्देश समुच्चयों विकल्पों का प्रसार सब एक वा जैसी कारिकाओं में प्राय मिलता है।

नियम —अनङ्ग की प्राप्ति होने पर अयोग, अयथाग व्यवच्छेद के आधार पर निर्धारण नियम कहनाता है। व्याकरणशास्त्र में पति मभास एव १।४।८ त प्रागधानो १।४।८० जम सूत्र नियमविवाचक हैं। वेद में काल की दृष्टि से नमत्र दृष्टवा वाच विमज्जत नियम है। भाषा में पाथ एव धनुधर राज पाण्डुरेव जैसे प्रयोग नियम के ही स्वरूप के द्योतक हैं।

योग्यता —अधिकारित्व का ग्रहण योग्यता है। सीमासा दान में अर्थी समय और शास्त्र से अनिषिद्ध योग्य माना जाता है। लोक में भी समय का साथ योग्यता का सम्बन्ध जाड़ा जाता है। घुरि घुर्यो नियुज्यते लाकोचिन प्रसिद्ध है। वैदिक क्रिया में भी दम्ब का स्थान में गर द्वारा प्रस्तरण ऋत्विज का लाहित उष्णीष विधान आदि योग्यता के निदर्शक हैं। व्याकरण में भी एक पद में एक उदात्त और शेष का अनुदात्त विधान योग्यता से सम्बन्ध रखता है।

लिङ्गात् भेद सत्त्वात्तरोपलक्ष वस्तु के सामर्थ्य से सामान्य रूप में प्राप्ति का विशेष रूप में अवस्थापन लिङ्गात्भेद कहा जाता है। वेद में 'अकना सक्ता उपदधाति श्रुति है। जिससे अकन की जिनामा होने पर तत्रा वै श्रुतम् इम वाक्यान्तर लिङ्ग के बल से धून से अकन रूप में विशेष की प्रतीति होती है। भाषा में भी रामा श्री भुवनपु इमके श्रवण से राम और परशुराम का सन्नेह में भाग क एक वाण से तमानदेश के विवरण रूपी वाक्यान्तर लिङ्ग से दारयपुत्र राम का बोध होता है। व्याकरण शास्त्र में भी पुण्यपर ७।४।८० सूत्र में पुण्यपर' यह वचन द्विवचन



विभक्तक नि गये उगानियमाय का भावक होता है। काव्य म विनयाद्भ्य का उपाहरण मात्र म विद्या है

उत्तोलस्य जयति वागभुज्रपरपाडिगस्य मात्रा हरे ।

विष्णुतागसकावय विनरभ्यावद्विगतीभ्य कवा ।

इसम तागभुज्रग घोर अम्भकन क म्भाग म वसुता ह्म क उगी क अय विनाय की उपनिधि ह्मी है। भोज । अर्थ प्रकरण घीयस्य दादि क अाधार पर सामा यथाथा दात् का विनयस्य म अष्यगमाय को निह्नु द् विभ्य कटा है।

अपोद्धार विभाग को अपोद्धार कटा जाता है। अाग्य मगृत् का अनुमम अयवा कणित रूप म प्रुत स्वरूप का वि लयन अाद्धार कट्मात है। अगामी यथाय पडा जाता है। इसम यथाय दात् म अाद्धार कर विनाय का भाव यथाय इम रूप म विभाग किया जाता है। म म यापय दस्यमायभन म्म कयय म यायस्य पर स अपोद्धार कर यागुर्विष्ठा दयता इम रूप म विभाग किया जाता है। लोक म भी किस राजा का पुत्रय क उत्तर म सुत्र का कटा जाता है। काय्य म अपोद्धार का उपाहरण कामिनाय क निम्नलिगित म्वाय म है

पत्यु गिरन्धद्रकसामनेन हृत्तेति सारया परिहासपुष्यम ।

सा रञ्जयित्वा चरणी कृतामीर्मात्येन सा निबधन जपान ॥<sup>७०</sup>

इसम अना इस सयनाम के द्वारा रञ्जयित्वा इम धृति म समवन चरणराग पृथक् विद्या जाता है।

भतु हरि न उपयुक्त वाक्यधर्मों का एकत्र उत्तरण विद्या है। भोज द्वारा शिष्य गये वाक्यधर्मों म अथवा अनुवाक्य ब्यवहित कल्पना उपधार कल्पना, तन्भावापति प्रतिनिधि, अष्याहार विरिणाम वाक्यनेप अथधि अनिजातप्रान इन पर पुष्यराज ने जहा तहा विचार किया है और य भत हरि द्वारा भी प्रमगत कणित है। इनम प्रति निधि और अनिजात प्रदन की अर्वाअविताभिधानवाद के प्रसंग म की गई है। शेष पर सक्षेप म विचार किया जा रहा है।

अथवाद स्तुति अथवा निदा के लिए अतिशयोक्ति का अाशय अथवाद के नाम से विदित है। भत हरि के अनुसार अथवाद प्रवतक भी होता है और निवतक भी होना है।<sup>७१</sup>

अनुवाद सिद्धि का विधि अथवा नियेध क लिए उच्चारण अनुवाद कहलाता है। पुन स्पटीकरण के लिए सिद्ध वस्तु का पुन उपास भी अनुवाद माना जाता है।

७० तैत्तिरीय संहिता २।१।<sup>१</sup>

७१ कुमार सभव ७।२६

७२ अथवाअनु प्रवतको निवतको वा । तत्राय प्रवतको निगद । सर्वा वा इमा दिरा पशुया इ अ्वभि जयति सर्वान् लोकान् सवा प्वात्येमा िशीभिजिता भवति सर्वे लोका । निवतक न दतो गमयेत् कन्दतो गमयेत् सर्वा एन घातुका खु सर्पानेव रामयत्सहिसायै ।

प्रमाणांतर से नात अय का शब्द द्वारा उल्लेख मात्र भी अनुवाद है।<sup>१३</sup> 'कय एव विधायास्तव एव विधि पति' इस वाक्य में भोज के अनुसार अनुवाद है।

व्यवहितकल्पना सनिहित पन्थ की अयोग्यता के कारण जब व्यवहित का आश्रय लिया जाता है व्यवहितकल्पना होती है। 'प्रविण पिण्डी कहने पर प्रवेश क्रिया के सानिध्य में स्थित पिण्डी ने इसका सम्बन्ध अनुपन होने से व्यवहित भी गृह आदि की अपेक्षा होती है। इसी तरह पिण्डी का सनिहित प्रवेश क्रिया से अयोग्यता के कारण भक्षण क्रिया का आश्रय हो जाता है।

उपचार कल्पना किसी निमित्त के आधार पर अय के धर्म का अयत्र अध्यारोप उपचारकल्पना है। इसके लिए जयादित्य ने गुणकल्पना शब्द का व्यवहार किया है।<sup>१४</sup> उपचार निबन्धन धर्म यहा गुण शब्द से अभिप्रेत है। गुणनिमित्त कल्पना गुणकल्पना है। वह उपचारात्मक होती है इसलिए उसे उपचारकल्पना कहते हैं। जो वस्तु जसी न हो उसमें वना आरोप अथवा आरोपित भाव जान, उपचार कहा जाता है। मञ्चा शोषति, जैसे वाक्या में अय के धर्म का अयत्र आरोप है।

तदभावापत्ति भोज ने विषय स अतः म तन के व्यपदेश का तदभावापत्ति कहा है। गुप्ति म रजन का, मृगतणिका म जन का व्यपदेश तदभावापत्ति है।

अध्याहार वाक्य के यून होने पर आकाशा की निवृत्ति के लिए विशिष्ट क्रिया कारकपद आदि का उपादान अध्याहार कहलाता है। द्वार-द्वार के मुने से आनामा की पूर्ति के लिए यथावसर निव्रियताम अथवा आब्रियताम क्रिया का अध्याहार कर लिया जाता है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण निम्नलिखित श्लोक है

यश्च निम्ब परगुना यश्चन मधुसपिपा ।

यश्चन यधमाल्याम्मा सत्रत्र कटुरेव स ।

इसमें परगुना (ठिनति), मधुसपिपा (सिञ्चति) आदि रूप में अलग अलग क्रियापद का अध्याहार अथसामञ्जस्य की दृष्टि से कर लिया जाता है।

व्याकरण में सोपस्कार सूत्रा में जिन सूत्रा में क्रियापद के प्रयोग सूत्रकार ने नहीं किए हैं क्रिया का अध्याहार लक्ष्य के अनुसार कर लिया जाता है। वक्तिकार ऐसे सूत्रा में क्रियापद के माय ही अय करत हैं जैसे धातोरण भवति कतरि कृत भवन्ति आदि। इको गुणवद्धी १।१।३ सूत्र के लिये 'यत्र गुणवद्धी श्रूयात तत्रैक इत्युपस्थित द्रष्टव्यम्' इस रूप में अध्याहार किया जाता है।

वाक्यगोप जहा वाक्य से मागात विधि अथवा निषेध न कहा गया हो— अश्रूत हो वहा उसकी परिकल्पना वाक्यगोप मानी जाती है। यह आय निवास है' इतना कहने से यही ठहरन की कल्पना हा जाती है। यही वाक्यगोप है। इसी तरह 'इस नदी में ग्राह है' इस वाक्य में स्नान का निषेध वाक्यगोप के रूप में उपस्थित होता है।

भनू हरि ने अध्याहार और वाक्यगोप का समान धर्म में भी प्रयोग किया है

सोपस्कारेषु सूत्रेषु वाक्येषु समस्यते ।

तेन यत तत ततोपात्त त्रियाचेत सति गम्यते ॥<sup>७५</sup>

अध्याहार और वाक्यगत म भेद का है कि अध्याहार प्राणा प्राणाभा का निवृत्तक होता है । जबकि वाक्यगत अर्थों प्राणाभा का निवृत्तक होता है ।<sup>७५</sup> भन हरि की इस सम्बन्ध में दो धारिकारण हैं

स्थापमात्र प्रकाशपातो सावांक्षो विनियतते ।

अथस्तु तस्य सम्बन्धी प्रकाशपति सनिधिम् ॥

पाराध्यस्थाधिगिष्टस्वान गन्दाब्दसनिधि ।

तार्थाच्छब्दस्य सानिध्यं न गन्दाब्दसनिधि ॥<sup>७६</sup>

पुष्परज और भोज दोना ने इस प्रसंग में श्रुतार्थापत्ति का प्रश्न उपस्थित किया है । पीन देवन्त णिन में नहा भोजन करता है । इस वाक्य में पीनत्व भोजन के बिना अनुपपन्न है इसलिए वह उपयुक्त शब्द द्वारा रात्रि भोजन का गमक माना जाता है । पुष्परज के अनुसार यहाँ चार सभावनाएँ हो सकती हैं—<sup>७६</sup> द्वारा शब्द का आक्षेप अथ द्वारा शब्द का आक्षेप शब्द द्वारा अथ का आक्षेप, अथ द्वारा अथ का आक्षेप । इनमें शब्द द्वारा शब्द का आक्षेप पक्ष उपयुक्त नहीं है । स्वाय प्रतिपादन के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है । अपन अथ के प्रकाशन तक ही उसका व्यापार है । अथ द्वारा शब्द का आक्षेप भी संभव नहीं है । अथ से शब्द का सानिध्य नहीं है । जिस अश्रुत का अथ सानिध्य अपेक्षित है वह भी परतत्र है । प्रयोजक सानिध्य के बिना उसका सनिधापन संभव नहीं है । अन्य अथ का और अथ शब्द का वाच्य वाचक भाव न होने से अथ द्वारा शब्द का आक्षेप युक्ति समत नहीं है । शब्द के उच्चरित होने पर श्रुतार्थापत्ति से परिकल्पित शब्दवाच्य अथ का आक्षेप भी अनुपपन्न होगा क्योंकि वाच्य वाचकभाव के न होने के कारण यहाँ भी शब्द से शब्दांतर वाक्य अथ की उपस्थिति न हो सकेगी । यदि अथ-से अथ का आक्षेप स्वीकार किया जाय तो शब्द एकत्व की उपपत्ति नहीं हो पाती है । पुष्परज के मत में चतुर्थपक्ष कुछ दूर तक ठीक है । उनके मत में एक पदों के प्रयोग में श्रुतार्थापत्ति से शब्दांतर का आक्षेप से वाक्याथ निष्पत्ति मानने की अपेक्षा एक पद का ही प्रकरण प्राणि के बल से अथ प्रत्यायन की क्षमता मान लेना अधिक उपयुक्त है ।

भाज न अध्याहार और वाक्यशेष दोनो के लिए श्रुतार्थापत्ति आवश्यक माना है । पद का ही दीघ दीघ व्यापार का रूप में सब तरह के अथ प्रत्यायन सामर्थ्य मानने के पक्ष में वह नहीं है । क्योंकि पद या ता अभिधा के द्वारा उन अर्थों का बोध कराएगा अथवा तात्पर्य गवित का द्वारा उनका प्रत्यायन कराएगा । अभिधापदाथप्रतिपादन में ही

७५ वाक्यगत ३ धत्तिसमु<sup>१</sup> रा ४६३

७६ क पुनर याशुलवाक्यरापयोभिराप । शब्दाकाचानिवनकोऽद्याहार , अर्थाकाचानिवनको वाक्यराप इति ।—शु गार प्रकाश ५०३२४

७७ वाक्यगत २ ३४१ ४२

क्षीण हो जाती है। तात्पर्य शक्ति का सम्बन्ध प्रतीयमान अर्थ से पवश्य है किन्तु वह तभी काम करती है जब वाक्य और वाक्यार्थ दाना परिपूर्ण हैं, जैसे 'विष भुङ्क्ते मा चाम्य गृह्णन्ते' इस वाक्य में वाक्य और वाक्यार्थ की पूर्णता है। जहाँ वाक्य आदि पूर्ण नहीं हैं वहाँ अर्थाहार वाक्यशेष आदि की कल्पना करनी पड़ती है और इनकी सिद्धि के लिए श्रुतायापत्ति स्वीकार करनी चाहिए।<sup>१८</sup>

विपरिणाम लिङ्ग, वचन, विभक्ति आदि जिस रूप में उपात्त हैं उसी रूप में पुन उच्चरित होत हुए भी यदि अर्थान्तरण उनका दूसरे रूप में सङ्घटित किया जाय—वह विपरिणाम कहलाता है। यह एक तरह से ऊह ही है। केवल यही भेद है कि ऊह प्रकृति विकृति को लक्ष्य कर हाता है जबकि विपरिणाम के लिए इस तरह का कोई बंधन नहीं है। विपरिणाम में विपर्यान्तर की अपेक्षा अवश्य की जाती है

विविभक्ति प्रकृत्यथ प्रत्युपाधि कथ भवेत् ।

विभक्तिपरिणामे च प्रकल्प्य विपर्यान्तरम् ॥ वाक्यपदीय ३, ४५८

तेन तुल्य त्रिया चेन वति ५।१।११५ इस सूत्र में तेन में तृतीया समय प्रकृति प्रधान है। क्याकि विनोप्य है। उसको लक्ष्य कर त्रिया शब्द का प्रथमात् रूप में व्यवहार किया गया है। दाना पर भिन्न विभक्ति वाले हैं। इनमें सामानाधिकरण्य कसे समब है? ऐसे स्थलों में सबध की अन्ययानुपपत्ति के कारण विभक्ति विपरिणाम कर लिया जाता है। अथवा वाक्याध्याहार से उपपत्ति की जाती है। अथवा उपाधि के आश्रय से विभक्तिविपरिणाम नहीं माना जाता है

अर्थतानुगमात् तत्र सूत्रे न च विग्रहे ।

विभक्तिविपरिणामेन किञ्चिदस्ति प्रयोजनम् ॥

—वाक्यपदीय ३, वति समुद्देश ४६६

अवधि इयता निर्धारण का नाम अवधि है। इस शब्द का यह अर्थ है अथवा इस अर्थ में यह शब्द है इस तरह की एक बौद्धिक सीमा अवधि कहलाती है। महाभाष्यकार आदि ने जहाँ द्विष्ट शब्द का व्यवहार किया है उसी के लिए भोजने अवधि नाम दिया है। यह श्लेष अलंकार का विषय है।

काले नदन्ति नागा यह वाक्य दो रूप में विभक्त किया जा सकता है—

१—काल (समय पर) नदन्ति (गरजत हैं) नागा (साप) ।

२—कालेन (काल) दन्तिना (हाथी पर) भ्रगा (गये हो)

उपयुक्त सभी वाक्यघट्ट वाक्यार्थशेष की प्रतिपत्ति में सहायक माने जाते हैं। एक वाक्य के विभिन्न अर्थों की कल्पना कर अथवा शोक और वेद में उसके विभिन्न अर्थों को देखकर उन अर्थों के निर्णायक कुछ तत्त्वा की कल्पना कर ली गई थी। यही वाक्यघट्ट अथवा वाक्य-लक्षण हैं।

## वाक्यार्थ की प्रक्रिया

वाक्य और वाक्याथ को अणुण्ड मानने वान आचाय भी व्यवहार म्मा म प् पदाथ की कल्पना करत हैं । जा वाक्य का मणुण्ड मानत हैं उनक म्मा प् प्पाय, वाक्य वास्याथ पर विभक्त रूप स विचार म्वाभ विर १ । प् प्पाय क अन्वय घनवय को लेकर प्राचीन आचामों म पर्याप्त ऊपाह मिनता है । महाभाष्यकार न एम प्रसगा पर अन्वय-व्यतिरेक पद्धति का आश्रय लिया है । तितु वही नहीं आतेप आदि का भी सवेत किया है । बवल प्रविण स द्वार का त्त म देवत्त का, मामा म सत्यमामा का अवबोध देगा जाता है । पतजनि न वाक्यकत्त माना है

अथवा दृश्य ते हि वाक्येषु वाक्यकदेग

प्रमुञ्जाना पदेषु च पदकत्तम ।

—महाभाष्य १।१।४५ पृष्ठ १११ कीलहान सस्वरण ।

## उद्भूत के विचार

वाक्य मे पदो म व्यपेक्षा आदि के सहारे परम्पर अन्वय होता है । उदभट के अनुसार वह तीन तरह का होता है । गक्त वभक्त और गक्तिविभक्तिमय ।<sup>१</sup>

वम आदि शक्तियो से निव त्त को गक्त कहा जाता है । सबध आदि विभक्तियो से निव त्त को वमक्त कहा जाता है और दोनो से निव त्त को गक्ति-विभक्तिमय माना जाता है ।

क्रिया और सुप विभक्ति से कर्ता और वम के अभिधान म गक्त होता है । कृत और आख्यात स भिनकालस्थ वन गक्ति क अभिधान म और सुप विभक्तियो से वम करण और सप्रदान के अभिधान म भी शाक्त होता है । आख्यात विभक्ति से हतु गक्ति के अभिधान मे और सुवविभक्ति स कर्ता वम, अपादान और अधि करण शक्ति के अभिधान म भी शाक्त होता है । आख्यात द्वारा कर्ता के अभिधान म सुप विभक्ति द्वारा कथित और अकथित वम के अभिधान म भी गक्त होता है ।

वमक्त अन्वय मवधविभक्ति स, लोपविभक्ति से, उपपदविभक्ति स और सम्बोधनविभक्ति से निव त्त हाता है ।

कारकविभक्ति स और सबध उपपद लोप संबोधन विभक्तिया द्वारा अभि यक्त गक्तिविभक्तिमय है । विभक्तिया के लोप होन पर भी जहा शक्ति का उदगमन हो वह भी गक्तिविभक्तिमय है । जहा एक और गक्ति दूसरी और विभक्ति हो वह भी गक्तिविभक्तिमय है ।<sup>२</sup>

१ प्लानामभिधिमिताथअधनाकार सन्नों वाक्यम ।

गत्य च त्रिगुणमिग वापार इवीभ्य । वैभक्त शायत , शक्तिविभक्तिमयश्च ।

वाक्यमामामा पु० २२ वहीला सस्वरण ।

२ १ गारप्रकारा २७५ २७५ ।

## अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद

वाक्याथ प्रक्रिया के विषय में अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद प्रसिद्ध वाद हैं। यद्यपि व्याकरणशास्त्र में इन वादों की प्रसिद्धि नहीं है किन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं, वाक्यपदीय में इन वादों द्वारा स्वीकृत मायताओं की चर्चा है और पुण्यराज ने इन दोनों वादों का सुलकर उल्लेख किया है और इनकी आलोचना की है। नागश ने भी मजूपा में इन पर विचार किया है।

अभिहितान्वयवाद के अनुसार पद पहले सामान्य अर्थ का वाच्य कराते हैं बाद में आकाशा याग्यता और सन्निधि के सहार विशेष का बोध कराते हैं। विशेष वाक्याथ है और वह अप्रदाय है। प्राचीन आचार्यों में पतञ्जलि और शबरस्वामी का भी ऐसा ही मत है। साहचर्य के कारण लाघव की दृष्टि से, अन्वयव्यतिरेक का आश्रय लेकर पद और पदाथ की कल्पना की जाती है। प्रतिवाक्य से व्युत्पत्ति भी सबको समझ नहीं है। अतः व्यवहार की दृष्टि से पद पदाथ की कल्पना कर ली जाती है। वाक्य मुख्य है। ससग वाक्याथ है। प्राचीन दृष्टिकोण में और अभिहितान्वयवाद में केवल इतना ही अंतर है कि अभिहितान्वयवाद में वाक्याथ की प्रतीति पदाथ प्रतीतिपूर्वक ही मानी जाती है। जब तक पदाथ का ज्ञान न हो वाक्याथ का ज्ञान नहीं देखा जाता है।

अन्विताभिधानवाद की दृष्टि में वाक्य से ही व्यवहार होता है पद से नहीं। एकाग्रपरक पदसमूह वाक्य है। सभी पद परस्पर मिलकर वाक्याथ का अर्थवाच्य कराते हैं। अन्वित का ही स्वशब्द से अभिधान होता है वाक्याथ की साक्षात् उपलब्धि होती है परम्परया नहीं। वाक्याथ समृष्ट स्वरूप है। इस वाद का मूल भी महाभाष्य में मिल जाता है

न च पदार्थाद्यस्यायस्योपलब्धि भवति वाक्ये ।

—महाभाष्य १।२।४५ पृ० २१८ कीलहान स०

इस वाक्य का अभिप्राय कथन के अनुसार यह है कि अपने अपने अर्थ को व्यक्त करने वाले पद वाक्य हैं। पदाथ ही आकाशा, योग्यता सन्निधिवश परस्पर समृष्ट होकर वाक्याथ हैं।<sup>३</sup> भत हरि ने अन्विताभिधानवाद का संकेत निम्नलिखित शारिका में किया है

नियत साधन साध्ये प्रिया नियतसाधना ।

स सन्निधानमात्रेण नियम सन प्ररागते ॥

—वाक्यपदीय २।४७

अभिहितान्वयवादी अन्विताभिधानवाद की समीक्षा में कहते हैं कि यदि पद

३ पदानि स्वरवमथ प्रतिपादयन्ति वाक्यम् । पदार्था एव आकाशायोग्यतान्निधिशान परस्पर समृष्टा वाक्याथ इत्यथ

का जो अर्थ होता है, पदार्थात्तत्र अन्वित दशा म भी यही होता है अर्थ की प्रतिपत्ति सम्बन्ध रूप म होगी, पदार्थ या प्रथमाग उहा सवगा । आवाप उद्वाप पद्वति स यथा अवतर जाति, द्रव्य गुण, क्रिया क रूप म पदार्थ का विषय विभाग अर्थगत भी हो जाय, सम्बन्ध रूप म अर्थ की प्रतीति वहा भी होगी । अन्विताभिधान पक्ष म दा पदार्थों का परस्पर संबध भी कठिनाई स जान पडेगा क्याकि प्रतियोगी अनन्त हैं, फलत अवय भी अनन्त होगा । अवय की अनन्तता से अन्वित के अभिधान का सम्बन्ध ग्रहण न हो सकेगा । यदि उससे अनपेक्ष रूप म संबध ग्रहण माना जायगा पढ़ने सुने हुए भी उस अर्थ की प्रतीति होन सगगी । 'गाय सामो वहन पर अश्व बाधो अर्थ का भाग हो सकेगा । वद्व्यवहार म भी वाक्य से होने वाली प्रतीति भी पदपरवसायी होती है । अथवा प्रतिवाक्य म व्युत्पत्ति की अपेक्षा होगी और ऐसा सम्भव न हाने से, अनन्त और कठिनाई के कारण शाब्दव्यवहार का ही उच्छेद हो जायगा । इसके अतिरिक्त अभिधान कवि की कविता से भी अर्थबोध होता है वह पद और पदाथ की व्युत्पत्ति के बल पर ही होता है । वाक्यार्थ की व्युत्पत्ति के सहारे नहीं होता । साथ ही अवय अन्वित का विशेषण है पहल अन्वित का अभिधान हो ले तब अवय काम कर सकता है अथवा नहीं । किन्तु यह एक दार्ष्टिक स सम्भव नहीं है । इसकी सिद्धि क लिए शक्तयन्तर कल्पना करनी पडेगी । अन्विताभिधान पक्ष म गाम् आनय वाक्य स यदि गो गद से आनयति क्रिया से विशिष्ट की अभिव्यक्ति मानें गो के अर्थ की प्रधानता होगी । यदि आनयति क्रिया से गो अर्थ की विशेषता मानें तब क्रिया के अर्थ की प्रधानता होगी । इस तरह से, दो प्रधान अर्थ के होने से, वाक्य-भेद होगा ।

अन्विताभिधानपक्ष मे पहले प्रकृति प्रत्यय का अवय, तदनन्तर पदार्थों का अवय—इस रूप मे दो बार अभिधान मानना पडेगा ।

यदि यह मान लिया जाय कि पद अन्वित होकर अपना अर्थ व्यक्त करता है तो उस समय दूसरा पदाथ अभिहित होता है अथवा अनभिहित । यदि दूसरा पदाथ अनभिहित हाता है एक ही पद से उसके अर्थ से अनुरजित द्वितीय पदाथ के भी जान हो जाने के कारण पदात्तर उच्चारण व्यर्थ होने लगेगा । इस दृष्टि से, एक ही पद अखिल पद अर्थ की प्रकट करने वाला हो जायगा और उसी एन से ही व्यवहार होने लगगा । किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता । केवल गौ कहने से सब वशिष्ट्य के बोध होने के कारण यह नहीं सम्भव म आयगा कि किस गुण आदि का उपादान हो । नियत गुण-क्रिया आदि से अनुरूप स्वाथ की प्रतीति हाती है इसम कोई हेतु नहीं है । पदार्थर सनिधान को भी नियम हेतु नहीं माना जा सकता । वह जय मत्र आदि पदों की भाति यदि स्वरूप मात्र स ही सनिहित होता है अविशिष्ट है । यदि पदात्तर का सनिधान अर्थ प्रतिपादन के रूप म नियम का हेतु होता है वह अभिहित अर्थों के अन्वय का प्रतिपादक हो जाता है जो अभिहित-व्यवाद के अनुकूल है ।

यदि एसा माना जाय कि प्रथम पद के अवय के समय दूसरे पद का अर्थ अभिहित रहता है तब मानना होगा कि प्रथम पद पदार्थरत्य अर्थाभिधान की अपेक्षा

रखता है और इस तरह इतरेतराश्रय दोष उपस्थित हो जायगा। यदि दूसरा पद अन्वित रूप में अश्रय बाध करा सकता है, पहले का क्या अपराध है। यदि सभी पदा में स्वायमात्र का अभिधान मान लें तो एक तरह से अभिविज्ञातव्य पद का समर्थन होता है।

इसके अतिरिक्त, "अगुण्यग्रे हस्तिपूथगतम्" जैसे वाक्य में भी अविज्ञात अभिधानपक्ष में, अश्रय होने लगेगा।

अविज्ञातअभिधानवादी मानते हैं कि वाक्य कायभूत है। वक्ता के मन में अश्रय का पूर्वविधान कारण भूत है ऐसा अनुमान कर लिया जाता है। अर्थात् बौद्ध अश्रय कारण है बाह्य वाक्य काय है। जान ज्ञेय से अश्रयभिचरित है। इससे ज्ञेयभूत अश्रय का निश्चय होता है। वाचकशक्ति में अश्रय का परिधान नहीं होता। अतः जिस दर्शन में वाचकशक्ति का ही निश्चय नहीं है अश्रय का अभिधान कैसे संभव है ?

अविज्ञातअभिधानवाद के समर्थक उपयुक्त आश्रय के उत्तर दे दते हैं। कदम्बक रूप में अश्रय की प्रतिपत्ति और प्रतियोगिया के अनन्त होने के कारण पदाद्य प्रतिभास की दुष्परिभास के उत्तर में व अपनी पदार्थाश्रय प्रक्रिया की दूसरी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनके मत में गौ शुक्ल म गौ गत्वा वा शुक्ल से अश्रय अश्रय नहीं होता ऐसा मानने पर व्यभिचार होगा क्योंकि कृष्ण से अश्रय रूप में भी उसके अश्रय की उपलब्धि होती है। सब उद्ये से अश्रय रूप में भी अश्रय नहीं होता क्योंकि ऐसा मानने पर अश्रय के कारण अश्रयपरिधान दुर्बोध होगा। वस्तुतः उसका अश्रय आकाशा, सन्निधि और योग्यता के सहारे उपलब्ध अर्थात्तर से अनुरक्त रूप में व्यक्त होता है। यह व्युत्पत्ति पद व अश्रय उद्घाटन अश्रयवा रचना वचन्य के कारण वाक्य से ही प्रकट हो जाती है। जो आकाशित है योग्य है सन्निहित है उससे अश्रय होकर पद अपने अश्रय का प्रदिपादन करता है। भट्ट हरि की निम्नलिखित कारिकाएँ भी इस मत का समर्थन करती हैं

नियत साधन साध्ये क्रिया नियतसाधना ।

स सन्निधानमात्रेण नियम सनप्रकाशते ॥

गुणभावेन साक्षात् तत्र नाम प्रथतते ।

साध्यत्वेन निमित्तानि क्रियापदमपेक्षते ॥<sup>४</sup>

सन्निहित, आकाशित और योग्य से उपरक्त अपने अश्रय में सम्बन्धग्रहण कर स्वयं श्रुण कर लिया जाता है। इसलिए अश्रय और अश्रयकार के कारण सब अश्रयग्रहण का दोष नहीं होगा। पुनः पद-प्राय में सब अश्रयग्रहण की उपपत्ति होने के कारण प्रथमश्रुत पदाद्य प्रतीति का जो आरोप किया गया था वह निराधार है और गाय लाघो इसमें गाय बाधो यह अश्रय भी नहीं भूलवेगा प्रतिवाक्य में व्युत्पत्ति की अपेक्षा भी नहीं होगी और न अभिनव कवि के श्लोक से वाक्याद्य प्रतीति होगी। अश्रयअभिधान शक्ति के आधार पर ही अश्रय होता है इसलिए दो शक्तियों के



कल्पना मोरव का दोष भी नहीं है। वाक्यभेद सबधी जो आशय किया गया था वह भी युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि अचित्त सबध कभी प्रधान रूप में और कभी अप्रधान रूप में यथायाग्य उत्पन्न हो जायगा वाक्य भेद नहीं होगा।

प्रकृति प्रत्यय के और पद के अभिधान में दो बार अभिधान हान का जो दोष दिखाया गया है वह भी उचित नहीं है। क्योंकि प्रकृति से अचित्त का अर्थ व्यक्त होता है। प्रत्यय प्रत्ययाय और पदार्थ से अचित्त स्वार्थ का व्यक्त करता है। प्रत्ययाय के प्रकृत्यर्थों के पद की अपेक्षा होने के कारण दो बार अभिधान नहीं माना जायगा।

अभिहित पदार्थों के अचित्त के अभिधान पद में दूसरे पद के उच्चारण की व्ययता का दोष और अनभिहित पद में इतरेतराश्रय दोष—य दाना भी निराधार है। क्योंकि अचित्ताभिधानवाद के मत में प्रथमश्रुत पद ही अर्थोप रूप में अचित्त होकर स्वार्थ की अभिव्यक्ति करता है—एसी उनकी मायता नहीं है। वे मानते हैं कि जिस पद के जितने अर्थ सम्भव हैं उससे श्रवण से उतने अर्थ स्मृति में भस्कर उठते हैं। पुन आकाशा योग्यता सन्निधि के सहारे परस्पर अचित्त होकर पदों के द्वारा स्मृति आरूढ़ उन अर्थों का बोध होता है। क्योंकि उस व्यक्ति में वाक्याय की प्रतीति नहीं जगती जिसने सबध ज्ञान नहीं प्राप्त किया है अथवा जिसमें सबध के ग्रहण करने वाले सस्कार नहीं उत्पन्न हुए हैं। अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो गये हैं। जिनके सम्भार व्युत्पन्न नहीं हुए हैं वह पद पद को सुनकर इस अर्थ से यह यह आकाशित सन्निहित और योग्य है इसका स्मरण कर लेता है।<sup>५</sup>

पदा द्वारा अचित्त का अभिधान यदि स्मृतिसन्निधान के सहारे अपनाया जायगा अनेक स्मृति के उदबुद्ध होने की सम्भावना होगी क्योंकि स्मृति प्रत्यासक्ति से संपृक्त होती है। स्मृति के सन्निहित पदार्थों के किसी विन्नेय का ग्रहण नहीं सकेगा। फलत उत्पत्त्या पचति वाक्य में उल्ला केवल पचति के अर्थ से अचित्त रूप में ही सामने नहीं आयेगी अपितु क्लृप्ता निर्वाप आदि से युक्त भी जान पड़ेगी क्योंकि उनका स्मरण भी उल्ला के साथ-साथ होगा। इसी तरह पचति का अर्थ इष्टका कम से भी संपृक्त हान के कारण उसका भी स्मरण होने से ओदन अचित्त रूप में सामने नहीं आयेगा। इस आक्षेप का उत्तर यह कह कर दिया जाता है कि शब्द से जिनका स्मरण हाना है उनका अर्थ ही होता है वद्वयवहार में भी ऐसा दत्ता जाता है।

५ पाथसारथि ने 'स्मृति' शब्द उल्ला को समाह्वय को है। स्मृति तो अनुभूत का होता है। पद रूप कारण के होने से स्मृति मात्र भी नहीं माना जा सकता। अतः उनसे मत में अन्विता भिन्नानाम अनुस्युत है —

अन्विताभिधानार्थमिति च-न । वदलोन्धारणे पदार्थस्वरूपावगमान् । स्मरणे तन् इति च । अनुभूतपरमात्मनः । स्मृतिप्रमात्तरन । पदरूपत्सु पदकारणसम्भावान् । अतः स्वरूपतात्पर्यभिन्नेभिनि नाचित्ताभिधानम् । तिर न चम्बन्विताभिधानं वापरेणमालायां शारद दक्षिणाया चति ।

इसलिए जा अथ गन् से स्मारित है उभो से अचित्त का अभिधान होता है। इसलिए उखा गन् से कलाय निर्वाप अन्ति के अथ स अचित्त की ही प्रतीति होती है। स्मृति के द्वारा अनचित्त के स्वरूप का भी स्मरण हो जाता है। इस तरह स्मृति अनिहित अर्थों से अचित्त स्वाय को पद प्रकट करता है।

गन् के अर्थ से स्वरूप का स्मरण कर्म हुआ है ? गन् म अपने स्वरूप को व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती। इसका उत्तर यह है कि जिम्मा जिम्मे माय काई लगाव (प्रयासक्ति) देखा गया है वह पूर्व सस्कार का जगाकर उसका स्मरण करा सकता है। स्वरूप का अन्ति के माय, अभिधेय मवध के आधार पर प्रयामति है। अन गन् स्वरूप की प्रतीति करा सकता है। जैसे अथ कभो अन्ति पद की स्मृति जगा देता है वैसे ही पन् भी अथ का स्मरण करा देता है। अचित्ताभिधानवाद के समर्थक स्वीकार करते हैं कि पन् से नियत अथ स अन्वय लाभ अचित्ताभिधान पन् म ही उपपन्न हो पाता है। पन्तर अभिधेय के रूप म जो स्मरण कराया जाता है उससे अचित्त का ही वद्व्यवहार म वाच्यत्व देखा जाता है। जहा कही अध्याहार होता है वहा भा सनिधापित अन्ति से विशेष अचित्त अभिधान सिद्ध हो जाता है।

अचित्ताभिधानपन् म अन्तिगुण्ये हस्तिपूयम' इस वाक्य म भी अन्वय होने लगा इस रूप म जो दोष दिखाया गया है वह भी उचित नहीं है। क्याकि स्मृत पदार्थों म भी यदि योग्यता न हो अन्वय नहीं होता इसलिये उपयुक्त वाक्य मे अभिधान समभव नहीं है। पन्थ की प्रतिपत्ति ता अन्वय स्मृति से ही होती है। पुष्पवाक्य के प्रमाण के आधार पर पदा म वाचकत्व गक्ति व अन्वयधारण सबधी जो दाप कहा गया है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि एक तो अचित्ताभिधानवाद पुरूपवाक्यों का अथ म प्रामाण्य नहीं मानता। यदि किसी तरह प्रामाण्य मान भी लिया जाय फिर भी दाप नहीं है। क्याकि पद अचित्त के अभिधायक रूप मे जाना गया है किन्तु अचित्तरित होने की आशंका से लोक म वह निश्चायक नहीं होता। बाद म पर्यालोचना से अनुमित अथ म अनुवाचक माना जाता है। इसलिए उसमे प्रामाण्य नहीं आ पाता। किन्तु पन् अपना वाचकत्व नही छोड़ता है।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि अनन्त प्रतियोगी म अचित्त स्वायबोधन द्विपक्षक अनन्त गक्तिमा की कल्पना करनी पड़ेगी क्याकि चक्षु आदि इन्द्रिया की तरह कायभेद की उपपत्ति हा जायगी। आकाशित सन्निहित पदा म स्वाय के अभिधान की गक्ति एक ही है। उस गक्ति स प्रतियोगी के भेद से कायभेद हो जायगा। जमे चक्षु म दृशन गक्ति एक ही है फिर भी चक्षु घट आदि प्रतियोगी व आश्रय स अन्तक गान का जनक होती है उसी तरह गन् भी प्रतियोगी के भेद से बिना अनेकगक्ति की कल्पना के भी कायभेद का जनक हा जायगा। अचित्ताभिधान पन् म ही पन् का सन्त्य अर्थभिधान और एकाधपरक पदसमूह म वाक्यत्व उपपन्न होता है। सहस्य अर्थभिधान और सघातपन् म भेद यह है कि सन्त्यपन् म पन् के स्वकाय होने हैं सघातपन् म सघातकाय हाते हैं। पन् का स्वकाय स्वाय की



करते हैं। प्रमात्र ने 'तस्मात् व्यतिपक्ताधामिधानम् व्यतिपक्तेनावगते व्यतिपगस्य क्हा था।' अर्थात् पद व्यतिपक्त्वा का अभिधायक है। वह व्यतिपङ्ग का अभिधायक नहीं है। भाव यह है कि शब्द से आकृति का अभिधान होता है भाव में व्यक्ति का भी भाव होता है इसलिए यद्यपि व्यक्ति शब्दजय प्रतीति से ग्राह्य है फिर भी आकृतिगम्य मानी जाती है। आकृति प्रत्यय व्यक्ति प्रत्यय का निमित्त है। जैसे आकृति-मात्र शब्द से गम्य है वैसे व्यक्ति भी गम्य है ऐसा भी माना जा सकता है। क्योंकि केवल जाति का अवगमन सम्व नहीं है। यह आकृति का स्वभाव है कि वह बिना व्यक्ति के आश्रय के प्रतीति गोचर नहीं हो सकती। यह व्यक्ति का रूप है। बिना रूपवान् के रूप में बुद्धि नहीं जम सकती। यदि रूप रूपवान् के बिना भी प्रतीत होता, रूपवत्ता का अस्तित्व ही नहीं होता। इसलिए व्यक्ति के भाव ही जाति का भाव होता है। शब्द भी अपनी शक्ति से जाति का अभिधान करता है। उसका व्यक्ति के बिना ग्रहण दुष्कर है अतः जाति व्यक्ति का भी प्रत्यायन करती है। इससे शब्द का आकृति प्रत्यायन स्वाभाविक है और उसका निमित्त व्यक्तिप्रत्यायकत्व है। इसलिए आकृति-प्रत्यय व्यक्ति प्रत्यय का निमित्त माना जाता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि शब्द से प्रथम अवगत आकृति बाद में व्यक्ति का बोध कराती है। ठीक इसी तरह, अचित्त अभिधायी शब्द द्वारा अवयव के बिना अचित्त का बोध नहीं कराया जा सकता। अतः अवयव का बोध करता हुआ पन्थाय निमित्तक माना जाता है। शब्द भाष्य के उपयुक्त वाक्य में पन्थाय शब्द का अभिप्राय अचित्त से है वाक्याय शब्द का अभिप्राय अवयव से है। पद अचित्त होकर अवयव का अवबोध कराते हैं।

पाथसारथि ने इसे क्लिष्ट भाग माना है।<sup>१५</sup> उनके अनुसार भाष्यकार ने वाक्याय में पदाय की निमित्तता स्पष्ट रूप में व्यक्त कर दी है। पदाय आकाशा सन्निधि और योग्यता के सहारे अचित्त होकर वाक्याय को व्यक्त करत हैं।

वद्व्यवहार वाक्य से परिचालित होता है। व्युत्पत्ति भी वाक्य से होती है। किन्तु वह व्युत्पत्ति एकघटनाकारकसहत्ववाक्यायनिष्ठ है अथवा पदाय पर्यत है? पहले पद्य में प्रतिवाच्य में व्युत्पत्ति अपेक्षित होगी इससे आन्तरिक व्यभिचार आदि दोष सामने आयेंगे। पदायपर्यन्त मानने पर यह निश्चय करना पड़गा कि इस पद का अर्थ इतना है। सहत्यकारिता पद्य में शब्द के अवयव का दृष्टान्त दिया जाता है इस दृष्टान्त के द्वारा भी पदवाच्यार का निर्धारण अभीष्ट है। पन्थानियम की अनुपेक्षा से 'याम आनय कहने की इच्छा रखने वाला अवयव आनय' कह सकता है। जिस तरह से संवाचरण पदवाच्य विभाग की अपेक्षा नहीं रखत वैसे उसकी भी नहीं होती ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिए आवाप उवाप की पयालोचना में अिनना पद का अर्थ निर्धारित होता है उतना उसका अर्थ है। अवयव-व्यतिरक्त के आधार पर पद की अभिधायी शक्ति केवल जाति में है अथवा व्यक्ति में है व्यक्ति में नहीं है।

साध्य दत्ति ज्ञानाभ्यास है उपाय अभिधानो दत्ति नहीं है । साधना की शक्ति स पदा म साध्य दत्ति है अभिधानो दत्ति नहीं है । अतएव अतिरिक्तविधान वाम अभिहितव्यय । सुधार है ।

पदार्थों के अर्थय बोध म दत्ति गौरव नहीं जाना कर्णित मभी साध्य साधनगत है । अभिहितय के मध्य व म मध्य जाना व नरणा व साधनित मान जात हैं । यद्यपि पदार्थ साधनाय म अविनाभूत रूप म मध्यव्य नहीं है फिर भी यों एकत्रायता के आधार पर स जना मानी जाती है अतिरिक्त मध्यय के आधार पर नहीं मानी जाती । बिना अविनाभाय के भी व्रीहीन अर्थय जग साधना म एक-धारयता के आधार पर सगणा लगी जाती है । एकधारयता कर्ण प्रणय । जानी है वहीं प्रवरण के सहारे अनुभव होती है ।

भोज न उभयवानी का भी उन्नय किया है । उभयवानी अभिहितव्यय और अविनाभिधानवाद का समन्वय उपस्थित करत है । उनके अनुसार सामान्य की दृष्टि म अविनाभिधान होता है विनय की दृष्टि स अभिहितव्यय जाना है । गो धाद स्वाय का सामान्य स अविना रूप म जताना है, विनय का मान नहीं हो पाता । यही सामान्य के द्वारा अभिधान है । शुद्ध अति गुण पदार्थ स अर्थयत है । यही विनय के द्वारा अभिधान है । वाक्याय इत मत म शिवाकारण ससग रूप है ।<sup>६</sup>

अविनाभिधानवाद और अभिहितव्ययवादा दोनों म पदार्थ म दत्ति बलरता समान है । पदार्थ के आश्रय स यदि वाक्याय का बोध न माना जाय तो, जसा कि भत हरि ने लिखाया है निम्नलिखित पाँच दोष उपस्थित होत हैं —

- १—प्रतिनिधि कल्पना की अनुपपत्ति
- २—पिकादिनियतपदप्र न की अनुपपत्ति
- ३—श्रुति और वाक्य के विरोध मे श्रुति की बलवता की अनुपपत्ति ।
- ४—अवान्तर वाक्यों म अर्थवत्त्व का अभाव
- ५—लक्षण की अनुपपत्ति ।

मुख्य वस्तु के अभाव म यदि उसके सन्तुष किसी अर्थ वस्तु स उसका काम लिया जाता है तो उस सादृश्य वाली वस्तु को प्रतिनिधि कहा जाता है । जस व्रीहि के अभाव म यदि नीवार से काम लिया जाय नीवार प्रतिनिधि है । व्रीहिभि यजत' इममे यजति त्रिया स देवता को लभ्यवर द्रव्य का त्याग अर्थ सामने आता है । इस लिय द्रव्य यजति त्रिया से एकत्रेणभावापन्न होन के कारण उमका अर्थ है और श्रुतिप्राप्त सनिधान है । यहा श्रुतिप्राप्तसनिधान शान्त है । व्रीहित्व अति सामान्यविनय है । निविनय सामान्य नहीं होता इसलिए व्रीहित्व विशेष से परिपोय होता है । व्रीहि श्रुति अर्थावापाय है । वह शान्तसामर्थ्य प्राप्त द्रव्यत्व मात्र को अतिरोध के कारण नहीं वाधनी । द्रव्यत्व श्रुतिसामर्थ्य प्राप्त है व्रीहित्व अर्थसामर्थ्य से आया है वह सामान्य-मात्रप्राप्तसनिधान है । किंतु जिसके विचार म यजति त्रिया के सामर्थ्य से ही व्रीहित्व

श्रुति की प्राप्ति है उनका अनुसार श्रोहिथ्रुति नियमायक होगी और यवत्व आदि सामान्य विशेष का निवृत्तक होगी। इस दृष्टि में श्रोहित्व से यवत्व आदि गृह्यकारी द्रव्या का अग्रमारण होगा। जिस तरह से यव के लिए निषिद्ध पलाण्डु आदि का, अर्थित्व और मामय्य होने पर भी शास्त्र के द्वारा अपयुक्त होने के कारण वचनांतर के न होने के कारण, प्रतिनिधि उपादान नहीं होना उसी तरह नीवार यव आदि का भी श्रोहिदि नियम में निषिद्ध होने के कारण और वचनांतर के अभाव के कारण प्रतिनिधि नहीं होगा। एक दूसरे दंगत के अनुसार श्रोहिताम्, शब्द द्वारा अगाहन श्रोहित्व का अग्र रूप में अधिक कल्पित कर लेता है। फलतः द्रव्यत्व का बोध नहीं कर पाना है। क्योंकि न तो यवत्व श्रुति की वृत्ति में उसका व्यापार है और न अग्रयुक्ता में। सामान्य का विशेष के साथ अतिराध होने के कारण द्रव्यत्व का बाध न होगा। द्रव्यत्व मात्र के आक्षेप में प्रतिनिधि की उपपत्ति हो जायगी।

यदि श्रोहिथ्रुति नियमायक न मानी जायगी, नीवार आदि का विकल्प प्राप्त होगा। श्रोहि से होना चाहिए अथवा यव से होना चाहिए इस रूप में विकल्प होगा। फलतः श्रोहिथ्रुति निरर्थक होगी। इसके समाधान में भत हरि ने असंभव नियम का उक्त किया है। श्रोहित्व से द्रव्यत्व के विशेषित होने पर वस्तु सामान्य के बल से यवत्व आदि की संभावना नहीं है। जहां पर द्रव्यत्व श्रोहित्व एकायसमवायी है वही यवत्व-एकायसमवायी संभव नहीं है। यह असंभव नियम है। दो प्रकार का नियम होता है। कोई शब्दसामान्य से आ जाता है जहां पक्ष में प्राप्ति होने पर श्रुति होती है। जैसे व्यक्ति पदार्थ पक्ष में विप्रतिपेक्षे परम। कोई नियम, शब्द व्यापार के न होने पर भी पदार्थों के इतरेतररूपसाक्य के अभाव से एक प्रवृत्ति अपने से अतिरिक्त के निवृत्तिफलक होती है इस आधार पर पदार्थस्वरूप के विमर्श से आ जाता है। इसे असंभव नियम कहा जाता है

असंभवो नाम नियम शब्दव्यापारो (अशब्दव्यापार) नियमसदशफल चचि-  
दविषयेऽय एव धर्मोऽयमसंभवनियम इति नियम विभागे यावद्विद कचिदा  
चक्षते ।<sup>१</sup>

—वाचस्पदीय २।६ = हरिवृत्ति

यहां पर शब्द सामान्य में द्रव्यत्व भी उपस्थित है श्रोहित्व भी। अर्थात् व्यापार है। अण्ड वाक्याथ पक्ष में भी अपोद्धार दंगत में भेद, समग्र श्रुति विकल्प किए जाते हैं। व्याप्ति के मत में भेद वाक्याथ है। क्योंकि पद से वाच्य द्रव्या का द्रव्यान्तर से निवृत्ति अभिप्रेत रहती है। जातिवादी वाजप्यायन के मत में समग्र वाक्याथ है। क्योंकि वाक्याथ सामान्य का, पदार्थों का संश्लेष मात्र है।<sup>११</sup> जहां

१० अंगार प्रकाश में यह वाक्य यों उद्धृत है—

‘असंभवो नाम चन्नियमसदशफल अय एव वाच्यविशय  
यमसंभवनियम इत्यामनन्ति ।’

अंगार प्रकाश ५० ३१४ मैसूर संस्करण ।

११ अरण्येऽपि वाक्याथनयेऽपोद्धारदरागतो भेदसमागदिविकल्प ।

तत्र ‘यादिमने मने वाच्यथ । वाजप्यायनरूप तु मत संसर्गो वाक्याथ ।

—हेलराज । वाचस्पदीय, अग्निमुद्रं श ५

शास्त्र से ग्रीहित्व अधिक रूप में प्रगमाय प्राप्त हो जाता है। वही श्रुति से अप्रतिपिष्ट होने पर भी यद्यपि न हो सके तो क्या कि ग्रीहित्व का माप उक्त सिद्ध—एवायममाय है। यदि हा भी तो विरोध नहीं होने में, सामान्यप्राप्तगतिमान के रूप में, ससृष्ट व्यापार का विना भी गहीत है। किन्तु यह विरल का विषय नहीं है।

निविद्येय सामान्य नहीं होना इगलित यजि क्रिया से विनेपनिष्ठ द्रव्य का भागेप हाता है। इमलिए सभी विनेप श्रुतिसामान्य से प्राप्त हंगि। फनत ग्रीहित्व यह श्रुति श्रुत रूप में भी नियमफल वाली ही हो जाती है अतः श्रुत अथवा त्याग का नहीं होगा? इसका उत्तर मनु हरि ने यह कहकर दिया है कि प्रतिनिधि का विषय में ऐसा नहीं होता। क्रिया ससृष्ट से सभी विनेप सगित नहीं होत। ससृष्ट सभी विनेप का अभिधायक नहीं होता

न हि सर्वेषां सतां शब्दोऽभिधायकः ।<sup>१२</sup>

ससृष्ट वस्तुचिन्ता का अनुसरण नहीं करता। वस्तु का कोई भाग ही शास्त्र का विषय होता है। सबल सनिहितविनेप का अभिधायक ससृष्ट नहीं दसा जाता। यजति क्रिया का केवल द्रव्य मात्र के आक्षेप में सति है द्रव्य विनेप में नहीं है। ग्रीहित्व आदि द्रव्य सहकारी विशेष जो क्रियापदाथ का एकदेश भूत हैं यजि क्रिया से सगित नहीं हंगे। वस्तु विवक्षानिबन्धन होती है। सत पदाथ भी अथ रूप में असत हो सकता है। विवक्षा ससृष्ट सामान्य का अनुरूप होती है। द्रव्य के साथ शुक्ल आदि गुण भी रहते हैं किन्तु क्रिया शास्त्र से गुण की विवक्षा क्रिया का अंग रूप में नहीं होती और न उनका प्रत्यायन क्रिया पद से संभव ही है। इसलिए द्रव्यमात्र का ही आक्षेप शास्त्र से होता है उसके परिपोष के लिए विशेष का आवाप नियम के लिए नहीं होता। फलतः शास्त्र से अपयुक्त विशेषों के प्रतिनिधि उपपन्न हो जाता है। इस तरह यहाँ असम्भवनियम त्याग का विवरण है।

जिनके मत में क्रियाविनेप ही वाक्याय है उनके मत में क्रिया स्वसिद्धि के लिए योग्यद्रव्य साधन का आक्षेप कर लेती है। वही पदांतर से विशिष्ट कहा जाता है। एसी दशा में, जहाँ श्रुत साधन संभव नहीं है प्रधानभूत क्रिया की प्रतिपत्ति के लिए किसी अथ साधन को प्रतिनिधि रूप में ले लिया जाता है। क्रिया का प्रतिनिधान नहीं होता क्योंकि वह प्रधान होती है। शिष्टो ने गुणभूत साधन को ही प्रतिनिधि रूप में स्वीकार किया है। अतः प्रधानभूत क्रियापदाथ से आक्षिप्त साधनमात्र का त्याग नहीं होता अपितु ग्रीहित्व से उपात्त द्रव्यविषयक नियममात्र का बाध होता है। इसे नियम मात्रबाध कहा जाता है।

प्रतिनिधि के प्रसंग में असम्भवनियमत्याग और नियममात्रबाध इन दो दार्शनिक विचारों के प्रतिरिक्त तीन अथ विचारों का भी मत हरि ने उल्लेख किया है। वे हैं—प्राथम्य सामान्य से प्रतिनिधि की उपपत्ति, वाक्यायसामान्य से प्रतिनिधि की उपपत्ति और प्रकरण सामान्य से प्रतिनिधि की उपपत्ति।

जातिपदाथ पत्र म आख्यातवाच्य क्रिया स जाति वा सम्बन्ध कस होगा । क्रिया साधन से जुटती है । जाति साधन नहीं है । उसके आश्रय रूप साधन से सम्बन्ध करने पर प्रतिनिधि की अनुपपत्ति का प्रश्न उठ खड़ा होता है । इनके उत्तर म कुछ भाचार्यों की भायना है कि जाति शक्ति का उपलक्षण है । 'खदिर बघानि' इस युक्ति के अनुसार वही खदिर म बघाने का समय न हो तो उसके सत्त्व बदर म बघन का वाय सपन्न क्रिया जाता है । जिस तरह बदर खदिर का प्रतिनिधि हो जाता है, उसी तरह द्रव्यान्तरगत शक्ति का भी, आश्रय की सत्सक्तता की दृष्टि स, परिग्रहण कर लिया जाता है ।

जातिपदाथ सिद्धान्त के मानने वाला में कतिपय जाति को अभिधेय मानत हैं, उपलक्षण नहीं मानत । उनके मत में भी प्रतिनिधि की उपपत्ति हो जायगी । बघन का प्रयोग अस्वातन्त्र्य है । यदि खदिर शक्तिहीन है तो उसको छोड़कर बदर काम में लाया जाता है । इसमें विधि में कोई दोष नहीं माना जाता । इसी तरह जाति के अभिधान के पक्ष में भी शक्तिहीन का ग्रहण नहीं होगा । गाम् आलभेन जसे श्रुतिवाक्य स भी योग्य व्यक्ति के साथ क्रिया का सम्बन्ध होता है ।

यदि बघन का अभिप्राय केवल सस्त्रेप मात्र हो तो प्रकरण आदि की पर्यालोचना स प्रतिनिधि उपपन्न हाता है ।

प्रतिनिधि के उपादान होने पर भी अखण्डवाक्याथ का अनुष्ठान संभव न होने से नीवारकरणवाक्याथ के अनुष्ठान से नित्य, काम्य आदि विधि का लाप होन लगया । अखण्ड पक्ष में 'क्रिया का प्रतिनिधान नहीं होना द्रव्य का होता है, यह माय भी विच्छिन्न हो जायगा । अतः पदाथ द्वारा वाक्याथ का अवबोध मानना चाहिए ।

प्रसिद्ध पदाथ के अवधारण के लिए अप्रसिद्धपदाथ का परिग्रह निर्गम प्रश्न कहा जाता है । जस वनात पिक आनीयताम् 'जजरा वरामी वृपनाय दीयनाम्' जैसे वाक्यों के कहन पर सुनने वाले जिन पदा के अर्थ जानते हैं उनके बारे में तो कुछ नहीं कहने किन्तु जिन पदों के अर्थ उन्हें नहीं पता हैं उनके बारे में जिनासा व्यक्त करते हुए देखे जाते हैं । जैसे वन शब्द का अर्थ पता है किन्तु पिक शब्द का नहीं पता है तो पूछत हैं 'पिक कौन सी वस्तु है जिसे वन स लाना है ।' 'अथवा विरासी (वरामी ?) क्या है जिसे वपल मो देना है । वक्ष वपम, काण्टीर आदि प्रसिद्ध भेदा म अत्र श्रुपम भाण्डीर आदि अर्थ जिनासा में वकार अथवा ककार के अर्थ के लिए वण विपक्षक प्रश्न नहीं देना जाता है । यदि निरवयव, अखण्डवाक्य स अलण अर्थ की प्रतिनि होती वनात पिक आनीयताम वाक्य से भी अखण्ड अर्थ भासित होता । किन्तु पथक् पिक पद व अर्थ की जिनासा होती है । अतः वाक्याथ अविभागाधित न हाकर विभागमय

१३ शबर स्वामी ने पिक शब्द को अनाय माना है । जिन जिन मह वाक्य उदाहरण क रूप में आया होगा, बहुत से लोग इस शब्द को नहीं पहचान पाये हंग वरामी शब्द भी मन्त्रैतर भाषा का नाम पड़या है । यों वैदिक साहित्य म वपविराप क अर्थ में लिखता है ।



है। मीमांसा दान में श्रुति और वाक्य के विरोध में श्रुति बलवती मानी जाती है। यदि वाक्याय अविभक्त रूप में स्वीकार किया जायगा, श्रुति और वाक्य के परस्पर विरोध में पारदौबल्य वाला नियम नहीं लागू हो सकेगा। प्रमाणांतर निरपेक्ष शब्द का श्रुति कहा जाता है। भत हरि के अनुसार श्रुति एक साक्षिपया एकप-निबधना होती है

इह श्रुतिर्नामकशब्दविषयकपदनिबधनार्था ।<sup>१४</sup>

समभिव्याहार अथवा अपशपि वाचकपदा के सह उच्चारण को वाक्य कहा जाता है। श्रुति का सम्बन्ध साक्षात् प्रापित से होता है, वाक्य का यत्न प्रापित से होता है इसलिए श्रुतिधर्म से वाक्यधर्म विलक्षण माना जाता है। श्वेत छागमालभेत इस वाक्य में द्रव्य का आलम्बन क्रिया के साथ योग द्वितीया श्रुति (द्वितीयाविभक्ति) से साक्षात् प्रतिपादित है। श्वेतगुणका सम्बन्ध सामानाधिकरण्या के आधार पर है। निगुण द्रव्य नहीं हो सकता केवल गुण में क्रिया नहीं हो सकती इस लिए गुण का सम्बन्ध आश्रयआश्रयिरूप में है यह सम्बन्ध वाच्यीय है। उसका सम्बन्ध सन्निधान वश है। द्वितीया श्रुति और तिस विभक्ति श्रुत सम्बन्ध को प्रकट करती है क्योंकि क्रिया और कारक एक दूसरे के स्वरूप से यथा अनुविद्ध है। वाक्य के सम्बन्ध का कोई साक्षात् वाचक यथा नहीं है केवल योग्याथ सम वय के लिए पदान्तर सन्निधान से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इसलिए श्रुति की अपेक्षा वाक्य दुबल माना जाता है। भत हरि ने श्रुति और वाक्य का विरोध और वाक्य से श्रुति की बलवत्ता के लिए निम्न लिखित उदाहरण दिया है

पयसा भुक्ते देवदत्त गतेन

इस वाक्य में पय से उपसर्जन श्रुतिप्रापित है। क्योंकि पयसा में तृतीया श्रुति का क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध है। पयविपयक श्रपण वाक्य प्रापित है। क्योंकि उनमें विपणविगप्य भाव है। यथा वाक्य प्रापित श्रपण के न होने पर भी श्रुतिप्रापित उपसर्जनत्व का निवर्तन नहीं होता। लोके में उपसर्जन के रूप में अप्रसिद्ध जल आदि हैं उनसे द्वारा श्रपण वाक्य उपयुक्त नहीं माना जाता। अतः पय का ग्रहण कर लिया जाता है किन्तु गत भी उत्क का उपादान नहीं होता। श्रुति और वाक्य के विकल्प में श्रपण ही किया जाता है वाक्याय नहीं।

भत हरि ने श्रुति का सामर्थ्य प्रापित और व्यक्तयथ—अनुपजन—का रूप में ग्रहण किया है। सामर्थ्य प्रापित से तात्पर्य साक्षात् एक शब्द से गृहीत अथरूप से है। इससे अनिश्चित एक शब्दापत्त अथ जब किसी शब्दांतर से अभिव्यक्ति के लिए सम्बन्ध हा जाता है वह भा किंगी सम्बन्धांतर के आश्रय न लन के कारण—अनाधेय सम्बन्ध के कारण—श्रुति माना जाता है। दूसरे शब्दों में, श्रुति अपन अथ का सिद्धि

<sup>१४</sup> वाक्याय अविभक्त रूप में स्वीकार किया जायगा, श्रुति और वाक्य के परस्पर विरोध में पारदौबल्य वाला नियम नहीं लागू हो सकेगा। प्रमाणांतर निरपेक्ष शब्द का श्रुति कहा जाता है। भत हरि के अनुसार श्रुति एक साक्षिपया एकप-निबधना होती है

इह श्रुतिर्नामकशब्दविषयकपदनिबधनार्था ।

क लिए कम करण, अधिचरण आदि जिसका आक्षेप करती है वह सब भी श्रुयमाने जाते हैं। जैसे 'प्रवहयताम कहन स श्रीहि आदि का, सूय उति कहने स गि का, वरति कहने मे दव का आरेन हा जाता है। व्यक्तयय अनुपग साधन का भी होना है। सापनाश्रय का भी हाता है।<sup>१५</sup> यदि वाक्याय अखण्ड रूप म माना जायगा, श्रौत और वाक्यीय का विभाग ही सम्भव नहीं होगा, पुन उनम वाद्य विचारता सबथा निरधक हो जायगा।

यदि पण्यनिव धन वाक्याय नहीं स्वीकार किया जायगा, अवातर वाक्या म अयवत्ता की उपपत्ति कठिन हो जायगी। कभी कभी एक अय की सिद्धि क लिए वाक्यों क समुदाय एक साथ व्यवहृत हात हैं और वे परस्पर साकाम्य होने हैं, जैसे

“गौ दुह्यताम, उवाध्याय पयसा भुक्त्वा मामध्यापयतु।”

“अग्निजातासि देवदत्त कश्मारेयु वत्स्याम।”

एसे वाक्या म अखण्डपण्य म, पण्य की तरह अवातरवाक्य अनयक हो जायेंगे। वाक्य की कोई सामा नहीं है। वे बढाए जा सकत है, जैसे,

गाम अग्न्याज।

दवदत्त गाम अग्न्याज।

दवदत्त गाम् अग्न्याज शुक्लाम आदि।

एभी दशा म स्वतन्त्र रूप म जो वाक्य नायक हैं अवातर वाक्य क रूप म कही निरयक हान लगय।

वाक्य के अविभाग पण्य को प्रथम दन से लक्षण की भी अनुपपत्ति होती है। लक्षण एक तरह म वाक्य धम है जो वाक्यायविशेष के परिज्ञान म सहायक होत हैं। ये षट द्वादश अथवा चौबीस तरह के मान जात हैं। भत हरि के लिखन स एसा जान पडता है कि उ होन स्वय लक्षणसमुद्देश म इन भेदो पर विस्तार स विचार किया था

सवयायलक्षणयवस्थाविरुद्धश्चायमविभागपक्ष। तत्र द्वादश षट् चतुर्विंशतिर्वा लक्षणानोति लक्षणसमुद्देशे सापदेण सविरोध विस्तरेण व्याख्यास्पते  
—वाक्यपदीय २।७६ हरिवृत्ति।

लक्षण समुद्देशे आज उपलब्ध नहीं है। पुण्यराज के समय म भी उपलब्ध नहीं था

एतेषा च वितत्य सोपपत्तिक सनिदग्गन स्वरूप पदकाण्डे लक्षणसमुद्देशे विनिर्दिष्टमिति प्रथकृतव स्ववत्ती प्रतिपादितम। आगमभ्रंशात् लेखक प्रमाणेन वा लक्षणसमुद्देशेण च पदकाण्डमध्ये न प्रसिद्ध।

वाक्यपदीय २।७७ ८७ मे इनका संकत किया गया है। इनम भीमाया दग्गन म प्रतिपादित प्रसंग तत्र वाद्य आदि हैं कुछ अय भी हैं। इन पर हम वाक्य के

१५ वाक्यपदीय २।७३ हरिवृत्ति।

पञ्चमिन्द्रियधन धर्म' के रूप में सभी त्रिवार कर चुके हैं। यहाँ बताना यह दिखाना है कि यदि पदाय के आधारे पर वाक्याय त्रिवार नहीं होगा गौण मुख्य, नान्तरायक आदि लक्षण विचार भी संभव नहीं हो सकेगे। यद्यपि ये सब पञ्चमिन्द्रियधन हैं।

इस तरह निरवयव वाक्य पञ्चम उपयुक्त पाच त्रिप्रतिपत्तियाँ उठाई गई हैं। भक्त हरि न इनका परिहार भी किया है। वाक्याय एव है प्रविभक्त है। विकल्प भावनाश्रित है। पुरुष की शास्त्रवासाना के अनुसृत भिन्न भिन्न विषय होते हैं

अविकल्पेऽपि वाक्यार्थे विकल्पा भावनाश्रया ॥<sup>१६</sup>

वाक्य को अव्यञ्ज मान कर भी अपोद्धार पद्धति से पद-पञ्चम की कल्पना कर पदायनिबन्धन धर्मों का निर्वाह किया जा सकता है

अविभक्तेऽपि वाक्यार्थे शक्तिभेदादपोदधते ।

वाक्यान्तरविभागेन यथोक्त न विरुध्यते ॥<sup>१७</sup>

जैसे एक ही गंध का पुष्पगन्ध, चन्दनगन्ध, आदि के रूप में विस्लेषण किया जाता है जस एक नरसिंह भेनर और सिंह के सादस्य की कल्पना की जाती है जैसे एक निरक्ष प्रकाश का नील पीत आदि रूप में भाग किया जाता है वैसे ही एक निविभाग वाक्य का विभाग के रूप में निबन्धन किया जाता है। वक्ष्य आनीयताम् इस वाक्य से वनात् पिक आनीयताम् यह वाक्य सवथा विलक्षण है। पिक के योग से यह वाक्य सवथा एक नवीन विलक्षण वाक्य बन गया है। वाक्य के एक देश की, अवांतरवाक्य की अवयवता वयाकरण भी स्वीकार करते हैं। इस तरह उपयुक्त सभी अनुपपत्तियाँ दूर हो जाती हैं

यस्याप्येक सनिविष्टानेकशक्तिरूपसर्वोपाधिविशिष्ट त्रियात्मा व्यावहारिकाम्या (केन) प्रकल्पितोद्देशविभागेनकेन वाक्याख्येन शब्देनाभिधीयते तस्यापि यावानय पदश्रुतिरूपभेदेन च व्यवहार परस्तादुपपद्यते स सर्वे एकस्मादर्थत शब्दरूपाणि बुद्धयतर कृतप्रविभागानि अपोद्धत्वापोदधृत्य प्रकृतिप्रत्ययादिवन् श्रुतिरूप प्रविभागे क्रियामाणे न विरुध्यते ॥<sup>१८</sup>

अस्तु अभिहितावयवाद् और अविताभिधानवाद दोनों से गृहीत पदायशक्ति व्याकरणदर्शन में भी उपोद्धार कल्पना से चरिताय हो जाती है। पुण्यराज ने अनेक स्थल पर इन वादा की समीक्षा भी की है और भक्त हरि को भी अपने साथ रखने की चेष्टा की है। पुण्यराज की आलोचना का भी प्रसंगवश ऊपर निर्देश किया जा चुका है। उनका मुख्य वक्तव्य निम्नलिखित है

इति अविताभिधान प्रदर्शनम् । दूषणमस्याग्रे तत्र तत्राभिधास्यति यथा 'नियमाया श्रुति भवेत् वा० प० २।२४६ इत्यादि । तथा हि यद्येकेन पदेन

१६ वाक्यपदाय, २।२१७

१७ वाक्यपदाय २।२६

१८ हरिवृत्ति श्रुतिप्रकारा में संप्रति उपलब्ध पृ० २३३

सकलवाक्यायस्याशेषविशेषणलक्षितस्यावगति तदोत्तरेपा पदाना नियमायानु-  
वादाय बोध्वारण स्यात् । न चतत युक्तमिति वक्ष्याम । एकस्मादेव पदात्  
समस्तविशेषणलक्षितस्य वाक्यायस्य प्रतीतेरुत्तरेयामानवय स्यादेव । न च  
तस्मादेव वाक्यायप्रतीति दृश्यते । व्यक्तोपव्यञ्जना इत्यसमाधानमेव । यत्  
किमेकस्माद् वाक्यायावसायोपेयामुपव्यञ्जकत्वम् । अयं समस्तेभ्य एव तेभ्य ।  
सवधोत्तराणि पदानि वाक्यायप्रतीतये उपादीपत एवेत्पञ्चतामिधानम्  
समञ्जसमेव । एकस्य धापरपदोच्चारण काले तिरोधानादभिहितावयस्याप्य-  
समय इत्ययमभागे दूषणम् । शब्दभागसमाश्रयणेन द्वयोरपि पक्षयो दूषण  
'पदानि वाक्ये तापेय' (वाक्यपदीय २।२८) इत्यादि—श्लोकद्वयेनाभिधा  
स्यति ।

—पुण्यराज, वाक्यपदीय २।१८

यदि एक पद स सकल वाक्याय की अभिव्यक्ति हो, अय पद व्यय होंगे ।  
अथवा नियम या अनुवाद के लिये होंगे । हम देख चुके हैं कि भत हरि ने भी आख्यात  
शब्द वाक्य आदि की व्याख्या में नियम अनुवाद सिद्धांत का आश्रय लिया है । सद्भूत  
के उपादान में व्यक्तोपयजन वाले मत का पुण्यराज ने स्वयं समर्थन भी किया है ।

भत हरि ने आलोचना की है कि यदि वाक्य में वे ही पद होंगे, पद में वे ही  
वण होंगे, वणों में वण भाग सम्बन्धी परमाणु सदृश भेद होने लगेंगे । इसका उत्तर  
कुमारिल ने दिया है

सदमावे पदवर्णाना भेदो य परमाणुवत् ।

सर्वाभावस्ततश्चेति सेय बालविभीषिका ॥

यह केवल बच्चा की डराना मात्र है । पद और वण का भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है ।  
वर्णाना के परित्याग से वण की स्थापना सरल है (श्लोकवार्तिक ७।१५०)

भत हरि के अनुसार यदि अखण्डवाक्याय न मानकर पद-पद के सहारे वाक्याय  
की उपपत्ति मानी जायगी निम्नलिखित वाक्य के अर्थ का ठीक अर्थभास न हो  
सकेगा

अनङ्गबाहू हरि गिरसा या त्व मग्नि साचीन अभिधावन्त कुम्भमद्राक्षी ।

इस वाक्य के प्रथम अर्थ सुनने पर अय अर्थ उपस्थित होता है, पूरा वाक्य  
सुनने पर दूसरा अर्थ सामने आ जाता है और पहला अर्थ छूट जाता है । अखण्ड पद  
में पूरे वाक्य से पूरे अर्थ का ज्ञान होता है । इसलिए सामान्य में वतमान का विशेष  
में अवस्थान उपयुक्त नहीं माना जा सकता ।

तथा सति नास्ति सामाये बस्थितानां विशेषेत्वस्थानम् ।<sup>१६</sup>

वाक्य और वाक्यार्थ में सम्बन्ध

वाक्य और वाक्याय में परस्पर संबन्ध, दानभेद के आधार पर निम्नलिखित माने

जाते हैं

१—वाच्यवाचक सम्बन्ध (योग्यता)

२—वाच्यवाचक सम्बन्ध ।

३—सर्वत्र सम्बन्ध ।

४—अध्यास सम्बन्ध ।

इनमें वाच्यवाचक सम्बन्ध को अपनी भावताओं के अनुकूल मानते हैं और उसे स्वीकार करते हैं । सम्बन्ध के विषय में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध के अन्तर्गत पर विशेष विचार किया जा चुका है ।

## वाक्यार्थ निर्धारण के साधन

वाक्यार्थ की व्यवस्था में कुछ अन्य उपाय भी काम में लाए जाते हैं । वे प्रायः परिगणित हैं । भक्त हरि न इनका उल्लेख निम्नलिखित कारिका में किया है

वाक्यात् प्रकरणादर्थोचित्याद्देशशालत ।

शब्दार्था प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् ॥<sup>१</sup>

साथ ही किसी दूसरे आचार्य का भी मत दिया है

ससर्गो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता ।

अथ प्रकरण लिङ्ग शब्दस्याप्यसन्निधि ।

सामर्थ्यमोचिता देश कालो व्यक्ति स्वरादयः ।

शब्दाथस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ॥

इनके विवरण नीचे दिए जा रहे हैं ।

एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं । एक स्थान पर दो अर्थों की प्राप्ति हो सकती है । उस समय निर्धारण की अपेक्षा होती है । निर्धारण विभाग द्वारा पथक-करण का नाम है । कुछ उपाय जो समस्त अनेकाय शब्द में समान हैं, वाक्यार्थ के अन्वय के लिए काम में लाए जाते हैं । भक्त हरि न इनका वाक्य, प्रकरण, अर्थ आदि के रूप में उल्लेख किया है ।

वाक्य कभी कभी वाक्य ही विशेष श्रिया से युक्त रहता है और तुल्य श्रुति के हाने पर भी शब्द और अर्थ के प्रविभाग की व्यवस्था में सहायक हो जाता है । जैसे वटवक्ष रीति और 'वटवक्ष स्वादुफल, आरुह्यताम' इन दोनों वाक्यों में वाक्यार्थ ही श्रिया के प्रविभाग में हेतु है । केगान वपति और केगान नमस्यति दोनों वाक्यों में भी श्रिया का अन्वय वाक्य ही है । कट करोति, भीष्ममुदार दशनीयम् इस वाक्य में द्वितीया विभक्ति कट भीष्म उदार दशनीय सभी शब्दों में है । क्योंकि करोति श्रिया से सबका पथक पथक सम्बन्ध है । वाद में विशेषण विशेष्यभाव हो जाता है । कट विशेष्य है और भीष्म, उदार आदि विशेषण है । यहाँ यद्यपि द्वय और गुण दोनों के साथ श्रिया का सम्बन्ध है किन्तु ईप्सिततम द्वय है इसलिए श्रिया

का सम्बन्ध केवल द्रव्य से होना चाहिए। गुण से नहीं हाना चाहिए। इस आधार पर द्वितीया विभक्ति केवल षट् शब्द से होनी चाहिए। भीष्म आदि ऋद्ध स नहीं हानी चाहिए। इसका उत्तर है कि यद्यपि भीष्म आदि म स्वयं कर्मता नहीं है किंतु वे विशेष्य के सम्बन्ध से द्वितीया विभक्ति का पात्र हैं क्योंकि उसके साथ उनका एकयोग शेष है सामानाधिकरण्य है। केवल प्रातिपदिक का प्रयोग हो ही नहीं सकता। जैसे राजा का सखा स्वयं निघन भी है फिर भी राज घन से घन का पत्र प्राप्त करता है वम ही गुण भी द्रव्य के घन से तद्रूप होते हैं। अतः भीष्म आदि से द्वितीया विभक्ति सिद्ध होती है। अथवा द्रव्य निगुण नहीं हो सकता गुण भी बिना आधार के नहीं रह सकता, इसलिए आवाक्षा आदि के आधार पर उनमें वाक्यीय सम्बन्ध सामानाधिकरण्य के रूप में स्थापित हो जाता है। फलतः भीष्म गुण युक्त षट् का करना ही अभिप्रेत वाक्याय होना है। इस तरह यहाँ शास्त्र नियम वाक्य की पर्यालोचना पर निभर है।

प्रकरण प्रकरण स्वयं अक्षर होता है फिर भी शास्त्र निर्धारण में सहायक होता है। जैसे सञ्चय ऋद्ध का युद्ध के प्रकरण में अश्व अथ होता है भोजन के प्रकरण में लवण अथ हो जाता है। व्याकरणशास्त्र में भी 'कत करणयोस्ततीया' २।३।१८ सूत्र में, कारक के अधिकार क्षेत्र में होने के कारण करण शब्द से क्रिया का ग्रहण अभिप्रेत नहीं होता। इसी तरह 'शब्दवरकलहाभ्रक्वमेधेभ्य करणे ३।१।१७ सूत्र में, धातु-अधिकार का कारण, करण श द से क्रिया की प्रतीति होनी है।

अथ अथ ऋद्ध से सम्बद्ध होने के कारण शास्त्र नियम में हाथ बढ़ाता है। जैसे अञ्जलिना जुहोति, अञ्जलिना सूयमुपतिष्ठते, अञ्जलिना पूषपात्र हरति। इन वाक्यों में जुहोति आदि ऋद्ध के अथवश अजलि शब्द के भिन्न भिन्न अथ भासित हो जाते हैं। व्याकरण शास्त्र में भी पूरणगुण सूहित ० २।२।११ सूत्र में अथ ग्रहण के बल से गुण शब्द स अदेड का ग्रहण नहीं होता। इसी तरह न शशददवादिगुणानाम ६।४।१२६ सूत्र में अथ के सामर्थ्य से परतत्र आश्रयी शुबल आदि का ग्रहण नहीं होता। काव्य प्रकाश के टीकाकारों ने अथ षट् का अथ प्रयोजन माना है जो सगत नहीं है। प्रकरण और अथ में भेद यह है कि प्रकरण अक्षर होता है उसमें प्रयोगदान से प्रतिपत्ति होती है। अथ शब्दान होता है उसमें श्रुत्यनुपातिनी प्रतिपत्ति होती है।

**श्रीचित्य (श्रीचित्ती)**—भत हरि न श्रीचित्य ऋद्ध का व्यवहार किया है। उन्होंने इस प्रसंग में जो कारिका (समर्गो विप्रयोगश्च ) उद्धृत की है उसमें श्रीचित्ती ऋद्ध है। दोनों समानार्थक ही हमें। श्रीचित्य (श्रीचित्ती) के द्वारा भी अथ की ध्य वस्या की जाती है। किंतु श्रीचित्य अथवा श्रीचित्ती का क्या अभिप्राय है? भत हरि ने श्रीचित्य ऋद्ध का प्रयोग सम्भवतः ऐसे वाक्यों के लिए किया है जिनमें निन्दा और प्रशंसा दोनों अथ मिलकर हैं। उन्होंने उपयुक्त कारिका की अपनी वक्ति में लिखा है

श्रीचित्यादपि ध्यवस्या। तद यथा राश्रसो

दस्यु भद्रमुल्लङ्घति। विषययेण निन्दा प्रशंसा वा गन्पते।

राक्षस दस्यु भद्रमुख है—दस वाक्य स निन्दा अथवा प्रशंसा ध्वनित है।

पुनः श्रौचिती पर टिप्पणी करते हुए भट्ट हरि ने लिखा है

श्रौचिती केषाचित् प्रयोक्तृणां निन्दाप्रशंसाद्विषु किञ्चिदुचित् भवति, भद्रमुख  
दास्या राक्षसादिव (दस्यु राक्षस इव), वणिजा च वाराणसी जित्वरोत्पु-  
पचरति (वणिजो वाराणसीं जित्वरोत्पुपाचरति) । श्रौचित्यादेव रामस  
दृशोऽयमजु नसदृश इति प्रयोक्तृभेदादयविशेष प्रतिपत्तिः ।<sup>२</sup>

इस वक्तव्य से भी भट्ट हरि के मत में श्रौचित्य का सम्बन्ध निन्दा प्रशंसा से है। श्लोकवार्तिककार ने वाराणसी को व्यापारियों द्वारा जित्वरी नाम देने का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> कण्ठ आदि ने जित्वरी शब्द को मगल के अर्थ में लिया है मगलाय वाराणसी को जित्वरी कहते थे अथवा उनके लिए वाराणसी मगलार्थी थी। संभवतः जित्वरी शब्द देशी शब्द था और इसका अर्थ निन्दात्मक था। दोनों तरह से यहाँ श्रौचिती है। भद्रमुख शब्द भी संभवतः उभयार्थक था। भट्ट हरि ने श्रौचित्य का सम्बन्ध प्रयोक्ता से भी दिखाया है। प्रयोक्तृभेद से जहाँ अर्थविशेष की उपलब्धि होती है वहाँ भी श्रौचित्य है। 'यह राम सदृश है यह अजुन सदृश है जैसे वाक्य के प्रयोग करने वाला की दृष्टि से भी इन वाक्यों का अर्थ बदलता होगा, कहीं प्रशंसात्मक, कहीं निन्दा-त्मक ध्वनि निकलती होगी। अथवा राम और अजुन में विशेष की प्रतिपत्ति होती होगी।

पुण्यराज के सामने भी श्रौचिती शब्द का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं था। उन्होंने इसके कई अभिप्राय दिए हैं। उनके अनुसार सीर (हल), भसि (तलवार), मुसल शब्दों का क्रिया निरूपण भी यदि प्रयोग किया जाय तो क्रम बिलेखन (जोतना) युद्ध और भवहनन (कूटना) के रूप में अर्थ का बोध समुचित क्रिया के आशेष से, शब्दाभिनय के रूप में, हो जाता है। अथवा प्रष्ट आदि शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्त पुनः भ्रम होने के कारण ये पुण्ड्र माने जाते हैं। इसमें निमित्त अग्रगामित्व आदि है। पुण्यराज के कारण श्रौचित्य से इनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है साक्षात् नहीं। पुण्यराज-स्यायाम् ४।१।४८ सूत्र में प्रष्ट सम्बन्ध को निमित्त रूप में दिखाया गया है। अतः यहाँ निमित्तत्व श्रौचित्य है।

अथवा नीच निगम शब्द पर विचार कीजिए

यच्च निम्न परगुणा यश्चन भ्रमुसपिपा ।

यश्चन शब्दमात्म्याम्नां सवस्य कट्टरेव स ॥

इस श्लोक में किन्हीं क्रिया शब्दों का उल्लेख नहीं है। कारकपद ही श्रौचित्य का आधार पर समुचित क्रियाशब्दों का आशेष करा देता है और इस तरह में एक वाक्याप गायन बनता जात है त्रिगम अथवा चार वाक्यों का समावेश करना है और जो अग्रस्तुत प्रगमा (अग्रस्तुत का प्रगमा के माध्यम से अग्रस्तुत की निम्न) का उल्लेखण शब्द कर देता है। जगत् का व्यक्ति नीम के पत्र को टांगी (कुन्हाड़ी) से काटना है और जो पत्र पर गंध तथा माना चढ़ाता है गंधन लिए वत्, अथवा दुग्धज स्वभाव के कारण कट्टरी है उनका दुग्ध हा बनाता है। किमी व्यक्ति का नीच प्रकृति

को लक्ष्य करके यह श्लोक लिखा गया है। उसकी नीचता दिखाना ही यहाँ अभिप्रेत है। यह निन्दाभाव औचित्य से गम्य है। यहाँ पुण्यराज भन्तु हरि द्वारा गृहीत औचित्य के अर्थ का समायन कर रहे हैं। पुण्यराज ने व्याकरणशास्त्र में औचित्य को दिखाने हुए नागिका वसति का एक उद्धरण दिया है

गास्त्रे यथा पु योगादाख्यायाम् ४।१।४८ इत्यत्रोक्तं पु सि ण्वद्वप्रवृत्तिनिमित्तस्य समवातं पुशब्दा एते इति ।

औचित्य अथवा औचित्य का अर्थ भोजराज तथा मम्मट के समय तक अथवा कुछ बदल चुका था। स्तुति निन्दा वाना मूल अर्थ ओभन हो चुका था। भोज ने औचित्य के य उदाहरण दिए हैं—

औचित्याद् यथा करभोरु, गिखरिदगना पुण्डरीकमुखी। उपमेयौचित्यात् करभादिसब्दं धनु कोटिकु ल्कुडमलकमलानि प्रतायने । न उट्ट्राचलाग्रछत्राणि ।<sup>४</sup>

भोज का अभिप्राय यह है कि करभ शब्द का अर्थ धनु कोटि और ऊट दोनों हैं। करभोरु कहन पर औचित्य के बच पर धनु कोटि अर्थ निश्चित हो जाता है। इसी तरह गिखरिदगना में गिखरि का अर्थ पर्वत की चोटी न होकर, कुन्दवली है। पुण्डरीकमुखी में औचित्य से पुण्डरीक का अर्थ कमल है अथवा नहीं है। अथवा भी भोज ने औचित्य के उदाहरण में लिखा है

सा घूणगौर रघुतदनस्य धात्रीकराम्यां करभोपमोरु ।

आसङ्गधामास यथा प्रदेश कण्ठे गुण मूतमिधानुरागम् ॥ —रघुवर्ग ६।८३

अथ अङ्गनाह्यौचित्यात् करभशब्देन धनु कोटिग्रहण विधीयते नोष्ट्राधयव इति ।<sup>५</sup>

मम्मट ने औचित्य का उदाहरण दिया है पातु धो दमितामूलमिति सामुख्ये । इसके अर्थ में टीकाकारों में मतभेद है। नरसिंह, भास्करसूरि, भट्टगोपाल सामेश्वर आदि पातु क्रिया के अनेक अर्थ लिखाकर एक में नियंत्रित करते हैं। गोविन्द ठक्कुर विद्याचक्रवर्ती, नागेश आदि ने मूल शब्द के अनेक अर्थ देकर उसका सामुख्य अर्थ में औचित्य दिखाया है। काव्यप्रकाश के किसी टीकाकार का ध्यान ऊपर उद्धृत अर्थ निम्ब परशुना श्लोक पर अवश्य गया था किन्तु इसमें औचित्य वह ठीक से नहीं दिखता सका था ।<sup>६</sup> किसी भी प्रसिद्ध टीकाकार ने औचित्य के स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला है। सब न उस उचित सम्बन्ध के रूप में ही लिखा है। किन्तु इस रूप में लेने पर सामुख्य से औचित्य का भेद बताना कठिन है। गोविन्द ठक्कुर का ध्यान इस प्रश्न पर गया था किन्तु उनका उत्तर सतोपजनक नहीं है

४ शृ गार प्रकाश ५० ६२७

५ शृ गार प्रकाश, अध्याय ७, हस्तलेख मल्लिनाथ ने यहाँ करभ शब्द का अर्थ हथेली का किनासा माना है।

६ अत्रपरशुभक्त्याय परशुकरणकच्छेदनपरस्वम् । मधुसूतर्षि शब्दस्य त कारणकसेचनपरस्वम् । न धमाल्लभाभ्यामि यम्य तन् कारणकपूर्वाभ्यवमाहु ।



यद्यप्यत्रापि सामर्थ्य सम्बन्धेव तथापि मधुनेत्यत्र ततोपयेव तदबोधामावेऽप्यौचित्यमात्रज्ञानादेव शक्तिनियमनमसक्योणमिति ।<sup>१०</sup>

देश—अथ यवस्था देश स भी हाती है । जैसे मधुराया प्राचीनादुदीचीनात नगरादागच्छति' ऐसा कहने पर नगरविशेष पाटलिपुत्र का बोध होता है । भत हरि के समय म कुछ लाग देश शब्द से देशविशेष का अर्थ नहीं करते थे । उनके मत म सम्भवत देश सम्बन्धी औचित्य का अभिप्राय यह था कि किसी स्थान मे कोई शब्द प्रशस्ता वाचक है अथ स्थान म वही शब्द उससे भिन्न अर्थ मे व्यवहृत हो सकता है । सम्भवत प्रौढ शब्द ऐसा ही था । कम्बोज मे शक्ति का प्रयोग गति अर्थ मे था आर्यावत म इसका सम्प्रत्य निर्वोच से था । भोज ने भी देश भेद स अर्थभेद माना है और उदाहरण दिया है हरि अरण्ये । हरि द्वारिकायाम । हरि अमरावत्याम । यहा स्था-भेद से हरि शब्द का क्रमशः सिंह विष्णु (वृष्ण) और वासव अर्थ निश्चित हो जाता है ।

काल शब्द के व्यवच्छेद म काल भी सहायक है । गिशिर काल म द्वार कहने स दरवाजे बन्द करने का भान होता है । शीघ्र काल म द्वार शब्द से दरवाजे खोलने का अर्थ भासित होता है । भत हरि के समय म दक्षिणापथ के किसी एक प्रदेश म पूर्वाह्न म पच्यताम कहने स वषा मिश्रित विकलदनमय यवागू पाक का बोध होता था सध्या के समय पच्यताम कहने पर शीघ्र प्रधान पाक का बोध होता था । कुछ लोग इस काल का उदाहरण न मान कर प्रकरण के भीतर गृहीत करते थे । जागृहि जागृहि ऐसा दिन म कहने पर जागति का अर्थ अर्थ होता था और रात म कहने पर उससे भिन्न अर्थ होता था । रात्रि म पनग शब्द कहने पर शलभ चोतित होता था मूय नहीं ।

समग विप्रयोग आदि का निवरण भत हरि ने शब्द के नानात्व पण और एतत्त्व पण को सामन रखकर दिया है । नानात्वपण म शब्द की तुल्यश्रुति होने पर भी वे स्वभावतः भिन्न भिन्न माने जाते हैं । किन्तु शब्द रूप अभिन्न रहता है । ऐसी दशा म उनके अर्थ के व्यवच्छेद के लिए समग शक्ति का आश्रय लिया जाता है । एतत्त्व पण म अर्थ व अभिधान म शक्तियौ भिन्न भिन्न होती हैं किन्तु श्रुति साहचर्य व कारण विभागप्राप्त नहीं होती हैं । निमित्त व आधार पर विभेद रूप म उनका व्यवच्छेद किया जाता है ।

किंगी आचाय व मन म शब्दाय का व्यवच्छेदक बचन एक तरह है और वह सामर्थ्य है । अर्थ प्रकरण शक्ति व आधार पर जिसका स्वामाविर्भूत जाना जाता है व भी सामर्थ्य ही है । उगी सामर्थ्य का समग, विप्रयोग शक्ति रूप म विभाग दिया जाता है ।

समग समग व आधार पर सामर्थ्य का विभाग जाना है । धेनु आनीयताम रूप वाच्य म धनु मान का प्रतीति ता होती है किन्तु विनाय धेनु की प्रतीति नहीं

हानी। किंतु यदि 'सक्शोरा धेनु आनीयताम' कहा जाय तो किंगोर शब्द के ससग से धेनु का अर्थ घोड़ी (वडवा) हो जाता है। यहा ससग अभेद जान का निमित्त है। किंगोर गन्त घोड़े के बछड़े के लिए प्रयुक्त होता है। उसके ससग से धेनु का द्रोगघ्नी विशेषण म—वडवा म—सप्रत्यय होता है। इसी तरह सवत्मा धेनु से गाय का, सक्करा से वकरी (अजा) का सक्करभा धेनु से ऊत्नी का वोध होता है। क्योंकि वत्स वकर, वरभ गद् क्रमश गाय के बछड़े वकरी के बच्चे और ऊट के बच्चे के लिये प्रयुक्त होत हैं।

वृष्णकिशोरा धेनु' म जैसे किशोर शब्द धेनु का विशेषाधायक है वैसे ही धेनु शब्द किशोर क अर्थ का अवच्छेदक क्यों नहीं होता। भतृ हरि के अनुसार वरम किशोर आदि शब्द विशेषण के रूप म अवच्छेदक हो जात हैं। ऋणधनुक किशोर के रूप म प्रतिपत्ति नहीं देखी जाती।

जो लोग धेनु गद् को गाय के अर्थ म ही रूढ मानते हैं उ हें एमे वाक्या म ससग स विशेष सप्रत्यय के रूप म केवल धम मात्र की विवक्षा अभिप्रेत रहती है। जस, तन्म्य परिमाणम ५।१।५७, सख्याया सज्ञानधमूत्राभयनेषु ५।१।५८। यहाँ पञ्च एव पञ्चवा शक्रुनय म स्वाथ म प्रत्यय माना जाता है प्रत्यय विशेष का सप्रत्यय नहीं करता है। सस्वत म दस तक की सख्या सख्याय के अर्थ म व्यवहृत होती है केवल सख्याय के लिए नहीं व्यवहृत होना है। दस के बाद की सख्याय सख्याय और सख्याय दोना के लिए आनी ३। इसलिए पञ्च गद् से जो पत्नी वाच्य हैं वे ही पञ्चक गद् से भी वाच्य है। इसीलिए परिमाणपरिमाणभाव के न होने के कारण स्वाथ म ही प्रत्यय विधान माना जाता है। बँयट क अनुसार यदि पञ्च आदि सख्याया का वक्ति के विषय मे सख्यामात्र म गविन मानी जाय परिमाणपरिमाणभाव के आश्रय न भी प्रत्यय विधान सभव है। स्वय पाणिनि ने द्वयकयोद्विवचनकवचने १।४।२२ सूत्र म द्वि और एक गद् का द्वित्व और एकत्व मानकर ही इन शब्द का निर्देश किया है। सख्येयथपरक मानन पर द्वयेकेपु ऐसा होना चाहिए था।<sup>८</sup>

भतृ हरि ने ससग के ग्वास्त्रीय उदाहरण म पाणिनि का अवाद अ १।३।५१ सूत्र उद्धन किया है। ग धातु दा है। एक ग निगरण तुत्वादिगण म है। दूसरी ग श ३ अवादि गण म है। यहा अत्र उपसग क ससग से ग निगरण का ही ग्रहण होता है और अत्रगिरत प्रयाग बनता है। ग ग्ने के साथ अत्र उपसग का प्रयाग नहीं देखा जाता। इसलिए उमका ग्रहण नहीं हाना। अथवा अत्रविरोध के कारण गणाति के साथ अत्र का योग उपपन्न नहीं हाना। फलत अत्र के समय मे ग धातु का गृ निगरण के रूप में निणय किया जाता है

मम्मट ने ससग के स्थान पर सयोग पत्ता है।

विप्रयोग—ससग की तरह विप्रयाग भी ग्नाय निर्धारण में हेतु माना जाता है। निज्ञानि सम्बन्ध का कियोा स व्यपत्ता दस्ता जाता है। जस 'अक्शोरा धेनु

अन्तरभा घवराया वा घानीपताम्, इम वाच्य में विचार घां व विवयाग म विगिण् जाति क धेनु वा बोध हाता है। त्रिगण साग बराबर मचय रेया गया है उमर विन। भी उमी वा ग्रहण हाता है। व्याकरणशास्त्र में भी भुजाजय। १।३।१६ मूत्र में त्रिग मूज घातु वा घात (घरा) घोर घावा (घनामा) नावा घय हाता हा उमी वा ग्रहण किया जाता है।<sup>१</sup> तुलागिण पठि कौटिल्य घय घान भुज घातु वा ग्रहण नही किया जाता। पना 'विभुजाि जानुगिरगी' में घाग्माय का प्रयोग नहीं हाता।

साहचय अय वा घवराय साहाय्य व भी हाता है। गिता घानीयां ग्य द्रव्याणि च। गिता घानीपलां सभ्भासः। गिता घानीयां गणापनुनी च। इन वाक्या मे गिता शब्द प्रमग मिल तिली (काठ) घोर शास्त्र का बोधर है। रामलक्ष्मणी राम वेशवो, युधिष्ठिराजु नी जस घाटा म प्रमग राम, बलराम घोर पाण्डुपुत्र घनु म वा बोध लक्ष्मण, काव घोर युधिष्ठिर गल क साहचय म हाता है। घन साहचय भी विशेषाघायर है। राम शब्द क कई घय हैं, वह व्यभिचरित शब्द है। लक्ष्मण शब्द का एव ही घय है वह घदुष्यभिचार है। घदुष्यभिचार दूष्यभिचार का भव-छेदक साहचय के बल पर हो जाता है

यद्यप्येको दष्टिव्यभिचार। तथापि द्वादष्टव्यभिचारो दष्टव्यभिचारस्य साहचर्यति तुल्यधमतां प्रतिपादयति।<sup>२</sup>

व्याकरणशास्त्र म भी विपराम्या जे १।३।१६ मूत्र म वि घोर परा शब्द साहचय क आघार पर, उपसग माने जाते हैं। यहाँ परा शब्द दूष्यापचार है वह उपसग भी है अनुसग भी है। विग क दूष्यापचार है वह उपसग ही है।<sup>३</sup> इस लिए उपसग का उपसग सहायक हो जाता है।

तद यया गोद्वितीयेनाथ इति गौरेवोपादीयते। नात्रो न गदम इति।<sup>४</sup>

लोक म द्वितीय शब्द कहने पर जिसकी अपेक्षा स द्वितीय शब्द का उच्चारण किया जाता है, उसके तुल्यजातीय का ही जान कराता है। गो द्वितीय कहने से गो (बल) का ही ग्रहण होता है अरव अथवा गदम का नहीं होता। इसी तरह अतरान्त रेण युक्ते' २।३।४ मूत्र मे अतरा घोर अतरेण दोना शब्द साहचय के आघार पर निपात रूप म गहीत होत हैं। गोविन्द ठक्कुर ने साहचय का अय सहचरता किया है। नागेश इससे सहमत नहीं है। उनके अनुमार साहचय का अय यहा सादश्य है। विसी

१ महाभाष्य में 'यस्य भुजरेवनमनवन च चार्थ' रेया पाठ है। भन् हरि की वृत्ति में यहा 'यस्य भुजेरनवन चारान चार्थ' पाठ है। अवन पाठ शुद्ध है।

२ वाक्यपनीय २।३।७ हरिवृत्ति, हस्तलस

३ बुविजयति वनम्—यहा विशब्द उपसग है किन्तु जइन् स्वार्थावृत्तिपक्ष में अनधिक है। अजहत्तु ग्वाथापक्ष में भी उसने अय के उपसजन होने से उसका ग्रहण नहीं होगा। सम्बोधनात् वे का, रूपान्तरयुक्त होने के कारण ग्रहण नहीं होता। एकदेशविट्टिति के आघार पर व को वि नहीं माना जा सकता क्योंकि वे विभक्त्यत वि का विकार है न कि विशब्द का।

वैयट, प्रदीप ३।१।१६, पुण्यगज २।३।७

के मन में साहचर्य प्रयासति का उपलक्षण है।

विराध विरोध से भी अर्थ का अर्थधारण होता है। रामजुनी कहने से अजुन पद के सन्निधान से विरोध के आधार पर, राम शब्द का परपुराम अर्थ निश्चित हो जाता है।

लिङ्ग वाक्यान्तर में दष्ट लिङ्ग से प्रसिद्ध भेद का अनुमान कर लिया जाता है। जैसे 'अकृता शकृता उपदधाति' इस वाक्य में 'तेजो यं घतम्' इस वाक्य के अर्थ से 'कृता का घन द्वारा अकृतत्वं सन्निधापितं होता है। अजुन विधा का अर्थ शकृता और साधन घृत है। इसी तरह पशुमालभेत इस वाक्य में पशुत्व युक्त सभी प्राणियों की सम्भावना होने पर छागस्य हृदयो वपाया मदस इमं लिङ्ग बल में केवल छाग सम्बन्धी पशुत्व प्रतीत होता है। इन वाक्यों में वाध नहीं है। यदि घत से अकृत अकृत होत, यदि छाग पशु न होता तो वाध उपस्थित होता। सामान्य में 'यूनाधिक' भाव नहीं होता। वह ज्यो का ल्यो रहता है। लिङ्ग के बिना भी 'अ' का वाच्य अर्थ जितना होता है लिङ्ग के ग्रहण होने पर भी वह उतना ही रहता है। केवल यही अन्तर होता है कि लिङ्ग के उपादान से शब्दान्तर वाच्य का अर्थान्तर में अर्थारोप होता है। किसी अर्थ के अन्विष्टान् स जितने अर्थान्तर सम्भव हैं वे सब शब्द के अर्थ नहीं हैं ता फिर पशु शब्द का अर्थच्छेद (निर्धारण) नहीं होगा। पशु शब्द की पहले पशु और पशुत्व दोनों में वृत्ति है। छाग आदि भी पहले शब्दाध्यय का न बाधित करत हुए स्वाद्य मात्र को लक्ष्य में आरोपित करते हैं। यह ठीक है। किन्तु सम्बन्धी विशेषण सम्भव न हो सके। इस लिए 'अ' व्यापार के न होते हुए भी बाधाकुल हान के कारण, अर्थच्छेद मान लिया जाता है। अर्थवा पहले अर्थ का स्वरूप समग्र से अविशिष्ट रूप में ही सम्बद्ध हाना है। दूसरे पद के सन्निध्य से उभये विरोधता आ जाती है। यदि समग्र भेद से शब्द में कोई विरोधता न मानी जाय सन्निधानमात्र के अर्थ होने से अर्थ भी अर्थवा मानना पड़ेगा, किन्तु ऐसा होता नहीं है।<sup>१३</sup> शास्त्र में लिङ्ग का उपाहरण अर्थ प्रत्याहार का परणकारक तत्व होना है। उक्त ७।४।७ में तपरकरण लिङ्ग से परणकारक का निश्चय होता है।

शब्दान्तर सन्निधान अर्थ विनाप की अर्थवृत्ति दूसरे शब्द के सन्निधान से भी होता है। जैसे अजुन वातवीय रामो जामदग्न्य। वातवीय और जामदग्न्य शब्द के सन्निधान से अजुन और रामशब्द का विरोध अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शास्त्र में अर्थस्य देवतस्य 'अर्थस्य समशासनस्य म अक्ष और अर्थ का अर्थ शब्दान्तरसन्निधान से स्पष्ट है। भन हरि ने शब्दान्तर योग के उपाहरण में अग्नि माणवक गो वाहीक का भी उल्लेख किया है। साथ ही अर्थच्छेद का एक दार्शनिक पीठिका भी दी है। बुद्धि में सब

१३ पूर्व का अर्थरूप समग्रोणाविशिष्टमव प्रज्ञान। तस्य पदान्तरसन्निधानात् विरोधो 'य' दने। यदि हि समग्रो भेद शब्दो नास्तुपशुहीत त्वान् सन्निधानमात्रस्यारादत्वात् अशास्त्रोप्य प्रतिभवेत्—वाक्यपदीय २।३।८ हरिवृत्ति हरित्तेरा। (यदा की भन हरि वृत्ति क हरित्तेरा में पाठ में अतिशय जान पड़ता है।)

तरह के अथ समाविष्ट हैं उनमें से कुछ वानिर्धारण (पृषाकरण) इन्द्रियाद्वारा होता है। इन्द्रिय जिसकी अभिलाषा रमती है उग ही पानी है। इन्द्रिय की भी सवाय इच्छा अथ सम्बन्ध आदि व द्वारा नियमित होती है। किन्तु पानी वभी युक्तता अनेक अथ का प्रत्यायक होता है जस उनी धावति अलम्बुगाना याता (वाक्यपनीय २।२५२ हरि वति ह्मन्तेव)।

सामर्थ्य सामर्थ्य से भी अथविशेष की प्रतिपत्ति होती है।

अवहनप्रकृतो नागो वाजिन कामु बन्धु या—इसमें किसी ने सामर्थ्य माना था। कुछ लोग यहाँ अथ का निदर्शन मानते हैं। कुछ अथ आचार्य सामर्थ्य का उदाहरण 'अनुत्तरा वया म मानते हैं। यहाँ पर सामर्थ्य से उदरविशेष की प्रतिपत्ति गम्य है। इसी तरह अभिस्पाय वया देया वाक्य से सामर्थ्यवत् अभिरूपतराय वया दया इस रूप में अथविशेष का आभास होता है। शास्त्र में भी प्रथमा निदिष्ट समास उपमजनम् १।२।४३ सूत्र में समास शब्द की प्रवृत्ति समासाय शास्त्र में मानी जाती है। एक विभक्ति चापूवनिपाते १।३।४४ सूत्र में जिस समास शब्द का अनुमान किया जाता है उसकी समास में प्रवृत्ति प्राथम्यवत्पि ही मानी जाती है। इसी तरह अथम-वाणा (विभक्तयर्थानाम् ?) रूपे में सामर्थ्यवत् कुछ कम और कुछ सार्वभ्य गहीत हात हैं।

व्यक्ति लिङ्ग की पूर्वाचार्य सज्ञा व्यक्ति है। व्यक्ति भी अथ निर्धारण में हेतु होता है उसे ग्रामव्याध लभते इस वाक्य में अथ शब्द नपुमकलिग में है। नपुसक लिग वाले अथ पानी का अथ समप्रविभाग है। अत लिग के बल से यहाँ ग्राम का आधा अथ स्फुट हो जाता है। पद्य पद्य में भी लिङ्गभेद से अथभेद है।

स्वर स्वर भी अथविशेष का ज्ञान करा देते हैं। स्थूलपृषतीयालभेत वाक्य में अतोदात्त स्वर के श्रवण होने के कारण स्थूला चासी पृषती व इस रूप में अथ की प्रतीति होती है। पूर्वपदप्रकृतिस्वर यदि दिखाई न तो 'स्थूलानि पृषति यस्याम्' इस रूप में अथ पदाथ की प्रतीति होती है। इसी तरह विपाशा कप में आदि उदात्त के होने के कारण विपाशा के उत्तर के कूप रूप में विशिष्ट अथ की प्रतीति होती है और अन्तोदात्त के श्रवण पर विपाशा नती के दक्षिण के कूप की प्रतीति होती है।<sup>१४</sup>

आदि पद से सत्व णत्व आदि भी लिए जाते हैं। ये भी अथविशेष के परिचय में सहायक होते हैं। सुसिजनम अतिस्तुतम पानी में सु और अति कमप्रवचनीय हैं और पूजा तथा अतिक्रमण के अथ में हैं। उपसर्ग न होने से और कमप्रवचनीय होने से वे अपने कमप्रवचनीय वाले अथ के छोटक है। सुपिक्रम, सुष्टुतम् पानी में सु उपसर्ग है इसलिए न का मूढय आने है और अर्थान्तर की उपलब्धि होती है। न और ण व विधान भी अथपरिच्छेद में सहायक होते हैं। प्रनायक और प्रणायक के अथ में भेद है। प्रनायक का अथ होता है वह देव जिससे नायक चला गया हो। प्रणा

१४ गीत कूप (युक्त द्वारा निर्मित कूप) में अथ विशेष पर ध्यान दिलाना पाणिनि की महती सूत्रभाषिका मानी जाती है। महती सूत्रमक्षिका वत सकारण्य—कारिका ४।२।७४

यक शब्द से प्रणयन क्रिया के कर्ता की प्रतीति होती है।

नागेश ने वक्तव्याद्वयवैशिष्ट्य प्रतिभादि को भी अग्र्य निणयन म सहायक माना है (मनुष्या पृ० ११२)। ५

सदेहक निराकरण के लिए अग्रवा नियत अग्र्य के परिचान के लिए उपयुक्त प्रकरण आदि काम में लाए जाते हैं।

भेद पत्र म भी भिन्न भिन्न अग्र्य के होते हुए भी सादृश्य से अभेद की दशा म प्रकरण आदि का सहारा लिया जाता है। जा लोग गद्व का अग्र्य के साथ नित्य सम्बन्ध मानते हैं उनक लिए भी अग्र्य प्रकरण लिङ्ग आदि के बल से सन्देश निवारण पूर्वक अग्र्य की अभिव्यक्ति प्रतिपत्ता को होनी है। अर्थात्तर में सम्बद्ध का अर्थात्तर म सन्तमण देखा जाता है

यैषा रूप यँन नित्यसम्बन्धा लोके व्यवस्थिता इति दशान तेषामग्र्य प्रकरणादिभिः सिद्धाभावेदास्त प्रतिपत्तार प्रति प्रकाशयते। न त्वेषस्य शब्दस्यार्थात्तरयोनिवत्वात्त्वर्थ्यात्तरे सक्रातिरिति।<sup>१५</sup>

जहा गम पद और आरूपान पद सदश होते हैं वहा भी सदेह निवारण के लिए प्रकरण आदि की अपेक्षा होनी है। कवल स्वरूप के आधार पर कार्यान्तर निबन्धन (कार्योत्साहननिबन्धन) सदृश शब्दा का अग्र्य निणयन नहीं हो सकता

मामाख्यातसरूपा ये कार्यात्तर (कार्योत्साह)निबन्धना।

गद्वयाच्यशच तेष्वर्थो न रूपादधिगम्यते ॥<sup>१६</sup>

जसे अश्व और अश्व शब्द हैं। इनमें एक अश्व शब्द नाम शब्द है। इसरा अश्व शब्द टुआदिव धातु के लड लकार मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है। इसी तरह से अजापय अजापय शब्द है। एक अजापय शब्द बकरी के दूध के लिए नाम शब्द है दूसरा अजापय शब्द जि जय धातु से अजेय के जितने वाल प्रेरक की अग्र्यविवक्षा में किसी तरह निष्पन्न होता है। यहा सादृश्य से सन्देश होने पर प्रकरण के आधार पर अग्र्य निणयन किया जाता है। आख्यात मरूप भी नामपद होते हैं। तेन तेन। तेन शब्द तेनु विस्तार धातु के लिट लकार मध्यमपुरुष का एकवचन का रूप है। तेन सवनाम भी है। तस्य और यस्य की भी कुछ ऐसी कहानी वयाकरण बताते हैं। भत हरि न नाम और आख्यात के सारूप्य निर्देशक शब्दों की एक छोटी सूची दे दी है। घातम घातम। अरण अरण। श्याम श्याम। अस्या अस्या। आचितम आचितम। अद्व अद्व। सम सम। हाल हाल। दुहिता दुहिता।

ऐस गद्व म जिनकी स्वरूपनिबन्धना प्रवृत्ति होती है उनके लिए अग्र्य प्रकरण आदि के बल से प्रविभागकल्पना की जाती है।

१५ वाक्यपदीय। ३२६१ हरिवृत्ति हतनेस

१६ वाक्यपदीय २।३२०

१७ पदाधारणोपायान् वदूनिच्छति सूत्र्य।

कम्मूनानिरिकन व खर वाक्य स्मृति युनि ॥

## पद अवधारण के उपाय

वाक्य की भाँति पद अवधारण के भी कुछ उपाय सोच लिए गये हैं। कुमारिल ने उनमें क्रम 'यून, अतिरिक्त, स्वर, वाक्य स्मृति और श्रुति का उल्लेख किया है।<sup>१०</sup>

क्रम भेद से पद भेद होता है। जैसे रस और सर म वणसाम्म है किन्तु वणों के क्रम में भेद होने से रस और सर भिन्न भिन्न पद हैं। इसी तरह राजा और जार में क्रमभेद पद अवधारण का उपाय है। कर और करज, गौ और गोमान् म वणों का 'यून और अतिरिक्त भाव अवधारक' है। इन्द्रशत्रु म स्वर के आधार पर तत्पुरुष अथवा बहुव्रीहि रूप में निणय किया जाता है। वाक्य भी पदावधारण में सहायक होता है। वाक्य से यहाँ अभिप्राय पदांतर समभिव्याहार से है। 'सा रङ्गमागता नतकी' में रग के समभिव्याहार से मा का अवधारण नतकी से होता है। 'पचते दहि' इस वाक्य में पचते क्रिया न होकर नाम है। इसका निणय अय पद के समभिव्याहार से हो जाता है। अश्व गच्छति में अश्व शब्द नामपद है, क्रियापद नहीं है। मनुष्यत्व के समान होत हुए भी 'सोम शर्मा का पुत्र आ रहा है इस वाक्य से ब्राह्मणत्व की स्मृति जगती है। ऐसी स्मृति भी अवधारण में सहायक होती है। उदभिदा यजेत जैसे स्थला में उदभित्ति अथवा उदभेदयति इस रूप में सदेह होने पर उदभिदा में तृतीया विभक्ति के आधार पर भावनाकरणक यज्ञ के साथ सामानाधिकरण्य के सहारे उदभेदयति (प्रकाशक) के रूप में निणय किया जाता है। यह श्रुति है। अथवा परमे व्योमन जमे स्थला में श्रुति से पदावधारण माना जाता है।

किसी आचार्य ने अवधारण को कुछ और व्यापक आधार दिया है। उनके मतमें व्याकरण, उपमान कौशल, आप्तवाक्य व्यवहार वाक्य शेष विवृति और सिद्ध पद का सान्निध्य—ये आठ गृहीत हैं

नवितग्रह व्याकरणोपमान शोधाप्तवाक्याद यवहारतश्च ।

वाक्यस्य शेषाद विवृतेवदति सान्निध्यत सिद्धपदस्य वृद्धा ।<sup>११</sup>

## वृत्ति-विचार

पाणिनि न समय को पदविधि माना है। पतञ्जलि न पदविधि के भीतर तीन विषयों को समेटा है—समास विभक्ति विधान और पराङ्गवदभाव।

समान पदविधि है। क्योंकि परिनिष्पन्न शब्दों के विधि स उसका सम्बन्ध है। समास सज्ञा भी है। ममुदाय (सनी) भी समास है। समास का मूल आधार विग्रह वाक्य है। जो विग्रह भी हो और वाक्य भी हो उसे विग्रह वाक्य कहा जाता है अथवा विशेष रूप में ग्रहण को विग्रह माना जाता है। विग्रहाय वाक्य विग्रह वाक्य कहलाता है।

विग्रहश्च तद वाक्यञ्चेति विग्रहवाक्यम् । अथवा विशेषण ग्रहण विग्रह ।  
विग्रहाय यदवाक्य तद विग्रहवाक्यम् । विग्रहवाक्यस्यार्थो विग्रहवाक्यार्थः ।

यास २।१।१

सामान्यविहित विभक्तियों का कर्मणि द्वितीया २।३।२ आदि के द्वारा जा नियम किया जाता है उसे विभक्ति विधान कहा जाता है। इसी तरह ये पदविधि कहलाते हैं। यद्यपि एकवाक्यता के आशय से विभक्तियों का विधान होना है फिर भी पदान्तर सम्बन्ध स जिन विभक्तियों का विधान होता है उनके आशय स भी पद विधि रहता है। इसी आधार पर निरपि पद विशिष्टरपि पद कहा जाता है। विभक्ति से अवच्छिन्न होने के कारण विशिष्टविधानकर्म सामान्यविधानक्रिया का होता है। जैसा कि कहा जाता है

सामान्यपुरेवपक्वुधि कर्मेति ।

पराङ्गवदभाव तादात्म्यातिदेश का दूसरा नाम है। तन स्वभावता का ताम तादात्म्य है। सुबन्त का आमंत्रित म अनुप्रवर्ग को पाणिनि ने पराङ्गवत् माना है। मद्राणा राजन आदि में भी पराङ्गवदभाव है।

उपयुक्त तीन पदविधि कहलाते हैं। नागश न पद-सपादक मभो विधि को पदविधि माना है

केचित्तु पदोद्देशक पदस्वतपादको वा सर्वोपि पदसम्बन्धित्वात् पदविधिरवेति  
वदन्ति ।

—महाभाष्यप्रदीपाद्योत २।१।१



इस तरह समय पत्रा व अथवा सम्बन्धी व अथवा गणनाओं व विधि को पत्रविधि कहा जा सकता है। जैसे भीतर समास गणित धारि पा जाते हैं। जैसे वृत्ति दशम स भी कहा जाता है। प्रथम व अभिप्राय का नाम वृत्ति है (परार्थोभिप्राय वृत्ति — महाभाष्य २।१।१)। दूसरे शब्द का जो अर्थ होता है उगना जहाँ गणनाएँ स अभिप्राय हो, वह वृत्ति है।

### वृत्तिविचार सम्बन्धी वार्तिककार के कुछ विचार

पाणिनि व समय पत्रविधि २।१।१ सूत्र पर विचार करते हुए वार्तिककार ने एकार्थोभाव और व्यपेक्षा का सिद्धान्त स्पष्ट किया है।

पथगर्थानामेकार्थोभावात् समयवचनम् २/१/१—१।

परस्पर व्यपेक्षां सामर्थ्यमेवे २/१/१—४।

एकार्थोभाव उस वाक्य को कहते हैं जहाँ एक प्रधान अर्थ व लिए अनेक अर्थ का शील बना लत हैं अथवा छोड़ देते हैं और इस तरह व्यय हा जान है या अर्थ अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। व्यपेक्षावाद म यह माना जाता है कि पद परस्पर सामर्थ्य होते हैं। उनम एक दूसरे की आकाशा रहती है

यत्र पदाद्युपसजनोभूतस्वार्थानि निवृत्तस्वार्थानि वा प्रधानार्थोपादानाद् व्यर्थानि अर्थांतरानिघाथीनि वा स एकार्थोभाव । परस्परकार्थान्तरुपा व्यपेक्षा ।  
—महाभाष्यप्रदीप २/१/१

वार्तिककार ने पथक पथक अर्थ वाले पत्रा व एकार्थोभाव होने को समय माना है। वाक्य मे (विग्रहवाच्य म) पत्र पथक पथक अर्थ वा न होत है जस, राज पुरुष । यहाँ राज शब्द राजाध का ही अर्थ करता है, पुरुष शब्द पुरुष व ही अर्थ का प्रकट करता है। वृत्ति (समास) म पद एकाधिक होते हैं। जस राजपुरुष म राज शब्द भी पुरुष के ही अर्थ का कहता है इस तरह दोनो पदा का एकार्थोभाव होता है। अथवा अवयवाथ स युक्त समुदायाथ अर्थ ही प्रकट होता है। इस दृष्टि से एकार्थोभाव कहते हैं। जैसे जल और धूल मिल कर एक ही हो गय रहत है वसी एकार्थोभाव म पदाथ एक स हो गए रहते हैं। वाक्य म पदा मे पथगथता होत हुए भी पदा के आकाशा योग्यता वग विनेपणविनेप्यभाववग विशिष्ट अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। वृत्ति म भी विशिष्ट अर्थ भासित होना है। इससे यह नही कहा जा सकता कि वृत्ति और वाच्य म नितान्त एकाधता है। जिस तरह से ब्राह्मणाना शन भोज्यताम और शत ब्राह्मणा भाष्यन्ताम इन दोना वाक्या स व्यवहारगत वाक्य म कोई भेद नही है—सो ब्राह्मण खिलाय जात हैं परन्तु शब्दाथ भि न भि न है। वाक्य और वृत्ति मे भी यही बात है।

एकार्थोभावकृत विनेपता के लिए दो वाक्य महाभाष्य म हैं जो कात्यायन के नही जान पडत परन्तु भाष्यकार न उनको यारया वार्तिक की तरह की है। वे हैं—

- १—सुबलापो व्यवधान यथेष्टम यतरेणाभिसम्बन्ध स्वर ।
- २—सस्याविशेषो व्यक्ताभिधानमुपसजनविशेषण च योग ॥

अर्थात् विग्रह वाक्य म विभक्ति का लाप नही होता। परन्तु समास म मुप

विभक्ति का लोप होता है। जस राज् पुंस् इस् वाक्य मे राजन् शब्द के आगे की विभक्ति का लोप नही हुआ है। परन्तु राजपुंस् इस् समास मे विभक्ति का लोप हो गया है। पर कुछ ऐसे भी समास होत हैं जिनमे विभक्ति का लोप नही हाता। जस चर्पासुज (इद्रगोप), गोपुचर (कुक्कुट)।

वाक्य मे उसके बीच मे दूसरा शब्द डाला जा सकता है। जस राज् पुंस् को राज् ऋद्धस्य पुंस् कह सकते है। परन्तु समस्त पद क बीच मे कोई शब्द नही डाल सकते।

वाक्य के शब्दो को हम जैसे चाह जम बदल कर रख सकते हैं। जस राज् पुंस् का हम पुंस् राज् ऐसा भी कह सकते है। पर तु समास मे क्रम निश्चित रहता है। राजपुंस् ही कहें राजासम्बन्धी पुंस् क अर्थ मे पुंस् राज् नही कह सकते।

कभी-कभी समास मे भी प्रयोग अनियमित रहता है। जस जातपुत्र और पुन जात दानो तरह से कहते है।

वाक्य मे प्रत्येक पद का अलग अलग स्वर (उदात्त) होता है। जस राज् पुंस् इस् मे राज् और पुंस् दानो मे आदि उदात्तस्वर है। परन्तु समस्त पद मे एक ही उदात्तस्वर होता है जसे राजपुंस् मे अतोदात्त स्वर है।

कभी कभी वाक्य मे भी एक स्वर दिखाई देता है जस तीक्ष्णेन परशुना वदचन इस् वाक्य मे है। और तब प्रत्येक पद भी दो उदात्तस्वर वाला होता है। जसे वतवे एतव आदि।

वाक्य मे सन्धा विधेय का ज्ञान रहता है जैसे राज् पुंस् दानो पुंस् राज् पुंस् इनमे एकत्व द्वित्व और बहुत्व स्पष्ट जान पडता है। समास मे सन्धा का ठीक ज्ञान नही हाता। राजपुंस् मे एकत्व द्वित्व बहुत्व सब छिपे हैं।

कभी-कभी विधेय स्थला मे समास मे भी सन्धा की प्रतीति होती है जस— द्विपुत्र, पंचपुत्र, मामजात। मासजात मे एकत्वसन्धा का जान होना है। द्विपुत्र आदि मे सन्धा का ज्ञान द्वि शब्द से होना है।

वाक्य मे लिंगविधेय का स्पष्ट जान रहता है। परन्तु समास मे उतना स्पष्ट नही होना। कुक्कुटया अण्डम, कुक्कुटस्याण्डम दानो के लिए समास मे कुक्कुटाण्डम कहेंगे। ऐसे ही भृगुमामम मगी और मग दाना के मांस के लिए।

कभी कभी वाक्य मे भी लिंग की अविवक्षा देखी जाती है जस, छागस्य मासम् छाग और छागी दानो के लिए व्यवहृत।

वाक्य मे कथन अपेक्षाकृत स्पष्ट रहता है। समास मे उतना स्पष्ट नही हाता। जसे ब्राह्मणस्य कम्बल तिष्ठति। इसका अर्थ स्पष्ट है। परन्तु यदि ब्राह्मणकम्बल तिष्ठति ऐसा कह तो यह सन्देह हाता है कि ब्राह्मणकम्बल यह नाम है अथवा ब्राह्मण का कम्बल यह अर्थ है।

कभी-कभी समास मे वाक्य की अर्थ या स्पष्टता अधिक होती है। जस अद्द पानो देवतस्य की अर्थ या अद्दपानु देवतस्य अधिक स्पष्ट है।

वाच्य म प्रत्येक पं ध्वजा विनयन साथ रण गता है परन्तु समास म प्रत्येक पं ध्वजा विनयन साथ रही रण गता । ऋद्धस्य गग पुष्प कटा है परन्तु इगी धय म ऋद्धस्य रागपुष्प एगा रही हा सता ।

कभी-कभी समस्त पं भी विनयन रगत है जस दत्तस्य गुरुपुत्र देवतस्य दागभार्या प्राप्ति । परन्तु गुरुपुत्र तस्यभार्या जग दत्तस्य धित व्यवहार के कारण एव पद जग हा गय थ और इनका समस्त रण धाभन गा हा गया था । तभी ऐसे प्रयोग होने जाने लग हागे ।

वाच्य म समुच्चय धोतक थ का व्यवहार बीच बीच म किया जाता है जस गण गीश्च भ्रवश्च पुष्पश्च । परन्तु समास म एग तरह क सामूहिक धय की स्वत अभिव्यक्ति हो जाने के कारण क का प्रयोग बीच म नहीं किया जाता । जस राज गवाश्वपुरपा ।

इन विनयतामा के प्रसंग म भाष्यकार न शब्द द्वारा धय का अभिधान स्वा भाविक है धयया वाचनिक है क साथ साथ जहत्स्वार्थावति, भ्रजहत्स्वार्थावति प्रादि पर भी विचार किया है जिससे दूसर दान भी प्रभावित है ।

यदि वृत्ति म एकार्थीभाव नहीं स्वीकार किया जायगा ता वाच्य की तरह इसम भी सह्याविनेय की प्रतिपत्ति विशेषणयोग प्रादि के रोकने के लिए उपाय करने पड़ेगे । शब्द का स्वाभाविक रूप कभी नित्यदशन के आधार पर समझा जाता है कभी कायदशन के आधार पर बहुधबोधनाथ उपस्थित किया जाता है । कायपक्ष म धनेक साधारण बातों के लिए नियम बनाने पडत हैं । उदाहरण के लिए जैसा कि कयट ने लिखा है, निष्क्रीणाम्बि, गोरय, घतघट, गुडधाना, बेगचूड सुवर्णालकार, द्विदशा सप्तपण गौरतर प्रादि के लिये क्रमश क्रान्त, युक्त पूण, मिथ, सधाविकार सुचप्रत्ययलोप वीप्सा और जातिविशेषाभिधायित्व नियम से प्रतिपाद्य हैं । नित्यदशन पक्ष म ये सब विशेषताएँ एकार्थीभाववृत्त मान ली जाती हैं । इनके लिए विनेय सूत्र की आवश्यकता नहीं है । इसके प्रतिरिक्त वातिकवार ने अपने तापण मे दोष निम्नलिखित वातिकों द्वारा भी व्यक्त किया है

तत्र नानाकारकानिघात पुष्पदस्मदादेशप्रतिषेध २।१।१—५, प्रचये समास प्रतिषेध २।१।१—६

अव्ययीभाव प्रकरण म २।१।१० सूत्र पर वितवव्यवहारे च २।१।१० १ वातिक वातिकार के लोक ज्ञान का भी धोतक है । खलेयवादीनि प्रथमान्ताययपदार्ये २।१।१७ २ भी वातिकवार के लोक ज्ञान के साथ लोक जीवन से ली गई गदावली के चयन को स्पष्ट कर देता है । खलेयवम खलबुसम् लूनयवम प्रादि का प्रथमान्त ही प्रयोग होता है (अतिरिक्त एव प्रातिपदिकार्ये एवा प्रयोग कतय नायत्र—महामाष्यप्रदीप २।२।१७)

बुसोपध्य धनद्यात्य पादहारक और गनचोपक इन लोक-जीवन सबधी गता की सिद्धि के लिए वातिकवार न वातिक लिखे हैं । वृतापवृत्तम भुक्तविभुक्तम, पीतविपीतम गतप्रत्यागतम यातानुपातम् पुटापुटिका, नयात्रयिका फलाफलिका,

माना मानिका—य व्यवहारसिद्ध शब्द वातिककार द्वारा समग्रहीत और प्रतिपादित है।

वर्णोवर्णन २।१।६६ व ग वानिक इष्टि मान जाते हैं। व हैं—

(१) समानाधिकरणसमासात् बहुव्रीहि कदाचित् कमधारम सवध नाद्यथ ।

(२) पूर्वपदातिगये श्रातिगायिकाव बहुव्रीहि सूक्ष्मवस्त्रतराद्यथ ।

पहले व लिए कयट न इष्टि शब्द का प्रयोग किया है (वातिककारेणोष्टिरूपेण

पठितम्—महाभाष्यप्रदीप २।३।६६) और दूसरे का भाष्यकार न इष्टि माना है।

उष्टिया पर अथर्व विचार किया गया है। इच्छाप्रदशक वाक्य का इष्टि कहत हैं।<sup>१</sup>

इससे सवधनी सवधीत्री सवकी (नट), गौरत्तपदरप्यम कृष्णसपवान बल्मीक

लाटिनगालिमान ग्राम सूक्ष्मवस्त्रतर तीक्ष्ण शृंगतर बह्नाढ्यतर बहुसुकुमारतर

य गत् मिद्ध होत है। यहा उपसत्यात् वातिक द्वारा शाकपाथिव कुतपसौश्रुत

अजातौल्वलि यष्टिमौडगल्य —य शाकपार्थिवादिगण व शब्द साधित है।

२।२।३ पर वातिक है—द्वितीयादीना विभाषा प्रकरणे विभाषा वचन ज्ञापकम-

वयवविधाने सामायविधानाभावस्य २।२।३-१ अवयवविधि म सामायविधि नही

होती है। कयट ने अवयवविधान की परिभाषा या दी है

सामायश्रयसमूहापेक्षया प्रतिनियतो विशेष एकदेशो भवतीति विशेषविषय

विधानम अवयवविधानशब्देनोच्यते ।

—महाभाष्यप्रदीप २।२।३

भिनति म इनम क यान इनम नही होता यह ज्ञापक का फल है। यह वातिक-

कार के मत से है। वस्तुतः वाध्यवाध्यकभाव विरोध से होता है अथवा एकफल से

होना है। यहा भिन दश होन क कारण विरोध नही है विकरणा के प्रत्यक्ष हान के

कारण एकफल का भी अभाव है। किंतु वातिककार विरोध के अभाव म वाध्यवाधक

नहीं मानते है। जैसा कि उनक इनम बहुजक्यु नानादेशत्वादुत्सर्गाप्रतिषेध २।३।१२

वातिक से स्पष्ट है। भाष्यकार विना विरोध के भी सामाय विशेषविधि म वाध्य

वाधकभाव मानत है।

पठ्या व प्रसंग म कार्यायन ने प्रतिपदविधाना और वृद्धयोगा का उल्लेख

किया है। प्रतिपदविधाना पठ्या के साथ समास वातिककार के अनुसार नही होता

किंतु वृद्धयोगा व साथ हाता है। प्रतिपदविधाना और वृद्धागा का अर्थ कयट ने या

दिया है

साक्षात् धातुकारकविशेषोपादानेन विधानात् प्रतिपदविधानेऽप्य । कृत

शब्दोपादानेन तु या विहिता सब वृद्धयोगोच्यते ।

—महाभाष्यप्रदीप २।२।८

फनत सपिपो नानम म पठ्यासमास नही होता परंतु इधमत्रदचन पलागशासन म

१ मनेरनादी मन्त्रो विभाषात्रिदिरिथत इत्यानि इच्छाप्रदशकवाक्यानि इष्ट्य —शप श्रीकृष्ण, पञ्चविंशतिवर्णा ह-सलस, पृ० १२ (लेखक का मध्य)

[ होता है ।

तत्स्थश्च गुण २।२।८ २ धातुवत् द्वारा तत्स्थ गुणों के साथ पठ्ठी समास का विधान कायायन न माना है । किंतु गुणबोधक शब्दों का विशेषण के साथ नहीं माना है । तत्स्थ गुण से अभिप्राय उस गुण से है जो द्रव्य में अलग स्वतंत्र रूप में व्यवहृत होता है द्रव्य के उपरजन्म के रूप में नहीं । जैसे चन्दनस्य गन्ध च दनगन्ध । कपित्थस्य रस कपित्थरस । इन उदाहरणों में गुण और गुणी में ब्यधिकरण्य है, सामानाधिकरण्य नहीं है । अर्थात् हम सदा चन्दनस्य गन्ध एसा ही कहते हैं चन्दन गन्ध ऐसा नहीं कहते । यद्यपि गुण के द्रव्याश्रित होने के कारण पूर्णरूप से उभका अपने आप में अवस्थान (तत्स्थभाव) नहीं संभव है फिर भी द्रव्य के उपरजन्म के रूप में व्यवहृत न होकर जहाँ वह प्रधानरूप से व्यवहृत होता है वहाँ द्रव्य से पृथक् सत्ता रखता हुआ सा जान पड़ता है और इस दृष्टि से ही वह तत्स्थ कहा जाता है । वाक्यस्य काष्प्यम म यद्यपि गुण तत्स्थ है फिर भी गुक्ल पट आदि में गुण गुणी में अभेद मानने से द्रव्य का उपरजन्म भी होता है । गुक्ल गन्ध के द्रव्य के अर्थ में व्यक्त होने पर ही उससे भाव में प्रत्यय होता है । अतः वह गुक्ल गुण तत्स्थ नहीं है । यद्यपि गुक्ल और शीतल्य में भेद है फिर भी अर्थ की दृष्टि से तत्स्थता मानी जाती है । शब्द में भेद होत हुए भी अर्थ में भेद न होने के कारण गुक्ल गुण में तत्स्थता नहीं है । रूपवान पट जैसे स्थल में मत्वर्थाय प्रत्यय के भेद के द्योतक होने के कारण गुण गुणी में अभेद का आरोप नहीं होता । फलतः रूप में तत्स्थत्व रह जाता है और समास होकर पटरूप में प्रयोग बनता है ।

किंतु धातुवत्कार के अनुसार गुणबोधक गण्य के विशेषण के साथ पठ्ठी तत्पुण्य समास नहीं होता । जैसे घतस्य तीव्रगन्ध । चन्दनस्य मृदुगन्ध । इन वाक्यों में तीव्र और मृदु गन्ध के विशेषण हैं । इसलिए इनके साथ समास नहीं हुआ है । यद्यपि घत का सम्बन्ध गन्ध से है न कि तीव्र या मृदु से । अतः असामर्थ्य के कारण इन गण्य के समास की प्राप्ति ही नहीं हानी चाहिए परन्तु प्रकरणवाग कभी-कभी तीव्र गन्ध भी तीव्रगन्ध का बोधक हो जाता है । उक्त अवस्था में समास की प्राप्ति हो सकती है । तत्स्थ कायायन न माने तु तद्विशेषणं कर्त्तव्यं उभका निषेध किया है ।

२।२।२४ सूत्र पर सामानाधिकरण्य विधानविधानम् २।२।२४ ६ और विभक्त्यर्थविधानं द्रव्यस्य लिंगसन्धोपचारानुपपत्ति २।२।२४ ७ धातुवत्कार के धातुवत् विधान का स्पष्ट करत हैं । उच्चमुस्य उद्भृमुस्य कर्त्तव्यं प्रथम अर्थात् जो गण्य के समास पर अधिधान और अनभिधान माना दृष्टिया ७ धातुवत्कार न विचार किया है ।

चार्षङ्ग २/२/२६ पर के धातुवत्कार के धातुवत्कार का युगपदधिकरणतावात्त्वनाय है । अहरहनयमानो गामय पुण्य पशुम म दृढक अर्थात् के लिए धातुवत्कार न कहा है—सिद्ध तु युगपदधिकरणयत्ने द्व द्वचनात् २/२/२६ १ । एष एव गण्य म एव माय जत्र समुत्थाय अन्विषेयं गता है दृढ गता है । इसी का युगपदधिकरणतावात्त्वनाय है । गाम अन्विषेयं वाच्य म पशुय परस्पर निरपेक्ष है । य म्यत्र रूप म

भिन्न भिन्न शब्दों से प्रत्याख्य हैं। अतः युगपदधिकरणता के न हानि से द्वन्द्व समास चला नहीं जाता है। इस तरह सहविवक्षा में द्वन्द्व होता है। अभिधानरूप से अभिधेय क्रम अवश्यभावी होता है परन्तु इससे युगपदधिकरणतावाद का प्रत्याख्यान नहीं होता। प्लक्ष्यप्रयोधी ध्वन्यन्तरपलायन जसंस्थलाभयप्रोधाय की प्रतिपत्ति के समय प्लक्ष्य का अनुभूति न हो पलायन की प्रतिपत्ति के काल में यदि ध्वन्य आदि के ग्रथ का आभास न हो तो प्रोध और पलायन में एवायना आ जाय। फलतः उनसे द्विवचन और बहुवचन न हो सकेंगे। अतः द्विवचन और बहुवचन की अयथानुपपत्ति के कारण एक शब्द में भी अनकाय है ऐसा अनुमान करते हैं और इस अनुमान से युगपदवाचिता का निश्चय होता है। अतः वार्तिककार न कहें

शब्दपौर्वापर्यप्रयोधादयथौर्वापर्याभिधानमितिचेद द्विवचनबहुवचनानुपपत्ति ।

—२/२/२६५

समुदाय का उद्भूतावयवभेद मानकर समुदायाश्रय एकवचन हो जायगा ऐसा भी नहीं कह सकते। साहचर्य अर्थात्तर अभिधान में हनु होता है। प्रशरण विस्तार से अवस्थान जैसे प्लक्ष्य में है वैसे प्रोध में भी है उसका वह स्वाथ ही है—कारणाद् ब्रह्मे शब्दनिवेग इति चेत् तुल्यकारणत्वात् सिद्धम्—२/२/२६ १०। इस तरह से अनिप्रसंग नहीं होगा। वक्ति के विषय में शक्ति के शक्ति वैचित्र्य से अर्थात्तर अभिधान होता है सबन नहीं होता। इतरेतर सनिधान से परस्पर में एक शक्ति का आविभाव होता है और इसलिए परस्पराभिधान भी शक्ति का नियतविषय ही होता है। अभिधान स्वाभाविक होता है। इस तरह कई वार्तिका द्वारा कात्यायन ने युगपद अधिकरणतावाद की पुष्टि की है। भाष्यकार इससे महमन नहीं हैं। उनका अनुमान यह वाद कठिन और दुस्माध्य है

इयं युगपदधिकरणवचनता नाम दुःखा च दुःखपादा च ।

—महाभाष्य २/२/२६, भाग—१ पृष्ठ ४२४ कील्लान संस्करण ।

चाथ में च से समुच्चय, अवाच्य इतरतरयोग और समाहार—इन सब का ग्रहण होता है।

वागिका के अनुसार अनेक क्रियाध्याहार समुच्चय है। अनेक क्रियाओं की चीयमानता समुच्चय है। समभिहार और समुच्चय में भेद यह है कि समभिहार पौन पुन्य या भगाथ होता है किन्तु वह एक ही क्रिया का होता है जब कि समुच्चय अनेक क्रियाओं का होता है। वासकार के अनुसार समुच्चिति समुच्चय है। किसी एक साधन अथवा किसी एक क्रिया के प्रति अनेक साधनों अथवा क्रियाओं का अपनत्व रूपभेद के साथ चीयमानता या अनकता समुच्चय है और वह तुल्यवता का तथा अनियत अमयीपद्य का होता है। कयट के अनुसार परस्पर निरपेक्ष पण्य जय च द्वारा क्रिया में जाड जाने हैं तब च का ग्रथ समुच्चय होता है। भट्टाजिदीन के अनुसार परस्पर निरपेक्ष अनेकता का किसी एक सम्बन्धी में अथवा समुच्चय कलाता है। अहरह नरमानो गानश्व पुण्य पणु में एक ही नपति क्रिया में गो अश्व आदि

समका समुच्चय है ।<sup>१</sup> पुण्यराज के अनुसार अविराधी तुल्यबल वाला का समुच्चय होता है जस दवदत्त भोजय, लवणन, सर्पिषा शाकन च ।<sup>२</sup>

जब एक की प्रधानता होती है और दूसरे की आनुपगिता होती है तब अवाच्य होता है । जैसे भिषामट या चानय ।

इतरतरयोग परस्परसापेक्ष अनका का एक अथ म समवय स होता है । मिलिता का अ वय इतरतरयोग है । जैसे देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यामिद काय क्तव्यम । दवत्त और यनदत्त दोना उस काय के प्रति परस्पर सापेक्ष है, क्याकि उनम से एक क भी न रहने पर काम नहीं किया जाता है ।

समाहार समुच्चय का ही एक भेद है । इसम भी परस्पर सापेक्षता होती है किन्तु अवयवभेद तिरोहित रहते ह और सहति प्रधान होती है । जैसे छत्रोपानहम । किसी क्रिया म दोना की परस्पर सापक्षता है सहतिप्रधान होने क कारण एकवचन है । समूह भी समाहार कहा जाता है । वसकी युत्पत्ति क्यट आदि न अनेक प्रकार से की है जस

समाहरण समाहार समाह्वित इति समाहार समाह्वियमाणाय समाहार  
(महाभाष्यप्रदीप २।१।२०) । समन्यागीकरण समाहार ।

—महाभाष्य २/१/५१

समाहारो ऽि समूह । स च भिन्नार्थानामेवकालाना भवति । बुद्ध्या युग-  
पदर्याना परिग्रहादेवकालत्वम ।

— पास २/१/५१

सामान्य और विगप का समुच्चय नहीं हाता । सामान्य और विशेष का द्वन्द्व समास नहीं होता । इसम कारण अनभिधान है । लोकम वक्षधवम ऐसा नहीं बहत । धव गत् स ही वक्ष गत् का अय अवगन हा जाता है । गोवलीवत् जस गद म गा गत् की वति स्त्रीगवो म समझनी चाहिण । इस तरह य दोना सत् विशपवाची हा जात हैं ।

विशेषण विशेष्यभाव—वातिकारन विगपण विशेष्यभाव पर विशेष प्रभाव डाना ऽे विगपण विशेष्ययोरुभयविगपणत्वादुभयोश्च विशेष्यत्वादुपसजनाप्रसिद्धि २।१।१७—१ । वातिक म विगपण विशेष्य म दोना के विशेषण और दोना क विशेष्य हान की संभावना व्यक्त का गर् है । कृष्णनिद्र गत् म कृष्ण गत् तिलगत् म जुत् कर विशेषण हाना है । निद्र गत् क रगा क तिद्र का बाधक है । कृष्ण गत् तिल क अय रगा म उमसा परिच्छत् कर कवन कृष्णरग म उम सीमित कर ता है । अन कृष्णनिद्र गत् म परिच्छत्क तान क कारण कृष्ण गत् विगपण और परिच्छत् हान क कारण तिद्र गत् विशेष्य है । वही तरह कृष्णतिल गत् म कवन कृष्ण गत् क उच्चारण म अमर वाक्त्रिद्र घाति कृष्णद्रव्या का बाध हाना है । तिद्र गत् क सात्त्वय

<sup>१</sup> राष्ट्रक तुम । १२६

<sup>२</sup> पुण्यराज काव्यसंग्रह २।८५ टा३।

से तिल में ही उसका नियमन हो जाता है। अतः कृष्णशब्द विशेष्य और तिल शब्द विशेषण हो जाता है। इसके समाधान में दूसरे वाक्यिक में लिया है—न बायतरस्य प्रधानभावात्तद्विशेषकत्वाच्चापरस्योपसर्जनप्रसिद्धिः २।१।५७ २। दोनों में से एक प्रधान होता है। दूसरा उसका विशेषण होता है। जब तिल की प्रधान रूप में विवक्षा होती है और कृष्ण की विशेषक रूप में, तब तिल शब्द प्रधान होता है और कृष्ण विशेषण होता है। तिल द्रव्य रूप है त्रिया की सिद्धि में सामान्य उपयोगी है। इसलिए उनकी प्रधानता है। कृष्ण गुण है। वह द्रव्य के सहारे ही त्रिया में उपयोगी हो सकता है इसलिए वह तिल का विशेषण हो जाता है। गुण और द्रव्य में द्रव्य की ही प्रधानता मानी जाती है। यहाँ यह कहा जाता है कि तिल शब्द जातिवाची है न कि द्रव्य वाची। यदि जातिविशिष्ट द्रव्यवाची होने के कारण उस द्रव्यवाची मानत है तो कृष्ण शब्द भी गुणविशिष्ट द्रव्यवाची होने के कारण द्रव्यवाची है। इस तरह इन दोनों में कोई विभेद नहीं है। इसके समाधान में कहा जाता है कि उत्पत्ति से लेकर नाश पर्यन्त जाति द्रव्य को नहीं छोड़ती है। शब्द में जाति-व्यतिरिक्त द्रव्य का भान नहीं होता। सदा ही गाबलेय एसा कहा जाता है न कि 'गाबलेस्य गो'। इसलिए जात्यात्मक ही द्रव्य की प्रतीति होती है अनएव जाति शब्द द्रव्यवाची के रूप में प्रतिष्ठित होता है। गुण ऐसे नहीं है। गुण उपायी और अपायी दोनों होते हैं। द्रव्य से व्यतिरिक्त रूप में भी स्व शब्द से गुण का प्रत्यायन होता है। जैसे पटस्य गुणन में। इसलिए द्रव्य की गुणात्मकता नहीं है। फलन गुण शब्द को द्रव्यवाची के रूप में प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। जहाँ दोनों प्रधान शब्द एक अर्थ के लिए एक साथ प्रयुक्त होते हैं उनमें विशेष्यविशेषणभाव कैसे होगा? क्या शिक्षा में विशेष्यविशेषण अथवा प्रधान अग्रधान की व्यवस्था कैसे होगी? महाभाष्यकार के अनुसार इस तरह के दो शब्दों का एकत्र समावेश आवश्यक नहीं है। पहले विशेष्य शिक्षा के प्रयोग से उभय शब्दों में विशेष्य की ही उपस्थिति होती है विशेष्य का सामान्य में अर्थविचार होने के कारण शिक्षा के बाद वक्ष्य शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि पहले वक्ष्य इस रूप में सामान्य का ग्रहण हो बाद में उसकी विशेषता के लिए शिक्षा शब्द का प्रयोग हो तो शिक्षा शब्द विशेषण का काम करेगा और शिक्षा-वक्ष्य ऐसा प्रयोग संभव हो सकता है। कुछ लोग मानते हैं कि शिक्षा के प्रथम उपात्त होने पर भी शिक्षा फल से शिक्षावक्ष्य के 'यवच्छेद' के लिए वक्ष्य शब्द का प्रयोग वक्ष्य की शिक्षा का विशेषण बना देता है और इस तरह वक्ष्यशिक्षा प्रयोग भी हाना चाहिए। परन्तु कथं के अनुसार यह मत उपयुक्त नहीं है। वक्ष्य और शिक्षा में वक्ष्य व्यापक है उसमें महाविषयता है दूर से पहले उसी की उपलब्धि होती है अतः वक्ष्य शब्द ही विशेष्य है। शिक्षा में स्वल्पविषयता है उसका ग्रहण बाद में होता है और वह गुण आदि गुणतुल्य है। अतः वह विशेषण ही माना जायगा। गुण और द्रव्य के समभि-व्याहार में द्रव्य की प्रधानता हानि है केवल यही नियम नहीं है अपितु व्याप्य-यापकजातिसमभिव्याहार में व्यापक विशेष्य होना है यह भी नियम है।



## नञ् विचार

पतञ्जलि ने प्रथम उपाया था कि अत्राह्वणमात्रय जन यात्रया न नञ् न किमपत्थाय की प्रधाता व्यक्त होती है। यदा तीव्र विवरण सम्भव है। अथयत्प्रधान पूर्वपत्थायप्रधान और उत्तरपत्थायप्रधान। यदि ब्राह्मण गन्तुं विधि जाति म मानी जाय और अत्राह्वण का अर्थ यत् किया जाय कि जिगम ब्राह्मणत्वं न हा। तस शत्रिय आदि ता यह नञ् अथ पत्थाय प्रधान हागा। यदि नञ् का वचि इत्ता सामांय म मानी जाय और अत्राह्वण गन्तुं का अर्थ किया जाय कि जिगम ब्राह्मणत्वं न हा किन्तु ब्राह्मणेतर रूप म हा अथान् शत्रिय आदि ता पूर्वपत्थायप्रधान नञ् हागा। यदि ब्राह्मण गन्तुं का प्रयोग शत्रिय आदि क लिय मिथ्यामान क कारण अथवा दुष्टात्मा क कारण हो और ब्राह्मण पदाय की स्वाभाविकी निवृत्ति द्योतित हा तत्र समास उत्तरपत्थायप्रधान माना जायगा।

अथर्पाह्म न गन्तुं स न वशा अथवा ह्मन्त, वर्पाह्मन्त ह्मन्त है यह अर्थ हाता है। ह्मन्त म नीटार आदि स वशा ही दश्य उपस्थित हा जाता है जसा कि वर्पा स। यत् उपमानापमय भाव भी किया हुआ है और इनक साथ अथ पत्थाय का बोध हाता है। अथर्पा का अर्थ अविद्यमाना वर्पा वर्पात्व मस्य इम विग्रह की स्थिति म अथ पदाय नहीं आता। ऐसा मानने पर उपसजन ह्रस्व की प्राप्ति होगी। इस लिए नञ् समास उपमा को छिपाए हुए प्रक्रिया दशा म अथ पदाय प्रधान हात है—ऐसा कुछ लागे का विचार है।

अथ विचारक अथपत्थायत्व की उपपत्ति दूसरे ढंग स करत ह। जातिपत्थाय पथ म ब्राह्मण आदि गन्तुं मुख्य रूप म व्यक्तनिरपक्ष जाति क अभिधायक होत है द्रव्य के अभिधायक नहीं होत। नञ् समास के द्वारा द्रव्य की अभिव्यक्ति होती है और इग आधार पर अथ पत्थायप्रधान वह माना जाता है। अत्राह्वण गन्तुं म नहीं है ब्राह्मण्य जिसम अर्थात् ब्राह्मण स अथ शत्रियादि का बोध होता है। ब्राह्मणत्व जाति का जहा आश्रयत्व सभावित है वही निषेध होता है अत्य तविजातीय म—शत्रिय आदि म निषेध नहा होता, फलत शत्रिय आदि द्रव्य ही अथ पत्थाय है। ऐसा मानने पर बहुव्रीहि और नञ् समास का विषयविभाग भी उपपन्न हाता है। अगरयमश्व अविद्यमाना गावा यस्यत्यगुरयमश्व—महा बहुव्रीहि समास है। अविद्यमाना गौ गौवमस्याश्वस्य सोऽयमगौरश्व इस रूप म नञ् समास होगा। बहुव्रीहि समास मत्वथ में हागा जबकि नञ् समास उत्तरपत्थाय विजातीय की स्वभावन अभिव्यक्त करेगा। इस रूप म इनम विषयविभाग रगा।

यदि नञ् समास का अथ पत्थाय प्रधान माना जायगा अथवा ह्मन्त में ह्मन्त व दन्त क लिय और वचन का प्राप्ति अथर्पा गन्तुं में भी होगी।

यदि पूर्वपत्थाय प्रधान माना जायगा अथय सत्ता की प्राप्ति होगी। यदि अथय म नञ् समास पाठ क अभाव म अथय सत्ता नहा भी हो लिय और सत्या याग का उपपत्ति भा स्वाभाविक गति क आधार पर हा जायगी। गन्तुं शक्ति क

स्वभावज्ञान नत्र विशद वाक्य म असत्त्व रूप अथ को व्यक्त करता है। अथवा आश्रय के आधार पर भी तिग योग हा जायगा। किन्तु इस पक्ष म फिर भी दोष है। यदि स्वाभाविक दान का आश्रय निघा जायगा तो नत्र द्वारा अययीभाव क अपवाद हान स अमलिकम आदि ही सिद्धि न हागी। असवस्मं, अस आदि उपपन्न न हो सकेंगे। यदि उत्तर पन्थ प्रधान का आश्रय लिया जायगा 'अज्ञानज्ञानमानय' कहने से ब्राह्मणमात्र के लान की छागका हागी। महाभाष्यकार न नत्र को निवत्त पदाथक मानकर उपयुक्त दोष का परिहार कर उत्तरपदाथ प्रधानता का समयन किया है। निवत्तपदाथक का अर्थ कयट क अनुसार, पन्थ की निवत्ति, मुख्य ब्राह्मण्य की निवत्ति मे है। कौण्टभट्ट क अनुसार निवत्तपदाथक अभावाथक है। कयट के अनुसार स्वाभाविक निवत्तदगन पक्ष म नत्र से पदाथ की निवत्ति से तात्पय पन्थ प्रत्यय स है। पदाथ प्रत्यय ही उपचार से पदाथ शब्द स यवत् किया जाता है। जस सिंहमध्यापयेत वाक्य म सिंह शब्द से माणथन का वाच होता है। अभिप्राय यह है कि जब केवल ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया जाता है, प्रसिद्धि वग वट्ट मुख्य ब्राह्मण अर्थ का ही प्रयायक होता है। किन्तु नत्र पूर्वक प्रयाग स अज्ञानज्ञान शब्द के व्यवहारसे— ब्राह्मण शब्द की निवत्त-पदाथकता की प्रतीति ानी है। प्रतिष्ठति म तिष्ठति निघा गति का बोधकराती है किन्तु केवल तिष्ठतिस प्रस्थान न करन का बोध होना है। प्र उपसग क साथ तिष्ठति क व्यवहार म ही प्रस्थान का वाध होता है। वही तरह स नत्र द्योतक का काम करता है। इसके प्रयाग स पदाथ की निवत्ति छानिन हाती है। पदाथ शब्द म उपचार के सहार पदाथ प्रत्यय अवगत हाता है। महाभाष्यकार न निवत्ति को स्पष्ट करने क लिए कील प्रतिकील का उदाहरण दिया है। मान कील स छोटी कील उखाड ली जाती है। इसी तरह नत्र के प्रयाग करन पर वट्ट पन्थों की निवत्ति करता है। यदि यह निवत्ति वाचनिकी मानी जायगी कवन न कहने स ही सत्र तरह के निषेध सपन्न हो जायग। शत्रु को हराने क निघ सेना रखने की आवश्यकता न हागी। केवल न कहन स के हट जायग। यदि स्वाभाविकी निवत्ति मानी जाय ता नत्र की चरिताथता ही क्या होगी। इसलिए निवत्ति ता स्वाभाविकी मानी जाती है किन्तु उसकी उपलधि वाचनिकी हाती है। जस दीप अदरे म वस्तु का निष्पगक हाता है निवत्तक नही। ब्राह्मण शब्द के प्रयोग स ब्राह्मण पदाथ का निवत्ति स्पष्ट हा जाती है। समुदाय के लिए व्यवहृत हान वान शब्द उमक एक दश के लिए भी व्यवहृत होन हैं। एक दश के विभाग से समुदाय की निवत्ति भी कही जानी है और एन्देग एकभाग के होने पर भी सपूण समुदाय की सहा अवगन होती है। पूर्व पचाला तल भुक्त जस स्थला मे अवयव म समुदाय क आगप स शब्द प्रवत्ति हाती है

अवयवे समुदायरूपारोपात् शब्दप्रवृत्ति विज्ञेया। न तु शब्द स्वाथ परित्य-  
ज्यायात्तर वक्तुम समय, न दाससम्बन्धस्यानित्यता प्रसगान।

—कयट महाभाष्यप्रदीप २।२।६

अज्ञानज्ञान शब्द स निवत्ति क अर्थ क लिए महाभाष्यकार ने गुण और जाति दाना का सहाग लिया है। किमी विगप चिह्ना या रूप स किसी का काइ ब्राह्मण म-

भक्ता है बाध में उस पात होता है यह ब्राह्मण नहीं है। मन्त्र अथ की निवृत्ति गुण व आधार पर है। इसी तरह जाति व आधार पर प्रवृत्ति छोड़ चुकाने निवृत्ति जाति परक निवृत्ति है। एतदर्थ पर ब्राह्मण भाग की प्रवृत्ति सुस्पष्ट गहानी है जाति व आधार पर अथ की निवृत्ति हानी है। नत्र व सम्प्रथ में धर्मगोत्र की निम्नलिखित कारिका प्रसिद्ध है

सतां च न निषेधोस्ति सोऽसत्सु च न विद्यते ।

जगदधनेन चाधेन नत्रथ प्रसय गत ॥

इसका तात्पर्य यह है कि जो सत है वह सत् सत है उसका निषेध नहीं हो सकता। जो असत है वह असत् है, उसका निषेध करना न करना बराबर है। और इस दृष्टि से नत्रथ का कोई स्थान नहीं है।

नागेन ने इस आक्षेप का उत्तर बौद्ध भाग और बौद्ध अथ के आधार पर दिया है। बुद्धि में अवस्थित अथ का भी नत्र के द्वारा बाधसता व रूप में निषेध संभव है।

निवृत्ति के प्रसंग में महाभाष्य में प्रसज्यप्रतिषेध का संकेत है

प्रसज्याय श्रियागुणो तत पश्चात् निवृत्ति करोति ।<sup>१</sup>

प्रसंग से यहाँ पयु दास भी भूलक जाता है जसा कि कथट ने लिखा है

पयु दासे तु ब्र पादिसख्यायुक्त एवानेकवद्वस्याथ ।<sup>२</sup>

प्रसज्य प्रतिषेध का महाभाष्यकार के मत में त्रिया और गुण के साथ संबध होता है। न न एक प्रियम' न न एक सत्वम में गुण के साथ संबध है। असूय पश्या' में त्रिया व साथ नत्र का संबध है। इसी तरह अनचि च ८।४।४७ में त्रिया के साथ नत्र का संबध है। प्रसज्य प्रतिषेध समस्त में भी हाता है असमस्त में भी होता है। समस्त का उदाहरण अभानुभेद्य तम है असमस्त का उदाहरण गृह घटो नास्ति है। नागेन के अनुसार असमस्त रूप में प्रसज्यप्रतिषेध का अथ अत्यन्ताभाव है। असमस्त रूप में उसका अथ अयो-याभाव और अत्यन्ताभाव है। प्रागभाव और प्रध्वसाभाव नत्र से छोट्य होत है।

पयु दास सदशग्राही माना जाता है। निषेध की प्रतीति अथ जन्म हाती है।

कोई इस आहायानान के रूप में भी स्वीकार करत है। पयु दास प्राय समस्त में ही हाता है। कहीं कहीं समास के विकल्प में असमास में भी देखा जाता है।

नत्र के छ अथ के विषय में निम्नलिखित कारिका प्रचलित है

तत्सादृश्यमभावश्च तद यत्न तदल्पता ।

अप्राप्तस्य विरोधश्च नत्रार्थं यत्र प्रकल्पिता ।<sup>३</sup>

भाज न न नत्रथ द्वारा उत्तरपदाथ की विवेचना उत्तरपदाथ द्वारा नत्रथ की

१ महाभाष्य २।२।६

२ महाभाष्य प्रलापोत्तम २ । ६

३ मजूपा ५०, ६६८

विशेषता दोनों द्वारा अयपत्या की विशेषता का आधार पर नत्रय के तीन पटक दिए हैं जो निम्नलिखित हैं—

- (क) अत्य ताभाव—जसे अरूपो वायु ।  
 अनत्यताभाव—जस, अनुत्तरा क्या ।  
 अयतराभाव—अकिंचन पुमान ।  
 तात्पर्यताभाव—अपिणाच कुडय ।  
 मन्वघाभाव—अघट भूतलम ।  
 प्रध्वसाभाव—अनङ्ग काम ।
- (ख) प्रागभाव—अनुत्पन्नो घट ।  
 मामथर्याभाव—अप्रघष्य मुमत् ।  
 आवयवताभाव—अभूपित कान्त ।  
 उत्तरेतराभाव—अवपा हमत ।  
 सत्ताभाव—अमत गगविषाणम ।  
 भावाभाव—अनुदमिन प्रवाल ।
- (ग) तत्त्वभाव—अनय ।  
 तत्त्व—अनत्रि ।  
 तत्त्वदंग—अज्ञाह्यण ।  
 तत्त्वविद्—अमित ।  
 तत्त्वकृष्ट—अमनुष्य ।  
 तदुत्कृष्ट—अमानुष ।

नत्रय अयपत्या म कभी व्यवतिष्ठित होत हैं कभी सप्तवित होत हैं । अनुत्तरा क्या अलाभिको एहका आदि म व्यवतिष्ठित मान जात हैं । अनक अत्रय, अजमा अत्रि म सप्तवित मान जात हैं ।

कुछ लाग निम्नलिखित चार को असमय समास म परिगणन मानत हैं कुछ इनम भी समुदाय म विभक्तिविशेष की प्रतिपत्ति स्थिते हैं

- अथाद् भोजी आह्यण ।  
 अमूय क्या राजपारा ।  
 अलवणभाजी भिनु ।  
 अपुनगेषा लात्रा ।

महाभाष्य म निम्नलिखित असमयसमास पर समास का उन्वय है जो समुदाय की दृष्टि म अगुद्ध प्रयोग हैं । किन्तु उन त्रिा लाग म व्यवहृत हान थे ।

४ नागेश म अनर शब्द को असाधु माना है—एव चत्तर इति बहुवचनसमासवर्ति बोधयन्ति मंगूषा विग्रह ।

और इसी आधार पर इतरा उल्लेख महाभाष्यकार ने किया है—

अविच्छिन्न कुर्वाणम् ।

अमाय हरमाणम् ।

अगाधात् उत्गृष्टम् ।

इनका शुद्ध रूप प्रमाण या है—त्रिचिञ् अगुवाणम् मापम अहरमाणम्  
गाधात् अनुत्गृष्टम् । त्रिचिञ् सोर व्यवहार म किञ्चिद अगुवाणम् क म्यान पर  
अविच्छिन्न कुर्वाणम् गन् चल पडा था और अम योनन याल नञ् समाग क रूप म ही  
बोलते थे ।

कयट ने स्पष्ट किया है कि य प्रयोग गाधी गोणी आदि की तरफ अगाधु  
है किन्तु लोक व्यवहार म इनके प्रयोग दग जात है

गा यादिवदसाधुरपि गमकत्वानिमित्तो लोके प्रयुज्यते ।

—महाभाष्यप्रतीप २।१।१

भाषाविज्ञान की दृष्टि से य प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है । य केवन मिथ्यासादर्य  
के सिद्धांत क ही उदाहरण नही है अपितु इस बात क भी चोतर है कि साधुता असा-  
धुता का निर्णायक लोक है । अथवा महाभाष्य जस प्रथम इनका कोई स्थान नही  
होना चाहिए था ।

## भाव विचार

पाणिनि ने तरय भावस्त्वतलो २।१।११६ द्वारा भाव म त्व और तल प्रत्यय का विधान  
किया है । गन् का प्रवृत्तिनिमित्त भाव गन् स कहा जाता है । वात्स्यायन के अथ सूत्र  
पर के दो वार्तिक व्याकरण दशन की दृष्टि स बहुत महत्वपूर्ण माने जात है । व है—

(१) सिद्ध तु यस्य गुणस्य भावाद द्रव्ये गन्निवगस्तदभिधाने त्वतलो  
५।१।११६ ५

(२) यद्वा सर्वे भावा स्वेन भावेन भवति स तेषा भावस्तदभिधाने  
५।१।११६ ०

गुण शब्द यहा विशेषण अथ म है । द्र य विशेष्य है । जिस विशेषण की सत्ता  
न विशेष्य म गन् का प्रवृत्ति हाती है उसक अभिधान म त्व और तल प्रत्यय होते है—  
यह प्रथम वार्तिक का शास्त्राय है ।

वार्तिक म गुण गन् स जो कुछ पराश्रय है भेदक है जस जाति आदि के सभी  
यहा गृहात है । भावात् गन् का अथ विद्यमान होने से है । द्र-य शब्द से विशेष्यभूत  
सत्वभावापन अथ अभिप्रेत है । गन्निवग का अथ गन् की प्रवृत्ति है । शब्द से  
वाच्य अथवा अवाच्य जिस गुण क भाव स द्र य म गन् की प्रवृत्ति होती है वह  
त्व और तल स अभिप्रेत है । गुणमात्र वृत्ति वाले रूपादि गन् स गुण समवायी  
सामान्य म भाव प्रत्यय होता है जस रूपत्वम । गुण आदि गन् जा गुण और गुणी  
म भेद क कारण अथवा मनुष के लोप के कारण गुण और गुणी उभय वृत्ति हैं उन  
गुणवाचक गन् स गुण समवायी सामान्य म भावप्रत्यय होता है और गुणीवाचक

स गुण म प्रत्यय होता है। अण महत्, दीघ आदि गुणवाचक शब्द केवल परिमाण म न टाकर निय परिमाणो म रहत है इम लिए उनसे परिमाण गुण म भाव प्रत्यय होता है। पत्व णत्व आदि मे प्रत्यय भिन्न वण व्यक्ति म समवेत सामान्य विनोप म होत हैं। वणों म भेद उच्चारण भेद के कारण अथवा औपाधिक हा सकता है। गो आदि जब केवल जातिवाचक है तब उनसे भावप्रयय शब्द स्वरूप क अथ म होना है। अथ रूप जानि म शब्द के स्वरूप का अध्याय किया जाता है जा गा शब्द है वही अथ है इस रूप म। अत शब्द स्वरूप ही एम शब्द के प्रवृत्तिनिमित्त है। जितन यहच्छा शब्द हैं उनम जाति एमी पद्धति से सिद्ध की जाती है। व्याकरण दशन एक व्यक्ति म भी जाति की सत्ता मानता है। शब्द क उच्चारण भेद स शब्द म अनेकता म एकत्व की सिद्धि की जाता है जिमसे अनुगताकार प्रत्यय होता है। इसी तरह अथ म अथस्या भेद के आधार पर भेद कर अनुगताकार प्रत्यय क आधार पर एम्य की सिद्धि की जाती है। फलन अनक समवत एतत्त्व (जाति) की सत्ता व्यक्ति म भी सिद्ध हो जाती है। द्रव्यवाची गो आदि में जाति म भाव प्रत्यय हाते ह। समास, वृत्त और तद्धित से सम्बन्ध म प्रत्यय होता है यद्यपि य केवल सम्बन्ध नहीं यकन करत है फिर भी सम्बन्धी म वर्तमान रूप से प्रवृत्तिनिमित्त के रूप म सम्बन्ध की अपेक्षा रखते है। जम राजपुत्रपत्व से स्वस्वामिभाव की प्रतीति हाती है। पाचकत्व म क्रियाकारक सम्बन्ध की भूलक है। औपगवत्वम मे अपत्यापत्यवत सम्बन्ध हैं। किसी किसी के मत से औपगवत्वम म अपत्यापत्ययात् से भाव प्रत्यय का अभिधेय जाति है। जसा कि कहा जाता है समासकृततद्धितेषु सम्बन्धाभिधानमयत्र हृदयभिन-रूपा यमिचरित सम्बन्धेभ्य ।<sup>१</sup>

गौरवर, सप्तपण लोहितगालि आदि जाति विनोप से आपन द्रव्य विनोप वाची शब्दो म ही भावप्रत्यय हाता है। इसी तरह कुम्भकारत्वम हस्तित्वम आदि म भी। मतुप क लुक दगा म शुक्ल आदि तद्धितात हैं। फिर भी उनम भावप्रत्यय गुण म ही होता है सम्बन्ध म नहीं होता। जिस तरह जाति और तदवान म लाकनिहृद सम्बन्ध क आधार पर भेद निराहित सा हो जाता है और अभेद भासित हाता है उसी तरह गुण और गुणी म भी वद्द यह है इस अध्याय सम्बन्ध से गुणवचन शब्दो स मतुप क लुक की दगा म उनम अभेद भासित होना है और अभेद रूप मे उनका अभिधान होना है उनम भेद मानकर मतवध की उत्पत्ति नहीं मानी जाती। मना म अथमिचरित सम्बन्ध से सतोभाव इस रूप म जानि म ही भावप्रत्यय हाता है। मन्वन्तु सत्तासम्बन्ध को नहीं छोडती (न। हे पदाथ सत्ता व्यभिचरति—योगभाष्य) ३।१७ इस सत्ता सम्बन्ध की अपेक्षा के कारण सम्बन्ध म प्रत्यय नहीं होना। राज और पुत्र्य म सम्बन्ध मनातन नहीं है अत उसकी अपेक्षा रख कर ही राज और पुत्र्य शब्द अपना अपना अथ यवत वर्तत हैं इसलिए यहा सम्बन्ध म भाव प्रत्यय माना न। दु

१ यह प्राचीन आचार्यों की परिभाषा है। सारदव ने इस परिभाषा रूप में श्लोकार किया है। कौटिल्य ने इसे मनु हरि का वाच्य माना है। यह वाक्यो में नही मिलता।

है। इसलिए कहा जा सकता है कि सभी पदार्थों में विद्यमान समवाय रूप में रहने वाली और मात्र प्रवृत्ति की हेतु सत्ता ही भावप्रत्यय में धार्य है। सत और सत्ता का समवाय समवाय वाच्य नहीं है। ध्वन्यन्वित जन्म मृत्यु में जाति द्वन्द्व होने के कारण जाति समुदाय में भावप्रत्यय है। कुत्त जस गच्छति म गन्तव्य रूप का मनी में वह यह क रूप में अध्यास कर भाव प्रत्यय विधान होता है। कुछ लोग तेज स्पला में सत्तासति सम्बन्ध में भाव प्रत्यय मानते हैं। इस तरह कथने में उपयुक्त वाचिण की व्याख्या की है।

भाष्यकार ने वाचिक की व्याख्या में गुण और द्रव्य की परिभाषा पर विचार किया है। मात्र स्पर्श रूप रस और गन्ध को गुण मानकर इनमें अर्थ को द्रव्य माना है। यह एक मत है। गुण में अतिरिक्त द्रव्य की सत्ता अनुमानयोग्य है। प्रथवा भिन्न भिन्न गुणा के प्रादुर्भाव से भी जिसका तत्त्व सङ्गित नहीं होना वह द्रव्य है। ध्वन्य अर्थ रूप में गुण का सद्राव द्रव्य है। द्रव्य आदि में वृत्ति (भावप्रत्यय), भाष्यकार के अनुसार प्राथमकल्पित द्रव्य का आधार पर संभव हो सकती। प्राथमकल्पित द्रव्य की कोई क्रिया या कोई गुण यदि किसी में पाई जाय तो इस आधार पर उक्त भी भाव प्रत्यय हो सकेगा।

दूसरे वाचिक का अर्थ है कि जब मनी शब्द अपने (स्व) अर्थ व्यक्त करते हैं वह उनका अर्थ है और उसी के अधिधान में तत्र और तत्र प्रत्यय होते हैं। गुण का भाव शुक्लत्व है। गुण में वर्तमान शुक्ल शब्द का भाव गुणममवायिनामाय है। उक्त निमित्त से शुक्ल शब्द अपने गुणलक्षण अर्थ में प्रवृत्त होता है। द्रव्य में वर्तमान गुण शब्द का भाव गुण है। द्रव्य में वर्तमान गो मात्र का भाव जाति है। राजपुरष का भाव सम्बन्ध है। इस तरह अर्थ को भी समझना चाहिए।

नानात्व सहस्र यौगपद्य आदि में वृत्ति विषय में नाना शब्द असहभूत अर्थ में है। सह मात्र सहभूत अर्थ में है युगपत् शब्द युगपदभूत अर्थ में है। इनमें असहभाव प्राप्ति में भाव प्रत्यय है। इसका निष्पन्न कथने में गद्यो में यह है

तत्र भवत्यनेनेति करणसाधनेन भावशब्देन जात्यादिषु उच्यमाने वाच्यसम्बन्धिनि शब्दसम्बन्धिनि वा पूर्वोक्तपाशाद द्रव्यवाचिन शब्दान्निधायिनो वा शुक्लादे स्वत्त्वादेव इति स्थितम्—महाभाष्यप्रदीप, ५।१।११६

स्वाय की एक दूसरे तरह से भी व्याख्या की जाती है। स्व शब्द आत्मीय वाची है अर्थ शब्द अधिधेयवाची है। स्वाय अनन्त प्रकार का होता है जैसे जाति गण त्रिया सम्बन्ध और स्वरूप। गो गुण पाचक राजपुरष और द्रव्य। शब्द अपना अर्थ (स्वाय) निरपेक्षरूप में करता है। अपने अर्थ (स्वाय) व्यक्त करते समय उस अर्थगत किसी निमित्तांतर की आवश्यकता नहीं रहती। अपना स्वाय कह कर उस स्वाय से सम्बद्ध द्रव्य का यत्न करता है। द्रव्य शब्द से व्याकरण दान प्रसिद्ध द्रव्य अपाति है। व्याकरण दान में इदं तत् सवनाम से परामश योग्य वस्तु को द्रव्य कहते हैं। ध्वन्य जाति मात्र जाति में है आरोपित स्वरूपवाली स्वरूप से एकीकृत जाति व्यक्त करता है तब उसका स्वरूप स्वाय है और जाति द्रव्य है। जब वह जाति विनिष्क द्रव्य को व्यक्त करता है तब उसका स्वाय जाति है। गुण आदि जब गुण

जाति म स्थित हैं, उनका स्वरूप स्वाथ है और जाति द्रव्य है। जब व गुण म स्थित है गुण सामाय उनका स्वाथ है और गुण द्रव्य है। समवत द्रव्य का अभिधान कर शब्द, निग वचन और विभक्ति का भी यक्न करता है। यद्यपि लाक म पद के उच्चारण करने पर युगपन पाच अथ भासित हात है क्योकि शब्द का व्यापार विरम निगम कर नही हाता फिर भी शास्त्र म व्यवहार क निग कल्पित अवयव-व्यतिरेक का आथय लिया जाता है। अस्ने आघार पर प्रयाग के अनुपयुक्त प्रातिपादक म अथवत्ता की कल्पना की जाती है और उसम एन अम माना जाना है क्योकि नागृहीत विशेषण-विशेष्य बुद्धि' इस याय के अनुमार ण्द सवप्रथम स्वाथ की अभिव्यक्ति करेगा। तब लिंग आदि के आघार भूत द्रव्य का अभिधान करेगा। बहिरग सरया की अपक्षा लिंग जनग है अत मर्या के पूव लिंग का अभिधान करेगा। तब मर्या कि अभिव्यक्ति करेगा। क्यकि सख्या और कारक म सख्या अतरग है और कारक बहिरग है। मर्या कवल तुल्यजातीयापन है जब कि कारक विजातीय क्रियापेथ होन के कारण वक्ति ग है। अत मर्या के बाद कारक की अभिव्यक्ति होगी। वस्तुत कात्यायन क अनुसार नानाकल्पना बोद्धि है। इसी दृष्टि सं तत्र व्यपदेशित्रद वचन, एकाना द्वे प्रथमाथम १।१।२१ २ ३ का प्रत्याख्यात अवचनाल्लाव विज्ञानात सिद्धम १।१।२१ ५ वातिक द्वारा किया है। बुद्धिसमागोपित भेद के आथय स मुख्य की तरह एक म भी द्विवचन आदि काय हो सकत है। यह वातिककार का अभिप्राय है।

### प्रकार का स्वरूप

पाणिनि न प्रकारवचन शब्द का व्यवहार किया है। 'याख्याकारा म प्रकार क अथ क विषय म मतभेद है। स्थूलादिभ्य प्रकार वचने वन ५।४।३ सूत्र म प्रकार साहस्य-बोधक है। साहस्य अथ की सामने रखकर कात्यायन न चचत् बहत्कारपसख्यानम' एस वातिक का इस सूत्र पर लिखा है। चचत्क और बहत्क इन दो शब्द का मणि विनोद क अथ मे प्रयोग कात्यायन के समय मे होता था। जा चचत (चमकीला) न हो किंतु चचत सा जान पड उसे चचत्क कहते थ। प्रभा की लहर सं ऐसा जान पडता था। इसी तरह जो बृहत न हो किंतु बहत्त-सा जान पड उस बृहत्क कहत थ। मणि की कान्ति के प्रसार से ऐसा हाता था।

कुछ अथ आचार्य सवन प्रकार का अथ साहस्य मानत हैं। प्रचारकचन याल ५।३।२३ प्रकार गुणवचनस्य ८।१।१२ स्थूलादिभ्य प्रकार वचन वन ५।४।३ आदि सूत्रा म साहस्य अथ ही उह अभिप्रत है। यथा तथा शब्द स मृग्य ४।४ १। वातित हाता है। पटुजातीय ण्द म जानीयर प्रत्यय द्वारा मुख्य ण्द म, ण्द ११ अभिहित होता है। पटु पटु ण्द म भी द्विवचन स विनाप्य म मृग्य ४।४ १।

१ इस वातिक में मतभेद था—'चचत्कृद्वारिणि वचिन पठन्ति। मया ११ ५१३ इत्यम्—  
इत्यम्—काशिका ५।४।३  
अतु हरि ने चचत्क, वृत्क पाठ प्रनाथा है, वासुदेव द, मृग्य ४।४ १।१-१३



भासित होता है। इसी तरह मूलतः 'त' म स्थल मत्त अथ होता है।

कुछ अथ वानाथ प्रकार 'त' वा भ' अथ मानत ५ सामान्य विगद्य भेदक प्रकार — काशिका १।१।२३। 'न मन म यथा तथा 'त' म भ' अथ ती प्रतीति हाती है सामर्थ्य म यथा साह य अथ भवता है। 'गी तरह पञ्जातीय 'त' म भी भेद अभिप्रत है। 'ता भ' माना जाता है वहा सादृश्य सामर्थ्यगम्य हाता १ और जहा सादृश्य अथ माना जाता है वहा भ' सामर्थ्यगम्य गमभा जाता है। पशुप्रकार देवदत्त इस वाक्य म सामान्यविगपभाव 'त' हान क कारण सामान्य ही प्रकार है।

बाह्यप्रकारा साठरादय इस वाक्य म सामान्य का विगप म अवय ही के कारण सादृश्य की सभावान होने पर भे' प्रकार माना जाता है।

कुछ प्रकार वाले प्रथम प्रकारवान म हात हैं। जस जातीयर वन और द्विवचन। कुछ प्रकार वाले प्रत्यय प्रकार मात्र म हात है जस थाल। किन्तु 'कार म वक्ति हात हुए भी प्रकारवान स सम्बद्ध हात है। इसलिए थाल और जातीयर म बाध्यबाधक भाव नहीं होगा। और थाल प्रत्यय क बाद भी जातीयर का प्रयोग दसा जाता है जस तथाजातीय १२

पाणिनि न अथय विभक्ति २।१।६ सूत्र म यथा के अथ म अ यधीभाव समास माना है और पुन सादृश्य क अथ म भी माना है। यदि यथा और सादृश्य समानाधिक है तो पाणिनि को यथा 'त' म ही सादृश्य का काम चला वना चाहिए था। इसका उत्तर भवृ हरि ने यह दिया है कि उपयुक्त सूत्र म सादृश्य सदग का उपलक्षण है। इसीलिए 'नका उदाहरण सदश विग्या सक्ति (शृगाल सदश) दिया जाता है। जो अथय सादृश्य का अभिधायक हा साद य ग्रहण से उसका अव्ययीभाव समास माना जाता है। सत्वभूत अथ के बोधक होने पर भी वचनबल से अथय माना जाता है। सादृश्यवचन यथा 'त' के साथ समास नहीं हाता। किन्तु थालतप्रतिरूपक धीप्नावोधक निपात यथा 'त' के साथ समास हाता है। अथवा योग्यतालक्षण यथा का अथ सादृश्यमात्र है। जो मूर्तिगत (द्रव्यगत) साम्य है वह सह 'त' स यक्त किया जाता है। सक्ति 'त' म सह 'त' स किन्ही निष्ठ अवयवसनिवेश आदि के द्वारा सादृश्य व्यक्त हाता है। इस दृष्टि से सादृश्य किरया सक्ति इन रूप म अथ करना चाहिए। इस तरह उपयुक्त सूत्र म सादृश्य 'त' स द्रव्यगत सादृश्य अभिप्रत है यथा 'त' स योग्यता नामक गुणगत सादृश्य द्योतित है

किमयमिदमुच्यते, यथाय इत्येष सिद्धम्।

गुणभतेऽपि सादृश्ये यथा स्वात। काशिका २।१।६

२ थान और जातीयर प्रत्यय म कवल इतना हा भेद है कि थान् प्रथम प्रकार में हाता है तकि वानावर प्रकारवान् में हाता है—

सामान्यतु 'वभावान् प्रकारवान वतने थान पुन प्रकारमात्रे।

कुछ लोग बुद्धयवस्थानिबन्धन सादृश्य को प्रकार मानत है। दवत्स को अगत् पुष्पल पट्टन दयक्तर पट्टन दवत्स इम रूप म था इस रूप म बुद्धिप्रकल्पित सादृश्य भवता है। बाह्य अय अन्तगत जान क अनुकार मान है। स्मृति ए सवत्र सादृश्य ही प्रकार का अय है। म भाष्यकार ने प्रकार गुणवचाम्य ८।१।१२ गून म प्रकार क लिट् अग्नि माणवक श्रीर 'गोवाहीक' उगहरण दिग ह। य उदाहरण प्रकार का सादृश्य मानने पर ही उपयुक्त हो सक्त है। गा क सादृश्य क कारण ही वाहीक का गो कटा जाता है।<sup>३</sup> और अग्नि की नीरगता क सादृश्य म माणवक को अग्नि कहा जाता है। गात्व अथवा अग्नि व रूप मामा य का यह विरोध भेत् नहा है। गोवाहीक म गा गद्द का द्विवचन नहा हाता। गुक्त्वादि गुण गग म चरित्वाथ वाहीकाभिधायी गो गद्द का द्विवचन नही हाता

गोवाहीक इति द्वित्वे सादृश्य प्रत्युदाहृतम् ।

गुक्त्वादी सति निष्पन्ने वाहीको न द्विवच्यते ॥<sup>४</sup>

इम सम्बन्ध म दो प्रकार क विचार है। कुछ लोग मानत है कि गुण उपसजन द्रव्यवाची का द्विवचन हाता है जस गुक्त्वागुक्त्वा पट। गुणमात्रवाची का भी द्विवचन हाता है जस गुक्त्वागुक्त्वा रूपम। अय अघायो क मत म गुणविशिष्ट द्रव्य वाचा का ही द्विवचन हाता है। मूत्र मूत्रे म्यूला' अग्रे अग्रे सूत्रमा जस प्रयोगो को कायायन ने आनुपूर्वी के आधार पर सम्यन किया है यहा वीष्मा नही है। क्याकि वीष्मा वहाँ हाती है जहा एक जातीय पदार्थों का अनेक रूप गुण आदि से अचय होता है। मूत्रे मूत्रे म्यूला अथवा सूत्रमा एक ही वस्तु का स्वर कहा जाता है। अग्र मध्य और मूल य तीन भाग है। एक ही मुरय है अग्र भाग अथवा मूल भाग। दूसरे भागा का अग्र अथवा मूल व्यपदेश सापेक्ष है। अग्र सन्निवर्ग की अपन्था से अग्र कहा जाता है। उपर के सन्निवर्ग की अपन्था स मून कहा जाता है। एक रूप भागा का स्थूल्य अथवा सौम्य नही होना। केवल मूल की आर स्थूलता बढ़ती जाती है और अग्रभाग की और सूक्ष्मता बढ़ती जाती है। इसलिए यहा वीष्मा का अभाव है। किन्तु मूल मूत्रे पथि विटपिनाम वाक्य म वीष्मा है। हेलाराज ने प्रथम मत को प्रथम लिया है

गुणोपसजनद्रव्यवाचिन गुक्त्वादेरेव द्विवचन गुणमात्रवाचिनश्चेति गुक्त्वागुक्त्वा पट गुक्त्वागुक्त्वा रूप पटुपटु इतीष्ट सिद्धम् ।

### छ प्रत्यय पर विचार

इव अय विषयक समास से दूसरे एव के अथ म पाणिनि ने छ प्रत्यय का विधान किया है—समासाश्च तन्विषयात् ५।१।१०६ पातरण और माहिय गाश्च म समा

३ गोवाहीक में गुणगुणार्थ म सदा अमेदोपचार मानने से भेद दोतक पष्ठा विभक्ति नहा होगा है—गुणगुणिनोश्चात् विषये नित्यममेदोपचाराद् भेदनिर्भनपठ्यत्वात् ।



सम्बन्धभावे स्थायिकानामुपचयसम्बन्ध इति ध्यानकारदर्शनम् ।<sup>१</sup>

—वाक्यपदीय २।२१० हरिवृत्ति, हस्तलेख

२. भक्त हरि का ध्यानकार दर्शन में अभिप्राय ध्यानग्रन्थकार ५ दर्शन में है। ध्यानग्रन्थकार का उल्लेख भक्त हरि ने मन्माद्यदायिका में भी किया है—रहोभव प्राप्नोति। उभये इति ध्यानग्रन्थकारगतम्। मन्माद्यदायिका (लीपिका) पृ० ३२० हस्तलेख मन्माद्यदायिका प्रारिण्णल मनु रज्जोत्त ला मेरो। ध्यानग्रन्थकार का उल्लेख भामद ने भी किया है—

सूत्राभस पदागत पागायणरमातलम्।

धानूभादिगत ग्रह ध्यानग्रन्थ प्लवम् ॥ ६।१)

मेरे विचार में भामद का ध्यानग्रह म अभिप्राय ध्यानग्रन्थकार ५ अथवा ध्यानग्रन्थकार का है। रोम से प्रकाशित उद्भव वृत्ति में यह अर्थ स्पष्ट है। अथ तोर्गा ने ध्यान स समाधिवाला ध्यान ग्रन्थ लिया है।

## स्फोटवाद

संस्कृत व्याकरणदशम म स्फोटवाद का स्वरूप अविवादात्मक नहीं है। स्फोट का स्वरूप बदलता गया है और वह भौतिक से अभौतिक बन गया है। उसका मूल अनात है। हरदत्त और नागश ने स्फोट का सम्बन्ध स्फोटाद्यन से जोड़ा है।<sup>१</sup> किन्तु इस कल्पना के पीछे कोई प्रौढ आधार नहीं है। दूसरे दानो म स्फोटवाद की चर्चा व्याकरणदशम के सिद्धांत के रूप म की गई है। स्फोटवाद क प्रवक्त क रूप म बहुधा भत हरि का नाम लिया जाता है। किन्तु स्वयं भत हरि न स्फोट के प्रसंग म मतभेदा की चर्चा की है। स्फोट गण का उल्लेख श्लाघवार्तिक म और महाभाष्य म भी है।<sup>२</sup> इसलिए स्फोट सिद्धांत क मूल प्रवक्त आचार्य का अभी तक पता नहीं चला है। भत हरि के समय तक स्फोट स्फोटवाद का स्वरूप नहीं ग्रहण कर सका था। मल्लवादि क्षमाश्रमण न भत हरि के कई मता का उल्लेख किया है किन्तु स्फोटवाद का उल्लेख नहीं किया है। भत हरि की दृष्टि म स्फोट क स्वरूप पर हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं। महाभाष्य के बाद स्फोट की कुछ अधिक चर्चा वाक्यपदीय म होने के कारण स्फोटवाद का वाक्यपदीय म सङ्घ कर दिया गया है। वस्तुतः भत हरि स्फोटवाद के आदि आचार्य नहीं जान पड़ते। उन्होंने स्फोट की व्याख्या ध्वनि के प्रसंग मे की है और उसका आदि और अन्त ध्वनि से सम्बद्ध है। इसका अतिरिक्त उसके पीछे कोई रहस्य नहीं है। किन्तु कथं पुष्परज हलाराज जैसे मूढय विद्वान स्फोटवाद का स्रोत वाक्यपदीय म ही मानते हैं। जिन आचार्यों ने स्फोटवाद के खण्डन किए हैं उनका लक्ष्य भी भत-हरि ही जान पड़ते हैं।

अस्तु स्फोट का सम्बन्ध किसी न किसी रूप म व्याकरणदशम से है और

१ 'स्फोटोऽद्यन पारादण्य यव्य स स्फोऽद्यन स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्य'—पदमन्तरी ६।१।१२३ पृ० ४८६ 'वैयाकरण नागश स्फोटाद्यन ऋषेः मतम् मञ्जूसा पृ० १५७३

२ किन्तु क वैयाकरणा ने महाभाष्य को स्फोटप्रतिपादक अथ नहीं माना है— तदेतस्मिन् महा समुदायन सा वात् विमन्महे स्फोटाद्यभाववर्णनप्रतिपादन न काचित् सति सिद्धान्तरय वैयाकरणानाम्—महाभाष्यव्याख्या हर्षनलर मद्राम न० आर० ४४३६

अपेक्षाकृत अर्वाचीन व्याकरणदर्शन में स्फोटवाद का पर्याप्त विवेचन किया गया है। यदि पतञ्जलि से लेकर नागेश तक के स्फोट-माहित्य को सामने रखकर स्फोट पर विचार किया जाय तो निम्नलिखित रूप सामने आते हैं

- १—स्फोट ध्वनि रूप में।
- २—स्फोट शब्द रूप में।
- ३—स्फोट नित्य शब्द रूप में।
- ४—स्फोट जाति रूप में।
- ५—स्फोट वाक्य रूप में।
- ६—स्फोट शब्दब्रह्म के रूप में।

य भेद एक दूसरे से सवधा विभन्न नहीं हैं। केवल विज्ञान क्रम की दृष्टि में इन रूप में उल्लेख किया गया है। इनमें स्फोट के ध्वनि स्वरूप का विवरण महाभाष्य में है। पतञ्जलि ने स्फोट और ध्वनि में केवल यह भेद दिखाया है कि स्फोट ज्या का ल्यो रहता है जबकि वद्धि विस्तार ध्वनि से होता है। ध्वनि का आभास स्पष्ट होता है। जबकि स्फोट लक्षित नहीं होता

स्फोटश्च तावान एव भवति ध्वनिकृता वद्धि ।'

ध्वनि स्फोटश्च शब्दाना ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते ।

अल्पो महाश्च केषाचिदुभय तत स्वभावत ॥—महाभाष्य १।१।७०

महाभाष्य के इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्फोट और शब्द समा-नायक नहीं हैं। स्फोट ध्वनि के समूह ही शब्द का गुण है। स्फोट के ध्वनि रूप का स्पष्ट सकत महाभाष्य के इस वाक्य में है

अथधोमयत स्फोटमात्र निदिश्यते । रश्नुते लभ्यति भवतीति ।

—महाभाष्य भाग १ पृ० २० कीलहान सस्वरण

महाभाष्यकार ने र ध्वनि के स्थान पर ल ध्वनि का स्फोटमात्र कहा है। टीकाकारों में महा विवाद है। भक्त हरि के अनुसार स्फोट से अभिप्राय उसके ध्वनिहीन स्वरूप से है। अथवा आद्य ध्वनि केवल रूपमात्र का प्रत्यायक ध्वनि यहाँ स्फोट शब्द में विवक्षित है। जो स्वतंत्र है समुदायस्थ है और विशेष का प्रतिपादक है वह ध्वनि यहाँ विवक्षित नहीं है। अथवा र श्रुति और ल श्रुति में र्शपत साम्य (आरूपमात्र) है वही विवक्षित है। अथवा कायपत्र में सयोग से अथवा विभाग में अथवा सयोगविभाग दोनों से जो निष्पन्न होता है वह स्फोट है। करण-व्यापार स्फोट का निष्पादक है। अथवा स्फोटमात्र शब्द से आकृति अभिप्रेत है। ध्वनि के बिना आकृतिनिर्माण सम्भव नहीं है, अतः इन्द्रिय का उपादान नाशरीर्यक रूप में होता है

अध्वनिक स्फोट इत्युक्त भवति । ननु च ध्वनिमात्रेण स्फोटस्योपलब्धिरेव नास्ति । एव तर्हि य एवासौ आद्यो ध्वनि रूपमात्रस्य प्रतिपादकस्त्वावानेवा श्रीयते । यस्त्वसौ विनोपस्य प्रतिपादक य समुदायस्यो य स्वतंत्र इति नासावाश्रीयते । विद्यमानेऽपि तत्राविनोपे आरूपमात्र यथा गोविण्येऽश्वोपलम्बि राहूपमात्रेण योपलम्बि तस्मात् आरूपमात्रग्रहणमुभयो । अथवा कायवत

शुद्धिहृत्वा इदमुच्यते । तत्र वापपक्षे स्फोट एव सयोगात् विभागात् सयोग-  
विभागाम्ना वा निष्पद्यते । यत्वनुरणन तत गद्दत एव । तन य एवासी  
स्फोटस्य निष्पादक करणस्य ध्यापारस्तावत् एवाश्रयणम् । अथवा स्फोट-  
मात्रमिति आकृतिनिर्देशो यमित्युक्तं भवति ।

—महाभाष्यटीपिका, पृष्ठ, ७६

अपने इही विचारा नो भत हरि ने वाच्यपत्नीय म भी कुछ विस्तार स लिया  
है ।<sup>३</sup> अनित्यपक्ष म प्रथम अथवा आदि म निर त गद्द का नाम स्फोट है जोस्थान  
करण आदि के सहारे स्वरूप ग्रहण करना है । नित्यपक्ष म मयागज और विभागज  
ध्वनिया से उद्भूय स्फोट है

‘अनित्यपक्षे स्थानकरणप्राप्तिविभागहेतुक् प्रथमानिनिषत्त य गद्द स  
स्फोट इ युच्यते । नित्यपक्षे तु सयोगजविभागजध्वनिष्यङ्ग्य स्फोट ।

—वाक्यपदीय १।१०२ हरिवृत्ति प० १०

एसा जान पडता है सग्रहकार ने प्राकृतध्वनि और स्फोट को समान माना  
था । भत हरि न प्राकृतध्वनि का स्फोट का परिच्छेदक माना है । उनक अनुसार  
प्राकृतध्वनि स्फोट का व्यञ्जक भी है । भत हरि के अनुसार करण-सघात स जो ध्वनि  
उत्पन्न होती है और उससे जो ध्वनि उत्पन्न होती है वे दोना प्राकृत ध्वनि हैं । इन  
दोना से विशेष (शब्दस्वरूप) की उपलधि होती है । जो ध्वनि ध्वनि से उत्पन्न  
होती है वह वकृत ध्वनि है । उससे विशेष की उपलधि नहीं होती

‘य करणसनिपातादुत्पद्यते यश्च तस्मात् तौ प्राकृतौ । ताम्ना विशेषोप-  
लधि । यस्तु ध्वनितौ ध्वनिरुत्पद्यते स वकृत । ततो विशेषाभावात् ।

—महाभाष्यटीपिका प० ४६

सभवत सग्रहकार ने शब्द क नित्य रूप को सामान न रखकर गद्द के सामान्य विचार  
से प्राकृत ध्वनि और वकृत ध्वनि का विवेचन किया था और प्राकृत ध्वनि को  
गद्द का ग्राहक माना था । प्राकृत ध्वनि के बिना स्फोट की अभिव्यक्ति न होने से  
प्राकृत ध्वनि का कान ही स्फोट का काल मान लिया गया था । भत हरि ने इसे  
उपचार रूप म स्त्रीकार किया था

स च प्राकृतध्वनिकालो व्यतिरेकाग्रहणादध्यारोप्यमाण स्फोटे स्फोटकाल  
इत्युपचयते शास्त्र ।

—वाक्यपदीय, १।७७ हरिवृत्ति

किन्तु भत हरि ने भी स्पष्ट रूप से स्त्रीकार किया है कि स्फोट की उपलधिसदा  
ध्वनि से ससृष्ट रूप म ही होती है

३ भत हरि न पहले महाभाष्यत्रिगोले (टीपिका) की रचना का था । बाद म वाच्यपत्नीय लिया  
या । इसका संकेत उन्फ इस वाक्य म है—क्रमण तु वणतुरीयग्रहणे सति समुदयाभावात्  
अविषयवम त्यादा बुद्धे प्राप्तेनेति महिनामूत्रभाष्यविवरण बुधा विचारितम्—

—वाच्यपदीय १।२३ हरिवृत्ति

सभवत भाष्यटीपिका का मूल नाम भाष्यविवरण था ।

ध्वनिना तु समृष्ट स्फोटस्य स्वरूपमुपलभ्यते ।

— वाक्यपदीय १।७६ हरिवृत्ति ।

यह वाक्य इस तथ्य का निदर्शन है कि भक्त हरि का शब्ददान और स्फोटदान मध्या समान नहीं है। स्फोट ध्वनितिरपण नहीं है। शब्द भक्त हरि के मत में ध्वनितिरपण भी है उसका अन्त सनिवेशी आंतरिक बौद्धिक रूप भी है। अवश्य ही इस विषय में विवाद के लिए स्थान है। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भक्त हरि ने शब्द ग्रहण की प्रक्रिया में प्रसंग में ही स्फोट पर विचार किया है। शब्दग्रहण की प्रक्रिया से शब्द का स्वरूप स्पष्ट है। अतः स्फोट और शब्द का परस्पर पर्याय के रूप में प्रयोग जगत् तथा वाक्यपदीय में मिल जाते हैं।<sup>४</sup> इसी तरह शब्द और ध्वनि शब्द का पर्याय के रूप में प्रयोग महाभाष्य और वाक्यपदीय में मिलते हैं।<sup>५</sup> किन्तु इसमें अन्तर्निष्पन्न निकटतम युक्तिसंगत नहीं है कि इनका स्वरूप भी एक है। अक्षरस्फोट, सखणस्फोट, निरवयवस्फोट, बाह्यस्फोट आदि शब्दों के स्पष्ट अन्तरेण वाक्यपदीय में नहीं है। दूसरे लक्षणा में शब्द और स्फोट को एक समझकर शब्दनित्यत्व के स्थान पर स्फोटनित्यत्व जैसे शब्दों के प्रयोग आरम्भ हुए हैं।<sup>६</sup> अवश्य ही भक्त हरि ने स्फोट को ध्वनि से व्युत्पन्न माना है, उस एक माना है और स्फोट की आत्मा को नित्य माना है। किन्तु बहुत ही सावधानी के साथ उन्होंने शब्दत्व को स्फोटत्व से अलग रखा है। भक्त हरि ने शब्दत्व शब्द के स्थान पर स्फोटत्व शब्द का व्यवहार नहीं किया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से शब्द और स्फोट के भेद पर विचार नहीं किया है। ध्वनि में जो व्युत्पन्न है वही स्फोट है वही शब्द है। किन्तु स्फोट शब्द का एक पहलू एक पक्ष मात्र है। शब्द का एक स्फोटात्मक रूप है और उसका एक रूप स्फोटस्वरूप से अधिक गहराई में है। भक्त हरि का शब्ददान स्फोट से परे प्रतिभा के तल तक जाता है। अक्षेप में एक स्थान पर शब्ददान का चित्र उन्होंने दे दिया है

इह द्वौ शब्दात्मानौ नित्य कायश्च । तत्र कार्यो व्यावहारिक पुरुषस्य  
धागात्मान प्रतिबिम्बोपग्राही । नित्यस्तु सवयवहारयोनि सत्तत्त्वम्,  
सर्वेषामन्त सनिवेशी, प्रभवो विकाराणाम्, आश्रय कर्मणाम् अधिष्ठान  
मुखदुल्लयो सवत्राप्रतिहतबाधशक्ति घटादिनिवृत्त इव प्रकाश परिगृहीत  
भोगक्षत्रावधि सवमूर्त्तानामपरिणामा प्रकृति सवप्रबोधरूपतया सवप्रमेद  
रूपतया च नित्यप्रवन्तप्रत्यवभासस्वप्नप्रबोधानुकारी प्रवृत्तिनिवृत्तिपदाभ्या  
पञ्चयवद दाधाग्निवच्च प्रसवोच्छेदशक्तिपुवत सर्वेश्वर सवशक्ति महान्  
शब्दपत्न ।

— वाक्यपदीय १।१३ हरिवृत्ति १

४ जैसे, प्राकृतस्य ध्वने काल शब्देऽयुत्पन्न वाक्यपदीय, १।७।

५ 'त्रोत्रे ध्वनि शब्द इ युत्पत्त'—महाभाष्य, कौनखान संस्करण भाग १, पृ० १ 'न भेदो ध्वनि शब्दयो ।

६ भक्त हरि का यह प्रसृत वाक्य महाभाष्य के मन्त्रत गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है और वाक्यपदीय को शैली के पुरुरूप समझे देखे जा सकते हैं।



इस प्रघटक में शब्द को नित्य, सभी व्यवहार का मूल, सहतत्रम अन्त सनिवर्गी, विकार सट्टिक्रम का उत्पत्तिस्थान वम के आश्रय, सुख दुःख का अधिष्ठान आदि कहा गया है और उसे सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान के रूप में व्यक्त किया गया है। भत हरि ने स्फोट के लिए इस तरह की शब्दावली का प्रयोग नहीं किया है। अस्तु, वाक्यपदीय में व्यवहृत स्फोट स्फोटवाद के ध्वनिसम्बद्धरूप को प्रमुख रूप में व्यक्त करता है। स्फोट के भेद जैसे वणस्फोट, पदस्फोट और वाक्यस्फोट इनका भी परिच्छेद भत हरि ने ध्वनि के आधार पर ही किया है

धणपदवाक्यविषया हि विशिष्टा प्रयत्ना तत प्रेरिताश्च वायव स्थानाय मिहति ।

—वाक्यपदीय, १।८६ हरिवर्ति

अर्थात् वण, पद और वाक्य ध्वनियों के प्रयत्न सापेक्ष इकाई मात्र है। इनका विभाग ध्वनि के परिच्छिन्न स्वरूप पर निर्भर करता है। भत हरि के शब्दों में वण स्फोट पदस्फोट और वाक्यस्फोट ध्वनि के अपचित और उपचित अवस्था से संबद्ध हैं

सव एव प्रचिताप्रचितरूपा धणपदवाक्यस्फोटा ।

—वाक्यपदीय १।१०२, हरिवर्ति

भत हरि ने भागण्त् और निर्भागण्त् का व्यवहार किया है। ये दोनों शब्द क्रमशः सखण्ड स्फोट और अखण्डस्फोट (निरवयवस्फोट) के आदि रूप हैं। भागण्त् का सिद्धांत भेदवादियों का है। निर्भागण्त् का सिद्धांत जातिस्फोट मानने वालों का है। भेदवादी प्राचीन मीमांसक थे जो शब्द को नित्य मानते थे किंतु शब्द में भाग स्वीकार करते थे। उनके मत में गो शब्द में गकार उकार और विसर्जनीय हैं। इनसे अतिरिक्त वणश्रावक कोई अन्य धर्म गो शब्द में नहीं है और न इसके पीछे निर्भाग जसा कोई दर्शन है। उपवय इसी मत को माननेवाले थे। वे वण को ही शब्द मानते थे।<sup>१०</sup> इस मत में कुछ विप्रतिपत्तियाँ का निर्देश भत हरि ने स्वयं किया है और उनका समाधान भी दिया है। भागपक्ष में पण के स्वरूप का अवधारण ठीक से नहीं हो सकेगा क्योंकि धर्म से अभिव्यक्ति दण्ड में वणतुरीयाण की अभिव्यक्ति अण्यपण्य हान के कारण ठीक से नहीं हो सकेगी। वपक्ष में अनुगार वणतुरीय ध्वनि अण्यपदय इमल्लि भानी जाती है कि ध्वनि अण्यपक्ष की काष्ठा तक पट्टुवाई गयी रहती है। वणतुरीयाण की अव्यपदेश्यता उमरी मीमांसकों की परिचान न हान के कारण भी मानी जा सकती है। कौनसी अन्तिम ध्वनि है इसका निर्णायक भाग पक्ष में प्रमपक्ष में कोई बन्धु नहीं है। इसी आधार पर अण्यपक्ष की परिचान न होने के कारण अन्त्यध्वनि परिच्छेद का विषय भा नहीं हो सकता अर्थात् वहाँ से वहाँ तक दण्ड मानी जाय इत्येव निर्णायक विगी तत्त्व के न होने के कारण शब्द के स्वरूप का परिच्छेद सम्भव नहीं हो सकेगा। यदि एक गाय, दुग्धपत्र मभी वणों (अवयवों)

की अभिव्यक्ति मानी जायगी गवे, वेग तेन, न ते, आदि शब्दों में श्रुतिभेद नहीं मानना पड़ेगा। इसका समाधान भत हरि ने भेदवाद की दृष्टि से अर्थात्तर के आधार पर शब्दात्तर की कल्पना के सहारे किया है। शंकराचार्य ने पिपीलिका पवित के उद्दान्त के आधार पर समाधान किया है। पिपीलिका क्रम से चलती है फिर भी देखने वाले के मन में एक पक्षित का भाव करा देती है। वही तरह क्रम के आधार पर प्रवर्तित वण भी पद शुद्धि जगा दते हैं। वणों के अविशेष होने पर भी अमविशेष के आधार पर पदविशेष का अवधारण हो जाता है।<sup>८</sup> अभिव्यजक ध्वनित्रय के आधार पर भेद की प्रतीति के लिए भत हरि ने मण्डूक्यसा आदि स प्रज्वलित दीप से मण्डू आदि स सप आदि की प्रतिपत्ति का उद्दान्त दिया है। जो शब्दात्मा को निर्भाग मानते हैं उनक लिए भागभेद प्रकल्पित उपाय मात्र है वास्तविक नहीं है।

—वाक्यपदीय १।६३ हरिवृत्ति

शब्द के निर्माण पण के समयक जातिस्फोट का आश्रय गते है। वे शब्द की नित्यता आकृतिनित्यता के माध्यम से मानते हैं। जातिस्फोट स अभिप्राय शब्दाकृति से है। उनके अनुसार स्फोट शब्द स शब्द की आकृति का ही बोध होता है। शब्दाकृति शब्दत्व स भिन्न है। दोनों में भेद यह है कि शब्दात्त्व सबशब्दसाधारण है जबकि शब्दाकृति का सम्बन्ध शब्दविशेष के रूप स है। शब्दाकृति क्रम से उत्पन्न एक साथ न होनेवाले वणों के आश्रय स अभिव्यक्त होती है। उसके उपलब्धिनिमित्त सस्कार कल्पित हात है। इस मत में शब्दशक्ति उत्पन्न होती है किन्तु स्वयं अश्रयपदेश्य है। फिर भी व्यपदेश्य स्फोट का धोतन करती है और उस दसा स शब्दशक्ति का नाम ध्वनि हो जाता है (वाक्यपदीय १। ४ हरिवृत्ति)।

कुछ आचार्यों न माना है कि शब्दशक्ति अकार है। शब्दशक्ति भी नित्य है। शब्द की अभिव्यक्ति स ध्वनि निमित्त मात्र है। किन्तु ध्वनिगत अकार से शब्द भी अनुरजित रहता है। जस प्रकाशगत धम से वस्तु अनुरजित रहती है। वपभ क अनुसार इस मत स आकाशगत एक स्फोटवण है। करण के अभिघात से ध्वनि भेर होता है, वह ध्वनिभेद स निमित्त है किन्तु उससे वास्तविक भेद नहीं होता।<sup>९</sup>

ध्वनि स शब्द (स्फोट) की अभिव्यक्ति हाती है। किन्तु एत सभाववादी सप्रदाय था जो शब्द की अभिव्यक्ति का स्वीकार नहीं करता था।<sup>१०</sup> अभाववादी क प्रथम विकल्प के अनुसार शब्द की अभिव्यक्ति नही हाती। अभिव्यक्ति क लिए समान

८ अत्राह—यदि वणः श्व मानस्यनेके बुद्धिद्विषय आगपदमानः पण रसुरतना जारा राणा अपि पिक इत्या दपु पदविशापप्रत्यसिन स्थान। त एव वणः इतरत्र क्तरत्र च प्रत्यदनाम त श्नि। अत्र वणम—सत्त्वपि समन्तवणप्रयवमर्शे यथा क्रमानुरोधिच एव [पिपीलिका पविनशुद्धिमारोहनि एव क्रमानुरोधिच एव वणः। पदुद्धिमारोहसन्ति।—शाकर भाष्य १।३। ८।

९ वपभ, वाक्यपदीय १।६५

१० आन दवधन से ध्वनि क अभाववादिता क भी तीन दिष प दिष हैं। आनश्रवण के विशर क आधार भत हार शरा उद्दिशित अभिव्यक्ति क विषय में आन तरह क अभाव ज्ञान पदते हैं।



आदश म मुख का प्रतिबिम्ब उभय त्रिसाई देता है और उनन दण म निम्न त्रिवाई देता है । यहाँ सस्या भेद है । खडग म प्रतिबिम्बदीघ होता है । यह प्रमाणभेद है । प्रियगु तल म प्रतिबिम्ब श्याम दिखाई देता है । यह वणभेद है । बिम्ब एव और अभिन है फिर भी अभिव्यजक व राग से अनुरजित होकर विभिन जान पड़ता है । स्फोट भी अभिव्यजक भेद से भिन जान पड़ता है । भत हरि प्रतिबिम्ब दशन के उस पक्ष को माय नही समझन जिसके अनुसार बिम्ब से प्रतिबिम्ब भावान्तर स्वतंत्र सत्ता रक्वता है । क्योंकि विरुद्ध परिणाम वान वज्र (हीरा) आशतल आदि म पवत के सह्य भावा की उत्पत्ति सम्भव नही है । इसलिये गण की अभिव्यक्ति होती है । और वणस्फोट पस्फोट तथा वाक्यस्फोट म भेद वृत्तिभेद के आधार पर होता है । सबथा स्फोट की अभिव्यक्ति होती है ।—वाक्यपदीय, १।६७ १०१

अभाववादिया व सदन ही एक ऐसा भी वण था जो गण की अभिव्यक्ति तो मानता था किन्तु अभिव्यक्ति को अनित्य का समाधर्मा मानता था फलतः साद को अनित्य मानता था । उनके मत म अनित्य घट आदि का प्रतीप आदि म अभिव्यक्ति दखी जाती है । गण भी घट की भांति अभिव्यग्य है । अतः वह भी घट सत्ता अनित्य है । यदि गण की अभिव्यक्ति नही स्वीकार की जाती तो शण की उत्पत्ति माननी होगी । और उत्पत्तिपक्ष म भी गण (स्फोट) अनित्य ही होगा । इसका समाधान यह है कि यह नियम नही है कि जो अभिव्यग्य होत है वे अनित्य ही होत है । व्यक्ति स जाति अभिव्यग्य है । फिर भी जाति नित्य है । जो जाति की सत्ता नही मानत उनके लिए यो तक निया जाता है—जिस तरह से अनि यवादी नित्यत्व को जगाकार न कर अनेकानिक दोष का परिहार करना है उमी प्रकार अभिव्यक्तिवाणी भी जाति को नित्य मानकर व्यतिरेकासिद्धि का आश्रय लेता है ।—वपभ वाक्यपदीय १।६६

जो लोग गण (स्फोट) की अभिव्यजना स्वीकार करते थे उनम भी अभिव्यक्ति की प्रक्रिया के विषय म दो त्रिकशन थे अर्थात् दो प्रकार स तीन तीन वाद थे । इह मत हरि ने 'वादा त्रयोऽभिव्यक्तिवादिनाम ११ और अथापरे भिव्यक्ति वादिना त्रयो दशनभेदा १२ के रूप म व्यवहृत किया है । प्रथम तीन वाद क अनुसार त्रमश ध्वनि से इन्द्रियसत्कार ध्वनि से गण मस्कार ध्वनि स शब्द इन्द्रिय उभय सत्कार होते हैं । द्वितीय तीन वाद के अनुसार त्रमश स्फोट से अभिव्यक्त रूप म ध्वनि का ग्रहण अगुह्यमाण रूप म ही ध्वनि अभिव्यजक, ध्वनि का स्वतंत्र रूप म ग्रहण—य अभिव्यक्ति के प्रकार हैं ।<sup>१३</sup>

अभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे एक तीसरा भी त्रिक वाद है जा अभिव्यजक के आधार पर है । एक के मत म स्फोट का यजक ध्वनि है । दूसरे मत मे स्फोट का व्यजक ध्वनिजय वाद है । तीसरे मत म ध्वनि से स्फोट आविर्भावकाल से ही सहज

११ वाक्यपदीय, १।७६

१२ वही १।८२ हरिवृत्ति ।

१३ इनके विवरण इस ग्रन्थ क द्वितीय अध्याय में दिये गये हैं ।

वाक्य से घंटा ही सम्बद्ध रहता है जिस वाक्य से पुष्प

नित्यपक्षे तु सद्योग विभागजध्वनिष्यङ्गम्य स्फोट ।

एकेषां सद्योग विभागजध्वनिसंभूतनादाभिष्यङ्गम्य ।

इह केचिदाचार्या ध्वनत् स्फोट सहजनेन ध्वनिना सद्यतो दूरव्यापिना प्रजा  
शस्यानीयेन वाच्येन मुक्त द्रव्यविभाषमिवाविर्भावकाल एव सद्य मयन्ते  
ध्वनिना ।

— वाच्यपत्नीय हरिवर्ति, १।१०३, १०५

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनु हरि के मत में ध्वनि और  
स्फोट अत्यन्त समीप की वस्तु हैं । स्फोट एवं तरह से वाचक शब्द के लिए व्यवहृत  
हुआ है और उसके पीछे कोई उपनिषद (रहस्य) नहीं है ।

कण्ठ ने भत हरि के मत का, ध्वनन ढग से यो साराग दिया है— 'व्याकरण  
वर्ण से व्यतिरिक्त पद अथवा वाक्य में वाचकत्व मानते हैं । प्रत्येक वर्ण में वाचक  
मानने पर द्वितीय आदि वर्णों के उच्चारण अनयक होंगे । प्रत्येक वर्ण के अनयक  
मानत हुए भी वर्ण के समुदाय में वाचकता मानने पर भी काम नहीं चलगा । समुदाय  
के उत्पत्तिपक्ष में दोष है क्योंकि समुदाय की युगपत् उत्पत्ति नहीं होती । समुदाय के  
अभिप्रेतपक्ष में वर्णों की क्रम से अभिप्रेत होगी कलत पूरे पद का आवलन नहीं  
हो सकेगा । वर्णों में एक स्मृति उपारूढ रूप में वाचकता मानने पर सर ' रस जैसे  
स्थिता में अथविशेष की प्रतिपत्ति में बाधा पडने लगेगी, दोनों पदा से समान अर्थ  
भलकने लगेंगे । इसलिए वाक्यपदीय में वर्ण से व्यतिरिक्त नाद से अभिव्यक्त स्फोट  
का वाचक रूप में प्रतिपादित किया गया है (महाभाष्यप्रदीप पस्पगाह्निक पृ० १२  
गुरुप्रसादशास्त्री संपादित) ।

नागेश के अनुसार पद अथवा वाक्य का एकाकारक ज्ञान स्फोट की सत्ता और  
उसके ऐक्य में प्रमाण है । अनुभव क्रम से ही वर्णों की स्मृतिरूढता में, नागेश के अनु  
सार ऋड प्रमाण नहीं है । क्रम से अनुभूत के युक्तम रूप में भी स्मृति देखी जाती  
है

इदमेक पदम एक वाक्यमिति प्रत्यय, स्फोटसत्त्वे तदव्ये च प्रमाणम् ।

— महाभाष्यप्रदीपोद्योत पस्पगाह्निक पृ० १३

नोज न भी वाचक ध्वनिसमूह को ही स्फोट नाम दिया है और प्रकृत्यादि  
स्फोट पदस्फोट और वाक्यस्फोट के रूप में उसके प्रभेद किए हैं

प्रकृतिप्रत्ययादिवर्णजनितध्वनिसमूहोऽभिष्यङ्गस्फोटलक्षण अर्थात्मा अर्था  
वसायप्रसवनिमित्त शब्द । तदविशेषादथ प्रकृत्यादिस्फोट, पदस्फोटो वाक्य  
स्फोट इति ।

— शृंगारप्रकाश पृ० १२५

## स्फोट शब्द रूप में

शब्द रूप में स्फोट का प्रथम उल्लेख किसी श्लोकवार्तिककार ने किया है—

‘स्फोटो गणो ध्वनिस्तस्य व्यापार उपजायत ।’<sup>१४</sup>

गण का आकारग्रहण बुद्धि में होता है। महाभाष्यकार ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है जिसमें शब्द का पौषाण्य बुद्धिगत माना गया है। प्रेक्षारोपी मनुष्य पहले प्रपत्नी बुद्धि में ही श्रवण की दृष्टि से गण का शब्द की दृष्टि से वण का आकलन कर लेता है। ये सभी व्यापार बौद्ध होने हैं।

बुद्धौ कृत्वा सर्वादिष्टा कर्ता धीरस्तत्त्वतीति ।

गणदेनार्थान् वाच्यान् कृष्ट्वा बुद्धौ कुर्यात् पौर्वापयम् ॥<sup>१५</sup>

भक्त हरि ने भी गण के स्वरूप का अवधारण बुद्धि में माना है। अथ ध्वनि परिपाक-प्राप्त बुद्धि में शब्द के स्वरूप का सन्निवेश करती है। किसी क मत में शब्दाकृति का सन्निवेश हाता है। इसमें भी दो तरह के मत हैं। एक गण में कई वण होते हैं। वक्ता उनका उच्चारण प्रथम से करता है। अत्यवण के उच्चारण के बाद एक विशेष सस्कार या नान उत्पन्न होता है। इस नान का अत्यवर्णाबलम्बन ज्ञान कहा जाता है। इसे अन्त्यबुद्धि भी माना जाता है। पूर्व के वर्णों में भी कुछ न कुछ सस्कार होना परन्तु वह सस्कार धुंधला होना है अथवा अस्पष्ट होता है। अत्यवणज-ज्ञान पूर्ववणज-य-ज्ञान की महायता से जाति का आहूक होता है। दूसरा मत अत्यवणनान का महत्त्व नहीं देना। उसके अनुसार सभी वर्णों से बुद्धि में सस्कार होता है। अत्यवण के नान के बाद जातिप्राहक नान उत्पन्न होता है।

अत्रानेक दशनम् । केचिन मन्यन्ते अत्यवर्णाबलम्बन यत् ज्ञान तत् पूणवण-ज्ञानाहितसस्कारसहाय जाते प्राहकम् । अपरे मन्यन्ते अत्यवणज्ञानसहित सर्वैरेवपूववणज्ञान सस्कारारम्भ । अत्यवणज्ञानान्तर तु जातिप्राहक ज्ञान मुत्पद्यते ।

—वचन वाक्यपदीय १।२३, पृ० ३३

महाभाष्यकार ने भी गण का बुद्धिग्राह्य माना है।

श्रोत्रोपलब्धि बुद्धिनिर्ग्राह्य प्रयोगेणामिज्वलित आकाशशब्देन शब्द ।

— महाभाष्य पस्पशाह्निक

कथं ने बुद्धिनिर्ग्राह्य गण का अभिप्राय भक्त हरि के आधार पर ध्वनिजय सस्कार से परिपाकप्राप्त अन्त्यबुद्धिनिर्ग्राह्य माना है।

पूर्वपूर्वध्व-युत्पादितामिज्वलितजनितसस्कारपरम्बराप्राप्तपरिपाकात्यबुद्धि निर्ग्राह्य इत्यथ ।

—कथं महाभाष्यप्रदीप प० ६५ गुम्प्रसाद गान्धी संपादित

१४ वाक्यपदीय १।२३ हरिवंशि में अनुनयवाक्य के रूप में उद्धृत।

१५ मन्त्रभाष्य १।४।१०६

अभिनवगुप्त ने भी, व्याकरणम् की दृष्टि में, वाक्यस्फोट को बुद्धिनिर्वाह्य माना है

वाक्यकरणपि वाक्यस्फोटस्य प्रायज्ञ बुद्धिनिर्वाह्यत्ववद्विगता ।<sup>११</sup>

हलाराज ने भी अभ्यास व आधार पर स्पृष्ट स्पृष्टतरूप में चरम बुद्धि में स्फोट तत्त्व की भन्न मानी है और गतत्व को ही जातिस्फोट के रूप में दा में विभक्त स्वीकार किया है

चरमचेतसि चकास्ति रत्नतत्त्वयत स्फाटतत्त्वम गतत्वव जातिव्यक्तिभेदन भिन्न स्फोटस्वभावमवाङ्गीकृतस्यम ।

—हलाराज वाक्यवर्णीय ३ जानिसमुद्दे ६

वणस्फोट पस्फोट और वाक्यस्फोट तीनों का बुद्धि में अध्यारोप प्रयत्नविशेष से उदनुद्ध ध्वनियो द्वारा होता है

वणपदवाक्यविषया प्रयत्नविशेषताया ध्वनयो वणपदवाक्यपदान स्फोटान पुन पुनराविर्भावमतो बुद्धिध्याध्यारोपयति ।

—वाक्यपदीय हरिवत्ति १।८३

गत् की बुद्धिनिर्वाह्यता और उसकी वाचकता के आधार पर गत् को स्फोट माना जाता है । इस दृष्टि से स्फोट गत् की उत्पत्ति स्पृष्टत्यर्थो यस्मात्—इम रूप में की जाती है ।

### स्फोट शब्दनित्यत्व के रूप में

भत हरि ने गत् के निरवयव दशन पर प्रकाश डाला था । और उसके एक निर्विभाग नित्यस्वरूप की भी चर्चा की थी । ऐसे प्रसंगा में भत हरि ने स्फोट गत् का व्यवहार नहीं किया है । किंतु पुण्यराज जैसे टीकाकारों ने ऐसे स्थलों में गत् और स्फोट को एव माना है । पुण्यराज ने स्फोट के दो भेद किए हैं—बाह्य और आन्तरिक । पुन बाह्य स्फोट के दा में किए हैं—जातिस्फोट और व्यक्तस्फोट ।<sup>१२</sup> शब्द का एक अनवयव स्वरूप पुण्यराज के अनुसार व्यक्तस्फोट का प्रतीक है ।<sup>१३</sup> सघातवर्तिनी जाति जातिस्फोट का प्रतीक है । भत हरि ने जिस बुद्धयनुमहारलक्षण आन्तरिक गत् कहा है उस ही पुण्यराज ने आन्तरिकस्फोट माना है ।<sup>१४</sup> और एव अखण्ड व्यक्तस्फोट अथवा जातिस्फोट को सिद्धांत रूप में, वाचक के रूप में स्वीकार किया है

एक एव त्रय्य यदभिपद्यतेऽखण्डो व्यक्तस्फोटो जातिस्फोटश्च वाचको ऽङ्गीकाय इति सिद्धांत । —पुण्यराज वाक्यवर्णीय २।२६

११ अथ प्रत्यभिज्ञाविवक्तिविमर्शनी भाग २ पृ० ६८८

१२ १४ २२२ द्विविध वाक्य आन्तरिक इति । वाङ्मयि जातिव्यक्तिभेदन द्विविध ।—पुण्यराज ७ वाक्यवर्णीय २।१

१३ अन्तर्गत अनवयव शब्द 'बुद्धिमय' यदित्येत्येव स्वरूपमुक्तमिति वाङ्मय ।—पुण्यराज वाक्यवर्णीय २।१८

शब्दनित्यत्व के पक्ष में शब्दस्य न विभागोऽस्ति २० नित्येषु तु कृत पूर्वम २१ जैसे भूत हरि के कई वक्तव्यों को स्फोटवादिया ने स्फोट के पक्ष में ले लिया है। स्फोटवाद के कतिपय समीक्षका न भी स्फोट का स्पष्टन शब्दनित्यत्व के खण्डन के आधार पर किया है।

## स्फोट जाति रूप में

किसी आचार्य ने शब्दनित्यत्व का आधार आकृतिनित्यत्व माना था। उनके मत में स्फोट शब्दका वाच्यशब्दाकृति है। शब्दाकृति शब्दत्वसे भिन्न है, शब्दाकृति शब्दयन्त्रि (ध्वनि) से अभिन्नय्य मानी जाती है। शब्दयन्त्रि उत्पन्न होनेवाली श्रौर स्वतंत्र प्रपदेश्य होती है किन्तु व्यपदेश्य रूप स्फोट के धोना होने के कारण ध्वनि सत्ता पाती है। वह स्फोट शब्दाकृति है। इसी शब्दाकृति को भूत हरि ने दशनभेद के आधार पर अनेकपक्षित से अभिव्यग्य जाति माना था और उसे स्फोट के रूप में निरूपित किया था। २२ किन्तु बाद में स्फोट का जाति से, विशेषकर सत्ताजातिवाद से संबंध कर दिया गया। मायण ने जातिस्फोट का उल्लेख 'परमावसवितलक्षणसत्ताजाति' के रूप में किया है। २३ इस मत में सभी शब्दों का अर्थ सत्ता लक्षण जाति है। उपरजक द्रव्य से स्फटिक की तरह सबधिभेद से सत्ता में भेद प्रतिभासित होता है। इसीलिए सभी शब्द पर्याय नहीं हो पाते। गो अक्षर आदि में सत्ता ही महासामान्य है। गोत्वादिक अपरसामान्य महासामान्य से भिन्न नहीं हैं। सभी शब्द वाचक रूप में उन्हीं सत्ता में अवस्थित हैं। प्रातिपदिकाय भी सत्ता ही है। भाव भी सत्ता है। त्व तल आदि भावप्रत्यय से वही सत्ता व्यक्त की जाती है। त्रिया भी जाति है। वह सत्ता निय है। उसमें ह्रास अथवा विकास नहीं होना। वह देण काल अथवा वस्तु के परिच्छेद से रहित है और इसी लिए उसे महानात्मा कहा जाता है

सम्बधिभेदात्सत्तय भिद्यमानापवादिषु ।

जातिरित्युच्यते तस्यासर्वे शब्दा व्यवस्थिता ॥

ता प्रातिपदिकाय च घात्वय च प्रचक्षते ।

सा नित्या सा महानात्मा तामाहुस्तत्सत्तादय ॥

—वाक्यपणीय ३ जानिसमुद्गे ३३, ३४

वाद के व्याकरण ने जातिस्फोट का ब्रह्म पद तक पहुँचा लिया है

तथा च शब्दस्यापि इव शक्तानेपि श्यायसाभ्येनाकृत्यधिकरणरतया बहूतस्त्वमेव तत्तदुपहित वाच्य वाचक च। अविद्यावदिक घमविशेषो वा जातिरिति

२० वाक्यपणीय २१३

२१ ध्वनी, २१००

२२ अनेकपक्षयनि यस्या जाति स्फोट इति गृह्णा।



पक्षे तु साय चाचिकास्तित्यत्पाह ।

—गणेशोन्मु ५० १०

कथं ने व्यवहारनित्यता के आधार पर वण-व् धातय स्फोट प्रपवा जातिस्फोट का नित्य माना है

तच्च ब्रह्मतस्य परमाथतो नित्यम् । व्यवहारनित्यतया वणपदवाक्यस्फोटानाम् नित्यत्वम् जातिस्फोटस्य वा ।

—महाभाष्यप्रतीप (भभञ्ज) ५० १४७ निगयसागर १२

नेपनारायण ने सखण्ड अखण्डभेद से पद वाक्य और व्यक्तिस्फोट का विभेन किया है । जातिस्फोट भी दो तरह का माना है और किसी धातय मत से वणस्फोट को भी जाति और "प्रतिभे" से दो तरह का माना है । इनमें वाक्यस्फोट और जातिस्फोट को अधिन महत्व दिया है । जातिस्फोट एव ही साय ब्रह्म और अत्रिया दोनों हैं

यद्यप्यत्रानेके स्फोटा प्रतिपादिता, तथापि वाक्यस्फोट एव परमाथ । तत्रापि जातिस्फोट इति । जानिश्च सर्वाधिष्ठानस्यरूपात्मक ब्रह्म व अविद्य व चति ।

मूवितरत्नाकर हस्तलेख

नेपनारायण के मत में वणान्तप्रसिद्ध ब्रह्म और स्फोटब्रह्म में केवल यही अंतर है कि वेदान्त में वण निमित्तकारण के रूप में (सृष्टि के लिए) गृहीत है जबकि व्याकरण में उपादान कारण के रूप में माना जाता है

वेदातिभिरपि निमित्तकारणतय शब्दस्याभीष्टम् । अस्मानिस्तु उपादानत्वम् अभ्युपेयत इति विनोप ।

—मूवितरत्नाकर, हस्तलेख ।

## वाक् के रूप में स्फोट

आगमों में परा पश्यती आदि का संबध मूलाधार चक्र आदि से माना जाता है । भक्त हरि आदि ने तो परावाक का विवेचन नहीं किया है और न वाक का संबध चर-विशेष से जोड़ा है किन्तु बाद के कुछ व्याकरणों ने तत्र के प्रभाव के कारण परावाक को महत्व दिया है और वाक को तत्रप्रसिद्ध नादविन्दु के क्षेत्र में देता है । सायण ने किसी आगम के आधार पर लिखा है कि जब कोई व्यक्ति अभिलषित अथ व लिए गद्य का प्रयोग करना चाहता है इच्छावगजय प्रयत्न से मूलाधार में प्राणवायु का परिस्पन्द होता है । उस परिस्पन्द से मूलाधार में सूक्ष्म परावाक प्रकट होती है जो सबल गण समुदाय का कारण है और स्वयं निष्पन्न है । वही परावाक मूलाधार से उच्च नाभिदग में आकर पश्यती कहलाती है । वह सामान्यनानरूपा मानी जाती है । त्रिविध पन्थ के दानि के कारण उस पश्यती कहा जाता है । वही हृदयदेश में प्राप्त होकर मध्यमा कहलाती है । उसमें अथविनोप की भावना व्यक्त हो गई रहती है । मध्यदेश में अवस्थान के कारण उस मध्यमा कहा जाता है । वही वणरूप से कण्ठ तालु आदि स्थानों में व्यणित होती हुई वयरी कहलाती है । विनोप रूप से (वि) दूमरा का अवरोध करने में प्रचण (खर) होने के कारण उस वयरी कहा जाता है ।<sup>२४</sup>

<sup>२४</sup> अथर्ववेद, सायणभाष्य ७। सायण ने इन सत्रों में निम्नलिखित आगम उद्धृत किए हैं—

नागेश ने मध्यमा वाक्य की स्फोट का प्रतिनिधि माना है

‘तत्र मध्यमायां यो नादाश्च तस्यैव स्फोटोत्तमानो वाचकत्वेनाक्षति ।’

—मजूपा, पृ० १८०

उनके अनुसार प्रलयकाल में माया चेतन ईश्वर में लीन हो जाती है। एक तरह में मुक्त-भी अवस्थित रहती है। पुनः परमेश्वर में सिसृक्षात्मिका मायावृत्ति उदित होती है। उससे बिन्दु रूप अव्यक्त त्रिगुण उत्पन्न होता है। यही शक्ति तत्त्व है। उस बिन्दु का अक्षित अंग धीज है। चित अक्षित मिथ्य अक्ष नाद है। चित अंग बिन्दु है। अक्षित शब्द से अभिप्राय अविद्या से है जो शब्द और अक्ष उभय सस्काररूपा है। उस बिन्दु से चेतनमिथ्य नादमात्र उत्पन्न होता है। वह वण आदि विशेषान से रहित है पानप्रधान है और सृष्टि के उपयोगी अवस्थाविशेषरूप है। उसका दूसरा नाम शब्दब्रह्म है। वह जगत का उपादान है। उसे रव परा आदि शब्द से भी कहा गया है। वह प्राणी में सवगत होते हुए भी मूलाधार में सस्वृतपवन के चलन से अभिव्यक्त होता है। सस्वृतपवन से अभिप्राय पवन के सस्कार से है। पवन का सस्कार यत्ति की विवक्षा से जय प्रयत्न के योग से होता है। उससे अभिव्यक्त निष्पन्न शब्दब्रह्म परावाक कहलाता है। वही नाभिपय त पहुँचकर उस पवन से अभिव्यक्त पश्यती कहलाता है जिसका विषय मन है (मनोविषय)। परा और पश्यती ये दोनों सूक्ष्मतर हैं। इनके अधिदेवता ईश्वर हैं और ये समाधि में योगियों के निर्विकल्प और सविकल्प के विषय बनती हैं। पुनः हृदयप्रदेश में पहुँचकर उस पवन द्वारा हृत्प देग में अभिव्यक्त होकर वह मध्यमा वाक कहलाता है। मध्यमा में शब्द और उसके अक्ष का आकर स्पष्ट हो गया रहता है। उसका विषय बुद्धि है अथवा बुद्धि से वह ग्राह्य है (बुद्ध या विषयीकृता)। उसका देवता हिरण्यगर्भ है। मध्यमा भी सूक्ष्म है क्योंकि दूसरे के अधोन्द्रिय से अभी ग्राह्य नहीं है। किन्तु स्वयं दोनों कानों की वद कर सूक्ष्मतर वायु के अभिघात से सुनी जा सकती है और उपायुक्तप्रयोग में भी श्रुतमाण होती है। इस मध्यमा वाक में जो नादाश्च है वही स्फोट है।<sup>२५</sup> कलाटीकाकार वैद्यनाथ के अनुसार नादाश्च में अभिप्राय नाद से सम्बद्ध विमशक में है।<sup>२६</sup>

स्वरूपव्योतिरेकान् परावागनपायिनी,  
यस्या शब्दस्वरूपायामधिकार निवन्ते ॥  
अविभागेन वर्णानां सक्त्वा सप्ततन्त्रमा,  
प्राणाऽन्यान तु पश्यती मयूराण्डरसोपमा,  
मध्यमा बुद्ध्युत्पत्तानां वृत्तव्यपसिद्धिः ॥  
अन्तःसत्त्वरूपा तु न शोचसुपसपति ।  
तान्बोध्यन्त्यात्तु निव्यन्त्या परबोधप्रकारिणा ।  
मनुष्यमात्रमुलभा बाष्पा वाग वैरते मना ॥

२५ वैद्याकरणाभिधानमजूपा, पृ० १६८-१८०

२६ “नादारा —नादमवर्तिविमशकशब्दरूपेण । तथैव विमशकाशयाधर्य वाचकत्वमेव वदन्ति ॥” —मजूपा, कलाटीका पृ० १८०

शारदातिलक व लेखक सम्मणदण्डिबन्ध के अनुसार 'परमेश्वर स शक्ति उद्भूत होती है। शक्ति स नाद और नाद स बिन्दु उत्पन्न होता है। शक्तिमय परमेश्वर पुन तीन रूपा म विभक्त होता है। बिन्दु, नाद और बीज उगम तीन भेद हैं। बिन्दु शिव है। बीज शक्ति है। नाद शिव और शक्ति का मित्र रूप है। बिन्दु स रीती, नाद स ज्येष्ठा और बीज से वामा उत्पन्न होती है जो त्रयम शिव, ब्रह्मा और विष्णु के प्रतीक हैं। पर बिन्दु के स्फोट स रव उत्पन्न होता है। उस रव का आगमा म शब्द ब्रह्म कहा जाता है। अय विचारक शब्दाय का शब्द ब्रह्म मानत हैं। पुन कुछ अय आचार्य शब्द को ही शब्दब्रह्म मानत हैं। इन दोनो मता म जडत्व है। सबभूत म अवस्थित चतुर्थ को शब्दब्रह्म समझना चाहिए।<sup>१०</sup>

पश्यन्ती और स्फोट की एकता की भी चर्चा आगमा म है। यद्यपि भत हरि न वही स्फोट और पश्यन्ती की समानता का उल्लेख नहीं किया है फिर भी सोमानन्द न उनके ऐक्य की संभावना मानकर भी उनकी समीक्षा की है। उत्पल के अनुसार, स्फोटवादी पश्यती और स्फोट दोनो को नित्य मानत हैं। इस दशा म स्फोट और पश्यन्ती दोनो एक हो सकते हैं दोनो म केवल शब्द का भेद है। दोनो म भेद मानने पर द्वैत होता है। असत्य पद आदि से सत्य अथवा कूटस्थनित्य स्फोट की यजकता भी सिद्ध है। पश्यती और स्फोट के ऐक्य मानने पर प्राप्तवाक्यविचार और अनाप्त वाक्यविचार म भेद संभव नहीं हो सकेगा। दोनो प्रकार के वाक्या क सोन एक होने से दोनो मे पूणता माननी पडेगी। इसके अतिरिक्त पश्यन्ती और स्फोट दोनो मे बहुत्व मानना पडेगा (शिवदृष्टि, प० ७५ ७६)। पहले कहा जा चुका है कि ये विचार सोमानन्द के कल्पित हैं। वाक्यविचार के अन्वय पर कश्मीर शवागम और व्याकरण दशन दोनो की दृष्टि स पश्यती पर विचार किया जा चुका है। भत हरि ने अथवा किसी अय व्याकरण ने पश्यती और स्फोट की एकता का प्रतिपादन नहीं किया है।

### स्फोट शब्दब्रह्म के रूप में

भत हरि ने वाक्यपदीय के आरम्भ म शब्दत्व को अक्षर ब्रह्म के रूप मे निर्देश किया और उससे अन्वयरूप मे जगत का विवृत माना है। कुछ लोग इस शब्दत्व

२७ शारदातिलक, १।७—१३, शारदातिलक के टीकाकार राघवभट्ट के अनुसार शब्दाय सङ्ग शब्दाङ्ग से अभिप्राय आन्तरस्फोट से है और आन्तरस्फोट सिद्धान्त आचार्यों का है। शब्द सङ्ग शब्दब्रह्म मत वैचारकों का है।

एव आचार्यो शब्दाय आन्तरस्फोट शब्दब्रह्मेत्याहुः। यथाह—'निरश एवाभिन्नो नित्यो बोधरवभाव शब्दाथमय आन्तरस्फोट' इति। अपरे वैचारका एवपूर्वार्थोच्चारणाभिव्यक्त तन् तन् पदसंस्कारसहायचरमपदमहोदनुद वादयस्फोटलक्षण शब्दमखण्डैककायप्रकाराक शब्द ब्रह्मेति वदन्ति। यथाह—'एक एव नित्यो वाक्याभिव्यक्तोऽप्रत्ययो व्यक्तिस्फोटो वा बहीरूप इति।—शारदातिलक टीका, पृ० ११, तुलना कांक्षि—'इह निरश एवाभिन्नो यस्मिन् स्फोटो अनिरस्फोटो वा बहीरूप आन्तर शब्दाथमयो वा शुद्ध्यनुमहारो वाक्यमिति स एव वाचक उपपन्नः।'<sup>११</sup>

—पुरयत्न, वाक्यपदीय २।१६

को स्फोट मानकर स्फोट को गच्छब्रह्म कहल हैं। ऐसा जान पड़ता है कि किसी प्राचीन आगम के आधार पर भक्त हरि ने अभिधान रूप म विवत और अभिधेय रूप म विवत का संकेत किया है। इस प्रसंग म उन्होंने प्राचीन ग्रंथ से एक उद्धरण भी दिया है जिसका अभिप्राय यो है—

जो सब तरह की कल्पनाओं के आभास से भी नहीं आता उसकी तक, आगम और अनुमान के द्वारा अनेक प्रकार से कल्पना की जाती है। वह भेद और ससंग से परे है। उसमें न भाव है और न अभाव न क्रम है और न अक्रम। वह सत्य और अनन से भी परे है। वह विश्वात्मा केवल प्रविवेक से प्रकाशित होता है। वह भूता के अत म अवस्थित है। वह समीप भी है दूर भी है। वह स्वय अत्यंत मुक्त है। मुमुक्षु मोक्ष के लिए उसकी उपासना करत हैं जिस तरह ग्रीष्म के अत म शरद गूय आकाश में मेष भर देता है वैसे ही वह प्रकृतिगत विकारा को बिखेर देता है उत्पन्न करता है। उसका चैतन्य यद्यपि एक है फिर भी अनेक रूप म उसी तरह विभक्त हो जाता है जैसे उत्पात के अवसर पर समुद्र का जल (अङ्गाराङ्गित उदकम्)<sup>२७</sup> क। जैसे भारत से जल बरसाने वाले बादल उत्पन्न होते हैं वैसे ही सामान्य रूप म अस्थित उससे विकारमय व्यक्तियम व्यक्तियममूट उत्पन्न होत हैं। वह परम ज्योति तयी (वेत्) के रूप म विवर्तित होती है। और अनेक दशना म पथक-पथक रूप म दृष्टिभेद का आधार होती है। शान्तविधात्मक ज्ञानी का अंश है किन्तु वह अविद्या से प्रस्त हो जाता है। अविद्या अनिवचनीय है। उसके परिणमित रूपा का अन्त नहीं है। उससे प्रभावित व्यक्ति अपने आप म अवस्थित नहीं रह पाता। जिस तरह कोई व्यक्ति दृष्टिभेद के कारण विगुह्य आकाश का भी अनेक आकारों से चित्रित देखता है उसी तरह निविकार अमृत ब्रह्म भी अविद्या से आच्छन्न मति के कारण विकारयुक्त और विभक्त रूप म परिणमित दिखाई देता है। वह ब्रह्म शून्य है। जो कुछ है सब शब्द से निर्मित है। सबका मूल आधार शब्द है। गच्छमात्राओं से ही सबका विवत होता है और पुन गच्छमात्राओं म ही सबका लय होता है।<sup>२८</sup>

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि भक्त हरि ने किसी आगम के आधार पर शब्दविवत का प्रतिपादन करना चाहा था। कुछ लोग शब्दविवत म शब्द से प्रणव अभिप्रेत

२७ क 'अङ्गाराङ्गितमुत्पाते बारिदारिद्र्योदकम्' का अभिप्राय मिडसूरगणिविद्विद्यमात्रमण ने यो दिया है—यथा उदन्वनाम् शोयम उत्पातं अङ्गाराशिवन् प्रञ्जलपलदयते तथार्यानेकरूपता मिथ्यैव प्रकृतिवमिति—द्राक्षारानुषयक, पृ० ३००

२८ ब्रह्मेद शब्दनिर्माण शब्दशक्तिनिबन्धनम्।

विवत शब्दमात्रान्दन्तःशब्द प्रबिलीयते ॥

—वाक्यपदाय, १:१ हरिवृत्ति में उद्धृत।

शुभ ने इसका एक दूसरा अर्थ भी यो दिया है—

अथवा ब्रह्मेदमिति विकारप्राममाह, अन्यनिरैकान्। तत शब्दनिर्माणमिति, शब्दतत्त्व निर्माणं, तत निर्मितवान्। शब्दराविनिबन्धनमिति। शब्दराशयो वस्तुतया मते प्रतीयन्ते वा तत्रैवेति ॥<sup>२९</sup>

माना है। सभी दारु घोर सभी घष की प्रकृति दारु है। प्रकृति में स्वयं भी दृश्यविपर्यय व प्रतिपादन व घषगर पर प्रगट का कथन करता है।

निरय वृषिषीषाणु । वृषिषीषाणो वि तापम् । विराम्य । विरामे  
वि तापम् । ज्ञानम् । ज्ञाने वि तापम् । घोषम् । घष तद् कथम् ।<sup>२६</sup>

प्रणय सभी दारु घोर सभी घष की प्रकृति है। सभी माद गान्धारानुगा  
है। यन्तु ज्ञान दारुजातानुगत हाता है। सभी ज्ञान वाक रूप व अनुगा है। है।  
गान्धार घषण्या(घषण्येति घषण्या)म भी बाणी व गुरुम धम अनुगा रहता है।  
याद घष का सयप्रगम परिषय(गिणु का) यन्तु व स्वल्प माद व रूप म हाता है।  
यन्तुनिमित्त के टीका म परिज्ञान म हाता व कारण 'तत्' त्रैय भाष उगम म म हाता  
उठ पाते हैं। घष दारु का विषय है। दारुघट घोर दारु, 'म' दृष्टि म, तव है।

भोज व किसी घष घागम व घाघार पर दारु व घष्याम, विराम घोर  
विपरिणाम इन तीनों पत्रों म घष की उपपत्ति की है। दारु म भिन्न रूप म घषण्य  
की उपपत्ति नहीं होनी। घष (जगत्) दारु का घष्याम है। एक ही दारु घाट  
ग्राहक घोर सवित्त रूप म विपर्याय घषवा दृष्टिभू व कारण घषम घषण्य जा  
पड़ता है। परमाणुमय ज्यानिरूप दारु (सरस्वती) ज्ञान ज्ञान घोर गम रूप म  
प्रकट होता है।<sup>२७</sup> जैसे जल कल्पना रूप म नीलादि विष घाति रूप म विवर्तित हाता  
है, दारु घविद्या उपाधि के सहारे भिन्न भिन्न रूप म विवर्त प्राप्त करता है। मात्र  
के अनुगार जस दारु स घष क विषय का प्रतिपादन किया जाता है वम ही घष म  
दारु के विवर्त की प्रथिया निर्गई जा सकती है। किन्तु दारुगह्य प्रकाश की महत्त्व  
देने के लिए 'तत्' स घष का विवर्त दिग्वाया जाता है। भोज की दृष्टि म घषिधीय  
मान घष व अतिरिक्त प्रतीयमान घष की सिद्धि व लिए 'तत्' व विपरिणाम पर की  
अगीकार करना चाहिए। जैसे मिट्टी स घट, शीर स दधि, पात्र स यौवन विपरिणाम  
के प्रतीक हैं उसी तरह दारु घट्ट स, घविद्या उपाधि व सहारे घष रूप म विपरिणाम  
होता है।<sup>२८</sup>

- २६ महामाध्ययीपिका पृ० २६ (पूना संस्करण) इस अंश को हेलादाज ने वादयदाय ३३२ की  
टीका में उद्धृत किया है। द्वादशारण्यचक्र पृ० ४६५ पर भी वही कान्था उद्धृत किया गया है।
- ३० 'वाप्यमचेतितोवरथा तस्यामपि वाग्धर्मानुगामोऽश्वावर्तते'  
—वावयपदीय, ११२५ हरिवंशि वपभ ने अमचेतिन अश्वथा को स्वन्वावथा माना है।
- ३१ अविगामोऽपि सुद्ध वारमा विपर्यासितदशने ।  
ग्राह्यग्राहकसवित्तमेदवानिव लक्ष्यते ॥  
ग्रहीतृग्रहणग्राह्यमायापधपरिच्युताम् ।  
नमाम परमानन्दज्योतिरूपा सरस्वतीम् ॥—शुद्धाप्रकारा, पृ० २२० पर उद्धृत।
- ३२ 'इदं शास्त्रं ग्राह्यविधोपाधौ तैत्रेयतेनाथरूपेण तथा तथा विपरिणमते' भोज ने इसका एक  
रोचक उदाहरण किया है—'तद यथा, अग्नि म पत्र पुत्रा । मानर पितर शुद्धपितवान् अग्निम ।  
योऽहं युवा द्रमिन्देशो द्रमिडकन्याभि सहावस सोऽहं पश्चिमे दमसि गंगातीरे तपस्वराभाति ।  
—शुद्धाप्रकारा पृ० २२१

शब्दविवृत की आलोचना करते हुए गान्तरभित्त ने आपत्ति की है कि शब्द से जगत् का परिणाम अभिहित है अथवा उत्पत्ति। परिणाम पक्ष अनुपपन्न है। क्योंकि शब्दात्मक ब्रह्म जब नील आग्नि रूप में परिणत होता है अपने स्वाभाविक शब्दरूप को छोड़ देता है अथवा साथ रखता है? प्रथम पक्ष में (छोड़ देने के पक्ष में) शब्द ब्रह्म के अनाग्निघनत्व, अक्षरत्व आदि की हानि होनी है क्योंकि पूर्व के स्वभाव का विनाश भङ्गता है। यदि अपने स्वाभाविक शब्दरूप को छोड़ नहीं देता है यह पक्ष अभिप्रेत है तो नील आदि के मवेदन के अवसर पर अधिर व्यक्ति का भी अश्रुत शब्द का सवेदन होने लगेगा क्योंकि नील के सवेदन से शब्द का सवेदन भिन्न नहीं है।<sup>३३</sup>

वस्तुतः भग्न हरि न शब्दब्रह्म की प्रतिष्ठा कुछ भिन्न रूप में की है।

### स्फोटवाद की समीक्षा

स्फोट सम्बन्धी उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्फोट का प्रकृत रूप प्राचीन काल से ही अस्पष्ट रहा है। उसे उसका स्वरूप भिन्न भिन्न रूप में सामने लाए गए हैं उसकी आलोचना भी विभिन्न दृष्टिकोण से की गई है। आलोचना के स्फोट सबंधी विवरण से स्फोट का स्वरूप जटिलतर होता गया है। स्फोटसिद्धांत के प्राचीन आलोचकों में उल्लेखनीय भामह घमकीति शंकर कुमारिल, वादिदेव मूरि और जयन्तभट्ट हैं।

भामह ने स्फोट के स्वरूप का निर्देश नहीं किया है। किंतु ऐसा जान पड़ता है कि उनके मत में स्फोटवान् कूटस्थ, अनपायी नाद से भिन्न शब्द के रूप में गहीन था। भामह के अनुसार शपथ लेकर भी स्फोटवादिया की बात नहीं माननी चाहिए। स्फोटवाद आकाश कुसुम सदा है। अनादिकाल से वणव्यवहार द्वारा अथ अवबोध का एक समय (परिपाटी) निश्चित हो चुका है। अथ केवल साकेतिक होत है पारमार्थिक नहीं होत।<sup>३४</sup>

शब्द और अथ के सवध को एक कल्पित समझौता के रूप में व्यक्त करना भामह की महत्त्वपूर्ण उन्नति है। किन्तु वण अथवा नाद से मूर्ध्म किसी ध्वनितत्त्व की सत्ता को सर्वात्मना अनाग्नीकार करना अवज्ञानिक है।

घमकीति ने भी स्फोट का विवरण नहीं दिया है। ऐसा जान पड़ता है उनके मत में स्फोटवाद वण से अनिरिक्त एक आनुपूर्वी के रूप में और अपौरुषेय के रूप में था। आनुपूर्वी, उनके मत में अतद्रूप में तद्रूप की कल्पनामात्र है बुद्धि का एक विभ्रम है। न तो बुद्धिविभ्रम अपौरुषेय हो सकता है और न सबके शब्द अपौरुषेय हो सकते हैं।<sup>३५</sup> घमकीति ने समवत भौमामादगन के अपौरुषेय और अयाकरण

३३ तत्त्वमसि, तथा पत्रिका, १९६ १३१।

३४ काव्यलकार ६।११ १४

३५ प्रमाणवार्तिक, कारिका २७१, पृ० ६४ काशासम्भरण

के वणविचार को एक म गूँय वर स्फोट की चिंता की है और इसलिए वह चिन्त्य है ।

आचाय शकर न वणों म ढ्रम के आधार पर स्फोटपण म गरीयसी कल्पना, दण्टहानि और अदण्टकल्पना मानी है । इसका उत्तर ढेपकृष्ण ने नित्य और विभू म ढ्रम के अभाव दिग्वावर दे दिया है ।<sup>३४</sup>

कुमारिल ने स्फोट की आलोचना कुछ विस्तार स किन्तु विशृंखल रूप म की है । मीमांसका को अपनी स्फोट समीक्षा पर अभिमान है और वे इस वयाकरणों की चिकित्सा सी मानते है ।<sup>३५</sup>

मीमासा ढशन म स्फोट का सण्डन विशेष दृष्टिकोण को सामने रखकर किया गया है । स्फोटवाद की सत्ता मान लेने पर पण वण आदि अवयव की सत्ता व्यथ हो जाती है । फलत पद और उसके अवयवमिश्रित ऊह आदि भी मया जान पड़ेंगे महावाक्य म अवातरवाक्य सिद्ध नहीं हो पायेंगे प्रयाजादि आश्रित प्रसग, तत्र आदि व्यथ जान पड़ेंगे । इसलिए उनसे लिए स्फोटवाद का निराकरण आवश्यक हो जाता है ।<sup>३६</sup> मीमांसकों के अनुसार दढस्मतिबद्ध वणों म वाचकता है । वणों से अतिरिक्त शब्द की कल्पना तथा अनेक सस्कारो की कल्पना गौरवग्रस्त है । उनकी मायता म नाद वायुस्वरूप नहीं है और न सयोगविभागमय है । किन्तु वायुगुणवाले णविशेष को ही नाद कहा जाता है और ध्वनि भी कहा जाता है । शब्द दो तरह का होता है वण और ध्वनि । दोनों मे शब्दत्व अनुगत रहता है । वणत्व और ध्वनित्व अवातर सामान्य है । गकार आदि वणविशेष है शस्त्रघोष आदि ध्वनिविशेष हैं । ध्वन्यात्मक शब्द वायुगुण वाला है । जैसे प्रभारूप भावातर का अभिव्यजक होता है शब्द वणरत्मक गकार आदि का व्यजक होता है । वायु के वणविवरण म प्रवेश से शब्द का ग्रहण ससृष्ट श्रोत्र द्वारा होता है । कभी वणरहित कवल घोष आदि का ग्रहण होता है कभी वणसहित, वण से उपश्लिष्ट ध्वनि का ग्रहण होता है ।<sup>३७</sup> पद अथवा वाक्य म वतमान वण या ध्वनि स्फोट के व्यजक नहीं होते । वण से व्यतिरिक्त रूप मे स्फोट अथ का वाचक नहीं हाता ।<sup>३८</sup>

वाक्यो के अवयवाथय वायों की सिद्धि के लिए कुमारिल का आयास आयास मात्र है । भत हरि ने स्फोट की सत्ता मानते हुए भी वाक्यधम के रूप म स्वय प्रसग तत्र आदि का विवेचन किया है । वणों म वाचकता मानना जैसे एक मायता है, वणों

३३ नित्याना च विभूना च ढ्रमो नाण्येव वास्तव ।

उपलब्धिनिमित्तोऽस्ति सा चेदेका कुत ढ्रम ।

—स्फोटत्व निरूपण ७

३७ चिकित्सेव कृता शब्दविदा मीमांसकैरियम् ।

—शारददीपिका, युक्तिगनेहप्रपूर्णी, पृ० ६७

३८ न्यायरत्नाकर व्याख्या, पृ० ५४४

३९ श्लोकर्वाहिक न्याय रत्नाकर पृ० ५१६

४० श्लोकर्वाहिक न्यायवाक्य १३१, १३२

से न्यतिरिक्त स्फोट में वाचकता मानना भी एक मायता है। मायता विचारक के तक, कल्पना और स्वतंत्रता से परिचालित होती है। इस दृष्टि से मीमांसादशन और व्याकरणज्ञान दोनों स्वतंत्र हैं। कुमारिल के स्फोट की समीक्षा मण्डन मिथ ने और योगमूर्त्त के टीकाकार किसी अवाचीन शंकर ने भी की है।

वादिदेवमूर्ति ने अनुपग रूप में उक्त भक्त हरि के कई मनन्या पर विचार किया है किन्तु मूल स्फोट के विषय में ऊर्गपोह कम है। उनकी मौनिक आलोचनाओं में जो उल्लेखनीय हैं। एक तो यह कि यदि अथप्रत्यायकत्व मात्र के आधार पर स्फोट को शब्द माना जायगा तो प्रत्यायक धूम में भी शब्दत्व माना जायगा। दूसरा यह कि नालिकेर द्वीप निवासी जिसे गो शब्द का संकेत नहीं प्राप्त है, कभी भी गो शब्द से अर्थ बोध नहीं कर सकेगा। इस तरह लोक व्यवहार विच्छिन्न हो जायगा।<sup>४१</sup> ये दोनों ही तर्क आपातरमणीय हैं। भक्त हरि ने ध्वनि से मन्त्रा निरूपण रूप में स्फोट का प्रतिपादन नहीं किया है। अतः केवल प्रत्यायक धूम को शब्द नहीं माना जायगा। स्फोट सिद्धांत का यह अभिप्राय नहीं है कि जो भाषा जा नहीं जानता हो उसके श्रवण से भी उसे अर्थ बोध हो। ध्वनि के साथ ध्वनि का प्रतीतपत्तायकता है।

जयंतभद्र ने स्फोट की प्रत्यक्षगम्य अथवा अनुमेय नहीं माना है। किन्तु यदि ध्वनि से समृष्ट रूप में ही स्फोट की उपलब्धि होती है स्फोट की ध्वनि की तरह श्रोत्रग्राह्य रूप में प्रत्यक्ष मानना पड़ेगा। प्रतीति वचिभ्य भी ध्वनि वचिभ्य के कारण होती है अथवा मणि कृपाण आदि में एक ही मुख की अनवधा अभिव्यक्ति की तरह एक ही स्फोट की अनवधा अभिव्यक्ति संभव है।

### शब्द ब्रह्मवाद

प्रतिभातत्त्व और वाक तत्त्व एक ही वस्तु है। और वाक तत्त्व और ब्रह्म एक ही वस्तु है। भक्त हरि के अनुसार ब्रह्म आदि अतः से रहित है। सब तरह की कल्पनाओं में परे है। सब तरह के भेद और समग से परे विद्या अविद्या आदि सभी तरह की शक्तियाँ से समाविष्ट है। शब्दतत्त्व और ब्रह्म की एकता दिखाने के लिए भक्त हरि ने श्रुति का आधार अधिक लिया है। अपने मतव्य की परिपुष्टि में केवल एक तक उन्होंने उपस्थित किया है। शब्द ब्रह्म का उपग्राह्य है और उपग्राही है। अतः शब्द को ब्रह्मतत्त्व कहते हैं। शब्द उपग्राह्य इस रूप में है कि शब्द ब्रह्म द्वारा स्वीकृत होता है, वह शब्दस्वभाववाला है। शब्द ही रूप आदि के रूप में विवक्षित प्राप्त करता है। विकार का प्रकृति में अवयव देखा जाता है। रूप आदि विकार हैं, उनकी प्रकृति, भक्त हरि के अनुसार, शब्द है। रूप आदि में सूक्ष्म शब्द का परिज्ञान होता है यह तभी संभव है जबकि रूप आदि की प्रकृति शब्द हो। रूप आदि सभी शब्दमय हैं। वही ही ब्रह्म के उपग्राह्य हैं। शब्द ब्रह्म का उपग्राही भी है अर्थात् उसकी प्रतिपत्ति शब्दनिवृत्तना है शब्द द्वारा उनका बोध होता है। इसलिए ब्रह्म शब्द तत्त्व है



'तस्य (ब्रह्म) निम्नरूपामिमत्तानामपि विचाराणां प्रसृत्यव्यभिचारस्योप-  
प्राप्तयता दम्बोपप्राहितया च गन्तव्यव्यभिचारमभिधेयते ।

—वाचस्पतीय १।१ हरिवृत्ति

अभिप्राय यह है कि वाचस्पतीयनार ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करता है । परन्तु उनका अनुसार ब्रह्म का स्वरूप दम्बमय है । दम्बस्वरूप होने का कारण ब्रह्म का दम्बनयन कहा जाता है । ब्रह्म को दम्बस्वरूप मानने का मूल आधार विचार घटनी प्रकृति के ससृष्ट होने है यह सिद्धांत है । इस घाति विचारों में दम्बभावना घटित रहता है । इसलिए उन सब विचारों की प्रकृति दम्ब है । घटने इग मन्थ के समयमें म भू हरि न श्रुतिया का सहारा लिया है । 'तामवे' रूप देन करी जग श्रुति यात्र दम्ब को प्रकृति और गवादि अथ को विचार घोषित करता है ।

### शब्द ब्रह्म से विश्व का विकास

भत हरि विवतथाद के आधार पर शब्द से विश्व का विकास का समयन करत है । उनका मत म विवत की परिमाण निम्नलिखित है

“एकस्य तस्यादप्रच्युतस्य भेदानुचारेणासारव्यभिचारात्पहलोपप्राहिता विवत ।

—हरिवृत्ति वाचस्पतीय १।१

मूल तत्व एक है । वह कई रूपों में दिखाई पड़ सकता है । परन्तु इस विज्रिया से उसके मूलरूप में कोई भेद नहीं पडता । वह ज्यो का त्यो रहता है । सगार में अथ पदाय किसी दूसरे पदाय के ससग स अपने स्वरूप साते हुए जान पडत है । पट हरित पीत आदि विभिन्न रंगों के सपक से हरित पीत आदि विभिन्न रंग का हो जाता है । स्फटिक लाल रंग आदि के साहचर्य से लाल आदि रूप में दिखाई देता है । पर वह मूल तत्व कभी भी अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता । बबल भेद के अवभाम का कारण एक होता हुआ भी वह अनेक रूप में विभक्त जान पडता है । घनेर रूप में उसका अवभास असत्य होता है । भेद के सहारे एक के अनेक रूप में अवभाम को विवत कहते हैं । भत हरि ने परिणाम शब्द का भी विवत के अर्थ में प्रयोग किया है ।

'गन्तस्य परिणामोपम' (वाक्यपदीय १।१२१) में भी परिणाम शब्द विवत-बोधक है जिस एतद् विश्व विवतते (व्यवतत) से स्वयं भत हरि न स्पष्ट कर दिया है । कई स्थानों पर हलाराज ने भी परिणाम को विवत के रूप में लेने का अनुरोध किया है

नेद साह्यनयतत परिणामदशनमपि तु विवतपक्ष ।

—हेलाराज वाक्यपदीय ३, द्रव्यसमुद्देश १५

प्राचीन श्रुति के आधार पर भत हरि ने दो तरह का विवत माना है । मूर्ति विवत और क्रिया विवत । दिक शक्ति से अवच्छिन्न विवत मूर्ति विवत है । क्रिया शक्ति से अवच्छिन्न विवत क्रिया विवत है । दूसरे शब्दों में सिद्ध पदार्थों के लिए मूर्ति विवत और साध्य पदार्थों के लिए क्रियाविवत का व्यवहार किया जाता है । साध्य (क्रिया) और साधन (कारक, सिद्धरूप) के रूप में विभक्त होकर शब्द ब्रह्म का विवत होता है



ने इस स्पष्ट कर लिया है

सर्विच्च पश्यन्तीरुपा परावाच गच्छद्ब्रह्ममयीनि ब्रह्मणस्य गच्छान् पारमाथि  
कात् न भिद्यते । विद्यद्ब्रह्मायां तु धनयोःसमा भय ।<sup>१४</sup>

अविमादगायां तु पश्यन्तिभिधानायां याश्चर्याचर्यनेहानुत्तमानाःप्रायः  
विना वाचित । इत्ये च कृत्वा शस्त्रज्ञोपिपश्यन् इववहारेऽप्यस्य तत्र  
विधोगात् तद विद्यतत्प विन्व सिद्धम् ।<sup>१५</sup>

### श्रद्धावाद

भक्त हरि ने वाक्यपथीय में प्रायः सभी तरह के शान्ति विचारों का उल्लेख किया है ।  
उनकी यह दली है कि ये गम्भीर विचारों के प्रथम में शान्ति प्रथा का उल्लेख  
करते हैं और व्याकरणशास्त्र के गद्यव्याकरणशास्त्र के कारण लगी गयी अज्ञानता  
सबथा उचित था । परन्तु हनाराज के अनुसार उनका मुझसे अज्ञानता का उल्लेख  
रहा है । वह स्थान पर हनाराज ने उनसे अज्ञान सिद्धांत का अज्ञानता कहा है

परमाथदृष्टया सवपापदरवात् पुनरस्य शास्त्रस्य दानात्तरोपपत्तम् । एव  
च सवप्रवास्य प्रयत्नारस्याभिप्राय । पश्यावर्चाविचारे ब्रह्मज्ञानापनय  
सम्बन्धादिविचार विनिगमनात् ।<sup>१६</sup>

अर्थोपिबर्ताश्रयेणाद्वतनय स्वमतत सिद्धांतयितुमुपपन्नते ।<sup>१७</sup>

इसमें स्पष्ट नहीं कि वाक्यपथीय में अज्ञानविचारपरक तथ्यों की कमी नहीं  
है । उनका विद्वत्वात् श्रद्धावाद का ही पोषण है । अज्ञाने चैव सवस्मिन् स्वभावादेन  
लक्षणे<sup>१८</sup> जैसे वाक्य स्पष्ट रूप में अज्ञानता का अभिधान करते हैं । जब वे कहते  
हैं तत्त्व और अज्ञान दो रूप मानने से श्रद्धावाद की सगति न बढगी ।  
सत्य और अज्ञान दो रूप मानने से श्रद्धावाद की सगति न बढगी ।

‘एक ही सत्ता सब रूप में स्थित है । वही साध्य है । वही साधन है । वही  
फल है । वही फल का भोक्ता है ।’<sup>१९</sup>

श्रद्धा के रहस्य को जानने वाले उसी को सत्य मानते हैं जहाँ द्रष्टा, दृश्य  
और दशन सब अविकल्पित हैं ।<sup>२०</sup> विकल्पपरिचयित सब-कुछ असत्य है । अविकल्प  
तत्त्व अनादिनिधन ब्रह्म है ।

सागर, पृथ्वी वायु आकाश, सूर्य, दिशाएँ आदि सभी अज्ञानकरण तत्त्व की

- ४५ वाक्यपथाय द्रव्यसमुद्देश ११
- ४६ वही, सम्बन्धसमुद्देश २
- ४७ वही जातिसमुद्देश ३५
- ४८ वही सवध समुद्देश ६१वीं कारिका की अवतरणिका ।
- ४९ वही, सवध समुद्देश ६४
- ५० वही द्रव्य समुद्देश ७
- ५१, वही क्रिया समुद्देश ३५
- ५२ वही सवध समुद्देश ७०

वाह्य अभिव्यक्ति है

द्यौ क्षमा वायुरादित्य सागरा सरितो दिन ।

अत करणतत्त्वस्य भागा बहिरवस्थिता ॥५३

आदि उक्तिनया अद्वैतवादपरक है। परंतु भक्त हरि ने अद्वैत ब्रह्म का शब्द ब्रह्म से अलग रख कर नहीं देखा है। उनका अद्वैत ब्रह्म शब्द अद्वैत ब्रह्म कहा जा सकता है। कुछ विचारकों ने “शब्दाद्वैतवाद” शब्द का प्रयोग भी किया है। हलाराज ने भी उपयुक्त कारिका का भावाय वतात हुए शब्द ब्रह्म का ही समर्थन किया है

परमार्थे तु कीदृशोऽतद्विभिर्भाव । एकमेव सच्चिदानम पर शब्दब्रह्म यथा—  
तथमवस्थितम् ।

इस प्रौढ आधार पर भक्त हरि ने व्याकरण दशम की सुव्यवस्थित किया है। ‘महाभाष्याधिपीयूषच्छटाच्छुभ्रितविग्रह’ वाले वाक्यपदीय की यही विशेषता है। उसमें विवक्षित प्रातिपदिकाय ध्येया आग्याताय, पठ अथवा वाक्य शब्द अथवा प्रतिभा सब का अनूठा सौंदर्य है। गाभीय और मौष्ठव की छाप सबत्र है। अत्यंत शील के साथ विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का उल्लेख करते हुए और अपने आगम की रक्षा करने हुए भक्त हरि ने व्याकरण दर्शन की भाष्यताम्रा का परिपुष्ट किया है।

व्याकरणदशम वाणी का परम रस है पुशयनम ज्योति है। मोक्ष का प्रशस्त माग है। एक शब्द का भी सम्यक् ज्ञान कामधुक् है। शब्दमस्कार परमान्मा की सिद्धि है। शब्दतत्त्व के अनुशीलन से ब्रह्मामृत भी प्राप्ति होती है। ससृष्ट व वया करण इन मा यताम्रा का सजीव रम्यन आए है और उन्हें सिद्ध करने रह है।

□ □ □

## चुने सदर्थ-ग्रन्थ तथा निबन्ध

अनभट्ट	महाभाष्यप्रतीपोद्योतन, २ भाग, मद्रास, १९४८ १९५२
अभिनवगुप्त	ईश्वरप्रत्यभिनाविवृतिविमर्शिनी ३ भाग, श्रीनगर, १९३८—४३
,	मालिनीविजय वार्तिक, श्रीनगर, १९२१
,	परात्रिंशिका श्रीनगर १९१८
अभिनवभारती	(नाटयविवृति) ४ भाग, बडोटा
अभ्यर, व० ए० एस०	भत हरि, ए स्टडी आफ वाक्यपदीय इन द लाइट आफ ए राट कमेटीज, पूना, १९६६
,	स्फाटमिद्धि का आग्ल अनुवाद, पूना, १९६६
,	द प्वाइण्ट आफ यू आफ वयाकरणज, जर्मनल आफ आरियण्टल रिमथ मद्रास बाल्यूम १८, पाट २, १९४१
,	प्रतिभा गज द मीनिंग आफ से-टेस, आल इण्डिया आरियण्टल काँग्रेस १९४०
उग्रर भट्ट	लावत्रातिक-याग्या तात्पयटीका, मद्रास, १९४०
शुपिपुत्र परमरवर	स्फाटमिद्धिगीका गोपालिका मद्रास १९३१
कमरणील	तत्त्वसप्रहजिना २ भाग, बडोटा १९२६
कणकगामी	प्रमाणवातिवटीना राट्टल, साट्टयायन सपादिन, इनाग्याग १९३०
कविराज गारीनाथ	टात्रग्नि आफ प्रतिभा इन इण्डिया विनासपी, एनय आफ भण्टारकर आरियण्टल रिमथ वायूम १
कीमन्त, ए०	भन हरि इण्डियन एण्टीकरी, वायूम १२, १८८३
कुमारिा	इनाग्यादिना चीगम्यासट्टसरीरिज, यनारस, १८६८
कुणामित्र	वयाकरणभूषणकारिका टीना (हस्तलप)

वृष्णमित्र कथट	कुञ्जिका टीका (लघुमजूपा), बनारस १९२५ महाभाष्यप्रदीप ५ भाग, निणयसागर, बम्बई, १९१७—१९४१।
बीण्डभट्ट गोकुलनाथ चक्रवर्ती प्रभातचन्द्र ”	—गुप्तप्रसाद शास्त्री संपादित, बनारस १९३९ वैयाकरण भूषण बम्बई १९१५ पदवाक्यरत्नाकर बनारस फिलासफी आफ सस्कृत ग्रामर कलकत्ता १९३० लिग्विस्टिक स्पकुलेशन आफ द हिन्दूज, कलकत्ता, १९३३
चटर्जी, क्षितीशचन्द्र	टेक्निकल टर्म एण्ड टेक्नीक आफ मस्कृत ग्रामर कलकत्ता १९४८
चन्द्रकीर्ति	प्रसनपदा (माध्यमिक कारिका टीका) पीटसबग, १९१२
जगदीश भट्टाचार्य जयत भट्ट जयादित्य वामन	शाश्वतिप्रसागिना कलकत्ता १९१४ ‘यायमजरी बनारस १९३६ काशिकावलि (बालशास्त्री संपादित) द्वितीयावलि, बनारस १८९८
जिनेन्द्रबुद्धि	काशिकाविवरणपञ्जिका (‘यास) राजशाही १९१३— १९२५
दुर्गाचार्य धमकीर्ति नागेश भट्ट	प्रमाणसमुच्चयटीका, भ्रडयार निरुक्त भाष्य २ भाग, बम्बई, १९४२ प्रमाणवार्तिक पटना, बनारस १९५९ बहच्छ्रेयुदोखर, ३ भाग, काशी १९६० वैयाकरणसिद्धान्तलघुमजूपा, बनारस, १९२१ परमलघुमजूपा बनारस १९४६ महाभाष्यप्रदीपोद्योत निणयसागर १९१७— १९४५, गुप्तप्रसाद शास्त्री संपादित, बनारस, १९३९
पत्रजलि पाठक, वे० बी०	स्फोटवान्, भ्रडयार, १९४६ महाभाष्य ३ भाग, कीलहान संपादित बम्बई, १८९२ द डेट आफ भत हरि एण्ड कुमारिल, जर्नल आफ बगाल रायल एगियाटिक सोसाइटी, १८९३
पाणिनि ”	अष्टाध्यायी बम्बई सम्मत १९८५ पाणिनीय शिक्षा, मनमोहन घोष संपादित, कलकत्ता १८२८
पाण्डेय, रामाना	व्याकरणान्मूमिका, काशी १९५४

पाण्डेय, आर० सी०

पायसारथि मिश्र  
विपारटि, के० राम

पुष्पराम  
पुरुषोत्तमदेव

प्रचाररगुप्त  
प्रभाचंद्र  
प्रभाकर मिश्र  
विष्णु मदलीन  
मनवाल्कर श्रीपट्टण  
भट्टाचार्य गिरिधर  
भट्टाचार्य गौरीनाथ

भट्टाचार्य विष्णुपुत्र  
भट्टाचिनीति  
भरत मिश्र  
भृगुहरि

प्राब्लेम आफ मीनिंग इन इण्डियन फिलासफी,  
दिल्ली १९६३

'पायरत्नाकर' (श्लोकवार्तिकटीका) बनारस  
द डायटरिन आफ स्फोट, अनामले यूनिवर्सिटी जरनल  
वाल्थूम १, पाट २

वाक्यपदीय द्वितीयकाण्ड की टीका बनारस, १८८७  
भाषावृत्ति, राजशाही, १९१८

वापकसमुच्चय

वारकचक्र

परिभाषावृत्ति

राजशाही १९४६

प्रमाणवार्तिकटीका पटना

प्रमेय कमलमातण्ड चम्बई १९४१

वहती, ५ भाग मद्रास १९३६—१९६७

स्फोटसिद्धि फ्रच अनुवाक पाण्डिचरी, १९५८

मिस्टम आफ सस्कृतग्रामर चम्बई १९१५

विभक्त्यधिनियम बनारस १९०२

ए स्की इन ए लाइलरिडस आफ स्फोट जरनल  
आफ द लिपेटमेट आफ सटस, कलकत्ता  
१९३७

स्की इन समज एण्ड मीनिंग, कलकत्ता १९६२

संस्कृतशुभ बनारस, १९२७

संस्कृतसिद्धि विष्णुपुत्र १९२७

महाभाष्य त्रिपाठी (त्रिपाठी) श्री ब्रह्मसूत्र जिज्ञासु  
द्वारा की गई प्रतिलिपि ।

महाभाष्यटीका (त्रिपाठी) डॉ० बी० स्वामीनाथन  
द्वारा मराठी बनारस १९६५

महाभाष्य टीका (त्रिपाठी) श्री क० बी० चम्पार  
तण्ड आचार्य वा० बी० लिये द्वारा मराठी  
पूना १९६८—७१

वाक्यपदीय काण्ड १० (प्रथम काण्ड पर साहित्य  
भवन प्रकाशित तथा द्वितीय काण्ड पर पुष्पराम की  
टीका मद्रास) मानवम्बी गंगापर गाम्भी मराठी  
बनारस १८८७

वाक्यपदीय चट्टकान्त श्री द्रव्यगोपा प्रणीत प्रथम  
प्रकाशित मद्रास, कलकत्ता १९२५

भन हरि

वाक्यपत्नीय, ब्रह्मकाण्ड श्री भूयनारायण शुक्ल विरचित  
भावप्रदीप व्याख्यान सहित बनारस, १९३७

वाक्यपत्नीय, स्वोपनटीका तथा वपमटीका सहित  
प्रथमकाण्ड श्री चारुतेव शास्त्री संपादित  
लाहौर, १९३४

वाक्यपदीय द्वितीय काण्ड (१८४ वारिका तक)  
स्वोपनवृत्ति तथा पुण्यराज की टीका सहित,  
श्री चारुतेव शास्त्री संपादित लाहौर १९३६

वाक्यपदीय द्वितीय काण्ड स्वोपनवृत्ति सहित, हस्तलेख  
श्रीरियण्टल मनुस्त्रीप्ट लाइब्रेरी, मद्रास  
वाक्यपदीय प्रथम काण्ड भन हरिवृत्ति तथा वपमदेव  
टीका सहित प्राफेसर क० ए० एम० अय्यर  
संपादित, पूना १९६६

वाक्यपत्नीय प्रथम तथा द्वितीयकाण्ड ५० रघुनाथ शास्त्री  
विरचित अम्बाकृत सहित, काशी १९६३—१९६६  
वाक्यपदीय तृतीय काण्ड प्रकीर्णक प्रसाग सहित  
बनारस (चौखम्बा), १९०५—१९३५

वाक्यपत्नीय तृतीय काण्ड, भाग १ (साधन लिङ्गसमुद्देश)  
हलाराज की टीका सहित श्री साम्बशिव शास्त्री  
संपादित त्रिवेन्द्रुग, १९३५

वाक्यपदीय तृतीयकाण्ड भाग २ (वृत्तिसमुद्देश)  
रवि वर्मा द्वारा संपादित, त्रिवेन्द्रुम १९४२

वाक्यपत्नीय, तृतीय काण्ड भाग १, हेलाराज की टीका  
सहित, प्रो० के० ए० एस० अय्यर द्वारा संपादित,  
पूना १९६३

वाक्यपदीय श्री क० बी० अय्यर तथा आचार्य  
बी० पी० लिमये द्वारा संपादित, पूना १९६५

वाक्यपत्नीय सवृत्ति प्रथम काण्ड प्रो० के० ए० एस०  
अय्यर द्वारा अग्नेजी मे अनूदित, पूना १९६५

वाक्यपत्नीय काण्ड १ २, डा० के० राघवन पिल्ल द्वारा  
अग्नेजी मे अनूदित दिल्ली १९७१

शृंगार प्रकाश ३ भाग भमूर १९५५—६६

स्फोटसिद्धि मद्रास, १९३१

भावनाविवेक काशी १९२२—२३

द्वान्तसारनयचक्र ४ भाग ग्रहमदावाद

द्वान्तसारनयचक्र, भाग १ मुनि जम्बूविजय संपादित,

भोज

मण्डन मिश्र

मल्लवादि क्षमाश्रमण





सुचरित मिश्र

काशिका (श्लोकवार्तिकटीका) ३ भाग, त्रिवेद्रुम  
१९२७—४३

”  
सोमनाथ

काशिका (हस्तलेख)  
शिवदृष्टि (उत्पल की टीका सहित) धीनगर  
१९३४

म्बदस्वामी

निरुक्तभाष्य लाहौर, १९३०

हरदत्त

पदमजरी २ भाग, काशी १८९८

हरिराम

काशिका (वैयाकरणभूषण की टीका) बम्बई, १९१५

हीमन, बंधी

स्फोट एण्ड ग्रय

के० बी० पाठक कामेमोरेशन वाल्यूम

वाक बिफोर भन हरि, इण्डियन फिलासाफिकल  
का फ्रेंस, मडयार

डाक्टरिन आफ स्फोट गगानाय भा रिसेच जरनल,  
इनाहाबाद, १९४८

प्रकीणक प्रकाश

हेलाराज

## अनुक्रमशिका

अक्षर २१	अक्षरगिद्धि २८
अक्षरक १८७	अक्षरगण १८८
अक्षरक त्रिया १८६	अक्षरगणन व अनुसार वात २०६
अक्षरक (व्याकरण) २१०	अक्षरगण २०३ २०४, ४८२
अक्षरक वाक्यान्त २८७	अधिवरण १७, २६५
अक्षरकवाट ६६३	अधिवार ३७६ २८० ३६६ २६५
अक्षरकमात्रा १०७	अधिवारा ३७८
अक्षरान वागुत्कारण १८ ५६	अध्वारा २६६
अक्षरा ६१	अध्वारात धीर अध्वरमाय म अक्षर
अक्षरगणित ८०	११७
अक्षरान्तरा ३२	अध्वारातियम ३८०
अक्षरान्तरावलि ६६०	अध्वारातयणविनर्थात ११८
अक्षरान्तरावलि वा ७७	अध्वारागिद्धान ३६६
अक्षरान्तर ७०१	अध्वारावित प्रयणत २१३
अक्षरान्तर ७६१ ७१	अध्वारा ६६ १५३
अक्षरान्तर व पति प्रकार ३८६	अध्वारावित मवध ११०, २७१
अक्षरान्तर ७	अध्वारावित मवध ६७ ६२६
अक्षरान्तरा ६६८	अध्वारावित ३८० ६०६ ४०७
अक्षरान्तर ७०१	अध्वारावित धीर वाक्यान्तर म अक्षर ६०८
अक्षरान्तरा मवध ६७७ (वि०)	अक्षरान्तर ५७ ६० ११२ ११६
अक्षरान्तरा वलि ७७१	अक्षरान्तरान्तर २०६ २३६
अक्षरान्तरावलि १६५	अक्षरान्तरा वलि ३३४
अक्षरान्तरावलि १७७	अक्षरान्तरा ३६७
अक्षरान्तरावलि २०६	अक्षरान्तर ७७
अक्षरान्तरा ३६ ११२	अक्षरान्तरान्तरा ३३



अभिधावतिमात्रिका २६, १२४,  
१२५

अभिनवगुप्त २१ २४ २६ २७ ३८,  
४१ ४३ ४५, ४६, ४८, ४९ ५०,  
७९ ८० ८१ १५९, १७६ (टिप्प०),  
२१८ २१९, २२२ २९१, ३६३  
३७२ ४७०

अभिनवगुप्त, ऐन हिस्टारिकल  
ऐण्ड फिलासफिकल स्टडी २७  
(टिप्प०) २२०

अभिनवभारती ४६

अभिमन्यु १६

अभिव्यक्तिनिमित्तोपयजनप्रपण १४२  
१५३

अभिव्यापक २९५

अभिमहित ३९७

अभिहितावयवाद् ३३४ ३३८,  
३४१, ३६२, ३६८ ३७१ ४११,  
४१२, ४१८

अमीक्ष्य्य और क्रिया समिहार १९७

अभेद ३७९

अभेदत्व सत्या २७८ ३७०

अभेदोपचार ३२८

अभ्यनुभाक्ति २१५ २१६ २१८

अभ्यावति १९७

अभ्यासनिमित्ता प्रतिभा ३७८

अमरकोश २०६ (टिप्प०), ३५९

अम्यर के० एम० ए० ३२

अम ११ ३७८ ८२७

अम अयोढार १२९

अम अवभास १५२

अम वा अर्थान्तर म अम्यारोप १००

अम व प्रवृत्तितत्त्व ९७

अपह्नम १४०, ३९९

अपह्नाति १५३

अयनियम २७७

अयनियमवाद १३

अयपरिवतन १००

अयप्रकरणगदान्तरसन्निधान ५  
११०

अयप्रकागनसक्ति ८९

अयभेद से गल्भेद १०९

अयवाद २७७ ४०६

अयविज्ञानमय ३६५

अयसिद्धात ११

अर्थावयी ४५८

अयभिद ३७९ ३९४

अयित्व ३७९, ३९४

अर्थी ३७८

अर्थोपचार १०९ ११०

अलकार सवस्त्व २७ ३८

अल्पगल्भ और महत् गल्भ ८७

अवक्षेपण १५२

अवधारण ३६३

अवधि ३८० ४०६ ४०८

अवती १७

अवयवविधान ४८१

अवयवावयवीभाव १२

अवान्तर वाक्य ३५, ३६१

अविचालि ९१

अविद्या ४७५

अविद्याक्ति ४८१

अविनाभाव १४६

अदिरदिक्याप ६१

अविवक्षित प्रम ३७९, ४००

अविवक्षितभेद ३७९, ४०४

अविवक्षितवाच्यसंगण ११८

अविवक्षा ३७९

अविवक्षा और पराप्य १६६

अवगता २०५ (टिप्प०)

धर्मपद १४६  
 धर्म्य १३३ २६६, ३२५  
 धर्म्योभाव समाग ४५४  
 धर्म्युत्पन्न १०१  
 धर्म्यात्मनि ६३  
 धर्म्याध्यायी १५६, २५८  
 धर्मग १७  
 धर्मन्यायनिरूप ३६७  
 धर्मभव ३८८  
 धर्मनवनिधम ४१६  
 धर्मापना ३१  
 धर्माणा ३८७  
 धर्माकारनिरूपण ३७  
 धर्मादि ३७१  
 धर्मादि श्रीर जाति म भेद १५०  
 धर्मादिपण १८७ १४८  
 धर्माद्यात १०३ १८३, १३८ १३६,  
 १५६ १५७ १५८  
 धर्माद्यानवाद ३५७  
 धर्माद्यानग २०० २३४ ३३६  
 धर्माद्यानग वाच्य ४२१  
 धर्माद्यात गणवाच्यवाद ३३५, २३७  
 धर्माद्यमग्रह १४  
 धर्मात्मकामत्व ३५  
 धर्मात्मत्व २५  
 धर्मात्मनेपद २४७ २६६ २५० २५१  
 २५४ २५५ २५७  
 धर्मात्मनभाष २५७  
 धर्मात्मप्रकाशनगति ८६  
 धर्मात्मा अन्तर्दान २६१  
 धर्मादिपन्वाद ३५४  
 धर्मादग १० १२  
 धर्माद्यपद ३३४  
 धर्माद्यपदवाद ३५७, ३६८  
 धर्मान्तरवाच्य ३६४  
 धर्मान्तरवाद ६६ ३६४, ८७०

धर्मात्तरम्होट ३५३, ४६३,  
 धर्मान्तरपथन २६ १२१, १२२, ४६५  
 (टिप्प०)  
 धर्मादिगम ध्याकरण ३६३  
 धर्मादिशानाधिगता ७५  
 धर्मात्तरम्होट ४७०  
 धर्मान्तापण ६०  
 धर्मात्तरम्होट ४०२  
 धर्मात्तरम्होट ३७६, ४०२  
 धर्मात्तरम्होट १६  
 धर्मात्तरम्होट ४३०  
 धर्मात्तरम्होट ३६५, ३८६  
 धर्मात्तरम्होट ४१२  
 धर्मात्तरम्होट ३०३  
 धर्मात्तरम्होट २०६, ३८०, ३८३  
 धर्मात्तरम्होट ३८३  
 धर्मात्तरम्होट ३८३  
 धर्मात्तरम्होट २८२  
 धर्मात्तरम्होट ४६, ४७  
 धर्मात्तरम्होट एकीकरण २३ (टिप्प०)  
 धर्मात्तरम्होट टु धर्मात्तरम्होट फिलासफी  
 धर्मात्तरम्होट टु धर्मात्तरम्होट गारुण १५  
 धर्मात्तरम्होट ४४३ ४८४  
 धर्मात्तरम्होट १५ १७, २०, २० २३ २८  
 धर्मात्तरम्होट की भारतयात्रा १५  
 धर्मात्तरम्होट २६४  
 धर्मात्तरम्होट २६४  
 धर्मात्तरम्होट २७ २८  
 धर्मात्तरम्होट धर्मात्तरम्होट २०५ (टिप्प०)  
 धर्मात्तरम्होट १०  
 धर्मात्तरम्होट (परिभाषा) ४४१  
 धर्मात्तरम्होट २८६  
 धर्मात्तरम्होट धर्मात्तरम्होट धर्मात्तरम्होट धर्मात्तरम्होट  
 २७ (टिप्प०) = ४१ ४४ ६१  
 (टिप्प०), १७७ (परिभाषा)

०६१ ३७० ४७० (श्लो०)  
 उर विषण १५०  
 उरामपुत्र ०६१ ०२६  
 उत्तररामचरित ०७६ ३६१ (श्लो०)  
 उत्पल २० ६०, ६३ ६७ ६६ ६७६  
 उत्पल १२ ३८६ ३८७  
 उत्पलनियम ३८४  
 उदभट ४१०  
 उदभटप्रति ६५६ (टि० ०)  
 उपग्रह १५८, २४५  
 उपग्रह की परिभाषा ०६५  
 उपगता १२० १२१  
 उपगता कर्त्तव्या १२० १८० ६०६  
 ४०७  
 उपचारवृत्ति १२०  
 उपचारसंज्ञा ६६  
 उपजन ६१  
 उपविप ४३ २०६  
 उपमान १०  
 उपलक्षण १५५  
 उपलिप्ता १४२ १४३  
 उपवय ६६४  
 उपसंग्रहान ३६३  
 उपसंग ११, १०३ १३३ १३४,  
 १३६  
 उपसंग श्रौत निपात मे भेद १३४  
 उपस्फाराथ ३६७  
 उपागु ३६ ४५ ३४६  
 उपासविषय २६३  
 उपादान ८२  
 उपादान शब्द ८३  
 उपाध्याय, अश्विकाप्रसाद ३२  
 उभयविभाषा ४०५  
 उभयेक भट्ट ३०  
 ऊह ३७६ ३८० ३८७ ३८८  
 ऊह मत्र १०६

उरामपुत्र ०६१ (श्लो०)  
 उराम ४३ १०३ १३६०० ०००  
 ०३ (श्लो०)  
 उरामपुत्रमन्त्र ८० ३८६  
 उरामपुत्र १०६ १०७ १०८  
 उरामपुत्र २०५ ०७३ २७६  
 उरामपुत्र १०६  
 उरामपुत्रमन्त्र १०१  
 उरामपुत्र १११  
 उरामपुत्र ९०  
 उरामपुत्रमन्त्र ०६०  
 उरामपुत्रमन्त्र ०६५ ४३८  
 उरामपुत्र मन्त्राकार आश्रितान्त  
 रिगत २६ (श्लो०)  
 उरामपुत्रमन्त्रमन्त्र विनामन्त्र मन्त्र  
 मन्त्रे मन्त्र अभिनवगुप्त २५०  
 उरामपुत्र ६०७ ४०६  
 उरामपुत्र ६०७  
 उरामपुत्रमन्त्र १० १३६  
 उरामपुत्रमन्त्रमन्त्र १ ६  
 उरामपुत्र मन्त्र १६८ १६६ २६६  
 २३३  
 उरामपुत्रमन्त्रमन्त्र ६७  
 उरामपुत्रमन्त्रमन्त्रमन्त्र २१८ २२३  
 उरामपुत्रमन्त्र ३० ६५  
 उरामपुत्र ७३  
 उरामपुत्र ४३०  
 उरामपुत्र २८६ २८२ ३७६  
 उरामपुत्रमन्त्र २८ २६ १२५, ३४६  
 ३५८  
 उरामपुत्रमन्त्र २८८  
 उरामपुत्र की प्रधानता २८६  
 उरामपुत्र २८६  
 उरामपुत्र स्थक्रियाविषयक २६५  
 उरामपुत्र स्थभावक १८४  
 उरामपुत्र २८६ २६०

कमप्रवचनीय ११, १०२ १ ३, १३४  
 १३५ १३६, १३७, १३८  
 कमवाचयायवाद् २०३, २०८  
 कमव्यनिहार २४७  
 कमव्यत्रियाविषयन २६५  
 कमव्य भावक १८०  
 कानटीका ३२  
 कान्तिनाथ २३ ३०२ (टिप्प०)  
 कर्तव्य १६  
 कश्मीर गद्दागम २१८  
 काण ३७८  
 काणभ्रम १४२ ३६६  
 कान्तपरिणिष्ण २५८  
 कायमन १२ १३ ६४ ६० १०५  
 १०७, १४६ १४७, १५०, १५६,  
 २ ६ २४२, २८५ २१७ २५६  
 २६८ ३०६ ३१ ३२०, ३३१,  
 ३६०, ३८६, ४३८ ४८१, ६५३,  
 ६५५  
 कारतम्य ३१, २६१ २६६  
 कारकविचार २८१ ६७  
 कारकसम्बन्धाद्योत ३२  
 कायकारण भाव ६६ १२७  
 कायकारणभावपत्त्या और योग्यभाव  
 पदाय १३१  
 कायकारणभाव सम्बन्ध ६७, ४२६  
 कायदान १०२  
 कायपरिणाम २६१  
 कायातिथेय ३६२, ३६३  
 कायप्रकाश १२१ (टिप्प०) २६३  
 (टिप्प०) ४२६  
 कायप्रकाश की टीका ४२६ (टिप्प०)  
 काव्यप्रकाश क टीकाकार ४२७  
 काव्यप्रकाशप्रदीप ४३० (टिप्प०)  
 काव्यमीमांसा ३६०  
 काव्यमीमांसा ४१० (टिप्प०)

काव्यलक्षणटीका ३० (टिप्पणी)  
 काव्यालकार १६, ३२६ ४७७  
 काल १५८  
 काल अनुमानागम्य २०४  
 कालप्रत्ययगम्य २२४  
 कालभेदविचार २०१  
 काल विचार २०५ २४८  
 कालविभाग १०  
 कालवर्तिया का आत्ममात्रा म अतमा  
 वेग ३५  
 काल व्यवधान १०८  
 कालगति १५४ ३५१  
 कालारण स्वानयशक्ति १०६ २१४  
 कालिदास ५१, १२६ ३१८ ३७१  
 ३८१, ४६६ ४०६  
 काल हरिराम ३२  
 काण्टरुस्न सूत्र १५६ १५८  
 काण्टरुस्न व्याकरण १५६, १६३  
 काशिकावलि १८ १६ २५ १००  
 १६५ १६८ २३१ २७४ (टिप्प०),  
 २६२ ३१७ ३१८ ३८७ ४०७  
 ४३४ (टिप्प०), ४८ ६५४  
 काशिका (वयावरणभूषण की टीका)  
 ३२  
 काशिका (श्लोकवातिक की टीका)  
 ४१  
 काशिकाकार ३०, १३५ (टिप्प०)  
 २७४, ३१५ ३२०  
 काशिकाविवरणपञ्जिका (द्रष्टव्य  
 यास) १५६, २४६ (टिप्प०)  
 ३८७ (टिप्प०)  
 किराताजुतीय १६  
 किलहान एक २३  
 कुञ्जिका ३२  
 कुतक २६  
 कुमारगुप्त तृतीय २०



कुमारगणभय १०७ ३८१, ४०६  
(टिप्पण)

कुमारिण (भट्ट) १८ २५, २६ ३०  
६६, १२० १४०, ३३१ ३३४  
३३८ ३४१, ३५० ३५१, ३५२  
३५६, ३५६ ४२५, ४३७ ४३८  
४३९

कुमारगण २१२

कुवलयपात्र की घट्टिका टीका १२६  
कूटस्थ ६०

कृत्तमिहिरभाय २६७

कृत्तमित्र ३२ ४३

कथक २२ २७ ३० ३१, ५७, ५८  
६० ६१ ६४ ६६ ७८, ८६, ९०,  
९१ १०० १०१ १०२ ११४  
११५ ११७ १२४, १२५ १३०,  
१३३ १३६ १४१ १४४ १४६,  
१४८ १४९ १५५ १५८, १६७  
१७०, १७६ १८२ १८६ १९५  
२०८ २१० २३६, २३५ २३७,  
२४८, २५, २७६ २८६ २८७,  
२८९ २९० २९४ २९६, ३०१  
३०३ ३०६ ३०५ ३०७, ३१०  
३१२ ३१३ ३१४, ३१५ ३१६  
३२०, ३२२ ३२६ ३३१, ३३३  
३३६ ३६१ ३६२, ३६६ ३८५  
(टिप्पण), ३८६ (टिप्पण) ३८७  
(टिप्पण) ३९३ ४११ (टिप्पण),  
४२८ ४३१ ४३२ (टिप्पण)  
४४१ ४४३ ४४७, ४४८ ४५२  
४६६

कौटिल्य अथशास्त्र ८६, ३५६

कौण्डभट्ट ३२, २६७ ३१७, ४४७  
६५१ (टिप्पण)

कम ८०, १४२, ३३४ ३५२, ३७८

कम के आठ प्रकार ३६८

कमव्यापन ३५७ ३७६ ४००

कमव्यापन ३५७ ८०, ८६, २१७ २१८  
३५१

कमव्यापन ३८०

कमव्यापन ३५१

कमव्यापन ११६

किया ११- १६६ १५५ १६५  
२४८ २६६

किया कविता १६३

किया कानून १६०

किया ११ १६२

किया जाति १७०

कियाविपत्ति १०, २४०, २६१

किया-व्यापति १६७

किया एक घात २००

किया और कानून १६६

किया और उपगम १६०

किया और कविता १६६

किया का कानून घातक रूप १८५

किया का स्वरूप १६४—१६६

किया और व्यापार म भे १६३

किया की प्रायेणपरिणामाप्ति १६८

किया की सामुदायपरिणामाप्ति १६८

किया-तरव्युदास ३७६ ३८०, ३९०

किया म जातिव्यक्तिभाव ३७०

कियाविचार १५६—२०६

कियाविषय २८

कियाविषय १७६ २६५, ४८०

कियाविषयजनितत्व १३७

कियाविषय २०२ ३३२

किया वाक्याथ रूप म ३६८

किया वाक्याथवाद २०३ २०५  
३६६

किया-व्यतिहार २४७ २४८

किया-व्यतिहार ४६

किया-व्यतिहार १२३

क्रिया गमभिहार १६८  
 लण्डनगण्डलाघ २६  
 क्षीरस्वामी २०६  
 क्षेमराज ४१  
 गणकतरंगिणी २० (टिप्प०)  
 गणनाठ ३६०  
 गणरत्नमहोदधि २२ (टिप्प०), ३१८  
 (टिप्प०), ४५८  
 गान्ध १३४  
 गिरिधर भट्टाचार्य ३२  
 गुण २६६, २७१, ४४५, ४५० ४५२  
 गुणकल्पना १२०, ४०७  
 गुणपत्न्याय १४  
 गुणप्रधानताविषय ११६  
 गुणप्रधानभावाविषया ३७६  
 गुणनाद ३०८  
 गुणवृत्ति १२०  
 गुणसङ्घ १२३  
 गुरु ३८०, ४०४  
 गुरुप्रक्रमा १४४, ३४५ ४०४  
 गुरुमजूपा ३२  
 गोकुलनाथ ३२  
 गोनदीय ६३  
 गोपनज्ञाह्वण १५६  
 गापीनाथ कविराज ३२  
 गाविण ठक्कुर ४३२  
 गौण ११८, ३७६, ४०४  
 गौण अर्थ ११०  
 गौणमुद्रययाय २६३  
 गौण मुख्यभाव ११०  
 गौण मुख्य विचार १०६ १२२  
 गौणीवृत्ति १२० १२१, ३८८  
 घा वक्र २३३  
 घटप्रदीपयाय १२१  
 घोषिणी ८१  
 चन्द्रवती प्रभातचन्द्र ३२

चतुष्टय प्रातिपत्तिवाप १४१  
 चतुष्टयी दाम्प्रवृत्ति १२४  
 चन्द्रकीर्ति १५७, १६२ (टिप्प०) २६२  
 चन्द्रगुप्त विभ्रमादित्य १८  
 चन्द्रगोमी ४५६  
 चन्द्राचार्य १६  
 चरणनिमित्ता प्रतिभा ३७३, ३७४  
 चरितापता ३८४  
 चिति १५६  
 चितिनत्व ३४  
 चित्रबुद्धि ८६, ३४५  
 छप्रत्यय पर विचार ४५५  
 जगन्मोग भट्टाचार्य ३२  
 जयत भट्ट ३०, ३८ ३४६, ४७७  
 जयरथ ३८  
 जयान्तिय ३०, ११६ (टिप्पणी) १२०,  
 ३१७, ३८७ ४०७  
 जयनल घाफ सू० पी० हिस्टारिकल  
 सासाइटी ५४  
 जराख्या शक्ति २१५ २१६  
 जहस्त्वार्थवृत्ति ४४०  
 जातनिर्घोषा ४१  
 जाति १४२, १४४  
 जाति म सख्या २८०  
 जातिस्फोट ६७ २६४, ३४४  
 जातिप्रियावाद १६६  
 जातिपदापदशन ३२१  
 जातिपत्न्यपदा १४४, ३२३  
 जातिवाक्यवाद ३४४  
 जालिगद्द १२३  
 जिने द्रव्यबुद्धि (द्रव्यव्य वासकार) १६,  
 ७७ १२३, १४०, २८६ ३१५  
 ४२८  
 जनदशन ७७  
 जने द्रमहावृत्ति ३१८  
 जमिति ६१ ३३१, ३३२, ३७७

ज्योतिष मन्त्र २१०  
 ज्ञानगति ४६  
 ज्ञानगत्यापत्तिया ७७ ७८ २६४  
 ज्ञानकगमुचय ६५  
 भननीकर यामन ४२६ (टिप्पणी)  
 भागनाथ १८  
 तत्त्वकीमुनी, २०८ (टिप्पणी)  
 तत्त्वबोधनीकार, १२६  
 तत्त्वविदु, २०, ३०, ३८७  
 तत्त्वसग्रह २८, ४७७ (टिप्पणी)  
 तत्त्व्यात्रिया १८४  
 तत्त्व्यात्रिया १८५  
 तदमावापत्ति ३८०, ४०६, ४०७  
 तत्र ३७८ ३७९, ३८०, ३८२,  
 ३८३, ४०१  
 तत्रिणी ३८२  
 तत्रवातिक ३० १२१ (टिप्पणी)  
 तात्पय शक्ति ४०६, ४१८  
 तात्पर्याथ ३६६  
 ताच्छीलिक शब्द १६७  
 तादात्म्यातिदश ३६२, ४३७  
 ताद्रूप्य ११६  
 तिङन्ताय का उपमानोपमेयभाव १८०  
 तिङ्भिहितभाव २६७  
 तिङ्भिहितभाव और कृदभिहितभाव मे  
 भेद १७८  
 तिरोभूतक्रियापद २६६  
 तिरोभूतत्रियापद १३७  
 तत्तिरीय सहिता ३८८ (टिप्पणी),  
 ३८९ (टिप्पणी), ३९० (टिप्पणी),  
 ४०६ (टिप्पणी)  
 त्रयीशत्रुप्रवृत्ति १२३ १२५  
 त्रिकप्रातिपदिकाय १४०  
 त्रिकप्रातिपदिकायपक्ष १४०, २७७  
 त्रिपाठी रामसेवक ३२  
 पाल् घोर जातीवर प्रत्यय मे भेद

८१४ (टिप्पणी)  
 दण्डा घयवता ११  
 दि १५६ २४३, २४४  
 दि घोर मान २४३  
 दिग्भाग १६  
 दीपवतिजापाय २२६  
 दुर्गागाय १५६ १६५  
 दुर्गागायवति १३८ (टिप्पणी)  
 दुष्टवति २७  
 दृष्टापचार ४३२  
 दृष्टाभिधानपण १८५  
 देवगूरि ६८, ६९  
 देगी ग ५२  
 द्रव्य १४१, १४२ १५५ २८१,  
 २८२, २८५, ४५०, ४४५ ४५२  
 द्रव्यपणाय १४ ६१  
 द्रव्यपणाय दान ३२१  
 द्रव्यवाद ११  
 द्रव्ययतिरिवतगकितदान २८१, २८२  
 द्रव्यमव्यतिरिवतगकितदान २८१,  
 २८४  
 द्रव्यग १२३  
 द्रुतावति ७०  
 द्वादशारनयचक्र १५ १७, ६६, १०३  
 ३४५ ३४७ ३५४ (टिप्पणी) ३५६  
 (टिप्पणी) ३५७ (टिप्पणी), ३५८,  
 ४७५, ४७६ (टिप्पणी)  
 द्विगतवाक्य ३६१  
 द्विवचन २६५, २६६, २७६  
 द्विवदी सुधाकर २० (टिप्पणी)  
 द्विष्ट ३६२  
 द्विष्ट शब्द ४०८  
 धमकीति १७, १८, २४ २६, २६,  
 ३०, ८६, ६१, १५२, २७७ ३४७,  
 ३४८, ३४९, ३५४, ४४८ ८७७  
 धमपाल, १५, २८, २६, २६१

धमपरिणाम २६१  
 ध्यानप्रह्वार १६, ४५८, ४५९  
 (टिप्पणी)  
 ध्वनि ६६, ७३, १०४  
 ध्वनि श्रौत नाम ७३  
 ध्वनि (अभिव्यज्ज) ७६  
 ध्वनि विचार ६६ ८२  
 ध्वनि सिद्धांत १२१  
 ध्वयालाक १२२ (टिप्पणी)  
 ध्वयालोकलोचन २१ (टिप्पणी),  
 ११६, १२१ (टिप्पणी) १३४  
 (टिप्पणी) १५६ (टिप्पणी)  
 नत्रय ४४८  
 नत्र विचार ४४६ ४५०  
 नत्र समाप्त ३२८  
 नर्तसिंह ४२६  
 नागाजुन १५५  
 नागना २२ ३२ ४२, ५०, ५४ ६०  
 ६८ ६०, ११४, १२५ १८१  
 १४६ १६२, १६८ (टिप्पणी),  
 १८७, २१३, २१४, २२२,  
 २६७ २६८ (टिप्पणी), ४११,  
 ८३५ ४३७, ४४८, ४५६, ४४६  
 (टिप्पणी), ३१० ३१७ ३२०  
 ३२२ ३२४ ३३१ (टिप्पणी), ३४०  
 (टिप्पणी)  
 नाद ४७ ७३, ७४, ७६, ४७३ ८७४  
 नाद (ध्वनि) श्रौत स्फोट ७४  
 नाद श्रौत स्फोट म अंतर ७४  
 नादपरमाणु ८४  
 नानात्वदशन १०७  
 नानात्ववादी १०५ १०७  
 नानात्ववादी दशन १०४  
 नातरीयक ५५ ११५ ११६ १४६  
 ३८०, ३६७ ४०१  
 नाम १०३ १३३, १३४ १३६

नालिकायत्र २२१  
 निघात ३३३  
 नित्य १६२  
 निपात ११, १०३, १३३ १३४,  
 १३६, ३३२, ३६१  
 निपातन १२ ६३  
 निमित्तातिशय ३६२  
 नियम १२, ३३७ ३५४ ३५५ ३८०  
 ४०५, ४२५  
 नियममात्रवाद्य ४२०  
 नियम सिद्धांत ३६४  
 नियोगवाक्याय ३७०  
 नियोगवाक्याथवाद ३६६  
 निरवयववण ७३  
 निरवयववणपत्र ७६  
 निरवयव वाक्य ३४७  
 निरवयव वाक्यवाद ३४८  
 निरवयव वाक्यवाच ३४८  
 निरवयव वाक्यस्फोट ८०  
 निरवयववाक्यवाक्यवाद ३५६  
 निरवयवस्फोट ४६३  
 निराकाश पन्थाय वाक्याय रूप मे  
 ३६८  
 निराकाश पदाय वाक्याय ३६६  
 निरुक्त १८ १५७, १७२, १७३  
 (टिप्पणी) २०६ (टिप्पणी) २४५  
 २६८ २६४ (टिप्पणी), ३०५  
 निरुक्तकार १२३, १६३  
 निरुक्त भाष्य २४६ (टिप्पणी)  
 निर्वातप्रश्न ४२१  
 निर्दिष्ट विषय २६३ २६४  
 निवृत्य २८६ २६० २६१  
 निवृत्य वम २६०, २६१  
 निर्विनक समाधि ३६  
 निर्विनकसमापत्ति ३६  
 निवृत पन्थाय ४४७

नलवततुरेणणतश २५३  
नलतुध ३८०  
नलतुतल २३८, २३९, २८१  
नलतुतल तुरीर सलदुधल डे डेद  
२३९  
नडडवलडडडड ३८९  
नैडडडड २०७  
डडड डशन ३५९  
डडडडडड ३०, ३८ ५२, ७७, ३५०  
डडडरतनडडड ५१७ (डलतुतु०)  
डडडरतनडडड डडडडड ५७८  
(डलतुतु०)  
डडडरतनडडड ५१५, ५७८  
(डलतुतु०)  
डडडडडडडड डे डत डे डल २०७  
डडडडडड १२१  
डडडडडड १२१ (डलतुतु०)  
डडडडडडडड १२१  
डडड ६५ १०२, १२३ १९७  
२०१ (डलतुतु०) २५५ २७०  
(डलतुतु०) ५३७  
डडडडडड १९ ३०, ६५, ७५ ११६  
(डलतुतु०), १५९ २३५ २८९,  
३११, ३२५, ३८७ ५५३  
डडडडडडडडडड १११  
डडड डलसुदुडु डडड डडडडड डडडडड  
डडडडडड २०  
डडडडडडडड ३०९  
डडडडड डडडडड २५१ २५३  
डडडडडडडडडडडड १५१ २७७  
डडडडडड १८, ३०९, ३६५, ३६५  
(डलतुतु०)  
डडडडडडडड १० १२, १३, ५३, ६५,  
७८ ८९ १०१ १५० १७२,  
२२८ २३७ २५५, २८७, २९५,  
३०० ३०५, ३११ ३३० ३८६,

५१०, ५११, ५३७  
डड ११ १०७  
डडडडडडडडड १३५  
डड डडडडडडडड ६२, ६५,  
१३१  
डड डडडडडडड डे डडडड ५३६  
डडडडडडडड डडडडडडडड १३१,  
३२७  
डडडडड ३३५  
डडडडड ११५  
डडडडड ३६१  
डडडडडडडडडडडड ३१, २९१, ५५१  
(डलतुतु०)  
डडडडडडडडडड १०७  
डडडडडड १५ ५३, ७५, २५५  
(डलतुतु०), २६५ (डलतुतु०), ३१०,  
३११, ३१५ ३२९, ३९३  
(डलतुतु०) ३५९ (डलतुतु०) ५५०  
डडडडडडडडडड ११६  
डडडडडड ३६२  
डडडडडडडडडडडड ३२  
डडडडडड १०  
डडडडडडडड १३९  
डडडडडडडड ६५  
डडडडडडडड ९०, १५३, ५६५, ५६८,  
५७०  
डडडडड ३९७  
डडडडडडडडड डलरुडण २०७ (डलतुतुतु०)  
डडडडडडडडड ३२  
डडडड डडडडडड डडडडडडड ३७७  
डडडड डडडडड १२३  
डडडडडडडडडडडड ३२७  
डडडडडडडडड डडडडडडड ११६, ११७  
डडडडडडडडड ५८  
डडडडडडडडडडडड ३२  
डडडडडडड १७१

परमोगातु ३६, ८७, ३४६  
 परमैपद २४७, २४८, २४९, २५०,  
 २५१, २५७,  
 परस्मभाष २५७  
 परा ४७२  
 पराङ्ग ३७६, ४०१  
 पराङ्गवद्भाव ४३७  
 परात्रिगिवा ८०, ८२  
 पराप्रकृति ३७  
 पराय २६७  
 पराधता २४६  
 परामान व्यापार ६८  
 परावाक ४१, ४२  
 परिकल्पितहपविपर्याय ३६६  
 परिच्छिन्नाय ४०  
 परिच्छेत्सम्स्कार भावगावीजवतिलाभ  
 प्राप्तयोग्यता ७४  
 परिणाम ४८०  
 परितुष्टि ३५  
 परिपूर्णगत्तित्व ३२  
 परिभाषावृत्ति १२ १०२ ११४  
 परिसह्या ३८४  
 परिममाप्ति ३४३  
 परोप २३६  
 पयुदास ३७६ ४०४, ४४८  
 पश्यती ३८, ३९ ४७ ६८ १०३  
 १५५ ४७२, ४८१  
 पाठ ३७८  
 पाठक्रम १४२, ३६६  
 पाण्डेय के० सी० २७ (टिप्प०)  
 २०० (टिप्प०)  
 पाण्डेय, चन्द्रवली १८  
 पाण्डेय, रामाज्ञा ३२  
 पाणिनि ६ १० ११ १३ २० ६३  
 ६४, ६६ ६०, १२४, १३८, १४४  
 १५४ १५६ १६५ १८०, १८४

१८६, १६७, २१० २२१ २३७,  
 २४२, २४३, २४५ २४६ २५७,  
 २५८ २६४, २७१ २७६ २८३  
 २८८, २९२ २९४, २९५ २९६  
 २९७, ३०५ ३०७ (टिप्प०)  
 ३१३, ३१६, ३२० ३२२, ३२३  
 ३२८, ३६०, ३८६, ३९८ ४३१  
 ४३४ (टिप्प०) ४३७ ८५४,  
 ४५८  
 पाणिनीय धातुपाठ २०६  
 पाणिनीयमतदपण ३१६ (टिप्प०)  
 पाणिनीयमतदपणकार ३०७  
 (टिप्प०)  
 पाणिनीयशिक्षा ७६  
 पातजलदान २२६  
 पाषाणरथि २६ ३०, ३३४ ३५०,  
 ३५२, ३५६ ४१४ (टिप्पणी)  
 ४१७  
 पानि ५१  
 पितले के० राघवन ३२  
 पुण्यराज १३, १४, २३, २५, २७  
 ३२ ४६, ६४, ६५, १०७, ११०,  
 ११२, ११४, ११८ १३३ १३५  
 (टिप्प०), १६६ (टिप्प०) २६५,  
 ३३३ (टिप्प०), ३४१, ३४४  
 (टिप्प०), ३४५ (टिप्प०), ३४७,  
 ३५३, ३५४ ३५५ ३५६, ३५९,  
 ३६०, ३६५ ३६८ ३७१, ३८०  
 (टिप्पणी) ३८१ ३८७, ३९०,  
 ३९३, ३९४, ३९५ ३९७ ४०६,  
 ४०८ ४२४ ४२८ ४३२ (टिप्प०)  
 ४४४ ४७०  
 पुराण २०६  
 पुरुष १५८  
 पुरुषार्थत्वय २६३  
 पुरुषोत्तमदेव ३१ ६५ ११४ १२७

(टिप्प०) २६१, २६६  
 पूर्वकालिकप्रिया १८२  
 पूर्वाचाय २५६, २६४, ३१३  
 पूर्वाचायमजा ४३४  
 पद्यवसवपदवाक्यवात् ३५६  
 पद्यवसवपदवाद ३२८  
 पद्यवमाकाशमवपत् ३३८  
 पद्यवमाकाशवपत्वात् ३६८  
 पयूक् २१२ (टिप्प०)  
 पे ह्न (प्रकीणक) १५, २८  
 प्रप २५४ २६२  
 प्रकरण ७७ ४२७  
 प्रकरणादिसहित प्रसद्धि प्रप्रसिद्धि  
 ११८  
 प्रकार का स्वरूप ४१३ ४५५  
 प्रकाश ४३, २१६  
 प्रकीणकप्रकाश २३ २८ ३१३  
 प्रकृति ३८८  
 प्रकृति ऊह ३८८  
 प्रकृतिनियमवाद १३  
 प्रकृतिविकृतिभाव ३६०  
 प्रकृत्यधविशेषणपक्ष १६२ ३१८  
 प्रकृत्यधविशेषणवाद १३  
 प्रक्रम ८६  
 प्रक्रियाकीमुदी २६०, २६५  
 प्रक्रियाप्रकाश ३१  
 प्रक्रियाप्रसात् २०७ (टिप्प०) ३१६  
 ३३१  
 प्रख्याविशेष १४६  
 प्रनाकरगुप्त २६ ८६  
 प्रणव ४७६  
 प्रतिनिधि ३८० ४०६, ४२०  
 प्रतिनिधि की उपपत्ति ४२०  
 प्रतिपत्तिराम १४२ ४००  
 प्रतिपत्तिविधाना ४४१  
 प्रतिपादकपटाथ १२७

प्रतिपात्क दाम् १५०  
 प्रतिपद्य दाम् २१५, २१६  
 प्रतिविम्बमान ४६७  
 प्रतिविम्बवाद ३०६  
 प्रतिभा ३०, ३५, ४३, ७८, ३७१  
 प्रतिभा क छ भेत् ३७२  
 प्रतिभात्मक अलण्ड वाक्याय ३५३  
 प्रतिभा दान ३१  
 प्रतिभावाद ४३  
 प्रतिभावाक्याय २०४ ३६६,  
 ३७६  
 प्रतिभावाक्याय रूप म ३७१  
 प्रतिलीनाकार ४०  
 प्रतिषेध १२  
 प्रतिसहूतक्रम ४०, ८७  
 प्रतिहारैन्दुराज २६  
 प्रतीतपदाथक ६६ ८८, ८९, ९०  
 प्रतीतपदाथक ध्वनि ८८  
 प्रतीतपदाथकता ४७६  
 प्रतीयमान ५५ १०१, १२१, १२२,  
 १५०, ३६७ ४०८  
 प्रतीयमान अर्थ १२१, ४७६  
 प्रथमपुरुष २६० २६१  
 प्रधानवाक्य ३६१ ३७६ ४०१  
 प्रध्वसानित्यता ६१  
 प्रध्वसाभाव ४४८  
 प्रमाकर १८ १२५ १४० ३३८  
 ४१६ ४१७  
 प्रमाचन्द्र ३०, ३५४  
 प्रमाणवातिक २४, २६, ६१ २७७  
 ३४७, ३५४ (टिप्प०) ४७७  
 (टिप्प०)  
 प्रमाणवातिक टीका १२५, ३४६,  
 ३५८  
 प्रमाणसमुच्चय १६  
 प्रमेयकमलमातण्ड ३५४

प्रयत्न ३७६  
 प्रयुक्ति ३७८  
 प्रयोगक्रम १४२  
 प्रयाजक २५४, ४०१  
 प्रयोजकनातरीयक ३७६  
 प्रयोजकमुफ्य ११५  
 प्रयोजनपत्न्याय १२७  
 प्रयोजनवाक्याय ३६६  
 प्रयाजन वाक्याय रूप म ३६८  
 प्रयोग्य कर्ता २८८  
 प्रत्यक्ष श्रुति ३८४  
 प्रत्यभिज्ञा ३७  
 प्रत्यभिज्ञान ४२ ४६  
 प्रत्यभिज्ञा प्रत्यय १४६  
 प्रत्यभिज्ञाहृत्य ४१ (टिप्प०)  
 प्रत्ययनियम २७७  
 प्रत्ययलक्षण १०  
 प्रत्ययाद्यन्त ३१८  
 प्रत्ययाद्यन्तविशेषणपक्ष १६२  
 प्रत्यवभासा ४०  
 प्रत्यागति १४२  
 प्रत्यन्तरिमाप्ति ३४३  
 प्रवाहान्तरिता ६२ ६०, ६१ ६२  
 ६६  
 प्रवृत्ति ३७८  
 प्रवृत्तिक्रम १४२, ३६६  
 प्रवृत्तिनिमित्त ४५१  
 प्रवृत्तिगतिप्रियावाद १७६  
 प्रणसा २०१  
 प्रणस्तपादनाध्य २०७ (टिप्प०)  
 प्रणस्तपादभाष्यसेतुनीका ३०६  
 प्रसंग २७८, ३८०, ४०१  
 प्रसंगप्रतिषेध ३७६ ४०४, ४४८  
 प्रसन्नपत्न्या माध्यमिकवृत्ति २६२  
 प्रसिद्धि अप्रसिद्धि सहित प्रकरणादि  
 ११८

प्राकृत ५१, ५२, ६१  
 प्राकृतध्वनि ११, ६८, ७३ २२१,  
 ४६२  
 प्राकृतनाद ७३  
 प्राचीन भाषाय ४५१, ४५७  
 प्राचीन टीकाकार १३  
 प्राचीनमीमांसक ४६४  
 प्राचीनव्याकरण २६६  
 प्राचीन साह्य ३६४  
 प्रातिपदिक १४२, २७७, ३२०, ४२७,  
 ४५३  
 प्रातिपदिकाय ११४, १४०, १५४,  
 १६२ १७१ २७६, २६७, ३६२,  
 ३६७  
 प्रातिशाख्य २४४, ३६०  
 प्राणविभाषा २५७, ४०५  
 प्राप्ति ३४  
 प्राप्यकम २८६, २६०, २६१  
 प्रासंगिक ३७६, ३८०, ३८१  
 प्रेरक २६३  
 प्रोसीडिग्स एण्ड ट्राजेक्शंस ग्राफ द  
 सिक्स्थ थोरियण्टलका फोसप टना १८  
 फलभेत् ३७६, ४०३  
 फलवाक्यायवाद २०३, २०४  
 फलाभाव ३८४  
 फिलासफी ग्राफ बड एण्ड मीनिंग ३३  
 फिलासफी ग्राफ ससुटल ग्रामर ३२  
 बृहचन २६४, २६६ २७३, २७६  
 ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु २२, १७३  
 बह्वचप्रतिशाख्य ७६  
 ब्रह्ममूत्र २५  
 वाणभट्ट १६, ४६३ (टिप्प०)  
 वादरि ४०१  
 वाधा २०१ ३७८, ३७६, ३८०,  
 ३८३, ३८४  
 वाधासमुद्देश २३, ३७७, ३८६



वातमट्ट २६  
 वाल्मीकि रामायण ५१  
 वास्तुशिल्प ४६३, ४६५  
 वास्तुशिल्प १०६  
 वास्तुशिल्पकार १०६  
 विदु ४७ ४७३, ४७४  
 वीज ४७३ ४७४  
 वीजवृत्तिसाभानुगुण्य १४७ १४३  
 वृद्धि का परिपाक ७४  
 वृद्धिप्रम १४२ ४००  
 वृद्धिप्रवृत्तिरूप २८३  
 वृद्धि म दा का घयधारण ७८  
 वृद्धि मान्यपण ३५४  
 वृद्धिमत्तात्रियावाद १७१  
 वृद्धयनुमहार ३५३ ३६४  
 वृद्धयनुमहारणा ३५२ ३५४  
 वृद्धयनुमहृति ३५३, ३५४  
 वहती ८१७ (टिप्प०)  
 वह देवता १३१ (टिप्प०) १५७,  
 ३३८  
 वत्सहिता २०  
 वजि १६  
 घोषदेव ३०७ (टिप्प०) ३१६  
 वीर्य आचाय १२५  
 वीर्यदान ७७ २०६ २२३ २८३,  
 ३५४  
 भगवद्गीता २०७ (टिप्प०)  
 भगवानदास २६६ (टिप्प०)  
 भट्टगोपाल ४२६  
 भट्टाचाय दिनेशचन्द्र २७  
 भट्टाचाय विनयतोष १७  
 भट्टोजि दीक्षित ३१, ५३ ६०, ६६,  
 २२५ २४६ २६२, २६६ २६५  
 (टिप्प०), ३१६ (टिप्प०), ३८७  
 (टिप्प०) ४४३  
 भरतमिश्र ३२ १३६ (टिप्प०)

भृगु मित्र ११६  
 भृगु हरि १० १३ १४ १५ १६  
 २० २३, २६ २७ २८ ३० ३६  
 ३७ ४० ४३ ५०, ५७ ५९ ६३  
 ६९ ८० ८३ ८६ ९०, ९१ ९७  
 ९९ १०६, १११, ११३ १२३  
 १२८, १२९ १३० १३१ १६०  
 १४४ १६९ १४९ १५० १५३  
 १५७, १५८ १६२ १७१ १८३  
 १६६ २०३ २०९ २११ २१६  
 २१५ २१६ २२६ २६० २६१  
 २६२ २६६ २७४ २७८ २८१  
 २८२, ३०१ ३०३ ३०६ ३०८  
 ३३१ ३३२ ३३५ ३३८ ६२  
 ३५८ ३६०, ३६५ ३७७ ३८८  
 ३६६ ४०२ ४०६ ४१ ६६,  
 ४६६ ४८३  
 भृगु हरि का वास्तुग्रन्थ २१४  
 भृगु हरि का अनुगार अष्ट पत्राय १२७  
 भृगु हरि पत्र २५  
 भवती २२८  
 भवभूति ३७३ (टिप्प०)  
 भविष्यत् २२८  
 भविष्यत् काल २३८  
 भविष्यत् का स्थान पर धाराणि नून  
 २३४  
 भविष्यती २३८  
 भामह १६ ४५६ (टिप्प०)  
 भारद्वाज १५६  
 भाव १५४ १६४ १७२  
 भाव घोर क्रिया १६४  
 भावना ३७०  
 भावना घोर क्रिया म ने १८५  
 भावनात्रियावाद १७७  
 भावना वाक्याय ३७०  
 भावनावाक्यायवा ३६६

भावभेद १७२  
 भावनगण १०  
 भावविकार १७३, १७४, १७५ ४५०  
 भावगत्तान्त्रियावाद १७२  
 भाषाविज्ञान ४५०  
 भाष्यकार (द्वष्टव्य महाभाष्यकार)  
 १४, १०८, १४७, १४८, १६७,  
 २२०, ४४३  
 भाष्यविवरण ४६० (टिप्प०)  
 भाष्यव्याख्याप्रपञ्चकार १२७ (टिप्प०)  
 भास्वर (प्रथम) १६ १७  
 भास्वर मूर्ति ११५, ४२६  
 भूत २०८  
 भूतनाल २३४  
 भूतकाल के पाँच प्रकार २३६  
 भेद ३७६, ३८०, ३-२  
 भेदाभेद द्वा ११०  
 भोक्तृ कवित ३६५  
 भा ० ३१, २६०, २६६, २०८  
 ३२४ ३३१ (टिप्प०) ३१६,  
 ३६०, ३७७, ३८० ३८१ २८२,  
 २८३, ३८७, ३६१, ३६३ ३६६,  
 ४०० ४०१, ४०२ ४०३, ४०६  
 ४०७, ४०८, ४१८, ४२८, ४४८,  
 ४६८ ४७६  
 भोजाज्ञ शृंगारप्रकाश ३७७ (टिप्प०)  
 मजूपा (व्याकरणसिद्धात लघु  
 मजूपा) १२६, २१४, २११  
 (टिप्प०), ३१७ ४११, ४३५  
 ४६८ ४६० (टिप्प०)  
 मजूपा बलाटीका ४७३ (टिप्प०)  
 मण्डनमिथ ३० २६२ ३६८, ३४६,  
 ४७६  
 मधुरा ५६  
 मध्यमपुरुष २६१, २६२ २६३  
 मन्मथा ३८ ३६ ४१, ६६ ६८,

१०३, ४७२  
 मध्यमावृत्ति ७०  
 मम्मट ११४, २१३ (टिप्प०), २६३,  
 ४२६, ४३१  
 ममप्रकाशिनी टीका १२६  
 मल्लवाल्मीकमाश्रमण १५ १७ ३०  
 ६६ १०३ ३४५ २४७ ३५६  
 ३५८ ४६०  
 मल्लिनाथ ५१, १६५ ४२६  
 (टिप्प०)  
 मयूराण्डरस ३६५  
 महापद्मती ४८  
 महाभारत २६ (टिप्प०) ६१  
 २०६  
 महाभाष्य १३ १४ १६ १७ ६  
 ८६, ११६, १०४, १४१, १५७  
 १६० १६० (टिप्प०) २१३  
 (टिप्प०), २३१ २३३, २३७,  
 २४५ २५६ २८६ (टिप्प०)  
 २६२ २६७ ३०५ ३३६, ३६१  
 ३६२ ३६६, ४० (टिप्प०),  
 ४४४  
 महाभाष्यकार १३ ५३ ८६ १०७  
 ११०, ११३ ११६ १२१ १३०,  
 १३३ १३६, १६३ १६६ १७८  
 १८२ १८३ १६४ २१०, २५  
 २४२, २४८ २६६ २५५ २५६,  
 २८१ २८४ ३०१ ३०५ ३१२  
 ३१६ ३६६ ६७७, ४५५  
 महाभाष्यदीपिका (द्वष्टव्य महाभाष्य  
 त्रिपादी) १२ २२ १६८ १७०  
 ३६६ ४५६ (टिप्प०) ६६२  
 महाभाष्यत्रिपादी २०, ३१ ६१ ८८,  
 ६१, ६२ १२१ (टिप्प०) १६४  
 १७० १७३ ३८० ५८०  
 (टिप्प०) ३८४ (टिप्प०)

३८८, ३९० (टिप्प०), ४०६  
(टिप्प०)  
महाभाष्यप्रदीप—१३, ३०, १००,  
१०१, १४१, १६८, १७०, १९०,  
२०० (टिप्प०), २३४, २५४  
(टिप्प०) २६१ (टिप्प०), २८६  
२९० २९४, २९७, ३२६, ३६६  
३८५ (टिप्प०), ३८६ (टिप्प०),  
३९३ ४४१  
महाभाष्यप्रदीपोद्योत १२० (टिप्प०)  
१२५ १४६ १६२ १६८  
(टिप्प०) २१४ (टिप्प०), २५१  
(टिप्प०) ३१०, ३२२ ४३७  
महाभाष्यप्रदीपोद्योतन ५२, ११३  
११४  
महाभाष्य-याख्या २२ (टिप्प०) ३८  
(टिप्प०)  
महाभाष्य-याख्याप्रपञ्च १०२  
महाभाष्य-याख्या हस्तलेख १२६  
(टिप्प०) ४६० (टिप्प०)  
महावाक्य ३५१ ३६१  
महाविषयता १४२  
महासत्ता ४३ ४८, १५४, १७१  
महासामा य १५४  
माघ १४  
माघवाचाय २८  
माध्यमिककारिकाटीका १६२  
(टिप्प०)  
मानिष्यर विलियम ८५७ (टिप्प०)  
माया ३४७ ४७३  
मालिनीनववातिक ४४  
मालिनीविजयवातिक २१६  
मिथ्यासादृश्य ४५०  
मामामन २०२, २२५ २८७  
मामामान्न ३०८, ३७०, ३७७  
२९४, ४०५, ४२० ४२३, ४७७

४७६

मीमांसासूत्र २५ १५७, ३३३  
मुकुलभट्ट २६, १२४  
मुख्य ११८ ३७६, ४०४  
मुख्य मध ११०  
मुख्य घोर नातरीयक ११५  
मुख्यगीगभाव ११  
मुख्यवृत्ति १२०, ३८८  
मुख्यावृत्ति १२१  
मृतविवत २६५  
मूर्तिविवत १७६, ४८०  
मुनि जम्बूविजय १७ (टिप्प०)  
मूलाधारचक्र ४७२  
मंससमूलर २०  
मंत्रायणी सहिता ३८८ (टिप्प०)  
३८६  
मीनीश्रीकृष्णभट्ट २२  
यदृच्छा ५८, १२३, १२४  
यवनभाषा ५२  
यास्क ६, ३६, ४३, ५०, १६४, १७३,  
१६५ ३०५  
युक्तिनीषिका १८  
युक्तिस्नेहप्रवरणी ४७८ (टिप्प०)  
युगपदधिकरणतावाद ४४२  
युगपदधिकरणविवक्षा १३१  
युधिष्ठिर मीमांसक २२  
योगदशन २१४ ३५८,  
योगदान म काल २०८  
योगनिमित्ता प्रतिभा ३७५  
योगरूढ १०२  
योग वासिष्ठ २०६  
योगसूत्र १८ ३६, ८१ ३५६ ३६५  
(टिप्प०)  
योगसूत्र भाष्य १८ ६७  
योग्यता ६६ ३८०, ३८७ ४०५  
योग्यतापत्ति ३८०

योग्यालक्षणसम्बन्ध १५३  
 योग्यभाव १२७  
 योगिक १०२  
 योगिरुद्र १०२ १०३  
 रघुनाथ गिरीमणि २०७  
 रघुवग १६ ३२६, ३६८, ४२६  
 रामप्रीतान ३०  
 रामगङ्गाधर १२६  
 रामभक्ति ३२  
 राघवन वी० २७ (टिप्प०), ३७७  
 राघवभट्ट ४७४ (टिप्प०)  
 राघवाना नाटक २१  
 राजतरंगिणी १६, २६  
 राजनेसर २६, २६०  
 राजाना गुरवर्मा २१  
 रामचन्द्र २६५  
 रामभती टीका (गणितप्रकाशिका)  
 ४३६  
 रुद्र गण १०१ १०७ ११७, १६६  
 १६७  
 रूपगणित ११२ ११८  
 रूपातिदा ३६२  
 लक्षण अनुपपत्ति ३७७  
 लक्षणसमुद्भाग २३ २४, ३७७  
 ३७६  
 लक्षणा ११६ १२०, १२१  
 लक्षणा वार्त्ता १२०  
 लक्षणा शब्द १२०  
 लक्ष्मण देशिकेन्द्र ४७४  
 लक्ष्मणस्वरूप १८  
 लक्ष्मीदत्त ३२  
 लघु ८०५  
 लघुप्रक्रमा १४४, ४०५  
 लघुप्रक्रमापद्धति ३४४  
 लघुविभक्त्यर्थनिर्णय ३२  
 लाक्षणिक १०१

सापय ३८०  
 सिद्ध १० १२, १४, १४३, ३२३,  
 ३७७, ४३३  
 सिद्ध अयनिष्ठ ३१६  
 सिद्ध ऊह ३८६  
 सिद्ध विचार २६८-३२६  
 सिद्ध गणित ३१६  
 सिद्ध सामाय ३२५  
 सिद्धाति भेद ३८०  
 सिद्धाद भेद ३८० ४०४  
 सिद्धादिक स्पेकुलेगन आफ द हिडूज  
 ३२  
 यचन १८, २६७  
 वराहमिहिर २०  
 वण ११ १४, ७४  
 वण की निष्पत्ति के प्रकार ७५  
 वण की प्रतिपत्ति और वण का  
 निर्माण ८०  
 वण की पाठगी कला ७६  
 वणतुरीयांग ७६  
 वण सावयव और निरवयव ७६  
 वण सायक और निरवयव ८१  
 वण व्यत्यय ८१  
 वण स्फोट १५३ ४६४, ४७०  
 वतमान २२८  
 वतमानकाल २२८  
 वतमानकाल दो तरह का २३२  
 वधमान २२, ४५८  
 वर्मा रवि २७  
 वसुधधु १७  
 वसुरान १४, १५ १७ ६६  
 वस्तुविनाशानित्यता ६१  
 वाक २८ ३५, ३६ ३८ ४०  
 वाक व रूप में स्फोट ४७२  
 वाक्य ११, १४, २०२, ३ ७  
 वाक्य और वाक्याथ में सम्बन्ध ४२५

वाक्यधम ४०६

वाक्य अवारयान ६२, ६४, १३१  
वाक्य अवधिक अवारयान १३१,  
३२७

वाक्य क भेद ३६०

वाक्य दीपिका ३२

वाक्यपदीय १०, १३, १४, १५  
१६, १७, १८, २१, २२, २३, २४  
२५, २६, ३०, ३१, ३२, ३७, ४६,  
५८, ६२, ७३, ७६, ६५, १००, ११०  
११६, ११८, ११९ (टिप्प०) १२१  
(टिप्प०) १२३, १२७, १३५  
१४०, १५७, १७६ (टिप्प०) २०१  
(टिप्प०) २१७ (टिप्प०) २२३  
२७४ (टिप्प०) २३६ (टिप्प०)  
२५७ (टिप्प०) ३०६, ३०८  
३१५, ३४४, ३५१ (टिप्प०)  
३६८, ४१३ (टिप्प०) ४८२  
वाक्यपदीयकार ७६, १३५ (टिप्प०)  
१४०, २५६

वाक्यपदीय षड्विंशति २५

वाक्यपदीय षष्ठम टीका १२७  
(टिप्प०)

वाक्यपदीय हरिवृत्ति ५३, १३०, १३१  
(टिप्प०), १३२ (टिप्प०) ८१६

वाक्यपदीय हरिवृत्ति—हस्तलख ६२,  
६३, ११८ (टिप्प०), ११९ (टिप्प०),  
१२१ (टिप्प०) १२२ (टिप्प०), १६४  
३३५ (टिप्प०) ३३६ (टिप्प०) ३३६  
२४३ (टिप्प०), ३६०, ३६७, ३६६,  
३८८ (टिप्प०) ३८५ (टिप्प०)  
३८६ (टिप्प०) ३६६ (टिप्प०)  
३८८, ४०३ (टिप्प०), ८२५  
(टिप्प०) ४०८ (टिप्प०) ८३३  
४२८, ४३५ (टिप्प०) ८५७  
८५८, ४५६

वाक्य प्रतिपत्ति १०७

वाक्यलक्षण २०२, ३३०, ३३१

वाक्यवाद ३२

वाक्य विचार ३३०, ४३६

वाक्य शेष ३८०, ४०६, ४०७

वाक्य सस्वार ६४

वाक्य स्फोट ६०, ४६४, ४६८, ४७०

वाक्याय १४, ३६२, ३६७

वाक्याथ की प्रक्रिया ४१०, ४२६

वाक्याथ के अनुप्राहक वाक्य के धम  
३७७

वाक्याथ निर्धारण के साधन ४२६  
४३५

वाक्याथ विचार ३६२-३७७

वाचनिक ३२७

वाचस्पतिमिश्र १८, २०, २१, ३०  
२०८, ३६५ (टिप्प०) ३४७

वाच्य १२२

वाच्यवाचकसम्बन्ध ४२६

वाजप्यायन ११, १४४, १४६, १४७,  
१५०, १५३, १६६

वाजसनेयी शाखा ३८६ (टिप्प०)

वाजसनेयी संहिता ३८८ (टिप्प०)

वात्स्यायनभाष्य २२८

वादमुधाकर ३२

वाग्निदेव सूत्र ३०, ३८, ३५७, ८४१,  
४७७, ४७६

वामन ३०, १२०, २४५, ३२६

वायुशब्दप्रतिपत्तिवाद ७७

वार्ताग्र १६, १३६

वातिक १३

वातिकपाठ ३१२

वातिककार १४, १०७, ११३, १२६  
१६५, १६६, १८१, २०७, २०३  
२७१, २८७, २६३, ३१२, ३१३  
३१६, ३२०, ३५६, ३६०, ४४१

धानिकामेष १३, २८, ३१३  
 धार्मिकानि १७२  
 ध्वरण ४४१  
 ध्वल्प ६५, २०१ ३७६, ३३७,  
 ३८० ४०५  
 ध्वार ६१  
 ध्वारय (कर्म) २८६, २६०, २६१,  
 २६२  
 ध्वृत्तियाग १०८  
 ध्वृत्तम, प्रथम १७  
 ध्वृत्तहास्य ४३७  
 ध्वृत्तान ३५३  
 ध्वृत्तानवा १५४  
 ध्वृत्तल २६० ३३१ (टिप्प०)  
 ध्वृत्त चक्रवर्ती ४२६  
 ध्वृत्तगविन ४७  
 ध्वृत्ति १२, ३७७,  
 ध्वृत्ति वावयाय ३७०  
 ध्वृत्ति वावयायवाद ३६६  
 ध्वृत्तियोगप्रम ३७६ ४०२  
 ध्वृत्तिरिणाम ३८०, ३६० ४०६, ४०८  
 ध्वृत्तिरिणामानित्यता ६१  
 ध्वृत्तिरीनाख्याति रूप ३६७  
 ध्वृत्तिर्वास ११२  
 ध्वृत्तिप्रतिषेध १०  
 ध्वृत्तिप्रयोग ४३१  
 ध्वृत्तिमविन २६७ ३३७ ३६०  
 ध्वृत्तिमवित्तविधान ४३७  
 ध्वृत्तिमविनविपरिणाम १४१ ४०८  
 ध्वृत्तिमवत्यय २६७ ३६७  
 ध्वृत्तिमवत्ययनिधय ३२  
 ध्वृत्तिमवत्ययर्षाभिधानपक्ष ३२७  
 ध्वृत्तिभाषा १० ४०५  
 ध्वृत्तिमश ४३ २१६  
 ध्वृत्तिमश त्रियावाद १७७  
 ध्वृत्तिरोध ४३३

ध्वृत्तिम्विता वसि ७०  
 ध्वृत्तिम्वितापरवाच्यलक्षण ११८  
 ध्वृत्तिम्विताप्रापितसन्निधान २६७ ३६८  
 ध्वृत्तिवत ३४, ७३, ७८ ८४ ११२,  
 १७१, १७६ (टिप्प०) २०६, २१६,  
 ३५३ ३७३, ४७५, ४७६, ४८१  
 ध्वृत्तिवत की परिभाषा ४८०  
 ध्वृत्तिवतवाद ६८० ४८२  
 ध्वृत्तिवतवा ५० ध्वृत्तिगार त्रिया १७५  
 ध्वृत्तिगिष्टाभिधान १४०  
 ध्वृत्तिगिष्टाभिधेय ३६७  
 ध्वृत्तिगिष्टावग्रहसप्रत्ययहेतु ३६५  
 ध्वृत्तिगिष्टोपहिता प्रतिभा ३७५  
 ध्वृत्तिगिष्टातिशे ३७८, ३७६ ३८०,  
 ३६२  
 ध्वृत्तिगिष्टातिशे छ प्रकार वा ३६०  
 ध्वृत्तिगिष्टातरातिशे ३७६  
 ध्वृत्तिगिष्टाविशेष्यभाव ४४४  
 ध्वृत्तिगिष्टावश्यवभाष्य १७  
 ध्वृत्तिगुणुप्त १६ २०  
 ध्वृत्तिचित्तरङ्गावाय ६७  
 ध्वृत्तिगिष्ठा १०  
 ध्वृत्ति १४, ४३८  
 ध्वृत्तिकार १४० २१४ ३२८, ४०७  
 ध्वृत्तिदीपिका ३२  
 ध्वृत्तिपरिणाम २६१  
 ध्वृत्ति म राख्या २७८  
 ध्वृत्ति विचार ४३७ ४५६  
 ध्वृत्तिम (देव) १६ २०, २४, २५,  
 ३१ ३८ ६० ६१ ६८ ७० ७४  
 ८०, ८२ ११६ (टिप्प०), १२८,  
 १३१ (टिप्प०), १४६, २१६  
 (टिप्प०) २१८ ३३८ ३७३  
 (टिप्प०), ४६८ ४६७ ४७५  
 ध्वृत्ति २०५ (टिप्प०)  
 ध्वृत्तिदान्तदशन २२३

यकटेश्वर २५  
 यत्करण ३४  
 यत्प्राग ७३  
 यत्प्राग्विनि ११ ६८, ४६७  
 यगरी ३८, ४१ ४५ ४६ १०३,  
 ४७२  
 यद्यनाय १२६ ४७३  
 यद्यनाय पाथगुण ३७ ३५६  
 यथाकरणभूषण ६३ ३१७  
 यथाकरणभूषणकार १८६  
 यथाकरणसिद्धाकारिका २१  
 यथाकरणसिद्धात्मजुषा २७ ६७३  
 (टिप्पण)  
 यथापिक ७१, २०७ २१६ २८०,  
 २८४  
 यथापिकदान १५२ २६८ २८६  
 २६५ ३०६  
 व्यजनागति १२१  
 व्यक्ति १४८, ४३४  
 व्यक्तिपक्ष १४८  
 व्यक्तिस्फोट २६४  
 व्यपदेशातिदेश ३६२ ३६३  
 व्यपदेश १४६  
 व्यपदेश ३६५ ६३८  
 व्यपहार नित्यता १५२, ४७२  
 व्यवहित कल्पना ३८० ४०७  
 व्याकरण ६१  
 व्याकरण का लोकपक्ष ६५  
 व्याकरणशास्त्र २२७, २६०, २६८  
 २६६ २७७, २८०, २८१, ६५२,  
 ४७०, ४७६, ४८३  
 व्याकरणशास्त्र म काल २१०  
 व्याधि १०, ११ ६०, १०४, १४४,  
 १८६ १४७, ३३०, ३६२  
 व्याधि ३८० ४०४  
 व्याधिप्रकाल २४१

व्याग ३६  
 व्यागमाध्य २७६, ३६५ (टिप्पण)  
 व्याकरण ३३० (टिप्पण), ४६१, ६७३,  
 ४७८  
 व्याकरण (पाथगुण व टीकाकार)  
 ४७६  
 व्याकरण शास्त्र ४७३  
 व्याकरणिकभक्तिमय ६१०  
 व्याकरण व्यागार ३७६  
 व्याकरणशास्त्रभेद ४०२  
 व्याकरणार्थ ३८०  
 व्याकरणशास्त्र १७, ६४, ५४, २६६  
 (टिप्पण)  
 व्याकरण शास्त्री २० ३६२ ३८०, २८३,  
 २६३, ४०१ ४११, ६११  
 (टिप्पण)  
 व्याकरण १६, ८२  
 व्याकरण अथवा १५२  
 व्याकरण अथवा १२६  
 व्याकरण एकत्ववाद १०६  
 व्याकरण एकत्ववादी १०६  
 व्याकरण और अथ वा सम्प्रदाय ६७  
 व्याकरण वा अथ ६४  
 व्याकरण का स्वरूप ८८  
 व्याकरण की अभिव्यक्ति प्राथम्य ७०  
 व्याकरण का छ प्रकार ३६५  
 व्याकरणकौस्तुभ ३१ ५३ ६०, ६६ ७०,  
 २०६ (टिप्पण) २४६ (टिप्पण), २६३  
 (टिप्पण) २६२, ३०१ ३८७ (टिप्पण)  
 ४४४ (टिप्पण) ४७२  
 व्याकरणजाति १५० १५३, ३४४  
 व्याकरणानुपाती २०८  
 व्याकरण और व्याकरणिक भेद ६६  
 व्याकरणानुपाती २२  
 व्याकरणानुपाती १०४  
 व्याकरणानुपाती ६८

गण नित्य ६०  
 गण परमाणु ७८  
 गण प्रमा २२, २३, २८,  
 १०३  
 गण ब्रह्म ४७३, ४७४, ४७५, ४७६  
 ४८१, ४८३  
 गण ब्रह्मवाद ३१  
 गण भेद १०२  
 गण भेदभेदज्ञान १०३, १०६  
 गण भेदवाद १०८, ११०  
 गण भेदवादी १०६  
 गण वचन १०३  
 गण विचन ४७५, ४७७  
 गण व्यवधान १०८,  
 गण गति प्रकाशिका ३०  
 गण मस्कार ३०८ ४८३  
 गण स्मृति कल्प ३६७  
 गण कृति १२५  
 गण कृति वाच्यवाद ३४४  
 गणानुविद्धान ३६  
 गणानुविद्ध बुद्धि ३७  
 गणानुपासन ६०, ६३, ६५  
 गणान्तरादिभेद ३८०  
 गणान्तरसन्निधान ४३३  
 गणार्थिकी ४५८  
 गणार्थी ४५८  
 गण मरण ३१  
 गणार्थिताविवृति ३०  
 गणार्थ प्रवृत्ति १०  
 गणार्थपचार १०६  
 गणार्थपचार ११०  
 गणार्थ २५  
 गणार्थमाप्य ४६४ (टिप्पण), ४६५  
 (टिप्पण)  
 गणार्थायन १२३, १२४,  
 २३७

गणार्थ सिद्धान्त ३५४  
 गणार्थरहित २८, ३० ४७७  
 गणार्थ भाष्य ३८० (टिप्पण) ३८३,  
 ३६४ (टिप्पण) ३६६ ४००, ४०१  
 ४१६ ६१७  
 गणार्थदातृत्व ४७४  
 गणार्थिकनाथ ३३६  
 गणार्थिकादिग २६२, २६३  
 गणार्थी गौरीनाथ ३३  
 गणार्थी, गणार्थेव २३, २४  
 २५  
 गणार्थी मगलदेव १७  
 गणार्थी रघुनाथ ३३  
 गणार्थी श्रीचन्द्र १६ (टिप्पण)  
 गणार्थकार ७६  
 गणार्थकृष्टि २२ २० ४७ ४६,  
 ४७४  
 गणार्थकृष्टिकार ४३  
 गणार्थपालक १४  
 गणार्थभद्र २६  
 गणार्थप्रकाश ३१ १०२ ११८  
 (टिप्पण), ११६ (टिप्पण), १२०  
 २६१, २६३, ३२४, ३३१ (टिप्पण),  
 ३३८, ३५६ (टिप्पण), ३६१  
 (टिप्पण), ३६३ ३७० (टिप्पण)  
 ३७६ ३७७, ३८१ ३८३ ३८७  
 (टिप्पण) ३६१ (टिप्पण) ३६३  
 (टिप्पण), ३६५, ३६६ ३६७  
 ३६६ ४०१ ४०८ (टिप्पण), ४०६  
 (टिप्पण), ४१० (टिप्पण), ४१८  
 (टिप्पण), ४१६ (टिप्पण) ४२२  
 (टिप्पण), ४२४ (टिप्पण), ४२६  
 (टिप्पण), ४६८, ४७६  
 गणार्थप्रकाश हस्तलक्ष (घडमार)  
 ३६४ (टिप्पण), ३६६  
 शेष ३७६, ४०१



गणनारामण ३१, ६०, १५० (टिप्प०),  
 ४७२  
 गेयविनियोगसंगण ३७७  
 गेय श्रीष्टण ३१, २६१, ४४१  
 गणनेपिभाव ३७७  
 गवर्णान ४७  
 गवर्णम ४३, ४५, ७६, १७७, २१६,  
 २६१  
 गीतक ७६, १३१ (टिप्प०) ३३८  
 शाभिक २३३  
 श्राविरणसहिता ४७  
 श्रीमद्भगवद्गीता ३५  
 श्रीहृष २६  
 श्रुतार्थपत्ति ६३ (टिप्प०), ६०८  
 श्रुति ३७७ ३७८ ४२२  
 श्रुतिश्रम ३६८  
 श्रुतिप्रापित २६३  
 श्रुत्यादिक्रम ३७६, ३८०  
 श्रुत्यादिबलाबल ३८०  
 श्रुत्यादिविनियोग ३८०, ४०२  
 श्रुयमाण गन् १५०  
 श्लेष प्रलवार ४०८  
 श्लोकवातिक ३०८ ४६०  
 श्लोकवातिक (मीमांसा) २५, २६,  
 ३०, ३४१, ३५० (टिप्प०) ३५१,  
 ४२५ ४३५ (टिप्प०)  
 श्लोकवातिकवार ६०, २६८, ३०५,  
 ३१३, ४२८, ४६६  
 श्लोकवातिकशास्त्रिका (हस्तलेख)  
 ३५६ ३५८ (टिप्प०)  
 श्लोकवातिकव्याख्या ३५०  
 श्लोकवातिकव्याख्या व्यापारत्नाकर  
 ३५२ (टिप्प०)  
 श्वस्तना २३८  
 श्वास ७६  
 श्वेताश्वत्थरोपनिषद २०६ (टिप्प०)

षट् प्रकार की प्रतिभा ३७६  
 षड् मायविवार १५, १७२, १७३  
 २१६, ४८१  
 सविधान २५०, २५४, २५५  
 सविधातवृत्ति २५०  
 ससग ६५, ६७ ६८, ४३०  
 ससग वाक्याम ३६६  
 ससगवा ३६८  
 ससगयानी २८७  
 ससर्गानित्यना ६१  
 समृष्ट वाषयाथ ३६६ ३६८  
 समृष्टाथप्रत्ययावर्गिनी १२६  
 समृष्टाथप्रत्ययभाग ४०  
 ससृष्टनगद्य ४६३ (टिप्प०)  
 ससृष्टतभाषा ५०  
 सहनश्रम ३४६  
 सवमव १८६, १८७  
 सक्त्तपत्त्यि भविविदा ११७, ११८  
 ससण्डस्फोट ४६३  
 सकेतसम्बन्ध ४२६  
 सह्या १८ १५८, २६४ २६७ २६८  
 सह्या विचार २६४ २८०  
 सगीतरत्नाकर २३, ३०२ (टिप्प०)  
 सग्रह १० ११, १३, १४, ५६, ३३०  
 सग्रहकार ११ ५१, ५६, ६४, ६८,  
 ८२, १०७ ११०, १३०, १३१  
 (टिप्प०), १३७ १३८, १५१,  
 १६४, २६६, ३०२, ३३८, ३६२  
 ४५७ ४५८, ४६२  
 सघात ३३४, ४५७  
 सघातवाद ३३८  
 सघात की समीक्षा ३४१  
 सघातपक्ष ३४०, ३४४, ३५७  
 सघातवर्तिनी जाति ३४४  
 सघातवाद और पृथक् सववाद म भे  
 ३५७

सञ्चय ३७५  
 सञ्चय ४६  
 सत्तागण ५५—६२  
 सत्ता शब्द के प्रकार ५८  
 सत्तामणिमन्वय ५८, १०५  
 सत्तागण शीर अनुकरण शब्द म भेद ५६  
 सत्तागण क प्रवृत्तिनिमित्त ५७  
 सत्तायुक्त १७३, २८६  
 सत्ता ४३, १२३, १४८, १५५  
 सत्ता भिन्नायुक्त १७१  
 सत्तामहासामाय १४६  
 सत्ताजानिवा १५४  
 सत्ताविवत ४८१  
 सत्ताविवत जेयावाग ४०  
 सत्ताविवत ३८७  
 सत्ताविवत क्रियापद १३७, २६६  
 सत्ताविवत ध्वनि ८६  
 सत्ताविवत २६३  
 सत्ताविवत के तीन भेद २६३  
 सत्ताविवत २७८  
 सत्ताविवत २१७  
 सत्ताविवत शीर समुच्चय म भेद ३८७  
 (टिप्पणी) ६४३  
 सत्ताविवत २११  
 सत्ताविवत ३७७  
 सत्ताविवत ३१८  
 सत्ताविवत ६४३ ४४४  
 सत्ताविवतपरिममाप्तिपक्ष ३४३  
 सत्ताविवत ६४ १४७ २०१ ३२७  
 ३३७ ३७६ ३८० ४४३, ४४४  
 सत्ताविवत ११ २६५, ३७६  
 सत्ताविवत ३७६, ४०३  
 सत्ताविवत १२५ १२७  
 सत्ताविवत ३७६  
 सत्ताविवत ३८०, ४६१

सम्बोधन २६७  
 सत्ताविवतशब्दाभरण ३१  
 सत्ताविवतसंग्रह २८, ३१, ४७१  
 (टिप्पणी)  
 सत्ताविवत ३५७, ३५८  
 सत्ताविवत ३५८  
 सत्ताविवत २५८  
 सत्ताविवत नरात्म्य ३५  
 सत्ताविवत धाफ इमोगत २६६ (टिप्पणी)  
 सत्ताविवत २७७  
 सत्ताविवतसत्ताविवत ३५८  
 सत्ताविवतकारिका ३०० (टिप्पणी)  
 सत्ताविवत २१४ २१६ २८७ २६५,  
 ३०१, ३०२, ३०३ ३०४  
 सत्ताविवत क अनुसार काल २०८  
 सत्ताविवत २६०  
 सत्ताविवतदुपकारक ४०७  
 सत्ताविवत ३७६  
 सत्ताविवतनिबन्धना प्रत्यभिन्ना १०५  
 सत्ताविवत निमित्त के रूप मे १११  
 सत्ताविवतपदाथ १२४  
 सत्ताविवत १५८, २८१, २८२  
 सत्ताविवत भ्रसाधुव्यवस्था १३२  
 सत्ताविवत चार प्रकार की ४४  
 सत्ताविवत १३३  
 सत्ताविवत ४८१  
 सत्ताविवतदीपिका ११५  
 सत्ताविवत भृक १०८  
 सत्ताविवत ३७६ ३६४ ३६५ ६३४  
 सत्ताविवतनियम ३८४  
 सत्ताविवतभूत २३४  
 सत्ताविवतविशेष ३१४  
 सत्ताविवततिदेश ३७८, ३७६ ४८०,  
 ३६१  
 सत्ताविवतधिकरणवाद १३  
 सत्ताविवत म सामाय १६६

सामान्य धीर जाति म भेद १४६  
 सायण ३१, ४७१, ४७२  
 गावयववण ८०  
 सिद्धाब्द १२  
 सिद्धा त कौमुदी १३५  
 सिद्धान्त कौमुदी तत्त्वबोधिनी १२६  
 साहचय ४३२  
 सीरदेव १०, ४३१ (टिप्प०)  
 सुचरितमित्र २६, ३०, ४१ ३३४,  
 ३४१ ३५६, ३५८  
 सुपेण २५८  
 सूत्रकार १३ १४ २०३  
 सूत्रितरत्नाकर ३१, ६० १०३ १०४  
 १५० (टिप्प०) २०६ (टिप्प०)  
 ४७२,  
 सोपस्कार सूत्र ४०७  
 सोम १५६  
 सोमान द ४७ ४७४,  
 सोमेश्वर ४२६  
 सोमव १६  
 स्कन्दस्वामी १८ २४५  
 स्थान ३७६ ३७७  
 स्थानश्रम ३६६  
 स्थानिद्भाव ४०६  
 स्थानी १२  
 स्थितलक्षण ३६६, ३६६, ३६७  
 स्थितलक्षण पदाय १२७, १३०  
 स्थितलक्षण धीर अपोद्धार पदाय  
 १३०  
 स्फोट ३१, ६६ ६७, ६८, ६९ ७२,  
 ७३ ८६ ९० १०४ ३४७, ३७१,  
 ४६२ ४७३  
 स्फोटचन्द्रिका ३२  
 स्फोट जाति रूप म ४७१  
 स्फोटतत्त्व निरूपण ३१ ४७८  
 (टिप्प०)

स्फोट ध्वनि रूप म ४६१—४६८  
 स्फोटवाच ४६०—४८४  
 स्फोटवाच की समीक्षा ४७७  
 स्फोट वाच नित्यत्व रूप में ४७०  
 स्फोट वाचब्रह्मरूप म ४७४  
 स्फोट वाचरूप में ४६६  
 स्फोटसिद्धि ३०, १३६ (टिप्प०)  
 ३४८,  
 स्फोट सिद्धि टीका ८६ ३४८  
 स्फोटापन ६६०  
 स्मृतिनिरूपणा ३७  
 स्यादवाचरत्नाकर ३८ ४२ ६८, ७०,  
 ३४७ ३५७, ४७६ (टिप्प०)  
 स्वप्नप्रबोधवृत्ति ३७३  
 स्वर ७६ ४३४  
 स्वरूपायत्व १०६  
 स्वलक्षण ३६६  
 स्वातन्त्र्यशक्ति २१४ २१५ २१६,  
 २२०  
 स्वातन्त्र्यशक्ति धीर षत शक्ति २१८  
 स्वाभाविकी प्रतिभा ३७२ ३७३,  
 स्वाय १४१  
 स्वायता २४६  
 हरदत्त मिश्र १४ ५३ ७५, १४०,  
 १८३ २५३, २६५ ३१०, ३१५  
 ३२६ ३५६ (टिप्प०) ४६०  
 हरियशोमिश्र ३२  
 हरिवल्लभ ३२  
 हरिस्वामी १७  
 हय्यक्ष १६  
 हयचरित १६  
 हयचरित एक अध्ययन १६  
 हयचरित टीका ३३० (टिप्प०)  
 हिस्ट्री आफ किलासफी ईस्टन एण्ड  
 वेस्टन भाग १ १८ (टिप्प०)  
 हेतु २८६

हेतुहेतुमद्भाष १३७

हेलाराज १३, २२ २३, २७, २८,  
३२, ४२ ५६ ६३, ६५ ६८ ६९,  
१००, १२७ १२८, १२९, (टिप्पणं)  
१३० टिप्पणं) १३२ टिप्पणं) १३३,  
१३५, १५२, १५३, १५४ १५५ १७३,  
१७४ टिप्पणं), १७५ टिप्पणं), १७६  
१७९ १८४, २०९, २१३ (टिप्पणं)  
२१४, २१७ २२१ (टिप्पणं), २२९

टिप्पणं) २३३, २३८, २६०, २७९,  
२८३, २८७ २९० २९२, २९३,  
३०४, ३०८ ३१२ ३१७, ३२८,  
३६०, ३६३ ३६६ (टिप्पणं),  
३८० (टिप्पणं) ३९३, ४१९,  
(टिप्पणं), ४५५ ४७० ४८१,  
४८२

ह्वेनच्याग १७, २९

सामान्य और जाति म भेद १४६  
 सायण ३१ ४७१, ४७२  
 सावयववर्ण ८०  
 सिद्धशब्द १२  
 सिद्धान्त कौमुदी १३५  
 सिद्धान्त कौमुदी तत्त्वबोधिनी १२६  
 साहचर्य ४३२  
 सौरदेव १०, ४५१ (टिप्प०)  
 सुचरितमित्र २६, ३०, ४१ ३३४,  
 ३४१ ३५६ ३५८  
 सुपेण २५८  
 सूत्रवार १३ १४ २०३  
 सूत्रितरत्नाकर ३१, ६०, १०३, १०४,  
 १५० (टिप्प०) २०६ (टिप्प०),  
 ४७२,  
 सोपस्कार सूत्र ४०७  
 सोम १५६  
 सोमानन्द ४७, ४७४,  
 सोमेश्वर ४२६  
 सोमव १६  
 स्कन्दस्वामी १८, २४५  
 स्थान ३७६ ३७७  
 स्थानक्रम ३६६  
 स्थानिद्भाव ४०६  
 स्थानी १२  
 स्थितलक्षण ३६६, ३६६ ३६७  
 स्थितलक्षण पदाथ १२७ १३०  
 स्थितलक्षण और अपोद्धार पदाथ  
 १३०  
 स्फोट ३१ ६६ ६७, ६८ ६९ ७२,  
 ७३ ८६ ९०, १०४ ३४७ ३७१  
 ४६२ ४७३  
 स्फोटचन्द्रिका ३२  
 स्फोट जाति रूप म ४७१  
 स्फोटतत्त्व निरूपण ३१, ४७८  
 (टिप्प०)

स्फोट ध्वनि रूप म ४६१—४६८  
 स्फोटवाद ४६०—४८४  
 स्फोटवाच की समीक्षा ४७७  
 स्फोट वाच नित्यत्व रूप म ४७०  
 स्फोट वाचब्रह्मरूप मे ४७४  
 स्फोट वाचरूप में ४६६  
 स्फोटसिद्धि ३०, १३६ (टिप्प०)  
 ३४८  
 स्फोट सिद्धि टीका ८६, ३४६  
 स्फोटायन ४६०  
 स्मृतिनिरूपणा ३७  
 स्यादवादरत्नानर ३८ ४२, ६८ ७०,  
 ३४७ ३५७, ४७६ (टिप्प०)  
 स्वप्नप्रबोधवृत्ति ३७३  
 स्वर ७६ ८३४  
 स्वरुपायत्व १०६  
 स्वलक्षण ३६६  
 स्वात्म्यशक्ति २१४ २१५ २१६,  
 २२०  
 स्वात्म्यशक्ति और कत शक्ति २१८  
 स्वाभाविकी प्रतिभा ३७२ ३७३,  
 स्वाय १४१  
 स्वायता २४६  
 हरदत्त मिश्र १४, ५३ ७५ १४०,  
 १८३, २५३, २६५ ३१० ३१५,  
 ३२६ ३५६ (टिप्प०), ४६०  
 हरियशोमिश्र ३२  
 हरिवल्लभ ३२  
 हरिस्वामी १७  
 हय्यक्ष १६  
 हयचरित १६  
 हयचरित एक अध्ययन १६  
 हयचरित टीका ३३० (टिप्प०)  
 हिस्ट्री आफ फिलासफी ईस्टन एण्ड  
 वेस्टन भाग १ १८ (टिप्प०)  
 हेतु २८६

हेतुहेतुमद्भाष १३७

हेलाराज १३, २२, २३, २७, २८  
 ३२, ४२, ५६, ६३, ६५, ६८, ६९,  
 १००, १२७, १२८, १२९, (टिप्प०)  
 १३० टिप्प०) १३२ टिप्प०) १३३,  
 १३५, १५२, १५३ १५४, १५५ १७३  
 १७४ टिप्प०), १७५ टिप्प०), १७६  
 १७९, १८४, २०९ २१३ (टिप्प०)  
 २१४, २१७ २२१ (टिप्प०), २२९

टिप्प०) २३३, २३८, २६०, २७९,  
 २८३, २८७ २९०, २९२, २९३  
 ३०४, ३०८, ३१२, ३१७ ३२८,  
 ३६०, ३६३ ३६६ (टिप्प०),  
 ३८० (टिप्प०) ३९३, ४१९,  
 (टिप्प०), ४५५ ४७० ४८१,  
 ४८२

ह्येनव्याग १७, २९